पार्श्वनाथ शोधपीठ ग्रन्थमाला : ६६

सम्पादक
प्रो० सागरमल जैन

हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

भाग २ : सत्रहवीं शती
(मरु गुर्जर)

2748

डॉ० शितिकण्ठ मिश्र

पूज्य सोहनलाल स्मारक पार्श्वनाथ शोधपीठ
वाराणसी - २२१००५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ शोधपीठ ग्रन्थमाला ६६

सम्पादक
प्रो० सागरमल जैन

हिन्दी जैन साहित्य

का

बृहद् इतिहास

भाग २ सत्रहवीं शती
(मरु गुर्जर)

डॉ० शितिकण्ठ मिश्र

पूज्य सोहनलाल स्मारक पार्श्वनाथ शोधपीठ
वाराणसी - २२१००५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ शोधपीठ ग्रन्थमाला : ६६
ग्रन्थमाला सम्पादक—
प्रो० सागरमल जैन

प्रकाशक
पूज्य सोहनलाल स्मारक पार्श्वनाथ शोधपीठ
वाराणसी—२२१००५

प्रथम संस्करण १९९४

मूल्य १८०.००

Pārśvanātha Śodhapīṭha Series : 66
Hindi Jaina Sāhitya kā Bṛhad Itihāsa
By Dr. Shitikantha Mishra

Published by
Pūjya Sohanlala Smāraka Pārśvanātha Śodhapīṭha
I.T.I. Road, Karaundi
Varanasi—221005

First Edition 1994

Price Rs. 180.00

मुद्रक—डिवाइन प्रिंटर्स, सोनारपुरा, वाराणसी-१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ सहयोग

श्री मुम्बई जैन युवक संघ, मुम्बई के जैन नागरिकों की प्रबुद्ध संस्था है जो अपनी समाज-सेवा सम्बन्धी गतिविधियों तथा अपने विद्यासत्रों एवं पर्युषण व्याख्यानमाला के आयोजनों के कारण लोक-विश्रुत है। 'प्रबुद्ध-जीवन' नामक पाक्षिक पत्र, श्री म० मो० शाहा सार्वजनिक वाचनालय और दीपचन्द त्रिभुवनदास पुस्तक प्रकाशन ट्रस्ट के माध्यम से यह संस्था जैन विद्या के क्षेत्र में अनुपम योगदान कर रही है। इसके साथ ही अस्थि सारवार केन्द्र, नेत्रयज्ञ आदि प्रवृत्तियों द्वारा मानव समाज की सेवा में भी लगी हुई है। इस संस्था के द्वारा पार्श्वनाथ शोधपीठ को अपने प्रकाशन कार्यक्रमों में सदैव सहयोग प्राप्त होता रहा है। अब तक इसके आर्थिक सहयोग से पार्श्वनाथ शोधपीठ के द्वारा छः ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। 'हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' के प्रथम खण्ड के समान ही इस द्वितीय खण्ड के प्रकाशन में भी उन्होंने हमें बीस हजार रुपये का आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। इस हेतु हम श्री रमणलाल चि० शाह के और श्री मुम्बई जैन युवक संघ के अन्य ट्रस्टियों के विशेष आभारी हैं और यह आशा करते हैं कि भविष्य में भी उनके सहयोग द्वारा हम जैन विद्या की सेवा करते रहेंगे।

भूपेन्द्रनाथ जैन
सचिव
पार्श्वनाथ शोधपीठ
वाराणसी–५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जैन लेखकों का अवदान महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी भाषा के आदिकाल से लेकर वर्तमान युग तक जैन मुनि एवं लेखक हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करते रहे हैं। जैन साहित्य के बृहद् इतिहास की निर्माण योजना के अन्तर्गत पूर्व में हमने प्राकृत और संस्कृत जैन साहित्य से सम्बन्धित छः भाग प्रकाशित किये। इसी प्रकार तमिल, मराठी और कन्नड़ साहित्य का भी एक भाग उस योजना के ७ वें भाग के रूप में प्रकाशित किया गया है। अपभ्रंश साहित्य के इतिहास का लेखन कुछ व्यवधानों के कारण पूर्ण नहीं हो सका है। उस हेतु हम प्रयत्नशील भी हैं। क्योंकि हिन्दी जैन साहित्य विशाल है, अतः उसे स्वतन्त्र खण्डों में प्रकाशित किया जायेगा। हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास की दृष्टि से हमने पूर्व में आदि काल से लेकर सोलहवीं शती (विक्रम) तक का लगभग ७०० पृष्ठों का प्रथम खण्ड प्रकाशित किया है। इसके लेखक हिन्दी के वरिष्ठ प्राध्यापक डा० शितिकंठ मिश्र हैं। प्रस्तुत कृति उसी योजना का अग्रिम चरण है। इसमें हमने सत्रहवीं शताब्दी (विक्रम संवत १६०१-१७०० तक) के हिन्दी जैन कवियों और लेखकों को समाहित किया है।

प्रस्तुत खण्ड भी डा० शितिकंठ मिश्र द्वारा ही तैयार किया गया है। उन्होंने मुख्य रूप से श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई और अगरचंद नाहटा की कृतियों को आधार बनाया है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल आदि की कृतियों से भी उन्हें जो सामग्री प्राप्त हो सकी, उसे इसमें समाहित करने का प्रयत्न किया है। जैन परम्परा से विशेष परिचित न होने पर भी उन्होंने हिन्दी जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के खण्डों के लेखन का दायित्व स्वीकार किया है इसके लिए हम निश्चय ही डॉ० शितिकंठ मिश्र के आभारी हैं।

सत्रहवीं शताब्दी (विक्रम संवत् १६०१ से १७०० तदनुसार ई० सन् १५४२ से १६४२) तक के जैन कवियों और लेखकों और उनकी कृतियों की संख्या इतनी अधिक है कि सीमित पृष्ठों में उसे समाहित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना एक कठिन कार्य था, फिर भी जो भी सूचना प्राप्त हो सकी उन्हें संक्षिप्त करके समाहित किया गया है। यद्यपि इस शती की भी सभी कृतियाँ अथवा उनके लेखकों के संबंध में सूचनाए पूर्णतः उपलब्ध नहीं हैं। अभी तो अनेक जैन भण्डारों का सर्वेक्षण ही नहीं हो पाया है। अतः यह दावा करना मिथ्या होगा कि इस भाग में हमने सत्रहवीं शताब्दी के सभी जैन कवियों और लेखकों को समाहित कर लिया, फिर भी उपलब्ध स्रोतों से जो भी सामग्री मिल सकी है उसे विद्वान् लेखक ने सम्प्रदाय निरपेक्ष भाव से समाहित करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के मुद्रण का कार्य डिवाइन प्रेस के श्री महेश कुमार जी ने सम्पन्न किया है। प्रूफ संशोधन में कहीं कुछ अशुद्धियां रह गयी हैं जिन्हें आगामी संस्करण में दूर करने का प्रयत्न किया जायेगा। आज हमें हिन्दी विद्वत्-जगत को यह कृति समर्पित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। हम यह अपेक्षा रखते हैं कि वे अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें अवगत करायें ताकि अगले खण्डों को और अधिक प्रमाणिक एवं पूर्ण बनाया जा सके।

भूपेन्द्रनाथ जैन
मानद् मन्त्री
पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखकीय निवेदन

हिन्दी जैन-साहित्य का बृहद् इतिहास के द्वितीय खण्ड में १७वीं शताब्दी (विक्रम) के हिन्दी जैन लेखकों की रचनाओं का विवरण दिया गया है, इसके कई उपविभाग करके अलग-अलग अध्यायों में बाँटने का कोई सम्यक् आधार नहीं मिला। समस्त जैन-साहित्य धर्म-प्रधान है इसलिए सभी रचनाओं में प्रायः एक जैसी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है अतः प्रवृत्तियों के आधार पर विभाजन संभव नहीं था। कोई ऐसा निर्विवाद युगपुरुष भी नहीं समझ में आया जिसके आधार पर विभाजन किया जाता। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में इतिहास से संबंधित सभी अपेक्षायें पूरी नहीं की जा सकीं, इसलिए यह लेखकों की विविध रचनाओं का विवरण ही है। रचनाओं के उद्देश्य की एकरूपता—निवृत्ति, शम, मुक्ति और भव-भवांतर के माध्यम से कर्मसिद्धांत की पुष्टि तथा भाषा की रूढ़िगत एकरूपता के चलते अधिकतर कृतियाँ उपदेश प्रधान और जैनधर्म के संदेश को प्रसारित करने वाली ही है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि बृहद् जैन हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ लेखकों/रचनाकारों अथवा श्रेष्ठ कृतियों का अभाव है। महाकवि बनारसीदास, मरमी सन्त आनन्दघन, महोपाध्याय यशोविजय आदि ऐसे अनेक महान लेखक हैं जिन पर जैन साहित्य गर्व कर सकता है, लेकिन इनके आधार पर विविध प्रवृत्तियों, रसों और विचारधाराओं का विभाजन संभव नहीं हो सका है। इस साहित्य में काव्य रूपों की अद्भुत विविधता है, जिनमें विशेष महापुरुषों के चरित्र के माध्यम से दृष्टान्तरूप में अनेक कथायें हैं। वे मनोरंजक होने के साथ ही अहिंसा, अपरिग्रह, शील, दान, तप आदि शाश्वत मानवीय मूल्यों का संदेश सबल ढंग से देने में सक्षम हैं।

मध्ययुग के भक्ति आन्दोलन का प्रभाव इस शती की रचनाओं पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इसलिए भक्तिप्रधान उत्तमकोटि की अनेक रचनाओं को देखते हुए यह हिन्दी जैन साहित्य का भक्ति-युग और स्वर्ण युग भी है। गुरुभक्ति, तीर्थङ्कर भक्ति एवं महापुरुषों (शलाकापुरुषों) के प्रति श्रद्धा भक्ति की तमाम श्रेष्ठ रचनायें उपलब्ध हैं, जिनमें रमणीयता एवं सरसता भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस खण्ड में प्रायः पद्य रचनाओं में साथ ही उनकी गद्य कृतियों का भी विवरण दे दिया गया है, इसलिए गद्य और पद्य के आधार पर भी दो मोटे उपविभाग नहीं किए गये, किन्तु कुछ छूटी गद्य रचनाओं या अज्ञात लेखकों की गद्य रचनाओं का एक संक्षिप्त उल्लेख पद्य भाग के बाद अलग से कर दिया गया है। प्रारम्भ में १७वीं शती (वि०) की पीठिका के रूप में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का संकेत भी किया गया है। प्राचीन गद्य के विकास में इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व तो है ही, साथ ही गद्य शैली के विकास और हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं के विकास का अध्ययन करने के लिए ये अपरिहार्य माध्यम हैं। इस प्रकार उपोद्घात से लेकर उपसंहार तक चार अध्याय हैं। अन्त में नामानुक्रमणिका है।

नामानुक्रमणिका में प्रायः ८०० लेखकों और सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम हैं। पुस्तक अनुक्रमणिका में प्रायः १००० पुस्तकों का उल्लेख है जिनमें से अधिकांश का विवरण पुस्तक में यथास्थान देखा जा सकता है। वैसे तो जो सहायक ग्रन्थ सूची प्रथम भाग में दी गई है प्रायः वे ही ग्रन्थ इस भाग में भी सन्दर्भित हैं किन्तु जिनका इस भाग में अधिक उपयोग किया गया है उसकी एक संक्षिप्त सूची दे दी गई है। इस तरह पुस्तक को यथासम्भव प्रामाणिक एवं पाठकों के लिए सुविधाजनक बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक की उपयोगिता के सम्बन्ध में मैं अधिक न कह कर उन महान जैन मुनियों, आचार्यों और लेखकों के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने अपने चरित्र, शील और साधना के बल पर यह पुनीत साहित्य सृजित किया है जिससे हिन्दी साहित्य की प्राचीनता, विस्तार एवं पारस्परिकता का परिचय प्राप्त करने में बृहत्तर पाठक समाज को सुविधा हुई है।

ऐसे श्रेष्ठ साहित्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का गुरुतर दायित्व मैं कहाँ तक ठीक से निभा सका हूँ यह तो सुधी पाठक ही बतायेंगे। मैं अपनी अल्पज्ञता और त्रुटियों के लिए क्षमा याचना पूर्वक केवल इतना निवेदन कर सकता हूँ कि यदि पाठक गलतियों का संकेत करेंगे तो मैं आभार मानूंगा और उन्हें दूर करने की चेष्टा करूँगा। डा० सागरमल जैन ने इतना बड़ा कार्य करने योग्य मुझे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझा, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ और उनके विश्वास की रक्षा का भरसक प्रयत्न करता रहा हूँ। संस्थान के अधिकारी, प्रबन्धक और अन्य सभी सहयोगियों विशेषतया डा० अशोक सिंह, श्री मोहनलाल (बड़े बाबू) एवं पुस्तकालय सहायक श्री ओमप्रकाश सिंह को उनके सहयोग के लिये धन्यवाद देता हूँ । पुस्तक की अनुक्रमणिका और विषय सूची आदि अरुचिकर कार्यों में आत्मज असीम कुमार ने जो परिश्रम किया उसके लिए उसे शुभाशीष देता हूँ।

— डॉ० शितिकण्ठ मिश्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

उपोद्घात १, १७वीं शताब्दी की राजनीतिक स्थिति २, मुगल साम्राज्य की स्थापना ३, अकबर का शैशव ३-५, साम्राज्य विस्तार ५-६, शासन व्यवस्था ६-७, आर्थिक-सामाजिक स्थिति ७-८, शिक्षा ८-९, अकबर की धार्मिक नीति १०, हीरविजयसूरि और सम्राट् अकबर ११-१२, जिनचन्द्रसूरि और सम्राट् अकबर १२, अकबर और भानुचन्द उपाध्याय १३, सम्राट् जहाँगीर से जैन धर्म का सम्बन्ध १३, सांस्कृतिक समन्वय १३-१५, जहाँगीर १५-१६, कला एवं साहित्य की स्थिति १६-१७, मूर्तिकला १८, चित्रकला १८, संगीत १८-१९, साहित्य १९, १७वीं शताब्दी का संस्कृत-प्राकृत जैनसाहित्य २०-२१, नामकरण २१, जैन भक्तिकाव्य की कतिपय विशेषतायें २२, वात्सल्य २३, माधुर्य २३-२५, दास्य २५-२६, छन्द २६, अलंकार २७, प्रकृति वर्णन २८, भाषा का स्वरूप २८-३० ।

विक्रम की १७वीं शती के रचनाकार—अखयराज उर्फ अक्षयराज श्रीमाल ३१-३२, अजित ब्रह्म ३२, अजित देवसूरि ३३, अनन्तकीर्ति ३४, अनंतहंस ३४, अभयचन्द ३५-३६, अभयसुन्दर ३६, अमरचन्द्र ३६-३७, आणंद ३८, आनन्द कीर्ति ३८, आनन्दचन्द ३८, महात्मा आनन्दघन ३९-४१, आनन्दघन का भक्तिभाव ४१-४३, आणंदवर्द्धनसूरि ४३, आणंदविजय ४३, आणंदसोम ४४-४५, आनंदोदय (आनंद उदय) ४५, ईश्वर बारोट ४६, उतमचंद ४७, उदयकर्ण ४७-४८, उदयमंदिर ४८, उदयरत्न ४८, उदयराज ४९-५१, उदयसागर ५१, उदयसागरसूरि ५१, ऊजल कवि ५१-५२, ऋषभदास ५२-६४, वाचक कनककीर्ति ६४-६७, कनककुशल ६७, कनकप्रभ ६७-६८, कनकसुन्दरI ६८-७१, कनकसुन्दरII ७२, कनकसोम ७३-७६, कनकसौभाग्य ७६-७७, (ब्रह्म)कपूरचंद ७७-७८, कमल कीर्ति ७८, कमलरत्न ७८, कनकलाभ ७८, कमलविजय I ७९, कमलविजयII ७९-८०, कमलशेखर वाचक ८०-८१, कमलसागर ८१-८२, कमलसोम गणि ८२, कमलहर्ष ८३, कर्मचन्द ८३, करमचन्द या कर्मचंद II ८३-८४, कर्मसिंह ८४, कल्याणमुनि ८४-८५, (शा)कल्याण या कल्याणसाह ८५-८८, कल्याण कमल ८८, कल्याणकलश ८८, कल्याणकीर्ति ८८-८९ कल्याणचंद्र ८९-९०, कल्याणदेव ९०, कल्याणविजय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०-९१, कल्याण सागर ९१-९२, कल्याणसागर II-९२, कवियण ९२-९४, कृपासागर ९४, कृष्णदास ९४-९५, कीर्तिरत्न सूरि ९५-९७, कीर्तिवर्द्धन या केशव ९७-९८, कीर्ति विमल ९८, कीर्तिविजय ९९, कुँवर जी ९९, कुँवर जी II १००, कुँअरपाल-१००-१०१, कुंवर विजय १०१-१०२, भट्टारक कुमुदचंद्र १०२-१०६, वाचक कुशललाभ १०६-११२, कुशलवर्द्धन ११२, कुशलसागर ११२-११३, केसराज ११४, केशवजी ११५-११६, केशवविजय ११६, क्षमाहंस ११६, क्षेम ११७, क्षेमकलश ११७, क्षेमकुशल ११७-११८, क्षेमराज ११८, खइपति ११९, खेम ११९-१२०, गजसागरसूरि शिष्य १२०, (ब्रह्म) गणेश या गणेश सागर १२०-१२१, गुणनन्दन १२१-१२२, गुणप्रभसूरि १२२, वाचक गुणरत्न १२२-१२४, गुणविजय १२४-१२७, (गणि) गुणविजय १२७-१३०, गुणविजय १३०, (उपाध्याय) गुणविजय १३०-१३७, गुणसागर सूरि १३७-१३९, गुणसागरसूरि (२) १३९, गुणसेन १३९-१४०, गुण-हर्ष १४०, गुणहर्ष शिष्य १४०, गुरुदास ऋषि १४१, (ब्रह्म) गुलाल १४१-१४३, गोवर्द्धन १४३, गोधो (गोवर्द्धन) १४३, गंगदास १४३-१४४, चन्द्रकीर्ति १४४-१४६, आचार्य चन्द्रकीर्ति १४६-१४८, चतुर्भुज कायस्थ १४८-१४९, चारित्रसिंह १४९-१५०, चारुकीर्ति १५०, छीतर १५०-१५१, जगा ऋषि १५१, जटमल १५२-१५५, वाचक जयकीर्ति १५५-१५६, जयकुल या जयकुशल १५६-१५७, जयचंद १५७-१६०, (वाचक) जयनिधान १६०-१६२, जयमल्ल १६३, (ब्रह्म) जयराज १६३, जयविजय १६४, जयविजय II १६४-१६६, जयवंतसूरि १६६-१७०, जयसागर १७०-१७१, जयसार १७२, (उपाध्याय)जयसोम १७२-१७४, जल्ह १७४, जशसोम १७४-१७५, (युग प्रधान) जिन चन्द्रसूरि १७५-१७७, जिनचन्द सूरि II १७७-१७८, पाण्डे जिनचन्द्रदास १७८-१८०, जिनराजसूरि या राजसमुद्र १८०-१८४, जिनसागरसूरि १८४-१८५, जिनसिंह सूरि १८५, जिनेश्वरसूरि १८५-१८६, जिनोदयसूरि (आनन्दोदय) १८६-१८८ जैनंद १८८-१८९, ज्ञान १८९, ज्ञानकीर्ति १८९-१९०, ज्ञानकुशल १९०, ज्ञानचंद १९०-१९१, ज्ञानतिलक १९१, ज्ञानदास १९१-१९२, ज्ञानमूर्ति १९२-१९५, ज्ञानमेरु १९५-१९७, ज्ञान-सागर १९७, (ब्रह्म) ज्ञानसागर १९८, ज्ञानसोम १९८, ज्ञानसुन्दर १९८, ज्ञानानंद १९९, डुंगर १९९-२०१, (शाह) ठाकुर २०१, तेजचंद २०२, तेजपाल २०२-२०३, तेजविजय २०३, तेजरत्नसूरि शिष्य २०४, त्रीकम मुनि २०४-२०६, त्रिभुवनकीर्ति २०६-२०९, त्रिभुवनचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०९-२११, दयाकुशल २११-२१४, दयारत्न २१४-२१६, दयाशील २१६-२१७, दयासागर २१७, दयासागर या दामोदर २१७-२१९, दल्लभट्ट २२०, दर्शन विजय या दर्शन मुनि २२०-२२३, दानविजय २२३, दुर्गादास २२३-२२४, देद (जैनेतर) २२५-२६, देवकमल २२६, देवगुप्तसूरि शिष्य (सिद्धि सूरि) २२६-२२७, देवचंद २२७-२२९, देवचन्द II २२९-२३०, देवरत्न २३०-३१, देवराज २३१, देवशील २३१-३२, देवसागर २३२, देवीदास द्विज २३३ देवीदास २३४, देवेन्द्र २३४, देवेन्द्रकीर्ति २३५-२३६, देवेन्द्रकीर्ति शिष्य २३६, धनजी २३६, धनविजय २३७, धनविजय II २३७-२३८, धनहर्ष या सुधनहर्ष २३८-२४०, धन विमल २४०-२४१, धर्मकीर्ति २४१-२४३, धर्मदास २४३-२४४, धर्मप्रमोद २४४, धर्मभूषण २४४-२४५, धर्ममेरु २४५, धर्ममूर्ति सूरि शिष्य २४६, धर्मरत्न २४६, (ब्रह्म) धर्मसागर २४७, धर्मसिंह २४७-२४९, धर्महंस २४९-२५०, धर्महंस II २५०-२५१, नगर्षिगणि (नगा ऋषि) २५१-२५४, नन्दकवि २५४-२५६, नन्नसूरि २५६, नयनसुख २५६-२५७, नयरंग २५७-२५८, नयविजय २५९, नयविलास २६०, नयसागर उपाध्याय २६०, नयरत्न शिष्य २६१, नयसुन्दर २६१-२६६, नर्बुदाचार्य २६७-२६८, नरेन्द्रकीर्ति २६८-२६९, नवलराम २६९-७०, नानजी २७०, नारायण I २७१-७३, नारायण II २७३, नीबो २७४, नेमिविजय २७४, पद्मकुमार २७५, पद्ममन्दिर २७५-२७६, पद्मरत्न २७६, पद्मराज २७६-२७८, पद्मविजय २७९, पद्मसुन्दर I २७९ पद्मसुन्दर (II) २७९-२८३, पद्म सुन्दर (III) २८३, परमा २८३-२८४, परमानन्द २८४, परमानन्द II २८४-८५, परमानन्द III २८५-८६, परिमल या परिमल्ल २८६-२८८, प्रभसेवक २८८, प्रभाचद २८९, प्रमोदशील शिष्य २८९-९०, प्रीतिविजय २९०-२९१, प्रीतिविमल २९१-२९३, पं० पृथ्वीपाल २९३, पृथ्वीराज राठौड़ २९३-२९४, पुंजा ऋषि २९४, पुण्यकीर्ति २९४-२९७, पुण्यभुवन २९७-२९८, पुण्यरत्न सूरि २९८-२९९, (उपा०) पुण्यसागर २९९-३०१, पुण्यसागर II ३०१-३०२, प्रेममुनि ३०३, प्रेमविजय ३०३-३०५, बनवारीलाल ३०५-३०६, बाना श्रावक ३०६-३०७, बनारसीदास ३०७-३१२, बालचन्द्र ३१३, (कवि) विष्णु ३१३-१४, बीरचन्द ३१४-१६, भगवतीदास ३१६-३२०, भद्रसेन ३२०-३२१, भवान ३२२, भानुकीर्ति गणि ३२२, भानुमन्दिर शिष्य ३२३, भाव (अज्ञात) ३२३-३२४, भावरत्न ३२४-३२५, भावविजय ३२५-३२७, भावशेखर ३२७-२८, भावहर्ष ३२८, भीमभावसार ३२८-२९,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीममुनि ३२९-३३०, भुवनकीर्ति गणि ३३०–३३३, मतिकीर्ति ३३३–३३५, मतिचन्द ३३५, मतिसार I ३३५–३३७, मतिसार II ३३७, मतिसागर I ३३७–३३८, मतिसागर II ३३८–३३९, मधुसूदन व्यास ३३९, मनजी ऋषि ३३९–३४१, मनराम ३४१–३४३, मनोहरदास ३४३, मल्लिदास ३४३-३४४, मल्लिदेव ३४४, महानन्दगणि ३४४–३४५, महिमसिंह या मानकवि ३४५–३४८, महिमसुन्दर ३४८ महिमामेरु ३४८-४९, (भट्टारक) महीचंद ३४९-३५०, महेश्वर सूरि शिष्य ३५०, माधवदास ३५१, मानसागर ३५१-३५२, मालदेव ३५२–३५८, मालमुनि ३५८–३५९, माहावजी ३५९, मुनिकीर्ति ३५९-३६०, मुनिप्रभ ३६०, मुनिशील ३६०-३६१, मुक्तिसागर ३६१–६२, मूलावाचक ३६२–३६३, मेघनिदान ३६३, (वाचक) मेघराज ३६३–३६५, मेघराज II ३६५-३६६, (ब्रह्म) मेघराज I (मेघ मंडल) ३६६–३६७, ब्रह्म मेघराज II ३६७-३६८, मंगलमाणिक्य ३६८–३७०, मोहनदास कायस्थ ३७०, (उपाध्याय) यशोविजय ३७०–३७७, यशोविजय – जसविजय ३७७, (भट्टारक) रत्नकीर्ति ३७७–३८०, रत्नकुशल ३८०, (भट्टारक) रत्नचन्द ३८१, रत्नचंद I ३८१, रत्नचन्द II ३८१–३८२, रत्ननिधान ३८२, रत्नभूषणसूरि ३८२–८४, रत्नलाभ ३८५, रत्नप्रभशिष्य ३८५–३८६, रत्नविमल ३८६, रत्नविशाल ३८६–३८७, रत्नसार ३८७, रत्नसुन्दर ३८८-३९०, (मुनि) राजचन्द ३९०, राजचन्द्रसूरि ३९१, राजपाल ३९१-३९२, राजमल्ल (पाण्डे) ३९२-३९३, (कवि) राजमल ३९३–३९५, राजरत्न गणि ३९६–३९७, राजसागर उपाध्याय ३९७–३९८ राजसागर ३९८–३९९, राजसमुद्र या जिनराज सूरि ३९९–४०० राजसिंह ४००–४०१, राजसुन्दर ४०१–४०३, राजहंस I ४०३–४०४, राजहंस II ४०४–४०५, रामदास ऋषि ४०५–४०६, रामचन्द ४०६, (ब्रह्म) रायमल्ल ४०७–४१८, (पाण्डे) रूपचंद ४१८–४२२, रंगकुशल ४२२–४२३, रंगविमल ४२३ ४२४, रंगसार ४२४–२५, लखपत ४२५,

लक्ष्मीकुशल ४२६–४२७, लक्ष्मीप्रभ ४२७–४२८, लक्ष्मीमूर्ति ४२८–४२९, लक्ष्मीविमल ४२९–४३०, लब्धिकल्लोल उपाध्याय ४३०–४३३, लब्धिरत्न या लब्धिराज ४३४, लब्धिविजय ४३४–४३७, लब्धिशेखर ४३७, ललितकीर्ति ४३७–४३९, ललितप्रभ सूरि ४३९–४४०, लाभोदय ४४१, लइआ ऋषि शिष्य ४४१–४४३, लालचन्द ४४३–४४५, लालविजय ४४५–४४७, लावण्यकीर्ति ४४८–४४९, लावण्यभद्र गणि शिष्य ४४२, लूणसागर ४५०, वच्छराज ४५०–४५२, वर्द्धमान कवि ४५२,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वल्हपंडित शिष्य ४५३–४५४, वस्तुपाल (वाचक) ४५४–४५५, (ब्रह्म) वस्तुपाल ४५५–४५६, वसु, वासु या वस्तो ४५६–४५७, वादिचंद ४५७–४५९, विक्रम ४५९, विजयकुशल शिष्य ४६०, विजयमेरु ४६०–४६१, विजयशील ४६१, विजयशेखर ४६२–४६४, विजयसागर ४६५–४६६, विजयसेन सूरि ४६६, विद्याकमल ४६७, विद्याकीर्ति ४६७, विद्याचंद ४६८ विद्यासागर ४६९; विद्यासागर II ४६९–४७०, विद्यासिद्धि ४७०, विनयकुशल ४७१, विनयचंद ४७१, विनयमेरु ४७२–४७३, विनयविजय ४७३–४७७, विनयसागर ४७७–४७८, विनयसुन्दर ४७८, विनयसोम ४७९, विमल ४७९–४८०, विमलकीर्ति ४८०–४८१, विमलचरित्र ४८१–४८२, विमलचरित्र सूरि ४८२–४८३ विमलरंगशिष्य (लब्धि कल्लोल ?) ४८३–४८४, विमलरत्न ४८५–४८६, विवेकचंदा ४८६, विवेकचंद II ४८७, विवेकविजय ४८७–४८८, विवेक हर्ष ४८८–४९०, विवेकहंस ४९०, वीरविजय ४९०–४९१, शान्ति कुशल ४९१–४९२, शाह ठाकुर ४९३, शालिबाहन ४९४, शिवविधान उपाध्याय ४९४–४९६, शिवदास (जैनेतर) ४९६, शुभचन्द्र ४९७, शुभविजय ४९७–४९८, श्रवण ४९८, श्रीधर ४९८, श्रीपाल ऋषि ४९९, श्रीसार (पाठक) ४९९–५०२, श्री सुन्दर ५०२–०३, श्री हर्ष ५०३, श्रुतसागर ५०३, सकलचन्द ५०३–५०६, (भट्टारक) सकलभूषण ५०६, समयध्वज ५०६–५०७, समयनिधान ५०७, समयप्रमोद ५०८–५०९, समयराज (उपाध्याय) ५०९, समयसुन्दर (कवियण) ५०९–५११, समयसुन्दर महोपाध्याय ५११–५२३, (महोपाध्याय) सहजकीर्ति ५२३–५२६, सहजकुशल ५२६–५२७, सहजरत्नवाचक ५२७–५२८, सहजरत्न ५२८, सहजसागर शिष्य ५२९, साधुकीर्ति (उपाध्याय) ५२९–५३२, साधुरंग ५३२, सारंग ५३२–५३४, साहिब ५३४, स्थानसागर ५३५–५३६, सिद्धिसूरि ५३६–५३९, सिंहप्रमोद ५३९, संघ या सिंहविजय ५३९–५४१, सुवनहर्ष ५४१–५४४, सुधर्मरुचि ५४४, सुन्दरदास ५४५–५४९, सुभद्र ५४९, सुमतिकल्लोल–५४९, सुमतिकीर्ति ५४९–५५३, सुमतिमुनि ५५३–५४, सुमतिसागर ५५४–५५५, सुमतिविजय ५५५, सुमतिसिद्ध (सिंधुर) ५५५–५५६, सुमति हंस ५५६, सूजी ५५७, सूरचंदगणि ५५७–५५९, सोमविमल सूरि ५५९–५६०, सोमविमलसूरि शिष्य ५६१, सौभाग्यहर्ष सूरि शिष्य ५६१–५६२, सौभाग्यमण्डन ५६२, संयममूर्ति ५६२–५६३, संयमसागर ५६३, हरजी ५६३–५६५, हरषजी ५६५, हरिफूला ५६५–६६, हर्षकीर्ति ५६६–६७, हर्षकीर्तिसूरि ५६७–६८,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्षकुशल ५६८–५६९, हर्षनन्दन ५६९–५७१, हर्षकुल ५७१, हर्षरत्न ५७१–७२, हर्षराज ५७२–७३, हर्षलाभ ५७३, हर्षवल्लभ ५७३–५७५, हर्षविमल ५७५, हर्षसागर I ५७५–७६, हर्षसागर II ५७६–५७७, हीरकलश ५७७–५८१, हीरकुशल ५८२, हीरचंद ५८२, हीरनंदन ५८३, हीरविजयसूरि ५८३–५८७, हीरानन्द मुकीम ५८७–५८८, हीरो ५८९, हेमरत्नसूरि ५९०–५९२, हेमराज पांडे ५९२–५९३, हेमराज II ५९३, हेमराज III ५९४ हेमराज IV ५९४, हेमराज V ५९४–९५, हेमविजय गणि ५९५–५९८, हेमश्री (साध्वी) ५९८, हेमसिद्धि ५९९, हेमानन्द ५९९–६०२, हंसभुवनसूरि ६०२, हंसरत्न ६०२–६०३, हंसराज I ६०३–०४, हंसराज II ६०४, अज्ञात कवियों द्वारा रचित कृतियों का विवरण ६०५–६१२, गद्य साहित्य ६१२–६१७, उपसंहार ६१८–२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

लेखक–सम्पादक	नाम पुस्तक
डा० राधाकमल मुखर्जी	भारत की संस्कृति और कला
श्री विद्याविजय	सूरीश्वर अने सम्राट्
सं० सूरिविजयधर्म	ऐतिहासिक जैन रास संग्रह (चार भाग)
मोहनलाल दलीचन्द देसाई	जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास
,,	जैन गुर्जर कविओ, भाग १, २, ३ प्रथम संस्करण एवं भाग २ और ३ द्वितीय संस्करण
बनारसीदास	बनारसीविलास
,,	समयसार
,,	अर्द्धकथानक (सं० नाथूराम प्रेमी)
आनन्दघन	पद संग्रह
भैया भगवतीदास	ब्रह्म विलास
डा० प्रेमसागर जैन	जैन भक्ति काव्य और कृति
सं० अगरचन्द नाहटा	राजस्थान का जैन साहित्य
ले० ,, ,,	राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परंपरा)
सं०डा०कस्तूरचन्द कासलीवाल	राजस्थान के जैनशास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पाँचवा भाग
,,	प्रशस्ति संग्रह
डा० हरिप्रसाद गजानन शुक्ल 'हरीश'	गुर्जर जैन कवियों की हिंदी साहित्य को देन
सं० अगरचंद नाहटा	ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह
,, डा० मोतीलाल सांडेसरा	प्राचीन फागु संग्रह
,, मुनि जिनविजय	जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय
प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ३
श्री अगरचन्द नाहटा	युगप्रधान जिनचंद सूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल	ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
सं० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल	हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट (२०वां त्रैवार्षिक विवरण) (प्रका०–ना० प्र० सभा, काशी)
श्री के० एम० झावेरी	माइल स्टोन्स आव् गुजराती लिटरेचर
श्री नाथूराम प्रेमी	जैन साहित्य और इतिहास
श्री कामताप्रसाद जैन	हिन्दी जैनसाहित्य का संक्षिप्त इतिहास
सं० श्री सुधाकर पाण्डे (ना० प्र० सभा काशी)	हिन्दी काव्यगंगा–भाग १
मिश्र बन्धु	मिश्रबन्धु विनोद
सं० मुनि कीर्तियश विजय	गुर्जर साहित्य संग्रह (जिनशासन-रक्षा समिति लालबाग, बम्बई)
पं० परमानन्द शास्त्री	जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह
डा० शितिकंठ मिश्र	हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग १ पा० वि० शोध संस्थान, वाराणसी
मुनिचन्द्रप्रभसागर	महोपाध्याय समयसुन्दर व्यक्तित्व एवं कृतित्व (केशरिया कं० कलकत्ता)

पत्रिकायें

पत्रिका	लेखक	लेख का शीर्षक
वीणा अङ्क १ नवम्बर	क्षितिमोहन सेन	जैन मरमी आनन्दघन का काव्य
नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५३ अङ्क १	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	नन्द गाँव के आनन्दघन
आजकल— जून १९४८	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	आनन्दघन का निधन संवत्

अनेकांत वर्ष ५ बाबूभाई दयाल जैन हितैषी भाग ६ अङ्क ५-६ जैनयुग पुस्तक—५

——

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपोद्घात

साहित्य सृजन की दृष्टि से विक्रम की १७वीं शताब्दी का विशेष महत्व है। इस शताब्दी में अनेक सुकवि हुए जिन्होंने अपनी रचनाओं से साहित्य को सम्पन्न किया। हिन्दी में सूरदास, नन्ददास, तुलसीदास, केशवदास और रसखान आदि; मराठी में तुकाराम, विष्णुदास और रामदास आदि; राजस्थानी में राजा पृथ्वीराज, दुरसा आढ़ा, ईसरदास आदि और मरु-गुर्जर जैनसाहित्य में बनारसीदास, महात्मा आनन्दघन, जिनचन्द्रसूरि, हीरविजयसूरि और महोपाध्याय समयसुन्दर आदि सैकड़ों महाकवि और धर्मप्रभावक आचार्य हुए। इसलिए यह शताब्दी हिन्दी साहित्य की तरह मरुगुर्जर जैनसाहित्य का भी स्वर्णकाल है। इस काल के जैनरचनाकारों की संख्या सहस्राधिक है, जिन्होंने नाना शैलियों, काव्यरूपों और विधाओं में प्रभूत साहित्य का सृजन किया जो साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। इन रचनाओं में जैन धर्म के प्रभावक आचार्यों और ऐतिहासिक महापुरुषों से सम्बन्धित घटनाओं का तथ्यपूर्ण वर्णन मिलता है। इन कृतियों से जैन लेखकों की इतिहास सम्बन्धी अभिरुचि और ईमानदारी का भी पता चलता है।

इस काल में चरितकाव्य, वीरकाव्य और प्रेमकाव्य के साथ-साथ पर्याप्त साम्प्रदायिक साहित्य भी लिखा गया। इस शताब्दी का लोक-साहित्य भी बहुत ही सम्पन्न है। सिंहविजय कृत सिंहासन बत्तीसी, कुशललाभ कृत माधवानल-कामकंदला और ढोलामारु रा दूहा; सिंहप्रमोद कृत वैताल पच्चीसी, वच्छराज कृत पंचोपाख्यान तथा मालदेव कृत विक्रमचरित आदि इस समय की कुछ प्रसिद्ध लोक साहित्य की रचनायें हैं। इनमें से कुछ रचनायें विशेषरूप से राजस्थानी और गुजराती लोकजीवन से ली गई हैं जैसे—हेमरत्नकृत 'गोराबादल-कथा', मंगलमाणिक्य कृत 'खापराचोररास' और भद्रसेन कृत 'चंदन मलयागिरि रास'। इसी प्रकार कुछ रचनायें इन प्रदेशों की जैन जनता में ही विशेष लोकप्रिय हैं; जैसे—केशवमुनि कृत सावलिंगा रास आदि।

भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप इस शतक के जैन साहित्य में एक विशेष प्रकार के पूजा-साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। पूजा, स्तुति, स्तोत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तवन, बीसी, चौबीसी आदि न जाने कितने रूपों में इस प्रकार का प्रचुर साहित्य रचा गया है। रास, चौपाई और चरित काव्यों का चरमोत्कर्ष भी इसी काल में दिखाई पड़ता है। इन सबका परिचय यथास्थान इस खण्ड में प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस काल में पद्य के अतिरिक्त गद्य की भी प्रगति हुई। जिन लेखकों ने पद्य और गद्य दोनों विधाओं में साहित्य सृजन किया है उनकी रचनाओं का एकत्र ही परिचय दिया जा रहा है। अज्ञात लेखकों की गद्य रचनाओं का नामोल्लेख अलग से किया जा रहा है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में लिखित मूल रचनाओं का अनुवाद और उन पर टीका, टब्बा, बालावबोध आदि भी इस काल में काफी संख्या में लिखे गये।

यह विशाल गद्य-पद्यात्मक साहित्य जिस दृढ़ पीठिका पर आधारित है, उसका संकेत करना आवश्यक मानकर १७वीं शताब्दी की राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

१७वीं शताब्दी की राजनीतिक स्थिति—इस शताब्दी में मुख्य रूप से मुगल सम्राट् महान् अकबर और जहाँगीर का शासन था। भारतीय इतिहास में यह काल सुव्यवस्था, सुखशान्ति और धार्मिक सहिष्णुता के लिए स्मरणीय है जिसकी पीठिका पर मिलीजुली संस्कृति, साहित्य और समन्वित कलाओं का सुन्दर विकास संभव हुआ। १६वीं शताब्दी का अन्तिम चरण बड़े उथल-पुथल और सत्ता परिवर्तन का समय था। १३वीं शताब्दी से चली आ रही मुसलमान सुलतानों की शासन परम्परा सं० १५८३ में बाबर के हाथों इब्राहीम लोदी की पराजय के साथ समाप्त हो गई। इन सुल्तानों की धार्मिक कट्टरता के चलते शासन कार्यों में मुल्ला-मौलवियों का वर्चस्व था। हिन्दू प्रजा के प्रति उनका वर्ताव न केवल उपेक्षापूर्ण अपितु क्रूरतापूर्ण भी था। इसलिए इनके शासनकाल में प्रजा घुटन का अनुभव करती रही। अतः कला-साहित्य और संस्कृति के विकास की कोई प्रेरणा नहीं थी। इस अलगाव, घुटन और कुंठा को दूर करने के लिए सूफी संतों और वैष्णव भक्तों ने अवश्य महत्वपूर्ण कार्य किया और एक ऐसा अनुकूल वातावरण बनाने में योगदान किया जिससे दोनों कौमें क्रमशः नजदीक आईं और इसीलिए अकबर के प्रयत्नों से एक साझी संस्कृति का स्वरूप उभर सका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुगल साम्राज्य की स्थापना —बाबर के आक्रमण के समय देश की केन्द्रीय शासन सत्ता कमजोर पड़ गयी थी। लोदी सुल्तानों का आधिपत्य कोई नहीं मान रहा था। बंगाल में हुसैनी वंश का नुसरत शाह स्वतन्त्र शासक हो गया था। जौनपुर के शर्की नवाब भी प्रायः स्वतन्त्र ही थे। मालवा के शासक महमूद खिलजी से गुजरात के शासक बहादुरशाह की झड़पें आये दिन होती रहती थीं और सं० १५८८ में उसने मालवा को जीतकर उसे गुजरात में मिला लिया। इस प्रकार बाबर के समय बहादुर शाह मालवा और गुजरात के विस्तृत भूभाग का स्वतन्त्र स्वामी था। राजस्थान के हिन्दू राजाओं से भी इसकी बराबर ठनी रहती थी। राजस्थान में राणा संग्राम सिंह शक्तिशाली एवं बहादुर हिन्दू राजा थे। इन्होंने बाबर के विरुद्ध युद्ध किया किन्तु दुर्भाग्य से पराजित हो गए।[1] सिन्ध और मुलतान के शासक भी स्वतन्त्र थे।

दक्षिण भारत में बहमनी और विजयनगर के प्रतिद्वन्द्वी राज्यों में प्रायः युद्ध होता रहता था। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर बाबर ने हिन्दू-मुसलमान राजाओं और नवाबों को परास्त कर एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया, किन्तु चार-पाँच वर्षों के भीतर ही मृत्यु हो जाने के कारण उसे शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ करने का मौका नहीं मिल पाया। उसका बाइस वर्षीय (२२) पुत्र हुमायूँ आलसी और अफीम का व्यसनी था। उसकी काहिली का लाभ उठाकर शेरखाँ नामक एक अफगान सरदार ने उससे साम्राज्य छीन लिया और शेर-शाह सूरी के नाम से स्वयं भारत का सम्राट् बन बैठा। वह वीर ही नहीं योग्य भी था। उसकी शासन व्यवस्था भी दुरुस्त थी। इसने सं० १६०२ तक बड़ी योग्यता पूर्वक दिल्ली आगरा पर शासन किया पर इसके उत्तराधिकारी बड़े अयोग्य निकले और शेरशाह की मृत्यु से केवल ८ वर्ष पश्चात् पुनः हुमायूँ ने सं० १६११ में सिकन्दर सूर को परास्त कर अपना खोया हुआ साम्राज्य वापस ले लिया।

अकबर का शैशव—जब हुमायू शेरशाह से पराजित होकर अपने भाइयों और अन्य सम्बन्धियों के यहाँ सहायता के लिए भागदौड़

---

१. बाबर ने कहा था कि भारतवासी मरना जानते हैं लड़ना नहीं; यह उक्ति तत्कालीन व्यक्तिगत शूरवीर किन्तु एकता एवं संगठन शून्य राजपूतों पर सटीक बैठती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर रहा था, तभी सं० १५९८ में उसने अपने भाई हिन्दाल के शिक्षक शेख अली अकबर की पुत्री हमीदा उर्फ मरियम से विवाह किया था। हमीदा को लेकर जब वह अमरकोट के राजा राणाप्रसाद का आश्रित था, तब सं० १५९९ श्रावण १४ (२३ नवम्बर, १५४२) को उसे एक पुत्र हुआ जिसका नाम बदरुद्दीन मुहम्मद अकबर रखा गया। अकबर पितृ-पक्ष से तैमूर की सातवीं पीढ़ी में और मातृ पक्ष से ईरानी था। कहा जाता है कि बाद में इसके नाम और जन्मतिथि में हेरफेर किया गया। इसका नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर कर दिया गया और जन्म-तिथि १५ अक्टूबर, १५४२ बताई गई। जो हो, इसके नाम से शब्द 'अकबर' नहीं बदला; क्योंकि अकबर इसके नाना का नाम था। यह बालक आगे चलकर मुगलवंश के ही नहीं बल्कि विश्व के सर्वश्रेष्ठ शासकों में गिना गया। यह १७वीं शताब्दी के भारतीय जनजीवन का भाग्यविधाता महान् अकबर बना। इसने कठोर संघर्ष एवं अनवरत अध्यवसाय से एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और उस पर दीर्घकाल तक सुव्यवस्थित ढंग से शासन करता रहा। अतः इस शताब्दी की कला-संस्कृति और साहित्य पर इसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का व्यापक प्रभाव पड़ा और यही कारण है कि इस काल की संस्कृति, कला और साहित्य साधना का सही परिचय प्राप्त करने के लिए महान् अकबर के कार्यों को ध्यान में रखना अपेक्षित है।

इसके बचपन में हुमायूँ को बड़ी भागदौड़ और मुसीबतों की जिन्दगी बितानी पड़ी थी। अमरकोट के राजा से अनबन हो जाने के कारण हुमायूं सपरिवार कन्धार गया, पर वहाँ उसके भाई अस्करी ने उसे कैद करना चाहा। हुमायूं अकबर को वहीं छोड़कर अपनी बीवी हमीदा के साथ भाग गया और ईरान के शाह से सहायता प्राप्त कर अपना खोया साम्राज्य वापस प्राप्त किया परन्तु दुर्भाग्यवश वह इसके एकवर्ष के भीतर ही एक दुर्घटना का शिकार हो गया और अकबर अल्प वय में ही पितृहीन हो गया।

इस मुसीबत के समय अकबर अपने चाचा अस्करी के यहाँ एक स्त्री की देखरेख में बड़ा हुआ। फलतः वह बचपन से ही कठिनाइयों से जूझने का आदी हो गया। जोखिम उठाने में आनन्द का अनुभव करने लगा। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा तो बाकायदे न हो पाई किन्तु वह स्वभावतः शूरवीर एवं प्रतिभाशाली था। हुमायूं की मृत्यु (२४ जनवरी सन् १५५६, वि० सं० १६११) के समय अकबर पंजाब में था। इधर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिलशाह के मंत्री हेमू ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। खबर मिलते ही अकबर ने दिल्ली की तरफ कूँच किया और १५ नवम्बर सन् १५५६ को पानीपत के मैदान में हेमू को पराजित किया। इस युद्ध में अकबर के सेना की देखरेख उसके संरक्षक बैरम खाँ ने की। अकबर दिल्ली की गद्दी पर बैठा और बैरम खाँ ने उसके संरक्षक के रूप में राजकाज संभाला। उस समय देश की परिस्थिति बड़ी डाँवाडोल थी। राजनीतिक अव्यवस्था के साथ ही भयंकर दुष्काल के कारण आर्थिक तंगहाली थी किन्तु अबकर ने इन कठिनाइयों का मुकाबला बड़ी योग्यतापूर्वक किया। उसने बैरमखाँ की बढ़ती हुई निरंकुशता को देखकर उसे सं० १६१७ में कैद कर लिया और सं० १६१८ में उसने सर्वतन्त्र स्वतन्त्र शासक के रूप में भारत की शासन सत्ता स्वयं संभाल ली।

साम्राज्य विस्तार—उसने ग्वालियर, अजमेर और जौनपुर की विजयों से अपना राज्य विस्तार प्रारम्भ किया। स० १६१९ (सन् १५६२) में जब वह ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह अजमेर जा रहा था तो मार्ग में द्योसा नामक स्थान पर आमेर के राजा भारमल (बिहारीमल) ने मिल कर उसकी न केवल अधीनता स्वीकार की अपितु अपनी कन्या भी अकबर से ब्याह दी। उसी रानी से सन् १५६९ में सलीम (जहाँगीर) पैदा हुआ। उसके बाद अकबर ने क्रमशः रणथम्भौर, कालिञ्जर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर के राजाओं को अधीन बनाया तथा कुछ की राजकुमारियों को मुगलहरम में ले आया। सन् १५६७ में उसने चित्तौड़ के राणा उदयसिंह पर चढ़ाई की। कहा जाता है कि इस युद्ध में ४० हजार हिन्दुओं का बध हुआ[१]। कहते हैं कि मृत हिन्दुओं के जनेऊ ७४॥ मन तौले गये थे। तभी से ७४॥ शपथ के रूप में प्रचलित हो गया था। सन् १५६७ के युद्ध में मरने वालों की संख्या राधाकमल मुखर्जी ने ३० हजार बताई है। उनके पुत्र राणा प्रतापसिंह ने आजीवन अकबर के विरुद्ध संघर्ष किया। अपने दृढ़निश्चय, शौर्य और स्वाभिमान के बल पर वे बड़ी-बड़ी मुसीबतें हँसकर झेल गये परन्तु अधीनता नहीं स्वीकार की। इस संघर्ष में उनके जैन मंत्री भामाशाह ने उल्लेखनीय सहायता की। भामाशाह तथा उनके वंशजों के उत्सर्ग और स्वामिभक्ति की गौरवगाथा कई

१. डा० राधाकमल मुखर्जी—भारत की संस्कृति और कला पृ० २६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनचरित काव्यों में वर्णित है।

गोंडवाने की रानी ने भी अकबर से जमकर लोहा लिया किन्तु उसकी विशाल सेना के समक्ष रानी की वीरता व्यर्थ गई। सन् १५६९ में अकबर ने गोंडवाने पर अधिकार कर लिया। उसने बंगाल के सूबेदार मानसिंह को उड़ीसा पर आक्रमण के लिए भेजा और उसे भी अपने राज्य में मिला लिया। सन् १५८५ में काबुल पर विजय प्राप्त किया। इस प्रकार उसने सुदूर पूर्व से लेकर पश्चिम तक तथा कश्मीर से गोंडवाने तक के विशाल भूभाग पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। जैनकवि ऋषभदास ने 'हीरविजय सूरि रास' में अकबर की विशाल सेना का ओजस्वी वर्णन किया है। सन् १५८६ में उसने अपने प्रिय दरबारी बीरबल एवं अबुलफजल को युसुफजाइयों का दमन करने के लिए भेजा। इस युद्ध में राजाबीरबल की मृत्यु हो गई जिससे अकबर बड़ा दुःखी हुआ था।

शासनव्यवस्था—उसे अपने दादा बाबर एवं पिता हुमायूँ की अपेक्षा दीर्घ काल तक शासन का अवसर मिला अतः उसने नानाप्रकार के सुधारों द्वारा शासन व्यवस्था को सुस्थिर एवं उच्चकोटि का बनाया। जैनकवि दयाकुशल ने 'लाभोदय रास' में अकबर की शासनव्यवस्था का संकेत किया है। भूमि और मालगुजारी की व्यवस्था शुरू में शेरशाह सूरी के अनुसार ही चली। उसका विशाल साम्राज्य १८ सूबों में विभक्त था जिसका शासन सूबेदार करते थे। सूबेदार ही सूबे में सम्राट् का प्रतिनिधि होता था। वह सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होता था। प्रान्तों का विभाजन सरकारों, सरकारों का परगनों और परगनों का गाँवों में किया गया था जिनमें क्रमशः फौजदार, शिकदार और मुकद्दम नामक अधिकारी शासन व्यवस्था चलाते थे। शासनतंत्र आठ भागों में बँटा था—मालविभाग, शाहीमहल, सेना व वेतन विभाग, कानून (फौजदारी व दीवानी), धर्म और खैरात, लोकचरित्र नियंत्रण विभाग, तोपखाना और डाकचौकी तथा सूचना विभाग। प्रत्येक विभाग के लिए एक मंत्री जिम्मेदार होता था। अनेक विदेशी लेखकों ने अकबर के शासन प्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा की है। नियुक्तियों में भेदभाव कम हो गया था। प्रत्येक धर्म के लोगों को जीवननिर्वाह का समान अवसर दिया जाता था।

उसकी कचहरी तुर्की, मंगोल और ईरानी आधार पर गठित की गई थी। राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी क्योंकि कृषि और व्यापार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुन्नत थे। पैदावार का एक तिहाई कर के रूप में लिया जाता था। किसानों से मालगुजारी सीधे वसूल की जाती थी। सूरत और खंभात के बंदरगाहों से विदेशी व्यापार किया जाता था, जहाँ से सूतीवस्त्र, मिर्च-मसाले, नील और अफीम आदि का निर्यात किया जाता था, तथा सोना, रेशम आदि का आयात होता था। लगभग १०० सरकारी कारखाने भी चलते थे जिनसे राज्य को काफी आय होती थी।

आर्थिक-सामाजिक स्थिति—सामान्य प्रजा की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, क्योंकि सम्पदा के वितरण की व्यवस्था में बड़ी विषमतायें थीं। सम्पूर्ण व्यापार कुछ लोगों के हाथ में ही सीमित था। जमीन पर बड़े-बड़े सामन्तों-सूबेदारों का आधिपत्य था। उन्हें बड़ी-बड़ी जागीरें मिली थीं। अतः साधारण जनता को कृषि एवं व्यापार से प्राप्त आय का नगण्य अंश ही प्राप्त होता था। यातायात की कठिनाइयों के कारण उत्पादों के वितरण एवं मूल्य नियंत्रण में भी कठिनाइयाँ थीं। वस्तुओं के मूल्य सारे देश में एक समान नहीं थे। सामानों पर चुंगी लगती थी। बिक्रीकर भी देना पड़ता था। इन स्रोतों से राज्य की आय बढ़ गयी थी पर सामान्य जनता दुःख-दारिद्र्य में डूबी थी। अकबर से पूर्व सामान्य प्रजा की सामाजिक स्थिति बदतर थी। समाज उच्च, मध्यम और निम्न वर्गों में बँटा था। इनकी आर्थिक, सामाजिक स्थिति में बड़ी विषमता थी। उच्चवर्ग के लोग ऐशोआराम एवं भोगविलास में डूबे थे। मध्यमवर्ग की संख्या कम थी और उनके साधन भी सीमित थे। उनका जीवन सादा और आर्थिक स्थिति सामान्य थी। कभी-कभी कुछ व्यापारी धनवान् भी हो जाते थे पर वे अपनी सम्पत्ति सामन्तों–सरदारों से छिपा कर रखते थे। सामन्तों-सरदारों की सम्पन्नता और समृद्धि अकूत थी। उनके अधिकार असीम और अबाध थे। उनमें और समाज के शेष दो वर्गों में स्वामी और सेवक का सम्बन्ध था। निम्नवर्ग के लोगों को तो भरपेट भोजन भी मुहाल था। वे आजीवन बँधुआ रहते थे। बेगार करना, अपमानित होना, भूखों मरना उनकी नियति थी। अच्छे वस्त्रों और शिक्षा आदि की वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। वे दासों का जीवन जीने के लिए विवश थे। दरिद्रता और अशिक्षा के कारण सामाजिक जीवन पतनशील था। मूर्ख और भूखी जनता को धर्म के नाम पर खूब ठगा जाता था। तंत्रमंत्र, भूतप्रेत, जादूटोना करके पंडित, ओझा, पुजारी, पीर, औलिया सब ठगते थे। अकबर के समय सामाजिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति में कुछ सुधार हुआ। धर्म और जीविका के मामलों में राज्य का अनावश्यक हस्तक्षेप कम हो गया। इससे कुछ शान्ति और सुव्यवस्था अवश्य आई जिससे जीवन और साहित्य तथा कलाओं को नवीन स्फूर्ति मिली। भारतीय हिन्दू प्रायः निरामिष भोजन करते थे किन्तु मुसलमानों में मांसभक्षण और मादक द्रव्यों का सेवन होता था। पुर्तगालियों के प्रभाव से तम्बाकू का सेवन भी बढ़ रहा था। उच्चवर्ग के लोग रेशमी और जरी के कपड़े पहनते थे। मध्यम वर्ग के पास सादे उत्तरीय और एकाध कपड़े अधोवस्त्र के रूप में होते थे किन्तु निम्नवर्ग के लोग प्रायः कौपीन पर ही जीवन काट देते थे। समाज की इस स्थिति का साहित्य और कलाओं पर काफी प्रभाव देखा जा सकता है।

स्त्रियों की अवस्था सोचनीय थी। मुसलमानों के काल में बालविवाह एवं पर्दे का प्रचलन बहुत बढ़ गया था। बदायूनी ने लिखा है कि अकबर जैसा उदार शासक भी घूँघट और पर्दे का कट्टर समर्थक था। उसने बालविवाह रोकने का अवश्य प्रयत्न किया था। इस काल की विशिष्ट महिलायें जैसे गुलबदन बेगम, माहम अंगा, सलीम सुल्ताना, रानी दुर्गावती और चाँदबीबी आदि शिक्षा, शासन और समाज के क्षेत्र में अपने कार्यों से प्रसिद्ध अवश्य हुईं पर सामान्य स्त्रियों की स्थिति निम्नवर्ग के पुरुषों से कुछ विशेष अच्छी नहीं थी।

शिक्षा—अकबर ने साधारण प्रजा की शिक्षा पर ध्यान दिया। उसने अनुमान किया कि इस्लामी शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाये जाने वाले विषय भारत जैसे हिन्दू-बहुल देश के नागरिकों की आवश्यकता पूर्ति के लिए अपर्याप्त है। इसलिए उसने शिक्षा पद्धति एवं पाठ्यक्रम में सुधार का निश्चय किया। उसने प्रत्येक छात्र के लिए नैतिक शिक्षा, गणित, कृषि, ज्यामिति, शरीरविज्ञान, इतिहास, औषधिशास्त्र, भाषा और धर्मशास्त्र की शिक्षा आवश्यक कर दी। मदरसों में उक्त विषयों के साथ हिन्दी, हिन्दू-दर्शन तथा भारतीय इतिहास के अध्यापन की विशेष हिदायत दी गई। शाहजादा दानियाल हिन्दी का अच्छा विद्यार्थी था। अकबर ने चिकित्सा, खगोल, संगीत, न्याय और धर्मशास्त्र की उत्तम पुस्तकों का अनुवाद योग्य विद्वानों से कराकर उक्त विषयों की पाठ्यपुस्तकों का अभाव दूर कर दिया। उसने पुस्तकालयों की स्थापना कराई। उसके राजकीय पुस्तकालय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में विविध विषयों की प्रायः २४ हजार से भी अधिक पुस्तकों का उत्तम संग्रह था। 'तबकाते अकबरी' से मालूम होता है कि अकबर विद्वानों को प्रोत्साहन, संरक्षण और पुरस्कार भी देता था। फैजी, अबुलफज़ल, कादिर बदायूनी, गंग और रहीम खानखाना का नाम उक्त ग्रन्थ में उल्लिखित है। मध्यकालीन भारतीय समाज और संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, जिसके लिए अकबर के समय में अनुकूल वातावरण का निर्माण हुआ।

जैनसंघ के साधु-सन्तों के साथ ही श्रावक-श्राविकाओं तथा सेठ-साहुकारों ने भी राज परिवार से सम्बन्ध बनाकर धर्म की प्रभावना में अनुपम योगदान किया। पेथड़, जगड़सा, जावड़-भावड़, समराशा, कर्माशा, खेमाहडालिया, भामाशाह, आदि सैकड़ों लक्ष्मीपुत्रों, वीरों और बुद्धिमानों ने अपने धन, बल और बुद्धि से समाज की सेवा की है और जैनधर्म का प्रभाव बढ़ाया है। इन लोगों का शासन में भी अच्छा प्रभाव रहा अतः आवश्यकतानुसार इन्होंने शासन और धर्म को समीप लाने में सहयोग दिया।

१६वीं शताब्दी में जैनधर्म कई मत-मतान्तरों में बँटा हुआ था। वि० सं० १५६४ में कडुवाशाह ने कडुवापंथ चलाया। वि० सं० १५७२ में विजयसूरि ने विजयमत और सं० १५७४ में पार्श्वनाथ ने पार्श्वमत[1] की स्थापना की। वि० सं० १५९९ में जब लोकाशाह ने लोकामत की स्थापना की तो इनके सुधारवादी आन्दोलन का मूर्तिपूजकों ने विरोध किया। इस प्रकार इस युग में जहाँ जैनसंघ में विभाजन की प्रक्रिया तीव्र हो गयी थी वहीं दूसरी ओर जैन साधुओं में आचार-शिथिलता भी बढ़ गई थी। कुछ आचार्यों ने बीच-बीच में क्रियोद्धार का प्रयत्न अवश्य किया किन्तु कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व नहीं उभड़ा जो समग्र जैनसंघ को समन्वित रूप से संघटित कर सके। यह कार्य १७वीं शताब्दी (विक्रमीय) में अग्रसर हो पाया क्योंकि इस शताब्दी में ऐसे अनेक साधुसन्त, आचार्य-विद्वान् और लेखक-सुकवि अवतरित हुए जिन्होंने धर्म की प्रभावना और समाज की सुदृढ़ता के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया; इनमें हीरविजयसूरि, जिनचन्द्र सूरि, भानुचन्द्र, समयसुन्दर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका तत्कालीन सम्राट् अकबर और जहाँगीर से सम्बन्ध भी अच्छा था।

१. श्री विद्याविजय-सूरीश्वर अने सम्राट् पृ० १७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकबर की धार्मिक नीति—महान् मुगल सम्राट् अकबर धर्म के मामले में उदार और समन्वयवादी था। उसकी उदारता परिस्थितियों और परिवेश की उपज थी। सूफी और वैष्णव सन्तों की प्रेममय वाणी से दोनों सम्प्रदायों की कटुता काफी कम हो गई थी। भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप ऐसा वातावरण बना जिससे हिन्दू मुसलमान ऐक्य का कठिन मार्ग कुछ प्रशस्त हुआ। "भक्ति व सूफी आन्दोलनों ने हिन्दू धर्म और इस्लाम के बीच एक आध्यात्मिक अन्तरंगता की स्थापना की। इसका सुपरिणाम महान् मुगलों के काल में मिला। अकबर के धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय साम्राज्य में विभिन्न जातियों, धर्मों और मतों की स्थापना हुई"[१]। अकबर की माँ एक सूफी विद्वान् की पुत्री थी। उसकी हिन्दू रानियों और बीरबल, टोडरमल, तानसेन और मानसिंह जैसे हिन्दू मित्रों ने उसके दृष्टिकोण को उदार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। अकबर ने इस्लाम के साथ-साथ हिन्दू, जैन, बौद्ध, ईसाई, पारसी आदि सभी प्रमुख धर्मों का अध्ययन किया। इन धर्मों के आचार्यों को बुलवा कर सत्संग किया। प्रवचन सुना और विभिन्न धर्मों के मूल सिद्धान्तों की एकता पर गौर किया। अन्ततः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि धर्म के क्षेत्र में शासक को समभाव और निष्पक्ष रहना ही उचित है। उसने सं० १६३२ में धार्मिक शास्त्रार्थ के लिए एक 'इबादतखाना' बनवाया जहाँ प्रत्येक बृहस्पतिवार की रात्रि से ही शास्त्रार्थ प्रारम्भ होकर शुक्रवार को दोपहर तक प्रायः चलता रहता था। वह राष्ट्र का धार्मिक नेतृत्व भी करना चाहता था। इसलिए उसने सं० १६३६ में 'दीन-इलाही' (ईश्वर का धर्म) का प्रवर्त्तन किया। यह काल धार्मिक क्रान्ति और सुधारों का था। १५वीं शती में कबीर पंथ से प्रारम्भ होकर दादू पंथ, यारीपंथ, सिख पंथ आदि निर्गुण सम्प्रदायों की स्थापना ने धर्म के क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया था। इसी क्रम में जैन परम्परा में लोंकागच्छ और तारण पंथ नामक अमूर्तिपूजक सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। अकबर के 'दीनइलाही' को भी इसी रूप में देखा जाना चाहिये। अबुलफजल ने लिखा है कि उसका दरबार प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय के विद्वानों से सुशोभित था। क्रिश्चियन पादरी बार्टोली का कथन है कि अकबर का आन्तरिक विचार कोई नहीं जानता था, और सभी उसे अपना ही

---

१. डा० राधाकमल मुकर्जी—भारत की संस्कृति और कला पृ० २८ और २८८

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

'मजहबी' समझते थे। वस्तुतः वह सभी धर्मों और सम्प्रदायों के आचार्यों का आदर करता था। बदायूनी ने 'अलबदायूनी' में उसके धर्म सम्बन्धी कार्यों का विवरण दिया है। 'आइने अकबरी' से ज्ञात होता है कि उसकी धर्मसभा में १४० सदस्य थे जिनके पाँच वर्गों के प्रथम वर्ग में २१ आचार्यों के नाम थे। इनमें सोलहवाँ नाम प्रसिद्ध जैनाचार्य हीर विजय सूरि का था।

हीरविजय सूरि और सम्राट् अकबर—'सूरि अने सम्राट्' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि अकबर को हीरविजय सूरि से मिलने की प्रेरणा चम्पा श्राविका के छह मास के उपवास से मिली। कमरु खाँ ने उसे बताया कि चम्पाबाई इतना लम्बा उपवास अपने गुरु की कृपा से कर सकी है तो अकबर की इच्छा हुई कि वह उसके गुरु हीर-विजय से मिले। उसने गुजरात के पूर्व अधिकारी एतमाद खाँ से भी पता लगवाया तो उसने भी सूरि जी को सच्चा साधु बताया। अतः सम्राट् ने शिहाबुद्दीन मुहम्मद खाँ को सूरि जी से अनुरोध करने का आदेश दिया। आगरा के जैन संघ ने भी आग्रह किया। फलतः सम्राट् से मिलने के लिए सूरि जी विहार करते हुए आगरा की तरफ चले। उधर बादशाह की मंशा जानने के लिए विमलहर्ष, सिंहविमल आदि पहले सीकरी पहुँचे और वहाँ से आश्वस्त होकर सूरिजी से पुनः अभि-रामाबाद में मिल गये। सूरि जी के साथ इस यात्रा में सहजसागर, गुणविजय, गुणसागर, कनकविजय और हेमविजय आदि ६७ साधु संत थे। सूरि जी अहमदाबाद, सांगानेर, चाटसू, सिकन्दरपुर और अभिरा-माबाद होते हुए अन्ततः फतहपुर सीकरी पहुँचे। वहाँ उन्हें अबुलफज़ल की देख-रेख में बिहारीमल के भाई जगतमल्ल कछवाहा के महल में ठहराया गया।[1] एकाध दिन के विश्राम के पश्चात् उनकी सम्राट् से मुलाकात हुई। उसने अपने तीनों पुत्रों और मंत्रिमंडल के साथ सूरिजी की अभ्यर्थना की। कई दिन तक खूब सत्संग किया और सूरिजी की विद्वत्ता तथा उनके तप-त्याग से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने सूरि जी के आदेशानुसार जीवहिंसा बन्द करने की घोषणा करवाई। तीर्थ कर माफ किया, जजिया कर में छूट दी और बन्दी मुक्ति का भी आदेश दिया। स्वयं भी मांसाहार कम करने का व्रत लिया। कुछ समय

1. "The weary traveller was made over to the care of Abul Fazl until the sovereign found leisure to convers with him" 'सूरीश्वर अने सम्राट' पृ० १०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीकरी में रहकर सूरि जी आगरा आये और वहीं चातुर्मास किया। अबुलफजल की सलाह पर और हीरविजय सूरि की वृद्धावस्था का ध्यान रखते हुए सम्राट् ने विजयसेन सूरि को भी बुलवाया और सं० १६४० में ही हरिविजयसूरिको 'जगतगुरु' तथा विजयसेनसूरिको 'सवाई' का विरुद प्रदान किया। इससे जैन धर्म का स्थान सामान्य लोगों की दृष्टि में काफी ऊँचा हो गया। इस मुलाकात में कर्मचंद और मानसिंह की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण थी। कर्मचन्द बीकानेर नरेश कल्याणमल्ल[1] के मंत्री थे जो बाद में अकबर के दरबारी हो गये थे। मानसिंह जिनचन्द्र सूरि के शिष्य थे और बाद में आचार्य जिनसिंह सूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। इन्हीं लोगों के प्रयत्न से सम्राट् की भेंट खरतरगच्छीय आचार्य जिनचन्द्र सूरि से भी संभव हुई थी।

जिनचन्द्र सूरि और सम्राट् अकबर – कर्मचन्द मंत्री के कथनानुसार अकबर ने जिनचन्द्र सूरि से सं० १६४९ में लाहौर में मुलाकात की। वह सूरिजी की विद्वत्ता और वक्तृत्व शक्ति से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने सूरिजी को 'युगप्रधान' और उनके शिष्य मानसिंह को आचार्य का पद प्रदान किया और मानसिंह का नाम जिनसिंह सूरि रखा गया। इस अवसर पर मन्त्री कर्मचन्द ने बड़ा उत्सव किया था। इनके साथ भी अनेक विद्वान्-साधु गये थे जिनमें महोपाध्याय समयसुन्दर ने 'राजा नो ददते सौख्यम्' के आठ लाख अर्थों की रचना करके अकबर एवं उनके नौ रत्नों को चमत्कृत कर दिया था। इस समय भी अकबर ने जीवहिंसा निषेध, जजिया माफी आदि की घोषणायें की थीं। इन जैनाचार्यों के प्रभाव में उस समय अकबर इतना अधिक आ गया था कि लोगों की धारणा हो गई कि अकबर ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया है, पर जैसा पहले कह चुका हूँ कि वह किसी धर्म-विशेष का अनुयायी नहीं बनना चाहता था बल्कि वह सभी धर्मों का समान आदर करता था और सभी धर्मों की अच्छी बातें लेकर वह स्वयं धर्म प्रवर्तक बनना चाहता था। स्मरणीय है कि उसने दीन-

१ रायसिंह या रायमल्ल कल्याणमल्ल के राजकुमार थे। कल्याणमल्ल ने सम्राट् अकबर को प्रसन्न करने के लिए मंत्री कर्मचंद के साथ राजकुमार रायमल्ल को भी सम्राट् की सेवा में लगा दिया था। बीकानेर में सं० १६२९ से सं० १६६७ तक रायसिंह का शासन था। इसलिए यह घटना उन्हीं के शासनकाल की होगी। कल्याणमल का शासन काल इससे पूर्व था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इलाही का प्रारम्भ वि० सं० १६३६ में ही कर दिया था। वह पारसी धर्म गुरुओं-दस्तूर और कैवन तथा गोवा के ईसाई पादरियों-ऐक्वाबीना और मांसेराट से भी विचार-विनियम करता था। हिन्दू धर्म, दर्शन और साहित्य का तो वह पारंगत पंडित ही हो गया था।

अकबर और भानुचन्द उपाध्याय—अकबर ने भानुचन्द को सलीम का शिक्षक नियुक्त किया था। लाहौर में ही समयसुन्दर के साथ इन्हें भी उपाध्याय की पदवी प्रदान की गई थी। भानुचन्द ने अकबर के लिए 'सूर्यसहस्रनाम स्तोत्र' की रचना की थी। उनका भी अकबर पर बड़ा प्रभाव था। वे दानियाल को भी जैनधर्म की शिक्षा देते थे।

सम्राट् जहाँगीर से जैनधर्म का सम्बन्ध—अकबर की भाँति जहाँगीर भी जैन धर्म के प्रति आदर-भाव रखता था। अपने शिक्षक उपाध्याय भानुचन्द के प्रति उसके मन में बड़ा सम्मान था। उसने मांडवगढ़ में उपाध्याय भानुचन्द से प्रार्थना की थी कि वे उसके समान उसके पुत्र शहरयार को भी शिक्षा दें " सहरियार भणवा तुम बाट जोवइ। पढ़ाओ अह्म पूत कूं धर्मबात, जिउं अवल सुणता तुम्ह पासि तात।[1]" सं० १६६९ में जब जहाँगीर ने नाराज होकर सब साधुओं को नगर निष्कासन का आदेश दिया था तब आ० जिनचन्द्र सूरि पुनः आगरा जाकर सम्राट् से मिले थे और उनके समझाने-बुझाने पर वह क्रूर आदेश रद्द किया गया था। सं० १६७४ में जहाँगीर ने विजयसेन के पट्टधर विजयदेवसूरि को मांडवगढ़ में ही 'जहाँगीरी महातपा' का विरुद प्रदान किया था। इस प्रकार अकबर और जहाँगीर के समय जैनसंघ और उसके साधु-संतों का शासन से सुन्दर सम्बन्ध रहा। इससे धर्म के प्रचार-प्रसार में बड़ी सुविधा हो सकी थी।

सांस्कृतिक समन्वय—समन्वय का कार्य तो पहले से प्रारम्भ हो चुका था, पर मुगल शासनकाल में जब राज्यव्यवस्था एवं शासन प्रबन्ध के लिए हिन्दुओं का अधिक सहयोग लिया जाने लगा तब दोनों कौमों को और अधिक निकट आने का सुअवसर मिला। जिन भारतीयों को बलपूर्वक या प्रलोभनपूर्वक विधर्मी बनाया गया था वे संस्कार से भारतीय ही बने रहे। इनके संसर्ग से अन्य मुसलमानों में भी भारतीय रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज और खानपान की बहुत सी बातों का धीरे धीरे प्रवेश होता गया। मुगलकाल में इस

१. ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ४, पृ० १०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातीय समन्वय को अधिक अनुकूल वातावरण मिला। जो पहिले मन्दिरों में मूर्तिपूजा करते थे वे विधर्मी होने पर पीर-दरगाह, औलिया, मजार आदि पूजने लगे। वे मुसलमान बनने पर भी माँस भक्षण और विधवा विवाह से बचते थे। यह सांस्कृतिक समन्वय का प्रथम चरण था।

इस काल के विद्वानों और कलावन्तों ने एक दूसरे की कलाशैलियों और भाषा साहित्य का अध्ययन किया और पारस्परिक सूझबूझ तथा समन्वय को बढ़ावा दिया। सूफियों के चिश्तिया, सुहरवर्दी, कादिया और कलंदरिया आदि सम्प्रदायों ने इस समन्वय की दिशा में शुरू से ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। धर्म के क्षेत्र में हिन्दू निर्गुणवाद और मुस्लिम एकेश्वरवाद में कोई बड़ा भेद नहीं था। जैन और बौद्ध तो पूर्णतया निर्गुणवादी ही थे। हिन्दू धर्म में शंकराचार्य के अद्वैतवाद का मुसलमानों के एकेश्वरवाद से मेल बैठाने में अधिक दिक्कत नहीं हुई। सूफियों का प्रेममार्ग और सगुणोपासकों की प्रेमाभक्ति सगोत्री प्रवृत्तियाँ थीं। दोनों ही जातिपाँति का भेदभाव भुलाकर दोनों सम्प्रदायों से अलग ही सन्तों का एक ऐसा विशेष वर्ग तैयार करना चाहते थे जहाँ 'जातिपाँति पूछे नहि कोई, हरि का भजै सो हरि का होई, वाला सिद्धान्त ही प्रधान रूप से मान्य हो। ये लोग विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों में समन्वय और मेल मिलाप के हामी थे। हिन्दूधर्म और इस्लाम धर्म के मेलमिलाप में रामभक्ति के रामानन्दी सम्प्रदाय ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'रामानन्द ने परम्परा से हटकर निम्न वर्गों को पूर्ण धार्मिक समानता प्रदान की तथा एक ऐसे सम्प्रदाय की स्थापना की जो हिन्दू और मुसलमान दोनों की भक्ति की अभिव्यक्ति कर सके[1]''।

इस मेलमिलाप की पृष्ठभूमि पर अकबर ने सांस्कृतिक समन्वय का कार्य आगे बढ़ाया और दोनों सम्प्रदायों के बीच रोटी-बेटी का सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। वह पंडितों की तरह बड़ा टीका लगाता था और सभी धर्मों के गुणज्ञों तथा कलाकारों का प्रशंसक था। मियाँ तानसेन, फैजी, अबुलफज़ल और रहीमखानखाना तथा बीरबल आदि गुणियों का वह बड़ा सम्मान करता था। महेशदास नामक अकिंचन ब्राह्मण की हाजिर जबाबी से प्रसन्न होकर उसने उसे नगरकोट का

१. डा० राधाकमल मुखर्जी—भारत की संस्कृति और कला पृ० २८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा बना दिया और उसका नाम राजा बीरबल रख दिया। इसलिए धार्मिक सहिष्णुता और पारस्परिक सौहार्द्र के वातावरण में सांस्कृतिक समन्वय का कार्य उसके समय में सुगमता से सम्पन्न हो सका। फिर विभिन्न जातियों, भाषाओं, परम्पराओं और विश्वासों वाले भारत देश के इतिहास का प्रमुख स्वर ही सांस्कृतिक समन्वय का रहा है। डा० राधाकमल मुखर्जी ने ठीक ही कहा है कि अक्सर लोग यह भूल जाते हैं "कि भारत अपने विकास के पाँच हजार वर्षों के काल में से सैंतीस सौ वर्षों तक स्वाधीन रहा है। यह समय भारत की दासता के समय से (मध्य और आधुनिक युगों में दासता का काल केवल साढ़े छः सौ वर्ष है) बहुत अधिक है"[1]। इसलिए जब शासन की तरफ से सुविधा हुई तो यह प्रक्रिया तीव्र हो गई। जैसा पहले कहा जा चुका है कि बाबर से लेकर अकबर तक के राज्यकाल में विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों और सूफी पंथों के बीच आध्यात्मिक प्रेम की लाक्षणिकता और चिन्तन क्रियाओं का खूब आदान-प्रदान हुआ जिसके फलस्वरूप अकबर के समय सांस्कृतिक एवं धार्मिक तादात्म्य तथा समन्वय स्थापित हो सका था। अकबर की उदार और समन्वयवादी नीति ने भारत की चिराचरित समन्वयवादी प्रवृत्ति को बड़ा प्रोत्साहन दिया। वह हर धर्म के विद्वानों, सन्तों, धर्माचार्यों की बातों में समन्वय स्थापित करना चाहता था। 'तबकाते अकबरी' से मालूम होता है कि अकबर विद्वानों को प्रोत्साहन, संरक्षण एवं पुरस्कार देता था। फैजी, अबुलफजल, कादिर बदायूनी, गंग आदि का नाम उक्त ग्रन्थ में उल्लिखित है। मुगलकालीन भारतीय समाज और संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव स्वाभाविक था क्योंकि राजा काल का कारण कहा गया है (राजा कालस्य कारणम्)। उसी प्रकार भारतीय जनजीवन का प्रभाव मुस्लिम समाज पर भी पड़ना अवश्यम्भावी था। इस प्रकार दोनों जातियों ने एक दूसरे से बहुत कुछ सीखा, ग्रहण किया और दोनों के संमिश्रण से एक नई सभ्यता, संस्कृति उभरने लगी जिसे इतिहासकारों ने भारतीयमुसलमानी संस्कृति (Indo Muslim Culture) या सांझी संस्कृति कहा है।

जहाँगीर--अकबर के जीवन का दमकता हुआ सूर्य अन्ततः अस्ताचलगामी हुआ। उसके जीवन के अन्तिम काल में उसे कई

---

१. डॉ० राधाकमल मुखर्जी—भारत की संस्कृति और कला पृ० ३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदमें लगे। उसका पुत्र मुराद अतिशय सुरापान से मर गया। उसका दूसरा पुत्र दानियाल दुश्चरित्र था, वह भी अकबर के जीवन काल में ही मर गया। सलीम ने पिता के खिलाफ विद्रोह किया, किन्तु अन्त में वही बच रहा था इसलिए अन्तिम वर्षों में अकबर को बड़ा मानसिक क्लेश था। उसका प्रियमित्र बीरबल युसुफजाइयों के युद्ध में मारा गया था और अबुलफज़ल को वीरसिंह ने मार डाला। इस प्रकार बुढ़ापे में अकबर एकाकी हो गया। वह चिन्तित रहने लगा, बीमार पड़ा और सं० १६६२ में मर गया।

अकबर की मृत्यु के बाद शाहजादा सलीम २४ अक्टूबर सन् १६०५ (सं० १६६२) में जहाँगीर के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। जब आगरा के किले में उसका राज्यारोहण हुआ तब वह ३६ वर्ष का था। सर्वप्रथम उसने शेर अफगन का वध करके अपनी पूर्वप्रेयसी मेहरुन्निसा को हस्तगत किया और उसे नूरजहाँ के नाम से साम्राज्ञी बनाया। जहाँगीर के जीवनकाल में शासनसत्ता वस्तुतः इसी के हाथ में रही। जहाँगीर बड़ा विलासी था लेकिन अकबर के समय का दबदबा ऐसा बना हुआ था कि इसकी विलासिता के कारण शासन प्रबन्ध में कोई विशेष अव्यवस्था नहीं उत्पन्न हुई। इसने जनता को न्याय सुलभ कराने के लिए एक जंजीर में घंटा लटकवा दिया था जिसे खींचकर कोई भी किसी समय सम्राट् के पास न्याय की गुहार लगा सकता था। इसके पुत्र खुसरो ने विद्रोह किया किन्तु उसे दबा दिया गया। नूरजहाँ के विरुद्ध खुर्रम ने भी विद्रोह किया पर वह भी दबा दिया गया। पुर्तगालियों के साथ अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी भारत में व्यापार की सुविधा देना इसके शासन काल की प्रमुख घटना थी। सं० १६८४ में जहाँगीर की मृत्यु हुई। यह जैन धर्म के प्रति उदार था। चित्रकला का शौकीन तथा मर्मज्ञ था। इसके शासन काल में शृङ्गार और विलासिता की प्रवृत्ति बढ़ी, फलतः दरबारी कलावन्तों और साहित्यकारों की रचनाओं में शृंगार और विलास के मादक चित्र उकेरे जाने शुरू हो गये। जहाँगीर के बाद शाहजहाँ के समय में साहित्य और कला के क्षेत्र में एक नये शृंगार-युग का सूत्रपात हुआ और भक्तिकाल का अवसान हो गया।

कला एवं साहित्य की स्थिति

वास्तुकला—मुसलमानों के भारत आगमन से पूर्व ही हमारे देश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की कलायें पर्याप्त उन्नत हो चुकी थीं। यहाँ की वास्तुकला देखकर आगन्तुक मुसलमान चकित रह गये थे। उनके आने के बाद हिन्दू-मुस्लिम वास्तुकला की मिश्रित शैली विकसित हुई, जैसे दिल्ली शैली, जौनपुरी शैली और गुजराती शैली आदि। राजस्थान और गुजरात के हिन्दू वास्तुकारों ने हिन्दू और जैन कला की अनुपम इमारतें बनाईं। अकबर की बनवाई ईमारतों में हिन्दू-ईरानी वास्तुकला के साथ जैन और बौद्ध वास्तुकला की शैली का भी संयोग दिखाई पड़ता है। आगरे का किला, दीवान-ए-आम, जहाँगीरी महल, फतेहपुर सीकरी की इमारतें, जोधाबाई का महल, जामा मस्जिद, बुलन्द दरवाजा, बौद्ध बिहारों की शैली पर बना पंचमहला तथा शेखसलीम का दरगाह आदि उसकी उल्लेखनीय इमारतें हैं। अकबर के एक-थंभिया महल फतेहपुर सीकरी का वर्णन देवविमल गणि ने 'हीर-सौभाग्यकाव्य' के १०वें सर्ग के ७५वें छन्द में किया है। अकबर ने इलाहाबाद का किला ईरानी वास्तुकला के आधार पर बनवाया था।

जहाँगीर स्थापत्यकला का अधिक शौकीन नहीं था किन्तु चित्र-कला का वह मुगलबादशाहों में बेजोड़ ज्ञाता और आश्रयदाता था। अतः उसके समय में कोई विशेष उल्लेखनीय इमारत नहीं बनी। वास्तुकला का सबसे अधिक शौकीन शाहजहाँ था। उसके समय में मोती मस्जिद, दिल्ली का लालकिला, जामा मस्जिद आदि का निर्माण हुआ। उसका बनवाया 'ताजमहल' अपनी कलात्मकता के लिए विश्व विख्यात है। अपार सम्पत्ति होने के कारण उसने भवनों की अलंकृति और साजसज्जा पर बड़ा ध्यान दिया। इसी समय से आलंकारिक शैली का वास्तुकला में भी प्रारम्भ हो गया। हिन्दू राजाओं ने एलौरा में गुफा मन्दिर बनवाये। इस काल में बने कुछ जैन मन्दिर भी वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। शत्रुञ्जय का वर्णन सुप्रसिद्ध इतिहासकार फार्वेस ने भी किया है। यहाँ के प्रत्येक पथ और प्रत्येक चौराहे पर जैनधर्म के अनुपम मन्दिर मौजूद हैं। प्रत्येक मन्दिर में आदिनाथ, अजितनाथ, पार्श्वनाथ आदि तीर्थङ्करों की भव्य मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। फार्वेस लिखता है "मूर्तियों के प्रस्तरीय अंग-उपांग, जिनमें परम शान्ति का भाव है, चाँदी के लैम्पों की धीमी रोशनी में धुँधले-धुँधले दीखते हैं। हवा में धूप की सुगन्धि भरी होती है तथा लाल व सुनहले वस्त्र पहने हुए उपासिकायें चिकने फर्श पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नंगे पाव चुपचाप परिक्रमा करती तथा अपरिवर्तित किन्तु मधुर स्वर में भजनों का पाठ करती रहती हैं"[१]।

मूर्तिकला—मुसलमानी काल में मूर्तिकला का ह्रास होना स्वाभाविक था क्योंकि वे बुतपरस्ती के सख्त खिलाफ थे बल्कि मूर्तिभंजक थे। इसलिए इसके विकास या इसमें किसी साझी शैली के प्रादुर्भाव का प्रश्न ही नहीं उठता।

चित्रकला—चित्रकला का इस काल में उल्लेखनीय विकास हुआ। अकबर के दरबार में अनेक हिन्दू-मुसलमान चित्रकार रहते थे। इनके द्वारा बाबरनामा, महाभारत, अकबरनामा आदि ग्रन्थों का चित्राङ्कन कराया गया। अकबर ने इन चित्रकारों से अपना तथा अपने दरबारियों का चित्र बनवाया; कपड़ों के परदों और दीवारों पर भी सुन्दर चित्रकारी कराई। इसके चित्रकारों में अब्दुलसमद, फर्रुखबेग, जमशेद, यशवन्त, बसावन, मुकुन्द, हरिवंश और जगन्नाथ आदि उल्लेखनीय हैं। जहाँगीर ने चित्रकला में विशेष रुचि ली, उसके समय में चित्रकला की अनेक नई कलमें विकसित हुईं जैसे राजपूतकलम, मुगलकलम, पहाड़ी कलम आदि। इन चित्रकारों ने धार्मिक पुस्तकों, पौराणिक प्रसंगों, प्रमुख अवतारों, महापुरुषों और वीरों का चित्र बनाया। इस समय के चित्रों में विविध प्राकृतिक दृश्यों, पशु-पक्षियों, फूलपत्तों के अलावा स्त्री-पुरुषों की नाना आकृतियों और भावभंगिमाओं के मोहक अंकन हुए हैं।

संगीत—संगीत का प्रेमी तो बाबर भी था किन्तु उसके तथा उसके बेटे हुमायूं के नसीब में संगीत का सुख नहीं बदा था। अकबर को सुख-शान्तिपूर्वक लगभग पचास वर्ष शासन करने का सुअवसर मिला। उसमें कलात्मक अभिरुचि भी थी और शौक पालने की सामर्थ्य भी थी। इसलिए उसके शासन काल में अन्य कलाओं के साथ संगीत का भी चरमोत्कर्ष हुआ। इसके दरबारी संगीतज्ञ सात टोलियों में विभक्त थे। सप्ताह में एक-एक दिन सम्राट् हर टोली के संगीत का स्वाद लेता था। भारतीय, ईरानी, तूरानी, काश्मीरी आदि विविध प्रकार की शैलियों के संगीतज्ञ उसके आश्रित दरबारी कलाकार थे। इनमें तानसेन का नाम सर्वविदित है जिन्होंने अनेक नवीन राग-रागिनियों का प्रारम्भ किया था। उनके सम्बन्ध में अबुलफजल का कथन है कि भारत में पिछले एक हजार वर्षों में ऐसा महान् संगीत-

---

१. डॉ० राधाकमल मुखर्जी—भारत की संस्कृति और कला पृ० २७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार दूसरा नहीं उत्पन्न हुआ। उसका समकालीन बैजूबावरा भी एक श्रेष्ठ संत-संगीतकार था। मालवा का राजा बाजबहादुर भी उसी समय का शौकिया सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ हो गया है। ये लोग अधिकतर निर्गुण पद, भजन आदि गाते थे। आगे चलकर संगीत में आलाप, तराना आदि का अभ्यास बढ़ा और संगीत पर भी जहाँगीर, शाहजहाँ की विलासी तथा प्रदर्शनप्रिय प्रकृति का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा।

साहित्य—जब देश में सुशासन हो, पारस्परिक सद्भाव और सामाजिक शान्ति हो तथा अन्य कलायें विकसित हो रही हों तब साहित्य कैसे पीछे रह सकता है? जैसा प्रारम्भ में ही कहा गया है यह शताब्दी साहित्य का स्वर्णयुग है। हिन्दी भक्तिकाव्य, विशेषतया कृष्ण भक्तिकाव्य का तत्कालीन अन्य भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस काल में साहित्य की दूसरी बड़ी प्रेरणाशक्ति फारसी साहित्य का प्रचार-प्रभाव था। फैजी, बदायूनी, अबुलफजल आदि ने इस काल में कई महत्वपूर्ण फारसी की रचनायें की। संस्कृत और अन्य देशी भाषाओं में भी उच्चकोटि के कई साहित्यकारों ने विपुल साहित्य का निर्माण किया। गुजरात के कवि अखा ने अकबर के समय चितविचार, संवाद, शतपद, कैवल्य-गीता आदि श्रेष्ठ रचनायें कीं। प्रेमानन्द के भक्ति रसपूर्ण पदों से गुजराती साहित्य की श्रीवृद्धि हुई। उनके पद आज भी गुजरात में लोकप्रिय हैं। तत्कालीन समन्वयवादी दृष्टि का प्रभाव हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसी के 'मानस' में स्पष्ट ही देखा जा सकता है।

मानसकार तुलसी के अलावा अकबर के समन्वयवादी शासनकाल में भक्तमाल के रचयिता नाभादास, बंगाल में चैतन्य, चंडीमंगल के रचयिता मुकुन्दराम, पंजाब के अध्यात्मवादी कवि बुल्लाशाह आदि अनेक महापुरुष हुए जिन्होंने १६वीं-१७वीं शताब्दी में धार्मिक अंतर्मिश्रण, जाति निरपेक्षता और समानता की भावनाओं की सुन्दर व्यञ्जना अपनी कृतियों में की। दारा के ग्रन्थ का नाम मजमा-उल-बहरीन (दो सागरों का मिलन) था। यह ग्रन्थ इस्लाम और हिन्दू सांस्कृतिक धाराओं के अन्तर्मिश्रण का प्रतीक है। इसी अन्तर्मिश्रण का बीजवपन राजनीति में 'सुलह-ए-कुल द्वारा और धर्मनीति में दीन-ए-इलाही' द्वारा अकबर ने किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७वीं शताब्दी का संस्कृत-प्राकृत जैन साहित्य—इस शताब्दी में अनेक प्रतिभावान जैन विद्वान्, साहित्यकार एवं लेखक हो गये हैं। विजयसेन सूरि की प्रशस्ति में लिखित 'विजयप्रशस्ति' के २१वें सर्ग में कहा गया है कि हीरविजय एवं विजयसेन सूरि के शिष्यों में अनेक व्याकरण, तर्कशास्त्र, काव्यशास्त्र के निष्णात् विद्वान् थे[1]।

संस्कृत एवं प्राकृत में अनेक उच्चकोटि की रचनायें हुईं। सं० १६०१ में विवेककीर्ति ने हरप्रसाद कृत पिंगलसारवृत्ति की प्रति लिखी। जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य जिनचन्द्र सूरि ने जिनवल्लभ कृत 'पोषध विधि' पर वृत्ति लिखी। अमरमाणिक्य के शिष्य साधु-कीर्ति ने संघ पट्टक पर अवचूरी लिखी। इस काल में धर्मसागर उपाध्याय प्रखर तर्कवादी हुए। उन्होंने खण्डनमंडन सम्बन्धी कई साम्प्रदायिक रचनायें कीं। खरतरगच्छ का खण्डन करने के लिए 'औष्ट्रिक-मतोत्सूत्र दीपिका' लिखी। तत्त्वतरंगिणी वृत्ति, गुर्वावली 'पट्टावली' भी आपकी संस्कृत रचनायें हैं। विनयदेव (ब्रह्ममुनि) ने दशाश्रुत-स्कन्ध पर जिनहिता नामक टीका बनाई। वानरऋषि कृत पयन्ना पर टीका, अजितदेव कृत पिंडविशुद्धि पर दीपिका इस काल की कुछ उल्लेखनीय साम्प्रदायिक रचनायें हैं। उत्तराध्ययन सूत्र पर अजितदेव सूरि ने बालावबोध लिखा। चंद्रकीर्ति सूरि ने रत्नशेखर सूरि कृत प्राकृतछन्दकोष पर संस्कृत में टीका लिखी इन्होंने सारस्वत व्याकरण पर सुबोधिनीदीपिका लिखी। हेमविजय गणि ने पार्श्वनाथ चरित्र लिखा। गुणविजय ने विजय प्रशस्ति को पूर्ण किया और टीका भी लिखी। वीरभद्र ने कन्दर्पचूणामणि की रचना की। आपने जगद्गुरुकाव्य में हीरविजय सूरि का गुणगान किया है।

महोपाध्याय समयसुन्दर ने भावशतक, अष्टलक्षी आदि प्रसिद्ध संस्कृत रचनायें कीं। संस्कृत में मौलिक तथा टीका रूप में इनका विशद साहित्य उपलब्ध है। गुणविनय उपाध्याय ने हनुमान कवि कृत खण्ड-प्रशस्ति पर सुबोधिनी टीका, कल्याणरत्न ने मेवाड़ के राजा प्रताप सिंह के राज्य में उदयसिंह कृत श्राद्धप्रतिक्रमण वृत्ति पर भाष्य की प्रति लिखी। शान्तिचन्द्रगणि ने 'कृपारस कोश' नामक प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ रचा जिसमें अकबर के शौर्य, औदार्य, चातुर्य आदि गुणों का वर्णन मनोरंजक ढंग से किया गया है। ज्ञानविमल, हर्षकीर्ति और

---

१. मो० द० देसाई— जैन साहित्यनो इतिहास पृ० ५८१

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ज्ञानतिलक ने बृहच्छान्तिस्तोत्र और सिन्दूर प्रकर आदि पर टीकायें लिखीं। भानुचन्द्र इस समय के राज्यमान्य विद्वान् थे। इन्होंने बाण-कृत कादम्बरी पर प्रसिद्ध टीका लिखी है। इन्होंने अकबर के लिए सूर्यसहस्रनामस्तोत्र की रचना की थी। इनके शिष्य सिद्धिचन्द्र, रत्न-चन्द्र भी प्रसिद्ध विद्वान् थे। रत्नचन्द्र ने कृपारस कोश, नैषध और रघुवंश काव्यों की सुबोध टीकायें लिखीं। देवविमलगणि ने 'हीर-सौभाग्य' नामक प्रसिद्ध महाकाव्य लिखा। इसी प्रकार साधुसुन्दर, देवसागर, भावविजय और महिमसिंह आदि अनेक विद्वानों ने संस्कृत-प्राकृत में उत्तम ढंग की मौलिक एवं टीकात्मक रचनाओं से जैनसाहित्य को श्रीसम्पन्न किया। महिमसिंह कृत मेघदूत की टीका समस्त टीका साहित्य में उत्तम समझी जाती है।

नामकरण—वि० की १७वीं शताब्दी के हिन्दी जैन साहित्य के नाम-करण को लेकर मतैक्य नहीं हो सका है। किसी युग का नाम प्रवृत्तियों, युगपुरुषों या भाषाओं के नाम पर रखा जाता है जैसे भक्तिकाल, द्विवेदीयुग या ब्रजभाषा साहित्य इत्यादि; किन्तु १७वीं शताब्दी के हिन्दी या मरुगुर्जर जैन साहित्य के लिए ऐसा कोई नाम मतभेद से मुक्त नहीं दीखता। १६वीं शताब्दी में तपागच्छ एवं खरतरगच्छ में उग्र मतभेद हो गया था। १७वीं शताब्दी में हीरविजयसूरि और जिन-चन्द्रसूरि का उदय धर्म की प्रभावना और संघ की दृष्टि से लाभकारी हुआ। देसाई जी लिखते हैं कि जैसे महावीर ने बिम्बसार को, हेम-चन्द्रसूरि ने सिद्धराज जयसिंह को उसी प्रकार हीरविजयसूरि ने शाह अकबर को प्रभावित करके धर्म की बड़ी प्रभावना की। इसलिए वे गुर्जर जैनसाहित्य में इस शताब्दी को उनके नाम पर 'हैरक युग' के नाम से पुकारना समीचीन मानते हैं। प्रस्तुत साहित्येतिहास मात्र गुर्जर का नहीं अपितु मरु का भी है, मात्र तपागच्छीय नहीं वरन् खर-तरगच्छीय जैनाचार्यों की रचनाओं का भी है अतः जैसे बहुत से लोगों को इसे जिनचन्द्र युग कहना स्वीकार न होगा (भले वे युगप्रधान थे); उसी प्रकार इसे 'हैरक युग' मानने में भी कइयों को आपत्ति होगी। अतः यह नाम सर्वस्वीकार्य न होगा।

भक्ति इस शताब्दी की प्रमुख काव्यप्रवृत्ति की और हिन्दी में इसे 'भक्तिकाल' निर्विवाद रूप से कहा गया है किन्तु जैन भक्ति का स्वरूप पूर्णतया वैसा ही नहीं है जैसा भक्ति आन्दोलन द्वारा प्रतिपादित-प्रचा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रित वैष्णव भक्ति का है; फिर भी हम चाहें तो इसे मरुगुर्जर जैन साहित्य का भक्तिकाल सुविधापूर्वक कह सकते हैं क्योंकि इस काल में एक विशेष प्रकार का पूजा, स्तोत्र, स्तवन सम्बन्धी भक्ति साहित्य प्रभूत परिमाण में लिखा गया। इस काल में बनारसीदास, ब्रह्मराय-मल्ल, भैया भगवतीदास, महात्मा आनन्दघन और यशोविजय उपाध्याय आदि अनेक प्रसिद्ध आध्यात्मवादी और भक्त कवि हो गये हैं जिनकी रचनायें मात्र साम्प्रदायिक दृष्टि से ही नहीं अपितु साहित्यिक दृष्टि से भी उच्च एवं सरस कोटि की है। इसलिए मरुगुर्जर भाषा शैली के १७वीं शताब्दी के जैनसाहित्य को भक्ति काल के नाम से पुकारने का नम्र प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैन भक्तिकाव्य की कतिपय विशेषतायें—इस काल के मरुगुर्जर जैन साहित्य का विभाजन भक्तिकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, रूपककाव्य और लोककाव्य आदि कई वर्गों में किया जा सकता है किन्तु इस ग्रन्थ में ऐसा करने पर पूर्वनिर्धारित अकारादि क्रम का निर्वाह संभव न हो सकेगा। अतः किसी वर्गीकरण के आधार पर इतिहास वर्णन का विचार छोड़ना पड़ा है। इस काल की साहित्यिक विशेषताओं—भाव, रस, छंद, अलंकार आदि के साथ भाषा की सामान्य विशेषताओं का वर्णन प्रारम्भ में ही इसलिए करना ठीक समझा गया है क्योंकि कहीं तो रचनाओं की अनुपलब्धता और कहीं स्थान की सीमा के कारण प्रत्येक कवि और उसकी हरेक रचना का अलग-अलग विवेचन करना संभव न हो सकेगा, अतः समग्ररूप से कतिपय विशेषताओं का उल्लेख पहले ही किया जा रहा है।

हिन्दी भक्तिकाव्य का व्यापक प्रभाव हिन्दी जैन साहित्य पर पड़ा और भक्तिभाव के विविध पक्षों यथा—सख्य, दास्य आदि भावों का कुछ परिवर्तन करके अथवा वैसे ही जैन कवियों ने भी वर्णन किया है जैसे हिन्दी भक्त कवियों ने किया है। उदाहरणार्थ सख्यभाव का जैन ग्रन्थों से संक्षिप्त उल्लेख प्रस्तुत किया जा रहा है। सख्यभाव में भगवत्तत्त्व का आरोपण न करके भगवान को भक्त अपने सखा या मित्र रूप में देखता है। इसमें सेव्य-सेवक या दास्य भाव की भाँति भक्त में कोई संकोच नहीं रहता। जैन साधना में कर्ममल से रहित विशुद्ध आत्मा को परमात्मा या सिद्ध कहा जाता है। आत्मा में परमात्मा बनने के सभी गुण विद्यमान हैं। जीव उस आत्मा से प्रेम करता तथा उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतन नाम से पुकारता है। उसी के साथ उसका मित्रभाव है। जब भ्रमवेश चेतन असंगत राह पर चलने लगता है तो जीव उसे सावधान करता है और माया-मोह छोड़ने का आह्वान करता है। बनारसीदास जी कहते हैं :—

"चेतन जी तुम जागि विलोकहु, लागि रहे कहाँ माया के तोई।'

इस प्रकार के अनेक पद इन्होंने लिखे हैं यथा—

'चेतन तोहि न नेक संभार।'

भैया भगवतीदास आदि कई कवियों के ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं।

वात्सल्य—सूर के बाद वात्सल्य रस का सरस उद्घाटन जैन हिन्दी साहित्य में ही मिलता है। पंचकल्याणकों में प्रथम कल्याणक-गर्भधारण एवं दूसरे कल्याणक जन्म का सम्बन्ध वात्सल्य से ही है, अतः तीर्थंकरों के जीवन चरित पर आधारित नाना काव्य ग्रन्थों में वात्सल्य रस के वर्णन का उपयुक्त अवसर जैन कवियों को खूब मिला है। रूपचन्द कृत 'पंचकल्याणक', भूधरदास कृत, 'पार्श्वपुराण' आदि में इस रस की बड़ी मधुर अभिव्यक्ति मिलती है। इनमें वात्सल्य के आलम्बन तीर्थंकर और आश्रय उनके माँ-बाप तथा भक्तजन हैं। आलम्बनगत चेष्टायें, कार्य और उस समय होने वाले उत्सव उद्दीपन विभाव हैं। भट्टारक ज्ञानभूषण ने 'आदीश्वरफाग' में आदिनाथ की बालदशाओं का मनोहर चित्र खींचा है; यथा—बालक आदिनाथ के सोने की अवस्था का वर्णन देखिये—

'आहे क्षिणि जोवइ क्षिणि सोवइ रोवइ लहिय लगार।
आलि करइ कर मोडइ त्रोडइ नवसर हार। १०३।'

इसी प्रकार चलने का वर्णन देखिये :—

'आहे घ्रण घ्रण घूघरी बाजइ हेम तणी विहुपाइ।
तिम तिम नरपति हरषइ, अरु मरुदेवी माइ॥ १०१।'

माधुर्य—भगवद्विषयक अनुराग ही भक्ति के अन्तर्गत प्रेम का स्थायीभाव है। परानुरक्ति या गम्भीर अनुराग ही प्रेम है। नारियाँ प्रेम का प्रतीक होती हैं। इसी कारण भक्त भी कान्ताभाव से भगवान की आराधना करते हैं। कवि बनारसीदास ने अध्यात्म गीत में आत्मा को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नायक और सुमति को उसकी नायिका बनाकर प्रेम के वियोग पक्ष का मार्मिक वर्णन किया है यथा—

'मैं विरहिन पिय के आधीन, त्यों तलफों ज्यों जल बिन मीन।'
कभी-कभी वह निर्गुण संतों की भाषा में आध्यात्मिक मिलन की अद्वैतावस्था का भी वर्णन करते हैं यथा :—

'होहुँ मगन मैं दरसन पाय, ज्यों दरिया में बूँद समाय।
या, पिय को मिलों अपनपो खोय, ओला गल पाणी ज्यों होय।'[1]
या, पिय मोरे घट में मैं पिय मांहि, जल तरंग ज्यो दुविधा नाहि।
पिय मो करता मैं करतूति, पिय ज्ञानी मैं ज्ञान विभूति।'

कवि ने सुमति को राधा मानकर लिखा है :—

धाम की खबरदार राम की रमनहार,
राधा रस पंथनि में ग्रन्थनि में गाई है।
सन्तन की मानी निरबानी रूप की निसानी,
यातैं सुबुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥[2]

प्रेम के मिलन या संयोग पक्ष का भी वर्णन किया गया है, यथा—

'देखो मेरी सखी ये आज चेतन घर आवे।
काल अनादि फिरचो परवश ही अब निज सुधि ही चितावै ॥'[3]

आध्यात्मिक विवाह या विवाहला (इन्हें विवाहलउ, विवाहलौ भी कहा गया है) नाम की अनेक रचनायें उपलब्ध हैं जिनमें आध्यात्मिक मिलन को रूपक शैली में प्रस्तुत किया गया है। दीक्षा के समय दीक्षाकुमारी या संयमश्री के साथ मिलन को भी विवाहलउ कहा गया है। कुमुदचन्द्र कृत 'ऋषभ विवाहला', ऋषभदास कृत आदीश्वर विवाहला, विनयचन्द्र कृत चूनड़ी आदि इस प्रकार की अनेक रचनायें उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती हैं। इस सन्दर्भ में नेमि और राजुल तथा कोशा और स्थूलिभद्र की प्रेम कथा पर आधारित अनेक सरस प्रेमकाव्य कृतियाँ लिखी गई हैं। इसी क्रम में बारहमासा, आध्यात्मिक होली और फागु तथा चर्चरी साहित्य की भी खूब रचना हुई है।

---

१. बनारसीदास—बनारसी विलास–अध्यात्म गीत पृ० १५९
२ बनारसीदास—समयसार पद्य ७४
३. भैया भगवतीदास—ब्रह्मविलास पृ० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्य प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण हमें महात्मा आनन्दघन जी की रचनाओं में प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है, यथा—

'पिया बिना सुद्ध बुद्ध भूली हो।
आँख लगाइ दुःख महल के झरुखे झूली हो।
प्रीतम प्राणप्रिय बिना प्रिया कैसे जीवे हो।
प्रानपवन विरहादशा भुयंगम पीवे हो।'
······आदि[१]

या 'सुहागण जागी अनुभव प्रीत
निन्द अज्ञान अनादि की मिट गई निज रीति।'···इत्यादि

या 'आज सुहागन नारी, अवधू।
मेरे नाथ आप सुधि लीन्हीं, कीनी निज अंगचारी। अवधू

दास्य—दास्यभाव की भक्ति में विनय का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सेवक-सेव्य भाव या दास्य भाव के अन्तर्गत स्वामी की सेवा, सेवक का दैन्य और उसकी लघुता, आराध्य की महिमा और उसके नाम जप आदि का वर्णन आता है। जैन साहित्य में ये सभी भाव विभिन्न कवियों ने बड़े उत्तम ढंग से व्यक्त किये हैं।

भैया भगवतीदास का निम्न सवैया इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है—

"काहे को देश दिशान्तर धावत, काहे रिझावत इंद नरिंद।
काहे को देव औ देवि मनावत, काहे को सीस नवावत चंद।
काहे को सूरज सों कर जोरत, काहे निहोरत मूढ़ मुनिंद।
काहे को सोच करै दिन रैन तू, सेवत क्यों नहिं पार्श्व जिनंद।"[२]

शान्त भाव और रस को जैन साहित्य में प्रधान भाव और रसराज माना गया है। इसकी चर्चा १६वीं शताब्दी के इतिहास में की जा चुकी है, एक उदाहरण देखिए। बनारसीदास जी लिखते हैं—

सत्य सरूप सदा जिनकै प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात निकंदन।
शांत दशा तिन्ह की पहिचानि, करें करजोरि बनारसी वंदन।

शुक्ल ध्यान में निरत तीर्थंकर शान्ति के प्रतीक होते हैं। उन्हें वीतरागत्व पूर्व संस्कार के रूप में जन्म से ही प्राप्त रहता है। संसार में रहकर कभी वे भोगविलास भी करते हैं, कभी राज्य शासन भी

१. आनन्दघन—पदसंग्रह पद ४१ पृ० ११९
२. भैया भगवतीदास—ब्रह्मविलास पृ० ९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभालते हैं किन्तु अन्ततः दीक्षा ग्रहण कर संयम पालन करते और सिद्ध-मुक्त हो जाते हैं। ये केवलज्ञानी सदैव अनासक्त और सर्वत्र वीतराग रहते हैं।

वि० १७वीं शताब्दी के हिन्दी जैन साहित्य में भक्ति काव्य की बानगी देने के लिए उपरोक्त कुछ नमूने पर्याप्त होंगे जिनसे वैष्णव भक्ति और जैन भक्ति के वास्तविक स्वरूप और पारस्परिक सम्बन्ध का कुछ अनुमान किया जा सकेगा।

छंद—वैसे तो इन कवियों ने वर्णिक एवं मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है किन्तु संस्कृत से अनूदित रचनाओं में प्रायः वर्णिक छन्दों का और मौलिक कृतियों में अधिकतर मात्रिक छंदों का प्रयोग किया गया है। मात्रिक छंदों में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि प्रचलित छंदों का ही प्रयोग अधिक किया गया है। किन्हीं-किन्हीं रचनाओं में आद्यान्त एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। जैसे दूहा छन्द का 'तत्व-सारदूहा या परमार्थीदोहाशतक' में आद्यान्त प्रयोग मिलता है। संभवतः चौपाई का प्रयोग इस प्रकार सर्वाधिक रचनाओं में किया गया है। 'चौपाई' छंद के आधार पर काव्य की स्वतन्त्र विधा का नाम ही 'चौपइ' पड़ गया है जैसे—चिहुंगति चौपइ, देवराजवच्छ-राज चौपइ और धर्मबुद्धिचौपइ आदि। ब्रजभाषा के प्रिय छंद कवित्त का भी प्रयोग खूब हुआ है। बनारसीदास, भैया भगवतीदास आदि की रचनाओं से इसके उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसी प्रकार सवैया, छप्पय, कुण्डलिया के भी उदाहरण ढूढ़े जा सकते हैं किन्तु उनको उद्धृत करके कलेवर बढ़ाना लक्ष्य नहीं है। भक्तिकाल का सर्वाधिक प्रसिद्ध छन्द 'पद' आनन्दघन, बनारसीदास आदि महाकवियों की रचनाओं में प्रचुरता से प्रयुक्त हुआ है। लोकगीतों के कई रूप जैसे—फागु, चर्चरी आदि का भी प्रयोग किया गया है। शास्त्रीय संगीत की भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों जैसे धन्यासी, विलावल, काफी आदि भी जैन रचनाकारों में विशेष प्रचलित राग रहे हैं। अरिल्ल, हरिगीतिका सोरठा के अतिरिक्त कुछ नये छन्द जैसे आभानक, रोडक, करिखा और बेसरि आदि का प्रयोग इन कवियों की मौलिक सूझ का परिणाम है। बनारसीदास का एक छन्द 'पद्मावती' देखिये—

ज्यों नीरोग पुरुष के सनमुख पुरकामिनि कटाक्ष कर ऊठी।
ज्यों धनत्याग रहित प्रभु सेवन, ऊसर में बरखा जिम छूठी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्यों सिलमाँहि कमल को बोवन, पवन पकर जिम बाँधिये मूठी।
ये करतूति होय जिम निष्फल, त्यों बिनभाव क्रिया सब झूठी ॥[1]

अलंकार — जैन कवियों ने आग्रहपूर्वक काव्य को अलंकारों के बोझ से क्लिष्ट और चमत्कारी बनाने का प्रयास नहीं किया है किन्तु अनेक अलंकार स्वाभाविक रीति से इनकी रचनाओं में काव्य की शोभा बढ़ाते हुए मिल जाते हैं। उनके दो-चार उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। अनुप्रास की छटा बनारसीदास की इन पंक्तियों में देखिये—

रेत की सी गढ़ी किधौं मढ़ी है मसान की सी,
अन्दर अंधेरी जैसी कन्दरा है सैल की।

यमक—पीरे होहु सुजान पीरे कारे ह्वै रहे।
पीरे तुम बिन ज्ञान पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ।

अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष का प्रयोग अधिक किया गया है। अनेक कृतियाँ पूर्णतया रूपक पर ही आधारित हैं। इन रूपककातिशयोक्तियों में रूपक का अच्छा निर्वाह किया गया है यथा—जीवमनःकरणसंलाप', 'मयण-पराजय' और मयण-जुज्झ आदि।

कुछ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत हैं। उपमा—
'कब रुचि सौं पीवे दृग चातक, बूँद अखयपद कन की।
कब शुभ ध्यान धरैं समता गहि करूँ न ममता तन की॥'[2]

विरोधाभास—एक में अनेक है अनेक ही में एक है,
सो एक न अनेक कछु कह्यो न परत है।

महाकवि बनारसीदास ने अभिनव छंद प्रयोग की भाँति कुछ विरल प्रयुक्त अलंकारों का भी प्रयोग किया है यथा आक्षेपालंकार का एक उदाहरण लीजिये—

शंख रूप शिव देव, महाशंख बनारसी,
दोऊ मिले अनेन, साहिब सेवक एक से।[3]

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—जैन भक्तिकाव्य पृ० ४४५ पर उद्धृत
२. बनारसीदास—अध्यात्म पद पृ० २३१
३. बनारसीदास—अर्द्धकथानक-सं० नाथूराम प्रेमी पृ० २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपक —महात्मा आनन्दघन की प्रकृति पर आधारित यह **सांग-रूपक देखिये**––

मेरे घट आन भाव भयो मोर।
चेतन चकवा चेतन चकवी, भागौ विरह को सोर।[1]

प्रकृति वर्णन––जैन साधु-संतों के आगमन पर प्रकृति का हर्ष प्रकट करने के लिए, मानव की अन्तःप्रकृति का अंकन करने के लिए, प्रकृति के साथ मनुष्य के चिरंतन सम्बन्धों का आख्यान करने के लिए या आलंकारिक रूप में प्रकृति का वर्णन करने के लिए जैन कवियों ने प्रकृति का चित्रण किया है। उद्दीपन विभाव के रूप में भी यदाकदा प्रकृति का वर्णन किया गया है। हेमविजय सूरि ने नेमीश्वर के गिरिनार पर तप करने जाने के बाद राजीमती के हृदय के हाहाकर को प्रकृति में प्रत्यक्ष रूप से घटाकर वर्णित किया है, यथा––

घनघोर घटा उनयी जु नई, इततें उततें चमकी बिजली।
पियुरे-पियुरे पपिहा बिललाति जु, मोर किंगार करंति मिली।
बिच बिन्दु परे दृग आँसु झरे, दुनिधार अपार इसी निकली।
मुनि हेम के साहब देखन कूं, उग्रसेन लली जु अकेली चली।[2]

यह छन्द रीतिकाल के बृभषानलली पर लिखे गये इसी भाव के प्रसिद्ध छन्द की याद दिलाता है।

आलम्बन के रूप में प्रकृति-वर्णन का एक उदाहरण ब्रह्म रायमल्ल की 'हनुवंतकथा' से देकर यह प्रसंग सम्पूर्ण किया जा रहा है––

दिन मत भयो अथयो भाण, पंछी शब्द करैं असमान।
मित्र सहित पवनजय राय, मन्दिर ऊपर बैठो जाय।
देखै पंखी सरोवर तीर, करैं शब्द अति गहर गम्भीर।
दसै दिशा मुख कालो भयो, चकहा चकही अंतर लयौ॥[3]

भाषा का स्वरूप –इस शताब्दी तक हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी का स्वतन्त्र विकास होने लगा था। 'उकार' बहुल प्रवृत्ति हट गई थी और अधिकतर तत्सम शब्दों का प्रयोग होने लगा था। क्रियाओं

---

१. आनन्दघन—पदसंग्रह पद सं० १५
२. डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० ४५२
३. वही, ४५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विकास पूर्ण हो चला था फिर भी कविता में जैन कवि राजस्थानी-गुजराती मिश्रित एक विशेष प्रकार की हिन्दी भाषा शैली का प्रयोग करते रहे। 'रे' और अनुस्वार की प्रवृत्ति अब भी मिलती है। कुशल-लाभ का निम्नपद्य 'रे' प्रयोग का अच्छा नमूना है —

'आव्यो मास असाढ़ झबूके दामिनी रे।
जोवइ जोवइ प्रीयडा सकोमल कामिनी रे।
चातक मधुरइ सादिकि प्रीउ प्रीउ उचरइ रे।
वरसइ घण वरसात सजल सरवर भरइ रे।

कुछ कवियों की भाषा शुद्ध खड़ीबोली पर आधारित है जैसे बनारसीदास की भाषा, क्योंकि ये जौनपुर में पैदा हुए और आगरे में रहे जो खड़ीबोली साधु भाषा के प्रभाव क्षेत्र में था। आगरा निवास के कारण कारकों पर ब्रजभाषा का प्रभाव भी अवश्य पड़ा है। दरबारी संसर्ग के कारण उर्दू-फारसी के प्रयोग भी मिलते हैं। इनके मित्र कुंवरपाल की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है क्योंकि उनका सम्बन्ध राजस्थान से रहा। चूंकि अधिकतर जैन कवियों का सम्बन्ध राजस्थान या गुजरात से रहा अतः उनकी हिन्दी भाषा पर इन दोनों भाषाओं का मिला-जुला प्रभाव बराबर बना रहना स्वाभाविक था। उदाहरणार्थ कुंवरपाल के 'चौबीस ठाणा' की निम्न पंक्तियाँ देखिये —

'वंदौ जिनप्रतिमा दुखहरणी।
आरंभ उदौ देख मति भूलौ, ए निज सुध की धरणी
बीतरागपदकूँ दरसावइ, मुक्ति पंथ की करणी
सम्यग् दिष्टी नितप्रति ध्यावइ, मिथ्यामत की टरणी ॥'[1]

लेखकों ने शासन और 'सासन' तथा 'शुद्ध' और 'सुद्ध' दोनों रूपों में स और श का प्रयोग किया है। संयुक्त वर्णों को स्वर विभक्ति द्वारा पृथक् करने की भी प्रवृत्ति मिलती है जैसे लबधि और लब्धि, अध्यातम और अध्यात्म, सरधा और श्रद्धा। संयुक्त वर्णों को सरल बनाने के लिए एक वर्ण हटा भी दिया जाता है जैसे स्तुत का स्थुति, चैत्य का चैत, स्थान का थान, ऋद्धि का रिधि और मोक्ष का मोखरूप खूब चलता है।

---

१. बनारसीदास—अर्द्धकथानक पृ० १०२ पर उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवियों की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है। मुहावरों के प्रयोग यत्र-तत्र अच्छे ढंग पर मिल जाते हैं जैसे 'उलवा न जानै किस ओर भानु उवा है'। या आजकालि पीजरे सो पंछी उड़ि जातु है। इत्यादि, खलक; बदफैल, खबरदार, निसानी और गुमानी जैसे शब्दों के बढ़ते प्रयोग मुगलकालीन फारसी-उर्दू के बढ़ते प्रभाव के द्योतक हैं। जैन कवियों ने इन शब्दों को ज्यादातर तद्भव रूप में ही प्रयुक्त किया है जैसे मुकाम, सहल, परवाह, नजदीक, खिलाफ आदि। हिन्दी खड़ी बोली और ब्रजभाषा का मिलाजुला रूप काव्य में अधिक प्रयुक्त होने लगा था जिस पर गुजराती या राजस्थानी की छाप देखी जाती है। यह एक विशेष प्रकार की भाषा शैली थी जो जैन कवियों की काव्य भाषा के रूप में रूढ़ हो गई थी। अतः मरुगुर्जर जैन साहित्य १७वीं और १८वीं शती में भी इसी प्रकार की चिराचरित भाषा शैली में अभिव्यक्ति पाता रहा है। भाषाओं के स्वतन्त्र विकास की अलगाववादी प्रवृत्ति इनमें नहीं मिलती अपितु ये हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती के मिले-जुले रूप के प्रयोक्ता ही रहे हैं। मरुगुर्जर भाषा शैली भाषायी मेलजोल का एक उत्कृष्ट नमूना है। भाषा के साथ-साथ मरुगुर्जर जैन साहित्य भाव के स्तर पर भी सद्भाव, पारस्परिक समन्वय और शांति का संदेशवाहक है।

●

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

मरु-गुर्जर जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

(विक्रम १७वीं शती)

अखयराज उर्फ अक्षयराज श्रीमाल—आप इस शताब्दी के श्रेष्ठ गद्य लेखक हैं। आपने सं० १६७४ में विषापहार स्तोत्र की हिन्दी भाषा टीका लिखी। कल्याणमन्दिरस्तोत्र, भक्तामरस्तोत्र और भूपालचौबीसी पर भी आपने भाषावचनिकायें लिखी हैं। चतुर्दशगुणस्थानवचनिका या चर्चा आप की सर्वश्रेष्ठ गद्य रचना है। इसमें त्रिलोकसार, गोम्मटसार और लब्धिसार के आधार पर चौदह गुणस्थानों सहित अन्य जैन सिद्धान्तों की भी चर्चा की गई है इसलिए इसे 'चर्चा' भी कहा जाता है।

आपका जीवनवृत्त अज्ञात है किन्तु भाषा-प्रयोग के आधार पर लगता है कि आप जयपुर के आसपास के रहने वाले थे। आपकी भाषा का नमूना प्रस्तुत है—

"आगैं अन्तराय कर्म पाँच प्रकार, तिसि की दोइ साखा। एक निहचै और एक व्यौहार। निहचै सो कहिये जहाँ पर गुन का त्याग न होइ सो दानान्तराय। आत्मतत्त्व का लाभ न होइ सो लाभान्तराय। आत्मस्वरूप का भोग न होइ सो भोगान्तराय। जहाँ बराबर उपभोग न जागै सो उपभोगान्तराय। अष्टकर्म कहुँ जीव जिसके नहीं सो वीर्यान्तराय।"[१]

चौदह गुणस्थान चर्चा की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

"यह चौदह गुणस्थान का स्वरूप संक्षेप मात्र कह्या। जिनवाणी अनुसारि कथन करि पूरन किया। जौ कहीं भूलचूक भई होइ तौ जो पंडित जिनबानी में प्रवीन होइ सो सुधारि पढ़ियो।"[२]

---

१. राजस्थान का जैन साहित्य—पृ० २४७-२४८ (सं० श्री अगरचंद नाहटा डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल आदि) में संकलित लेख—राजस्थानी गद्य साहित्यकार, ले० डॉ० हुकुमचंद भारिल्ल।

२. प्रशस्ति संग्रह पृ० २१२, सं० डा० कस्तूरचंद कासलीवाल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त में एक दोहा भी दिया गया है, उससे इनकी पद्य रचना का नमूना प्राप्त हो जायेगा—

चौदह गुणस्थान कथन भाषा सुनि सुख होइ।
अखैराज श्रीमाल ने करी जथामति जोइ।[1]

इनकी गद्य और पद्य की भाषा ब्रजमिश्रित राजस्थानी है। ब्रजभाषा का यह प्रभाव भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप भी हो सकता है किन्तु राजस्थान में पहले से ही पद्य में पिंगल की जिस काव्य शैली का प्रयोग प्रचलित था उसमें राजस्थानी और ब्रजभाषा का रूप मिला जुला था, विशेषतया ढूढ़ाड़ क्षेत्र की विभाषा ढूढ़ाड़ी पर ब्रज-भाषा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

श्रीमाल गोत्रीय होने के कारण इन्हें श्वेताम्बर परम्परा का विद्वान् होना चाहिये किन्तु इन्होंने जो भाषा-टीकायें की हैं वे मुख्यतः दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों पर ही हैं। ऐसा लगता है कि बनारसीदास के साथ ओसवाल जाति के जो व्यक्ति दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रति आकृष्ट हुए, उनमें इनका परिवार भी रहा होगा।

अजित ब्रह्म—आप गोल शृंगार जाति के श्रावक कुल में उत्पन्न हुए थे। आप के पिता का नाम वीर सिंह और माता का नाम पीथा था। 'भट्टारक सम्प्रदाय, नामक ग्रन्थ में लिखा है—

"गोल शृंगार वंशे नभसि दिनमणि वीरसिंहो विपश्चित।
भार्या पीथा प्रतीता तनुरुह विदितो ब्रह्म दीक्षाश्रितोऽभूत।"

आपका लेखनकाल १७वीं शताब्दी का तृतीय चरण माना जाता है। आप ब्रह्मचारी थे और दिगम्बर भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य तथा विद्यानन्दी के शिष्य थे। भट्टारक विद्यानन्दी बलात्कारगण सूरतशाखा के भट्टारक थे। ब्रह्म अजित भृगुकच्छ (भड़ौंच) के नेमिनाथ चैत्यालय में मुख्यरूप से निवास करते थे। आपने इसी चैत्यालय में अपनी प्रसिद्ध रचना 'हनुमच्चरित' का प्रणयन बारह सर्गों में किया था। यह अपने समय की लोकप्रिय रचना थी।

आपकी दूसरी काव्यकृति का नाम 'हंसागीत' या हंसाभावना या हंसातिलक रास है। यह ३७ पद्यों का एक लघु काव्य है। यह आध्या-

---

१. राजस्थान के जैनशास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची पंचम भाग पृ० १९, सं० डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल एवं अनूपचंद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्मिक उपदेशप्रधान पद्य रचना है। इसकी भाषा हिन्दी है। इसकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

ए बारह बिहि भावणइ जो भावइ दृढ़ चित्तु रे हंसा।
श्री मूलसंघ गछि देसीउ ए बोलइ ब्रह्म अजित रे हंसा।३६।

रास हंसतिलक एह जो भावइ दृढ़ चित्त रे हंसा।
श्री विद्यानन्दि उपदेसिउ बोलि ब्रह्म अजित रे हंसा।३७।
हंसा तू करि संयम, जम न पडिया संसार रे हंसा।[1]

आप एक संत कवि थे। हंसा अर्थात् जीव को सम्बोधित करते हुए कवि ने उसे संयम-नियम पालन का उपदेश दिया है। हिन्दी के साथ ही आप संस्कृत के भी ज्ञाता थे।

हनुमच्चरित की एक प्राचीन प्रति आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर में संग्रहीत है।[2] आपकी रचनाओं का संक्षिप्त उल्लेख डॉ० हरीश शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन' में किया है।

अजितदेवसूरि—आप श्वेताम्बर परम्परा के चन्द्रगच्छ, जो बाद में पल्लीवालगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ, के भट्टारक महेश्वरसूरि के पट्टधर थे। आप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के उत्तम जानकार थे। आपने संस्कृत में पिंडविशुद्धि और आचारांग पर दीपिका लिखी। उत्तराध्ययन स्तोत्र पर बालावबोध नामक विद्वत्तापूर्ण टीका भी लिखी है।[3] मरुगुर्जर या हिन्दी में आप की दो कृतियाँ उपलब्ध हैं—(१) समकित शीलसंवाद रास, (२) चंदनबालाबेलि।[4]

---

१. राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल पृ० १९५-९६ (प्रकाशक–श्री दि० जै० अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी, जयपुर)

२. गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पृ० ११९-१२०

३. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास पृ० ५८५ प्रकाशक जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स आफिस, मुम्बई सन् १९३३

४. श्री मोहनलाल दलीलचंद देसाई—जैन गुर्जर कवियो (प्रथम संस्करण), भाग ३, खण्ड १ पृ० ६५५; (नवीन संस्करण) भाग २, पृ० ४७ और भाग ३ पृ० ३६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम रचना सं० १६१० में बडोदरा में लिखी गई। इसमें कुल १२ कड़ियाँ हैं। इसकी अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है--

"इम जंपै रे अजितदेव सूरि किसुणु।" इति सिलगीतं संपूर्ण
(इण्डिया आफिस लाइब्रेरी नं० गु० १९)

चंदनबालाबेलि की एक प्रति सं० १७८० की लिखित उपलब्ध है जो साध्वी केशाजी के पठनार्थ लिखी गई थी।

अनन्तकीर्ति—आप दिगम्बर सम्प्रदायान्तर्गत मूलसंघ के विद्वान् थे। आपने सं० १६६२ कातिक शुक्ल १४ को सांगानेर में अपनी रचना (भविष्यदत्त चौपाई) पूर्ण की। इसकी प्रति बीकानेर के मंगलचंदमालू संग्रह में ३६वीं क्रमसंख्या पर सुरक्षित है। इसकी भाषा शैली का नमूना जिज्ञासु उक्त प्रति से देख सकते हैं। हमें प्रति अनुपलब्ध है अतः विशेष कुछ कहना सम्भव नहीं है[1]।

अनन्तहंस—आप खरतरगच्छ के प्रसिद्ध मुनि भावहर्ष उपाध्याय के शिष्य थे। भावहर्ष ने सं० १६२१ में खरतरगच्छ की भावहर्षी शाखा का प्रवर्त्तन किया था। आप की पुण्य स्मृति में अनन्तहंस ने 'भावहर्ष सूरि चौपाई' की रचना की। रचना का निश्चित समय ज्ञात नहीं है किन्तु इतना निश्चित है कि आप १७वीं शताब्दी के मध्य-भाग में विद्यमान थे। आपकी अन्य दो रचनायें—अष्टोत्तरशतपार्श्व-स्तवन और शान्तिस्तवन भी प्राप्त हैं। ये दोनों क्रमशः तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ और शान्तिनाथ की स्तुति में लिखी गई हैं[2]। इस प्रकार इनकी तीनों प्राप्त रचनायें गुरुभक्ति एवं भगवन्त भक्ति पर आधारित हैं। इन रचनाओं में भक्तिकालीन हिन्दी काव्य में पाई जाने वाली गुरुभक्ति एवं भगवद्भक्ति की झलक देखी जा सकती है।

भावहर्षी शाखा की प्रधान गादी बालोतरा में थी अतः यह अनुमान होता है कि आप राजस्थानी लेखक थे और आपकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव अधिक होगा।

---

१. जैन गुर्जर कविओ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० ७९० और भाग ३ (नवीन संस्करण) पृ० ८०

२. श्री अगरचन्द नाहटा—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल–परम्परा—पृ० ८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनसे पूर्व १६वीं शताब्दी में भी एक अन्य अनन्तहंस हो चुके हैं। वे तपागच्छीय लक्ष्मीसागर>हेमविमल की परम्परा में थे। उनकी रचनाओं—बारव्रतसंज्झाय और इलाप्राकार चैत्य परिपाटी (सं० १५७० से पूर्व लिखित) का विवरण प्रथम खण्ड में दिया जा चुका है।

अभयचन्द—(सं० १६४० से सं० १७२१) आप भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र की परम्परा में भट्टारक कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। आपका जन्म हुंबड़वंश में हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीपाल[1] और माता का नाम कोड़मदे था। सं० १६८५ में बारडोली नगर में आप भट्टारक-गादी पर बड़ी धूमधाम से आसीन हुए। आपने मरु-गुर्जर प्रदेश में सघन विहार किया और अपनी वाक्शक्ति से प्रभावित करके अनेक लोगों को धर्म मार्ग पर लगाया। दामोदर, धर्मसागर, गणेश, देव और रामदेव आदि शिष्यों ने इनकी प्रशस्ति में अनेक रचनायें की हैं जिनसे इनके व्यक्तित्व का गुरुत्व तथा इनकी विद्वत्ता, प्रतिभा और लोकप्रियता का पता चलता है। इन्होंने संस्कृत और प्राकृत के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। न्यायशास्त्र, अलंकार शास्त्र और नाट्यशास्त्र में भी आपकी अच्छी गति थी। अबतक आपकी दस रचनायें प्राप्त हैं। इनमें 'वासुपूज्य जी धमाल,' चन्दागीत और सूखड़ी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। चन्दागीत कालिदास के मेघदूत की शैली पर लिखित एक लघु विरह काव्य है। इसमें राजुल अपना विरह सन्देश नेमिनाथ तक पहुँचाने के लिए चन्दा से विनती करती है। चार पंक्तियाँ नमूने के तौर पर प्रस्तुत हैं—

"विनय करी राजुल कहे, चन्दा विनतडी अवधारो रे।
उज्जंतगिरि जाइ बीनवो चन्दा, जहाँ छे प्राण अधारो रे।
विरहतणां दुख दोहिला चंदा ! ते किम मे सहो जाय रे।
जल विना जेम माछली चंदा ते दुख मे बाय रे।"

इसकी भाषा में 'डी', रे आदि पुरानी प्रवृत्तियों के साथ छे, जेम आदि गुर्जर के प्रयोग भी हैं जो इसे गुर्जर प्रधान हिन्दी (मरुगुर्जर) भाषा प्रमाणित करते हैं।

---

१. हुंबड वंश विख्यात वसुधा श्रीपाल साधन तात, जायो जननीइ पतिय-शवन्तो कोड़मदे धनमात। रतनचन्द पाट कुमुदचन्द यति प्रेमे पूजो पाय, तास पाटि श्री अभयचन्द गोर दामोदर नित्य गुणगाय।
(डा० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ. १४८ पर उद्धृत)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्विंशति तीर्थंकर लक्षणगीत, पद्मावतीगीत, गीत, नेमिश्वर नुं ज्ञानकल्याणकगीत, आदीश्वरनाथ नुं पंचकल्याणक गीत और बलभद्रगीत इनकी अन्य प्राप्त रचनायें हैं। सूखड़ी में तत्कालीन खाद्य-पदार्थों और नाना प्रकार के मिष्ठान्नों का वर्णन मिलता है यथा—

जलेबी खाजला, पूरी पतासां फीणा खजूरी।
दहींपरा फीणी मांहि साकर भरी।
साकरवाला सुहाली तल पापड़ी साकली।
पापडास्युं थीणुं कीय आलू जीवली।'[1]

आपने प्रायः लघु कृतियों की रचना की है। काव्यत्व की दृष्टि से ये रचनायें (चन्दागीत को छोड़कर) प्रायः सामान्य कोटि की हैं लेकिन जनता की मांग पर लिखी गई ये रचनायें काफी लोकप्रिय हुई थीं। इनका मुख्य लक्ष्य धर्म और चारित्र का प्रचार करना था। कवि ने इन लघुकृतियों द्वारा जैन धर्म और संघ की महती सेवा की है। इनके शिष्य दामोदर ने इनकी स्तुति में एक गीत लिखा है जिससे इनके परिवार एवं व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। इनके माता-पिता और गुरु से सम्बन्धित पंक्तियाँ पहले उद्धृत की गई हैं। यहाँ उनके व्यक्तित्व की गुरुता व्यक्त करने वाली कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"वांदो वांदो सखीरी श्री अभयचन्द गोर वांदो।
मूलसंघ मंडण दुरित निकंदन कुमुदचंद्र पगि वंदो।
शास्त्रसिद्धान्त पूरण ए जाण, प्रतिबोधे भवियण अनेक।
सकल कला करी विश्वने रंजे, भंजे वादि अनेक।"[2]

अभयसुन्दर—(गद्यकार) आप जिनचन्द्र सूरि के शिष्य समयराज उपाध्याय के शिष्य थे। आपने उत्तराध्ययन बालावबोध (१३वाँ अध्ययन) लिखा जिसकी प्रति सेठिया पुस्तकालय में संग्रहीत है। आपके शिष्य राजहंस भी अच्छे गद्यकार थे[3]।

अमरचन्द्र—आप तपागच्छीय सहजकुशल > सकलचन्द > शान्तिचन्द्र के शिष्य थे। आपने सं० १६७८ माघ सुदी १५ रविवार को

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्रथम संस्करण १९६७) पृ० १४८-१५२

२. वही, पृ० १४८-१५२

३. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांतलपुर में 'कुलध्वजकुमाररास' नामक काव्य की रचना की। इसकी आरम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'जिन शारदा अनुपम नमी अने छंडी विकथा वात।
श्री श्री कुलध्वज भूप नो पभर्णीस वर अवदात।'

रचना काल अन्तिम पंक्तियों में इस प्रकार बताया गया है—

तस पदपंकज सेवा रसीउ, भमरतणी परिभासइ,
अमरचन्द्र कवि इम आनंदी, कुलध्वज रास प्रकासइ,

८ ७ ६ १
संवत वसुमुनि रस शशी मधुमासि सित पक्ष रे।
पूर्णिमासि तिथि रविवारइं तुम्हें जोइ लेयो दक्ष रे।[१]

इनकी दूसरी रचना 'सीताविरह' सं० १६७९ द्वितीय आषाढ़ सुदी १५ को पूर्ण हुई। इसके आदि-अन्त की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

आदि 'स्वस्ति श्री लंकापुरी, जिहां छे वर आराम,
राम लिखे सीता प्रति, विरल लेष अभिराम।
नामांकित वलि मुद्रिका आपे हनुमंत साथि,
लेख सहित तुं आपजे, जनकसुता ने हाथि।'

अन्त 'संवत सोल उगण्यासीइ बीजे मास आसाढ़ रे,
लेख लिख्यो मे पुनिम दिवसि ऋक्ष उत्तराषाढ़ रे।

× × ×

अमरचन्द्र मुनि इणिपरि बोले, नर नारी सुणो सांचोरे।
विरह तणां दुख टालवा, लेख अनोपम वांचोरे।'

यह रचना प्रथम कृति से अपेक्षाकृत छोटी है किन्तु सीता की मार्मिक विरह भावना से ओतप्रोत होने के कारण सरस एवं भावप्रवण है। प्रथम रचना कवि ने गुणविजयगणि के आग्रह पर लिखी थी। कवि ने लिखा है—

श्री गुणविजय गणि कविजन केरो, आग्रह अधिको जाणी रे,
रास रच्यो मइं सांतलपुर मां, मनमां आणंद आणी रे।[२]

---

१. श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५०६-५०८ (प्रथम संस्करण)

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों रचनाओं की भाषा सरल मरुगुर्जर या हिन्दी है।

आणंद—आप गच्छनायक केशव के पट्टधर शिवजी गणि के शिष्य थे। आपने सं० १६९२ के आसपास अपने आचार्य की स्तुति में 'शिवजी आचार्य नो सलोको' नामक १४ कड़ी की एक रचना की है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

'श्री चोवीसे निति ध्याऊं, श्री शिवजी गछनायक गाऊ
देश सवे सिर सोरठ देश, नगर नगीनो नाम नरेश।
संवत सोल सय अठ्यासी, केशव पाटि पाम्या उल्हासी।

× × ×

मंत्रा जिम नवकार सारा कोकिल सलही जाइ
त्युं रूप तेज परताप करि, प्रतपो श्री शिवजी गणि,
आणंद कहत गणी गावंता, ऋद्धि वृद्धि कीरति गणी[1]।

आनन्दकीर्ति—आप जिनसिंह सूरि के शिष्य हेममंदिर के शिष्य थे। आपने १७वीं शताब्दी में बारहव्रतरास और नेमिस्तवन नामक दो रचनायें की हैं। श्री अगरचंद नाहटा ने इन रचनाओं का नामोल्लेख मात्र किया है, कोई विवरण-उद्धरण नहीं दिया है। मूलप्रति उपलब्ध न हो पाने के कारण मेरे लिए भी अन्य विवरण देना सम्भव नहीं हो पा रहा है[2]।

आनंदचंद—आप पार्श्वचन्द्र की परम्परा में समरचन्द्रसूरि के प्रशिष्य और पूर्णचन्द्र सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६६० में 'सत्तर-भेदीपूजा' नामक स्तवन की रचना नगीना में किया जिसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ निम्नवत् हैं :—

आदि 'श्रीजिनचरणकमलनमी, समरो श्री गुरु भक्ति,
जास पसाइ संपजै, वचन चतुरिमा युक्ति।
सूर्याभविजयादिक श्री जिनपूजा कीध
सत्तरभेदि अति विस्तरें, जीवित नो फल लीध।'

अन्त 'श्री समरचन्द सूरि शिष्य प्रवरवर उवझाय पूर्णचंद,
तास पदाम्बुज सेवक मधुकर, पभणो आनंदचंद रे।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड १ पृ० १०८२

२. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत् सोल साठि शुभ अब्दे, शुभ मुहुर्ते शुभ बेलि
नगर नगीने अे थुति कीधी संभालि दोइ कर मेलि ।'

यह रचना भक्त के आग्रह पर की गई जैसा इन पंक्तियों से स्पष्ट है :—

"जिन शासनी ठाकुर लखू नामिंइ जय तू विहारीदास,
एह तणे प्रार्थने कीधी, आणी चित्त उल्हास,
धन धन श्री जिनशासन भुवनिइं, धनधन की जिनवाणि,
राजै त्रिणि भुवन भासंती, लहीयैं पुण्य प्रमाणि ।[१]

प्रति प्राप्ति विवरण–८-१३ नं० ३०० बीजापुर जैन ज्ञानमंदिर ।

महात्मा आनन्दघन —(सं० १६७२ से सं० १७४०) इनके बचपन का नाम लाभानन्द था, श्री के० एम० झावेरी इन्हें लाभविजय भी कहते हैं ।[२] मनसुखलाल रजनीभाई मेहता इनकी भाषा के आधार पर इन्हें गुजराती बताते हैं । आचार्य क्षितिमोहन सेन इन्हें राजस्थानी सिद्ध करते हैं । उनका तर्क है कि गेय पदों की भाषा को आधार मानकर किसी का मूलस्थान निश्चित नहीं किया जा सकता क्योंकि गानेवालों द्वारा गीतों की भाषा में परिवर्तन होता रहता है । उनका अन्तिम समय मेड़ता (राजस्थान) में बीता था । मेड़ता में ही उनकी भेंट प्रसिद्ध उपाध्याय यशोविजयजी से हुई थी । आचार्य क्षितिमोहनसेन ने लिखा है 'मेड़ता नगर में आनन्दघन के साथ यशोविजय जी ने कुछ समय बिताया था । इसलिए ये दोनों समसामयिक हैं । आनन्दघन उम्र में कुछ बड़े हो सकते हैं अतएव संभव है कि सं० १६७२ के आसपास उनका जन्म और १७३५ के आसपास देहावसान हुआ हो ।[३] श्री नाथूराम प्रेमी इनकी यशोविजय से भेंट संभव नहीं मानते किन्तु वे भी इनका समय वि० १७वीं शताब्दी का मध्यभाग मानते हैं ।[४] आनन्दघन उदार विचारों के संत थे । वे किसी संकुचित साम्प्रदायिक सीमा में आबद्ध नहीं थे अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वे तपा

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड १ पृ० ८८१-८८

२. K. M. Jhaberi-Mile stones in Gujarati Lit P. 139.

३. आ० क्षितिमोहन सेन 'जैन मरमी आनन्दघन का काव्य' वीणा अंक १ नवम्बर १९३८ पृ० ८

४. श्री नाथूराम प्रेमी—अर्द्धकथानक (प्र० बम्बई) पृ० ११६-११७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या खरतरगच्छीय थे। इसीलिए किसी गच्छवाल लेखक ने उनका उल्लेख नहीं किया है। क्षितिमोहनसेन उनके ऊपर मध्ययुग के मरमिया सहजवाद का प्रभाव मानते हैं, उनके भाव कबीर, दादू, रज्जब आदि से मिलते हैं। 'आनन्दघनबहत्तरी' इन्हीं आध्यात्मिक भावों से ओत-प्रोत रचना है। इसमें शांतरस का मर्मस्पर्शी अभिव्यन्जन हुआ है। इन्होंने चेतना को आत्मानन्द की ओर प्रवृत्त किया है। अपने साहित्य द्वारा इन्होंने जीवों को लोकसंग छोड़कर वनवास, एकान्तवास द्वारा आत्म-चिंतन का संदेश दिया है। इन्होंने हिन्दी-गुजराती मिश्रित (मरुगुर्जर) भाषा शैली में २४ जिनों की स्तुति में २४ स्तवन (चौबीसी) लिखी है। ऐसी उत्तम चौबीसी प्रायः समस्त जैन साहित्य में दुर्लभ है। इस चौबीसी में अन्तरात्मा और बहिरात्मा और परमात्मा तथा अन्य आध्यात्मिक प्रसंगों पर यथास्थान गूढ़ विवेचन सुबोध ढंग से किया गया है। आनन्दघनबहोत्तरी में भक्ति, वैराग्य से प्रेरित आध्यात्मिक रूपक, अन्तर्ज्योति का आविर्भाव और प्रेरणामय उल्लास का भाव व्यक्त हुआ है। चाहे यशोविजयजी की इनसे भेंट हुई हो या न हुई हो किन्तु वे इनसे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने 'आनन्दघन अष्टपदी' में आनन्दघन के काव्यत्व और साधना पक्ष की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

आनन्दघन या घनानन्द नाम के चार कवि मध्यकाल में मिलते हैं। इनमें से प्रथम सुजान के प्रेमी प्रसिद्ध रीतिमुक्त कवि घनानन्द से सभी हिन्दी पाठक परिचित हैं। दूसरे प्रसिद्ध अध्यात्मवादी जैन कवि प्रस्तुत महात्मा आनन्दघन का जीवनवृत्त अधिक ज्ञात नहीं है। तीसरे आनन्दघन[1] नंदगाँव निवासी थे जिनकी भेंट चैतन्य से हुई थी। वे १६वीं के मध्य हो गये थे। चौथे कोकमंजरी के कर्त्ता घनानन्द को और हिन्दी के घनानन्द को लोग एक ही मानते थे पर वे भी भिन्न व्यक्ति सिद्ध हो चुके हैं। महात्मा आनन्दघन की प्रसिद्ध रचना 'चौबीसी' का समय पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सं० १६७८[2] और झाबेरी ने सं० १६८७ माना है। इसपर यशोविजय, ज्ञानविमल और ज्ञानसार ने बालावबोध व टब्बा लिखा है। चौबीसी को भीमसिंह माणिक ने प्रकाशित किया है। बहोत्तरी के कई प्रकाशन हो चुके हैं। श्री बुद्धिसागर

१. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५३ अंक १ नंदगाँव के आनन्दघन पृ० ४९

२. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—आजकल, जून १९४८ 'आनन्दघन का निधन संवत'

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

की बृहद् विवेचना के साथ यह 'आनन्दघन पद संग्रह' नाम से अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडल, बम्बई द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसमें पद संख्या १०० से ऊपर है यद्यपि प्रारम्भ में—जैसा नाम से स्पष्ट हैं—पद संख्या ७२ ही रही होगी। बुद्धिसागर ने मिश्रबन्धु विनोद के आधार पर इसका रचनाकाल सं० १७०५ माना है।

आनन्दघन का भक्तिभाव—भक्ति के सम्बन्ध में आपका विचार है कि भगवान के चरणों में निरन्तर लौ लगी रहे। संसार के सब काम करते हुए भी यदि मन भगवान के चरणों में लगा रहे तभी वह भक्त है। वे गाय, पनहारिन, नट आदि के उदाहरण द्वारा अपनी बात को स्पष्ट करते हैं। गाय के बारे में वे लिखते हैं—गाय कहीं चरे पर ध्यान बछरू पर लगा रहता है।

यथा—उदर भरण के कारणे रे गउवाँ बन में जाँय,
चारो चरैं चहुंदिसि फिरै, बाकी सुरत बछरुआ मांय।

इसी प्रकार, सात पाँच सहेलियाँ रे हिलमिल पाणीड़े जाँय,
ताली दिये खलखल हंसै, बाकी सुरत गगरुआ मांय।

इसी प्रकार शरीर के क्रिया व्यापार भले कहीं हों पर उनके चरणों में एकाग्र रहना चाहिये। भक्ति के लिए लघुता प्रदर्शन की भी आवश्यकता मानी गई है; वे कहते हैं—

निशदिन जोउ तारी बाटडी घरे आवो रे ढोला।
मुझ सरिखा तुझे लाख हैं, मेरे तुहीं अमोला।

अखण्ड सत्य में अडिग विश्वास ही भक्ति का लक्षण है। उसको राम, रहीम, महादेव, पार्श्व, महावीर कुछ भी कहो, आनन्दघन को इससे कोई आपत्ति नहीं है—

यथा, राम कहो, रहमान कहो कोउ कान्ह कहो महादेव री,
पारसनाथ कहो, कोई ब्रह्मा सकल ब्रह्म स्वयमेव री।
भाजनभेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री,
तैसे खण्ड कल्पना रोपित आप-अखण्ड सरूप री।[1]

सच्चे भक्त के हाथों भगवान बिक जाता है—

व्रजनाथ से सुनाथ विण, हाथो हाथ विकायो,
विच को कोउ जनकृपाल, सरन नजर न आयो।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी भक्तिकाव्य पृ० २१० पर उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मधुर भाव और प्रपत्ति की सुन्दर झलक इन पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं :—

मैं आई प्रभु सरन तुम्हारी, लागत नाहिं धको।
भुजन उठाय कहूँ औरन सुं करहुं ज करही सको।

अथवा, वारे नाह संग मेरो, यूं ही जोबन जाय
ए दिन हसन खेलन के सजनी, रोते रैन विताय

या, अब मेरे पति गति देव निरंजन
भटकूं कहाँ-कहाँ सिर पटकूं, कहाँ करुं जनरंजन। आदि

ये सभी उदाहरण निर्गुण भक्तों की अध्यात्मवादी भावधारा के पर्याप्त निकट लगते हैं।

नाथ सिद्धों की तरह वे चेतना को उद्बोधित करते हुए कहते हैं—

क्या सोवे उठ जाग बाउरे।
अंजलि जल ज्युं आयु घटत है, देत पहोरिया घरिय घाउरे।
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र मुनींद्र चल, कोण राजापतिसाह राउरे।
भमत भमत जलनिधि पायके, भगवंत भजन त्रिन भाउनाउरे।
कहा विलंब करे अब बाउरे, तरी भव जलनिधि पार पाउरे।
आनन्दघन चेतनमय मूरति, शुद्ध निरंजन देव ध्याउरे।

कबीर के प्रसिद्ध पद 'अरे ! इन दोउन राह न पाई' के समान वे भी अवधू को सम्बोधित करके कहते हैं—

अवधू नटनागर की बाजी, जाणे न बाभन काजी।
थिरता एक समय में ठाने, उपजे विणसे तबही,
उलट पुलट ध्रुवसत्ता राखे, या हम सुनी न कबही।

इसी में सप्तभंगी न्याय का उदाहरण भी देते हैं, यथा—

एक अनेक अनेक एक पुनि कुंडल कनक सुभावे
जलतरंग घट माटी रविकर अगणित ताहि समावे
है, नाही है, वचन अगोचर, नयप्रमाण सत्तभंगी,
निरपख होय लखे कोइ विरला क्या देखे मतजंगी।
सर्वमयी सरवंगी माने, न्यारी सत्ता भावे।
आनन्दघन प्रभुवचन सुधारस परमारथ सो पावे।[1]

---

१. आनन्दघन पद संग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार वे सत्रहवीं शताब्दी ही नहीं समूचे जैन काव्य जगत के श्रेष्ठ अध्यात्मवादी कवि प्रमाणित होते हैं। आनन्दघन के सन्दर्भ में 'आनन्दघन का रहस्यवाद' नामक पुस्तक जो पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी से प्रकाशित है, द्रष्टव्य है।

आणंदवर्द्धन सूरि – आप खरतरगच्छीय घनवर्द्धन के शिष्य थे। आपने सं० १६७८ में 'पवनाभ्यास चौपइ'[1] की रचना की थी। श्री अगरचन्द नाहटा इनका रचना काल सं० १६०८ मानते हैं।[2] वे इनकी गच्छ-शाखा का ठीक पता-ठिकाना नहीं बताते, किन्तु देसाई इन्हें खरतरगच्छीय मानते हैं जो निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट होता है यथा —

आदि—आदि सगति सेवुं सारदा, कवियण वाणी मति सारदा
करुणासागर मन सारदा, अहनिसि नवि छांडु सारदा।

गुरुपरम्परा— खरतरगच्छ नायक सूरीस, श्री घनवर्द्धन नुं जे सीस,
आणंदवर्द्धन करइ जगीस, बड़ी बात लहिवा जगदीस[२]।

कवि ने रचना काल इस प्रकार बताया है कि सं० १६०८ और १६७८ दोनों अर्थ सिद्ध होते हैं यथा——

संवत सोल अठोतर वरसि, आसोमासि रचिउं मन हरसि,
सुणिवु भणवुं अे महापुरिस, अठम ध्यानि आरूढ़इ तरसि।
कर्म निकाचित जाई दूरि, अनंत भव ऊतरीई पूरि।
अेहवु तत्व न जाणि भूरि, इम कहइ आणंदवर्द्धन सूरि।१२७

भाषा-भाव की दृष्टि से ये साधारण कोटि के कवि प्रतीत होते हैं। आपकी भाषा पर मरुवाणी का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है।

आणंदविजय—आप की एक रचना 'श्री विमलकीर्तिगुरु गीतम्' 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में संकलित है। यह छह कड़ियों की रचना रागधन्याश्री में आबद्ध है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है :——

"शिष्य शाखा प्रतपउ रवि चंदा, जा लगि मेरु ध्रुचंदा वे।
आणंदविजय इम गुण गावइ, चढ़ती दउलति पावइ वे।६।"

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८७
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड १ पृ० १०००-१००१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें कवि ने अपने गुरु विमलकीर्ति का गुणगान किया है। ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में इसे १७वीं शताब्दी की कृति माना गया है। इससे अधिक कृति या कृतिकार का विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है।[1]

आणंदसोम––आप तपागच्छीय हेमविमल सूरि के प्रशिष्य और सौभाग्यहर्ष के शिष्य थे। आपका जन्म सं० १५९८ में और दीक्षा सं० १६०१ में हुई। सं० १६३० में सोमविमल सूरि ने इन्हें सूरिपद प्रदान किया और सं० १६३७ में आपका स्वर्गवास हुआ। रचनायें–– आपने सं० १६२२ में 'स्थूलभद्र स्वाध्याय' की रचना की। इसके पूर्व सं० १६१९ में आपने अपने गुरु सोमविमल सूरि की प्रशस्ति में 'सोम-विमलसूरिरास' लिखा था। इस रास में कवि ने तपागच्छ के संस्थापक आचार्य जगच्चन्द्र से लेकर सोमविमल सूरि तक की विरु-दावली का वर्णन किया है। इस रास से पता चलता है कि त्रंबावती (खंभात) के निवासी मंत्री समधर के वंशज रूपवंत और उनकी पत्नी अमरा दे के आप पुत्र थे। इनका जन्म सं० १५७० में हुआ था। बचपन का नाम जसवंत था। हेमविमल सूरि के प्रवचन से प्रभावित होकर इन्हें विरक्ति हुई; दीक्षा लिया और नाम सोमविमल सूरि पड़ा। सोमविमल सूरि स्वयं अच्छे रचनाकार थे। इन्होंने धम्मिलकुमार-रास, चंपकश्रेष्ठिरास, श्रेणिकरास आदि कई रचनायें की हैं। क्षुल्लककुमाररास सं० १६३३ की रचना होने के कारण इन्हें १७वीं शती का कवि भी माना जा सकता है किन्तु इनका उल्लेख १६वीं शताब्दी में किया जा चुका है। आणंदसोमकृत सोमविमल रास मरु-गुर्जर भाषा की एक उत्तम काव्यकृति है। रचनाकार का सम्बन्ध गुर्जर प्रदेश से अधिक होने के कारण भाषा पर भी गुर्जर-प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यथा —

> 'जपु तपगच्छनु श्रृंगार, जाणो समता रस श्रृंगार।
> श्री सोमविमल गणधार, जपु ज्ञान तणुं भंडार।
> गंगाबेल कण भवतु गर्यालिगणि ताराभवतु,
> रयणायर रयणह संख, करइ गुरुगुण तुही आसंख।'

रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

1. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—'विमलकीर्ति गुरु गीतम्'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'आणंद सोमकला मिली संवत् ओगणीसइ माघ मासिरे।
दसमी गुरुवारि रचिउ, नंदरवारि रे रासि उल्हासि।'

यह रास १५६ कड़ी का है और इसकी रचना सं० १६१९ माघ १० को नंदरवार नामक स्थान पर हुई थी। यह रास 'जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय' में प्रकाशित है[१]।

'स्थूलभद्र स्वाध्याय' अपेक्षा कृत छोटी रचना है। यह ५३ कड़ी की रचना है। यह सं० १६२२ श्रावण सुदी १० को वैराट नामक स्थान में पूर्ण की गई। इसके अन्त की कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं :—

"तपगच्छि निर्मल चन्द्र, श्री सोमविगल सूरिंद,
तस सीस रचिउ सज्झाय, सांभलता (मन) निर्मल थाय।
पृथिवी रस संवत अेह, कुच कएर्ण प्रमाणि जेह।
श्रावण सुदी दसमी दिवसि, वयराटि थुणिउ मन हरसि।
जां तारा गयणि दिणंद, जं सायर मेरु गिरिंद,
तां प्रतपुं जावली सोम, इंम भणइ आणंदसोम।"[२]

आनन्दोदय (आनन्दउदय)—आप खरतरगच्छीय जिनतिलक सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६६२ आसो शुक्ल १३, रविवार को बालोत्तरा में 'विद्याविलास चौपइ' की रचना की। यह ३०७ कड़ी की विस्तृत रचना है। इसके अन्त की कड़ियों में रचनाकाल, रचनाकार और उसकी गुरु परम्परा के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी दी गई है अतः सम्बन्धित पंक्तियाँ आगे उद्धृत की जा रही हैं—

'सुगुरु बचन थी सांभली, पामी गुरु आदेस,
विद्याविलास नरवर तणी चउपइ करी लवलेस।
सोल बासठइ वछरइ, आसू सुदि रविवार,
तेरसदिन अे संथुणी बालोतरा मझार।

गछ चउरासी परगटउ···का पाठान्तर इस प्रकार मिलता है—

"खरतरगछ (सहु) माहइ परगटउ श्री भावहर्ष सुरिंद।
तसु पाटइ उदयउ अधिक ··· ··· ··· मुणिंद।३०६।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १०९

२. जैन गुर्जर कविओ (नबीन संस्करण) भाग २ पृ० ११२-११३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तिम कड़ी श्री जिनतिलक सूरिंद गुरु, पभणइ सीसज एम,
आणंदउदय रिधि बृद्धि सदा श्री संघ हुज्यो खेम ।२०७।[1]

यह पूजा विषयक रचना है। इसमें विद्याविलास के चरित्र के माध्यम से पूजा का माहात्म्य बताया गया है। इसकी भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न मरुगुर्जर है।

ईश्वर बारोट —(पीताम्बर शिष्य)—आप सम्भवतः जैनेतर कवि हैं। आपकी 'हरिरस' नामक कृति का रचनाकाल ज्ञात नहीं है, किन्तु श्री मो० द० देसाई ने इन्हें १७वीं शताब्दी का कवि माना है। 'हरिरस' की अनेक प्रतियाँ विभिन्न जैन ज्ञान भांडारों में उपलब्ध हैं। आप भक्त कवि प्रतीत होते हैं। इस कृति का प्रारम्भ निम्नलिखित पंक्तियों से हुआ है :—

लागु हुं पहिलो लुलै पीतांबर गुरु पाय;
भेद महारस भागवत, पाम्यो जास पसाय

जाड टलै मनक्रम चलै, निरमल थाअे तेह,
भाग होवे तो भागवत सांभलज्यो श्रवणेह ।

अन्त—वंदै इमि ईसर बारोबार, प्रभू मति टालौ मुझ पियार।
भणै इम ईसरदास भगत, मया करि दीनानाथ मुगत।

इसका एक कवित्त नीचे दिया जा रहा है जिसमें कवि ने अलखनिरंजन का स्मरण किया है—

अलष तूज आदेश मातविण तात निपन्नह,
घात जात थर विणा आप आपकी उपन्नह।
एह उभै सिव सकति तूं अलष निरंजण एक हूअ।
घण घणा रूप भांजण धडण, अलष पुरुष आदेश तुअ। १८३।[2]

श्री देसाई ने अपनी प्रति से इसका पाठान्तर भी दिया है। उस प्रति की अन्तिम पंक्ति देखिये—

"कवि ईसर हररस कह्यौ श्लोक तीन सौ साठ,
महा दुष्ट पावत जुगत नित करत जे पाठ।"

इसकी १८वीं शताब्दी की लिखित अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड १ पृ० ८८४-८८५
२. वही भाग ३, खंड २ पृ० २१५०-५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तमचंद—आप आंचलगच्छीय कल्याणसागर के प्रशिष्य एवं श्री देवसागर के शिष्य थे, आपने सं० १६९५ आषाढ़ शुदी में 'सुनन्द रास' की रचना की। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ :—

शक्तिदाता समरुं सदा परउपगारी प्रधान,
ध्यान वलि ध्याऊं वली निरुपम लब्धि निधान।
सुनंदा ह केरी वारता सांभली सास्त्र मझारि,
ते भाषाबन्धि भणिसि हूं सुण्यो चित्तविचारि।

× × ×

इणिपरि साधु तणा गुण गावि, सुमति सफल कहावि जी।
साधु सुनंद सु सुहावि, नामि नवनिधि पाविइ जी।

रचनाकाल—संवत सोल पंचाणुआ वरसि, आषाढ़ सुदि हरसि जी,
श्री अंचलगछि विराजि, श्री कल्याणसागर सूरिराजिजी।

अन्तिम पंक्तियाँ—वाचकवंस विभूषण वारु श्री देवसागर भवतारु जी,
तास सीस मनि भावि उत्तमचंद गुण गावि जी।३५८।[1]

इस रास में साधु सुनंद का चरित्र चित्रित किया गया है। भाषा सरल एवं काव्यत्व सामान्य कोटि का है।

उदयकर्ण (उदो या उदउ)—आप पार्श्वचन्द्र के शिष्य थे। आपकी दो रचनायें (१) हरिकेशीबल चरित्र (गाथा ६९ सं० १६१०) और (२) 'सनत्कुमाररास' (८४ कड़ी सं० १६१७ श्रावण शु० १३) प्राप्त है। सनत्कुमाररास का रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

सोलहसइ सतरोतरे, श्रावण सुदि तेरसि अवधारि तु,
उत्तराज्झयण संक्षेप थी, विरति (चरित) थकी कीधो उधार तु।८३।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है :—

'सुखकर सतीसर नमू, सद्गुर सेव करउ निसदीस तु,
तास पसाइ अठासरउ, सिद्धि सकल मननी सजगीस तु।१।

सनतकुमार सुहामणउ उतिम गुण मणि न उ अहिणणुं तु,
चक्रीसर चउत्थउ सती, चतुरपणह मोहइ सयराणं तु।२।

इसके अन्तिम छंद में कवि ने अपने गुरु का स्मरण किया है :—

1. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड पृ० १०५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'श्री पूजि पासचंद पाओ नमी, हरष धरीओ रचीयउ रास तु,
ऋषि ऊदउ कहइ जे भणइ, तिहां घर मंगल लील लच्छि
विलास तु ।८४।'[1]

इसकी सं० १६२८ में श्राविका लीला के पठनार्थ यति जयकरण द्वारा लिखित प्रति प्राप्त है। इसकी अन्य प्रतियाँ भी विभिन्न ज्ञान-भंडारों में सुरक्षित हैं।

उदयमंदिर—आप आंचलगच्छीय कल्याणसागर सूरि के प्रशिष्य एवं पुण्यमंदिर के शिष्य थे। आपने सं० १६७५ कार्तिक शु० १३ सोमवार को सेखाटपुर में 'ध्वजभुजंग आख्यान' नामक रास की रचना की। रचनाकाल का उल्लेख कवि ने इन पंक्तियों में किया है—

'संवत सोल पंच्योतरे रे, कारतिक मास मझारि रे,
सुद तेरस अति उजली रे, सोम सुतन भलोवार रे।
विधिपक्ष गछ गुरु राजीओ रे, सोहे निर्मल नाण रे,
दिन दिन महिमा दीपतो रे, जिम उदयाचले भांण रे।

× × ×

तास पक्ष पंडितबरु रे, पुन्यमंदिर मुनिराय रे,
विनइ तेहना वीनवे रे, उदयमंदिर धरी साय रे।
रास रच्यो खंते करीरे, सेरवाटपुर मांहि रे,
नरनारी जे सांभले रे, तस होई अधिक उछाहि रे।'[2]

रचना साधारण, भाषा सरल मरुगुर्जर है। इसमें ध्वजभुजंग का आख्यान दिया गया है।

उदयरत्न—आप वि० १७-१८वीं शताब्दी के कवि हैं। आप जिन-सागर सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६९७ में 'चित्रसेन पद्मावती चौपई' और सं० १७२० में 'जंबू चौपई' की रचना की। आप मुख्य रूप से १८वीं शताब्दी के कवि हैं। चूंकि एक रचना १७वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में लिखित उपलब्ध है इसलिए यहाँ उसका उल्लेख कर

---

१. डा० क० च० भारिल्ल—राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों की ग्रन्थ सूची ५वाँ भाग पृ० ६४४-६४५ और जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड १ पृ० ६८९

२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४९०-९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया गया है।[१] अन्य विवरण १८वीं शताब्दी में ही देना उपयुक्त होगा।

उदयराज—आप खरतरगच्छीय भावहर्षी शाखा के श्रावक श्री भद्रसार के पुत्र थे। आपकी माता का नाम हरषा और पत्नी का नाम पुरवणि था, इनके पुत्र का नाम सूदन था। इनका जन्म सं० १६३१ में हुआ था। सं० १६३१ से लेकर सं० १६७६ तक इनकी उपस्थिति की जानकारी मिलती है। राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग २ के पृ० १४७ पर इनका तथा इनकी रचनाओं का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। 'भजनछत्तीसी' और 'गुणबावनी' इनकी दो प्रसिद्ध रचनायें प्राप्त हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने इनके करीब ५०० दोहों का भी उल्लेख किया है। इनके नीतिविषयक दोहे राजस्थान में लोकप्रिय रहे हैं। भजनछत्तीसी से पता चलता है कि जोधपुर के राजा उदयसिंह आपके प्रशंसक और आश्रयदाता थे। संभावना है कि इनका जन्म स्थान बीकानेर और कर्मस्थान जोधपुर रहा होगा। भजनछत्तीसी की रचना मांडावइ नामक स्थान में सं० १६६७ फाल्गुन वदी १३ को हुई। मांडावइ जोधपुर में स्थित है, इसलिए अनुमान होता है कि वे तब तक जोधपुर आ चुके थे। इसमें कवि ने अपना परिचय दिया है और लिखा है कि 'भजन-छत्तीसी' की रचना उन्होंने ३६ वर्ष की उम्र में सं० १६६७ में किया। इसलिए इनका जन्म सं० १६३१ ठीक लगता है। इसमें उन्होंने अपने एक भाई सूरचन्द्र का भी नामोल्लेख किया है। इसका विषय इसके नाम से ही स्पष्ट है। गुण-बावनी की रचना कवि ने सं० १६७६ वैशाख शुक्ल १५ को ववेरेई में की। इसे सुभाषितबावनी या गुणभाषा भी कहते हैं। इसमें अध्यात्म और निर्गुण पर सुभाषित छंद हैं। इनका भी उपनाम उदो था जैसा कि निम्नपंक्तियों से प्रकट होता है :—

शिव शिव कीधां किस्यूं, जीता ज्यों नहीं काम, क्रोध, छल,
काति नहाया किस्यूं जो नहीं मन मांझि निरमल।

× × ×

कूगउ किस्यूँ मैले किए, ज्यों मनमांहि मइलो रहइ।
घरबार तज्या किस्यूं, अणबूझा 'उदो' कहइ।"[२]

---

१. श्री अ० च० नाहटा—परम्परा पृ० ८९

२. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैनभक्ति काव्य पृ० १५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना का आदि और रचनाकाल इस पंक्तियों में देखिए—

आदि　'ओंकाराय नमो अलख अवतार अपरंपर,
गहिन गुहिर गंभीर प्रणव अख्यर परमेसर।
त्रिएह देव त्रिकाल त्रिएह अक्षर त्रैधामय,
पंचभूत परमेष्ठि पंच इन्द्री पराजय।
धुरि मंत्र यंत्रइ धंकारि धुरि, सिध साधक भाषंति सह,
भद्रसार पयंपइ गुर संमत उदेपुत्र ओंकार कहि। १।

रचनाकाल　'गिर आठ अचल ब्रह्मा विशन, ईश अचल जां लगि इला,
उदैराज अचल तां बावनी, गुण प्रकाश चढ़ती कला।
रस मुनि षट सिस (शशि) समय करी बावन्नी पूरी,
बइसाखी पूर्णिमा वसंत रितु ताई सनूरी।[1]

इनके अतिरिक्त आपकी अन्य रचनायें भी प्राप्त हैं जिनमें 'वैद्य-विरहिणीप्रबन्ध' तथा चौबीस जिन (सवैये) उल्लेखनीय हैं। वैद्य-विरहिणीप्रबन्ध में कुल ७८ दोहे हैं। विरहज्वर से पीड़ित नारी व्रजराजरूपी वैद्य के पास जाती है और अपना दुख निवारण कराती है। अन्त में कवि ने लिखा है :—

"अपने अपने कंत सूं रसवास रहिया जोइ,
उदैराज उन नारि कूं, जमे दुहाग न होइ।
जां लगि गिरि सायल अचल, जांम अचल ध्रूराज,
तां रंग राता रहै, अचल जोड़ि व्रजराज। ७८।"

इसमें कृष्ण भक्ति काव्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इन्होंने दोहे, कवित्त, सवैये आदि व्रजभाषा के प्रिय छन्दों का ही अधिक प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं में नीति, शृङ्गार और धर्म-दर्शन आदि विषयों की विविधता महत्वपूर्ण है। वैद्यविरहिणीप्रबन्ध की एक प्रति अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है।[2]

'जिन चौबीसी' में २४ तीर्थंकरों की स्तुति है। इस प्रकार कवि ने जैन और वैष्णव आराध्य देवों को आधार मानकर विविध भाव-युक्त नाना छंद-प्रबन्धों में कई सुन्दर रचनायें प्रस्तुत की हैं। इसलिए वे १७वीं वि० के जैन श्रावक कवियों में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं।

१　जैन गुर्जर कवियो भाग ३ खंड १ पृ० ९७५-७६

२. श्री अगर चन्द नाहटा—राजस्थानी का जैन साहित्य पृ० २७३

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

इनकी भाषा मरु प्रधान मरु-गुर्जर है। मरुवासी होने के कारण मरु की प्रधानता स्वाभाविक है, किन्तु भाषा बोधगम्य, प्रवाहयुक्त एवं सुगम है।

उदयसागर--आप खरतरगच्छीय पिप्पलक शाखा के साधु सहजरत्न के शिष्य थे। आप इस शताब्दी के उत्तम गद्यकारों में गिने जाते हैं। आपने सं० १६५७ में 'क्षेत्रसमासबालावबोध नामक भाषा टीका की रचना उदयपुर में की। इनकी लिखी लोकनाल वार्तिक भी प्राप्त है। क्षेत्रसमास की रचना आपने मंत्री धनराज के पुत्र गंगा की अभ्यर्थना पर की थी।[1] आप संस्कृत के भी ज्ञाता थे और संभावना है कि 'वाग्भट्टालंकार टीका' के लेखक भी शायद यही उदयसागर थे।[2]

उदयसागर सूरि--आप विजयगच्छ के विजयमुनि की परम्परा में विमलसागर सूरि के शिष्य थे। इनका रचनाकाल अधिकतर १८वीं शताब्दी में पड़ता है, अतः इनका विवरण आगे के लिए छोड़ दिया जाता है।

ऊजल कवि--आप तपागच्छीय विजयसेन सूरि के श्रावक शिष्य थे। आपने सं० १६५२ वैशाख ७ गुरुवार को राजसिंहकथा (नवकार रास) की रचना की। इसमें महामंत्र नवकार की महिमा का वर्णन किया गया है यथा—

काल अनादि सास तो महामंत्र नवकार,
धुरि जपीअे जिनवर कहे, चउदांपुरनसार।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

'चंद्रवयण मृगलोयणी पोइण जिसु सुकमाल,
मूँगफली कर ऊंगली, सब नख रंग रसाल।'

अंगुलियों की मूँगफली से उपमा अनुपम है। रचनाकाल निम्न पंक्तियों में देखिए--

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा--राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २२९-२३०
२. वही, पृ० ७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"संवत सोल वरस वर बावन वैशाखी सातमि गुरु दिन,
षट् नवकार कथानु ं वरी भणयो कवि रचाउ खप करी।
तपगछ अंबर दिनकर हाय, श्री विजयसेन गुरु प्रणमी पाय,
तस श्रावक ऊजल इम भणे, श्री नवकार जोऊ भांमणे।"

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

"श्री नवकार कथा महामंत्र, धन्य पुरुष जे समरे अंति,
जे जे बोल कहिया कवि सार, ते श्री सरसति ने आधार।"[1]

कवि की भाषा शैली में काव्योचित चमत्कार एवं माधुर्य भी पाया जाता है। उपदेशपरक साहित्य को भी कवि ने अपनी उक्तियों से सरस बनाने का प्रयत्न किया है।

ऋषभदास (श्रावक)—आपके पिता का नाम सांगण था, जो खंभात निवासी बीसा पोरवाड़ वणिक थे। आपकी माता का नाम सरूपादे था। आपके पितामह महिराज थे जिनका मूलस्थान वीसलनगर था, वहाँ से चलकर सांगण खंभात आये और यहाँ व्यापार से खूब धन अर्जित किया। कवि ऋषभदास ने अपनी रचनाओं में खंभात नगर का विशेष वर्णन किया है जिससे १७वीं शताब्दी में खंभात और उसके आसपास की यथार्थ स्थिति का परिचय मिलता है। कवि ने तत्कालीन जनस्थिति, राजस्थिति और लोगों के रहन-सहन का सुन्दर वर्णन किया है। खंभनगर, त्रंबावती, भोगावती, लीलावती, कर्णावती और ऋषभनगर आदि विभिन्न नामों से कवि ने अपनी विभिन्न रचनाओं में खंभात का सस्नेह स्मरण किया है। खंभात नगर विशेषतया माणेक चौक से सम्बन्धित अनेक जनश्रुतियों और लोकवार्ताओं को भी यथास्थान अपनी रचनाओं में उन्होंने वर्णित किया है। उनकी पत्नी सुलक्षणा वस्तुतः सर्वगुण सम्पन्न सुलक्षणा थीं। भाई-बहन, पुत्र-परिवार से वे सुखी थे। उन पर लक्ष्मी के साथ सरस्वती की भी कृपा थी। वे शास्त्रानुकूल श्रावकाचार का पालन करते थे। जिन मंदिर में दर्शन-पूजन; शत्रुंजय, शंखेश्वर, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा और गरीब छात्रों की सहायता आदि धर्मकार्य निष्ठापूर्वक करते थे। उन्होंने अपने पूर्व कवियों का भी अपनी रचनाओं में बड़े आदर के साथ स्मरण किया है जिससे अनेक ऐतिहासिक महत्त्व की सूचनायें उपलब्ध होती हैं।

१. जैन गुर्जर कवियो भाग ३ खंड १ पृ० ८१७-८१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनायें—ऋषभदास श्वेताम्बरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री विजयसेनसूरि के शिष्य थे। उन्होंने विजयदेवसूरि, विजयतिलकसूरि और विजयानन्दसूरि का भी गुरुवत् सम्मानपूर्वक स्मरण किया है। आपकी रचनाओं का संसार बड़ा विस्तृत और बहुरंगी है। संस्कृत रचनाओं के आधार पर आपने अनेक अलंकृत रचनायें की हैं। आपका मौलिक साहित्य भी विशाल एवं बहुविध है। आपने रास, स्तवन, स्वाध्याय आदि नाना साहित्यरूपों में सुन्दर साहित्यसर्जना की है। ऋषभदेवरास, व्रतविचाररास, सुमित्रराजर्षिरास, स्थूलिभद्ररास, नेमिनाथ नवरसो, अजाकुमार रास, कुमारपाल रास, जीवविचार रास, नवतत्व रास, भरतबाहुबलि रास, क्षेत्रप्रकाश रास, समकितसार रास, उपदेशमाला रास, हितशिक्षा रास, जीवतस्वामी रास, पूजाविधि रास, श्रेणिक रास, कयवन्ना रास, हीरविजयसूरि रास, मल्लिनाथ रास, अभयकुमार रास, रोहणियामुनि रास, वीरसेन रास, श्राद्धविधि रास, समयस्वरूप रास, देवगुरुस्वरूप रास, शत्रुंजयरास, आर्द्रकुमार रास, पुण्यपशंसा रास, हीरविजयसूरि बारबोल रास आदि प्रायः पचास के आसपास केवल रास आपने लिखे हैं। इनके अलावा गौतम प्रश्नोत्तर स्तवन, आदीश्वर आलोयणाविज्ञप्तिस्तव, महावीर नमस्कार, आदीश्वर विवाहलो, २४ जिन नमस्कार, शत्रुञ्जयमंडण श्री ऋषभदेव जिनस्तुति, धूलेवा श्री केशरिया जी स्तव आदि अनेक स्तव और स्तुतियाँ लिखी हैं। मान पर सज्झाय जैसी सैकड़ों छोटी-छोटी रचनायें भी लिखी हैं। आपका रचनासंसार बृहद् है और सभी रचनाओं का परिचय संक्षेप में भी देने के लिए एक अलग ग्रन्थ की आवश्यकता होगी। फिर भी इस महान् कवि के भाव, भाषा, शैली, काव्यत्व और वर्णन क्षमता आदि का यथासंभव संकेत करने की अवश्य चेष्टा की जायेगी। ये मरुगुर्जर भाषा के महान् कवि प्रेमानन्द और अक्खा आदि की कोटि के कवि हैं किन्तु साहित्येतिहासों में जितना महत्वपूर्ण स्थान हीरविजयसूरि या जिनचन्द्रसूरि को दिया दिया गया है उतना इन्हें नहीं। जैन साहित्येतिहासकार साहित्येतर विषयों विशेषतया धर्म को साहित्य में भी वरीयता देते प्रतीत होते हैं। यह एक विशेष दृष्टिकोण है जिससे समग्र जैनसाहित्य का वास्तविक मूल्यांकन प्रभावित हुआ है। आगे इनकी कुछ मुख्य कृतियों का परिचय-उद्धरण दिया जा रहा है।

ऋषभदेवरास—(११८ ढाल, १२७१ कड़ी सं० १६६२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि 'सरसति भगवति भारती, ब्रह्माणी करि सार,
वाघेस्वरी वदनि रमि, जिम हुइ जयजयकार।'

रचनाकाल—(सोल संवत्सर) व्याहुठइ चौत्रा,
वलीय गुरुवार भलीउ पवित्रा।
नगर त्रंबावती अत्यहइं छइं सारी,
इन्द्रजस्था नर पद्मनी नारी।

नगरवर्णन—वाहण वखार्यं नर बहु व्यापारी,
सायर लहेर सोभत जल वारी।
तपनत्तर पोलीउ कोटदरवाजा,
साहा जहांगीर जास नगर नो राजा।
प्रासाद पच्चासीअ अतिहिं घंटाला,
ज्यांहा वितालिस पोषधशाला।
अस्युं त्रंबावती बहुअ जनवासो,
त्याहां मिंजोडीओ रीषभनो रासो।'

आत्मपरिचय—संघवी सांगण सूततनसारो,
द्वादस वरतनो तेह धरनारो।
दान नइं सील तप भावना भावइ,
अरीहंत पूजइ गुण साधुना गावे,
सांगण सूत पूरि मन तणी आसो,
रास रचतो कवी रीषभदासो।

इसमें ऋषभचरित के पूर्वकर्त्ता मुनि हेम का स्मरण किया गया है, यथा—

'ऋषभचरीत कीउं मुनी हेमि, नरखीअ रास रचीओ बहुप्रेमि।'[1]

इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का चरित्र वर्णित है जिसके प्रति श्रावक कवि ऋषभदेव के मन में विशेष आदर एवं श्रद्धाभाव था।

'व्रतविचाररास' अथवा द्वादश व्रतविचाररास (८१ ढाल, ८६२ कड़ी, सं० १६६६ कार्तिक कृष्ण १५, दीपावली, त्रंबावती)

---

१. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग ३ पृ० २३-७९; भाग १ पृ० ४०९-५८; भाग ३ पृ० ९१६-३३ तथा भाग ३ खंड २ (प्रथम संस्करण) पृ० १५१७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि--'पास जिनेस्वर पूजीइ, ध्याइइ ते जिनधर्म,
नवपद धुरि आराधिइ, तो कीजइ स्यभु कर्म्म ।'

इसमें श्रावकों के पालन योग्य बारह व्रतों का वर्णन किया गया है--

बार व्रत श्रावक तणां मिं गाया मतिसार,
कवी को दोष न देसज्यु, हूं छूं मूढ गंवार ।

इसमें कवि ने हीरविजयसूरि और विजयसेनसूरि से अकबर की भेंट का उल्लेख किया है यथा--

'जे रिषि मुनीवर माँ अति मोटो, वीजइसेन सूरिराय जी,
मुझ अंगणि सहिकार ज फलिउं श्रीगुरुचर्ण पसाई जी ।
x x x
जेणइ अकबर नृपतणी सभामां, जीत्युवाद वीचारी जी ।'[1]

रचनाकाल-- सोलसंवछरिजाणि वर्ष छासठि
कातिअ वदि दीपकदाढ़ो,
रास तव नीपनो आगमिं ऊपनो,
सोय सुणतां तुम पुण्य गाढ़ो ।

इसमें भी कवि ने खंभात नगर और अपने परिवार का वर्णन किया है ।

'सुमित्रराजर्षिरास'--(४२५ कड़ी, सं० १६६८ पौष शुक्ल २, गुरुवार, खंभात)

आदि--श्री जिनधरम प्रकासीओ, स्वामी ऋषभ जिणंद,
दान सील तप भावना, सुणतां अति आणंद ।
दान सुपात्ते देअतां किणिपाम्यो सुखवास,
राजा सुमित्र सुखीओ थयो, सुणयो तेहनो रास ।

रचनाकाल--संवत सोल अडसठयो जसि, पोस सुदि दिन बीजइ तसि,
गुरुवारि कीधो अभ्यास, त्रंबावती मां गायो रास ।"

'स्थूलिभद्ररास' (७३२ कड़ी, सं० १६६८ दीपावली, कातिक अमावस्या, शुक्रवार, खंभात)

आदि--ब्रह्मसुतानी पूजा करूं सारद नाम ऋदे मांहां धरूं ।
गुण गाऊं माता तुम तणां, बोल आपे मूझ सोहामणा ।
स्थूलिभद्र नो गास्यु रास, तेणि माता मुख पूरे वास ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (द्वितीय संस्करण) पृ० २३-७९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें विजयसेन और विजयदेव सूरि को सादर स्मरण किया गया है।

रचनाकाल—संवत सोल अठसठया वरसे, काती वदताहां सार रे,
दीपक दिन दीवाली केरो, स्युं कर मल्यो ताहां सार रे।[1]

इस रास के भी अन्त में त्रंबावती नगरी और अपने पिता संघवी सांगण का कवि ने उल्लेख किया है।

नेमिनाथनवरसो अथवा स्तवन अथवा ढाल—(७२ कड़ी, सं० १६६७ पौष शुक्ल २, ऋषभनगर, खंभात)

आदि—सरसति सामिनी पाय नमी जी गास्युं नेम जिणंद,
समुद्रविजय कुल (पाठान्तर जादवकुलमंडण) ऊपनो जी,
प्रगट्यो पूनिमचंद, सुणो नर नेम समो नहि कोय।

इसका रचनाकाल सं० १६६७ के अलावा १६६०, १६६२ और १६६४ भी माना जाता है क्योंकि इससे सम्बन्धित पंक्तियों के कई पाठान्तर मिलते हैं यथा—

संवत सोल सडसठा मांहि पोस मास सुद बीज उच्छाह;
या वँदो वँदो नेमनाथ वावी समोरे, संवत सोल चोसंठे……
या संवत सोल सोसठ……………………इत्यादि।[2]

चैत्य आदि संग्रह भाग ३ पृ० १५१-१५७ पर यह रचना प्रकाशित है।

अजाकुमार रास—(५५७ कड़ी सं० १६७० चैत्र शुक्ल २, गुरु, खंभात)

आदि—सकल जिनवर सकल जिनवर पाय प्रणमेव।
वाघेस्वरी वेगें नमुं सकल कवीनी जेह माय,
तु मुख मारे आवजे सयल काम जिम सिद्धथाय।

इसमें विजयसेन सूरि की वंदना की गई है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोल सीतेर्यु जसई चैत्री शुदि दिन बीजइ तसि,
गुरुवारि कीधो अभ्यास, त्रंबावती म्हा गायु रास।
प्रागवंश वडो जो खास, सांगणसूत कवी ऋषभदास।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (द्वितीय संस्करण) पृ० २३-७९।
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४०९-५८; भाग ३ पृ० ९१६-२३ तथा भाग ३ खंड २ प्रथम संस्करण पृ० १५१७ और भाग ३ द्वितीय संस्करण पृ० २३-७९।
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारपालरास—(४६९९ कड़ी सं० १६७० भाद्र शुक्ल २ गुरु, खंभात)

आदि—सकल सिद्ध चरणें नमुं, नमुं ते श्री भगवंत;
नमुं ते गणधर केवली, नमुं ते मुनिवर संत,
समरुं सरसती भगवती, समरां करे जे सार;
हुं मूरष मति केलबुं ते ताहारे आधार।

रास में कवि ने अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियों लावण्य, लीबो, षीमो, हंसराज, वाछो, देपाल, माल, हेम, साधुहंस, समरो, सुरचन्द्र आदि का ससम्मान उल्लेख किया है। लेखक ने तपागच्छीय विद्वान् सोमसूरि का विशेष रूप से स्मरण किया है जिनका ग्रन्थ 'कुमारपाल' प्रस्तुत 'कुमारपालरास' का आधार है। इस रचना का ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि इसमें जैनधर्म के उन्नायक गुजरात के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल का चरित्र चित्रित है।

रचनाकाल—"सोल संवत्सरि जाण वर्ष सीत्यरी,
भद्रवा सुदि सुभ बीजा सारी,
वार गुरु गुण भर्यो, राशि ऋषभइ कर्यो,
श्री गुरु साथइं बहु बुद्धि विचारी।"[1]

इस रास के अंत में भी खंभात नगरी, संघवी सांगण का अन्य रासों की तरह वर्णन किया गया है। यह रास आनन्दकाव्यमहोदधि मौक्तिक आठ में प्रकाशित है।

जीवविचारास—(५०२ कड़ी, सं० १६७६ आसो शुक्ल १५, खंभात)

आदि—सरस वचन द्यो सारदा, तुं कवियण नी माय,
तुं आवी मुझ मुख्य रमेय, मम चिंत्युं थाय।

कवि ऋषभदेव का प्रायः वन्दन करता है यथा—

जिणें ध्यान मति निर्मली सफल हुइ अवतार,
आदिनाथ चरणें नमी कहिस्युं जीव विचार।

इस रास में विजयानंद सूरि का उल्लेख हीर पट्टोधर के रूप में हुआ है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४०९-५८; भाग ३ पृ० ९१६-२३ तथा भाग ३ खंड २ (प्रथम संस्करण) पृ० १५१७ और भाग ३ (द्वितीय संस्करण, पृ० २३-७९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त—वीरवचन हइआ मांहि धरता मुझ मनि अति आनंदो जी,
जीवविचार कह्यो मिं विवरी फलीउ सुरतरुकंद जी।
भणतां गुणतां सुणतां संपदि उच्छव अंगण्ये आज जी,
जीव विचार सुणी जिउं राखइ तेहनि शिवपुर राज जी।

रचनाकाल—संवत सोल छयोत्येर्या वरषे, आसो पूनिमी सार जी,
खंभनयर मांहि नीपाउ, रचीओ जीवविचार जी।

नवतत्वरास (८११ कड़ी सं० १६७६, दीपावली, कार्तिक कृष्ण, रविवार, खंभात)

आदि—आदि धर्म जिणइ उधर्यो नाभिराय सुत्त जेह,
मरुदेवी पूत ज भलो सही संभारु तेह,
ऋषभ ज नाम जग रुडउ कनकवर्ण जस काय,
पूर्व लाख चउरासीआं आदीश्वर नु आय।

गुरुपरंपरान्तर्गत हीरजी सूरि, विजयसेन सूरि और विजयानन्द सूरि की वंदना की गई है।

अंत—रास नवतत्वनो अेह सुहामणो नगर त्रंबावती मांहि कीधो,[1]
शास्त्र बहु सांभली अरथ लीधावली,
वचन जिह्वातणो फलही लीधो।"

भरत वाहुबलि (भरतेश्वर) रास (१११६ कड़ी, ८४ ढाल, सं० १६७८ पौष शुक्ल १०, गुरुवार)

आदि—सार वचन द्यो सरस्वती तुं छं ब्रह्मसुताय,
तुं मुझ मुख आवीरमे जिममति निर्मल थाय।
तुं भगवती तुं भारती ताहरा नाम अनेक,
हंसगामिनी शारदा तुजमा घणो विवेक।

रचनाकाल—संवत सोल अठ्योतरो आखु प्रगट्यो पोस ज मास,
दशमि तणो दाहडो अति उज्वल,
पहोती मन तणी आसरे।
गुरुवारे मे रास निपायो अश्विनी तिहां नक्षत्र,
संघवी ऋषभदास अेम भाषे भरत नुं नाम पवित्र रे।"[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (द्वितीय संस्करण) पृ० २३-७९।
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना 'आनंदकाव्य महोदधि' मौक्तिक तीन में प्रकाशित है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के दोनों पुत्रों का चरित्र वर्णित है।

क्षेत्रप्रकाशरास –(५८२ कड़ी सं० १६७८ माधव मास शुक्ल २ गुरुवार, खंभात)

रचनाकाल—आज आशा फली रे जेह मिं क्षेत्रप्रकाश कीधो,
संवत सिद्धि मुनि अंग विश्वंभरा,
मान बहुमान स्यु सो अे प्रसीधो।
माधव मास मांहि पणि नीपनु,
नीरमली बीज नि 'गुरुहवारे'
रासवर क्षेत्रप्रकाश मिं जोडीओ,
नगर त्रंबावती सोय मझारे।"

'समकितसार' (८७९ कड़ी, सं० १६७८ ज्येष्ठ शुक्ल २, गुरुवार, खंभात)

आदि—आशा पोहोती मुझ मन केरी, रचीउं समकितसार जी,
अक्षर पद गाथा जे जाणू, ते कवीनो आधार जी।

रचनाकाल—वारण वाडव रस ससी संख्या, संवछरनी कहीइ जी,
स्त्रीपति वृध सहोदर सगयणि, मास मनोह लहीइ जी
प्रथम पक्ष चन्द्रोदय दूतीआ गुरुवारि मंडाणा जी,
त्रंबावती मांहि नीपाओ विबुध करइ परमाण जी।"[1]

'बारआरास्तवन' अथवा गौतम प्रश्नोत्तरस्तव (७६ कड़ी सं० १६७८ भाद्र शुक्ल २, त्रंबावती) इस रचना में 'मनोहर हीर जी', सुरसुन्दरी कही शिरनामी' आदि तर्जों पर १८ ढाल हैं। रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

"भल स्तवन कीधूं नाम लीधूं गौतम प्रश्नोत्तर सही,
संवत सिद्धि मुनि अंग चंदि भादव सुदि द्वितीया तही।"

यह कृति 'चैत्य आदि सज्झाय माला ३, पृ० ११७-१२५ पर प्रकाशित है।

उपदेशमालारास—(६३ ढाल, ७१२ कड़ी सं० १६८० माहा सुदी १०, गुरुवार)

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (द्वितीय संस्करण) पृ० २३-७९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि—वेणा वंश बजावती, धरती पुस्तग हाथि;
ब्रह्मसुता हंसि चढ़ी बहु देवी तुम साथ।

रचनाकाल—दिग आगलि लइमिंडु धरो कला सोच ते पाछल करो,
कवण संवच्छर थांइ वलि त्यारइ रास कर्यो मनरली।

कवि ने इसी बुझौवल पद्धति पर गुर्जर देश, खंभात नगर, संघवी सांगण का भी विवरण दिया है।

हितशिक्षारास (कड़ी १८६२, सं० १६८२ माधव शुक्ल ५, गुरुवार, खंभात)

इस रास का सारांश शेठ कुंवर जी आनंद जी ने 'जैनधर्म प्रकाश' में क्रमशः छापा था जो बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इस रास में नयसुन्दर, समयसुन्दर और विनयप्रभ आदि पूर्व कवियों की लोकप्रिय ढालों का प्रयोग किया गया है तथा कवि ने इसे अनेक सुभाषितों से अलंकृत किया है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

इसमें सरस्वती की वंदना १५-१६ छंदों तक की गई है। आदि और अन्त के पद्य क्रमशः दिए जा रहे हैं—

कासमीर मुख मंडणी, भगवती ब्रह्म सुताय,
तुं त्रिपुरा तु भारती, तुं कविजन नीमाय।
तुं सरसति तुं शारदा, तुं ब्रह्माणी सार,
विदुषी माता तुं कही तुझ गुण नो नहिपार।'

x x x

गुण ताहरा नवि लाधे पार, तुं करजे कवि जन नी सार
आज हुओ हैडे उल्लास, नीपाऊं हित शिक्षा रास।

रचनाकाल—युगल सिद्धि अने ऋतु चंद जुओ संवत्सर धरी आनंद,
माधव मास उज्वल पंचमी, गुरुवारे मति होये समी।
मे गायो हित शिक्षारास, ब्रह्मसुतामे पूरी आस,
श्री गुरुनामे अति आनंद, वंदू विजयसेन सूरींद।[1]

इसका प्रकाशन भीमसिंह माणक ने किया है।

जीवतस्वामीरास—(२२३ कड़ी सं० १६८२ वैशाख कृष्ण ११, गुरुवार, खंभात)।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (द्वितीय संस्करण) पृ० २३-७९।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

यह रचना रायपसेणी और भगवती सूत्र के आधार पर की गई है। इसमें जीवतस्वामी जिणंद की पूजा का माहात्म्य बताया गया है। रचना काल इस प्रकार कहा गया है—

बाहुदिग् दरिसण नि चंद जूओ संवछर मान आनंदि,
मास भलो वैशाख वखाणु वदि अग्यारस निरमल जाणु ।[1]

पूजाविधिरास— (५६६ कड़ी, सं० १६८२ वैशाख शुक्ल ५, गुरुवार खंभात)।

रचनाकाल —संवत बाहु सिद्धि अंग चंद, शब्द आणतां रंग,
वहइश्याख शुदिइ जल पंचमी, गुरुवारि मति हुइ समी।
जोइयो मिं पूजाविधिरास, ब्रह्म सुताइं पूरी आस,
भाषइ कविता ऋषभदास, सुणतां घरि कमला नो वास।[2]

कवि ने प्रायः सभी रचनाओं में अपने पिता संघवी सांगण, पोरवाल वंश और जन्म स्थान खंभात का अनिवार्य रूप से वर्णन किया है। इसलिए सम्बन्धित पंक्तियों को बार-बार दुहराने की आवश्यकता नहीं समझी गई, केवल रचनाकाल और दो चार अन्य पंक्तियाँ भाषा और काव्य शैली के उदाहरणार्थ उद्धृत की जा रही हैं, अन्यथा विवरण के अति विस्तृत हो जाने का भय है जिसे स्थान की सीमा को देखते हुए संतुलित रखना परम आवश्यक है।

श्रेणिकरास—(सात खण्ड, १८५१ कड़ी, सं० १६८२ आसो शुक्ल ५, गुरुवार, खंभात)

मगध सम्राट बिम्बसार (श्रेणिक) और भगवान महावीर का सम्बन्ध विख्यात है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

'संवत बाहु दीग दरिसण चंदइ मास आसो नरखोज आनंदि,
ऊजली पांचमनि गुरुवारो श्रेणिक रासनुं कीध विस्तारो।'

सं० १६८२ में ही हितशिक्षारास, जीवतस्वामीरास, पूजाविधिरास भी लिखे गये। ये चारों ही काफी बड़ी-बड़ी रचनायें हैं। आश्चर्य होता है कि एक वर्ष के भीतर इतने छंद कवि कैसे जोड़ लेता था? कयवन्नारास २८४ कड़ी सं० १६८३; मल्लिनाथ रास २९५ कड़ी सं० १६८५ पौष शुक्ल १३ को लिखी अपेक्षाकृत छोटी-छोटी रचनायें हैं।

---

१. जैन गुर्जर कवियो भाग ३. (द्वितीय संस्करण) पृ० २३-७९
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके अलावा समयस्वरूपरास ७९१ कड़ी, देवगुरुस्वरूप रास ७८५ कड़ी; शत्रुंजय उद्धार रास; श्राद्धविधिरास; आर्द्रकुमार रास ९७ कड़ी; पुण्यप्रशंसा रास ३२८ कड़ी आदि विविध छोटी-बड़ी कृतियों का श्री मो० द० देसाई ने विवरण, उद्धरण दिया है। इनकी कुछ रचनाओं के कर्त्ता को लेकर अनेक शंकायें हैं जैसे नेमिदूत के कर्त्ता विक्रम को जिसे सांगण-पुत्र और ऋषभ का भाई कहा गया, अब उनका भाई नहीं माना जाता और इस रचना के कर्ता का प्रश्न अनिश्चित है। इसी प्रकार सुमित्ररास का कर्ता विजयसेनसूरि को बताया गया था लेकिन बाद में विजयसेनसूरि राज्ये ऋषभदेव कृत बताया गया है। नेमिनाथ नवरस और नेमिनाथस्तव एक ही कृति के दो नाम हैं पर कहीं-कहीं इन्हें दो कृतियों के रूप में दर्शाया गया है। इसी प्रकार स्थूलिभद्र सज्झाय का कर्त्ता कोई अन्य भी हो सकता है।

हीरविजयसूरि से सम्बन्धित आपकी दो रचनायें प्रसिद्ध हैं, हीरविजयसूरि ना बारबोलनोरास और हीरविजयसूरि रास। प्रथम कृति २९४ कड़ी की है और इसकी रचना सं० १६८४ श्रावण कृष्ण २ गुरुवार को हुई, खरतरगच्छ और तपागच्छ में लम्बे समय से स्पर्द्धा चली आ रही थी। तपागच्छ के आचार्य विजयदानसूरि ने धर्मसागर कृत 'कुमतिकंद कुदाल' के विरोध में सातबोल नाम से सात आज्ञायें निकाली थी। हीरविजयसूरि ने सातबोल के ऊपर १२ बोल के नाम से १२ आज्ञायें जारी की। इस रास में वे ही १२ बोल दिए गये हैं। इसका आदि देखिये—

गउतम गणधर गुण स्तवुं सारद तुझ आधार,
बारबोल गुरु हीरना व्यवरी कहुं वीचार।
बारबोल के बार मेध, कइबारइ आदीत्त,
बार उपांग अेहनि कहु हीरवचन बहु वीत।
बार बोल गुरु हीरना आराधइ नर जेह,
बारइ सरगनां सुख वलीं सही पामइ नर तेह।

रचनाकाल—संवत वेद दीग अंग नि चंद्र, श्रावण मास हुऊ आणंद,
कृष्ण पखि हुइ दुतीआ सार, उत्तम सूर जगम्हा गुरुवार।[1]

हीरविजयसूरिरास—(सं० १६८५ आसो शुक्ल १० गुरुवार,

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (द्वितीय संस्करण) पृ० २३-७९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंभात) यह प्रकाशित और प्रसिद्ध कृति है। यह आनंदकाव्यमहोदधि मौक्तिक ५ में प्रकाशित है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

'सरसती भाषा भारती, त्रिपुरा सारद माय,
हंस गामिनी ब्रह्म सुता प्रणमु तारा पाय।'

इसमें कवि ने माँ सरस्वती से वाणी की उस शक्ति का वरदान माँगा है जो सिद्धसेन दिवाकर, श्री हर्ष, माघ, कालिदास और धनपाल आदि महाकवियों को प्राप्त हुआ था ताकि वह हीरविजय का गुणगान कर सके। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

दिशि आगलि लेइ इंद्रह धरो, कला सोय ते पाछल करो,
कवण संवत्सर थाये वली, त्यारे रास कर्यो मन रली।' (१६८५)

उसके कई पाठान्तर मिलते हैं जैसे 'संवत सोल पंच्यासीओ जसें, आसो मास दसमी दिन तसे' इत्यादि।

अभय कुमार रास—(१०१४ कड़ी, सं० १६८७ कार्तिक कृष्ण ९ गुरुवार, खंभात)।

रोहणिया मुनि रास—(३४५ कड़ी, सं० १६८८ पौष शुक्ल ७ गुरुवार, खंभात)।

प्रायः सभी रचनाओं को ऋषभदास ने गुरुवार को ही पूर्ण किया था। रोहणिया मुनिरास में १९-२० प्रकार की ढालों का प्रयोग किया गया है। इसका रचना काल—'संवत दिग दिग रस भू माषु पोष मास तिहां सारो जी।'[1] वीरसेन रास (४४५ कड़ी के अलावा आदीश्वर या प्रथम तीर्थंकर ऋषभ पर कई रचनायें हैं—आदीश्वर आलोयणा अथवा विज्ञप्तिस्तव और आदीश्वर विवाहलो और शत्रुञ्जय मण्डण श्री ऋषभदेव जिनस्तुति आदि। ऋषभदास ने प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव पर काफी स्तुति और स्तवन लिखा है। आदीश्वर आलोयणा ५७ कड़ी सं० १६६६ श्रावण शुक्ल २, खंभात में पूर्ण हुई थी। आदीश्वर विवाहलो या गुणबेली ६९ कड़ी की रचना है। स्थूलिभद्र सञ्झाय और धूलेवा श्री केशरिया जी स्तव 'चैत्य आदि सञ्झायमाला भाग ३ पृ० ३६५ पर एकत्र प्रकाशित रचनायें हैं। इनकी अधिकतर कृतियाँ कहीं न कहीं प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका मूल्यांकरने पर ऋषभदेव १७वीं शताब्दी के अग्रगण्य कवियों में गिनने योग

१. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३ (द्वितीय संस्करण) पृ० ७३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध होते हैं। आणंदजी कल्याणजी भंडार में सुरक्षित 'हितशिक्षारास' की प्रति के नीचे इनकी २६ रचनाओं की सूची दी गई है। अन्यत्र उनकी ३०-३२ रचनाओं की सूची दी गई है। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने उनकी प्रायः ४० रचनाओं का विवरण और उद्धरण आदि दिया है।

वाचक कनककीर्ति—आप खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य जिनचन्द्र सूरि की शिष्य परंपरा में नयनकमल के प्रशिष्य एवं जयमंदिर के शिष्य थे। आपने गद्य और पद्य दोनों में उत्तम साहित्य का निर्माण किया है। इनकी भाषा मरुगुर्जर (हिन्दी) है। आपने नेमिनाथरास और द्रौपदी रास के अलावा जिनराज स्तुति, श्रीपाल स्तुति और कर्मघंटावली नामक कृतियों का निर्माण किया है। आपकी लिखी हुई विनंती और पदसंग्रह भी प्राप्त हैं। श्री मो० द० देसाई ने आपकी रचना भरत-चक्री का भी उल्लेख किया है किन्तु उसमें गुरुपरम्परा न होने के कारण यह निश्चय नहीं हो पाता है कि यह इन्हीं कनककीर्ति की कृति है, या अन्य किसी कनककीर्ति की। आपने 'तत्त्वार्थ श्रुतसागरी टीका' पर विस्तृत हिन्दी टीका और संस्कृत में मेघदूत पर टीका लिखी है। इससे स्पष्ट है कि आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं के विद्वान् थे। इनकी रचनायें काव्यत्व की दृष्टि से भी प्रौढ़ है। भाषा पर ढूढारी बोली का प्रभाव देखा जाता है। कुछ गुर्जर प्रयोग जैसे 'है' के लिए 'छे' भी मिलता है।

कृति परिचय—नेमिनाथ रास १३ ढालों में सं० १६९२ माह शु० ५ बीकानेर में लिखा गया। इसमें नेमिनाथ-राजुल के मार्मिक आख्यान का आधार लिया गया है; अतः रचना सरस बन पड़ी है। इसका आदि पद्य है—

सकल जैन गुरु प्रणमुं पायां, श्रुतदेवी पदपंकज ध्यावुं,
श्री गुरुचरण कमल चित लावुं, नेमकुमर जादव गुण गावुं।
मनवंछित सुख संपति पावुं। १।

आगे कवि ने द्वारिका का मोहक वर्णन किया है यथा—

"सोरठ देस सदा सुखआगर, नारी पुरुष तणो बद्ध रागर,
जिहां विमलाचल तीर्थरायां, उज्जंत गिरि तीरथ मन भाया।
द्वारवती नगरी नवरंगी, धनद नीपाई सुजन सुरंगी,
कंचणमणमइ कोठ विराजइ, जिणि दीठां अलकापुर लाजइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रतनजडित कोसीसा सोहइ, तीनभुवन जनता मनमोहइ,
जादवकुल अरविंद दिनेसर, राज करइ तिहां कृष्ण नरेसर।"

कवि कहता है कि नेमिनाथ के गुणों का वर्णन मेरे लिए वैसे ही असंभव है जैसे पक्षी का गगन की थाह लगाना या व्यक्ति द्वारा अपनी छाया पकड़ना मुश्किल है। कवि नेमि-राजुल की वंदना करता है—

नेमनाथ नां गुण गावतां पामीयइ परमाणंद,
असुभ करम दूरइ टलइ, नासइ दुरगति दंद।
धनधन राजमती सती कर जोड़ करूं प्रणाम,
रथनेम मारग आणीयउ न्याय रह्योजगि नाम।

रचनाकाल—"संवत सोलह बाणवइ, सुदि माह पांचम जांण,
बड़नगर बीकानेर मइं, रास चढ्यउ परमाण।"

इसके बाद कवि ने जिनदत्तसूरि से लेकर जिनचन्द्रसूरि और जिनसिंहसूरि तक की गुरुपरम्परा का सादर स्मरण किया है। जिनचन्द्रसूरि और अकबर की भेंट का उल्लेख इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

"अनुक्रमइं पाटपरम्परा, जिनचन्दसूरि सुजाण
पद दीयउ युगवर जेहनइं, अकबर नृप सुरताण।
जिन टेक राखी जैनरी, जिनचंद सूर दयाल,
जहांगीर भूपति रंजीयउ, षट् दरसन प्रतिपाल।"

जिनचंदसूरि सुरिंद जी, तसु नयनकमल सुसीस,
तसुसीस जयमंदिर जयउ, पूरवइ मनह जगीस।
तसु सीस पभणइ भावसुं अे नेमरास रसाल,
कनककीरति वाचक कहइ, फलइ मनोरथ माल।[1]"

दूसरी रचना 'द्रौपदीरास' (३९ ढाल सं० १६९३ वैशाख शु० १३ जैसलमेर) है। इसमें द्रौपदी के सतीत्व को तथा जैन दृष्टि से उसके चरित्र को चित्रित किया गया है।

प्रारम्भिक पंक्तियाँ— धनधन शीलवती सती द्रूपदी, पांचे पांडव नारि,
शीलप्रभावें लहस्यें सासता, शिवपुरसुख अपार।१।

१. जैन गुर्जर कविओ (नवीन संस्करण) भाग ३ पृ० २९१-९६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल— संवत् इसरनयन निधान सुरस ससि वैशाख मास,
शुदि तेरसि कीधी अे चउपइ, सुणतां लीलविलास।

इसमें भी सुधर्मा स्वामी एवं अभयदेव से गुरु परम्परा गिनाते हुए कवि ने जिनचन्द्रसूरि और अकबर-जहाँगीर के सम्बन्ध की चर्चा की है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिए—

अे संबंध कह्यों जिम सांभल्यो, गुरुमुख मति अनुसार
शील तणां गुण गावण मनरुली, कनककीरति सुखकार।

भरतचक्री ५९ पृष्ठ की प्रकाशित रचना है।[1]

'मेघकुमार गीत' में ४६ पद्य हैं। यह मेघकुमार की गीतबद्ध स्तुति है। 'जिनराज स्तुति' और 'विनंती' भगवान जिनेन्द्र की भक्ति के गीत और स्तवन हैं। 'विनंती' का प्रारम्भ 'वंदू श्री जिनराई' से हुआ है।

श्रीपाल स्तुति—जैन कवि न केवल भगवान जिनेन्द्र अपितु श्रीपाल जैसे जिन भक्तों की भी स्तुति करते हैं जैसे वैष्णव राम के साथ हनुमान जी की पूजा करते हैं। यह भक्त की भक्ति है।

पद—इनके पदों का संग्रह दिगम्बर जैन मंदिर बड़ौत में सुरक्षित है। एक पद में कवि ने जिननाम स्मरण का माहात्म्य बताते हुए लिखा है—

कनककीरति गुण गावै रे भाई, अरिहंत नांव हियै धरौ।
अब लीयो जाय तो लीज्यो रे भाई, जिन को नांव सदा भलो।

दूसरे पद में भक्त भगवान को 'त्वमेव माताश्चपिता त्वमेव' की शैली में अपना सर्वस्व मानकर लिखता है—

"तुम माता तुम तात तुमही परम धणी जी,
तुम जग संचा देव तुम सम और नहीं जी।
तुम प्रभु दीनदयालु मुझ दुख दूरि करो जी,
लीजै मोहि उबारि मै तुमरो शरण गही जी।[2]

कर्मघंटावली में कवि ने बताया है कि अपने आराध्य प्रभु में एकनिष्ठ प्रेम होने पर जीव कर्मबन्धन से मुक्त होकर परमगति प्राप्त करता है—

१. जै। गुर्जर कविओ (प्रथम संस्करण) पृ० १०५६-५८।
२. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० १७८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्रम्यो संसार अनंत न तुम भेद लह्यो जी,
तुम स्यौ नेह निवारि परस्यों नेह कीयो जी।
पडता नरक मझारि अब उधारि करो जी,
तुम स्यो प्रेम करेरा ते संसार तिरो जी।
कनककीरति करि भाव श्री जिनभगति रुचे जी,
पढ़ सुन नर नारि सुरगा सुष लहो जी।

वाचक कनककीर्ति की भाषा में कहीं-कहीं गुजराती भाषा का प्रयोग अधिक मिलता है किन्तु वे राजस्थानी और खरतरगच्छीय साधु थे; अतः इनकी भाषा मरुगुर्जर ही है। भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है। भाव सर्वत्र प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम से ओतप्रोत हैं। यह कवि हिन्दी जैन भक्ति काव्य का उत्तम प्रतिनिधि है।

कनककुशल—आप विजयसेनसूरि के शिष्य थे। आपने सौभाग्य-पंचमी के माहात्म्य पर संस्कृत में 'वरदत्तगुणमंजरीकथा' सं० १६५५ में लिखी। इन्होंने शोभन मुनि कृत स्तुतियों की संस्कृत टीका भी लिखी थी। आप संस्कृत के विद्वान् थे किन्तु मरुगुर्जर (हिन्दी) में इनकी किसी रचना की सूचना नहीं मिल पाई है अतः आपके सम्बन्ध में विशेष विवरण की अपेक्षा नहीं है। देसाई ने 'हरिश्चन्द्र राजानो रास' का उल्लेख इनके नाम से किया था किन्तु बाद में बताया कि उक्त रास कनकसुन्दर की रचना है।[1]

कनकप्रभ—खरतरगच्छ के विद्वान् मुनि कनकसोम आपके गुरु थे। इनके गुरु कनकसोम ही नहीं बल्कि इनके गुरुभाई लक्ष्मीप्रभ और रंगकुशल भी अच्छे कृतिकार थे।[2] कनकप्रभ ने सं० १६६४ आषाढ़ शुक्ल पक्ष में 'दशविध यतिधर्म गीत' की रचना ८७ कड़ी में की। श्री मो० द० देसाई ने इस रचना का नाम 'धर्मगीत' लिखा है और इसे नाहटावंशीय कनकसोम के शिष्य लक्ष्मीप्रभ की रचना बताया है।[3] वस्तुतः यह कनकसोम के शिष्य कनकप्रभ की रचना है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ उदाहरणार्थ आगे दी जा रही हैं—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५८३।
२. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७३।
३. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३ (नवीन संस्करण) पृ० ९३ भाग ३ खंड १ पृ० ९७७ प्राचीन संस्करण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पद पंकज सेवइ अहनिसइ इन्द्रादिक नर देव,
मोहतिमिरहर दिवसकर, सारइ त्रिभुवन सेव।१।'

अंत—जग गुरु वचनइ शिवसुहकरणइ भवभवि थाज्यों दशधर्मशरणइ,
सोलह सई चउसठ वरसइ मास असाढ़इ सुदि सुभदिवसइ।
वादी गज केसरीय समान जग जस महकइ जास प्रधान,
कनकसोम वाचक वरसीसइ, कनकप्रभ कहिचित्त जगीसइ।८७।

अन्तिम कड़ी में कवि ने स्पष्ट अपना नाम कनकप्रभ दिया है। इस गीत में यतियों के लिए निर्धारित दश धर्मों का उपदेश सरल मरु-गुर्जर भाषा में दिया गया है।

कनकसुन्दर—१. आप बड़तपगच्छीय देवरत्न सूरि के प्रशिष्य एवं श्री विद्यारत्न के शिष्य थे। आपने सं० १६६३ में कर्पूरमंजरी रास लिखा। इससे कुछ पूर्व ही आपने 'गुणधर्म कनकवती प्रबन्ध' की रचना की थी। सं० १६६७ वैशाख वदी १२ को आपने 'सगाल साह रास' पूर्ण किया। देवदत्तरास, रूपसेनरास (सं० १६७३ सांचौर) जिनपालित सज्झाय (७७ कड़ी) के अतिरिक्त कुछ गद्य रचनायें भी आपकी उपलब्ध हैं जिससे प्रकट होता है कि ये पद्य के साथ ही गद्य के भी कुशल लेखक थे। गद्य रचनाओं में ज्ञाताधर्मसूत्र बालावबोध और दशवैकालिक सूत्र बालावबोध उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और उद्धरण आगे प्रस्तुत है—

कर्पूरमंजरी रास – ४ खण्डों में ७३२ कड़ी की वृहद् रचना सं० १६६२ वरजाजुली में लिखी गई। इसमें सिद्धराज जयसिंह का वर्णन होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व है। अतः सम्बद्ध पंक्तियाँ आगे प्रस्तुत हैं—

'गुजराती गुणवंतो अपार, अवर देश नहि को सुविचार,
तस मंजन पाटण नरसिंधु अणहलवाडु धर्मनु बंध।
तेणि नगर जयसंघ दे भूप सोलंकी विसई अति रूप,
दांनि मांनि अलवेसर अेह, मागण प्रतइं न आपइच्छेह।

x x x

तदाकालि हेमचंद्र सूरीस भुवि मांहि तस बड़ी जगीस,
तस वातां निसुणी एकदा, रज्यु रा पूछइ विधि जदा।
कहु गुरु पुत्र हुइ किम कुले, ते भाइवु ऊषध निर्मले,
गुरु कहि श्री जिनधर्म प्रसादि, चिंतित काज हुइ गुण आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—'विक्रम संवत नसिपति कला रस लोचन स्त्रोज्यो निर्मला,
वरजाजुलि रह्या चुमासि, रच्यु रास अे मनि उल्हासि ।'[1]

गुणधर्म कनकवती प्रबन्ध—यह रचना सं० १६६३ से पूर्व लिखी जा चुकी थी। क्योंकि इसकी रामामाहावजी द्वारा लिखित प्रति सं० १६६३ कार्तिक वदी १४ की उपलब्ध है। इसमें संसार की असारता और विषय विकार की व्यर्थता पर प्रकाश डाला गया है। यथा—

'इम सुणी प्राणी चित्त अणी, विषय छंदइ वाड,
परमाद पांचइ दूरि कीजइं, दीजइ नगर कपाट ।'

अथवा इम जाणी संसार असार, गिरुया मुंकइ विषय विकार।
बड़तपगछि गोयम अवतार, श्री धनरत्न हुआ संसारि।

आगे धनरत्न, सुररत्न, देवरत्न और विद्यारत्न का स्मरण करते हुए कवि अपने को विद्यारत्न का अन्तेवासी शिष्य बताता है—

अन्तेवासी तेहनो मुख्य, कनक सुन्दर नामे छे शिष्य ।

इसमें शांतिजिनेश्वर का चरित्र है 'शांति जिणेस्वर तणु' चरित्र कथा प्रबंधि करी विचित्र'।

सगालसाहरास—यह ४८६ कड़ी की रचना है। इसे कवि ने सं० १६६७ वैशाख वदी १२ को पूर्ण किया था। इससे पूर्व किसी वासु-कवि ने सगालसाह चूपई लिखी थी। दोनों में काफी साम्य है। नरसिंह राव ने सगाल का अर्थ श्रृङ्गाल किया था जिसे श्री देसाई जी अशुद्ध मानते हैं। वे सगाल का अर्थ ऐसे सेठ या साहु को मानते हैं जिसके यहाँ हमेशा सुकाल हो, दुष्काल कभी न हो। इसे व्रजराय देसाई ने सम्पादित-प्रकाशित किया है। इसके प्रारम्भ की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'सकल सुरपति सकल सुरपति तमई जस पाय,
चुवीसइ तिथेसरु, तास नाम हुं चित्ति ध्याउं ।'

अन्त में लिखा है—'अणि अठसठि सकल तीरथ करइ जे फल होइ,
साह श्री सगाल केरु रास सुणता सोइ ।'

इसमें रचनाकाल बताया गया है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ (नवीन संस्करण) भाग ३ पृ० १३-१७ तक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोल संवत सतसठइ मास वैशाषइ वली
वदि वारसइं अे रास पूरण हुइ शुभ मननी रली।

रूपसेन रास—९९३ कड़ी की विस्तृत रचना है। यह सं० १६६३ में सांचौर या सत्यपुर में लिखी गई।

देवदत्त रास—(४१२ कड़ी) इस रास की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ जिससे रास के विषय-वस्तु पर प्रकाश पड़ता है।

कुंथ चरित्र माहि एक बात, साहु पुत्र बोलिउं अवदात।
नवरस विबुध बखाणइ धर्म, कौतकादिक छइ बहु मर्म।
प्रथम रस शृङ्गार उदार, ठामिठामि भाख्यउ छिसार।

इसमें कुंथचरित्र और नवरस, विशेषतया उदार शृङ्गार रस का स्थान-स्थान पर अच्छा वर्णन है। आगे लीलावती नगरी के वर्णन से कथा का प्रारम्भ किया गया है। अन्त में शान्तरस का वर्णन है जो अन्तिम पंक्तियों से स्पष्ट है—

"अे कौतुक धुरि कीधां घणां, सुखकर कामी जनमन तणां।
वैराग्य रस छेहडइ आणीउ, सूधउ जनमत जाणीउ।
जपवो सहू जिननूँ नांम, जिमजीव पामइ वंछित काम,
मंगलीक दुइ जिननइ नांम, वंछित लहइ ठामोठामि।"

प्रारम्भ में काश्मीर मुखमंडनि माँ सरस्वती की वन्दना है और अन्त में गुरु परम्परा दी गई है।

जिनपालितसज्झाय (७७ कड़ी) इसका आदि-अन्त प्रस्तुत है—

आदि—विमल विहंगम वाहिनी रे, दो वाणी सुविसाल,
विरत तणा फल गायसु,
श्री जिनवांणी रसालो रे, भवियण सांभलो।
अविरत दूरि निवारो रे, दोहिलु विषय विकारो रे—
भवियण...।"१।

अंत—ज्ञातकथा इम सांभली हरषि परणह बारो रे,
जिनवाणी सूणी सद्दवहि तस घरि दुइ सुखकारो रे।
कनक सुन्दर उवझाया बोलिइं, जे भणि भावी भोली रे,
मुगति तेहनी राखि खोली, मलसि नवनिध ढोलि रे।
विषय न रात्रि ते डाहा।७७।[1]

---

१. जैन गुर्जर कविओ (नवीन संस्करण) भाग ३ पृ० १०-१६।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

आपकी दो गद्य रचनाओं का निश्चित पता है—दशवैकालिक-सूत्रबालावबोध (सं० १६६६), और ज्ञाताधर्मसूत्र बालावबोधि अथवा स्तवक। दशवैकालिकसूत्रबालावबोध में अहमदशाह के प्रति बोधकर्त्ता रत्नसिंह सूरि का उल्लेख है। इनके साथ देवरत्न, जयरत्न, विद्यारत्न की गुरुपरम्परा दी गई है जिसका ऐतिहासिक महत्व है। ज्ञाताधर्मकथाबालावबोध सं० १७०३ के पूर्व ही लिखा गया था अतः ये सभी रचनायें वि० १७वीं शताब्दी की ही हैं। इसके अन्त की पंक्तियाँ उनके गद्य के नमूने के रूप में आगे दी जा रही हैं—

'श्री महावीरइ धर्मनी आदिना करणहार, तीर्थंकर पोतइ प्रतिबोध पाम्या पुरुष मांहि उत्तम पुरुष मांहि सीह समान पुरुष मांहि वरप्रधान श्वेत कमल समान, पुरुष मांहि गंधहस्ती समान तेणइ भगवंतइ धर्मकथानु बीजु श्रुतस्कंध प्ररुपिउ। दशे वर्गे करीनि ज्ञाताधर्मकथांग संपूर्ण।[1]" यह प्रति सं० १७०३ चैत्र वदि ७ गुरुवार को लिखी गई थी। इससे रचना अवश्य पूर्व रची गयी होगी।

इन कृतियों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कनकसुन्दर गणि विक्रमीय १७वीं शती के अच्छे पद्य और गद्य के लेखक थे। आप उत्तम कोटि के सन्त और उपदेशक तो थे ही, साथ ही उच्च कोटि के साहित्यकार भी थे। आपने नाना देशियो और ढालों में अनेक कथाओं को आधार बनाकर सरस साहित्यिक कृतियाँ मरुगुर्जर भाषा में प्रस्तुत कीं। आपकी भाषा के संबंध में यह पंक्ति दर्शनीय है। देवदत्त रास में कवि कहता है—

"आगई अे पणि रास ज हतु, मारुनी भाषा बोलतु

x x x

रहस्य तेहनूं हीयडइ धरी गूजरी भाषा चउपइ करी।"[2]

अर्थात् यह रास पहले से मरुभाषा में था कवि ने उसके मर्म को ग्रहण कर गुर्जर भाषा में लिखा है। इसलिए यह गुर्जर प्रधान मरु-गुर्जर है। दूसरी बात यह कि इस समय तक आते-आते रास और चौपई का भेद मिट सा गया था। कवि चौपाई छंद का प्रयोग करता था तो वह रचना चौपई कही जाती थी और उसे रास भी कहते थे।

१, जैन गुर्जर कविओ, भाग ३ पृ० ३७३-७४।

२. वही पृ० १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनकसुन्दर II—श्री देसाई ने पहले तो 'हरिश्चन्द्र राजा रास' का कर्ता भूल से कनककुशल को बताया था बाद में उन्होंने इसके कर्ता का नाम कनकसुन्दर बताया है। किन्तु ये कनकसुन्दर भावडगच्छीय महेश उपाध्याय के शिष्य बताये गये हैं और इन्होंने यह रचना सोजत में की है। इसलिए ये दूसरे कनकसुन्दर हैं। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनका विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

आप भावडगच्छ के उपाध्याय महेश जी के शिष्य थे। इन्होंने सोजत में हरिश्चन्द्र (तारालोचनी) रास या हरिश्चन्द्र राजानो रास की रचना श्रावण सु० ५ सं० १६९७ में की। यह रचना मरुप्रदेश के सोजत नगर में की गई, अतः इसकी भाषा पर मरु या राजस्थानी प्रभाव अधिक है, उदाहरणार्थ इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिए—

> पास जिनेसर पाय नमी, थंभणपुर थिरवास।
> जुग जुग मांहे दीपतो, पूरे वांछित आस।
> आदि लखे कुण अेहनी वर्ष इग्यारे लक्ष,
> वर्णत पश्चिम देवता, कीधी पूज प्रत्यक्ष।[1]

इसे 'मोहनवेली चौपाई भी कहते हैं। यह ३९ ढाल और ७८१ कड़ी की विस्तृत रचना है। इसमें मरुधर देश के महिपति यशवंत का उल्लेख है। गुरु परम्परा भी दी गई है जिसके अनुसार आप साधु जी के प्रशिष्य थे। इस प्रबन्ध में श्री हरिश्चन्द्र और शान्तिनाथ के सम्बन्ध की कथा भी कही गई है—

> श्री हरिश्चंद नरिंदनो शांतिनाथ संबंध,
> नवरस भेद जूजुआ, ढाल सगुण चालीस।
> भावभेद बहुभांत ना विधि शु ं विश्वावीस,
> संवत सोल सत्ताणुवे, शुद्धपक्ष श्रावण मास,
> पंचमीतिथि पूरो हुउ, श्री हरिचंद नो रास।[2]

इस ग्रन्थ को भीमसिंह माणिक और सवाई भाई रायचन्द ने प्रकाशित किया है। नाना ग्रन्थागारों में इनकी अनेक प्रतियां भी

---

१. जैन गुर्जर कविओ (नवीन संस्करण) भाग ३ पृ० ३२९।
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध हैं। अतः अब कोई शंका इस ग्रन्थ के बारे में नहीं रही कि इसके कर्त्ता द्वितीय कनकसुन्दर ही हैं।[1] श्री अगरचन्द नाहटा ने इसी तथ्य की अपने लेख में पुष्टि की है।[2]

कनकसोम —श्री मो० द० देसाई ने इन्हें खरतरगच्छीय साधुकीर्ति का शिष्य बताया था।[3] किन्तु श्री अगर चन्द नाहटा ने इन्हें अमरमाणिक्य का शिष्य और साधुकीर्ति का गुरुभाई बताया।[4] श्री नाहटा का विचार ही उचित है क्योंकि साधुकीर्ति और कनकसोम दोनों ही अमरमाणिक्य के शिष्य थे। लेकिन देसाईजी के संशोधन[5] के आधार पर इन्हें अमरमाणिक्य का शिष्य बताया गया है। आपने अनेक रचनायें की हैं उनमें 'जइतपद बेलि' (सं० १६२५ आगरा), जिनपालित जिनरक्षितरास (सं० १६३२ नागौर), आषाढ़ भूतिधमाल (सं० १६३८ खंभात), हरिकेशी संधि (सं० १६४० बैराठ), गुणठाणाविवरण चौपई(१६२१ आगरा), आर्द्रकुमार धमाल (सं०१६४४ अमरसर), मंगलकलश रास (सं० १६४९ मुलतान), थावच्चा सुकोशल चरित्र (सं० १६५५ नागौर), हरिबल संधि, नेमिफाग, जिनचंदसूरि गीत सं० १६२८, नगरकोट आदिनाथ स्तवन सं० १६३४ और अन्य गीत तथा स्तवन आदि प्राप्त हैं।[6] आप अच्छे गद्य-लेखक भी थे। आपने 'शाश्वत जिनस्तव बालावबोध और कल्पसूत्र बालावबोध लिखा है। आपकी सर्वप्रथम गद्य रचना जिनवल्लभसूरि कृत पाँच स्तवन की अवचूरी है जिसकी प्रति सं० १६१५ की लिखी हुई प्राप्त है। इस तरह सं० १६१५ से १६५५ तक इनका रचनाकाल माना जा सकता है। आगे कुछ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

रचनापरिचय - १४ गुणठाणा विवरण चौपई(९० कड़ी सं० १६३१ आसो शु० १०)

आदि —पंच परमिठ सिद्धं नमिऊण तहां गुरु परमतत्वं,
चउदस गुणठाणाणं सरुवं मणमोसुहं वुच्छं।

---

१. वही (प्राचीन संस्करण) भाग १ पृ० ५८३-८४।
२. परम्परा पृ० ९१।
३. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३ खंड १ पृ० ७४३।
४. परम्परा पृ० ७३।
५. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग २ पृ० १४७।
६. परम्परा पृ० ७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिवमंदिर चडिवानइ काजि, गुणठाणा वोल्या जिणराजि,
चडती पयडी नइपगु धरइ, तऊ सइ हथि सिवरमणी वरइ ।[१]

रचनाकाल—संवत सोलह सइवरस इकतीसइ अे किद्ध
अस्सोजह सुदि दसमि दिने, मणयजनम फलसिद्ध ।[२]

जिनपालित जिनरक्षित रास (गाथा ५२ सं० १६३२ नागौर) का आदि इस प्रकार है—

सहगुरु पई पणमी करी, सुइदेवी मनि ध्याइ,
जिन पालक रक्षत तणउ, चरित रचुं सुभ भाइं ।

अन्त—संक्षेप मात्रइ छंदवंधइ, अरथ जे सद्गुरु लह्या,
अे रास सुणतां अनइ भणतां कनकसोम आणंद अे ।

आषाढ़भूति सज्झाय (अथवा धमाल, अथवा चरित्र या रास सं० १६३८ विजयादशमी, खंभात) का रचना काल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोलइ अठतीसइ दिन विजयदसमि सुजगीसइ,
कहि कनकसोम सुविचार, सब श्री संघसुं सुषकार ।

हरिकेशी संधि (सं० १६४० वैराट) इसमें हरिकेशी ऋषि के पवित्र चरित्र का गुणगान किया गया है । इसके अन्त में कवि ने लिखा है—

जे भणहि गुणहि बखाण वाचहि अे चरित रसाल,
कहि कनकसोम मुनि धन धन्नते,
फलइ अंतरीग हो तिहां सुख रसाल ।

रचना में गुरुपरम्परा एवं रचनाकाल का विवरण दिया गया है । आर्द्रकुमार चौपाई अथवा धमाल (४८ कड़ी सं० १६४४ श्रावण, अमरसर)

आदि—सकल जैनगुरु प्रणमुं पाया, वागदेव मुझ करहु पसाया,
गाइसु आद्रकुमर रिषिराया, जिणि मुनि पाली प्रवचन माया ।१।

रचनाकाल—संवत सोल चमाला श्रावण धुरइ, नयरि अमरसरिसार,
कनकसोम आणंद भगतिभरइ, भणतां सब सुखकार ।[३]

---

१. जैन गुर्जर कविओ (प्रथम संस्करण) भाग ३ खंड २ पृ० १५१४ ।
२. वही (नवीन संस्करण) भाग २ पृ० १४७ ।
३. वही (नवीन संस्करण) भाग २ पृ० १४९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावच्चा सुकोशलग चौपाई गा० १२२ सं० १६५५ नागौर में लिखी गई। नेमिफागु (२० गाथा) रणथंभौर में लिखी गई। इसकी प्रारम्भिक दो पंक्तियाँ--

श्री सिवादेवी नंदन नेमि, भावइ पदपंकज पणमेवि,
गाइसि जदुपति ब्रह्मचारी, हरखित सुणऊ भविक नरनारि।

इसके अलावा श्री पूज्यभाषगीत सं० १६२८ में जिनचन्दसूरि के विषय में लिखित है, नववाडी गीत, आज्ञासञ्झायगीत आदि छोटी कृतियाँ भी उपलब्ध हैं। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना मंगलकलश, चौपई या फागु हैं। यह प्राचीन फागु संग्रह में प्रकाशित है। १४२ गाथा की यह प्रसिद्ध रचना सं० १६४९ में मुलतान में लिखी गई है। मंगलकलश फागु या चौपई में मंगलकलश का प्रसिद्ध जैन कथानक लिया गया है। मंगलकलश उज्जयिनी के श्रेष्ठी धर्मदत्त और उनकी पत्नी सत्यभामा का पुत्र था। चंपापुरी के राजा की कन्या त्रैलोक्य-सुन्दरी की शादी उसके मंत्री पुत्र (जो कुष्ठ रोगी था) से निश्चित हुआ। मंत्री ने देवताओं की सहायता से मंगलकलश को उठवा लिया और त्रैलोक्यसुन्दरी से शादी के लिए उसे तैयार किया। मंगलकलश तो शादी करके उज्जयिनी चला गया और इधर रात्रि में अपने पलंग पर कुष्ठी मंत्री पुत्र को देखकर राजकुमारी बड़ी दुखी हुई और रात्रि में ही नैहर चली गई। वहाँ से राजकुमारी मंगलकलश का पता लगाकर उज्जयिनी पहुँची और वहाँ मंगलकलश से उसकी पुनः शादी हुई। अन्त में जयसिंह सूरि के उपदेश से उसे पूर्व भव का ज्ञान और वैराग्य हुआ। अन्ततः मंगलकलश ने दीक्षा ली और संयम पालन करके निर्वाण प्राप्त किया।

इसमें शृङ्गार और शान्तरस का अच्छा परिपाक हुआ है। त्रैलोक्यसुन्दरी की सुन्दरता का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

मृगलोयन मुख चंद समान, नासा कीर कोकिला वाणी,
उज्जल दसन अधर अतिरंग, जघन वयण थन पीन उत्तंग।[1]

भाषा में मुहावरों का अच्छा प्रयोग किया गया है जैसे 'आगइ नदी पाछइ बाघलउ' इत्यादि। रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

'सासणदेवीय सामिणी अे, मुझ सानिधि कीजइ,
पुण्य तणा फल गाइय अे सुणतां मन रीझइ।'

१. प्राचीन फागु संग्रह, पृ० १५४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगलकलश तणो प्रबंध, करैवा मुझ राग,
शांतिनाथ जिन चरित थी उधरिस्यु' फाग।
अन्त—संवत सोलहइ ऊपरि गुण पंचास,
अे कीधो मंगल कलश चरित्र विलास।
श्री जिनचंद सूरिंद गुरु वर्तमान गणधार,
सुविहित मुनि चूड़ामनि जुग प्रधान अवतार।
खरतरगच्छ सुहागनिधि अमरमाणिक गुरु सीस,
कनकसोम बाचक कहइ मंगल चरित जगीस।

आपने अपने गुरु भाई साधुकीर्ति की प्रशंसा में 'जइतपदवेलि' नामक गीत की रचना की है। यह गीत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में 'जिनचंद सूरि गीतानि' शीर्षक से २५ वें क्रम पर प्रकाशित-संकलित है। यह गीत सं० १६२८ का है। जिनमाणिक्य के पट्ट पर सं० १६१२ में जिनचंदसूरि प्रतिष्ठित हुए थे। ऐतिहासिक पट्टावली की दृष्टि से यह गीत महत्वपूर्ण है। यह ४९ कड़ी की रचना है। इसमें कवि ने ओजस्वी वक्ता साधुकीर्ति की तुलना अगस्त आदि ऋषियों से की है। यथा—'साधुकीर्ति संस्कृत बोलइ, खरतर कहि केहनइ तोलई' इसकी भाषा में एम, छे, जेम आदि गुर्जर प्रयोग अधिक हैं। साधुकीर्ति ने एक शास्त्रार्थ में जो आगरा में सुल्तान के समक्ष हुआ था, तपागच्छीय बुद्धिसागर की बुद्धि को अगस्त की तरह सोखकर उन्हें परास्त कर दिया था। यही इस गीत का विषय है।[1] इसकी अन्तिम ४९वीं कड़ी इस प्रकार है—

'दया अमरमाणिक्य गुरु सीस, साधुकीर्ति कही जगीस।
मुनि कनकसोम इम भाखइ, चहुविह संघ की साखई।'

इनकी गद्य रचनाओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है इस प्रकार ये मरुगुर्जर गद्य-पद्य के श्रेष्ठ लेखक प्रमाणित होते हैं। आप उच्चकोटि के संत भी थे। आपका विहार राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश और पंजाब तक होता रहता था, आप के दो-तीन शिष्य भी अच्छे कवि थे जिनमें रंगकुशल, लक्ष्मीप्रभ और कनकप्रभ का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

कनक सौभाग्य—तपागच्छीय विजयसेनसूरि आपके गुरु थे। आपने सं० १६६४ में एक ऐतिहासिक काव्य 'रंगरत्नाकर रास' नाम से लिखा

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह-जिनचन्द सूरि गीतानि (२५वां गीत)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसमें विजयसेन के पट्टधर विजयदेव का भी विवरण दिया गया है। इसका प्रथम छन्द निम्नाङ्कित है—

'वीणा वेगि बजावती गावती जिन पद रंगि,
कासमीरपुर मंडणी, कुंकम वरणइ अंगि।'

रचनाकाल—संवत सोल चउसिठा वरषि, महा सुदी अेकादशीसारजी,
गुरु गुण गाया थइ मतिसार, सुणजे सहु नर-नारि जी।
श्री विजइसेन सूरीसर पाटि विजइदेव गणधार,
कनक सौभाग्य प्रभुध्यान धरतां लहीइ सुख अपार जी।[1]

(ब्रह्म) कपूरचंद—आप मुनि गुणचन्द्र के शिष्य थे। इनके कुछ हिन्दी पदों के अतिरिक्त 'पार्श्वनाथरास' नामक रचना का पता चला है। इस रास में कवि ने अपनी गुरु परम्परा के साथ ही आनंदपुर का वर्णन किया है जिसके तत्कालीन राजा जसवंत सिंह राठौर थे। वहीं के पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रशंसा में प्रस्तुत रचना की गई है। इसमें १६६ पद्य हैं। भाषा राजस्थानी प्रधान मरुगुर्जर है। रास में पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन पद्यकथा रूप में वर्णित है। उनके जन्मोत्सव का वर्णन देखिये—

अहो नगर में लोक अति करे जी उछाह,
खर्चे जी द्रव्य मनि अधिक समाह।
घरि-घरि मंगल अति घणा, घरि-घरि गावेजी गीत सुचार।
सब जन अधिक अनंदिया, धनि जननी तसु जिण अवतार।१२४।

तापस कमठ को बालक पार्श्वनाथ लकड़ी जलाने से मना करते हैं क्योंकि उसके कोटर में सांप का जोड़ा जल रहा था। कवि ने इस प्रसंग का वर्णन अति सुगम शैली और सरल भाषा में इस प्रकार किया है—

सुणि रे अज्ञानी हो तापसी, बलै छै जी काष्ट माझ सर्पणी सर्प,
ते तो जी भेद जाणो नहीं, करचो जी बृथा मन में तुम्ह दर्प।
करि अति कोप कर ग्रह्योजी कुठार, काठ तहाँ छेदिकीयो तिणछार
सर्पिणी सर्प तहाँ निसर्या, अर्द्धजी दग्ध तहाँ भयो जी सरीर।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड २ पृ० १५१६।
२. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० २०२-२०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा में जी, ते, तौ आदि भरती के शब्द भाषा की शिथिलता के द्योतक हैं।

इसमें काव्यत्व अति सामान्य कोटि का है। रचनाकाल और स्थान का विवरण इस प्रकार है —

सोलासै सत्ताणवै मासि बैसाखि, पंचमी तिथि सुभ उजल पाखि।
नाम नक्षत्र आद्रा भलो, बार बृहस्पति अधिक प्रधान।
अहो देस को राजा जी जाति राठौड़, सकलजी छत्रिया के सिरमोड।
नाम जसवंतसिंघ तसु तणो, तास आनन्दपुर नगर प्रधान।[1]

कमलकीर्ति—आप खरतरगच्छीय कल्याणलाभ के शिष्य थे। आपने सं० १६७६ विजयदशमी को हाजीखान में 'महिपाल चौपइ'[2] लिखी। इस रचना का और अधिक विवरण उपलब्ध नहीं हो पाया।

कमलरत्न—आपका एक गीत 'ऐतिहासिक जैन गुर्जर काव्यसंग्रह' में 'जिनरंगसूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत तृतीय स्थान पर संकलित है। इस गीत में कवि ने बताया है कि बादशाह शाहजहाँ ने सूरि जी का सम्मान किया। जिनरंग सूरि की रचनाओं में सौभाग्यपंचमी चौपइ और नवतत्वबालावबोध आदि प्रसिद्ध हैं। आपसे ही खरतरगच्छ की रंगविजय शाखा अलग हुई थी। इसकी गद्दी लखनऊ में है। इस गीत में कुल १५ कड़ी हैं। इसकी अन्तिम कड़ी इस प्रकार है :—

'कमलरत्न इम बीनवे, मुझ आज अधिक आणंद,
चिरजीवो गुरु ऐ सही, जां लगि ध्रू रवि चांद। १५।[3]

आप १७वीं शती के अन्तिम वर्षों से लेकर १८वीं शती तक रचनाये करते रहे। प्रस्तुत गीत १७वीं शती के अन्तिम समय में आने के कारण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

कनकलाभ—आप जिनचन्दसूरि की परम्परा में उपाध्याय समयराज के प्रशिष्य और अभयसुन्दर के शिष्य थे। इन्होंने प्रायः गद्य रचनायें की हैं। उत्तराध्ययन बालावबोध और पूजाष्टक-वार्तिक (अपूर्ण) आपकी प्राप्त रचनायें हैं। इन रचनाओं के उद्धरण नहीं उपलब्ध हो सके हैं।[4]

---

१. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० २०२-२०६।
२. जैन गुर्जर कविओ (प्राचीन संस्करण) भाग ३ खंड १ पृ० ९८४।
३. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह—जिनरंगसूरि गीतानि, तृतीय गीत।
४. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमलविजय I—आप तपागच्छीय आचार्य हीरविजयसूरि के प्रशिष्य एवं विजयसेन सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६३१ में 'दंडक स्तवन', और सं० १६८२ में 'सीमंधर स्वामी विज्ञप्तिरूप स्तवन' जालौर में लिखा। सीमंधरस्तवन में १०५ पद्य हैं। यह रचना प्रकाशित है। इसका प्रारम्भिक छंद इस प्रकार है—

स्वस्ति श्री पुष्कलवती जी विजयइ विजय जयवंत।
प्रगटपुरी पड़रिगिणी जी, जिहां विचरइ भगवंत।
सोभागी जिन सांभल्यो संदेश, हुं तउ लेख लिखुं लवलेस।
मुझ तुझ आधार जिनेस, साहिब जी सुणज्यो तुझ संदेस।[1]

रचनाकाल—संवत सोल व्यासीइ रे, सुर गुरुवारि प्रसंगि,
दीवाली दिवसइं लिख्यो रे, कागल कागल मननइ रंग।
सिरि तपगण गयणंगण दिणयर सिरि विजयसेन सूरीणं।
सीसेण संथुणिउ सहरिस कवि कमलविजयेणं।

पाठान्तर—संवत सोल व्यासीइ' श्री जालोर मझारि,
चैत्रधवल पंचमी दिनइ वलबत्तर बुधवारि।

इस प्रति में विजयसेन के पट्टधर विजयदेव को गुरु बताया गया है।[2]

कमलविजय II—आप तपागच्छीय मेघविजय > कनकविजय > शीलविजय के शिष्य थे। आपने सं० १६९८ में 'जंबूचौपइ' नामक काव्य की रचना सिवान में की। इसकी भाषा का नाम कवि ने प्राकृत लिखा है किन्तु यह जनता की प्राकृत भाषा मरुगुर्जर ही है यथा :—

'जस कीरति महियल घणी, रूपइ रतिनोकंत,
प्राकृतभाषा बीनवु., सुणाज्यों तुम्यो एकन्त।'[3]

रचनाकाल—पर्वत रासि रिपुचन्द्र इणपरि संख्या अेह कहाया,
अे संवच्छर जाणी लीजै चरण कमल लय लाया।

इसका आदि और अन्त इस प्रकार है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ (प्राचीन संस्करण) भाग १ पृ० ५१३।
२. वही, (नवीन संस्करण) भाग २ पृ० १५९ और (प्राचीन संस्करण) भाग १ पृ० ५१४।
३. जैन गुर्जर कविओ (प्राचीन संस्करण) भाग ३ खंड १ पृ० १०५५-५६ और वही भाग १, पृ० ५६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि—वीर जिणेसर पद कमल, प्रणगी बहु रागेण,
जंबू चरित सोहामणो बोलिस सरस रसेव।
सुणता होइ सुख संपदा, जपतां दुरित पलाय,
जंबूनाम सोहामणउ, नमे सुरासुर पाय।

अंत में गुरुस्मरण—सकल शास्त्र सिद्धान्त वखाणी
शील विजय गुरुरायरे,
जस कीरति जगमांहि जयवंती,
नामै नवनिधि थाय रे।[1]

कमलशेखर (वाचक)—ये अंचलगच्छीय वेलराज के प्रशिष्य लाभशेखर के शिष्य थे। आपने सं० १६०९ आसो ३ को सूरत में 'नवतत्वचौपइ' (६५ कड़ी) की रचना की। कवि ने नवतत्वचौपइ में गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई है—

"विधि पक्षि गछि अे उदयभाण, श्रीधर्ममूर्ति सूरिसुजाण।
तास पसाइ लहीया भेय, विसइछिहुत्तर हूआ तेअ।"

इसका रचनाकाल, आदि और अन्त आगे दिया जा रहा है।

रचनाकाल—संवत सोल नवोत्तर वरसि, सूरति आसू त्रितीया दिवसि,
रची चुपइ सोहामणी, भणतां गणतां हुइ बुद्धि घणी।

आदि—"सरसति सामाण समरुं माय, पास जिणेसर पणमुं पाय।
कहुं नवतत्व संखेपि विचार, जिणि हुई समकित सार।"

अन्त—अन्तर महूरत समकित धरइ, ते नर आधु पुद्गल करइ,
वाचक कमलशेखर इम कहइ, भणिइ भविइ सिद्ध पदवी लहइं[2]

इन्होंने 'धर्ममूर्तिगुरुफागु' भी लिखा है जो प्राचीन फागुसंग्रह में प्रकाशित है। इनकी तीसरी रचना प्रद्युम्नकुमार चोपइ में छह सर्ग हैं। यह ७९३ कड़ी की विस्तृत रचना सं० १६२६ कार्तिक शु० १३ को मांडल में लिखी गई। पूरी रचना दोहे चौपाइयों में लिखी गई है। इसका प्रारम्भ देखिये—

---

१. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९१ और जैन गुर्जर कविओ (नवीन संस्करण) भाग ३ पृ० ३३२।
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (प्राचीन संस्करण) पृ० ६५९-६१ और भाग २ (नवीन संस्करण) पृ० ४३-४४।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

श्री जिनवर सवि पयनमी, समरी सरसति माय,
रास रचूं रलियामणु वलि बंदी गुरुपाय।

इसमें प्रद्युम्नचरित के साथ प्रसंगतः कृष्णचरित का भी उल्लेख हुआ है। इसका रचनाकाल देखिये—

विधिपक्ष गछि धर्ममूर्ति सूरि, विजयवंत ते गुण भरपूरि,
संवत सोल छवीसइ करी दूहा चुपइ हीयडइ धरी।
कमलशेखर रहिया चउमासि, मांडलि नयर घणइ उल्हासि,
काती सुदि नइ दिन त्रयोदसी, कीधी चुपइ मन उल्हसी।[1]
वणारीस बेलराज तणा, सीस दोइ तेहना गुण घणा,
श्री पुण्यलब्धि उवझायां ईस, बीजा लाभशेखर वणारीस
तास सीस रची चुपइ, सुणियो भवीयां इकमन थइ[2]

आपने अपनी दोनों रचनाओं में धर्ममूर्ति सूरि का अत्यन्त श्रद्धा से स्मरण किया है और उनकी स्तुति में 'धर्ममूर्तिगुरुफागु' भी लिखा है। इसमें रचनाकाल नहीं है किन्तु यह १७वीं शती के पूर्वार्द्ध की रचना है। २३ कड़ी की इस लघुकृति में सूरि का खंभात में जन्म से लेकर उनके दीक्षा समारोह (अहमदाबाद) और तपस्या आदि तक का वर्णन किया गया है। इनके माता-पिता का नाम क्रमशः हासलदे और हंसराज था। इन्होंने गुण निधानसूरि से दीक्षा ली और धर्ममूर्ति नाम पड़ा। अन्तिम कड़ी यह है—

कमलशेषर कहइ वंदीइ बंदीइ गुरुना पाय,
जे नरनारी गावइ पावइ सुख संपाइं। २३[3]

कमलसागर—तपागच्छ के आचार्य विजयदान सूरि के शिष्य उपाध्याय हर्षसागर आपके गुरु थे। आपने सं० १६०६ में '३४ अतिशय स्तवन' नामक एक रचना ३६ कड़ी में लिखी है। इसका प्रारम्भिक छन्द यहाँ दिया जा रहा है।

सुरना सुरना किधा जोय, उगणिस अतिसय
जिनजीना तुम्हें सांभलो अे।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (प्राचीन संस्करण) पृ० ६५९-६१ तथा भाग २ (द्वितीय संस्करण) पृ० ४३-४४

२. वही, पृ० ४४

३. प्राचीन फागु संग्रह पृ० १३६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—इंदु रस विंदु लेसा कही, अे संवछर संख्या कही,
श्री गुरुचरण हइ धरी मनिधरी, भगति राग
श्री मंधिर तणो अे।

गुरुपरम्परा—तपगछनायक मुगतिदायक सुखदायक श्रीविजयदान
सूरीसरो,
उवझाय मुनिवर हर्षसागर तास गच्छइ दिनकरो।
सीस कहइ वंदन ताहरु श्री कमलसागर सोह अे,
तुझ चरणे मुझ मनि अतिहि लीणो जिम भमर
मालति मोह अे।[1]

कमलसोमगणि—आप खरतरगच्छीय धर्मसुन्दरगणि के शिष्य थे। आपने सं० १६२० में 'बारव्रतरास' नामक २० कड़ी की रचना की। देसाई ने इसका रचना काल सं० १६२० दिया है किन्तु अगरचंद नाहटा सं० १६२१ बताते हैं। इन्होंने 'लुंकाखंडन-प्रतिमामंडनरास' नामक एक साम्प्रदायिक खंडन-मंडनात्मक[2] रचना पतेपुर, सिंध में लिखा था। इसके अतिरिक्त इनके दो-तीन गीत भी प्राप्त हैं। रास की अन्तिम पंक्तियों में कमलसोम का नाम न होने से यह निश्चित नहीं हो पाता कि वस्तुतः वे ही इसके लेखक थे, यथा—

खरतरगछि रे श्री जिनचंद सूरीसरु,
तसु राजइ रे धर्मसुंदर गुरु सुखकरु।
तसु उपदेसइ वारहव्रत विधि संग्रहइ,
मनरंगइ रे विमला मनवंछित लहइ।

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार है—

"पणमिवि वीर जिणिंद चंद वलि गोयम गणहर,
देसविरति वय आदरुं अे समकितस्युं सुखकर।
देवबुद्धि अरिहंत देवगुरु साधु सुधर्म्म,
हरिहरदेव कुतित्थि न्हाण न करुं अे मम्म।"[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६७३ (प्राचीन संस्करण) भाग २ पृ० २६-२७ (नवीन संस्करण)

२. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७४ और जैन गुर्जर कविओ भाग २ (नवीन संस्करण) पृ० ११७।

३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड २ (प्राचीन संस्करण) पृ० १५०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन गुर्जर कविओ के नवीन संस्करण के सम्पादक श्री जयंत कोठारी ने कमलसोम के आगे प्रश्नवाचक चिह्न लगाकर इसके कर्त्ता को संदिग्ध घोषित कर दिया है किन्तु कोई निराकरण नहीं दिया है।

कमलहर्ष—आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबंध में अधिक नहीं ज्ञात हो सका है। आप आगमगच्छ से संबंधित थे। आपने सं० १६४० में 'अमरसेन वयरसेनरास' और सं० १६४३ में 'नर्मदासुन्दरी प्रबन्ध' नामक रचनायें की। नर्मदासुन्दरी प्रबन्ध की प्रति कमलविजय ने नरविजय के पठनार्थ लिखी थी।[1]

कर्मचन्द—आपने सं० १६०५ में 'मृगावती चौपइ' की रचना की जिसकी प्रति सोनीपत के पंचायती मंदिर के शास्त्रभण्डार में सुरक्षित है। इस प्रति की सूचना बाबूभाई दयाल जी ने दी है।[2] ये निश्चय ही चन्दनराज रास के कर्त्ता करमचंद या कर्मचंद से पूर्व हुए होंगे क्योंकि उक्त रास का रचनाकाल सं० १६८७ ज्ञात है। उनका विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रस्तुत कर्मचन्द के सम्बन्ध में इससे अधिक कुछ नहीं ज्ञात हो सका है।

करमचंद या कर्मचंद—आप खरतरगच्छीय सोमप्रभ > कमलोदय > गुणराज के शिष्य थे। आपने सं० १६८७ आसो वदी ९ सोमवार को कालधरी में 'चंद राजा नो रास' की रचना की। श्री देसाई ने पहले तो इसे मतिसार की रचना बताया था क्योंकि इसके अंत में 'मतिसार' शब्द आया है। यथा—

"चंदन राजा नो चोपइ सुणो जो हरषे मन गहगही,
मतसारइ मइ कीऊ प्रबन्ध, जिम हुतो तिम कह्यो समंध।"८२।[3]

किन्तु इस शब्द का अर्थ स्पष्ट मति या बुद्धि के अनुसार लगाया जाना चाहिये। रचना में लेखक का नाम करमचंद या कर्मचंद कई बार आया है। इसलिए इसमें शंका की जगह नहीं है। यथा—

अे चोपइ सुणसे जेह, पातक दूरे जाये तेह,
सदा हुये अधिक आणंद, बेकर जोड़ी कहे करमचंद।

---

१. जैन गुर्जर कविओ (नवीन संस्करण) भाग २ पृ० १८६

२. बाबूभाई दयाल—अनेकान्त वर्ष ५ पृ० २१६ ।

३. जैन गुर्जर कविओ (नवीन संस्करण) भाग ३ पृ० २७९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुपरंपरा के साथ भी कवि ने अपना नाम इस प्रकार बताया है—

नाम जपुं दिन प्रति गुणराज, संघ चतुविध कर जो राज,
भलो करी जो उत्तम दरसण, दीठे हुए आणंद।
इणि परि कहे गुण करे वखांण ···· करमचन्द।

इस रास को चौपाई भी कहा गया है क्योंकि रचना चौपाई, दोहे में बद्ध है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है :—

संवत सोल सत्यासीये भलो जोग अपार,
पुनर्वस नक्षत्र सोहामणो कीओ कवितउदार।

गुरु परम्परा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

इण परि करमचंद वीनवे, सुणो सहुको तेह,
धर्म करो तुम्ह प्राणिया, आणंद हुसइ अेह।

रचनास्थान—कालधरी नगर अति भलो दीऊइ आवे दाय,
इसो बीजे को नहि दीसे जोति सवाइ।[1]

रास की भाषा मरु प्रधान मरु-गुर्जर है। श्री अगरचंद नाहटा ने भी इनका नामोल्लेख जैन गुर्जर कविओ के आधार पर अतिसंक्षेप में किया है।[2]

कर्मसिंह—उपकेशगच्छ के सिद्धिसूरि की परम्परा में देवकल्लोल > पद्मसुन्दरगणि > देवसुन्दरगणि के शिष्य पुण्यदेव के आप शिष्य थे। आपने सं० १६७८ चैत्र शुक्ल १० सोमवार को दशाद्रा में नर्मदासुन्दरी चौपइ[3] की रचना पूर्ण की। इसका अन्य विवरण एवं उद्धरण उपलब्ध नहीं है।

कल्याण मुनि—आप लोंकागच्छीय वरसिंह > जसवंत > पकराज > कृष्णदास के शिष्य थे। आपने सं० १६७३ में आसो शुक्ल ६ को सिद्धपुर में नेमिनाथ स्तवन लिखा। वरसिंह जी सं० १६२७ में गद्दी पर बैठे और सं० १६६२ में दिल्ली में स्वर्गवासी हुए थे। इनके पाट पर जसवंत बैठे थे। अतः इनके प्रशिष्य कल्याण मुनि ने नेमि-

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (नवीन संस्करण) पृ० २७८-२७९।

२. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८५।

३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ (प्राचीन संस्करण) पृ० ५०९ और भाग ३ (नवीन संस्करण) पृ० २२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाथ के आकर्षक चरित्र पर आधारित यह रचना सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ही की होगी। इसलिए यह तिथि तर्क संगत प्रतीत होती है। इसकी कुछ अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

श्री नेमि जिनवर सयल सुषकर दुषहरण मंगलमुदा,
श्री रूप जीव जी पटिधारक श्री वरसिंघ जी सुवर सदा।
श्री वरसिंह पाटि श्री जसवंत सोभर जिगम तिर्थ जाणीये,
तास सीस पवर मुनिवर श्री पकराज बषाणीये,
तास पाटि पंडित सोभि श्री कृष्णदास मुनीसरा,
तास सीस कल्याण जंपइ सकलसंघ आणंदकरा।

इसका रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है—

संवत सोल त्रहुत्तरा वर्षे आसो सुद छठि सार अे,
गुरुसवारि नेम गांऊ सिद्धपुर मझारि अे।
कहि मुनि मन हटषी आणी संघ जइजइकार अे।[1]

(शा) **कल्याण या कल्याणसाह**—कडवागच्छ के आठवें पट्टधर साह तेजपाल के आप शिष्य थे। आपने सं० १६८५ में 'कटुकमत पट्टावली' लिखी जो 'अर्वाचीन गुजराती गद्य—कडूआमति गच्छ पट्टावली संग्रह' में संग्रहीत एवं प्रकाशित है। आपकी दूसरी रचना 'धन्यविलास रास' या धन्नाशालिभद्र रास (४ प्रस्ताव ४३ ढाल) सं० १६८५ या ८२ में ज्येष्ठ शुक्ल ५ को लिखी गई। इसके अन्त में कवि ने लिखा है—

धन्य विलास ना च्यार प्रस्ताव छे, ढाल त्रहृतालीस तस प्रमाण'[2]

रचनाकाल–संवत सोल पंच्यासी संवत्सरि ज्येष्ठ शुदी पंचमी पुण्यमाण,
धन्यविलास थयो संपूर्ण दिनदिन संघनि मंगलमाल।

इसके पाठान्तर में सं० १६८२ भी मिलता है यथा—

"सोल ब्यासी संवच्छरे ज्येष्ठ सुदि पंचमी पुण्यखाण,
धन्यविलास कर्युं संपूरण, होय दिनदिन कल्याण।"[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ (प्राचीन संस्करण) पृ० ५११ और भाग ३ (नवीन संस्करण) पृ० १७८।

२. वही भाग ३ (नवीन संस्करण) पृ० २६१।

३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके प्रारम्भ में ऋषभदेव, शान्तिनाथ और नेमिनाथ की वंदना है। यह रचना धन्यकुमार के दृष्टान्त द्वारा दान के माहात्म्य पर प्रकाश डालती है। इसके अन्त में साह तेजपाल को गुरु रूप में स्मरण किया गया है।

'वासुपूज्य मनोरम फाग' (सं० १६९६ माह शु० ८ मसोथिरपुर) यह प्राचीन फागु संग्रह में प्रकाशित प्रसिद्ध रचना है। ३२८ कड़ी का यह फागु बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य के चरित्र पर आधारित है। इसके दो विभाग हैं। उन्हें कवि ने उल्लास कहा है। पहला उल्लास १५६ और दूसरा उल्लास १७२ कड़ी का है। वासुपूज्य चंपापुरी के राजा वसुपूज्य और उनकी रानी जया के पुत्र थे। इन्होंने गृहस्थ जीवन में विवाह, राज्यशासन आदि भोगों से ऊबकर अन्ततः सब त्याग दिया; दीक्षा लिया और तपपूर्वक केवलज्ञान प्राप्त किया। अपना मोक्षकाल निकट जानकर वे चम्पानगरी पधारे और वहीं अनशन पूर्वक निर्वाण प्राप्त किया। इसमें फाग के लक्षण कम रास के अधिक हैं किन्तु लेखक ने इसे बारबार फागु कहा है। इसका छंदबंध देशी ढालों में बँधा है। कवि ने लिखा है—

पणमीय जिन चउवीस, पाय नमाडीय सीस।
वासूपूज्य जिन तणउ अे, फाग रलीआमणउ ए।
फागु ते फागुण मासि लोक ते रमइ उलहासि,
रामति नव नवी ए किम जाइं वर्णवीए।''[१]

इसके प्रारम्भ में सरस्वती वंदना संस्कृत भाषा में की गई है, यथा

'सरस्वती' नमस्कृत्य प्रणम्य सद्गुरुन्नपि,
वक्ष्ये मनोरमं फागं वासुपूज्यजिनस्य च।'[२]

प्रथम उल्लास में स्थान-स्थान पर मुख्य कथा को रोककर लेखक जैनाचार के नियमों को दृष्टान्तपूर्वक समझाने लगता है इससे कथा अनावश्यक रूप से विस्तृत तथा अनगढ़ हो गई है। विमलमंत्री पुण्य की महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है 'पुण्यइ तनु हुइ निरोग, पुण्य हुई वंछित भोग, पुण्यइ बेटा योग।' इसमें विभिन्न दृष्टान्तों के रूप में गजराज कथा, हंसकेशव की कथा के द्वारा जातिमद, रात्रिभोजन

१. प्राचीन फागु संग्रह पृ० १५६।
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (नवीन संस्करण) पृ० २६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोष तथा व्रतादि के सुफल पर प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः कथा दूसरे उल्लास से ही प्रारम्भ होती है यथा 'चंपानगरी सार चांपा बनि करी सोहइ, गढ़मढ़ पोलि प्राकार नर नारी मन मोहइ'।[1]

अवसर निकाल कर कवि ने वसंत वर्णन के बहाने तमाम वृक्षों की सूची गिनाई है और उत्सवों के साथ हस्तिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा पद्मिनी आदि नारियों का विवरण भी दे दिया है यथा 'पद्मगंधा सुशोभना रंगिराती लाल, भमरा करइ गुंजार, करइ क्रीडा हो उड़ाडइ गुलाल। ... बहुला भेद छइ एहना रंगि राती लाल, परणइ तेह गमार करइ क्रीडा हो उड़ाडइ गुलाल।[2]

वसंत क्रीड़ा के अन्तर्गत काम क्रीड़ा का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

'कोई कामिनी निज कंतनइ पुष्प कंदुक मारंति,
कोइ हंसि कोई विलगई, कोई लाजधरी वारंति।'

लेकिन वासुपूज्य यह क्रीड़ा देखकर उल्टे सोचने लगते हैं कि यह मोह की कैसी विडम्बना है? और सब कुछ त्यागकर दीक्षा का निश्चय कर लेते हैं और

'छसय मित्र साथि करी मनि धरी सिद्धनूं ध्यान,
चारित्र लीइ जगगुरु पामइ चउथूं न्यान।'

फाग के अन्त में कवि रचनाकाल बताता हुआ लिखता है—

सोल छन्नूं माघ मासे सुदि अष्टमी सोमवार,
मनोरम फाग वासुपूज्यनउ सेवक कल्याणकार।

इस फाग के बीच-बीच में संस्कृत के पद्य भी हैं जिनसे अनुमान होता है कि कवि संस्कृत का भी जानकार रहा होगा किन्तु आमतौर पर मरुगुर्जर भाषा का प्रयोग किया गया है। आपकी चौथी उपलब्ध कृति 'अमरगुप्त चरित्र' अथवा अमरतरंग भी दो उल्लासों में विभक्त है। यह रचना सं० १६९७ में अहमदाबाद में लिखी गई। रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है—

पोस मास नइ सोल सत्ताणु सुदि तेरसि सोमवार जी,
अमरतरंग कीऊं मनिरंगइ, सुखसंपद तार जी।

---

१. प्राचीन फागु संग्रह पृ० १५८।
२. वही पृ० १९३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहमदाबाद हबतपुर माहइ, चंद्रप्रभु पसाय जी,
कटुकगण सदा जयवंतु सेवे कल्याण थाय जी।[1]

इसका आदि देखिये--

ऋषभादिक चउवीस जिन, नामिइ नित्य नित्यरंग,
वैर विरोध ने परिहरउ, संभली अमरतरंग।
वैर न कीजइ भवीकजन, वैरइ वैर विवृधि,
सुन्दर सुरप्रीयनी परइ मूकइ सुणी संबंध।

इसमें समरादित्य के चरित्र के दृष्टान्त से वैर-विरोध के शमन का सन्देश है। श्री देसाई ने कल्याण की गुरुपरम्परा खरतरगच्छ के जिनचंदसूरि, जिनवल्लभसूरि के साथ बताई थी, जो असंगत प्रतीत होती है। इसीलिए नवीन संस्करण में सम्पादक ने उसका परिमार्जन कर दिया है।

कल्याणकमल--आपका एक गीत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिनचंदसूरि गीतानि के अन्तर्गत २५वें अनुक्रम पर संकलित है। यह २५वें अनुक्रम में १३वाँ गीत है। राग धन्यासिरी मारुणी राग में आबद्ध यह ८ कड़ी की रचना है। इसकी भाषा सरल हिन्दी है यथा--

सुगुरु मेरइ जीवउ चउसाल,
खम्भायत दरिया की मच्छली बोलत बोल रसाल।

इससे लगता है कि यह रचना खम्भात में हुई होगी और इस गीत की रचना श्री जिनचन्द्रसूरि के समय अर्थात् १७वीं शताब्दी में हुई होगी।

कल्याणकलश--आपने सं० १६९३ में 'चंदनमलयागिरि चौपइ' की रचना मरोठ नामक स्थान में की। इसकी प्रति केसरियानाथ भण्डार, जोधपुर में सुरक्षित है। प्रति देख न पाने के कारण अधिक विवरण देना संभव नहीं हुआ।[2]

कल्याणकीर्ति--आप दिगम्बर साधु देवकीर्ति के शिष्य थे। आप भीलोड़ा ग्राम निवासी थे और वहीं के विशाल जैन मंदिर में बैठकर

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (नवीन संस्करण) पृ० २६४
२. श्री अगरचन्द नाहटा--परम्परा पृ० ८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने सं० १६९२ में 'चारुदत्त प्रबन्ध' की रचना की। इसका नाम चारुदत्त रास भी मिलता है। मंदिर की विशालता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है--

मंडप मध्य रे समवसरण सोहि,
श्री जिनबिंब रे मनोहर मन मोहि,
मोहि जनमन अति उन्नत मानस्तम्भ विलास अे,
तिहां विजयभद्र विख्यात सुन्दर जिनसासन रक्षपाल अे।

रचनाकाल--

तिहाँ चोमासि के रचनाकरि सोलवाणु गिरे आसो अनुसारि
कल्याणकीरति कहि सज्जनभणो सुणी आदर करि।[1]

आपकी एक अन्य रचना 'लघु बाहुबलिबेलि' में शान्तिदास के साथ सोममूरति का उल्लेख है किन्तु वह स्पष्ट नहीं है। रचना अच्छी है। अधिकतर दूहा चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है, त्रोटक छंद का भी प्रयोग किया गया है। यह रचना सेठ चारुदत्त के चरित्र पर आधारित है। इसका अन्तिम छन्द इस प्रकार है--

"भरतेस्वर आवीया नाम्यु जिनवरशीस जी,
स्तवन करी इम जंपए हूं किंकर तु ईस जी।
श्री कल्याणकीरति सोममूरति चरणसेवक इम भणि,
शांतिदास स्वामी बाहुबलि सरण राखु मझ तम्ह तणि।"[2]

आप राजस्थानी के अच्छे कवि थे। आपने सं० १६७७ में पार्श्वनाथरास, श्रेणिक प्रबन्ध (कोटनगर सं० १७०५) एवं बधावा तथा कुछ स्फुट पद भी लिखे हैं। आप हिन्दी (मरुगुर्जर) के साथ संस्कृत के भी अच्छे लेखक थे। जीरावली पार्श्वनाथ स्तवन, नवग्रह-स्तवन एवं तीर्थङ्कर विनती आपकी संस्कृत में लिखी उपलब्ध रचनायें हैं। आप १७वीं-१८वीं शताब्दी की संधिकाल के लेखक थे। आपकी भाषा हिन्दी है जिसपर राजस्थानी का स्वाभाविक प्रभाव दिखाई पड़ता है।

कल्याणचन्द्र -आप देवचन्द्र के शिष्य थे। आपने सं० १६४९ में 'चित्रसेन पद्मावती रास' की रचना की।[3] एक कल्याणचन्द्र ने

१. श्री कस्तूर चन्द कासलीवाल --राजस्थान के जैन संत पृ० १९७
२. वही १९८
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (प्रथम संस्करण) पृ० ७९६, एवं (नवीन संस्करण) भाग २ पृ० २६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'कीर्तिरत्नसूरि विवाहलु' या चउपइ लिखी है जिसकी रचना-तिथि अज्ञात है किन्तु ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह के सम्पादक ने उसे १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की माना था अतः उसका विवरण वहीं दे दिया गया है। प्रस्तुत कल्याणचंद्र के सम्बन्ध में इससे अधिक विवरण नहीं प्राप्त हो सका और न रचना का उद्धरण ही मिल पाया।

कल्याणदेव—आप खरतरगच्छीय जिनचंद्र सूरि की परम्परा में चरणोदय के शिष्य थे। आपने सं० १६४३ में वछराज देवराज चौपइ' की रचना बीकानेर में की। श्री नाथूराम प्रेमी इसे सामान्य कोटि की रचना बताते हैं। डॉ० भगवानदास तिवारी ने इस कथात्मक कृति का रचनाकाल सं० १५८६ बताया है जो अशुद्ध है। श्री देसाई और श्री नाहटा दोनों ने ही इसका रचनाकाल सं० १६४३ स्वीकारा है जो लेखक की इन पंक्तियों से सम्मत है—

'संवत सोल त्रयाली बरसइ, प्रबंध कियउ मनहरसइ,
विक्रम नयर रिषभ जिणेसर, जस समरण सवि टलइ कलेस।'

गुरुपरंपरा —

श्री जिनचन्द्रसूरि गछनायक, सेवकजन वंछित सुखदायक,
चरणोदय गुरु सीस सुजाण, मुंकी कुमति कुदाग्रह काण।
x x x
कहइ कल्याणदेव गुरु ध्यावइ, इह रति परति तणा सुख पावइ।

इस कृति का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

जिनवर चरण कमल नमी, सुहगुरु हियइ धरेसि,
समर्या सवि सुष संपजइ, भाजइ सयल कलेस।[1]

इसमें दो राजकुमारों की कथा हैं जिनके दृष्टान्त द्वारा बुद्धिकौशल की प्रशंसा की गई है। रचना मरुगुर्जर भाषा में की गई है किन्तु राजस्थानी का प्रभाव स्वभावतः अधिक है।

कल्याण विजय—आप तपागच्छीय विजयसेन सूरि के शिष्य थे। आपने एक 'चौबीसी' लिखी है जिसमें २४ तीर्थंकरों की स्तुति है। रचना का अन्त निम्नलिखित कलश से हुआ है—

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७६' जैन गुर्जर कविओ भाग २ (प्रथम संस्करण) पृ० ७६८; भाग २ (नवीन संस्करण) पृ० २१०

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अंतिम वीर जिणेसर संघ सरोज सहस्र करा,
चउवीस कवित्त विनोद नवरसे थुणिया भुवणचित्तहरा,
विजयादिमसेन मुणिंद विनेय कहि कवि कल्याणकरा,
कमलोदय कारण केवलनाण विलास जयंकर कीर्तिधरा।२५।

इसकी सं० १८१८ की लिखित प्रति प्राप्त है।

कल्याणसागर—आप अंचलगच्छ के ६४ वें पट्टधर थे। आपके पिता लोहाड़ा ग्राम निवासी कोठारी नानिग थे और माता नामिल दे थीं। आपका जन्म सं० १६३३ में हुआ। बचपन का नाम कोडण था। आपने सं० १६४२ में धवलपुर में दीक्षा ली और सं० १६४९ में आपको अहमदाबाद में आचार्य पद प्रदान किया गया। सं० १६७० में आपको पाटण में धूमधाम के साथ गच्छेश पद प्रदान किया गया। आपने कच्छ देशाधिपति को प्रतिबोध देकर वहाँ जीवों का शिकार बन्द कराया था। इनकी प्रेरणा से नवानगर के श्रेष्ठी शा० वर्द्धमान ने जिनप्रासाद का निर्माण कराया था। आपने अनेक जिनालयों और जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा कराई थी, ये वस्तुतः बड़े प्रभावशाली आचार्य थे। ८५ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ।

रचनायें—आपकी दो रचनायें उपलब्ध हैं। आपकी प्रथम प्रसिद्ध कृति 'बीसी' या बीस विहरमान जिनस्तुति है और द्वितीय का नाम है "अगड़दत्तरास"। अगड़दत्तरास का रचनाकाल श्री देसाई ने पहले सं० १५१० के आसपास बताया था।[2] फिर वहीं आगे उसका रचनाकाल सं० १६४९ से १७१८ के बीच बताया है। अतः यह रचना इन्हीं कल्याणसागर की सं० १६४९ के आसपास की मानी जानी चाहिये। जैन गुर्जर कविओ के नवीन संस्करण के संपादक का विचार है कि यह रचना स्थानसागर की हो सकती है किन्तु डॉ० हरीश शुक्ल ने इसे इन्हीं की गुजराती कृति कहा है।[3] यह रचना विवादास्पद है

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (प्रथम संस्करण) पृ० १५०५, भाग २ (नवीन संस्करण) पृ० २८९

२. वही, भाग १ पृ० ४८९

३. डॉ० हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कविओ की हिन्दी कविता को देन पृ० १०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु दूसरी रचना 'वीसी' निर्विवाद रूप से आपकी ही है और श्रेष्ठ रचना है। उसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री सीमंधर साभलउ, अेक मोरी अरदासो,
सगुण सोहावा तुम बिना, रयणी होइ छमासो,
जीवन जग धणी।"

अन्त—कल्याणसागर प्रभु सुं रमि जी, हरीय फरी मुझ मीट।

x x x

"दरसन द्यउ जिनवर तम्हें, भगवंत वछल भगवंत रे,
कल्याणसागर प्रभु महारा अतुलीबल अरिहंत रे।"[१]

कल्याणसागर (II)—आप गुणसागर सूरि के शिष्य थे। आपने आषाढ़ शुक्ल १३ सं० १६९४ में 'दानशील तपभाव तरंगिणी' की रचना उदयपुर में की।[२] श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग ३ (प्रथम आवृत्ति) के पृ० १६१० पर इस संबंध में मात्र इतना ही उल्लेख किया है।

कवियण—जैन साहित्य में कई कवियण नामधारी कवियों का पता चलता है। एक कवियण विमलरंग मुनि के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६४८ में श्री जिनचन्द्र सूरि अकबर प्रतिबोध रास' नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक रचना अहमदाबाद में की थी। यह रचना ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के पृ० ५७-५८ पर संकलित-प्रकाशित है। इसमें युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि और सम्राट् अकबर के मिलन के समय की प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। इससे ज्ञात होता है कि बीकानेर के राजा रायसिंह के प्रधान मंत्री कर्मचंद[३] द्वारा जिनचन्द्र-सूरि की प्रशंसा सुनकर अकबर को उनके दर्शन की इच्छा हुई। सूरि जी मानसिंह से सन्देश प्राप्त कर विहार करते हुए लाहौर गये जहां अकबर ने उनका सम्मान किया और युगप्रधान पद दिया—

'युगप्रधान पदवी दिद्ध गुरु कूँ, विविध बाजा बाजिया।
बहुदान मानइ गुणह गानइ, संघ सवि मन गाजिया।१५।[४]

---

१. जैन गुर्जर कविओ (नवीन संस्करण) भाग २, पृ० २६९

२. श्री अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २३०

३. मंत्री कर्मचंद बीकानेर नरेश कल्याणमल्ल, तत्पश्चात् रायसिंह के भी मंत्री थे। इन्हीं के समय वे अकबर के दरबार में आये थे।

४. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ५७-५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३६ पद्यों के इस रास में उस समय की सभी प्रमुख ऐतिहासिक घटनायें वर्णित हैं। उसी समय मानसिंह को सूरिजी का पट्टधर बना कर उन्हें जिनसिंह सूरि नाम दिया गया, उसी समय गुणविजय, समयसुन्दर आदि विद्वानों को उपाध्याय की पदवी दी गई थी।

दूसरे **कवियण** ने चंदाउला छंद में २४ जिनस्तवन या चौबीसी लिखी जिसकी अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार है--

'तुझ गुण गाऊं कथारसे में समकित गुण दिपाव्यो रे
कवियण जग मां जीतना पण गुहिर निसांण वजाव्यारे।'[1]

इसका रचना काल सं० १६५२ से पूर्व बताया गया है। इन्हीं कवियण की दूसरी रचना 'पांचपांडवसज्झाय' है जिसकी अन्तिम पंक्तियों से ज्ञात होता है कि ये तपागच्छीय हीरविजयसूरि की परम्परा से सम्बन्धित थे, यथा—

श्री हीरविजयसूरि गछ धणी, तपगछ नो उद्योतकार रे।
करजोड़ी कवियण कहे, मुझ आवागमन निवारो रे।

वहीं इनकी दो रचनाओं—तेतलीपुत्ररास और अमरकुमाररास का मात्र नामोल्लेख प्राप्त होता है।

श्री मो० द० देसाई ने प्रसिद्ध कवि समयसुन्दर उपाध्याय से पहले एक अन्य समयसुन्दर का उल्लेख किया है। उन्हें भी कवियण कहा है[2] और इनकी रचना 'स्थूलिभद्ररास' का विवरण दिया है। यह रचना सं० १६२२ हेमन्त ५, बुधवार को लिखी गई। पता नहीं ये चौबीसी वाले कवियण हैं अथवा अन्य। स्थूलिभद्ररास में समयसुन्दर और कवियण दोनों नाम आये हैं, यथा—

भविक नरनइ प्रतबोध दायक मिथ्यात तमहर दिणयरो,
ते थुलिभद्र सयल संघनइ समयसुन्दर मंगलकरो।९५।[3]

x x x

१. जैन गुर्जर कवियो भाग १ (प्रथम संस्करण) पृ० १५९

२. वही, भाग ३ (प्रथम संस्करण) पृ० ८४४

३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुवइ श्री गुरु संघ आगलि कवियण करइ अरदास,
ते सुणज्यो तम्हें सज्जन उत्तम मति सविलास,

रास के अन्त में भी कवियण शब्द आया है यथा—

तां चिर जयउ चतुरबिध श्री संघसु एह रास,
इम जंपइ कवियण आणी बुद्धि प्रकाश।

प्रसिद्ध कवि समयसुन्दर उपाध्याय ने भी 'चौबीसी' लिखी है। परन्तु दूसरे कवियण की 'चौबीसी' उससे भिन्न है। इसलिए यह अनुमान होता है कि इस चौबीसी के लेखक कवियण का वास्तविक नाम भी समयसुन्दर रहा होगा और वे खरतरगच्छीय सकलचन्द के शिष्य समयसुन्दर उपाध्याय से भिन्न व्यक्ति थे। हो सकता है कि प्रस्तुत चौबीसी, पांचपांडवसंझाय और स्थूलिभद्ररास के कर्त्ता एक ही कवियण हों जिनका वास्तविक नाम समयसुन्दर रहा हो। इस विषय में शोध अपेक्षित है।

कृपासागर—तपागच्छीय विद्यासागर के शिष्य थे। आपने 'नेमिसागररास' सं० १६७२ में लिखा जो प्रकाशित रचना है। यह १३५ कड़ी की रचना उज्जयिनी में लिखी गई। इसका आदि इस प्रकार है—

सकल मंगल सकल मंगल मूल भगवंत,
शान्ति जिणेसर समरीइं रिद्धि वृद्धि सविसिद्धि कारण।

यह रचना 'जैन ऐतिहासिकरास माला' में प्रकाशित है।[1] इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोल बिहुत्तरइं नयर उजेणी मझार जी।
मागसिर शुदि बारस दिने थुणिउ श्री अणगारो जी।
वाचक विद्यासागर तास पंचायणा सीसो जी,
विबुध कृपासागर कहि पूरो सकल जगीसो जी।[2]

कृष्णदास—ये पंजाब में लाहौर के निवासी थे। इन्होंने सं० १६५१ में 'दुर्जनसाल बावनी' नामक प्रसिद्ध रचना लाहौर में लिखी। दुर्जनसाल ओसवालवंशीय जड़ियागोत्रीय जगुशाह के वंशधर थे।

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा ९०
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४८४-८५ और भाग ३ पृ० ९६३ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० १७३-१७४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्जनसाल के गुरु हीरविजय ने लाहौर में एक मन्दिर बनवाया और गुरु की आज्ञा से दुरजनसाल ने संघयात्रा निकाली। प्रस्तुत बावनी में ये सभी तथ्य अंकित हैं। श्री भगवानदास तिवारी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी जैन साहित्य' में इनकी अन्य दो पुस्तकों का भी उल्लेख किया है—(१) अध्यात्म बावनी (२) अनादि संवाद शतक। दुरजनसाल बावनी का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

ऊंकार अनन्त आदि सुरनर मुनि ध्यावहीं,
जिके पंचपरमिष्ठ सुनउ सब इसि महि पावइ।

x x x

सो सिवरमा निरमल बुद्धि दे सकल लोक मन भावनी,
दुरजनसाल संघपति कहइ वसुधा विस्तर बावनी।

रचनाकाल—सोलह सइक्यावना वीर विक्रम संवछर,
मीनचन्द ओ दसीवरन विधि बावन अक्षर।

अन्त - संघाधिपत्ति नानू सुतनूं दुरजनसाल धरम्मधुर,
कहि किशनदास मंगलकरन हीरविजय सूरींद गुरु।"[१]

इस रचना का सन्दर्भ 'सूरीश्वर अनेक सम्राट्' में भी आया है। इसकी भाषा हिन्दी है।

कीर्तिरत्नसूरि—आप तपागच्छीय तेजरत्नसूरि के शिष्य थे। तेजरत्नसूरि का प्रतिमालेख सं० १६१५ का लिखा हुआ प्राप्त है अतः उनके शिष्य कीर्तिरत्नसूरि अवश्य १७वीं शताब्दी के लेखक होंगे और उनकी रचना 'अतीत अनागत वर्तमान जिनगीत' का रचनाकाल भी १७वीं शताब्दी ही होगा। जैन गुर्जर कविओ भाग २ (द्वि. सं.) पृष्ठ १ पर इसका रचनाकाल सं० १५८१ अशुद्ध प्रतीत होता है। प्रथम संस्करण में श्री देसाई ने इन्हें १७वीं शताब्दी में रखा है किन्तु रचना का समय नहीं दिया है।[२] इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सकल सुरासुर जपइ जस नाम, पयपंकज प्रणमु अभिराम।
अतीत अनागते वर्तमान सार, नाम सुणतां रे हर्ष अपार।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३०९ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० २७५ (द्वितीय संस्करण)

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६८७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल एवं स्थान—

खुमांसु पाटण मांहि खंति, भेटा श्री नारिंग पास रे।
संवत पूरणं इंदु अे निरखु वसु वसुधामां उल्हास रे।

इससे सं० १६८१ रचनाकाल सिद्ध होता है अतः १५८१ भूल से छपा लगता है। यह रचना कीर्तिरत्न की है और वे तेजरत्न के शिष्य हैं, जो इन पंक्तियों से प्रमाणित होता है—

"जे भणि अे स्तवन अनोपम, ते घरि ऋद्धि बिलास रे,
श्री कीरतिरत्न सूरीश्वर पभणि, पूरो अमारी आसरे।"

कलश

इम नाभिनन्दन जगत्रवंदन स्वामी श्री रिसहेसरो,
शेत्रुंजमंडण दुरितखंडण वंछितदायक सुरतरो।
सवि आसपूरण दुखचूरण ध्यान तोरुं चित्त धरो,
श्री तेजरत्न सूरिंद सीसइ थूणिया अे मंगलकरो।[1]

गोड़ी पार्श्वस्तवन नामक एक रचना तेजरत्नसूरि शिष्य के नाम से मिली है। बहुत सम्भव है कि यह शिष्य कीर्तिरत्नसूरि ही हों। यह कृति सं० १६१६ का० शुक्ल २ रविवार को रची बताई गई हैं। दोनों रचनाओं में समय का लम्बा अन्तराल है इसलिए यह कोई अन्य शिष्य भी हो सकता है किन्तु इस सम्भावना से एकदम इनकार भी नहीं किया जा सकता कि तेजरत्नसूरि के शिष्य कीर्तिरत्नसूरि ही इसके भी रचयिता हों। मुझे ऐसा लगता है कि रचनाकाल निकालने में भूल हुई है। स्वयं कवि ने रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत सोल वसू अदूआ जासणो
फागण सुद बीजा रविवार गणो।[2]

यहाँ 'सोल वसू अदूआ' का अर्थ १६१६ लगाया गया है पर वसू = आठ रचनाकाल का दूना १६ करने के बजाय ८ के आगे दो (२) रखना चाहिए अतः रचनाकाल सं० १६८२ मानना उचित होगा। ऐसा

---

१. श्री देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६८७ (प्रथम संस्करण)

२. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग २ पृ० २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने पर कीर्तिरत्न सूरि की प्रथम रचना के एक वर्ष बाद ही उनकी यह दूसरी रचना संगत प्रतीत होगी। दोनों रचनाओं की भाषा-शैली और विषय-वस्तु में भी प्रायः समानता है। दोनों के गुरु एक ही हैं। इस रचना में भी कवि ने तेजरत्नसूरि को गुरु बताया है यथा—

भलो भाव भगतें भलो जगते पुरिसादाणी स्तनवणी,
श्री तेजरतन सूरिंद सीसो स्तवो गोडीपुर धणी।६०।[1]

अतः यह रचना तेजरत्न शिष्य कीर्तिरत्नसूरि की हो सकती है। इसका आदि इस प्रकार लिखा गया है—

"सरस वचन सरसति तणा पामी अविचल मत,
श्री गोड़ी पार्श्व जिणंदनी स्तवसूं जिनगुणकीरत।"

इसके अन्त का 'कीरत' लेखक के नाम कीर्तिरत्न का सूचक भी हो सकता है।

कीर्तिवर्द्धन या केशव—श्री अगरचंद नाहटा ने कीर्तिवर्द्धन और केशव को एक ही व्यक्ति बताया है।[2] ये खरतरगच्छीय श्री दयारत्न के शिष्य थे। इन्होंने सदयवत्स सावलिंगा चौपइ सं० १६९७, सुदर्शन चौपई (सं० १७०३), प्रीतछत्तीसी, दीपकबत्तीसी, अमरबत्तीसी, चतुरप्रिया तथा जन्मप्रकाशिका नामक रचनायें हिन्दी (मरुगुर्जर) में कीं। इससे प्रमाणित होता है कि ये अच्छे कवि थे। सदयवत्स-सावलिंगा चौपइ शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट से प्रकाशित है और जैन ऐतिहासिक काव्यसंग्रह में भी पृष्ठ १०२ पर संग्रहीत है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

स्वस्ति श्री सोहग सुजस, वंछीत लील विलास,
दायक जिननायक नमूं, पूरण आस उल्लास।[3]

रचनाकाल—संवत मुनि निधि रस शशि विजयदसमी रविवार
चतुर चाही रची चौपइ मुनि केशव हितकर।[4]

---

१ जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग २ पृ० २

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८८

३. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग ३ पृ० ३३१-३२

४. वही, (द्वितीय संस्करण) भाग ३ पृ० ३३२ और (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० १०८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इससे स्पष्ट है कि यह रचना सं० १६९७ विजयादशमी, रविवार को लिखी गई, और लेखक का नाम मुनि केशव भी था। गुरु परंपरा बताते हुए कवि ने अपना नाम कीर्तिवर्द्धन भी लिखा है इससे प्रमाणित होता है कि कीर्तिवर्द्धन और केशवमुनि एक ही व्यक्ति थे। सन्दर्भित पंक्तियाँ देखिये —

श्रीखरतरगछ गगन दिणंद, प्रतपे श्री जिनहरष सूरींद,
शिष्य तास बहुविदविचार, दीपता दयारत्न दिनकार।
मुनि कीरतिवरधन शिष्यतास, बंधन जिन राखण रंग रास।[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि केशवमुनि या मुनिकीर्तिवर्द्धन एक ही व्यक्ति थे और वे खरतरगच्छीय जिनहर्ष के प्रशिष्य तथा दयारत्न के शिष्य थे। यह रचना प्रसिद्ध है और कई जगह से प्रकाशित भी है। इनकी अन्य रचनाओं का समय रीतिकाल की संधि में पड़ता है और प्रीत छत्तीसी, दीपक बत्तीसी तथा चतुरप्रिया आदि हिन्दी रीतिकाल से प्रभावित रचनायें हैं। चतुरप्रिया प्रसिद्ध हिन्दी कवि केशवदास की कविप्रिया, रसिकप्रिया की शैली पर लिखी नायक-नायिका भेद से सम्बन्धित रचना है।

'एक सावलिंगा सदयवत्स या सुदेवच्छ सावलिंगा चौपाई' के रचयिता तपागच्छीय विजयसेनसूरि के शिष्य केशवविजय हैं। उनका विवरण यथास्थान दिया जायेगा। यहाँ मात्र इसलिए उल्लेख कर दिया कि इस कृति के रचनाकारों के संबंध में भ्रम न रहे। केशव मुनि को जैन गुर्जर काव्य द्वितीय आवृत्ति के संपादक श्री कोठारी ने कीर्तिवर्द्धन के शिष्य होने की संभावना व्यक्त की है।

कीर्तिविमल —तपागच्छ के विजयविमल की परंपरा में आप लालजी के शिष्य थे। आपने विजयदेवसूरि के समय 'चतुर्विंशति जिन स्तवन' नामक रचना की। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

विजय विमल विमलविबुध सीस सिरोमनि पंडित लालजी,
गणिवरु तस सीस पभणइ कीर्तिविमल बुध ऋषी मंगलकरु।[2]

१. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग ३ पृ० ३३२ और भाग ३ पृ० १०८३ (प्रथम संस्करण)
२. वही, (द्वितीय संस्करण) भाग ३ पृ० १७७, (प्रथम संस्करण) भाग १ पृ० ५९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी एक अन्य रचना 'गजसिंहकुमार' का भी पता चलता है किन्तु विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है।

कीर्तिविजय—तपागच्छीय कानजी आपके गुरु थे। आपने सं० १६७२ में 'विजयसेनसूरि निर्वाण सज्झाय' की रचना विजयसेन सूरि के स्वर्गवासी होने के बाद की। यह ४७ कड़ी की रचना है। इसके प्रारम्भ में अकबर का उल्लेख है यथा—'जवहरी सांचो रे अकबर साहजी रे' इसी ढाल पर सरस्वती की वंदना प्रारम्भ होती है–

'सरसति भगवति चित्त धरीरे, प्रणमी निज गुरु पाय रे।
हरि पटोधर गायतां रे मुझ मनि आणंद थाय रे,
तु मनमोहन जे संग जी रे।'

इसकी अंतिम पंक्तियाँ देखिये–

हीर पटोधर संघ सुखकर विजयसेन सूरीसरो,
में थुण्यो सूर सवाइ अविचल विरुद महिमामंदिरो।
जास पाटि प्रगट प्रताप दीपे विजयदेव दिवाकरो,
कान जी पंडित सीस कीरतिविजय वंछित करो।'[1]

कुंवरजी—१७वीं शताब्दी में कुंवरजी नामक दो कवियों का उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत कुंवर जी लोकागच्छीय रूपजी के प्रशिष्य एवं जीवराज के शिष्य थे। आपने सं० १६२४ श्रावण सुदी १३ गुरुवार को 'साधुवंदना' नामक रचना की। इसका प्रारम्भ देखिये–

त्रिभुवन माहि तिलक जिणिंद, सीषां महियल वलीय मुणिंद,
काल अनादि अनंता जोई, निति प्रणमउ करजोडी दोयउ।

अंत–मुनि रूपसुन्दर देवकुंवर जीवउ तेज सुभास अे,
जगि मेघ जीवन जन आनंदन तेज ससि रवि दास अे,
इम सुगुण दाखीय नाम भाखी हरिष सिउं मुनि गाइयइ
नर अमर शिव सुख सम्पति वेगि अेणी परि पाइयइ।[2]

सं० १६९१ में ऋषि केशव द्वारा लिखित इसकी प्रति उपलब्ध है जिसमें लोकागच्छ के आठ पाटों का नाम दिया गया है: रूपजी, जीवऋषि, कुंअरजी, श्रीमल्लजी, रत्नाकरजी, केशवजी, शिवजी, संघराज जी।

१. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग ३ पृ० १७६
२. वही, भाग २ पृ० १३८-१३९ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० ७०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंअर जी (II) तपागच्छीय हर्षसागर के प्रशिष्य एवं राजसागर के शिष्य थे। आपने सं० १६५७ आषाढ़ शुदी ५ को एक रचना 'सनत् कुमार राजर्षिरास' नाम से की, इसमें रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है—

संवत सोल सतावनि थुणीउ (सकती) सनतकुमार जी रे,
आषाढ़ सुदि पांचम भली रचीउ रास उदार जी रे।

गुरुपरंपरा—तपगच्छनायक दीपतो, श्री विजिसेन सूरंद जी रे,
तस पट्टि विजिदेव गुणनिलो, टालि सघला दंद रे।
उवझाय श्री श्री हरषसागर, तास सीस पंडित भलो,
सोभाग श्री राजसागर प्रगटो कुल महाकुलतलो।
तससीससोभागी गणि कुंअर जीइ, सकती कुमरना गुण थुना,
दिइ संपदा सारी सुखकारी पास संखेसर मि सुना।[1]

कवि ने स्वयं सं० १६६३ में इसकी प्रतिलिपि लिखी थी, यथा—
"गणि कुंअर जी लषतं संवत १६ त्रिसठां वरष,
चैत्र वदि पांचम भोमे सानंद ग्रामे लष्यंत।"

कुंअरपाल—आपके पिता का नाम अमरसिंह था। वे ओसवाल वंशीय चोरड़िया गोत्र के थे। इनके चाचा जासू के पुत्र धरमदास या धरमसी के साझे में कवि बनारसीदास ने आगरे में जवाहरात का कारोबार किया था। इसी संबंध से कुंअरपाल और बनारसीदास घनिष्ठ मित्र हो गये थे। इन्हें शिष्ट समाज में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। पाण्डेय हेमराज ने इन्हें 'कौरपाल ज्ञाता अधिकारी' कहा है। महोपाध्याय मेघविजय ने मुक्तिप्रबोध में इनकी सर्वमान्यता का उल्लेख किया है। कवि ने अपनी रचना 'समकितबत्तीसी' में स्वयं लिखा है "पुरि पुरि कंवरपाल जस प्रगट्यौ।" कुंवरपाल के हाथ का लिखा एक गुटका सं० १६८४ का प्राप्त है जिसमें आनंदघन के पद, द्रव्यसंग्रह भाषा-टीका आदि रचनाओं के साथ कुंवरपाल की भी रचनायें संग्रहीत हैं। समकित बत्तीसी में ३३ पद्य हैं। यह रचना आत्मरस से सम्बन्धित है। सं० १६८४-८५ वाले गुटके में संग्रहीत कवि के एक पद्य में जिनप्रतिमा के प्रति कवि का भक्तिभाव इस प्रकार व्यक्त हुआ है :—

१. जैन गुर्जर कविओ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० ८७८-८७९

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

जिन प्रतिमा जिन सम लेखियइ ।
ताको निमित्त पाय उर अन्तर राग द्वेषनहि देखियइ ।
सम्यग्दिष्टी होइ जीव जे, जिण मन ए मति रेखीयइ ।

× × ×

वीतराग कारण जिणभावन, ठवणा तिणही पेखियइ ।
चेतन कंवर भये निज परिणत, पाप पुन्न दुइ लेखियइ ।[1]

बनारसीदास के पाँच प्रिय मित्रों रूपचंद, चतुर्भुज, भगौतीदास, धर्मदास और कुंवरपाल में कुंवरपाल का स्थान महत्वपूर्ण था। अपनी रचना समकितबत्तीसी में कवि ने लिखा है —

'पुरि पुरि कंवरपाल जस प्रगट्यौ, बहुविध ताप वंस वरणिज्जइ,
धरमदास जस कंवर सदा धनि, वउसाखा विसतर जिम कीजइ ।'

कुंवरविजय—तपागच्छीयहीरविजय > विजयचन्द्र > नयविजय के शिष्य थे। सं० १६५२ के पश्चात् इन्होंने 'श्री हीरविजयसूरि-सलोको, की रचना की। यह रचना ऐतिहासिक जैन गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। आपकी अन्य रचना 'चौबीस जिन नमस्कार' का उल्लेख भी देसाई जी ने किया है। हीरविजयसूरिसलोको ८१ कड़ी की रचना है। इसका आदि इस प्रकार है :—

'सरसती बरसती वाणी रसाल, चरणकमल नमी त्रिकाल,
श्री गुरुपदपंकज धारउं, हीरविजय सूरि गछपति गाऊं।'

रास से पता लगता है कि हीरविजयसूरि ने अकबर को प्रभावित करके सम्मेतशिखर, तारंगा आदि तीर्थ श्वेताम्बरों को दिलाया था। इनके सम्बन्ध में हीरसौभाग्य नामक महाकाव्य, ऋषभदास कृत 'हीरविजयसूरिरास' और विजयप्रशस्ति आदि कई ग्रंथ लिखे गये हैं। प्रस्तुत सलोको में बताया गया है कि आपका जन्म पालनपुरके ओसवाल वंशीय कुंवर जी की पत्नी नाथी की कुक्षि से सं० १५८३ में हुआ था। आपने पाटन में सं० १५९६ में विजयदान से दीक्षा ग्रहण की और सं० १६१० में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। लुंकागच्छ के

१. डॉ० प्रेमसागर जैन —हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १९८
२. जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय;
जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३१२ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ८८२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेघजी इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर इनके शिष्य हो गये। उन्हें विजयसेनसूरि नाम देकर अपना पट्टधर बनाया। आगरे की श्राविका चपा के छह मास के उपवास व्रत की चर्चा से प्रभावित हो अकबर ने इन्हें बुलवाया और सं० १६४० ज्येष्ठ शुदी १३ को हीरजी बादशाह अकबर से उसके महल में मिले। आचार्य के सत्संग से प्रभावित होकर अकबर ने उन्हें जगद्गुरु की पदवी दी और जैन तीर्थ करमुक्त किये आदि। आगे लोंकागच्छीय मेघजी किस प्रकार तपागच्छ में दीक्षित होकर विजयसेन आचार्य बने इसका उल्लेख है—

'लुका मतीनो गछपति जेह, मेघजी आचारज नामे तेह,
तपगछ मारग तस मन रमीउ, आवी हीरजी ने पासे नमीउं।
पूज्य जी आचारज थापें आणंद, नामे श्री विजयसेन सूरींद।'[1]

सलोको की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

हीरजी नो चेलो बलीय वरखाणो, नामे विजयचन्द पंडित जाणो,
जयगुरु केरा जे गुण गाई, तस मनवंछित सकल फलाई।[2]

भट्टारक कुमुदचन्द्र—आप भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे जिन्होंने वारडोली में अपना पट्ट स्थापित किया था। गुजरात के इसी प्रसिद्ध नगर में भट्टारक रत्नकीर्ति ने इन्हें सं० १६५६ वैशाख मास में भट्टारक पद पर स्थापित किया था इसलिए 'इन्हें वारडोली का सन्त' भी कहा जाता है। इनके शिष्य गणेश कवि ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है--

"संवत सोल छपने वैशाखे प्रगट पटोधर थाप्या रे।
रत्नकीर्ति गोर वारडोली वर सूरमंत्र शुभ आप्यारे।
भाई रे मनमोहन मुनिवर सरस्वती गच्छ सोहंत।
कुमुदचन्द्र भट्टारक उदयो भवियण मन मोहंत रे।"[3]

आपका जन्म गोपुर ग्राम में मोढ़वंशीय श्री सदाफल की पत्नी पद्माबाई की कुक्षि से हुआ था। विद्यार्थी अवस्था में ही ये भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य हो गये और गहन अध्ययन तथा कठोर संयम का पालन किया। वारडोली के सन्त नाम से प्रसिद्ध हुए। आपने

१. जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय पृ० १९९
२. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग २ पृ० २८९
३. श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० १३५-१४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरात एवं राजस्थान में साहित्य, अध्यात्म और धर्म की त्रिवेणी बहाई। आपकी छोटी-बड़ी २८ रचनायें और ३७ से अधिक स्फुटपद प्राप्त हैं। आपने नेमि-राजुल के चरित्र पर आधारित कई सुन्दर रचनायें की हैं। भरत बाहुवली छन्द, आदिनाथ विवाहलो और नेमीश्वर हमची आपकी उल्लेख्य रचनायें हैं। इनमें भरत बाहुबली छन्द (रचनाकाल सं० १६७०) खण्डकाव्य है। बाहुबलि पोदनपुर के राजा थे। भरत का दूत जब उस नगर के समीप जाता है, उस समय की शोभा का वर्णन मनोहर है, यथा——

कलकारं जो नलजल कुंडी, निर्मल नीर नदी अति ऊंडी।
विकसित कमल अमल दलयंती, कोमल कुमुद समुज्वल कंती।
बनवापी आराम सुरंगा, अम्ब कदम्ब उदुम्बर तुंगा।
करणा केतकी कमरख केली, नव नारंगी नागरबेली।

भाषा अनुप्रास युक्त एवं प्रवाहपूर्ण है। जिसमें वीर और शान्तरस की प्रमुखता है। आदिनाथ विवाहलो भी खण्डकाव्य है। इसकी रचना सं० १६७८ घोघानगर में हुई। इसकी शैली अलंकृत है। उपमा का एक उदाहरण देखिये——

सुन्दर वेणी विशाल रे, अरध शशी सम भाल रे।
नयन कमलदल छाजे रे, मुख पूरण चन्द्रराजे रे।

नेमिराजुल गीत, नेमिनाथ बारहमासा नेमिराजुल पर आधारित मधुर रचनायें हैं। राजुल की विरह बेदना का वर्णन बारहमासे में मार्मिक है यथा——

फागुण केसु फूलियो नरनारी रमे वर फाग जी,
रास विनोद करे घणां किम नाहे धर्यो वैराग जी।[1]

नेमिराजुल गीत मधुर भक्तिभावपूर्ण है। राजुल के रूप का वर्णन देखिये——

'रूपे फूटडी मिटे जूठडी बोलि मीठडी वाणी,
विद्रुम ऊठडी पल्लव गोठडी रसनी कोटडी वखाणी रे।
सारंग वयणी सारंग नयणी, सारंग मनी श्यामाहरी,
लम्बी कटि भमरी बंकी शंकी हरिनी मार रे।'[2]

१. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल——राजस्थान के जैन संत पृ० १४२
२. वही पृ० १३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणयगीत, हिण्डोलनागीत, वणजारागीत, शीलगीत आदि गेय पदों में स्वरमाधुर्य उच्चकोटि का है। इनके पद सूर-तुलसी के पदों के मेल में हैं, यथा—

मैं तो नरभव वादि गँवायो।
कियो न जपतप व्रत विधि सुन्दर काम भलो न कमायो।

या 'जो तुम दीनदयाल कहावत' आदि पद बड़े भक्तिभावपूर्ण एवं मार्मिक हैं। इनके पदों का संग्रह दिगम्बर जैन क्षेत्र श्री महावीर जी साहित्यशोध विभाग जयपुर से प्रकाशित 'हिन्दी पद संग्रह' (सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल) में संकलित हैं। आपकी रचनाओं में अध्यात्म एवं भक्ति के साथ श्रृंगार एवं वीर आदि रसों का भी यत्र-तत्र अच्छा परिपाक हुआ है। इनकी विनतियाँ तो मानो भक्तिरस की पिचकारियाँ हैं, यथा—

प्रभु पाय लागूँ करुं सेव थारी,
तुम सुनलो अरज श्री जिनराज हमारी। घणौं कष्ट करि देव
जिनराज पाम्यो, ह्वै सबै संसार नौं दुख बाम्यो।
जबश्री जिनराज नौं रूप दरस्यो,
जबै लोचना सुष सुधाधार वरष्यो।"

विनतियों में त्रेपनक्रिया विनती १३ पदों की उल्लेखनीय रचना है। इसका मंगलाचरण देखिये—

"वीर जिणेसर मनि धरुं, प्रणमुं गुरु पांय।
त्रेपन किरिया नो विचार, कहिं सुं सुखदाय।"[1]

आपकी प्रमुख गीत रचनाओं में हिंडोलागीत, सप्तव्यसनगीत, अठाईगीत, भरतेश्वरगीत, पार्श्वनाथगीत, आरतीगीत, जन्मकल्याणक-गीत, दीपावलीगीत, नेमिजिनगीत, जीवडागीत आदि प्रसिद्ध हैं। इनके प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य भरतबाहुबलि छन्द का रचनाकाल श्री अगरचन्द नाहटा ने सं० १६०७ बताया है[2] पर यह युक्तिसंगत नहीं लगता। रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है—

"संवत सोरह सै सतसहे ज्येष्ठ शुक्ल पक्षे तिथि छहें।
रविवार वारे घोघानगरे, अति उत्तुङ्ग मनोहर सुघरे।

१. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २२१
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभ जिनवर ने प्रासादे, संभलीये जिनगान सुसादे।
रत्नकीरति पदवी गुणपूरे, रचिअे छन्द कुमुदशशि सूरे।[१]

इसका अर्थ १६०७ के वजाय १६७० युक्तियुक्त है।

इसका मंगलाचरण--

पणविवि पद आदीश्वर केरा, जेह नामें छूटे भवफेरा।
ब्रह्मसुता समरुं मतिदाता, गुणगण मंडित जगविख्याता।[२]

वीररस का वर्णन देखिये—

चल्यामल्ल अखाड़े वलीआ, सुरनर किन्नर जोत भलीआ।
काछया काछ कही कड़ताणी, बोले बागउ बोली वाणी।
भुजा दंडमनु सुंडउ समाना, ताडतां वंखारे नाना।
हो होकार करि ते धाया, वछोवच्छ पडया ले राया।

ऋषभविवाहलो का समय भी सं० १६०८ न होकर सं० १६७८ ही उचित प्रतीत होता है। इसमें मुक्ति वधू के साथ ऋषभ के आध्यात्मिक विवाह का सोल्लास वर्णन है। इसका मंगलाचरण देखिये--

समरवी सरसती ची माइ शुभमति करो वरवाणी पसाउलो अे,
प्रथम तीर्थंकर आदि जिनेश्वर वरणवुं तास विवाहलो अे।१

अन्तिम पंक्तियों में रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है--

'संवत सोल अणेतरो ए मास अषाढ़े घनसारसु'

गुरुपरम्परा--लक्ष्मीचन्द्र पाटे निरमलो ए अभयचन्द्र मुनिराय,
तसपट्टे अभय.........रतनकीरति शुभकाय।
कुमुदचन्द्रे मन ऊजलोए........... इत्यादि

आपके शिष्यों में ब्रह्मसागर, धर्मसागर, जयसागर, संयमसागर और गणेशसागर उल्लेखनीय हैं। ये सभी अच्छे लेखक और साहित्यकार थे। इनमें से कुछ ने अपने गुरु की प्रशस्ति में सुन्दर साहित्य रचा है। समयसागर ने इन्हें ३२ लक्षणयुक्त कहा है—

ते बहु कूखि ऊपनो बीर रे, बत्तीस लक्षण सहित सरीर रे।

धर्मसागर ने इनकी तुलना गौतम गणधर से की है। इनकी त्यागतपस्या, विद्वत्ता से प्रभावित होकर अनेक लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा

१. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २४३
२. वही, पृ० २०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न हुई और वे शिष्य बने। इनका साहित्य विशाल, बहुआयामी है और भाषा अलंकार युक्त एवं प्रवाहमयी है। इन्होंने वीर, शृंगार और शान्त रसों की धारा बहाई है तथा भक्ति और अध्यात्म का संदेश दिया है। नेमि-राजुल के मार्मिक प्रसंग पर रची इनकी रचनाओं में जो लालित्य, रसप्रवणता और साहित्यिक सौष्ठव है वह जैनमरु-गुर्जर साहित्य में निश्चित रूप से श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी है।

परदारो परशील सञ्झाय, शीलगीत आदि कुछ शुष्क एवं उपदेश-परक रचनायें भी आपने एक धार्मिक आचार्य की स्थिति में लिखा है पर आप वस्तुतः उच्चकोटि के साहित्यकार थे और आपकी रचनाओं विशेषतया पदों को हिन्दी भक्तिकाल के श्रेष्ठ पद लेखकों–तुलसी, सूर आदि के मेल में रखा जा सकता है। इनके विशाल साहित्य को देख कर ऐसा लगता है कि ये चिन्तन, मनन एवं धर्मोपदेश के अतिरिक्त अपना अधिक समय साहित्य सृजन में ही लगाते थे। इन्होंने बड़ी सजीव, रसानुकूल एवं प्रांजल भाषा में शान्त, वियोग, वीर, शृङ्गार आदि रसों और अध्यात्म, धर्म, दर्शन और भक्ति भावों की अच्छी अभिव्यञ्जना की है। डा० हरीश ने इनका समय सं० १६४५ से संम्वत् १६८७ तक दिया है।[1] सं० १६४५ इनका जन्म संवत् हो सकता है किन्तु सं० १६८७ निधन तिथि नहीं होगी। इस सम्बन्ध में निश्चित सूचना नहीं है। शोध की अपेक्षा है।

वाचक कुशललाभ—खरतरगच्छीय अभयधर्म आपके गुरु थे। जैसलमेर के रावल मालदेव के कुंवर हरराज के आग्रह पर इन्होंने लोककथाओं पर आधारित दो प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कृतियाँ प्रस्तुत कीं—(१) ढोलामारु रा दूहा और (२) माधवानल कामकंदला। प्रथम रचना काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित है और हिन्दी पाठकों के लिए सुपरिचित है। कामकंदला गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज में प्रकाशित है। इससे इन रचनाओं की लोकप्रियता और महत्ता का पता चलता है। इनकी तीसरी रचना 'श्री पूज्य वाहणगीत' ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है। इनके अलावा नवकार छन्द, गौड़ी पार्श्वनाथ छन्द, स्थूलिभद्र बत्तीसी भी आपकी प्राप्त रचनायें हैं जिनमें काव्य की सरसता और भाषा की प्रौढ़ता दर्शनीय है। हर-

१. डॉ० हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी सेवा पृ० १०९-११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज के नाम से 'पिंगल शिरोमणि' आपने ही लिखा है जो 'परम्परा' (जोधपुर) भाग १३ में प्रकाशित है। तेजसार रास सं० १६२४ वीरमपुर, अगड़दत्तरास सं० १६२५, जिनपालित जिनरक्षित संधि सं० १६३१ एवं शत्रुञ्जय यात्रा स्तवन आदि कुल ११ ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं।[1]

रचना परिचय—श्री पूज्यवाहणगीत ६७ छन्दों की रचना है। इसमें अनेक सरस काव्यात्मक स्थल हैं, यथा—

आव्यो मास अषाढ़ झबूके दामिनी रे,
जोवइ जोवइ प्रीयडा बाट सकोमल कामिनी रे।
चातक मधुरइ सादिकिं प्रीउ-प्रीउ उचरइ रे,
वरसइ घण बरषात सजल सर भरइ रे।

सांगोपांग उपमा आगे बढ़ती है—

संवेग सुधारस नीर सबल सरवर भर्या रे,
उपशम पालि उत्तंग तरंग वैराग नारे।[2]

अनुप्रास की योजना इन पंक्तियों में देखिये—

गाजइ गगन गंभीर श्री पूज्यनी देशना रे,
भवियण मोर चकोर थायइ शुभा वासना रे।

इस प्रकार गुरु की वाणी रूप अमृत वर्षा से सप्त क्षेत्र में धर्मोत्पत्ति का सुन्दर रूपक बाधा गया है। इसकी अंतिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

कुशललाभ कर जोड़ि श्री गुरुपय नमइ रे,
श्री पूज्यवाहण गीत सुणतां मन रमइ रे।[3]

इसमें गुरु-वाणी का माहात्म्य दर्शाया गया है।

माधवानल प्रबंधचरित है। इसे माधवानल काम कंदला चौपाई या रास भी कहते हैं। यह रचना सं० १६१६ फागुण शु० १३ रविबार को जैसलमेर में हुई।

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७४-७५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २११, भाग ३ पृ० ६८२ (प्रथम संस्करण) एवं भाग २ पृ० ८०८८ (द्वितीय संस्करण)
३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह २६वां गीत पृ० ११७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका आदि—देवि सरसति देवि सरसति सुमति दातार।
कासमीर मुख मंडणी ब्रह्मपुत्र कर विणा सोहे,
मोहन तरुवर मंजरी मुख मयंक त्रिभुवन मोहे।
पद पंकज प्रणमी करी आणीमन आणंद,
सरस चरित्र श्रृंगार रस पभणीस परमाणंद।

इसमें माधवानल और कामकंदला की श्रृंगार कथा का वर्णन है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोल सोलोतरइं, जेसलमेरु मझारि,
फागण सुदि तेरसि दिवसे विरची आदितिवार।
गाहा दूहा नें चुपइ कवित कथा सम्बन्ध,
कामकंदला कामिनी माधवानल प्रबन्ध।
कुशललाभ वाचक कहइ सरस चरित सुप्रसिद्ध,
जे वाचइ जे सांभलइ तीओ मिलइ नवनिधि।[1]

ढोलामारुरादूहो—यह भी एक प्रबन्ध काव्य ही है। इसके सम्बन्ध में आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य के आदिकाल' में लिखा है कि कवि ने दूहा में चौपाइयां मिलाकर इसमें प्रबन्धात्मकता उत्पन्न कर दी है। इसमें राजस्थान की प्रसिद्ध प्रेमकथाका, जो ढोला और मारु के प्रेम पर आधारित है, वर्णन किया गया है। दोनों रचनायें काव्य आनंद महोदधि में भी प्रकाशित हैं।

कुशललाभ राजस्थान के प्रख्यात कवियों में अग्रगण्य हैं। गुजराती राजस्थानी और हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने आदर पूर्वक इनका अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है। ढोलामारु को दूहा के अलावा वार्ता और रास आदि नामों से भी पुकारा जाता है। इसमें ७०० कड़ी हैं। यह सं० १६१७ वैशाख सुदी ३ जैसलमेर में लिखी गई थी। इसके अन्त में कवि ने सम्बन्धित विवरण दिया है, यथा—

गाथा सातसइ अेह प्रमाण, दूहा नइ चउपइ वषाण।
यादव राउल श्री हरिराज, जोड़ी तास कुतूहल काजि।[2]

रचनाकाल— संवत सोल सय सत्तरोत्तरइ, अषा त्रीजिवार सुरगुरुइ,
जोड़ी जैसलमेर मझारि, सुणतां सुख पामइ संसारि।

---

१. श्री कस्तूर चन्द कासलीवाल — प्रशस्ति संग्रह पृ० २४७

२. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग २ पृ० ८०-८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मारवणीनी अे चउपइ, अे सुणीज्यो अेकमना थइ।

जिनपालित जिनरक्षित संधि–(गाथा ८९ सं० १६२१ श्रावणसुदी५)

आदि—चरम जिणेसर चरण नमेवि, सद्गुरु वयण रयण समरेवि,
निरमल शील तणइ अधिकारइ, पभणिसु आगमनइ अणुसारइ।

रचनाकाल—सोलह सइ इकवीसइ वरसि,
श्रावण सुदि पांचमि शुभ दिवसि।
संधि रच्यउ निजमति अनुसारि,
जिम गुरु मुखि संभल्यउ विचार।[२]

तेजसार रास अथवा चौपाई (सं० १६२४, वीरमपुर) का प्रारम्भ—

श्री सिद्धारथ कुल तिलु चरम जिणेसर वीर,
पा जुगि प्रणमी तस तणा सोविन्न वन्न सरीर।

अन्त—श्री खरतरगच्छि सहि गुरु राय, गुरु श्री अभयधर्म उवझाय।
सोलह सइ चउवीसिसार, श्री वीरमपुर नयर मझारि।
अधिकारइ जिनपूजा तणइ, वाचक कुशललाभ इम भणइ।
जे वांचइ नर जे सांभलइ, तेहना सहू मनोरथ फलइ।[१]

इसमें तेजसार के दृष्टान्त से पूजापाठ का प्रभाव दर्शाया गया है।

अगड़दत्त चौपइ अथवा रास (२१८ कड़ी, सं० १६२५ कार्तिक शुदी १५ गुरुवार, वीरमपुर)

आदि—पास जिणेसर पाय नमी सरसती मनि समरेवि,
श्री अभयधर्म उवझाय गुरु पय पंकज प्रणमेवि।

रचनाकाल—संवत वाण पक्ष सिणगार, काती सुदि पूनिम गुरुवार,
श्री वीरमपुर नयरि मझारि, करी चौपइ मति अनुसारि।

स्तम्भन पार्श्वस्तवन—यह स्तवन प्रकाशित है जो खंभात में लिखा गया था।

'इमि स्तव्यो स्थंभण पास स्वामी नयर श्री खंभात तैं।'

गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन अथवा छंद—२३ कड़ी की यह रचना पार्श्वनाथ की स्तुति में लिखी गई है—

आदि—सरसति सामनी आप सुराणी वचन विलास विमल ब्रह्माणी
सकल जोति संसार सभाणी, पाद परणमु जोड़ि जुगपाणि।

---

१. जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) भाग २ पृ० ८०-८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंत—जगनाथ पास जिनवर जयो मन कामित चिंतामणि,
कवि कुशललाभ संपतिकरण धवल धींग गोड़ी धणी।

नवकार छंद—१७ कड़ी की प्रकाशित रचना है। यह जैन काव्य प्रकाश भाग १ में छपी कृति है। कवि कहता है—

नवकार सार संसार छे कुशललाभ वाचक कहे,
अेक चित्ते आराधीइ विविध ऋद्धि वंछित लहे।

इसमें नवकार मंत्र का माहात्म्य वर्णित है। कवि कुशललाभ शृङ्गार और शान्त दोनों ही रसों के श्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं। इनकी भाषा भावानुकूल, परिमार्जित एवं प्रभावशाली है। अलंकारों और छंदों का यथावसर उत्तम उपयोग किया गया है।

ढोलामारु की विशेषतायें—इनकी समस्त रचनाओं में ढोला मारु सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है। यह राजस्थानी लोक भाषा का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है। यह भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से जनमानस का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक लोक प्रचलित प्रेमकाव्य है। इसमें शृङ्गार के दोनों पक्षों का सरस वर्णन किया गया है। युवती मारवणी स्वप्न में अपने प्रिय का दर्शन कर प्रेममग्न हो जाती है। स्वप्न भंग होने पर पूर्व रागजन्य विरह से उसे व्याकुल देखकर सखियाँ पूछती हैं—

अम्हां मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम,
तइ अणदिट्ठा सज्जणां किउ करि लग्गा प्रेम।

इसमें मारवणी और मालवणी के साथ नायक ढोला के सुखद जीवन के कई सुन्दर वर्णन हैं। मध्य कालीन काव्य में प्रयुक्त समस्त काव्य रूढ़ियाँ जैसे प्रेमिका द्वारा स्वप्न में प्रिय का दर्शन, दूत-दूती प्रेषण, प्रेम मार्ग की कठिनाइयाँ, ऋतु वर्णन, बारहमासा, शुक संदेश पशु पक्षियों एवं अलौकिक पात्रों का समावेश आदि पाया जाता है।

कथासार—यह कछवाहा राजा नल के पुत्र ढोला और पूगल के राजा पिंगल की कुमारी मारवणी की प्रेमकथा है। सभा (नागरी प्रचारिणी काशी) द्वारा प्रकाशित ढोलामारु में रचनाकाल सं० १६१८ दिया गया है। डॉ० मोतीलाल मेनारिया सं० १६१७ और पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सं० १६०७ बताते हैं किन्तु सं० १६१७ ही अधिक युक्तिसंगत लगता है। यह रचना दोहा चौपाई के अलावा दूहा और

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

गद्यवार्ता में भी पाई जाती है। दोहे पुराने हैं जैसा—'दूहा घनह पुराणा अछह' से सिद्ध है। अधूरे दोहों को कथासूत्र में बैठाने के लिए कवि ने इन्हें चौपाइयों से जोड़ दिया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार है कि यह घटना ११वीं शताब्दी की है। तब से यह कथा मौखिक रूप में चली आ रही थी और राजस्थान के जन-जन का कंठहार हो गई थी। ढोला का नाम नाल्ह भी था। दो तीन वर्ष की छोटी आयु में ही उसका मारवणी से विवाह हो गया था। युवावस्था में उसकी सादी मालवा की राजकुमारी मालवणी से हो गई। वह उसे मारवणी से नहीं मिलने देती थी किन्तु एक दिन वह ऊँट पर चढ़कर मारवणी के पास पहुँचा और १५ दिन ससुराल में आनन्द पूर्वक व्यतीत कर घर के लिए वापस चला। मार्ग में बड़ी बाधायें आईं। मारवणी को सर्प ने डस लिया। अमरसूमरा ने उसके अपहरण की कोशिस की, किन्तु अन्त में सच्चे प्रेम की विजय हुई और घर पहुँचकर दोनों आनन्द पूर्वक रहने लगे। इस रचना में देश वर्णन रूप बर्णन, ऋतु वर्णन, यात्रा वर्णन आदि प्रभावशाली है। इसकी भाषा चारणों की द्रित्त प्रधान, कर्णकटु बनावटी भाषा से भिन्न सहज लोक प्रचलित भाषा है। यद्यपि यह अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं है तथापि इससे मध्यकालीन राजस्थानी के लोक प्रचलित भाषा रूप का अनुमान करने में बड़ी सहायता मिल सकती है।[1] आपकी 'गुण सुन्दरी चउपइ' सं० १६४८ की प्रति दिगम्बर जैन तेरह पंथी मंदिर नैणवा में सुरक्षित है।[2]

ढोलामारु, माधवानल जैसी शृङ्गार परक रचनाओं के अलावा आपने स्थूलिभद्र छत्तीसी, पूज्य वाहण गीत, तेजसार रास जैसी शांत रस प्रधान धार्मिक रचनायें भी की हैं जिनका संक्षिप्त परिचय पूर्व में दिया जा चुका है। स्थूलिभद्र छत्तीसी स्थूलिभद्र की भक्ति के माध्यम से गुरुभक्ति का उपदेश करने वाली रचना है। अपराध हो जाने पर शिष्य उदार गुरु से क्षमा की आशा रखता है। इस सन्दर्भ में कवि ने लिखा है—

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ३ पृ० ४१८ प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची ५वां भाग पृ० ४३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'बैसा बाइक सुणी भयउ लज्जित मुणि,
सोच करि सुगुरु कइ पास आवइं।
चूक अब मोहि परी चरण तदि सिर धरि,
आप अपराध आपइं खमावइ।'[१]

प्रशस्ति संग्रह में इन्हें श्वेताम्बर सम्प्रदाय का साधु बताया गया है। अन्यत्र इन्हें खरतरगच्छीय अभयधर्म का शिष्य बताया गया है। अतः इस सम्बन्ध में विशेष शोध अपेक्षित है।[२]

कुशलवर्द्धन—आप तपागच्छीय हीरविजयसूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६४१ में 'जिनचैत्यपरिपाटी स्तवन' सिद्धपुर में लिखी। 'बंधहेतु गर्भित वीर स्तवन' की रचना आपने बडली में की। प्रथम रचना का अन्तिम भाग 'कलश' निम्नांकित है—

सीधपुर नयर मझारी कीधी चइत परिपाटी भली।
जे भणइ भवियण कहइ कवियण तास घरि संपद मिली।
तपगच्छ मंडन दुरिय खंडन श्री हीरविजय सूरीसरु,
कवि कुशलवर्द्धन सीस पभणइ, सकल संघ मंगल करु।[३]

दूसरी रचना का प्रारम्भ देखिए—

सकल मनोरथ पूण वांछित फल दातार,
वीर जिणेसर नायक, जय-जय जगदाधार।

अन्त—इय वीर जिणवर सयल सुखकर नयर वडली मंडणो,
मिं थुण्यो भगति भलीय सुगति रोग सोग विहंडणो।
तपगच्छ निरमल गयण दिनकर श्री विजयसेन सूरीसरो,
कवि कुशलवर्द्धन सीस पभणइ, नग गणि मंगल करो।[४]

कुशलसागर—तपागच्छीय विजयसेनसूरि के शिष्य राजसागर आपके गुरु थे। आपने सं० १६४४ आसो वदी अमावस्या, शुक्रवार को 'कुलध्वजरास' की रचना की इसका आदि देखिये—

सांत्य जिणेसर पायनमूं, जस जन्मह हुइ सांति,

१. डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० ११७
२. कस्तूर चन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० १७
३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २६८-२६९
४. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो सांति जिणेसर प्रणमता टालि मननी भ्रांति ।
x x x
राजसागर गुरु मनोहरु, जम ग्रह चंद्र उपंत,
कुशल सागर रंगि करी कुलध्वज गुण गावंत ।

रचनाकाल—मुधा नगर मांहि वली कुल धज स्तवो रे कमार जी रे,
संवत सोल चउआलइ, आसो वदि पूनम सार जी ।[1]

यह कुल ६२४ कड़ी की रचना है। इसकी अन्तिम कड़ी इस प्रकार है—

गणि कुंअर जी मंगल करु, सासना सूरी तेणीवार जी रे ।
कुलधज नामि सेवक वली, पामि मंगल जिकार जी रे ।

कवि ने भाषा में भरती का शब्द 'जी' अत्यधिक प्रयोग करके उसे शिथिल बना दिया है ।

जैन साहित्य में कुलध्वज की कथा पर्याप्त प्रसिद्ध है। इसके माध्यम से कवि उच्च चारित्र्य का संदेश पाठकों को देते रहे हैं। प्रस्तुत कृति भी उपदेशात्मक है तथा काव्यत्व की दृष्टि से अति सामान्य कोटि की है। इससे यह प्रकट होता है कवि का एक अपर नाम 'कुंवर गणि' भी था जैसा कि ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट हो चुका है—

इनकी दूसरी रचना 'सनतकुमार राजर्षिरास' सं० १६५७ आषाढ़ शुक्ल ५ को लिखी गई, जो निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है—

संवत सोल सतावनि थुणीउ सनतकुमार जी रे ।
आषाढ़ सुदी पाचम भली, रचीउ रास उदार जी रे ।

कवि के हाथ की लिखी हस्तलिपि सं० १६६३ की प्राप्त है यथा,

गणि कुंअर जी लषत संवत् १६ त्रिसठा वरष,
चैत्र वदि पांचम लोभे आणंद भोमे लष्यंत ।[2]

जैन गुर्जर कविओ, प्रथम संस्करण के भाग ३ पृ० ८७८ पर श्री देसाई ने इस रचना का कर्त्ता श्री राजसागर शिष्य कुंअर जी को बताया है । वस्तुतः कुंअरजीगणि और कुशलसागर एक ही व्यक्ति हैं ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० ७७९-७८०
२. वही, (द्वितीय संस्करण)भाग २ पृ० २३३-२३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केसराज—आपने अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार दी है—विजय गच्छीय > विजयऋषि > धर्मदास > क्षमासागर > पद्मसागर > गुणसागर। आपने सं० १६८३ में 'रामयशोरसायन रास' की रचना अंतर पुर में की, जो इन पंक्तियों से प्रमाणित होता है—

संवत सोले त्रासीयें रे, आछो आसू मास,
तिथि तेरसी अंतरपुर मांहि आणी अतिहि उल्हास।[1]

इसमें वर्णित अन्तरपुर कोई स्थान है या कवि का अन्तःमन है, यह निश्चित नहीं है।

जब लगि सायर नो जल गाजे, जब लगि सूरज चंद,
केसराज कहे तब लग अे ग्रन्थ करो आनंद।

श्री देसाई ने इसका रचना काल सं० १६८३ बताया है किन्तु राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची पाँचवा भाग में रचनाकाल सं० १६८० बताया गया है, यथा—

संवत सोलै असीइ रे, आछउ आसो मास तिथि तेरसि।[2]

इसकी प्रति में स्पष्ट चेतावनी दी है कि जिनको प्रति वाँचने का अभ्यास हो वे ही पंचों के आगे उसे पढ़ें। अक्षर, ढाल, राग को भंग करके न पढ़ें बल्कि इस विधि से पढ़ें—

'अक्षर जांणी ढाल ज जांणी, कागज जांणी एह,
पांचा आगे बांचता थी ऊपजि सिद्ध अति नेह।'[3]

इसका प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है—

श्री मुनि सुव्रतस्वामी जी त्रिभुवन तारणदेव,
तीर्थङ्कर प्रभु तीसमां सुरनर सारे सेव।

× × ×

सुखदाई सहु लोक ने रामकथा अभिराम,
श्रवण सुणंत सरे सही मनना वंछित काम।

कवि कहता है कि—

---

१. जैन गुर्जर कविओ, (प्रथम संस्करण) भाग १ पृ० ५२२-५२४
२. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची ५वां भाग पृ० ४७२-४७३
३. वही, ५वां भाग पृ० ४७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रां उच्चरता मुख थकी पाप पुलाई जाय,
मति फिरि आवै तेहथी 'म' मो कमाडी थाय।
पावन में पावन महा कलिमल हरण अपार,
मोक्ष पंथ नो सांभलो सज्जन जीवनो सार।[1]

कवि राम चरित्र को पावन से भी परम पावन मानता है। इसका कलश अन्त में निम्नांकित है—

इम रामलक्ष्मण अंते रावण स्त्री सीतानी चिरी,
कही भाखी चरित साखी वचन रचना करि खरी।
संघ रंग विनोद वक्ता अने श्रोता सुख भणी,
केसराज मुनिंद जंपे सदाहरष वधामणी।[2]

इसकी भाषा अनुप्रास अलंकार युक्त और प्रवाहमयी है। इसकी विषय वस्तुस्थापना और अभिव्यंजना शैली पर रामचरित मानस का प्रभाव लक्षित होता है। रचना भाव एवं भाषा की दृष्टि से प्रौढ़ है। इसकी एक खण्डित सचित्र प्रतिलिपि का सुन्दर प्रकाशन श्री जैन सिद्धान्त, देवाश्रम, आरा (बिहार) से श्री ज्योति प्रसाद जैन द्वारा सम्पादन हुआ है।

केशवजी—आप लोकागच्छीय विद्वान् थे। आपने 'लोकाशाहनो सलोको' लिखा जिसका रचना काल अज्ञात है किन्तु १७वीं शती से पूर्व की यह रचना हो ही नहीं सकती क्योंकि केशव जी का समय निश्चित हो चुका है। अतः यह १७वीं शती की ही रचना है। यह कृति केवल २४ कड़ी की है। इसका प्रथम छन्द इस प्रकार है—

वीर जिणंद ना प्रणमी पाय, समरी सरसती भगवती माय।
गुरु प्रणमी करइं सिलोको, इक मनि करी सुणज्यो लोको।[3]

इसमें लोकागच्छ की स्थापना का तिथिवार विवरण दिया गया है, जैसे—

संवतु पन्नरसत अडवरषी सिद्धपुरीइ शिवपद हरषी,
खोली थापउ जिनमत शुद्ध लुंकइ गच्छ हुओ परसिद्ध।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०१५ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग १ पृ० ५२४ (प्रथम संस्करण)
३. वही, भाग ३ पृ० १०९४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी अन्तिम कड़ी निम्नवत् है—

रूपजी जीवाजी कुंवर जी, वीरहइ श्री मलजी इषीवर जी,
प्रणमी पूज्य तणइ वर पाया, गावइ केशव नित गुरुराया।[1]

आपकी दूसरी रचना 'साधुवंदना' का विवरण अप्राप्त है।

केशव विजय—कीर्तिवर्द्धन (केशव मुनि) के प्रसंग में इनकी चर्चा हो चुकी है और यह आभास हुआ कि ये कीर्तिवर्द्धन से भिन्न व्यक्ति हैं। श्री देसाई के ग्रन्थ जैन गुर्जर कविओ के भाग ३, द्वितीय संस्करण पृ० २३२ पर सम्पादक ने इन्हें केशवमुनि या कीर्तिवर्द्धन से भिन्न माना है। श्री देसाई ने (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० १०८४ पर कीर्तिवर्द्धन के नाम से इनकी रचना 'सुदेवच्छ सावलिंगा' का विवरण अवश्य दिया था किन्तु सन्देह उन्हें भी था जो नवीन संस्करण में सम्पादक द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है। यथा "वस्तुत: आ केशव विजय नी अलग कृति छे।" यह रचना कवि ने दूदापुत्र विजयपाल के आग्रह पर लिखी थी। यह ३८४ कड़ी की कृति है और सं० १६७९ माघ वदी १० सोमवार को जालौर में पूर्ण की गई है। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

नन्द मुनी षोडस संवछरे (१६७९) माहा वदि दसमी ससीवारे,
तपगछ गिरुआ गुणभंडार, नामें विजेदेव सुरी निरधार।
भणतां गुणतां सुणंता अेह, चातुर चित्त हरखसे तेह;
रसीक नर नी रंगसिधात, मुनि केशव कहि जगत विख्यात।[2]

कवि ने अपना नाम केशव मुनि दिया है और कीर्तिवर्द्धन भी अपना नाम केशव मुनि बताते हैं परन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि एक ही नाम के दो ही नहीं अनेक व्यक्तियों का एक ही समय, एक ही सम्प्रदाय या स्थान में होना असम्भव नहीं है।

क्षमाहंस—आप खरतरगच्छीय विद्वान् थे। आपने सं० १६९७ से पूर्व 'क्षेमबावनी' नामक रचना मरुगुर्जर में की है। इसकी प्रतिलिपि सं० १६९७ माघ कृष्ण १ की श्री कनकरंग द्वारा लिखित प्राप्त है।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०९४ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० २३२ (द्वितीय संस्करण)
३. वही, भाग ३ पृ० १०७९ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ३२० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेम—आप खरतरगच्छीय जिनभद्रसूरि शाखा में रत्नसमुद्र के शिष्य थे। आपने क्षेत्रसमास बालावबोध लिखा है।[१] खेम नामक एक और लेखक हो गये हैं जिनका विवरण 'ख' के अन्तर्गत दिया जा रहा है।

क्षेमकलश—आपने सं० १६७० कार्तिक शुक्ल ३ बुधवार को 'अगड़दत्त चौपाई' की रचना की। रचना का उद्धरण तथा लेखक की गुरु परम्परा आदि नहीं प्राप्त हो सकी।[२]

क्षेमकुशल—आप तपागच्छीय मेघर्जा के शिष्य थे। आपने सं० १६५७ वैशाख शुक्ल १०, शुक्रवार को "लौकिक ग्रन्थोक्त धर्माधर्म विचार सूचिका चतुःपदिका (चौपाई) लिखी। सं० १६८२ से पूर्व आपने ४६२ कड़ी की दूसरी रचना रूपसेनकुमार रास रची। इनके अलावा श्रावकाचार चौपाई (७८ कड़ी) और विमलाचल (शत्रुञ्जय) स्तवन (४२ कड़ी) नामक दो अन्य रचनायें भी प्राप्त हैं जिनका विवरण दिया जा रहा है। प्रथम रचना में जीवदया, मांसभक्षण-त्याग, मद्यत्याग और अतिथि सेवा आदि बीस अधिकार हैं। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरसति देवी समरुं निशिदीस, श्री गुरु चरणे नामी सीस।
बोलूँ धर्माधर्म विचार, जे जाणइ जीव तरइ संसार।
सर्वधर्म सांभलवा सही, अेहि बात परमेश्वरि कही
ते माहिलो तत्व विचार, ग्रही कीजइ नित आतमसार।[३]

रचनाकाल—इंदु रस वाण मुनि जाणि, इणइ संवतसरि चही प्रमाणि।
वैशाख सुदि दसमी शुक्रवार, रवियोगइं वेद पदिका सार।

गुरुपरम्परा—तपगछमंडण मेह मुणिंद, क्षेमकुशल सुख परमाणंद।

इससे पूर्व आपने हीरविजय, विजयसेन का उल्लेख किया है।
रूपसेनकुमार रास-आदि—

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८६
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९६१ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १५९-१६० (द्वितीय संस्करण)
३. वही, भाग १ पृ० ४६९; भाग ३ पृ० ९४२-९४४ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ३०३-३०५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिषभ शांति नेमीश्वरा, पास वीरपरणाम,
ऋद्धि वृद्धि संपति मिलइ, जस लीद्धंतिइ नाम।
सहगुरु वचन सुहामणा सुणतां नावइरीस,
भूप नमइ जगवस्य हुइ, सहुकोनामइ सीस।

x x x

विमलकमल दल वासिनी वंछित पूरइ आस,
सा सारद मनि समरता आपइ वचन विलास,
श्री मनमथ नृप कुल तिलउ रूपसेन अभिधान,
तास तणी सुकथाकहुं सुणज्यउ सहु सावधान।

अन्त—संगति कीजइ साधनी रोमकुशल पूच्छेव,
समरी मंत्र नवकारपद क्षेमराय विकसेव,
सु ं कीजइ न्यायनु ं रस राखइ बिहु ठाणइ,
नाम धरइ निज गुरु तणउ थिर सुखलइनिर्वाणि।[१]

श्रावकाचार चौपाई–आदि—

जग बंधव सामी जिणराय, भगति करी प्रणमु तसु पाय।
श्रावक भणी कहुं हित सीख, देसविरति कहियै जिनदीख।

अन्त—जोई आगम अरथ विचार, ए बोल्यो श्रावक आचार,
श्री जिनधर्म करइ जे सार, क्षेमकुशल ते लहइ अपार।[२]

विमलाचल (शत्रुञ्जय) स्तवन की अन्तिम कड़ियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

श्री हीरविजय सूरिंद राजि विजयसेन सूरीश्वरु,
श्री पंडित मेघ मुणिंद सीसइ, थुण्यो क्षेमकुशल करु।[३]

क्षेमराज—आप पार्श्वचन्द्र गच्छ के श्री सागरचन्द्र सूरि के शिष्य थे। आपने 'संथार पयन्ना बालावबोध'[४] की रचना सं० १६७४ कार्तिक शुक्ल २ सोमवार के दिन पूर्ण की। इनके सम्बन्ध में अन्य विवरण उपलब्ध नहीं है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४६९; भाग ३ पृ० ९४२-९४४ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ३०३-३०५ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग २ पृ० ३०३-३०५ (द्वितीय संस्करण)

३. वही

४. वही, भाग ३ खण्ड २ पृ० १६०५ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १८६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खइपति—आप सम्भवतः खरतरगच्छीय अमरमाणिक्य के प्रशिष्य एवं साधुकीर्ति के शिष्य थे। साधुकीर्ति के कई शिष्यों ने उनकी स्तुति में पद, गीत आदि लिखे हैं जो साधुकीर्ति जयपताका गीतम शीर्षक के अन्तर्गत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है। उन्हीं में एक गीत खइपति का भी है। इस संकलन में इसी विषय पर जल्ह, देवकमल और धर्मवर्द्धन आदि अन्य शिष्यों की भी रचनायें संकलित हैं। रचना के समय के सम्बन्ध में निम्न पंक्तियाँ देखिये—

आगरइ पुरि मिगसरि धुरिवारसी,
सोल पंच वीस बरीस जी।
पूरव विरुद सही उजवालियउ, साधुकीर्ति सुजगीसो रे।

यह कुल सात कड़ी की छोटी रचना है। भाषा सरल मरुगुर्जर है। यह रचना सं० १६२५ की है। इसमें भी खरतरगच्छीय साधुकीर्ति की आगरे में तपागच्छीय बुद्धिसागर से हुई वादविवाद में उनकी जीत पर खुशी की अभिव्यक्ति है, एवं साधुकीर्ति को साधुवाद दिया गया है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

श्री जिनदत्त कुशल सूरि सानिधइ, उत्तम पुण्य प्रकरो जी
करजोडी नइ 'खइपति' बीनवइ, खरतर जय जय कारो जी[1]

खेम—नागौरी तपागच्छ—पायचंद गच्छ के क्षेत्रसिंह (खेतसी) के आप शिष्य थे। आपने मेडता में 'सोलसत्तवादी' नामक रचना की। आपकी दूसरी रचना 'मृगापुत्र' मात्र १२ कड़ी की छोटी कृति है। तीसरी कृति 'अनाथीसंधि' भी १५ कड़ी की लघु कृति है किन्तु इसमें रचनाकाल दिया हुआ है जिसकी सहायता से उपरोक्त दोनों कृतियों का भी रचनाकाल अनुमानित किया जा सकता है। अनाथीसंधि में रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सतरैं सैदिन आठमि जेसी खरखरी छायाइ
खेम सही सज्झाय प्रकाशी पजूसणरी आ पाखी, कि।

अर्थात् यह रचना १७वीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष की है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरसति सामिणि तुझं समरतां, वाणी द्यउ महाराणी
अनाथीराय सज्झाय भणता, आखर आवे छे ठावका।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—श्री साधुकीर्ति जयपताका गीतम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजिंद श्रेणिक वनसंचरिउ ।[1]

मृगापुत्र का आदि—

पुर सुग्रीव सोहामणो मृगपुत्र राजा वलिभद्रराय हो,

अंत—केवल पाम्यो निरमलो, पामी सिव सुख ठाम हो,
गछ नागौरी दीपता, गुरु क्षेत्रसिंह गुणधाम हो।
मुनि खेम भणै कर जोड़े, तिकरण सुध प्रणाम हो।

सोलसत्तवादी का प्रारम्भ देखिये—

ब्रह्मचारी चूडामणी जिन शासन शिणगार हो,
सतवादी सोले तणा गुण गायां भवपार हो।

अन्त— सोल सती गुण गाइया मेडतानगर मझार हो,
अहिपुर गछ मुनि खेतसी, शिष्य खेम महासुखकार हो।

इसका विवरण श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपने संग्रह की हस्तप्रति से दिया था।

गजसागरसूरि शिष्य—अंचलगच्छीय गजसागरसूरि के एक अज्ञात शिष्य ने 'नेमिचरित्र फाग' की रचना सं० १६६५ फाल्गुन ६ बुद्धवार को की। इसकी हस्तप्रति ईडरबाइओं के भण्डार से प्राप्त हुई है। इसके अन्त की पंक्तियों में रचना से संबंधित विवरण दिया गया है यथा,

सोल पासठि फागुणि छठि अनइ बुधवारि,
विधि पक्षि गछि जांणीइ श्री गजसागरसूरि राय,
तास शिष्य कहि नेमिनुंफागु बंधमनोहर।[2]
भावि गुणइ जे सम्भलइ तेहघरि जयजयकार।

(ब्रह्म) गणेश या गणेशसागर—आप भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य कुमुदचंद्र के शिष्य अभयचंद्र के शिष्य थे। उक्त तीनों भट्टारकों की स्तुति में आपने कई गीत स्तवन लिखे हैं। इस प्रकार के २० गीत एवं पद प्राप्त हैं। इनसे इनके गुरुजनों का परिचय प्राप्त करने में सुविधा होती है। इन्होंने दो पद तेजाबाई की प्रशंसा में भी

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९१-५९२ (प्रथम संस्करण)
और भाग ३ पृ० ३४३ (द्वितीय संस्करण)

२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४०३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

लिखे हैं जो संघ निकालने में विशेष सहायता करती थीं।[1] आपके पदों की भाषा सरल मरुगुर्जर या हिन्दी है, यथा—

आजु भले आये जन-दिन धनरयणी।

शिवयानंदन वंदी रत तुम, कनक कुसुम बधावो मृगनयनी।
उज्ज्जलगिरि पाय पूजी परमगुरु सकल संघ सहित संग सयनी।
मृदंग बजावते गावते गुनगनी, अभयचन्द्र पट्टधर आयो गजगयनी।
अब तुम आये भली करी, घरी घरी जय शब्द भविक सब कहेनी।
ज्यों चकोरीचन्द्र कुं इयत, कहत गणेश विशेषकर बचनी।[2]

इन गीतों तथा स्तवनों में कवि-हृदय की भावुकता खुलकर व्यक्त हुई है। उपरोक्त गीत भट्टारक अभयचंद्र के स्वागत गान में लिखा गया था। आपने भट्टारक कुमुदचंद्र की स्तुति में भी कई गीत लिखे हैं जिनसे इन भट्टारकों के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख भ० कुमुदचंद के सन्दर्भ में हो चुका है। ब्रह्मसागर, धर्मसागर, संयमसागर और जयसागर इनके गुरुभाई थे। इनकी कुछ पंक्तियाँ आगे नमूने के रुप में उद्धृत की जा रही है—-

गीत—संघवी कहान जी भाइया वीर भाई रे।
मल्लिदास जमला गोपाल रे।
छपने संवत्सरे उछव अति करचो रे। संघ मेली बाल गोपाल रे।

कुमुदचंद्र की बारडोली में पाटप्रतिष्ठा से संबंधित निम्नांकित पंक्तियां देखिये--

बारडोली मध्ये रे, पाट प्रतिष्ठा कीध मनोहार।
एक शत आठ कुम्भ रे, ढाल्या निर्मल जल अतिसार।
सूरमंत्र आपयो रे, सकलसंघ सानिध्य जयकार।
कुमुदचंद्र नाम कह्यां रे, संघवि कुटम्ब प्रतपो उदार।[3]

गुणनंदन—सागरचंद्र सूरि शाखा के विद्वान् लेखक श्री ज्ञानप्रमोद आपके गुरु थे। ज्ञानप्रमोद ने सं० १६८१ में वाग्भट्टालंकार वृत्ति लिखी और सं० १६७२ में आपने 'शीतलनाथ स्तवन' लिखा था। इनके शिष्य गुणनंदन ने सं० १६७५ में 'इलापुत्ररास' बिहारपुर में लिखी।

१. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० १९२
२. गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पृ० ११९
३. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० १३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी दूसरी रचना 'दामनक चौपाई'[1] सं० १६९७ में सरसा नामक स्थान में रची गई। आपकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'मंगलकलशरास' (३३० कड़ी) का निर्माण सं० १६६५ कार्तिक शुक्ल ५ सोमवार को पूर्ण हुआ। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है :—

पढम जिनेसर पाय नमी आदिनाथ अरिहंत,
शत्रुंजय भूषण सधर समरइ जे जगिसंत।

रचनाकाल—संवत सोल पणसठइ नितकाती मास उदार,
अजूआली पंचमि तिथिइ सौम्य कहउं तिथिवार।

गुरुपरंपरा—साधु गुणे करि सोभता गणि श्री ज्ञान प्रमोद,
नरनारी सेवइ जिके तिह धरि होइ विनोद
तसु गुणनंदन सीस।
चरिथ कहइ मंगल तणउ, हर्षधरी निसदीस।[2]

गुणप्रभ सूरि—आप खरतरगच्छ की बेगड़शाखा के प्रसिद्ध आचार्य और साहित्यकार थे। श्री जिनशेखरसूरि ने सं० १४२२ में बेगड़शाखा का प्रवर्त्तन किया था। १७वीं शताब्दी में जैसलमेर के आसपास इस शाखा का अच्छा प्रभाव था। गुणप्रभसूरि ने 'चित्त संभूत संधि (गाथा १०९) और 'सत्तर भेदी पूजा स्तवन' तथा नवकार गीत आदि की रचना की है।[3] श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है कि गुणप्रभभूरि, जिनेश्वर सूरि और जिनचन्द्रसूरि १७वीं शताब्दी के उत्तम गीतकार थे। ये अच्छे साहित्यकार तथा उच्चकोटि के आचार्य थे, इनके शिष्य जिनेश्वर सूरि ने अपने गुरु की प्रशस्ति में 'गुणप्रभ सूरि प्रबन्ध' (६१ पद्य) लिखा है जो ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है। उस प्रबन्ध द्वारा आपके जीवन चरित पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

वाचक गुणरत्न—खरतरगच्छ के युगप्रधान जिनचंद्रसूरि के गुरु जिनमाणिक्य सूरि की परंपरा में कई विद्वान् और कवि हो गये हैं। इसमें वादि शिरोमणि वाचक गुणरत्न विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये जिनमाणिक्य सूरि के प्रशिष्य एवं विनयसमुद्र के शिष्य थे। आपने काव्यप्रकाश, रघुवंश, मेघदूत और न्यायसिद्धान्त आदि महत्व-

१. श्री अगरचंद नाहटा—परम्परा पृ० ८५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३७७ (द्वितीय संस्करण)
३. श्री अगरचंद नाहटा—परम्परा पृ० ८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ण ग्रन्थों की संस्कृत टीकायें लिखी हैं जिनसे इनकी विद्वत्ता का अनुमान होता है।[1]

मरुगुर्जर भाषा में आपने 'संपति-संजयसंधि' (गाथा १०६) की रचना सं० १६३० श्रावण शुक्ल ५ को पूर्ण की। आपकी दूसरी कृति 'श्रीपाल चौपइ' भी उपलब्ध है। प्रथम रचना से काव्य भाषा एवं काव्यत्व का नमूना देखने के लिए कुछ छन्द आगे उद्धृत किए जा रहे हैं। प्रथम रचना का प्रथम छन्द—

पणमिय रिसह जिणेसर सामी, पउमावइ प्रणमुं सिर नामी।
संजय मुणिवर संधि भणेसु, उत्तरज्झयण थकी समरेसु। १।

इसमें उत्तराध्ययन का परिचय भी संजयमुनि की कथा के माध्यम से दिया गया है। कवि जिनचंद्र की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि वे गौतम गणधर के समान ज्ञाता, स्थूलिभद्र के समान शीलवान और वयरकुमार के समान रूपवान थे। उनका तेज सूर्य के समान था। इसका रचनाकाल देखिये—

संवत सोलसइ त्रीसइ अे, श्रावण सुदिनइ दीसइ अे,
जगीसइ अे पंचमि संपूरण थुणी अे।[2]

गुरुपरंपरा—जिनमाणिक्य सूरि सहगुरु, सीस विणयगुण सुरतरु।
गणिवर विनय समुद्र मुनिवर भला अे।
तासु सीस इम संथुणइ, मुनि गुणरतन सुगुणभणइ।
अे जिणइ वचन विलास सफल सही अे।

जिनचंद्र सूरि की प्रशंसा में निम्नपंक्तियाँ देखिये—

खरतर गछि गुरु गाजइ अे, श्री जिन चंद्र सूरि राजइ अे।
छाजइ अे गौतम उपमा जेहनइ। तेजइ रवि जिम दीपता,
मोह महाभड जीपता। छीपता कसमल मलनवि तेहनइ।
सीलइ थूलिभद्र सारु अे, रुपइ वयर कुमारु अे।[3]
उदारु अे सुरगुरु समवाडि मति करी अे।
धीरम मंदर गिरिवर गंभीरम गुणसागर,
आगर दरसण नाण चरण भरी अे।

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७६
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५११-१२ (प्रथम संस्करण)
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५११ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन पंक्तियों में छन्दप्रवाह, अलंकृति आदि गुण द्रष्टव्य है।

गुणविजय–तपागच्छ के कमलविजय > विद्याविजय आपके गुरु थे। आपकी कई उत्तम रचनायें उपलब्ध हैं उनमें ७२० जिननाम स्तवन, 'विजयसेन सूरि निर्वाण स्वाध्याय', नेमिजिनफाग, विजयसिंह सूरि (विजय प्रकाश) रास, वंभणवाडमंडन महावीर फाग स्तवन, शील-बत्तीसी और सामायक संझाय आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ कई स्थानों से प्रकाशित भी हैं। इनका क्रमशः संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

'७२० जिननाम स्तवन' की रचना सं० १६६८ चैत्र रविवार को जालोर में हुई। कवि ने इसमें अपनी गुरु परंपरा इस प्रकार कही है–

"श्री विजयसेन सूरीसरु तु भ० श्री विजय देव युवराज तु
तस गछि गुणरयणायरु तु भ० सुविहित पंडित सीह तु।
श्री गुरु कमलविजय जपु तु भ० विद्याविजय बुध लीह तु,
तास सीस इणि परि कहि तु भ० चैत्री दिन रविवार तु,
संवत सोल अडसठि तु भ० गढ जालोर मझारि तु।"[1]

इसके अलावा अन्य रचनाओं में दी गई गुरु परंपरा से ज्ञात होता है कि ये कमलविजय के शिष्य थे। हो सकता है कि विद्याविजय जी इनके ज्येष्ठ गुरु भ्राता और विद्यागुरु भी रहे हों। यह चौबीसी २४ तीर्थङ्करों की स्तुति रूप है।

इस कवि की दूसरी प्रसिद्ध रचना 'विजयसेन सूरि निर्वाण स्वाध्याय' जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसंचय और ऐतिहासिक सञ्झाय माला भाग १ में प्रकाशित है।[2] पहले इस कृति को श्री देसाई ने कनक विजय के शिष्य गुणविजय की रचना बताया था। किन्तु द्वितीय संस्करण में इसे सुधारकर प्रस्तुत गुणविजय की रचना बताया गया है। जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट होता है कि यह रचना विजयसेन सूरि के स्वर्गवास से संबंधित है। सं० १६७२ के कुछ बाद ही इसे मेड़ता में कवि ने पूरा किया होगा। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरसति भगवति भारती जी, भगति धरी मनि माय,
पाय नमी निज गुरु तणाजी थुणस्युं तपगच्छराय।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १३७ (द्वितीय संस्करण)
२. जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय पृ० १६६-१७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयंकर जेसंगजी गुरुराय, नामि नवनिधि पामिइ जी
दर्शनि दारिद्रजाय, जयंकर जेसंग जी गुरुराय।

विजयसेन के बचपन का नाम जयसिंह था। इनका जन्म सं० १६०४ फाल्गुन में पिता कम्माशाह और माता कोडिम दे के यहाँ हुआ था। दीक्षा सं० १६१३, दीक्षानाम जयविमल तथा सं० १६२८ में सूरि पद और नाम विजयसेन सूरि पड़ा। रास से पता चलता है कि इस महान जैनाचार्य का संपर्क फिरंगियों से भी था—"कपीतान काजीमिल्या, पादरी नइ परिवार, पूज्य फिरंगी लेडिया पहुता दीष मझारो रे।"[1] जै० ऐ० गु० का० संचय पृ० १६९

विजयसिंह सूरि (विजय प्रकाश) रास—इस रास की रचना सं० १६८३ की विजयादशमी को सिरोही में हुई। यह २१३ कड़ी की रचना है। इसमें तपागच्छ की गुरु परंपरा जगच्चंद्र से प्रारम्भ करके विजय सिंह और कमल विजय तक बताई गई है। विजयसेन को ५९वाँ विजयदेव को ६०वाँ और विजय सिंह को ६१वाँ पट्टधर बताया गया है। कवि कहता है—

श्री विजयदेव सूरि सरु, जीवो कोडि वरीस,
तिणि निजपाटि थापीओ, कुमति मत गंजसीह।
विजयसिंह सूरीसरु, सकल सूरि सिर लीह,
रास रच्यु रलीआमणो, मनि आणी उल्लास।
विजयसिंह सूरी तणो सुणयो विजय प्रकाश।

रचनाकाल—सोलत्र्यासीआ वर्षि हर्षि सीरोही सुख पायउ जी,
ऋषभदेव प्रभु पाय पसायइं विजयसिंह सूरि गायो जी।
कमलविजय जय वंडित पंदित, विद्याविजयगुरु चेलोजी
गुणविजय पंडित इम पयंपइ बाधउ तपगछ वेलो जी।[2]

यह रचना भी ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह में प्रकाशित है। रास-नायक श्री विजयसिंह का जन्म सं० १६४४ में मेडता के चोरडिया गोत्रीनथमल की पत्नी नायक दे की कुक्षि से हुआ था। सं० १६५२

---

१. जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय पृ० १६९

२. वही पृ० १६६-७० तथा जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४७२-७३ और पृ० ५१९ से ५२१ (प्रथम संस्करण) और ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ३४१-३६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में विजयसेन सूरि से दीक्षा ली और नाम कनकविजय पड़ा। सं० १६८१ में विजयदेव ने इन्हें अपना पट्टधर नियुक्त किया और नाम विजयसिंह सूरि रखा गया। उसी समय यह रास गुणविजय ने लिखा था। नथमल की संपन्नता का एक उदाहरण—

मीठाई मेवा भरपूर, चोवा चंदन अगर कपूर,
नायक दे नवयौवन नारि, नाथू सुखविलसइ संसार।

कर्मचंद का जन्म—राजयोग रलियामणइ, फाग रमइ नरनारि,
कर्मचंद कुंवर जण्यो, जगि हुआ जय जयकार।[1]

'बंभणवाडमंडन महावीर फाग स्तवन' (गाथा ३६४)

इसका कलश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

'श्री वीर बंभणवाड वसुधा भामिनी-भूषणमणी,
संसार सागर तरणतारण कर्णधारक जगधणी।
बहु यमक जुगति सुभग भगति फाग रागइं गाइउ,
गुणविजय जयकर जिनपुरंदर हृदयमंदिरि ध्याइउ।'[2]

इसमें बंभणवाड स्थित महावीर भगवान का स्तवन किया गया है।

शील बत्तीसी—जैसा नाम से ही स्पष्ट है, इस रचना द्वारा शील का माहात्म्य स्थापित किया गया है। यह प्रकाशित कृति है। यह जिनेन्द्र स्तवनादि काव्य संदोह भाग १ पृ० ३५५-५८ पर प्रकाशित है। रचना के अन्त में कवि कहता है—

घरघर घोड़ा हाथीया जी, घर घरणी मनरंग,
शीयलें मंगलमालिका जी, जल थल जंगल जंग।
मोटा मन्दिर मालीया जी, बेठा बंधव जोड़
जय जयकार करे सहु जी, धण कण कंचन कोडि।
शीयले सोभागीसरो जी, श्री विजेदेव सूरींद,
तपगच्छराय प्रशंसीयो जी, कमलवीजे जोगींद।
शीयल बत्तीसी सीलनी जी, सुणी जे सेवसें शील,
गुणविजय वाचक भणेजी ते नीत लहसे लील। ३२।[3]

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ३४१-३६४
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४१ (द्वितीय संस्करण)
३. वही पृ० १४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायक संझाय १३ कड़ी की लघुकृति है। इसके आदि-अन्त की पंक्तियाँ निम्नवत् हैं--

आदि --गोयम गणहर प्रणमी पाय।

अन्त --सामायिक करज्यो निस दीस,
कहि श्री कमल विजय गुरु सीस।

इसमें नित्य चर्या के रूप में सामायिक का महत्व सरल हिन्दी (मरुगुर्जर) में समझाया गया है।

(गणि) गुणविजय--तपागच्छीय विजयसेनसूरि के शिष्य कनकविजय (विजयसिंह सूरि) के आप शिष्य थे। इसीलिए श्री देसाई ने विजय सिंह सूरि (विजय प्रकाश) रास का कर्त्ता इन्हीं को बताया था।[1] यह सम्भावना भी है कि इन्होंने अपने गुरु के गुणानुवाद के लिए इस रास की रचना की हो, पर जैन गुर्जर कविओ, द्वितीय संस्करण के सम्पादक ने स्पष्ट लिखा है कि वह रचना इस गुणविजय की नहीं अपितु पूर्व वर्णित कमलविजय के शिष्य गुणविजय की है। नामसाम्य के कारण यह भ्रम हो सकता है किन्तु अभी भी इस सम्बन्ध में अनुसंधान की आवश्यकता है। अस्तु; प्रस्तुत गुणविजय की निम्नांकित रचनायें महत्वपूर्ण हैं--प्रियंकरनृपचौपाई, जयचंद्र (जयतचंद्र) रास और कोचर व्यवहारी रास। इनमें से अन्तिम रचना प्रकाशित और प्रसिद्ध है। रचनाओं का संक्षिप्त परिचय सोदाहरण आगे दिया जा रहा है--

प्रियंकरनृप चौपइ (उवसग्गहर स्तोत्र के विषय में) यह कृति सं० १६७८ आसो शु० ४ गुरुवार को प्रारम्भ होकर १३ दिन में नवलखा नामक स्थान में पूरी की गई थी। इसका आदि देखिये--

महिमानिधि गुज्जरधणी श्री संखेसर पास,
सरसति निज गुरु मनि धरी, रचउं प्रियंकर रास।
संवेगी-सिर मुगुट मणि, भवजल राज जिहाज,
विजयवंत वसुधातलिं कनकविजय कविराज।
करजुग जोड़ी पदकमल, प्रणमी प्रेमइं तास,
श्री उवसग्गहरा तणो महिमा करुँ प्रकाश।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १, पृ० ५१९ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० २२४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—संवत सोलह् अठयोतरइ, सज्जन सहूको आनन्द करइ.
आसो महीनु अति सुखकार, सुकल चउथि नइं सुर गुरुवार

गुणविजय गणि तभी विजयसिंह सूरि के शिष्य बने होंगे जब वे कनकविजय गणि थे और सूरिपद पर आसीन नहीं हुए थे। इसीलिए कवि ने उनका नाम कनकविजय ही दिया है न कि विजयसिंह सूरि जो सं० १६८१ में सूरि पद पर बैठे थे और यह रचना उससे पूर्व (सं० १६७८) ही हो चुकी थी। जयचंद्र (जयत चंद्र) रास (२७६ कड़ी) सं० १६८३ में आसो शुक्ल ९ को डीसा नामक स्थान में रची गई थी किन्तु इसमें भी कवि ने गुरु का नाम कनकविजय ही दिया है, यथा—

श्री तपगच्छ नो राजी ओ विजयसेन सूरिंद,
विजयदेव सूरीसरु, विजयसिंह मुनिचंद।
कोविद कनकविजय तणां, प्रणमी पद अरविन्द,
गणिगुण विजय भणीमुदा प्रामीयं परमानंद।

इसमें लेखक ने विजयसिंह और कनक विजय दोनों नाम दिया है लेकिन प्रणाम कनकविजय को ही किया है। रचनाकाल सं० १६८७ बताया गया है जो देसाई द्वारा बताये सं० १६८३ से भिन्न है अतः ये दोनों प्रश्न विचारणीय हैं।

रचनाकाल—संवत सोल सित्यासीइ, आसो महीनइ अेह,
नव दिवसे रचना करी, डीसइ आंणी नेह।[1]

यह रचना काशी कन्नौज देशाधिपति जयचंद गाहड़वाड से सम्बन्धित है।

कोचरव्यवहारी रास—यह रचना ऐतिहासिक रास संग्रह के पहले भाग में पहली कृति के स्थान पर संकलित-प्रकाशित है। तपागच्छनायक विजयसेन सूरि के समय कविराय कनकविजय के शिष्य गुणविजय ने सं० १६८७ में डीसा में इसे लिखा। उसी वर्ष उसी माह के प्रथम पक्ष में उसी तिथि को इन्होंने जयचंद्र रास भी लिखा था,

यथा—संवत सोल सित्यासी वरषे, डीसानयर मझारि रे,
आसो वदि नु'मि अे निरुपम, कीधउं रास उदार रे।

इस रास का मुख्य कथ्य जीव दया है। इसे कोचर के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। पाटन से कुछ दूर स्थित लखमनपुर निवासी

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २२५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदोशाह की पत्नी वीरमदे की कुक्षि से कोचर का जन्म हुआ था। वह बचपन से ही धर्मपरायण था। उसके गाँव में देवी को बलि दी जाती थी। एक बार वह खंभात गया और वहाँ सुमतिसूरि से उसने यह प्रश्न पूछा और निराकरण के लिए निवेदन किया। महाराज सुमति सूरि ने खंभात के वैभवशाली एवं प्रभावशाली वैश्य शाह देशलहरा को बुलवाया। उनके साथ कोचर को सुल्तान के पास भेजकर जीवहिंसा बंदी का आदेश दिलाया। इस रास में उपरोक्त घटनाओं का सुन्दर वर्णन किया गया है। प्रारम्भ में सरस्वती वन्दना के बाद कनकविजय की स्तुति और पाटन का उल्लेख किया गया है। इसमें चउपइ, दूहा देशी ढाल और विभिन्न रागों का प्रयोग किया गया है। प्रवाहयुक्त मधुर भाषा का एक नमूना देखिये —

मंगलमाला लक्षि विशाला लहीइ लीला भोग रे,
ईष्ट मिलइ वली फलइ मनोरथ सिद्धि सकल संयोग रे।[1]

गुरु परम्परा का वर्णन देखिये—

श्री तपगछनायक गुरु गिरु आ, विजयसेन गणधार रे,
सा हकमानंदन मनमोहन, मुनिजन नो आधार रे।
तास विनेय विबुध कुल मंडन, कनक विजय कविराय रे,
जस अभिधानि जागर शुभमति, दुर्मति दुरित पलाइ रे।

विजयसेन के पश्चात् विजयदेव की चर्चा इसमें नहीं है बल्कि विजयसेन के पश्चात् सीधे कनकविजय या विजयसिंह की चर्चा की गई है। हो सकता है कि कनकविजय के दीक्षा गुरु विजयसेन ही हों। कवि कनकविजय का शिष्य है, यथा —

तस पद पंकज मधुकर सरिषो, लही सरसति सुपसाय रे,
इम गुणविजय सुकवि मनहरसि, कोचरना गुण गाय रे।

यह संभावना है कि दोनों गुणविजय एक ही व्यक्ति हों क्योंकि दोनों का नाम एक है और दोनों तपागच्छीय मुनि हैं। दोनों के गुरु कमलविजय और कनकविजय विजयदेव या विजय सिंह के शिष्य थे। दोनों का रचना विषय तथा रचना शैली और काव्य-विधा तथा समय लगभग समान है। उनको अलग-अलग कवि सिद्ध करने के ठोस प्रमाण भी नहीं हैं।

१. ऐतिहासिक रास संग्रह भाग १, क्रमांक १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक तीसरे गुणविजय भी हैं। वे निश्चय ही इन दोनों से भिन्न हैं उनका विवरण आगे प्रस्तुत है—

गुणविजय—आप भी तपागच्छीय विजयानन्दसूरि के शिष्य कुंवर विजय के शिष्य थे। विजयानन्द सूरि का आचार्यकाल सं० १६७६ और स्वर्गारोहण काल सं० १७११ निश्चित किया गया है अतः इनका भी रचना काल यही होगा। आपकी रचना गुणमंजरी वरदत्त चौपइ अथवा सौभाग्य पंचमी या ज्ञान पंचमी ४९ कड़ी की प्रकाशित कृति है। इसमें ज्ञान पंचमी व्रत का माहात्म्य गुणमंजरी वरदत्त की कथा के दृष्टान्त से समझाया गया है। इसका प्रारम्भ देखिये—

प्रणमी पास जिनेसर प्रेम स्यूं, आणि अति घणो नेह,
पंचमि तप मांहि महिमा घणो, कहतां सुणजो रे तेह, चतुर नर।१

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

सकल सुखकर सयल दुखहर गाइवो नेमिसरो,
तपगच्छ राजा बड़ दिवाजा श्री विजय आणंद सूरीसरो।
तस शिष्य पदम प्राग मधुकर कोविद कुंअर विजय गणि,
तस शिष्य पंचमी तपन भाषें श्री गुणविजय रंग गुणि।४९[1]

यह रचना 'चैत्य आदि संज्झाय' भाग २ में तथा अन्यत्र से भी प्रकाशित हो चुकी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही समय में प्रायः दो-तीन गुणविजय नामक गुणज्ञ कविजन तपागच्छ में आविर्भूत हुए। इनमें काव्य सौन्दर्य एवं रचना प्रसार की दृष्टि से प्रथम एवं द्वितीय महत्वपूर्ण हैं, जब कि मुझे ऐसी भी शंका है कि वे दोनों संभवतः एक ही व्यक्ति हैं।

(उपाध्याय) **गुणविनय**—आप खरतरगच्छीय श्री क्षेम शाखा के प्रसिद्ध विद्वान् उपाध्याय जयसोम के शिष्य थे। आपका साहित्य निर्माण काल सं० १६४१ से सं० १६७६ तक प्रायः २५ वर्षों में फैला है। आपका जन्म सं० १६१३ के आसपास और दीक्षा सं० १६२० के आसपास अनुमानित है। सं० १६४८ में जब युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि सम्राट् अकबर से मिलने लाहौर गये थे उसी समय इन्हें भी वाचक पद प्रदान किया गया था। आप संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २०१ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ५९४-९५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

आपने नेमिदूत, नलदमयन्ती चम्पू, रघुवंश, वैराग्यशतक, संबोध-सप्तति, इन्द्रियपराजय शतक आदि अनेक संस्कृत, प्राकृत के ग्रन्थों की संस्कृत में टीका की है।

मरुगुर्जर के गद्यपद्य में रचित आपकी निम्नांकित रचनायें प्राप्त हैं—कयवन्नासंधि, सं० १६५४ बीकानेर; कर्मचंदवंशावली रास, सं० १६५६ सधरनगर; अंजनासुन्दरीरास सं० १६६२ खंभात; ऋषिदत्ता चौपइ सं० १६६३; गुणसुन्दरी चौपइ सं० १६६५, नवानगर; नलदमयन्ती प्रबन्ध सं०१६६५, नवानगर; जम्बूरास सं० १६७० बाड़मेर; धन्ना शालिभद्र चौपइ सं० १६७४ आगरा; अगडदत्तरास कलावती चौपइ सं० १६७३ सांगानेर; बारहव्रतरास सं० १६५५; जीवस्वरूप चौपइ सं०१६६४ राजनगर; मूलदेव चौपइ सं० १६७३ सांगानेर; तपइकावनबोल चौपइ सं० १६७६; शत्रुंजय चैत्यपरिपाटी स्तवन सं० १६४४; कयवन्ना चौपइ सं० १६५४ और अंचलमत स्वरूप वर्णन सं १६७४ आदि। इनमें कुछ ऐतिहासिक, कुछ पौराणिक, कुछ स्तवन और कुछ साम्प्रदायिक रचनायें हैं। आप धर्मशास्त्रीय खंडन-मंडन एवं शास्त्रार्थ में पारंगत विद्वान् थे। आपने राजस्थान, गुजरात आदि प्रदेशों में दूर-दूर तक विहार करके स्वमत स्थापन एवं विरोधियों के खण्डन का कार्य किया। इनकी कुछ रचनाओं का परिचय-विवरण प्रस्तुत है—

कर्मचंद वंशावली प्रबन्ध—इस प्रबंध रचना में जैन मंत्री कर्मचंद की वंशावली दी गई है। इसके प्रारम्भ में फलौधी-पार्श्वनाथ और सरस्वती की वंदना है। सातवीं कड़ी से कर्मचंद की वंश परम्परा का वर्णन प्रारम्भ किया गया है। १४४ कड़ी तक कर्मचंद के पूर्वजों का विभिन्न राजाओं के साथ सम्बन्ध-व्यवहार आदि पर प्रकाश डाला गया है। १४५वीं कड़ी से कर्मचन्द का वर्णन प्रारम्भ हुआ है। स्मरणीय है कि इन्हीं कर्मचंद के प्रयत्न से हीरविजय और जिनचन्द्र सूरि की सम्राट् अकबर से भेंट सुगमतापूर्वक हो सकी थी। ये बीकानेर के राजा कल्याणमल्ल के मंत्री थे। इनके पिता का नाम संग्राम था। इनका राजकुमार रायमल्ल के साथ अच्छा सम्बन्ध था। राजा कल्याणमल्ल की इच्छा जोधपुर की राजगद्दी प्राप्त करने की थी। इस इच्छा की पूर्ति हेतु रायमल्ल और कर्मचंद को सम्राट् अकबर की सेवा में कर दिया गया। जहां उन लोगों ने अपनी सेवा परायणता और कर्मपटुता से सम्राट् को प्रसन्न कर लिया था। सम्राट् प्रसन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ और कल्याणमल की इच्छा पूर्ण हुई। राजा ने मंत्री कर्मचंद को चार गाँव दिये। सं० १६३५ के दुष्काल में उन्होंने खूब दान देकर प्रजा की रक्षा की। सिरोही से लूटी गई जिन प्रतिमाओं को सोना देकर छुड़ाया और तुरसम खां जिन वणिकों को गुजरात से पकड़ लाया था उन्हें भी मुक्त कराया। शत्रुञ्जय और मथुरा में जीर्णोद्धार कराया। सतलज, रावी नदियों में मछली मारना बन्द कराया। उनके दो पुत्र थे भाग्यचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र। रायमल्ल सिंह को बादशाह ने राजा की पदवी देकर पंचहजारी बना दिया। एक बार कर्मचन्द राजा कल्याणमल्ल से रूठकर मेड़ता चले गये, तब सम्राट् ने उन्हें बुलाकर सम्मान दिया। उन्होंने शाही फरमान लेकर लाहौर में जिनचंद सूरि की बादशाह से भेंट कराई और तीर्थों की करमुक्त यात्रा आदि की आज्ञा बादशाह से प्राप्त करने में सूरिजी की बड़ी सहायता की।

उस समय जिनचन्द्रसूरि को युग प्रधान और जिनसिंह सूरि को आचार्य तथा गुणविनय, समयसुन्दर आदि को उपाध्याय-वाचक आदि पद प्रदान किए गये थे। इस सबका उत्सव कर्मचन्द ने बड़ी धूमधाम से मनाया था। यह सब इस प्रबन्ध का वर्ण्यविषय है। यह रचना ऐतिहासिक रास संग्रह और जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित और पर्याप्त प्रसिद्ध है। इस रास में इस युग की प्रमुख घटनाओं और पात्रों का वर्णन होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व है। इस परिवार में समधर, तेजपाल, कडुआ, वच्छ आदि कई सम्मानित राजपुरुष और मंत्री आदि हुए थे। कवि कर्मचन्द की प्रशंसा में लिखता है --

जिमपुनिमनउ चंदलउ धरणि धवल रुचि भावइ रे,
तिम श्री कर्मचन्द मंत्रवी निज कुलि सोह बड़ावइ रे।
संग्रहीयइ गुण अकेला, दूषणलेस न लीजइ रे,
राजहंस जिम जलत्यजि, सूधइ दूधइ पीजइ रे।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

फलवधि पास प्रणाम करि बागवाणि समरेवि,
श्री जिन कुशल मुणिंद पय हृदयकमलिसु धरेवि।[1]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३२६-२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना का उद्देश्य—ते निसुणइ हरखइ करी मंत्रीसर परबंध,
धरमवंत गुण गावतां जिम हुवइ शुभ अंक बंध।

रचनाकाल—सोलह सइ पंचावनइ, गुरु अनुराधा योगइ रे,
माहवइ दसमी दिनइ मंत्री वचन प्रयोगइ रे।[1]

यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य है। इसकी भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न मरुगुर्जर (हिन्दी हैं)।

ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में आठ कड़ी का एक गीत जिनराज सूरि गीतम् भी संकलित है; जिसका आदि—

श्री जिनराज सूरीश्वर गच्छधणी धुरि साधुनउ परिवार,
ग्रामानुग्रामइ विहरता सखि, वरसता हे देसण जलधार।

अन्त—निर्मलइ वंशइ ऊपनउ व्रजस्वामि शाखि शृङ्गार,
श्री गुणविनय सद्गुरु ईसउ सखि बाहिवा रे मुझ हर्ष अपार।[2]

इसी संग्रह में 'खरतरगच्छ गुर्वावली' भी एक ऐतिहासिक रचना संकलित है। इसमें युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि तक के खरतरगच्छीय गुरुओं की सूची है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जेसलमेरु विभूषण पास जी, सुप्रसादइ अभिरामो जी,
श्री जयसोम सुगुरु सीसइ मुदा, गुणविनय गणि शुभकामो जी।[3]

अंजनासुन्दरी प्रबन्ध (१६६२) में भी सम्राट् अकबर से जिनचंद्र और जयसोम आदि के मिलने का संकेत है, यथा—

अकबर शाहि संभाअई जासु दस दिसि हुअउ विनय विकासु।
तासु शिष्य अछइ विनीत गुणविनयति जयतिलक सुविदीत।
तिहां वाचक गुणविनयइ दीठओ, पूर्व प्रबन्ध जिस्यउ मुंह मीठो।
सोलहसइ बासट्ठा वरसइ, चैत्र सुदइ तेरस नइ दिवसइ।[4]

ऋषिदत्ता चौपइ—(सं० १६६३) २६८ कड़ी की रचना है। इसमें महान सती ऋषिदत्ता के ब्रह्मचर्य, सतीत्व और शील का आदर्श प्रस्तुत करके लोगों को इन गुणों की शिक्षा दी गई है।

१. ऐतिहासिक रास संग्रह पृ० ११५ और जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय पृ० १३२
२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह
३. वही
४. जैन गुर्जर कविओ भाग २, पृ० २१७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

संवत गुण रस रस शसि बरसइ, चैत्र सुदइ नवमी नइ दिवसइ।

इसका प्रारम्भ—"पुरुषादेय उदयकरु पणमिय थंभणपास,
जेहनइ नाम ग्रहण थकी, पूजइसघली आस।"

जीवस्वरूप चौपइ—२४७ कड़ी सं० १६६४।

रचनाकाल—अंबुधि काय रसावनि वरषइ, श्री संघ केरइ हरषइजी के 'अंबुधि' शब्द को लेकर कोई सं० १६६४ और कोई सं० १६६७ को रचनाकाल बताता है।

नलदमयन्ती प्रबन्ध (सं० १६६५) में प्रसिद्ध राजा नल और उनकी सुन्दरी पत्नी दमयन्ती की कथा जैनमतानुकूल प्रस्तुत की गई है। यह प्रकाशित रचना है। संपादक हैं रमणलाल चिमनभाई शाह।

जम्बूरास—इसमें पंचम गणधर सुधर्मा स्वामी के प्रसिद्ध शिष्य जंबुकुमार का पावन चरित्र वर्णित है, इसका आदि—

पणमिय पास जिणिंद प्रभु श्री जिनकुशल मुणिंद,
प्रभुतानिधि सोहगनिलउ, समरी सुखनउ कंद।

मूलदेवकुमार चौपाई—(१७० कड़ी सं० १६७३) दान का माहात्म्य वर्णित है यथा—

उवझाय श्री जयसोम गुरु पयपंकज परभावि,
दानतणा गुण वर्णवुं करि सारदअनुभावि।

रचनाकाल–गुणमुनि रस ससि वरसइ चारु, मूलदेव संबंध विचारु
श्री सांगानयरइ मनहरषइ, जेठ प्रथम तेरसिनइ दिवसइ।[१]

कलावती चौपाई—(२४२ कड़ी सं० १६७३ श्रावण शुक्ल ९ शनिवार) कवि कहता है कि कामविकार से ब्रह्मा, विष्णु आदि भी मुक्त नहीं हैं पर कलावती ने कामविकार पर विजय प्राप्त किया था, कवि लिखता है—

"तेहनइ पालिवउ अति विकट सील तणउ संसारि,
तिण तेहनउ वर्णन करुं जिहाँ नहीं काम विकार।"

रचनाकाल–संवत सोल तिहत्तरा वरसइ श्रावण सुदि नवमीनइ दिवसइ
नवमइ रवियोगइं शनिवारइ, पूर्व प्रबंध तणइ अनुसारइ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १, पृ० २२०-२२३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नोत्तर मालिका अथवा पार्श्वचन्द्रमत (दलन) चौपाई सं० १६७३ सांगानेर, एक खंडन मंडनात्मक साम्प्रदायिक रचना है। इसी प्रकार की रचना 'अंचलमतस्वरूपवर्णन' भी है जो सं० १६७४ माह शुदी ६ बुद्ध को मालपुर में रची गई थी। रचना का उद्देश्य कवि के शब्दों में–

अंचल थापण जिनिकरी शास्त्र विना निरमूल,
सांभलता श्रवणइ हुवइ श्रुतधरनइ सिरि सूल
वचन मात्र निसुणी करी मारग छोड़इ सुद्ध,
धवलउ सगलउ मूढ़मति देखी जाणइ दूध।

इसमें कवि ने अपने सम्प्रदाय-शाखा आदि का भी वर्णन किया है—

खेमराय उवझाय राय श्री खेमनी साखइ,
सवि साखा महि जासु साख पंडित जन भाषइ।
हुवउ पुहवि परसिद्ध पाटइ तसु सुन्दर,
श्री प्रमोदमाणिक्य तासु तसुसीस जयंकर।
उवझाय श्री जयसोम गुरु तासु सीस अप्रमादि,
उवझाय श्री गणि गुणविनइ श्री जिनकुशल प्रसादि।

इसी प्रकार की इनकी तीसरी साम्प्रदायिक रचना लुंपकमत तमोदिनकर चौपइ सं० १६७५ श्रावण वदी ६ शुक्रवार को सांगानेर में लिखी गई। मूर्तिपूजा विरोधियों का खंडन करने के लिए यह रचना की गई है। लोकागच्छ की उत्पत्ति पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है–

उतपति अेहनी सांभलउ जिणपरिहू आ अेह,
बेवधरा किण समइ हुआ, यथा दृष्ट कहुं तेह।[१]

तपा एकावन बोल चौपाई (३८२ कड़ी सं० १६७६ राउद्रहपुर) और धर्मसागर ३० बोल खण्डन अथवा त्रिशद उत्सुत्र निराकरण कुमति मतखंडन भी साम्प्रदायिक खंडन-मंडन से संबंधित रचनायें हैं। जयतिहुअण स्तवन बालावबोध आपकी गद्य रचना है। इन रचनाओं के अलावा प्रत्येकबुद्ध चौपाई, अगड़दत्त रास, कयवन्ना चौपाई, गुणसुन्दरी पुण्यपाल चौपाई, धन्ना शालिभद्र चौपाई आदि चौपाइयाँ, दूहा चौपाई छन्द में विविध जैन कथानकों पर आधारित उपदेशपरक रचनायें हैं। इन्होंने शत्रुंजय चैत्य परिपाटी स्तवन, वारव्रत जोड़ि और जिनस्तवन आदि कई लघु स्तवन भी लिखे हैं। शत्रुंजय चैत्यपरिपाटी का प्रारम्भ देखिये—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८२८-८४३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"सकल सारद तणा पाय प्रणमी करी,
भणिसु जिण चैत्य परिवाडि गुण संभरी।[1]

रचनाकाल – संवत सोलचमाल अे सुहक अे माह
धुरि शुभदिवसि हरिवसि चल्लिअे।

२४ जिनस्तवन की अंतिम पंक्तियों का उद्धरण देकर यह विवरण सम्पूर्ण किया जा रहा है—

उवझाय श्री जयसोम सुहगुरु, सीस पाठक गुण विनइ,
खरतर महासंधि अदउ आयउ सुख थायउ दिन दिनइ।[2]

इन बड़ी रचनाओं के अतिरिक्त धर्माचार्यों पर आधारित कई श्रद्धापरक गीत भी इनके उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिनचंद्र सूरि, जिनसिंह सूरि और जिनराज सूरि से संबंधित गीत प्रकाशित हैं जिनमें से एकाध का परिचय पहले दिया जा चुका है। जिनचंद्र सूरि से संबंधित गीतों में ५वाँ गीत आपका है। यह ११ कड़ी का है और राग देशाख में बद्ध है। जिनसिंह सूरि गीतानि का पहला गीत गुणविनय कृत है। शाह अकबर ने युग प्रधान जिनचन्द्र सूरि के साथ इन्हें पट्टधर का सम्मान दिया। ऐसे सुगुरु जिनसिंह सूरि की ६ पंक्तियों में कवि ने हृदय से प्रशंसा की है। यह गीत राग विलावल में आबद्ध है।

आप १७वीं शताब्दी के विद्वान् टीकाकार, कवि, गद्यलेखक, साधु और साहित्यकार थे। बारव्रत जोड़ि में बारह व्रतों का माहात्म्य ५६ कड़ी में लिखा गया है, यह सं० १६५५ की रचना है, इसका प्रारम्भ देखिये—

जिनह चउवीसना पाय पणमी करी,
सामि गोयम गुरुनाथ हीयडइ धरी,
समकित सहित व्रत बारहिव ऊचरुं,
सुगुरु साखइ बली तत्व त्रिणइ धरुं।

कयवन्ना चौपाई (१७३ कड़ी सं० १६५४ महिमपुर) का प्रारम्भ इस प्रकार है—

पणमिय पास जिणेसर पाया, मन धरि श्रुतधर श्री गुरुराया,
पभणिसु कयवन्ना परवंध, जिन था अइ शुभनउ अनुबंध।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २१४ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ८४३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने धार्मिक उपदेशों और साम्प्रदायिक खंडन मंडन में व्यस्त रहते हुए भी काव्य के सभी तत्त्वों की तरफ ध्यान रखते हुए प्रभूत परिमाण में साहित्यिक रचनायें करके अपनी क्षमता का अच्छा परिचय दिया है। जिनचंद सूरि गीतानि की ११वीं और १२ वीं रचनायें गुणविनय की हैं जो ब्रजभाषा युक्त मरुगुर्जर में सरसराग सामेरी में बद्ध है यथा –

सुगरु कइ दरसन कइ बलिहारी,
श्री खरतरगच्छ जंगम सुरतरु, जिनचन्द्रसूरि सुखकारी।
x x x
कहइ गुणविनय सकल गुणसुन्दर भावत सब नरनारी ॥[1]

काव्य में राग, लय, यतिगति है और इनके विशाल काव्य संसार में अनेक हरे-भरे सजल सरस स्थल हैं।

गुणसागर सूरि—ये विजयगच्छ के पद्मसागरसूरि के पट्टधर थे। इनका ढालसागर (हरिवंश) नामक ग्रंथ ५७५० छन्दों का विस्तृत काव्य है। सं० १६७६ कुर्कुटेश्वर में इसकी रचना हुई। यह प्रकाशित ग्रन्थ है।[2] कृतपुण्य (कयवन्ना) रास, स्थूलिभद्र गीत, शान्तिजिन विनती रूप स्तवन, शान्तिनाथ छंद, पार्श्वजिनस्तवन आदि आपकी अन्य प्राप्त रचनायें हैं। कृतपुण्यरास दानधर्म की महिमा पर आधारित २० ढालों की कृति है। स्थूलिभद्र गीत १२ पद्यों की एक लघु रचना विभिन्न रागों में निबद्ध है। इनकी रचनाओं, विशेषतया स्तवनों में भक्तिभाव दर्शनीय है। भगवान के दर्शनों की महिमा बताता हुआ कवि कहता है—

'पासजी हो पास दरसण की बलिजाइये, पास मन रंगै गुणगाइये।
पास बाट घाट उद्यान में, पास नागै संकट उपसमै। पा०।
उपसमै संकट विकट कष्टक, दुरित पाप निवारणो।
आणंद रंग विनोद वारुं अषै संपति कारणो।'[3]

ढाल सागर का प्रारम्भ—श्री जिन आदि जिनेश्वरु आदि तणो दातार,
युगलाधर्म निवारणो बरतावण विवहार।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, जिनचन्द्र सूरि गीतानि
२. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९०
३. डॉ० हरीश—गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी को देन पृ० १२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु कारीगर सारिखा टांकी वचन विचार,
पाथर की प्रतिमा किया पूजा लहइ अपार।

इसे रागमाला, वसुदेव रास या हरिवंश प्रबंध भी कहा जाता है। इसके विषय वस्तु का निर्देश इस प्रकार किया गया है—

उत्पत्ति श्री हरिवंश नी हलधर कृष्ण नरेश,
नेम मदनयुग पाण्डवों चरित्रभणु सुविशेष।
यादव कथा सोहामणी जे सुणसी नरनारि,
तीर्थनो फल पामसे नहि संदेह लगार।[1]

रचनाकाल—संवत्सवर सोल छहोतरी रे मास श्रावण सुद्धि,
तिज सोम समुत्तरा, काइं कसर के वारु अविरुद्ध।
कुर्कटेश्वर नगर मां रे पास सामी पसाय,
संघने उच्छव पणइं कांइ रचियो रे में चरित सुभाय के।

इसमें १५१ ढाल है इसीलिए शायद इसका नाम ढालसागर रखा गया है। स्थूलिभद्र गीत की भाषा पर खड़ी बोली और पंजाबी भाषा का प्रभाव द्रष्टव्य है यथा—

श्री गुरुहंदी आग्या पाई, कोशा घरहि पठांवंदा है,
पंच सहेली छठा मुनिवर धूछि चउमासि रहावंदा है।
तखत आगरा आदि जिणंद ने चरणकमल नित ध्यावंदा,
श्री पद्मसूरि शिष्य कहइ गुणसागर संघ कल्याण करावंदा।[2]

यह रचना श्रावक मगनलाल झवेरचंद शाह द्वारा प्रकाशित है। संग्रहणी विचार चौपाई सं० १६७५ आषाढ़ शुदी १२ को लिखी गई। 'शान्ति जिन विनति रूप स्तवन (अथवा छंद) सुन्दर भक्तिभावपूर्ण विनती है। कयवन्ना रास के आदि और अन्त की पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

आदि—दान न देबे दलिद्रहिं, दान बिना नहि भोग,
दाने अपकीरति नहि, नहि पराभव लोग।
कयवन्ने कुमार जी दान करी कर भोग,
किम पाम्यो ते सांभलो पुन्य तणा संयोग।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४९९ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० ९८४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तिम छन्द—ढालभली पण बीसमी जी दान दिया थी जोइ,
श्रीगुणसागर सूरि जी रे, सुधरइ छइ भव दोइ।[1]

मलधारी हेमचन्द्र सूरि कृत नेमिचरित पर आधारित गुणसागर कृत एक रचना 'नेमिचरित्रमाला' का उल्लेख श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९८२ पर किया है और इन्हें ढालसागर के कर्त्ता गुणसागर से अभिन्न बताया है किन्तु इसके नवीन संस्करण में उक्त रचना को छोड़ दिया गया है। इसमें कहीं नाम गुणसार और कहीं गुणसागर दिया गया है। संदेहास्पद होने के कारण इसका विवरण उद्धरण नहीं दिया गया है।[2]

गुणसागर सूरि(२)—आप तपागच्छीय मुक्तिसागर सूरि के शिष्य थे। मुक्तिसागर सेठ शान्तिदास के गुरु थे। इन्होंने सं० १६८३ माघ शुक्ल १३ शुक्रवार को ७२ कड़ी की रचना सम्यक्त्वमूल बारव्रत सज्झाय लिखी है।

आदि—वंदिय वीर जिणेसर देव, जासु सुरासुर सारइ सेव,
पभणिसु दंडक क्रम चउवीस, अेक अेकप्रति बोल छवीस।
गणधर रचना अंग उपांग, पन्नवणा सुविचार उपांग,
तेह थकी जाणी लवलेस, नाम ठाम जूजूआ विसेस।[3]

अंत—संवत सोल जी बरस त्र्यासीओ जाणीई,
माहा सुदी जी तेरस शुक्रवार आणींई।
तपगछतारइ विजयसेन सुदी वारइं टीप लिखावी सोहामणी,
इम व्रत पालो कुल अजु आलो, पाप पखालो हितमणी।
सकल वाचक सोहईं भविजन मोहईं मुक्तिसागर सिरताज,
कवि गुणसागर सीस पभणइ, पामो अविचल राज।७२।

इनके संबंध में अधिक जानकारी के लिए प्रतिमा लेख संग्रह देखा जा सकता है।

गुणसेन—आप की गुरुपरम्परा इस प्रकार थी सागरचन्द्रसूरि > महिमराज > सोमसुन्दर > साधुलाभ > चारुधर्म > समयकलश। समय-

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २४२ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग १ पृ० ४९७, और भाग ३ पृ० ९८० (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १९४ (द्वितीय संस्करण)
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २४२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलश के शिष्य थे। इनके दूसरे गुरुभाई यशोलाभ भी अच्छे कवि थे। आपने सं० १६८५ चैत्र सुदी ३ को धन्याश्री राग में अपनी रचना, सुख-निधान गुरु गीतम का निर्माण किया है। यह कृति ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में ३१वें क्रम पर प्रकाशित है। इसकी भाषा पर रूढ़िग्रस्त अपभ्रंशाभास भाषाशैली का कुछ प्रभाव दिखाई पड़ता है।

यथा—सुगुरु के पणमो भवियण पाया,
श्री कलशसमय गुरु पाटि प्रभाकर सुखनिधान गणिराया,
हुंवडवंश विख्यात सुणीजइ घरु सुख संपति ध्याया,
गुणसेन वदति सुगुरु सेवा तइ दिन दिन तेज सवाया।[1]

गुणहर्ष–आप तपागच्छीय विजयदेव सूरि के शिष्य थे। विजयदेव सूरि का आचार्यकाल सं० १६५८, भट्टारक पद सं० १६७१ और स्वर्गवास सं० १७१३ मान्य है। गुणहर्ष ने इसी अवधि में महावीर निर्वाण (दीपमालिका महोत्सव) स्तवन १० ढाल में लिखा। यह रचना 'चैत्यवंदनस्तुति स्तवनादि संग्रह' भाग १, २, ३ में प्रकाशित है। एक-दो उदाहरण देखिये—

जिन तुं निरंजन सजनरंजन दुखभंजन देवता,
द्यो सुख स्वामी मुक्तिगामी वीर तुज पाअे सेवता।

गुरुपरंपरा—श्री विजयसेन सूरीश सहगुरु श्री विजयदेव सूरिसरु,
जे जपे अहनिशे नाम जेहनुं वर्धमान जिणेसरु।
निर्वाण तवन महिमा भवन वीर जिननु जे भणे,
ते लहे लीला लवधि लक्ष्मी श्री गुणहर्ष वधामणे।[2]

गुणहर्ष शिष्य—गुणहर्ष के इस अज्ञात शिष्य ने गुरुगुण छत्तीसी संज्ञाय लिखी है। इन्हें देसाई ने खरतरगच्छीय गुणहर्ष का शिष्य कहा है। रचना से भी गच्छादि का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता, इसलिए इनके संबंध में कुछ निश्चित कह पाना कठिन है। इसका प्रारम्भ देखिये—

श्री गुरु गुरु गुरुआ नमुंजी, सदगुरु समकीत मूल,
भण्य तत्व मां मूल गूंजी, सहगुरु तत्त्व अमूल रे।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १३६
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९५; भाग ३ पृ० १०८८ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ३८१-८२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

आतम ते सेवउ गुरुराय ।१।
गुरुगुण छत्रीसइं छत्रीसी, जोयो आगम अवधि,
श्री गुणहरष वबुध बरसीसइ लहीइं सील लवधि ।[1]

गुरुदास ऋषि—पार्श्व स्तवन १९ कड़ी सं० १६९२
अंत—नेत्र नंद रस चन्द्रमा रे, संवत श्री जिन पास कुं,
गुरुदास भावै जपै रे, पूरो मननी आस सु

नेमिनाथ रेखता छंद, आदि—

श्री नेमिचरण वंद, जिम होइ मनि आनंद,
मंगल विनोद पावो, जो नाम नित ध्यावो ।

अंत—श्री वंश साध सरवर, दुर्गदास कल्पतर वर,
जिसु नाम लच्छि पावइ, सब लोक पगसु ध्यावइ ।

ध्यान छत्तीसी (१७ कड़ी)

दे जिनवर गोरा कह्या जी, वे रत्नोपल वन्न,
वे नीला वे सामला जी, सोलस सोवन वन्न ।[2]

(ब्रह्म) गुलाल—आगरा जिले में यमुना के किनारे टापू नामक गाँव के आप निवासी थे। इनके गुरु का नाम भट्टारक जगभूषण था। आपका समय सं० १६६२ से सं० १६८४ के आसपास बताया गया है। उस समय टापू का जमींदार कीरति सिंह था और दिल्ली में जहाँगीर का शासन था। टापू के श्रेष्ठि धर्मदास के भतीजे मथुरामल ब्रह्म-गुलाल के प्रशंसक, मित्र और क्षुल्लक थे। आपकी छह रचनायें हिन्दी में उपलब्ध हैं; त्रेपन क्रिया, कृपण जगावन कथा या जगावन हार, धर्मस्वरूप, समवशरणस्तोत्र, जलगालन क्रिया और विवेक चौपाई। अन्तिम रचना की प्रति जयपुर के टोलियों के मंदिर में सुरक्षित है। त्रेपनक्रिया में जैनों की तिरपन धार्मिक क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। इसकी रचना सं० १६९५ में हुई। इसके मंगलाचरण की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

प्रथम परम मंगल जिन चर्चनु, दुरित तुरित तजि भजि हो,
कोटि विघन नासन अरिनंदन, लोक सिखरि सुख राजै हो ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०८८ (प्रथम संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३८०-८१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमिरि सरस्वति श्री जिन उद्भव, सिद्ध कवित सुभ बानी हो।
गन गन्धर्व जत्थ मुनि इन्द्रनि, तीनि भुवन जन मानी हो।[1]

त्रेपन क्रिया की रचना ब्रह्म गुलाल ने गढ़गोपाचल में की थी अर्थात् ग्वालियर में की थी किन्तु वे वहाँ के रहने वाले नहीं थे।[2]

त्रेपन क्रिया की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

ब्रह्म गुलाल विचारि बनाई गढ़ गोपाचल थानै,
छत्रपती चहुँ चक्र विराजै साहि सलेम मुगलाने।
ए त्रेपन विधि करहुँ, क्रिया भवि पाय समूहनि चूरे हो,
सोरह से पैसठि संवच्छर कातिग तीज अंधियारे हो,
भट्टारक जगभूषण चेला ब्रह्म गुलाल विचारे हो।[3]

कृपणजगावनहार—इस कविता में कृपण की कथा के साथ भक्ति रस की भी अभिव्यक्ति हुई है। क्षयंकरी और लोभदत्त दोनों कृपण हैं। उनकी दुर्दशा का कारण जिनेन्द्र की भक्ति से विमुखता ही है। कृपण सेठ लोभदत्त की दोनों पत्नियाँ कमला और लच्छा जिनेन्द्र-भक्त थीं। जैन मुनियों को श्रद्धापूर्वक आहार देने से उन्हें आकाशगामिनी और बन्ध मोचनी विद्यायें प्राप्त हुई थीं। सेठ रत्नों के लोभ में विमान में बैठा परन्तु विमान का वह भाग मार्ग में फट गया और सेठ मर गया। कुछ पंक्तियाँ देखिये--

प्रतिमा कारणु पुण्य निमित्त, बिनु कारण कारज नहि मित्त
प्रतिमा रूप परिणवै आपु, दोषादिक नहिं व्यापै पापु।
क्रोध लोभ माया बिनु मान, प्रतिमा कारण परिणवै ज्ञान,
पूजा करत होइ यह भाउ, दर्शन पाये गलै कषाउ।[4]

---

१. डॉ० प्रेम सागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १४८

२. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल ने प्रशस्ति संग्रह पृ० २१ पर इन्हें जिला ग्वालियर का निवासी कहा है। उनका गोपाचल का अर्थ ग्वालियर ही लिया जाना चाहिए किन्तु डॉ० प्रेमसागर जैन ने हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १४६ पर भिन्न विचार व्यक्त किया है और उन्हें आगरा के टापू ग्राम का निवासी प्रमाणित किया है।

३. कस्तूर चंद कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २१९-२२०

४. डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म स्वरूप के प्रारम्भ में सरस्वती और गणपति की वंदना की गई है।

प्रथम सुमरौ सारदा, गणपति लागूं पाय,
गुण गाऊं श्री जिणतणा, सुनौ भव्य मन लाय।

परन्तु गणपति की वंदना से यह न समझा जाय कि रचना का सम्बन्ध जैन धर्म से नहीं है क्योंकि 'कीजै वाणी श्री जिणवर सार, संसार संग उतरै पार, आदि पंक्तियों से जैन धर्म की स्पष्ट महिमा प्रकट होती है।

गोबर्द्धन—आपने सं० १६०४ माघ शुक्ल १२, मंगलवार को 'स्थूलिभद्र मदन युद्ध' (३७ गाथा) की रचना की जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ उदाहरणार्थ उद्धृत की जा रही हैं—

बुझु (पूछूँ) बातडी वछ मोह क्यु जीतउ, फिर-फिर सगरु सराहई
दुष्कर करणी कीनी मुनिवर, खोटे कलियुग मांहे।
संवत सोल चिहुत्तर बरसइ मिगसर सुदी भृगुवार,
द्वादसि दिनि हरखइ करि, बिनवइ गोबर्द्धन सुखकार।

इनके सम्बध में अन्य सूचनायें अज्ञात हैं।[1]

गोधो (गोबर्द्धन)—इन्होंने 'रतनसी ऋषिनी भास' (गाथा ६८) नामक रचना की है। इसका प्रथम छंद देखिये—

श्री नेमीसर जिन नमी, प्रणमी श्री गुरुराय,
श्री रतनसी गाइय, मति दिउ सरसति माय।

गोधो या गोबर्द्धन अमूर्तिपूजक परंपरा से संबद्ध लगते हैं, इनके सम्बन्ध में अधिक सूचनायें उपलब्ध नहीं हैं।[2]

गंगदास—आप खरतरगच्छीय लब्धिकल्लोल के शिष्य थे। लब्धिकल्लोल जिनसिंह सूरि की परंपरा में विमलरंग के शिष्य थे। आपकी दो रचनायें उपलब्ध हैं—वंकचूलरास और 'तपछत्तीसी'। तपछत्तीसी की रचना सं० १६७५ में हुई। वंकचूल रास (१२८ कड़ी) सं० १६७१ श्रावण शुक्ल २, गुरुवार को पातीगांम में लिखी गई थी। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६५२-५३ (प्रथम संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० १५२० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सोल इकह्त्तरइ जाणि, पातिगाम सुठाम वखाणि।
श्रावण सुदि बीजइ गुरुवारि, गायउं वंकचूल सुखकार।

इसमें विस्तृत रूप से गुरु परम्परा का विवरण है जिसके अन्तर्गत जिनचन्द्रसूरि, जिनसिंह सूरि, कीर्तिरत्न, हर्षधर्म, हर्षविशाल, साधु मंदिर, विमलरंग और लब्धिकल्लोल का सादर स्मरण किया गया है। इसकी अन्तिम चार पंक्तियाँ भाषा एवं रचना शैली के नमूने के रूप में प्रस्तुत की जा रही हैं—

तासु प्रसादइ अेह रसाल, वंकचूल गायउं गुण माल।
सुणंता भणंता लीलविलास, अेह सम्बन्ध कह्यो उ गंगदास।
जिहां सागरजल गंग तरंग, जिहां कंचनगिरि वर उतंग।
तिहां लगि नंदउ अेह सम्बन्ध, सुणता टालइ करमह् बंध।[१]

इसका प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है—

संति जिणेसर चिर जयतु, संतिकरण जिनराज,
बंकचूल राजा तणउ चरित कहिसु हित काज।

आपमें कवि कर्म की क्षमता दिखाई पड़ती है, उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

गुरु विण को जाणइ नहीं, धरमाधरम विचार,
सुघट घाट सोनार विण, लाष मिलइ लोहार।
मूरिष किमइ न रंजियइ, जउ विधि रंजनहार,
ठंठन किमयअरियउ जउ वरषइ जलधार।[२]

'तपछत्तीसी' का उद्धरण प्राप्त नहीं हो सका किन्तु इसके नाम से स्पष्ट है कि यह छत्तीसी पद्यों की रचना तप-संयम से सम्बन्धित होगी।

चन्द्रकीर्ति – श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है कि खरतरगच्छ के लब्धिकल्लोल आपके गुरु थे।[३] किन्तु श्री मो० द० देसाई ने इन्हें हर्षकल्लोल का शिष्य कहा है, और गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई है। खरतरगच्छीय कीर्तिरत्न सूरि > लावण्यसमय > पुण्यधीर >

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४८३ और भाग ३ पृ० ९६२
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १७१-१७२ (द्वितीय संस्करण)
३. अगरचंद नाहटा—परम्परा पृ० ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानकीर्ति > गुणप्रमोद > समयकीर्ति > विनयकल्लोल > हर्षकल्लोल।[1] श्री नाहटा ने भी इन्हें कीर्तिरत्न (खरतर) की परम्परा में विमलरंग के शिष्य लब्धिकल्लोल का शिष्य कहा है। दोनों विद्वानों ने इन्हें खरतरगच्छीय कीर्तिरत्नसूरि की परम्परा का लेखक स्वीकार किया है और दोनों ने उन्हीं रचनाओं का विवरण दिया है। अतः इसमें सन्देह नहीं कि दोनों विद्वानों ने एक ही चन्द्रकीर्ति का विवरण दिया है; केवल उनके गुरु के सम्बन्ध में मतभेद है।

रचनायें —इनकी दो प्रमुख रचनाओं का उल्लेख दोनों ने किया है : यामिनी भानु मृगावती चौपइ और धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपइ, जिनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

यामिनीभानु मृगावती चौपइ की रचना सं० १६८९ आसु शुक्ल ७ बुधवार को बाड़मेर (जैसलमेर) में की गई। यह रचना जिनराज सूरि के समय में की गई इसलिए उनका भी रचना में स्मरण किया गया है और कवि ने हर्षकल्लोल को ही अपना गुरु बताया है। इसका रचनाकाल इस प्रकार कवि ने बताया है—

श्री खरतरगछ राजियो अे श्री जिनराज सूरिंद,
सोलह नव्यासीयौ अे आसू सातमि चन्द।
प्रथम पहर बुद्धिवारनउ प्रथम घड़ी सिद्ध जोग,
श्रावक सुबीआ वैस अे बाहडमेर रसभोग।
विधि चैत्यालय पूजी यै अे श्री सुमतिनाथ जिणंद,
कथाय पूरउ थयौ भणतां सुख आणंद।
ढाल सोले इण चौपइये विसै इकयासी अेह,
कही चन्दकीरति अे, भणत सुणत उच्छाह।[2]

धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपइ की रचना सं० १६८२ भाद्र शुक्ल ९ मंगलवार को घडसीसर में पूर्ण हुई थी। इसमें भी वही गुरुपरम्परा कवि ने बताई है जो श्री देसाई ने दी है, यथा—

कीरतिरतन सूरि परगडउ आचारिज गछधार,
लावण्यशील पुण्यधीरअे, पु० नांनकीरति गुणसार

---

१. मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५४८ (प्रथम संस्करण)

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणप्रमोद गुण आगला, गु० समयकीरति सुधसाध,
विनय कल्लोल मुनिवर भलउ, गु० हरष कल्लोल पदलाध।[1]

कवि कथा को नवरस सहित कहने की कल्पना करता है यथा :

धन्य तिके नर जाणीयइ, धरम करइ निसदीस,
नवरस सहित कथा कहूँ, मनमांहि धरिय जगीस।

इसमें धर्म कार्य पर जोर दिया गया है, कवि लिखता है :

धरम करउ इम जाणीनइ जिम पामउ भवपार,
पापबुद्धि धर्मबुद्धिनउ कहुं सुणिज्यो अधिकार।

रचनाकाल— व्यासीमइ संवच्छरइ अे, भाद्रव सुदि दिन नउमि,
अेह ग्रन्थ पूरउ थयउ अे, छसइ पचीसे गाह।

इसमें कुल ६२५ गाथायें हैं। रचना दो खण्डों में विभक्त है। इसमें नाना प्रकार की ढालों का प्रयोग किया गया है। कवि द्वारा दी गई गुरुपरम्परा के आधार पर श्री देसाई द्वारा वर्णित गुरु परम्परा ही उचित प्रतीत होती है। रचनाओं की कथा का आधार कथाकोश है जैसा कि कवि ने प्रथम रचना में लिखा है :

कथाकोस की मैं कह्यउ अे, मृगावती यामनी भान,
संबंध सोहामणउ अे सुणंता सफल विहांण।

रचनाओं की भाषा सरल मरुगुर्जर है जिस पर राजस्थानी का प्रभाव स्वभावतः कुछ अधिक है। काव्यत्व सामान्य कोटि का है। रचनायें उपदेशपरक हैं।

आचार्य चन्द्रकीर्ति—आप दिगम्बर भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। आपकी 'सोलहकरण रास, जयकुमाराख्यान, चरित्रचुनड़ी और चौरासीलाखजीवयोनि विनती नामक रचनायें प्राप्त हैं। इन रचनाओं के अलावा कुछ स्फुट पद भी उपलब्ध हैं जो सरस एवं भावपूर्ण हैं। सोलहकरण रास में षोडशकारण व्रत का माहात्म्य ४६ पद्यों में दर्शाया गया है। इसमें दूहा, त्रोटक छन्दों के साथ राग धन्यासी, गौड़ी आदि का प्रयोग किया गया है। इसमें रचनाकाल तो नहीं है किन्तु रचना-स्थान भड़ौच बताया गया है, यथा—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३५-३७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री भरुयचनगरे सोहामणु श्री शांतिनाथ जिनराय रे,
प्रासादे रचना रची, श्री चन्द्रकीरति गुण गाय रे।[1]

यह रचना भड़ौच नगर स्थित शांतिनाथ प्रासाद में रची गई। 'जयकुमार आख्यान' इनका सबसे बड़ा काव्य है जो ४ सर्गों में विभक्त है। जयकुमार प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव के पुत्र सम्राट् भरत के सेनाध्यक्ष थे। इसमें उन्हीं का आख्यान वर्णित है। रचना वीररस प्रधान है। यह रचना सं० १६५५ चैत्र शुक्ल दशमी को बारडोली में की गई थी। इसमें काव्यतत्व भी उत्तम है। स्वयम्बर में वरमाला लेकर उपस्थित सुलोचना का चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

कमलपत्र विशाल नेत्रा, नासिका सुक चंच।
अष्टमी चन्द्रज भाल सोहे, वेणि नाग प्रपंच।

सुलोचना के स्वयम्बर स्थल पर आने के बाद उपस्थित राजकुमारों की दशा का चित्रण करता हुआ कवि लिखता है—

एक हँसता एक खीझे एक रंग करे नवा,
एक जांणे मुझ वरसे प्रेम धरता जुजवा।

सुलोचना द्वारा वरमाला अर्ककीर्ति के गले में डाल दी जाने पर जयकुमार भड़क कर युद्ध छेड़ देता है। उस अवसर पर वीररस का अच्छा परिपाक हुआ है, यथा—

धरी धीर धरणी ढोली नाखंता, कोपि कड़कड़ी लाजन राखता।
हस्ती हस्ती संघाते आथंडे, रथो रथ सुभट सहू इम भिडे।
हय हयारव जब छाज्यो, नीसांण नादे जग गज्जयो।[2]

इसमें रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—
संवत सोल पंचानवे रे, उजाली दशमी चैत्र मास रे,
बारडोली नयरे रचना रची रे, चन्द्रप्रभ शुभ आवास रे,

कवि का समय सं० १६०० के आसपास से सं० १६६० तक निश्चित किया गया है। इनके पद भी सरस हैं अतः एकाध उनका उदाहरण भी प्रस्तुत है—

जागता जिनवर जे दिन निरख्यो,
धन्य ते दिवस चिन्तामणि सरिखो।

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० १५६
२. वही पृ० १५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुप्रभात मुखकमल जु दीठु,
वचन अमृत थकी अधिक जु मीठु।

इनकी रचनाओं का संक्षिप्त उल्लेख डॉ० शुक्ल ने भी डॉ० कासलीवाल के आधार पर अपनी पुस्तक 'जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन में की है।[1] दिगम्बर कवियों की भाषा प्रायः प्रचलित हिन्दी है। थोड़े स्थानीय प्रयोग अवश्य मिल गये हैं।

चतुर्भुज कायस्थ—आप जैनेतर कवि हैं। इन्होंने राजस्थानी मिश्रित पुरानी हिन्दी में 'मधुमालती री वार्ता' लिखी है। वार्ता साहित्य गद्य-पद्यात्मक होता है और राजस्थानी साहित्य का एक लोक प्रिय साहित्य रूप है। आप निगम कायस्थ कुल के नाथा के पुत्र भैयाराम के पुत्र थे। इनकी वार्ता का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

विधविध ताकै वर पाऊं, संकरसुत गणेश मनाऊं।
चातुर सैतरि सहित रिझाऊं, रसमालती मनोहर गाऊं।

इसमें लीलावती देश के राजा चन्द्रसेन के वर्णन से वार्ता का प्रारम्भ किया गया है। इसका एक अपर नाम 'मधुकुमर मालति कुमरि चरित्र' भी मिलता है। इसमें मधु और मालती की प्रेमकथा वर्णित है। यह रचना १४४७ कड़ी की है। इसके प्रथम भाग में ८८९ कड़ी है। प्रथम भाग का अन्तिम छंद इस प्रकार है—

संपूरण मधुमालती कलश चढ़े संपूर,
श्रोता बकता सबन कुं सुखदायक दुःखदूर।८८९।

दूसरे भाग का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सरसति नाम लेय कवि, करि गनपति जुहार,
कवि जन साचे अक्षरे कहे मधुमालति सार।
सकल बुद्धि दिये सरसति बंदू गुरु के पाय,
मधुमालती बिलास कौं कहत चतुर्भुजराय।

कवि इसे सभी कथाओं में श्रेष्ठ कथा मानता है, यथा—

वनसपती मौं अंबफूल, वदरस मै उपजत संत,
कथा मांहि मधुमालती, छ रे ऋतु मांहि वसंत।

१. डॉ० हरीश गजानन शुक्ल—जैन गुर्जर कविओ की हिन्दी साहित्य को देन पृ० ८४-८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने इस रचना में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

कायथ नेगम कुलय हे नाथासुत भइयाराम,
तनह चतुरभुज तासके, कथा प्रकाशी ताम।

दूसरे भाग का अंतिम छंद इस प्रकार है—

अेह कोइ भावे धरी, सुने मधुमालति विलास,
ता घरे कमला थिर रहे, हरिशंकर पूरे आस।१४४।[1]

मधुमालती की प्रेमकथा प्राचीन काल से प्रचलित रही है। जैन कवि इसका अपनी दृष्टि से धार्मिक उपयोग करते हैं किन्तु इस वार्ता में प्रेमकथा का लक्ष्य प्रेमकथा ही है न कि कोई साम्प्रदायिक या धार्मिक उपदेश। इसलिए शुद्ध साहित्य के विचार से यह श्रेष्ठ रचना है।

चारित्र सिंह—आप खरतरगच्छीय मतिभद्र के शिष्य थे। देसाई ने इनका नाम चारित्र सिंह लिखा है। आपकी रचना 'मुनिमालिका' काफी प्रसिद्ध है। इस पर कई संस्कृत टीकायें लिखी गई हैं। कवि ने इसका रचना काल बताते हुए लिखा है—

संवत सोल छत्तीस अे श्री विमल नाथ सुरसाल,
दीक्षा कल्याणक दिनइं ग्रंथ रची मुनिमाल।

अर्थात् यह रचना शीतलनाथ के मन्दिर में सं० १६३६ में कवि के दीक्षा कल्याणक के दिन सम्पन्न हुई। यह मन्दिर रिणीपुर में स्थित है। रचना सूरविजय के समय की गई, संदर्भित पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

रिणीपुरइ रलीआमणउ, श्री शीतल जिनचंद,
सूरविजय राज्ये सदा, संघ अधिक आणंद।
श्री मतिभद्र सुगुरु तणइ, सुपसायइ सुखकार,
चारित्रसंघ बखाणीयइ, शब्द शब्द जयकार।[2]

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

रिषभ प्रमुख जिनपाय जुग, प्रणमुं शिवसुखदाय किमन उल्हास,
पंडरीक श्री गौतम आदिक, गणधर गुरु मनकमल विकास।१।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड २ पृ० २१६८-६९ (प्रथम संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १५८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना 'रत्नसमुच्चय अने रामविलास' पृ० २९१-९५ पर प्रकाशित है। इसमें कवि ने स्वयं अपना नाम चरित्र सिंह लिखा, इसलिए श्री अगरचंद नाहटा द्वारा इनका नाम चरित्र सिंह ठीक नहीं लगता।[1] आपकी अन्य रचनाओं में षट्स्थान प्रकरण संधि (९१ गाथा, जैसलमेर) चतुःस्मरण प्रकरण संधि (गाथा ९१, सं० १६३१ जैसलमेर), खरतर गुर्वावली गीत (गाथा २१), साधुगुणस्तवन (गाथा ४२), अल्पबहुत्वस्तवन, सास्वत चैत्य स्तवन आदि उल्लेखनीय हैं। आपने गद्य में 'शंकित विचार स्तवन बालावबोध' सं० १६३३ झंझरपुर या सम्यकत्व स्तवन बालावबोध भी लिखा है। इनकी गद्य रचनाओं का उद्धरण उपलब्ध नहीं हुआ।

चारुकीर्ति—आपने सं० १६७२ में 'वच्छराज चौपइ' लिखी। इस कवि तथा इनकी काव्यकृति का विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है।[2] जैन गुर्जर कवियों के नवीन संस्करण में भी प्रथम संस्करण के आधार पर केवल नामोल्लेख ही किया गया है।

छीतर—इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र ठोलिया था। ये मोजमाबाद के निवासी थे। 'होली की कथा' इनकी एकमात्र उपलब्ध रचना है। यह सं० १६६० में लिखी गई थी जिसे उन्होंने अपने गाँव मोजमाबाद में ही लिखा था। उस समय मोजमाबाद नगर पर आमेर के राजा मानसिंह का राज्य था।[3] कवि अपना परिचय देता हुआ लिखता है—

सोहै मोजाबाद निवास, पूजै मन की सगली आस,
शोभै राय मान को राज; जिह बंधी पूरब लग पाज।

× × ×

छीतर बोल्यो विनती करै, हिया मांहि जिण वाणी धरै,
पंडित आगे जोड़े हाथ, भूल्यौ हौं तो षमिज्यो नाथ।

इसका मंगलाचरण देखिये—

वंदौ आदिनाथ जुगिसार, जा प्रसाद पामूं भवपार,
वरधमान की सेवा करै, जौ संसार बहुरि नहि फिरै।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७६
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९६५ (प्रथम संस्करण)
३. श्री अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल इस प्रकार लिखा है—

सोलासै साठे शुभवर्ष, फालगुण शुक्ल पूर्णिमा हर्ष ।[1]

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

बारबार या विनती जाण, भूलो अक्षर आणौं ठाण,
पंडित ह्रासों को मति करै, क्षमा भावमुझ उपरि धरौ ।

जगाऋषि—आप तपागच्छीय विजयदान की परम्परा में श्रीपति ऋषि के शिष्य थे। अपने सं० १६०३ में 'विचारमंजरी' नामक कृति रची। कुछ विद्वान् इसके रचनाकार का नाम गुणविमल बताते हैं, पर कोई ठोस आधार नहीं मिलता। आप चन्द्रगच्छ की वीरी या वयरी शाखा से सम्बन्धित थे। इस रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

वंदिय वीर जिणेसर देव, जासु सुरासुर सारइ सेव,
पभणिसु दंडक क्रम चउवीस, अेक अेक प्रतिबोल छबीस ।
गणधर रचना अंग उपांग पन्नवणा सुविचार उपांग,
तेह थिकी जाणी लवलेस, नाम णाम जूजूआ विसेस ।[2]

रचनाकाल—संवत सोल त्रीडोतरि, विचार मंजरी अे रचीअे
अेह भणी निज सद्दवहि रे ।
रत्नत्रय जुते लहि ते लहि अविचल पदवी सिधनी अे ।

इसमें २४ दंडक का वर्णन है, यथा—

इम चुवीसे दंडक करी, अन्नंत अनंती देह धरी,
देहे धरी थरइ नहीं विक्कही अे ।[3]

इसमें गुरु परम्परा इस प्रकार बताई गई है—

चंद्र गच्छि उद्योतकरु, वइरी शाखा मनोहरु अे,
मनोहरु श्री आणंद विमल सूरीश्वरु अे ।
श्री विजयदान सूरींद अे दीठइ हुइ आणंद अे,
आणंद अे साथइ चरणकमल नमुं अे ।

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २१ और पृ० २८१

२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२ (द्वितीय संस्करण)

३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपति ऋषि पंडित नमुं दुषमकालइ धन धन अे,
धन धन रत्नत्रय सिउ सोभता अे।[1]

जटमल—ये नाहरवंशीय ओसवाल श्रावक धर्मसी के पुत्र थे। ये लोग मूलतः लाहौर के निवासी थे किन्तु जलालपुर में रहने लगे थे। आप राजस्थानी हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार हैं। आपने अपने पूर्वजों के निवास स्थान लाहौर पर लाहौर गजल लिखी जो किसी शहर की प्रशंसा में लिखी संभवतः पहिली गजल है। इसकी देखा देखी परवर्ती जैन कवियों ने लगभग ५० से अधिक नगर वर्णनात्मक गजलें लिखीं जिनमें से कुछ का वर्णन १६वीं शताब्दी में ही कर दिया गया है। कवि खेतल ने भी लाहौर गजल लिखी है। इसके अलावा उदैपुर गजल, चित्तौड़ गजल आदि इस प्रकार की अनेक रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। श्री अगरचन्द नाहटा ने 'कविवर जटमल नाहर और उनके ग्रन्थ' नामक एक लेख हिन्दुस्तानी में प्रकाशित कराया था जिसमें जटमल की रचनाओं का विस्तृत विवरण है। प्रेमविलास, प्रेमलता चौपइ, बावनी, स्त्री गजल और गोरा बादलरी बात, इनकी उल्लेखनीय रचनायें हैं। इनमें 'गोरा बादल री बात' सर्व प्रसिद्ध है।

रचनाओं का विवरण –लाहौर गजल–यह खड़ी बोली में लिखित गजल है। कवि लिखता है—

देख्या सहिर जब लाहोर, बिसरै सहिर सगले और।
रावी नदी नीचे बहै, नावैं खूब डाढ़ी रहैं।
× × ×
अद्भुत जैनों के प्रासाद, करते कनिक गिरि सौं वाद,
देखी धरमसाला खूब, द्वारे किसन के महबूब।
देखा देहरा इक खास, कीया फिरंगीयानै वास,
बेगम की भली मसीत, लागा तीन लाख अवीत।[2]

इसमें खूब, महबूब, खास आदि उर्दू के शब्द प्रयोग और खड़ी बोली का प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उस समय दिल्ली में जहाँगीर का शासन था, यथा—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० १८२ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ६४७-४८ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० २७३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिहां पातसाह जहांगीर, जिसका बाप अकबर मीर।

इसके अंत में कवि कहता है—

लहानूर सुहावना, देख्या होत आनंद,
कवि जटमल के-न करी, सुनत होत सुखकंद।

कवि जटमल का भाषा प्रयोग पर जबरदस्त अधिकार था। वे जिस खूबी से खड़ी बोली या हिन्दुस्तानी शैली का प्रयोग कर लेते थे उतनी ही उत्तमता से हिन्दी या हिंदवी का। इनका 'स्त्री गुण सवैया' हिन्दी की रचना है। इसकी भाषा हिन्दी और छन्द हिन्दी का अपना है। स्त्री की शोभा का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

कुरंग से नयन कटि केहर तइं अति,
कृश कुंवल सखासी गति गज की विशेषि है।
कोकिल सै कंठ कीर नाक सो कपोत ग्रीव,
चलत मराल चाल सुन्दर तुदेखि है।
कुसुम अनार से कपोल देह केतकी सी,
कवल से कर नाम केसूफल रेखि है।
अधर अरुण बिंब दाढ़ौ दन्ति ठौंडी अम्बि,
जटमल कुच श्रीफल स्त्रीय हसि देखि है।[1]

इसी प्रकार स्त्रियों पर ही इन्होंने 'स्त्री गजल' भी लिखी है, इसमें स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग की शोभा-शृंगार का वर्णन सरस भाषा शैली में किया गया है।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सुन्दर रूप गुण गाठी कि, देखी बाग में ठाढ़ि कि,
सखियाँ बीस दल है साथ, नावै रंग रातें हाथ।

इन्होंने 'बावनी' (५४ गाथा) की रचना ब्रज भाषा मिश्रित राजस्थानी या ढूढाणी में की है, इसका आदि देखिये—

ॐ ऊँकार अपे ही आपे, दिगर न कोइ दूजा,
जां नर बाबर मांसल तारां अजब बनाइस दूजा।
बजै बाउ अवाज इलाही जटमल समझण भूजा,
आपण जोगा वचन न अहैं समझण अमरत कूजा।१।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २७४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'प्रेम विलास प्रेमलता चौपाई' सं० १६९३ भाद्र शुक्ल ४-५ रविवार को जलालपुर में रची गई, इसकी भाषा राजस्थानी हिन्दी या मरुगुर्जर है।

आदि—प्रथम प्रणमि पय सरसति, गणपति गुणभंडार,
सुगुरु चरण अंभोज नमि, करूँ कथा विस्तार।

रचनाकाल—संवत सोलह सै त्रेयानु भाद्र मास सुकल पख जानु,
पंचमि चौथ तिथै संलझना, दिन-रविवार परमरष मगन।

दोहा—सिंध नदी के कंठ पइ, मेवासी चोफेर,
राजावली पराक्रमी, कोउ न सकै घेर।

इसी क्रम में कवि ने अपना परिचय भी दिया है, यथा—

तहां बसै जटमल लाहोरी, करनैकथा सुमति तसु दोरी।
नाहरवंश न कछु सो जानै, जे सरसती कहैं सो आनै।

गोराबादलरी बात—इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। यह सं० १६८६ भाद्र ११ को लिखी गई। इसकी भाषा राजस्थानी हिन्दी है। इसे पं० अयोध्या प्रसाद ने तरुण भारत ग्रंथावली क्रमांक ३४ प्रयाग से प्रकाशित कराया है। इसमें अलाउद्दीन खिलजी द्वारा रतनसेन पर चढ़ाई करने के समय गोरा बादल के युद्ध, उनकी स्वामिभक्ति और वीरता का सुन्दर वर्णन है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है—

चरण कमल चित लाय, समरुं श्री श्री सारदा,
सुहमति दे मुझ माय, करुं कथा तुहि ध्याइ के।
जंबूदीप मझार, भरत खंड सब खंड सिर,
नगर तिहां इकु सार, गढ़चित्तौड़ है विषम अति।

रचनाकाल—गोरइ जु बादल की कथा, अब भइ संपूरन जान,
संवत सोलइ सय छयासी, भला भाद्रव मास।
एकादशी तिथि वार के दिन करि धरि उल्लास

इसमें भी कवि ने अपना परिचय दिया है, यथा—

तिहां धरमसी को नंद नाहर जाति जटमल नाउं,
तिण करी कथा बणाय के, बिचि सुंबला के गाउं।

इसकी अनेक प्रतियाँ विविध ज्ञान भण्डारों में उपलब्ध हैं, इससे इस रचना की लोकप्रियता का अनुमान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप की लाहौरगजल से पता चलता है कि वहाँ अच्छी जैन लस्ती उस समय रही होगी और फिरंगियों ने अड्डा जमा लिया था। खड़ी हिन्दी भाषा का प्रयोग लाहौर में अवश्य उस समय प्रचलित था और उसमें मुसलमानों के ससर्ग के कारण अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग होने लगा था। यही समय उर्दू भाषा शैली के विकास का भी है।

इन प्रमुख रचनाओं के अलावा आपकी २८ स्फुट रचनायें भी उपलब्ध हैं जिनमें ४ दोहा ३ छप्पय और २१ सवैया है।[१] इस प्रकार ये १७ वीं शताब्दी के श्रावक कवियों में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी प्रतीत होते हैं।

वाचक जयकीर्ति—खरतरगच्छीय समयसुन्दर के प्रशिष्य एवं वादी हर्षनन्दन के आप शिष्य थे। आपने जिनराज सूरि चौपइ, सीताशील पताका गुणवेलि, अकलंक यतिरास, अमरदत्त मित्रानन्द रास, रविव्रत कथा, वसुदेव प्रबन्ध और शील सुन्दरी प्रबन्ध आदि अनेक रचनायें की है। आपने गद्य में कृष्ण रुक्मिणी री बेलि पर बालावबोध सं० १६८६ बीकानेर में लिखा। षडावश्यकबालावबोध की रचना सं० १६९३ में की।[२] आपका एक गीत 'जिनराजसूरि गीतम्' शीर्षक के अन्तर्गत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है। यह सं० १६८१ में लिखा गया। इस गीत से लगता है कि इसी समय जिनराज सूरि और जिनसागर सूरि में मनोमालिन्य बढ़ा तथा दो परम्परायें चलीं। एक जिनराज सूरि की भट्टारकीय परम्परा और दूसरी जिनसागर सूरि की आचारजीया शाखा कही गई। गीत की दो पंक्तियाँ देखिये—

तूं सीलवंत निर्लोभ हो, श्री जिनसागर सूरि सुगुरु तणी हो,
जयकीरति करइ सुशोभ हो, अविचल मेरुतणी परिप्रतपज्यो हो।[३]

श्रीसार ने भी सं० १६८१ में ही जिनराजसूरिरास लिखा था। इसी वर्ष धर्मकीर्ति ने भी रास लिखा। इनसे इस महत्वपूर्ण घटना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०१०-१४ (प्रथम संस्करण)
२. श्री अगरचन्द नाहटा–परंपरा पृ० ७९
३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीताशील पताका गुणवेलि का रचनाकाल सं० १६७४ ज्येष्ठ शुक्ल १३ बुधवार बताया गया है। यह रचना कोटनगर के आदिनाथ चैत्यालय में की गई।[1] यह बेलि ब्रह्म हरखा के आग्रह पर लिखी गई थी। इसी ग्रन्थ सूची में जो रचना काल दिया गया है उससे रचनाकाल सं० १६०४ मालूम पड़ता है, यथा—

रचनाकाल—संवत सोल चडउत्तरि सीता तणी गुण वेल्ल,
ज्येष्ठ सुदि तेरस बुधि रची मणी करें गैल्ल।[2]

इससे स्पष्ट रचनाकाल १६०४ लगता है। इसी ग्रन्थ सूची की प्रस्तावना के पृ० ३३ पर रचनाकाल सं० १६७४ दिया गया है। कोट नगर के आदिनाथ चैत्यालय में यह रची गई। प्रशस्ति इस प्रकार है—

सं० १६७४ आषाढ़ सुदी ७ गुरो श्री कोटनगरे स्वज्ञान वरणी कर्म क्षयार्थं आ० श्री जयकीर्तिना स्व हस्ताभ्यां लिखितेयं। यदि सं० १६७४ आषाढ़ को लिखी गई तो सम्पादक महोदय को ज्येष्ठ सुदी १३ बुधवार कहाँ से मिला। लगता है कि रचनाकाल सं० १६०४ ज्येष्ठ सुदी तेरस बुधवार है और स्वयम् लेखक द्वारा उसकी प्रतिलिपि सं० १६७४ आषाढ़ सुदी ७ को की गई। पर ऐसा मान लेने पर अन्य रचनाओं से इसका अन्तर बहुत बढ़ जाता है फिर उन रचनाओं की रचना तिथि को प्रतिलिपि लेखन तिथि मानना ही संगत होगा। इस सम्बन्ध में पर्याप्त अनुसन्धान की आवश्यकता है।

आपने बीकानेर के राजा सूरज सिंह के राज्य में सं० १६८६ में राजा पृथ्वीराज कृत कृष्णबेलि पर बालावबोध लिखा था और सं० १६९३ चैत्र वदी १३ को संघवी थाहरुशाह के आग्रह पर षडावश्यक बालावबोध लिखा। इस प्रकार आप कुशल कवि एवं गद्यकार थे। आपकी अधिकतर रचनाओं का प्रकाशन न होने और प्रतियों की अनुपलब्धता के कारण नमूना नहीं प्राप्त हो सका।

जयकुल (या जयकुशल)—आप तपागच्छीय लक्ष्मी कुशल के शिष्य थे। वैसे कवि अपना नाम जयकुल और गुरु का नाम लक्ष्मी

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैनशास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची, भाग ५ पृ० ३३

२. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ६४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुल भी लिखता है यथा अपनी रचना 'तीर्थमाला—त्रैलोक्य भुवन प्रतिमा संख्या स्तवन' में वह लिखता है—

पंडित श्रेणि शिरोमणि अे लक्ष्मी कुल गणि सीस,
जयकुल जनम सफल करुअे, गाइआ श्री जगदीश।

सम्भावना है कि या तो ये जयकुशल और लक्ष्मीकुशल रहे होंगे या इन दोनों का नाम जयकुल और लक्ष्मीकुल ही रहा होगा।

रचना का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

प्रणमुं माता श्री सरस्वती, जे तूठी आपइ शुभ मती।
निज गुरु चरण कमल वंदेवि, विद्यानायक मनि समरेवि।
तीरथमाल रच्युं मनरंगि, ऊलट अच्छइ घणुं मुझ अंगि।
सुपायो भवियण जे जगि जाण, भणयो प्रहि ऊगमतइ भाण।[1]

यह रचना सं० १६५४ आसो वदी १० सोमवार को रची गई जैसा कि अन्त में कलश से सूचित होता है—

विक्रमनृप थी संवछर सोल, चउपना वरसि आसो वदि रंगरोल,
पूर्णा तिथि दसमी सोमवार जयकार,
तवीआ प्रभु भगति हरष धरी अनिवार।९२

यह कुल ९२ कड़ी की रचना है। रचना की भाषा सरल मरु-गुर्जर है।

जयचंद—आप पार्श्वचंद्र की परम्परा में समरचंद्र के शिष्य रायचंद्र के प्रशिष्य एवं विमलचन्द्र के शिष्य थे। आप मूलतः बीकानेर के ओसवाल थे। आपके पिता जेतसिंह और माता का नाम जेतल दे था। आप विमलचन्द्र सूरि के पट्टधर थे। इन्हें सं० १६७४ में आचार्य पद प्राप्त हुआ और सं० १६९९ आषाढ़ सुदी १५ को इनका स्वर्गवास हुआ। इसी समय अहमदाबाद में शांतिदास सेठ के प्रयत्न से सं० १६८० में सागर पक्ष की आचारजीया शाखा और भट्टारकीय शाखाओं का विभाजन शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गया। पुंजा ऋषि जो १२३३२ उपवास के लिए प्रसिद्ध हैं, इन्हीं जयचन्द सूरि के पास रह कर तप करते थे।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८२४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसरत्न रास—इन्होंने रायचन्द सूरि के सम्बन्ध में 'रसरत्न रास' नामक ऐतिहासिक काव्य सं० १६५४ में खंभात में लिखा। यह रचना ऐतिहासिक रास संग्रह में प्रकाशित है। इसमें मंगलाचरण के बाद जंबूद्वीप और गुर्जर देश की प्रशंसा है जहां के जंबूसर नगर में जावडसा दोषी की पत्नी कमल दे की कुक्षि से सं० १६०६ भाद्र वदी १ रविवार को राजमल्ल का जन्म हुआ था। एक बार बिहार करते समरचन्द्र सूरि जंबूसर पहुँचे। किशोर राजमल्ल इनसे प्रभावित हुआ और दीक्षा लेने का निश्चय किया। सम्वत् १६२६ वैशाख में वे दीक्षित हुए। उस समय सोमसिंह और उनकी पत्नी इन्द्राणी ने महोत्सव किया और रायमल्ल का नाम रायचंद पड़ा। इन्होंने तत्पश्चात् खूब शास्त्राभ्यास किया और योग्य होने पर सूरिपद प्राप्त किया। इनके अनेक शिष्य एवं प्रशंसक हुए। कवि इनके सम्बन्ध में लिखता है—

वसइ त्रंबावती नयरि मझारि, कलाकुशल रायमल्ल कुमार।
देखी जन हरषइ मनि घणउ, मानव रुपिइं सुरसुत भणउं।[1]

२२ ढाल में २५६ कड़ी की यह रचना काव्यत्व की दृष्टि से भले अधिक महत्व की न हो किन्तु इतिहास और धर्म की दृष्टि से उपेक्षणीय नहीं है। यह रचना कुंवरविजय की प्रार्थना पर लिखी गई और इसकी प्रति भी उन्हीं की लिखित प्राप्त हुई है। इसकी भाषा मरुगुर्जर है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

आदि जिणवर आदि जिणवर अजित जिननाथ,
श्री सम्भव अभिनंदनह सुमति पदमप्रभ सुपास सुन्दर,
चन्द्रप्रभ उल्हासकर सुविधि शीतल श्रेयांस संकर,
वासूपूज्यनइं बिमल जिन अनंत धर्म श्री सन्ति,
कंथुअर मल्लि मुनि सुव्रत नमिनेमि धनकंति।१।[2]

× ×

मुनि कुंवर जी गणिवरु प्रार्थनि भगति जगीस,
गणि श्री जयचंद वीनवइ पूरउ मनह जगीस।२५६।

अन्तिम वस्तु इस प्रकार है—

---

१. ऐतिहासिक रास संग्रह पृ० २९-३०
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २९४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यान गुणनिधि सुगुरु विख्यात,
श्री रायचंद सूरीसरु सकलसार गुण देह भूषित।
तासु तणा गुण वर्णव्या पासनाह सुप्रसादि सोभित।[1]

आपकी दूसरी रचना रायचन्द सूरि गुरु बारमास श्री रायचन्द सूरि पर ही आधारित है। यह भी 'ऐतिहासिक रास संग्रह' में प्रकाशित है। प्रारम्भिक पंक्तियों में रायचंद के माता पिता और इनकी दीक्षा आदि का वर्णन है। इसके बाद आषाढ़ से प्रारम्भ करके एक एक ढाल ओर दोहा कहा गया है। जैसे वर्षा का प्रारम्भ होने पर उनकी बहिन संपूरा समझाकर कहती है—

परदेस पंथी गेह आवइ तुम्हें विलसउ सुख्य अगाह रे—

सम्पूरा भाई इम वीनवइ रे, अे अम्ह वचन प्रतिपालिरे बंधव जी।

बहिन द्वारा गाया गया यह बारहमासा विचित्र लगता है। २८ ढाल में चैत्र का वर्णन करती हुई वह कहती है—

चैत्र इति नाग पुन्नाग चंपक सहकार कलिकावर्त,
कामी ति रामास्यउं गाई बनकेलि रस पूरंति।
धनसार लाल गुलाल सुन्दर मृगनाभि वास सुहंति,
इम विषय सुखरस भोगवउ पूरउमननी खंति रे बंधव जी।[2]

बहिन के द्वारा भाई से इस प्रकार के उद्दीपनों का वर्णन अस्वाभाविक लगता है। यह रचना 'प्राचीन मध्यकालीन बारमासा संग्रह भाग १ में भी प्रकाशित है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

आदि—सुन्दर रूप सुजाणवर सोहग मंगलकार,
मनमोहन जिओ वल्लहओ परतषि सुर अवतार।

अंत—श्री रायचंद सूरीसर जे सम्पइ नरनारि,
गणि जयचंद इम उच्चरइ तसु हुइ जय जयकारि।

लगता है कि इस रचना के समय तक जयचन्द सूरि नहीं बल्कि केवल गणि ही थे अर्थात् यह रचना सं० १६७४ के पूर्व ही हुई होगी।

आपकी तीसरी कृति पार्श्वचन्द्र सूरिना ४७ दोहा पार्श्वचन्द्र की स्तुति में लिखी लघु कृति है। इसके अन्तिम दो छन्द नमूने के रूप में

---

१. ऐतिहासिक रास संग्रह पृ० २९-३०
२. ऐतिहासिक जैन रास संग्रह पृ० ७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्धृत किए जा रहे हैं—

गच्छ धोरी गाजे गुहिर विमलचन्द्र वडभार,
पट्टोधरण प्रगटीयो जयचंद जगे आधार । ४६ ।
जे राजा परजाह् जे सहु को नामे शीस ।
जयचंद आयो जोधपुर पुगी सबहि जगीस । ४७ ।[1]

(वाचक) जयनिधान—खरतरगच्छीय सागरचन्द सूरिशाखा में रायचन्दगणि के आप शिष्य थे। आप अच्छे कवि थे और आपने अनेक काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। आपकी निम्नांकित रचनायें उपलब्ध हैं—चौबीसजिन अंतराकारस्तवन सं० १६३४; १८ नाता संझाय सं० १६३६ (६३ गाथा); यशोधर रास सं० १६४३; धर्मदत्त धनपति रास (गा० ३२०) सं० १६५८, सम्मेतशिखर यात्रा स्तवन सं० १६५९, सुरप्रियरास (गा० १६७); सं० १६६५; मुलतान; मूर्मापुत्र चौपइ (गा० १५९)सं० १६५९ देरावर; कामलक्ष्मी वेदविचक्षण मातृ पुत्रकथा चौपइ (गा० १०५) सं० १६७९ और नेमिनाथ फाग।[2] श्री देसाई ने इनकी सुरप्रिय रास में दिये गए रचनाकाल का अर्थ सं० १५८५ लगाकर इन्हें १६वीं शताब्दी का कवि माना था।[3] रचनाकाल इस प्रकार बताया है

वाण सुर सर ससधरइ संवत्छरि रे आसोजह मासि,
सामल त्रीज दिनइ भलइ, कवि त्रासरि रे पूजीमन आस।

श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ के भाग ३ पृ०५७५ पर रचनाकाल सुधारकर १६६५ स्वीकार कर लिया है और कहा है कि—बाण सुरसर ससधरइं' के बदले बाण सुरस रस सस धरइ' वाचना चाहिये और तब रचनाकाल सं० १६६५ होगा। कूर्मापुत्र चौपइ का रचनाकाल देसाई ने सं० १६७२ बताया है। अब यह तो अविश्वसनीय लगता है कि एक ही कवि की एक रचना सं० १५८५ की हो दूसरी सं० १६७२ की, अर्थात् दो रचनाओं के बीच ८७ वर्ष का लम्बा अन्तराल असम्भव लगता है इसलिए सुरप्रिय रास का रचनाकाल सं० १६६५ ही उचित है और यही समय श्री अगरचंद नाहटा ने भी माना है। सुरप्रिय

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २९६ (द्वितीय संस्करण)
२. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७५-७६
३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० १३७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

चरित रास का रचनाकाल द्वितीय संस्करण में इस प्रकार दिया गया है—

वाण सरस रस ससधरइं संवच्छरि रे आसोजहिं मासि,
सामल त्रीज दिनइ भलइं कवि वासरि रे पूगीमन आस।[१]

रचना का आदि—सरस मधुर अमृत जिसी श्री जिनवर नी वाणि,
हृदय कमलि समरी करी कहिसु कथा गुणषाणि।१।

अंत—जयनिधान वाचक भणइ नरनारी रे जे निसुणइ अेह,
रिद्धि वृद्धि घरि संपजइ जस मंगल रे सुख विलसइं तेह।

'कूर्मापुत्र चौपइ' का प्रारम्भ इस प्रकार है—

त्रिभुवनपति व्रधमान जिनेश्वर, अबुलीबल प्रणमी परमेश्वर,
राय सिधारथ त्रिसलानंदन, सेवक जनमन दुख निकंदन।
कूर्मापुत्र कुमर गुण गाऊं, मन सुध केवल पावन भाऊ।
गृह वेसइ केवलसिरि वरियउ, भवजल थी आयण उधरियउ।

रचनाकाल—सत्तरि दुई अधिक सम्बन्ध, सोलह सइ अहइ संवच्छरि,
पोसह सुदि नवमी वासरि, देरावर सोहइ भासुर।

इसमें कूर्मापुत्र का चरित्र चित्रित है जिसने घर बैठे ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था। लेखक सागरचन्द्र की आचारजिया शाखा से सम्बन्धित था। सम्बन्धित पंक्तियाँ देखिये—

खरतरगछि सागरचन्द आचारिज साखि मुणिंद,
वाचक रायचन्द्र सुसीस, जयनिधान सगुण सुभ दीस।

अठार नातरां सञ्झाय (गा० ६३, सम्वत् १६३६) का रचनाकाल इस प्रकार बताया है।

सम्वत्सोल छतीसइ वरसे, खरतरगछ जिनचन्द सुरीस,
रीहड शाखा मेरु समान, तेजइ दीपइ अभिनव भान।
तासु सुपसाय करी शुभ दिवसे, वाचक रायचन्द सहगुरु सीसइ,
अे सम्बन्ध कहिउ लवलेस, भणतां नवनिधि हुइ निसदीस।

यशोधर चरित्र अथवा रास सम्वत् १६४३ की रचना है। इसमें अति लोकप्रिय पात्र यशोधर का चरित्र चित्रित है। कवि ने लिखा है—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १६४ (द्वितीय संस्करण);
भाग १ पृ० १२७, भाग ३ पृ० ५७५ और ७३५, १५१२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खरतरगच्छि जिनचंद सूरिंद, उदयो अभिनव सुरतरु कंद,
तासु पसाई जसोधर चरी, सोल्ह सइ तिगयाले करी।[१]

धर्मदत्त चौपइ अथवा रास (गा० ३२० सम्वत् १६५८) के अलावा जैसा पहले कहा गया है, आपने २४ जिन आंतरां स्तवन, सम्मेत शिखरस्तवन सम्वत् १६५० आदि कई स्तवन और भजन भी लिखे हैं। इन रचनाओं में सुरप्रिय चरित रास महत्वपूर्ण रचना है। यह सं० १६६५ आसो वदी ३ शुक्रवार को मुलतान में लिखी गई थी। इसमें बताया गया है कि जो व्यक्ति जाने-अनजाने हो गई अपनी भूल-चूक पर पश्चात्ताप कर लेता है वह सुरप्रिय की तरह कलिमल से मुक्त होकर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। इसकी भाषा भाववहन करने में समर्थ मरुगुर्जर है। इस कथन की पुष्टि के लिए दो चार पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं--

पापकरम केइ जाणता, अणजाणत तिम केइ,
करिनइ पछतावइ वली, भावइं धरम करेइ।
सुरप्रियनी परि ते सही, सुखि हुई नरनारि,
कलिमल सवि दूरइं करी, पामइं भवनउ पार।[२]

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में इनका एक गीत 'साधुकीर्ति गुरु स्वर्गगमन गीतम्' नाम से छपा है। यह १० कड़ी की रचना है। इससे पता चलता है कि साधुकीर्ति सं० १६४६ में जालौर में थे। अपनी मृत्यु समीप समझकर उन्होंने अनशनपूर्वक शरीर त्याग किया। इसमें उसी समय का वर्णन किया गया है। इसकी पहली कड़ी इस प्रकार है—

सुखकरण श्री शान्ति जिणेसरु, समरी प्रवचन वचनस जी,
सोहण सुहगुरु गाईए, नि ... ... नमाए जी।१।

प्रति के खंडित होने के कारण द्वितीय पंक्ति पूर्ण नहीं छपी है। इसकी अन्तिम १०वीं कड़ी निम्नांकित है—

ऊलट आणी सुहगुरु गाइया, वाचक रायचंद्र सीस जी,
आसापूर सुरमणि सुणवी, जयनिधान सुह दीसि रे।[३]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १६४ (द्वितीय संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १६४-१६५ (द्वितीय संस्करण)
३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह 'साधुकीर्ति जयपाताका गीतम' संख्या ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना 'साधुकीर्ति जयपताका गीतम्' शीर्षक के अन्तर्गत छपी छह रचनाओं में अन्तिम है। इसका ऐतिहासिक महत्व है।

जयमल्ल—चन्द्रगच्छीय शक्तिरंग के आप शिष्य थे। आपने सं० १६५२ में 'सम्यकत्व कौमुदी चौपाई' की रचना की। रचना की प्रतिलिपि सोनपाल द्वारा लिखित सं० १६५७ की उपलब्ध है। इसका उद्धरण और अन्य विवरण प्राप्त नहीं हो सका है।

(ब्रह्म) जयराज—आप भट्टारक सुमतिकीर्ति के प्रशिष्य एवं भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य थे। सं० १६३२ में गुणकीर्ति डूंगरपुर में भट्टारकीय गादी पर बैठे थे। उनके शिष्य ब्रह्म जयराज ने इस घटना का वर्णन अपनी रचना 'गुरु छन्द' में किया है। उस समय का वर्णन इन पंक्तियों में देखिये—

संवत सोल बत्रीसमि वैशाख कृष्ण सुपक्ष,
दसमी सुरगुरु जाणिय, लगन लक्ष शुभ दक्ष।
सिंहासन रूपा तणी विसर्‌या गुरु सन्त,
श्री सुमतिकीर्ति सूरि रंग भरी, ढाल्या कुंभ महंत।[२]

गुणकीर्ति का गुणगान करता हुआ कवि कहता है—

श्री गुणकीर्ति यतीन्द्र चरण सेवि नरनारी,
श्री गुणकीर्ति यतीन्द्र पाप तापादिक हारी।
श्री गुणकीर्ति यतीन्द्र ज्ञानदानादिक दायक,
श्री गुणकीर्ति यतीन्द्र चार संघाष्टक नायक।

गुरुछन्द की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

सकल यतीश्वर मंडणो, श्री सुमतिकीर्ति पट्टोधरण,
जयराज ब्रह्म एवं वदति, श्री सकलसंघ मंगलकरण।

उस समय भट्टारक सुमतिकीर्ति का आसपास के प्रदेशों में अच्छा सम्मान था, अतः देश के सभी प्रान्तों से श्रावकगण अच्छी संख्या में उस पट्टाभिषेक में सम्मिलित होने के लिए एकत्र हुए थे। उसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन इस रचना में किया गया है। रचना से कवि की गुरुभक्ति और ओजस्वी अभिव्यन्जना शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। भाषा प्रवाहयुक्त हिन्दी है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७८ (द्वितीय संस्करण)
२. कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन सन्त पृ० १९०-१९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयविजय—तपागच्छीय देवविजय आपके गुरु थे। इन्होंने सं० १६६० में 'शकुन दीपिका चौपाई' की रचना डूंगरपुर में की। यह रचना आनन्द काव्य महोदधि में प्रकाशित है।[1] इसका प्रारम्भ इस प्रकार है--

सकल बुद्धि आपइं सरसति, अमीसमी वाणी वरसती,
अज्ञान तिमिर आरति वारती, नमो नमो भगवती भारती।

रचनाकाल--व्योम रस रविचंद वर्षाणि, संवछर हुइउ अे आंणि,
सरद ऋति नइ आसो मास, राका पूर्णचन्द्र कलावास।[2]

यह चौपाई वागड देश के गिरिपुर नामक गाँव में जोगीदास के आग्रह पर लिखी गई थी। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—

भणता सवि लहीइ रिद्धि, अे भणतां पामइ वली बुद्धि,
जयविजय नइ परमाणंद, भणतां गुणतां सदा आनंद।

ये सुलेखक और प्रतिलिपिकार भी थे। इन्होंने सं० १६६८ में 'संग्रहणी' मूल की प्रतिलिपि और सं० १६७१ में शैक्षोपस्थान विधि की प्रति लिखी थी।

जयविजय II--आप तपागच्छीय हीरविजय सूरि की परम्परा में उपाध्याय कल्याणविजय के शिष्य थे। उन्होंने हीरविजय पुण्यखाणि सज्झाय सं० १६५२ के बाद लिखा जो जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। इनकी दूसरी रचना कल्याणविजय गणि नो रास सं० १६५५ आसो शुक्ल ५ को लिखी गई जो जैन ऐतिहासिक रासमाला भाग १ में प्रकाशित है। इन्होंने सं० १६६१ में 'श्री सम्मेत शिखर रास' लिखा जो प्राचीन तीर्थमाला संग्रह में प्रकाशित है। 'हीरविजय सूरि पुण्यखाणि संज्झाय' का आदि--

प्रणमिय पास जिणंददेव संपय सुहकारण,
संखेसरपुर मंडणउ दुह दुरीय निवारण।
पुण्यखाणि गुरुहीरनी अे पभणु मनि आणंद,
भवियण जह सहु सांभलउ जिम लहु परमाणंद।[3]

---

१. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९१

२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३९४; भाग ३ पृ० ८८१ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० ३०० (द्वितीय संस्करण)

३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३१७-३२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त--सकल कल्याणनिवास गेह, अनि सुन्दर सोहइ।
सिरि कल्याणविजय वाचक प्रति, दीठइ मन मोहइ।
तास सीस जयविजय भणइं अे पुरु मनह जगीस,
सिरि विजयसेन सूरीसरु प्रतिपउ कोडि वरीस।

इस रचना में हीरविजयसूरि के विशेष पुण्य कार्यों का सादर उल्लेख किया गया है। यह ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय की क्रम-संख्या २२ पर प्रकाशित है। इससे पूर्व हीरविजय सलोको और हीर-विजयसूरि निर्वाणरास नामक हीरविजयसूरि से सम्बन्धित रचनायें भी उक्त संग्रह में संकलित हैं। उक्त तीनों रचनाओं से हीरविजयसूरि और उनके समय की प्रमुख घटनाओं पर पूरा प्रकाश पड़ता है। हीर जी की तपश्चर्या, सत्यभाषण, उपवास, योगाभ्यास आदि सद्वृत्तियों का वर्णन किया गया है। उनकी शिष्य संख्या, ग्रन्थ रचना, विम्ब प्रतिमास्थापन, संघयात्रा, तीर्थाटन का भी व्यौरा मिलता है। इस दृष्टि से इस रचना का ऐतिहासिक महत्व है।

कल्याणगणि नो रास में लेखक ने गुरु कल्याणविजय गणि का गुणानुवाद किया है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

सकल सिद्धिवरदायको सजयो रिषभ जिणंद,
भारत सम्भव भविअ जण, बोहण कमल दिणंद।
शांति जिणेसर मनि धरुं शिवकर त्रिजग मझारि
सिद्धि बधू वरवा भणी, वरीओ संजमभार।[1]

अन्त में अकबर-हीरविजय मिलन की चर्चा भी की है यथा--
श्री हीरविजय सूरी राजीओ, कलियुगि जुगह प्रधान रे,
साहि अकबर राजर्णि बुझवी, दीधु जीव अभयदान रे।
रचनाकाल – संवत सोल पंचावन, वत्सर आसो मास रे।
शुद्ध पख्य पंचमि दिने, रचीओ अनोपम रास रे।

सम्मेत शिखर रास या पूर्वदेश चैत्य परिपाटी—इसमें विजयदेव सूरि के समय मथुरा के संघवी द्वारा निकाली गई संघयात्रा का वर्णन है। यह संघयात्रा मथुरा से चलकर पाटलीपुत्र, राजगृही आदि होती हुई जौनपुर के रास्ते अयोध्या होती पुनः मथुरा जाकर सम्पन्न हुई थी। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २९०(द्वितीय संस्करण);
भाग १ पृ० ३२० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ससि रस सुरपति वच्छर आतप अेकादिसि बुधवारइ,
समेताचल महातीरथ केरुं स्तवन रच्युं मतिसारइ।
पढ़इ गुणइ जे श्रवणे निसुणइ तीरथ महिमा भावइ,
जयविजय विबुध इम जंपइ सुख अनंता सौ पावइ।

इसे चिमनलाल डाह्याभाई दलाल ने बड़ोदरा से भी प्रकाशित किया है। इन्होंने इन रचनाओं के अलावा संस्कृत में 'शोभनस्तुति' पर टीका सं० १६४१ में लिखी और कल्पदीपिका की भी रचना की जिसका उल्लेख ऋषभदास ने हीरविजयसूरि रास में किया है—

'जसविजय ज :विजय पंन्यास, कल्पदीपिका कीधी खास।'

हीरविजयसूरि अकबर से मिलने गये थे तब ये जयविजय भी उनके साथ थे। अतः तत्कालीन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं के प्रत्यक्ष-दर्शी कवि-साहित्यकार थे।

जयवंतसूरि—इनका अपर नाम गुणसौभाग्य भी है। ये बड़तप-गच्छ के उपाध्याय विनयमंडल के शिष्य थे। बड़तपगच्छ की स्थापना विजयचन्दसूरि ने की थी। वे खंभात की बड़ी पोशाल में रहते थे इसलिए इसे वृद्ध पौशालिक गच्छ या संक्षेप में बड़तपगच्छ कहा जाने लगा। यह घटना १४वीं शताब्दी के प्रथम चरण की है। जयवंतसूरि ने सं० १६१४ में 'शृङ्गारमंजरी' या 'शीलवती चरित्र' की रचना की जिसमें शीलवती का चरित्र चित्रित है। इसका आदि—

चन्द्रवदनि चम्पकवनी चालंति गजगत्ति,
मयणराय मन्दिर जिसी, पय पणमूं सरसत्ति।

इसमें दूहा और चौपाई का प्रयोग हुआ है। एक चौपाई देखिये—

सहि गुरु चरण नमूं निसिदीस, जेहथी पुहपिइ सकल जगीस,
जेहथी लहीइ धर्मविचार, सकल शास्त्र सद्गुरु आधार।

X X X

ते सहिगुरुना प्रणमी पाय, जयवंत पंडित अेकचित्त थाय,
ग्रन्थ करुं शृङ्गारमंजरी, बोलूं शीलवती नुं चरी।[1]

इसके अन्त में वृद्धतपागच्छ की गुरुपरम्परा दी गई है। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६६७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सोल चोदोत्तरइ, आसो सुदि गुरुबीज,
कवि कीधी श्रृङ्गारमंजरी, जयवंत पंडित हेज।

ऋषिदत्ता रास सं० १६४३, नेमिराजुल बारमास, स्थूलभद्र प्रेम-विलास फाग २८ कड़ी, स्थूलभद्र मोहनबेलि, सीमंधरना चन्द्राउला, लोचनकाजल संवाद आदि आपकी अन्य प्राप्त रचनायें हैं। ऋषिदत्ता रास को निपुणादलाल ने सम्पादित-प्रकाशित किया है। यह सं० १६४३ मागसर शुदी १४ रवि को रची गई, यथा—

संवत सोल सोहामणो हो, सुहाकरुंउहो त्रित्तालउ उदार
मागसिर सुदि चउदसि दिनइ हो दीपंतु रविवार।

ऋषिदत्ता के सम्बन्ध में कवि कहता है—

केवल लही मुकतें गई कीध कलंकह छेद,
ते ऋषिदत्ता सुचरितं सुणयो सहुसविवेक।

नेमराजुल बारमास बेल प्रबंध (७७ कड़ी)—यह 'प्राचीन मध्य-कालीन बारमासा संग्रह भाग १ में प्रकाशित है। इसकी कथा जैन साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है—

बारमास गुण जिणतणा हो गाता म करो प्रमाद;
ऋद्धि अनंती आगमइं हो, सुणता हुइ आल्हाद।[1]

'सीमंधर स्तवन' आदि—

स्वति श्री पुंडरगिणी मोरो सुगुण सीमंधर स्वामि,
मुंहबोलता अमृत झरे, मनोहर मोहन नाम।
गुणकमल तोरे वेधियो मनभमर मुझ रस पूरि,
तुझ भेटवा अलजो घणो, किम करुं थानिक दूरि रे।

इन्होंने २७ कड़ी की एक रचना 'सीमंधर चंद्राउला' नाम से इसी विषय पर लिखी है। उसका आदि इस प्रकार है—

विजयवंत पुष्कलावती रे, विजयापुव्व विदेहो,
पुर पंडरीक पुंडरगिणी रे सुणतां हुई सनेहो।[2]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० १९८ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग २ पृ० ६९-८० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० १५८७ वैशाख कृष्ण ६ रविवार को शत्रुञ्जय पर ऋषभनाथ तथा पुण्डरीक के मूर्ति प्रतिष्ठा समारोह में ये आचार्य विनयमंडल के साथ उपस्थित थे। मुनि जिनविजय ने शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार की प्रस्तावना में इसका उल्लेख किया है। स्थूलभद्र प्रेमविलास फाग (२९ कड़ी) या थूलिभद्र कोशा प्रेमविलास फाग के अलावा स्थूलिभद्र और वेश्याकोशा के प्रेमप्रसंग पर आधारित दूसरी रचना इन्होंने 'स्थूलभद्र मोहन बेलि' नाम से रची है। इसकी कुछ पंक्तियाँ देखिए--

मन का सुखदुख कहन कूँ इकहिन जु आधार,
हृदय तलाब रु दुख भरयु तूँ कुछइ बिनुधार।
इकतिइं सब जग वेदना, इकतिइं विछुरन पीर,
तोह समान न होत सखि, गोपद सागर नीर।[1]

स्थूलिभद्र प्रेमविलास फाग (४५ कड़ी) प्राचीन फागु संग्रह में २६वें क्रम पर प्रकाशित प्रसिद्ध रचना है। इसमें पहले दोहे को छोड़ कर ४१ कड़ी तक कहीं थूलिभद्र और कोशा का नाम न आने से यह किसी भी सामान्य नायक-नायिका के प्रेमविलास का भ्रम उत्पन्न करती है। ४२वीं कड़ी में कोशा का नाम आता है, यथा -

कोश्या वेध वलूधड़ी एम ओलंभादेइ,
एहवइ गुरु आदेशडउ थूलिभद्रमुनि आवइ।

इसी समय गुरु के आदेश से मुनि स्थूलिभद्र कोशा के पास पहुँचते हैं। वह अत्यन्त हर्षित हो उठी और इसी के साथ फागु समाप्त हो गया। अन्तिम पंक्तियाँ--

स्थूलभद्र कोश्या केरडु गायो प्रेमविलास,
फाग खेले सवि गोरडीऊ, जेम आवें मधुमास
दिनदिन सज्जन मेलावडो अे गणतां सुखहोइ
जयवंतसूरि वखाणी रे अे गणतां सुखहोई।[2]

कुछ काव्यात्मक मार्मिक स्थल उपस्थित करके यह निवेदन करता हूँ कि आपकी इन रचनाओं में काव्यगुण भरपूर है और ये कोरे उपदेशक नहीं है; देखिये वसंत में विरह वर्णन करता हुआ कवि लिखता है --

१. डा० हरीश—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी सेवा पृ० १००
२. प्राचीन फागु संग्रह पृ० १२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवयौवनि यौवनि तरुणीवेश,
पापी विरह सतावइ तापइ पिउ परदेश,
तरुवर बेलि आलिंगन देषिय सील सलाय,
भरयौवन प्रिय बेजलुषिण न विसारियो जाइ।
सूँ करुं सरोवर जल विना हंसा किस्यु रे करेसि,
जसघरि कमनीय गोरडी तस किम गमइरे विदेश।

प्रिय की याद में नींद नहीं आती, प्रिय स्वप्न में आकर जगा जाता है—

कठिन कंत करि आलि जगावइ घड़ी घड़ी मुझ सुहणाइ आवइ,
जब जोऊं तब जाइ नासी, पापीडां मुझ धालिम फांसी।

वह प्रिय से मिलने के लिए पक्षी बनकर उड़ जाने की कल्पना करती है—

हुं सिइं न सरजी पंषिणी जिम भमती पिउ पासि,
हुं सिइं न सरजी चंदन करती प्रिय तनु वास।

इस प्रकार वह विरह से सूख कर अस्थिपिंजर मात्र रह गयी है—

झूरि झूरि पंजर थइ साजन ताहरइ काजि,
नीद न समरुं वीझडी न करइ मोरी सारि।[1]

इस प्रकार यह एक मार्मिक, सरस विरह काव्य है। नेमराजुल बारमास बेल प्रबन्ध भी इसी तरह की भावपूर्ण रचना है किन्तु उद्धरणों से कलेवर बढ़ाने का अवसर नहीं है। इनकी अन्य प्रकाशित रचना-- ऋषिदत्ता रास अथवा आख्यान ५६२ कड़ी की विस्तृत रचना है। यह सं० १६४३ मागसर शुदी १४ रविवार को लिखी गई। जिसका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

लोचनकाजल संवाद १८ कड़ी की सुन्दर सरस गीत है।

आदि – नयणां रे गुणरयणां नयणां अे अणघटती जोडि,
काला कज्जल केरइ कारणि, तुझनइं मोटी खोडिरे।
असरिस सरसी संगति करतां, आवइ चतुरह लाज,
जेहथि सुरजन मांहि हुइ हासुं, तसमि भणइस्युं काजरे।

ऐसा समझा जाता है कि इन्होंने काव्यप्रकाश की टीका भी लिखी थी। प्रशस्ति में ऐसा वर्णित है, यथा—

---

१. प्राचीन फागु संग्रह पृ० १२७-१२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीकां काव्यप्रकाशस्य सा लिखेत प्रमोदतः
गुणसौभाग्य सूरिणां गुरुणां प्राप्य शासनम्।

इस कवि के ऊपर एक विस्तृत लेख श्री मोहनलाल दलीलचंद देसाई ने आत्मानन्दप्रकाश, वीर सं० २४५० के १०वें अंक में प्रकाशित कराया है, जिससे इनके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण प्राप्त हो सकता है।

जयसागर—आप भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे। ये भी अपने गुरु के समान साहित्याराधन में लगे रहे। संभवतः इनका स्वर्गवास रत्नकीर्ति के रहते हो गया था, इसलिए इनका समय सं० १५८० से सं० १६५५ तक माना जा सकता है। इनका साहित्यसृजन कार्य १७वीं शताब्दी में ही हुआ होगा अतः इन्हें यहाँ स्थान दिया गया है। इनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं :—नेमिनाथगीत १ और २, जसोधरगीत, चुनड़ीगीत, संकटहरपार्श्वजिनगीत, भ० रत्नकीर्ति पूजागीत, पंचकल्याणकगीत, संघपति मल्लिदास नी गीत, क्षेत्रपालगीत और शीतलनाथ नी विनती। अपने गुरु के समान ये भी छोटे-छोटे गीत लिखने में विशेष रुचि लेते थे। पंचकल्याणक गीत इनकी सबसे बड़ी रचना है। इसमें शान्तिनाथ के पांच कल्याणकों का ७१ पद्यों और पाँच ढालों में वर्णन किया गया है। भाषा मरुगुर्जर और वर्णन सामान्य कोटि का है, यथा—

नरनारी सुखकर सेविये रे, सोलमों श्री शान्तिनाथ,
अविचल पद जे पामयो रे, मुझ मन राखो तुझ साथ।

कवि ने गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई है—

श्री अभेचंद पदे सोहे रे अभयसुनंदि सुनंद,
तस पाटे प्रगट हवो रे, सरी रत्नकीरति मुनिचंद।[1]

जशोधरगीत के १८ पद्यों में यशोधर की प्रचलित कथा का संक्षिप्त सारांश दिया गया है। गुर्वावलीगीत में सरस्वतीगच्छ की बलात्कारगण शाखा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की परंपरा में होने वाले भट्टारकों का संक्षिप्त उल्लेख है, यथा—

१. डा० कस्तूरचन्द कामलीवाल—राजस्थान के जैन सन्त पृ० १५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस पद कमल दिवाकर मल्लिभूषण गुणसागर,
आगार विद्या विनय तणो भलो ए
पद्मावती साधी एणें, ग्यासदीन रंज्यो तेणें।
जग जेणें जिनशासन सोहावियोए।

चुनड़ी गीत - एक रूपक है जिसमें नेमिनाथ के वन चले जाने पर राजुल ने चारित्ररूपी चूनड़ी को जिस प्रकार धारण किया, उसका वर्णन है। वह चुनड़ी नवरंगी थी। गुणों का रंग, जिनवाणी का रस, तप का तेज मिलाकर वह चूनड़ी रंगी गई। इसी चूनड़ी को ओढ़कर वह स्वर्ग गई। इसका प्रथम छंद—

नेमि जिनवर नमीया, जी चारित्र चुनड़ी मागें राजी।
गिरिनार विभूषण नेम, गोरी गजगति कहे जिनदेव।
राजिमंति राजिव नयणी, कहे नेम प्रति पिकवयणी।
घमघमंति है धूधरी चंगी, आपो चारित्र चूनड़ी नवरंगी।[1]

इसमें कुल १६ कड़ी है। अंतिम कड़ियाँ इस प्रकार हैं :—

चित चुनड़ी ए जे धर से मनवंछित नेम सुख कर से,
संसार सागर ते तरसे, पुण्यरत्न नो भंडार भरसे।
सुरि रत्नकीर्तिजसकारी, शुभ धर्मराशि गुणधारी,
नरनारि चुनड़ी गावें ब्रह्मजयसागर कहें भावें।

रत्नकीर्ति गीत — जयसागर रत्नकीर्ति के शिष्य ही नहीं उनके कट्टर समर्थक एवं प्रचारक थे। उन्होंने गुरु रत्नकीर्ति के जीवन पर आधारित कई गीत लिख कर उसका जनता में प्रचार किया। इसकी कुछ पंक्तियाँ देखिये—

मलय देश भव चंदन, देवदास केरो नंदन,
श्री रत्नकीर्ति पद पूजिये।

अक्षय शोभन साल ए, सहेजल दे सुत गुणमाल रे विशाल
श्रीरत्नकीर्ति पद पूजिए अे।

श्री जयसागर ने जीवनपर्यन्त साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया, साथ ही वे श्रेष्ठ साधु और जैनाचार्य थे। इनका संक्षिप्त परिचय डा० हरीश शुक्ल ने भी अपने ग्रन्थ में दिया है।

---

१. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० २७६-२७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयसार—आप तपागच्छीय आनंदविमल>धर्म सिंह>जयविमल के शिष्य थे। आपने सं० १६१९ में 'रूपसेन रास' लिखा। इसका रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है—

'नन्द इंदि रस इन्दु'।[१] अन्य विवरण नहीं है।

(उपाध्याय) जयसोम—आप खरतरगच्छीय प्रमोदमाणिक्यगणि के शिष्य थे। आप १७वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और ग्रन्थकार थे। आपने कर्मचन्द वंशोत्कीर्तन नामक ऐतिहासिक काव्य संस्कृत में लिखा जिस पर आपके शिष्य गुणविनय ने संस्कृत में टीका लिखी। आपने मरुगुर्जर में गद्य-पद्य दोनों ही पर्याप्त लिखा है। आपकी निम्न-लिखित रचनायें उपलब्ध हैं: बारहव्रत ग्रहणरास सं० १६४७; बारह भावना संधि; बीकानेर सं० १६४६, वयरस्वामी चउपइ सं० १६५९ जोधपुर; चौबीस जिन गणधर संख्या स्तवन सं० १६५६; संभव स्तवन सं० १६५७; साधुवंदना, गौड़ी स्तवन। इन पद्यबद्ध कृतियों के अलावा आपने गद्य में अष्टोत्तरी स्नात्र और दो अन्य प्रश्नोत्तर पद्य ग्रन्थ लिखे हैं।[२] इनकी कुछ रचनाओं के नमूने दिए जा रहे हैं—

वारभावनासंधि का आदि—

आदीसर जिणवर तणां, पदपंकज पणमेवि,
पभणिसु बारहभावना सानधि करि श्रुति देवि।
दानदया जपतप क्रिया भाव पखइ अप्रमाण,
लूण विना जिम रसवती, अे श्री जिनवर वाणि।

रचनाकाल—

रस वारिधि रस सहस बरसइ बीकानयरि नयरि मन हरसइ।
श्री जिनचंद सूरि गुरु राजइ, अेह विचार भण्यउ हितकाजइ।

अन्त—प्रमोदमाणिक गणि सुहगुरु सीस, गणि जयसोम कहइ सुजगीस,
आदीसर सुरतरु सुपसाइ, अेह भणतां सवि सुष थाअइ।[३]

बारव्रत इच्छा परिमाण रास सं० १६४७ वैशाख शुक्ल ३

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७०१ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ११२ (द्वितीय संस्करण)

२. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७७

३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि—चउवीसे जिणवर नमी, ध्याइ गोयम सामि,
सद्गुरु शासन देवता, नवनिधि हुवइ जसु नामि।

रचनाकाल—
सोलहसइ सइताल वइसाख सुदि दिन त्रीज,
इम ढाल बंधइ गुंथी आ श्रावक व्रतरे समकित बीज।[1]

परिग्रह परिमाण विरति रास सं० १६५० कार्तिक शुक्ल ३

अन्त--जिनचंद सूरि गुरु श्री मुखइ, श्राविका रेखा सार,
आदरइ बारह व्रत ईसा, शुभदिवस रे मन हरष अपार।
सोलह सइ पचासमइ काती सुदि दिन तीज,
इम ढालबंध गूँथीआ श्रावक व्रत रे जिह समकित बीज।

वयर (वज्र) स्वामी चौपइ सं० १६५९ श्रावण नेमिजन्मदिन, जोधपुर।

आदि—वर्धमान जिनवर वरदाइ मनमहि समरिय सारदमाइ,
वयरस्वामि मुनिवर वयरागी, गाऊँ जिन शासनि सोभागी।

रचनाकाल—सोलहसय गुणसठइ वछरि श्रावणइ रे,
नेमिजनमदिन जानि हीयइ हरषइ घणइ रे।
जोधनपुरि जयसोम सुगुरु गुण संथुणइ रे।
वाचक श्री परमोद प्रसाद थकी भणइ रे।[2]

९६ तीर्थङ्कर स्तवन २६ कड़ी की छोटी रचना है। इसका आदि–
नमवि गुणरयण गणे भरिय जिणवर पयं।

आपने प्रश्नोत्तर ग्रंथ सं० १६५० के आसपास लाहौर में लिखा। जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संग्रह में जयसोम उपाध्याय कृत तीन रचनायें संकलित-प्रकाशित हैं। गुरुगीत ४ कड़ी, जयप्राप्ति गीति ९ कड़ी और विधि स्थानक चौपाई १७ कड़ी।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि जयसोम उपाध्याय संस्कृत, प्राकृत और मरुगुर्जर के प्रतिष्ठित विद्वान् और ग्रन्थकार थे। वे आचारनिष्ठ साधु और प्रभावक

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९७३
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २३४ (द्वितीय संस्करण)
३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह २३वां गीत इत्यादि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य थे। इन्होंने रास, चौपाई, स्तवन, गीत आदि भिन्न-भिन्न काव्य विधाओं में पर्याप्त साहित्य लिखा है।

जल्ह—आप खरतरगच्छीय श्री साधुकीर्ति के शिष्य थे। ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में इनकी एक रचना साधुकीर्ति जयपताका गीतम् नाम से संकलित है। साधुकीर्ति ने सं० १६२५ में एक वाद-विवाद में तपागच्छीय बुद्धिसागर को पराजित किया था। जयपताका गीतम् में उसी घटना का वर्णन है। साधुकीर्ति की इस कीर्ति का वर्णन उनके अन्य कई शिष्यों ने भी किया है जिनमें से कनकसोम कृत जइतपद वेलि में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रस्तुत गीत से पता चलता है कि साधुकीर्ति ओसवाल वंशीय शाह वस्तिग की पत्नी खेमल दे के पुत्र थे। आप दयाकलश के शिष्य अमरमाणिक्य के शिष्य थे। सं० १६२५ में आपने आगरे में अकबर की सभा में तपागच्छीय वादियों को निरुत्तर करके शाह एवं उपस्थित विद्वानों की प्रशंसा अर्जित की थी। सं० १६४६ में जालौर में आप स्वर्गवासी हुए थे। इस रचना की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

सोलहसइ पंचवीसइ आगरइ नयरि विशेष रे,
पोसह की चरचा थकी, खरतर सुजस नी रेख रे।[1]

x x x

'वचन पातिसाह ए बोलियउ बुद्धिसागर अजाण रे,' इस पंक्ति से लगता है कि बुद्धिसागर उस वाद में परास्त हो गये थे। यह गीत ८ कड़ी का है। इसकी अन्तिम कड़ी इस प्रकार है—

श्री जिनचंद सूरि सानिधइ, दयाकलश गुरु सीस रे,
साधुकीर्ति जगि जयत छइ, कहइ कवि जल्ह जगीस रे।

जशसोम—आप तपागच्छीय आनंदविमल > सोमविमल > हर्षसोम के शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है। चौबीसी और सांचोरमंडन शीतलनाथ स्तवन। दूसरी मात्र छह कड़ी की लघु रचना है, जिसमें शीतलनाथ की स्तुति है। इनकी 'चौबीसी' का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सकल पदारथ पूरवइ श्री संखेसर पास,
चउवीसइ जिनवर स्तवउ मुझ मनि पुरु आस।

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह 'जयपताका गीतम्'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल—संवत केरुं मान सुणइ तु, रस सागर षट इंदुसार तु;
नागोर नयर मांहि स्तव्या साहिब श्रावण मास उदार तु।

इसके बाद आनंदविमल से लेकर हर्षसोम तक गुरुपरंपरा दी गई है। उसके बाद लिखा है—

चरणकमल सेवा करूं साहिब जससोम प्रणमइ सीस तु;
भाव धरी हर्षइं स्तव्या साहिब जिनवर अेह चउवीस तु।[1]

कवि ने रचना की गाथा का मान बताते हुए लिखा है—

गाथा केरुं मान कहुं साहिब कुंडली वेद चंद्र मान तु
अंकतणी गति करी साहिब जाणइ जांण सुजांण तु।

अन्तिम 'कलश' की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

तपगछ मंडण कुमतिखंडण श्री विजयसेन सुरिंदवरा,
हर्षसोम पंडित चरणसेवक जससोम मंगलकरा।

दोनों ही तीर्थङ्करों की स्तुतियाँ हैं और भक्तिभाव का प्राधान्य है। इन दोनों की प्रतिलिपि फलौधी नगर में मुनि रविसोम ने सं० १६९५ में लिखा था, जो उपलब्ध है।

युगप्रधान जिनचंद्रसूरि—(सं० १५९५ से सं० १६७०) आप खरतरगच्छ के षष्ट जिनचंद्रसूरि और चतुर्थ दादा गुरु गिने जाते हैं। आप सम्राट् अकबर द्वारा सम्मानित और युगप्रधान पद से विभूषित १७वीं शताब्दी के शासन प्रभावक आचार्य थे। इस युग में तपागच्छ के हीरविजयसूरि और खरतरगच्छ के जिनचन्द्रसूरि अग्रगण्य आचार्य थे। अकबर ने जब सूरि जी का यश सुना तो मंत्री कर्मचन्द्र से बुलावा भेजा। सूरिजी लाहौर में बादशाह से मिले और उसे अपने संयम, त्याग, विद्वत्ता और चारित्र से प्रभावित किया। उस समय उनके साथ जयसोम, रत्ननिधान, गुणविनय और समयसुन्दर आदि अनेक प्रसिद्ध विद्वान् थे। उसी समय समयसुन्दर ने 'राजा नो ददाति सौख्यम्' शीर्षक उक्ति पर अष्टलक्षी काव्य की रचना करके सबको चकितकर दिया था। सम्राट् बड़ा प्रभावित हुआ। उसने सूरिजी को युगप्रधान-पद और उनके शिष्य जिनसिंह को आचार्य पद प्रदान किया। उसी समय समयसुन्दर आदि कई विद्वानों को उपाध्याय पद से सम्मानित

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९७७-९७८ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० १९८-१९९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया था। बादशाह ने राजाज्ञा निकाल कर जीवहिंसा, जजिया-कर आदि में रियायतों की घोषणा की। जिनचन्द्रसूरि का प्रभाव केवल अकबर पर ही नहीं था, अपितु सं० १६६९ में जब उसके पुत्र जहाँगीर ने सभी साधुओं को नगर निष्कासन का आदेश दिया था तब सूरि जी ने पुनः पाटण से आगरा जाकर जहाँगीर को समझा-बुझा कर वह आदेश रद्द करवाया था।

खरतरगच्छीय जिनमाणिक्यसूरि के आप शिष्य थे। इनका जन्म सं० १५९४ में वडली निवासी रीहड गोत्रीय श्रीवंत की पत्नी सिरिया देवी की कुक्षि से हुआ था। इनके बचपन का नाम सुलतान था। इन्होंने आगे चलकर धर्म के क्षेत्र में शीर्षस्थान पर पहुँचकर अपने बचपन के नाम को सार्थक सिद्ध किया और जब वे अकबर से मिले तो मानो वह एक सुलतान का दूसरे सुलतान से मिलन था। वे सं० १६०४ में दीक्षित हुए और दीक्षा नाम सुमतिधीर पड़ा। सं० १६१२ में इन्हें आचार्य पद जैसलमेर में प्राप्त हुआ और सं० १६४८ में सम्राट् अकबर ने लाहौर में इन्हें युगप्रदान पद से विभूषित किया। आपने अनेक यात्रासंघों का संचालन किया; मंदिर बनवाये, प्रतिमायें प्रतिष्ठित कराई और धर्म का प्रभाव विस्तृत किया। आपका प्रभाव क्षेत्र राजस्थान, गुजरात, पंजाब और उत्तरप्रदेश तक फैला था। अन्त में सं० १६७० में विडाला में ही आपका स्वर्गवास हुआ।

साहित्य रचना—आप संस्कृत, प्राकृत और राजस्थानी तथा हिन्दी आदि कई भाषाओं के विद्वान् थे। आपने सं० १६१७ में ही पौषध विधि प्रकरण पर संस्कृत में टीका लिखी थी। मरुगुर्जर में आपकी कई रचनायें कही जाती हैं जिनमें बारभावना अधिकार, शाम्बप्रद्युम्न चौपइ सं० १६२०, बारव्रत नो रास सं० १६३३, द्रौपदीरास आदि उल्लेखनीय है।[1]

श्री अगरचन्द नाहटा 'द्रौपदीरास' को वेगड शाखा के जिनचन्द्र-सूरि की रचना मानते हैं।[2] लगता है कि 'जिनबिंबस्थापनास्तवन' भी दूसरे जिनचंद की रचना है जो जिनलाभसूरि के शिष्य थे। बारव्रत-

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २२९ (प्रथम संस्करण)
भाग २ पृ० ११९ (द्वितीय संस्करण)

२. श्री अगरचंद नाहटा—युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रास की इन पंक्तियों से भी यही आभास होता है कि रचना उनके किसी भक्त शिष्य की है—

रचनाकाल—संवत सोलहसय तेतीसइ, फागुण वदि पंचमि उल्लासइ,
खरतरगछि गरुयइ गुणराजइ, श्री जिणचंद सूरि गुरुपासि।

जिनधर्ममंजरी की रचना सं० १६६२ बीकानेर में हुई, यह भी उनके किसी अन्य शिष्य की ही रचना प्रतीत होती है। इसमें जिनचंद्र सूरि और अकबर से भेंट की चर्चा की गई है, यथा—

विध करीम अकबर साहिवर, प्रतिबोधकारक सुहगुरु,
आदेश लहि करी धरम धरतां सेय मंगल सुखकरु।[1]

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

भुज रस विजादेवी वच्छरइ, मधु सुदि दसमी पुष्यारक वरु,
इम वरइ विक्रमनयर मंडण, रिषभदेव जिणेसरु।

लगता है कि बाद में जिन शिष्यों ने गुरुमुख से वाणी सुनकर लिपिबद्ध किया, वे उनकी छाप से पूर्व इतने आदरार्थक शब्द स्वयं जोड़ देते थे कि उनके कृतित्व में संदेह होने लगा है, परन्तु वस्तुतः वे बड़े प्रतिभाशाली एवं सुपठित आचार्य थे। उन्होंने कोई रचना ही न की हो इस पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में अभी और अनुसन्धान अपेक्षित है।

जिनचंदसूरि (ii)—आप खरतरगच्छ की बेगड़ शाखा के आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। श्री देसाई ने इन्हें गुणप्रभसूरि का शिष्य लिखा है जिसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है।[2] आप लूणिया गोत्रीय जिनेश्वर सूरि के शिष्य थे। ये बेगड़ शाखा के आठवें पट्टधर थे। इन्होंने 'राजसिंह चौपइ सं० १६८७, उत्तमकुमार चौपइ सं० १६९८ जैसलमेर, द्रौपदी चौपइ १६९७ जैसलमेर, राजप्रसेनीसूत्र चौपइ सं० १७०९ सक्कीनगर और पार्श्वस्तवन, लोद्रवा गीत आदि अनेक रचनायें की। सं० १७१३ में इनका स्वर्गवास हुआ। आप इस काल के प्रसिद्ध रचनाकार थे। द्रौपदी चौपइ जो युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि की रचना समझी जाती थी इन्हीं की कृति है। यह तथ्य रचना की पंक्तियों से भी प्रमाणित होता है—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३९६-९७ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० १०८९ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लूणिया गोत्रे दीपतो, सकलपि जिणेसरो सूरो रे,
चारित्रपात्र चूड़ामणि, प्रतप्यो जे पुण्य पंडूरो रे।
तास सीस इणि पर कहे, जिणचंद वचन परिमाणे रे,
अंग छताले सीस में अध्ययने तास बषाणे रे।[1]

इसमें लेखक का नाम जिनचंद्र और उनके गुरु का नाम लूणिया गोत्रीय जिनेश्वर सूरि स्पष्ट बताया गया है; अतः यह रचना इन्हीं की है।

गुरु परम्परा के बाद कवि ने रचना का नाम इस प्रकार बताया है—
पांडव ने द्रुपदी तणोइ, चरिय रच्यो सुखकारी रे,
श्री पार्श्वनाथ सुपसाइले, श्री जैसलमेर मझारी रे।

इनकी अन्य रचनाओं के उद्धरण नहीं उपलब्ध हो सके।

(पाण्डे) जिनदास—आप शान्तिदास के शिष्य थे। आपने सं० १६४२ में अपने गृहनगर मथुरा में 'जंबूस्वामी चरित्र' की रचना की। कवि ने इसमें अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार ये आगरा-वासी शान्तिदास के शिष्य और पुत्र भी थे। अकबर के मंत्री टोडरमल के ये आश्रित थे और टोडरमल के पुत्र दीपाशाह के निमित्त इन्होंने 'जंबूस्वामी चरित्र' की रचना की थी। लगता है कि शान्तिदास ने बाद में ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया था, यथा—

ब्रह्मचार भयो सन्तीदास, ताके सुत पांडे जिनदास,
तिन या कथा करी मनलाय, पुण्य हेत मित तत वरताहि।

इसका रचनाकाल अकबर के शासन में पड़ता है, कवि ने लिखा है,[2] यथा—

अकबर पातस्याह का राज, कीनी कथा धर्म के काज।[3]

जंबूस्वामी चरित्र का रचनाकाल—
संवत सोलै सै जे भये, बयालीस तां ऊपर गये,
भादौ वदि पंचमी गुरुवार, ता दिन कथा कीयो ऊचार।

मंगलाचरण—प्रथम पंच परमेष्ठि नमूं दूजौ सारद को विनऊं,
गणधर गुरु चरणन अनुसरों, होय सिध कवित ऊचरु।[4]

इनकी अन्य रचनाओं में योगीरासा, जखडी, चेतनगीत, मुनिश्वरों

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०८९-९० (प्रथम संस्करण)
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८७
३. डा. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ० १२५-१२८
४. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की जयमाल, मालीरास और स्फुटपद आदि प्राप्त हैं। जंबूस्वामी चरित्र में जैनधर्म के अन्तिम केवली जंबूस्वामी का चरित्र वर्णित है। इसकी कुछ और पंक्तियाँ देखिए--

मानस्तम्भ पास जब गयउ, गयो मान कोमल मन भयउ,
तीन प्रदक्षिना दीनी राइ, राजा हरष्यौ अंगि न माइ।
परमेसुर स्तुति राजा करै, बारबार भगति उच्चरै।

इन पंक्तियों में उस समय का प्रसंग है जब सम्राट् श्रेणिक महावीर भगवान के समवशरण में गया और मानस्तम्भ के समीप जाते ही उसका मन कोमल हो गया।

जोगीरासा या योगीरास—इसकी भाषा शैली सुन्दर है।[1] यह योगभक्ति का काव्य है। उदाहरण--

ना हौं राचौणा हौं विरचौं, णा कछु मंतिणा आणौ,
जीव सवै कोइ केवलज्ञानी आप्पु समाणा जाणउ,
मोह महागिरि षौदि बहाऊँ, इन्द्रिय थूलि न राषउं,
कंदर्प सर्प निदप्प करे बिनु, विषया विषय विष ताषउं।

जखड़ी—यह रचना 'बृहज्जिनवाणी संग्रह' में पृ० ६०९ से ६११ पर प्रकाशित है। इसमें कुल सात पद्य हैं। यह सं० १६७९ में लिखी गई। इसका चौथा पद्य उद्धृत कर रहा हूँ—

दंसण गुण विन जात जिके दिन सो दिन धिकधिक जानि,
धन्य सोहि सोहि पर भिन्नो, भ्रांति न मन मांहि आनि।

इनकी दो लावणियाँ भी उपलब्ध हैं उनमें से एक की चार पंक्तियाँ प्रस्तुत है—

मैं भवभव मांही देव जिनेश्वर पाऊँ,
इन चौरासी कर मांहि फेरि नहि आऊं।
जै जै जैनधरम जिनदास लावणी गाई,
तेरी अचल अखंडित ज्योति सदा सुहाई।

चेतनगीत पाँच पद्यों की लघु रचना है, कवि चेतन को सम्बोधित करता हुआ कहता है—

इमि प्रकट परिषि विहरषु, मानिबी बिलविउ जिगहि जेतनौ,
तिम परम पंडित दिव्य दिष्टिहिं, कहौं तुम स्यों चेतनौ।[2]

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २०
२. डा० प्रेमसागर जैन—जैन भक्ति काव्य पृ० १२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मालीरासा में २६ पद्य हैं। यह एक रूपक काव्य है। जीव माली है, भव एक वृक्ष है जिसका फल जहर के समान है; उनसे बचना चाहिये, यथा—

माली वरज्यो हो ना रहै, फल चाषण की भूख,
बाधि सुगाडी गडगडी, कूदी चढ़चौ भवरुषि; हो प्राणी।
सुरडालि चढ़ी मालिया, हंसि हंसि ते फल षाय,
अंति सु रोवै रे मंद रो, जब माला कुमलाइ, हो प्राणी।

पद—इन्होंने भक्तिभावपूर्ण अनेक गेय पद भी लिखे हैं; कुछ पंक्तियाँ एक पद की प्रस्तुत है—

आनन्दरूपी आनन्द करता विरद यही अति भारा,
सुख समूह का दाता भाई महामंत्र नवकारा हो।
ऐसे प्रभु को नाम भविक जन पलक न जात विसारा हो,
जिनदास नाम बलिहारी करिहो मोहि निस्तारा हो।[1]

इनके पद और दोहे भक्त कवियों की रचनाओं से पर्याप्त मेल खाते हैं जैसे निम्नांकित दोहा कबीर के दोहे के कितना करीब है—

चेतन पड्यो अचेतन के फंदि जित खैंचे तिह जाई।
मोह फंद गले लगे रे भाई, में में में विललाई।

इन रचनाओं के आधार पर ये एक श्रेष्ठ संत कवि सिद्ध होते हैं।

जिनराजसूरि या राजसमुद्र—ये खरतरगच्छीय अकबर प्रतिबोधक, युगप्रधान आचार्य जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर जिनसिंह सूरि के शिष्य तथा पट्टधर थे। इनका जन्म वि० सं० १६४७ में धर्मसिंह की पत्नी धारल देवी की कुक्षि से हुआ था। सं० १६५६ में दीक्षित हुए और दीक्षानाम राजसमुद्र पड़ा। इन्हें सं० १६७४ में आचार्य पद प्राप्त हुआ। ये तर्क, व्याकरण छन्द-अलंकार शास्त्र और कोश आदि के विद्वान् तथा मरुगुर्जर के समर्थ कवि थे। इन्होंने श्री हर्ष के नैषधीय महाकाव्य पर जिनराजि नामक संस्कृत टीका लिखी है। आपकी 'स्थानांगवृत्ति' का भी उल्लेख मिलता है। इनकी कुशाग्र बुद्धि एवं अध्ययन रुचि के सम्बन्ध में 'श्रीसार' ने लिखा है "तेह कला कोई नहीं, शास्त्र नहीं बलि तेह, विद्या ते दीसइ नहीं, कुमर नइ नावइ तेह।" मरुगुर्जर में आपकी ये रचनायें उपलब्ध हैं—१४ गुण स्थान बंध विज्ञप्ति (पार्श्वनाथ स्तवन) १९ कड़ी सं० १६६५ मागसर वदी ८,

१. डा० प्रेमसागर जैन—जैन भक्ति काव्य पृ० १२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशित; शालिभद्र मुनि चतुष्पदिका (रास अथवा चरित्र) अथवा शालिभद्र धन्ना चौपाई सं० १६७८ आसो वदी ६ प्रकाशित, बीस विहरमान जिनगीत (वीशी) सं० १६८५ से पूर्व, प्रकाशित; चतुर्विशति जिन गीत स्तवन (चौबीसी) सं० १६९४ से पूर्व, पार्श्वनाथ गुणवेलि ४४ कड़ी सं० १६८९ पोष वदी ८ बुधवार, गयसुकुमाल रास ३० ढाल ५०० कड़ी सं० १६९९ वैशाख सुदी ५, अहमदाबाद, प्रकाशित; स्तवनावलि, गोड़ी लघु स्तवन ७ कड़ी आदि।

शालिभद्ररास—इनकी उल्लेखनीय साहित्यिक कृति है। यह आनन्द काव्य महोदधि मौक्तिक भाग १ में प्रकाशित है। इसमें राजा श्रेणिक के समकालीन शालिभद्र और धन्ना सेठ के वैभव तथा वैराग्य की कथा है। कथा द्वारा सुपात्र दान की महिमा समझाई गई है। यह कथा पर्याप्त प्रचलित है। श्री देसाई ने इस रास को पहले मतिसार[1] की रचना बताया था क्योंकि इसमें मतिसार शब्द इस प्रकार आया है—

श्री जिनसिंह सूरि सीस मतिसारे भवियणनि उपगारे जी,
श्री जिनराज वचन अनुसारइ चरित कह्यो सुविचारे जी।[2]

यह मतिसार शब्द व्यक्ति वाचक संज्ञा न होकर विशेषण भी हो सकता है किन्तु 'जिनराज वचन अनुसारइ' से शंका होती है और स्पष्टीकरण की अपेक्षा है। जैन गुर्जर कविओ के नवीन संस्करण में संपादक ने इसे जिनराजसूरि की रचना ही माना है और इस मान्यता का आधार प्रतियों की पुष्पिकाओं को बताया है।

देसाई ने भी जैन गुर्जर कविओ भाग ३ में इसे जिनराजसूरि की रचना मान लिया था।[3] श्री अगरचन्द नाहटा भी इसे जिनराजसूरि की श्रेष्ठ कृति मानते हैं अतः इसे उन्हीं की रचनाओं में यहाँ शीर्ष स्थान दिया गया है। रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

साधु चरित कहिबा मन तरस्ये, तिण अे उद्यम भाष्यो हरषे जी,
सोलह सत अठहत्तर वरस्ये आसू वदि छठि दिवस्ये जी।

इसके प्रारम्भ में दान के माहात्म्य का उल्लेख किया गया है, यथा—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०३ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग १ पृ० ५०१
३. वही भाग ३ पृ० ९५८ और ३ खण्ड २ पृ० १५१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासणनायक समरीयइ वर्द्धमान जिनचंद,
अलिय विघन दूरइ हरइ आपइ परमाणंद।
शालिभद्र सुख संपदा पामे दान पसाय,
तासु चरित बषाणतां पातिक दूरि पुलाय।

गजसुकुमार रास – क्षमा धर्म की महिमा पर लिखी गई कृति है। गजसुकुमार को पूर्वभव का ज्यों ही ज्ञान हो जाता है त्यों ही वह राज-पाट छोड़कर दीक्षा ले लेता है। इसका आदि—

नेमिसर जिनवर तणा चरणकमल प्रणमेवि,
साधु साधु गुण गावतां सांनिधि करि श्रुतिदेवि।

रचनाकाल—संवत सोल निनान वरसइ, वैशाखे शुभ दिवसे,
सुदि पांचमि सुभदिन सुभवारें, अेह रच्यो सुभवारहि।

गुरु और क्षमा का माहात्म्य इन पंक्तियों में देखिये—

श्री जिनसिंह सुगुरु सुपसाउलै, पभणै श्री जिनराज,
साधु तणां गुण करतां चीतव्यां, सीझे आतम काज।
× × ×
कहइ केवली केवली, स्यूं न कहइ अे सार,
साधु धरम दस विध तिहां, क्षमा तणइ अधिकार।

गुणस्थानबंधविज्ञप्ति १९ कड़ी की रचना सं० १६६५ में लिखी गई और पार्श्वनाथ गुणवेलि ४४ कड़ी की रचना सं० १६८९ में रची गई। गुणस्थान का समय "इय बाण रस ससि कला वच्छरि" लिखकर तथा पार्श्वगुणवेलि का काल "शशिकला संवत सिद्धि निधि युत वरस वदि पोस मास" लिखकर बताया गया है। जिनराजसूरि कृत 'चौबीसी' और 'बीसी' में तीर्थंकरों की भक्ति से संबंधित गीत हैं। ऋषभजिनस्तवन में कवि ने प्रभु चरणकमल तथा मन मधुकर का सुन्दर रूपक बाँधा है, यथा—

मन मधुकर मोही रह्यउ, रिषभचरण अरविंद रे,
उनडायउ उडइ नहीं, लीणउ गुण मकरंद रे।

ऋषभ का बालवर्णन—रोम रोम तनु हुलसइ रे,
मूरति पर बलि जाऊं रे।
कबही मो पह आइयउ रे हूँ भी मात कहाऊं रे।[1]

---

१. डॉ० हरी प्रसाद गजानन शुक्ल हरीश—गुर्जर जैन कवियो की हिन्दी कविता को देन पृ० ११४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पगि धूधरडी धम धमइ रे, ठमकि ठमकि धरइ पाऊँ रे,
बाँह पकरि माता कहइ रे, गोदी खेलण आऊ रे।

इनकी विविध स्फुट रचनाओं में विरह, प्रकृति, भक्ति, वैराग्य तथा उपदेश के अनेक रंगी चित्र मिलते हैं। इनमें कहीं-कहीं संसार की असारता, जीवन की क्षणभंगुरता तथा धर्म की महत्ता का चित्र है, तो कहीं संतकवियों जैसा वाह्यक्रियाकांडों का विरोध, और भक्त की दीनता तथा लघुता का भाववर्णित है। कवि ने शीलबत्तीसी और कर्मबत्तीसी में क्रमशः शील और कर्म की महत्ता पर प्रकाश डाला है।

शील का वर्णन इन पंक्तियों में देखिये :—

शील रतन जतन करि राखउ, वरजउ विषय विकार जी,
शीलवंत अविचल पदपामइ, विषई रुलइ संसार जी।

जैन रामायण में रामायण की कथा संवादात्मक गेय शैली में मार्मिक ढंग से प्रस्तुत की गई है। इन रचनाओं से कहीं कहीं यह स्पष्ट लगता है कि ये कोरे धर्मोपदेशक ही नहीं, उच्चकोटि के कवि भी थे। इनकी भाषा में सादगी के साथ साहित्यिकता, अलंकारों का अकृत्रिम प्रयोग, कहावतों-मुहावरों का यथास्थान उपयोग और भावानुरूप छन्दयोजना ने इनकी भाषा की शक्तिमत्ता और भावव्यञ्जना की अभिवृद्धि में बड़ी सहायता पहुँचाई है। आपके काव्यगुण एवं व्यक्तित्व के प्रभावशाली पक्षों का उद्घाटन करने के लिए श्रीसार ने जिनराजसूरि रास सं० १६८१ में लिखा है, जिसका यथास्थान उल्लेख किया जायेगा। अपने उपरोक्त कथन की पुष्टि में मैं इनकी अपेक्षाकृत अल्पज्ञात रचना 'वैराग्य गीत' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

सुणि वेहेनी प्रीउ डो परदेसी आज कइ कालि चलेसि रे,
कहो कुण मोरी सार करेली, छिन छिन विरह दहेसी रे।
विलुद्धो अरु मदमातो काल न जाण्यो जातो रे,
अचित प्रीयाणो आव्यो तातो रही न सके रंग रातो रे। सुण०
बाट विषम कोइ संग न आवइ प्रिउ अकेलो जावे रे,
विणु स्वारथ कहो कुण पहोचावे, आप कीया फल पावेइ रे।
सुण०[1]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३७५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर से श्री नाहटा द्वारा संपादित श्री जिनराजसूरि की प्रायः समस्त रचनाओं का संग्रह 'जिनराजकृति कुसुमाञ्जलि' के नाम से प्रकाशित है। डॉ० हरीश ने भी इनका विवरण अपनी पुस्तक में उत्तम ढंग से दिया है। शालिभद्र चतुष्पदिका आनंदकाव्यमहोदधि मौक्तिक १ में मतिसार के नाम से प्रकाशित की गई है। बीसी और चौबीसी : 'चौबीसी बीशी संग्रह' में प्रकाशित हैं। इस प्रकार इनकी प्रायः सभी रचनायें प्रकाशित हैं और इनको आधार बनाकर पर्याप्त रचनायें शिष्यों तथा भक्तों ने लिखी हैं जिससे इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पूरा प्रकाश पड़ चुका है। इनकी एक रचना राजसमुद्र नाम से भी ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह में प्रकाशित है उसका विवरण राजसमुद्र के अन्तर्गत देखिये।

जिनसागर सूरि—आप खरतरगच्छीय जिनसिंहसूरि के शिष्य थे। सं० १६७४ में आपको सूरिपद प्राप्त हुआ। सं० १६८१ में आप ने आचार्य शाखा का प्रवर्त्तन किया। सं० १७२० में आपका स्वर्गवास हुआ। दो रचनायें 'विहरमान जिनगीत' अथवा 'बीसी' और गौड़ी-स्तवन (सं० १६८२) आपने लिखी है।[1]

बीसी की दो पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

सुविहित खरतर गच्छपती अे, युगवर जिनसिंघ सूरि,
तासु सीस गुण संस्तवे, श्री जिनसागर सूरि।[2]

जयकीर्ति ने जिनसागर सूरि गीत लिखा है और धर्मकीर्ति ने जिन-सागरसूरिरास। इन रचनाओं में इनके व्यक्तित्व विशेषतया सं० १६८६ की उन घटनाओं का जिनसे आचार्य शाखा अलग हुई, वर्णन मिलता है। श्री अगरचन्द नाहटा ने भट्टारकीय और आचार्य शाखा का अलगाव सं० १६८६ में लिखा है किन्तु इन रचनाओं से यह समय सं० १६८१ प्रतीत होता है। आप बीकानेर निवासी बोथरागोत्रीय शाह वच्छा की पत्नी मृगादे की कुक्षि से सं० १६५२ में पैदा हुए थे। इनके बचपन का नाम चोला था किन्तु लोग प्यार से सामल कहते थे। सं० १६६१ में जिनसिंह सूरि के उपदेश से प्रभावित होकर इन्होंने दीक्षा ली और युगप्रधान जिनचन्द्र ने राजनगर में बड़ी दीक्षा देकर

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८९
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९७१ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १८७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम सिद्धसेन रखा। आपने हर्षनंदन से विद्याभ्यास किया। सम्राट् जहाँगीर से मिलने जाते समय मेड़ते में अकस्मात् जिनसिंह सूरि का देहावसान हो गया, तब सं० १६७४ फाल्गुन में इन्हें आचार्य पद प्राप्त हुआ और नाम जिनसागर पड़ा। सुमतिवल्लभ ने 'जिनसागर सूरि निर्वाण रास' लिखा है। हर्षनन्दन कृत जिनसागर सूरि अवदात गीत, जिनसागर सूरि निर्वाण रास, जिनसागर सूरि अष्टकम् आदि रचनायें ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित हैं जिनसे इनके व्यक्तित्व की लोकप्रियता एवं गरिमा का अनुमान होता है और यह निश्चित पता लगता है कि ये एक बड़े आचार्य एवं तपस्वी महापुरुष थे किन्तु उतने बड़े रचनाकार नहीं थे।

जिनसिंह सूरि—आप युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर शिष्य थे। आपकी एक ही रचना 'बावनी' का उल्लेख मिलता है।[1] आप जब युग प्रधान के साथ सम्राट् से मिलने लाहौर गये थे तभी आचार्य पद प्रदान किया गया था। आपके शिष्यों की अच्छी संख्या थी और उनमें से कई सुकवि एवं साहित्यकार थे। ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में समयसुन्दर, राजसमुद्र, हर्षनन्दन आदि के कई गीत जिनसिंह सूरि गीतानि शीर्षक के अन्तर्गत संग्रहीत हैं जिनसे इनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। आप महान् विद्वान् और प्रभावशाली आचार्य थे। जिनराज सूरि इनके पट्टधर शिष्य थे। इनका सम्राट् जहाँगीर से भी अच्छा सम्बन्ध था। 'बावनी' के अलावा मरुगुर्जर में लिखित किसी अन्य रचना का अब तक पता नहीं चला है। सं० १६७४ में इनका स्वर्गवास हुआ।

जिनेश्वर सूरि—आप खरतरगच्छ के आचार्य जिनमेरु>जिनगुण-प्रभसूरि के पट्टधर शिष्य थे। आपने अपने गुरु की स्तुति में जिनगुण प्रभसूरिप्रबन्ध अथवा धवल (६१ गाथा) सं० १६५५ के पश्चात् लिखा।[2] इसमें कवि ने अपने गुरु का ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखा है। इसके प्रारम्भ की पंक्तियाँ देखिये—

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८३

२. वही पृ० ८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन धरि सरस्वती स्वामिनी, प्रणमी गोयम पाय,
गुण गाइस सहगुरु तणा चरिय प्रबन्ध उपाय ।१।[1]

अन्तिम ६१ वीं गाथा इस प्रकार है—

श्री जिनमेरु सूरीन्द्र पाटे जिनगुणप्रभु सूरि गुरो,
तसु धवल जिनेसर सूरि जंपे ऋद्धि वृद्धि शुभंकरो ।

इसमें खरतर बेगड़ शाखा का पट्टानुक्रम दिया गया है—जिनशेखर, जिनधर्म, जिनचंद्र, जिनमेरु और गुणप्रभ सूरि तक नाम गिनाये गये हैं। गुणप्रभ सूरि ने ९० वर्ष की आयु होने पर सं० १६५५ वैशाख शुक्ल नवमी को अनशनपूर्वक शरीर त्याग किया था, इसलिए यह रचना इससे कुछ बाद ही रची गई होगी। इससे पता लगता है कि सं० १५७२ में जिनमेरु सूरि का स्वर्गवास होने पर मंडलाचार्य जयसिंह सूरि ने भट्टारक पद के लिए छाजहड़ गोत्रीय व्यक्ति की तलाश शुरू की। अन्त में नागिल दे के पुत्र वच्छराज ने अपने पुत्र भोज को समर्पित किया जिसका जन्म सं० १५६५ और दीक्षा सं० १५७५ में हुई थी। इन्हें सं० १५८२ में जिनमेरु के पट्ट पर श्री गुणप्रभसूरि के नाम से श्री पुण्यप्रभ ने सूरिमंत्र देकर पट्टाभिषिक्त किया। आप चमत्कारी पुरुष थे। बंदियों को मुक्त कराना, वर्षा कराना आदि इनके कई असाधारण कार्यों का इस प्रबन्ध में उल्लेख किया गया है। काव्यत्व की दृष्टि से यह सामान्य रचना है।[2]

जिनोदय सूरि (आनंदोदय)—खरतरगच्छ के भावहर्षसूरि > जिनतिलकसूरि > जयतिलकसूरि आपके गुरु थे। आचार्य पद से पूर्व आपका नाम आनंदोदय था। इसी नाम से आपने कयवन्ना चौढ़ालिया (गाथा ५१ सं० १६६२), विद्याविलास चौपइ (सं० १६६२ बालोतरा) और पार्श्वनाथ दसभव स्तवन (गाथा ४९) की रचना की थी। आचार्य पद प्राप्ति के पश्चात् सं० १६६९ में आपने प्रसिद्ध कृति 'चंपकसेन चौपाई या वृद्धदन्त सुधदन्त रास' लिखा। हंसराज वच्छराज रास सं १६८० में लिखी गई लोकप्रिय रचना है। यह प्रकाशित है। इनके

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ११८ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ खण्ड २ पृ० १५१५ (प्रथम संस्करण)

२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ४२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलावा जिनतिलक सूरि स्तुति, नववाडगीत, चौबीस जिनस्तवन, शान्ति स्तवन आदि कृतियाँ भी प्राप्त हैं।[1]

चंपकचरित्र चौपाई (अनुकंपा दाने) २७ ढाल में लिखित (सं० १६६९ कार्तिक शुदी १३, वीरपुर) रचना है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

चउवीसे जिनवर वली, विहरमान जिन बीस,
गणधरादि मुनि सकल के चरन नमूं निसदीस।[2]
चरित्र चंपकसेन नो कहूं कथा अनुसार,
सुनो चतुर चित दृढ़करी विकथा नींद निवार।

अन्त—दानविषे चंपक तणो जी सुगुरु बचन थी अेह,
अेह प्रबंध ज शास्त्र थीज रचीओ आनंदेह।

रचनाकाल—संवत सोल उगुणंतरे जी काती सुद विचार,
तेरह दिन अे संथुण्यो जी बीरपुर मझार।

यह रचना दान के माहात्म्य पर चंपकसेन के उदाहरण से रची गई है। हंसराज वच्छराज रास ९१९ कड़ी की वृहद् रचना चार खण्डों में विभक्त है। यह सं० १६८० में विजयादशमी, रविवार को लिखी गई। इसका आदि देखिये—

आदीश्वर आदे करी चउबीसे जिणचंद,
सरसती मन समरुं सदा श्रीजयतिलक सूरींद।

यह कथा पुण्य के महत्व पर लिखी गई, यथा—

पुण्य ऊपर सुणज्यो कथा, सुणतां अचरिज थाय।
हंसराज वत्सराज नृप, हुवा पुण्य पसाय।[3]

अन्त में भावहर्ष से जयतिलक सूरि तक के गुरुओं का सादर स्मरण करने के पश्चात् रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोल अेंसीअे समे जी, आसो सुदि रविवार,
विजयदसमी अे संथुण्यो जी श्री संघ ने सुखकार।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८९
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४८ (द्वितीय संस्करण)
३. वही, पृ० १४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह प्रबन्ध सोहामणो जी, कहे श्री जिनोदय सूरि,
भणे गुणे श्रवणे सुणे जी, तिण घरे आणंद पूर।
चार खंड चोपाई करी जी, श्री संघ सुणवा काज,
पुण्ये शिवसुख पामिया जी, हंस अने वछराज।

-यह रचना भीमशी माणक द्वारा प्रकाशित है।

पहली कृति 'चंपकचरित्र' में गुरु का नाम जिनतिलक दिया है यथा 'तसु पाटे महिमानिलो जी श्री जिनतिलक सुरिंद', किन्तु दूसरी रचना हंसराज चौपइ में गुरु का नाम जयतिलक दिया है 'तस पाटे महिमा निलो जी, श्री जयतिलक सूरिराय।' किन्तु इसके कारण दो जिनोदय सूरियों की कल्पना करना उचित नहीं लगता।

जैनंद—आप दिग० यशःकीर्ति के शिष्य थे। आपने भ० यशःकीर्ति, क्षेमकीर्ति तथा त्रिभुवनकीर्ति का अपनी रचना में उल्लेख किया है। आपने नयनंदि के अपभ्रंश भाषा की रचना पर आधारित 'सुदर्शन चरित्र भाषा' हिन्दी भाषा में सं० १६६३ में आगरा में लिखा। इस रचना में अकबर तथा जहाँगीर के शासन का उल्लेख किया गया है। रचना बड़ी नहीं है किन्तु भाषा शैली एवं वर्णन की दृष्टि से सुन्दर है। इसकी कुल छन्द संख्या २०६ है और इसमें मुख्य रूप से चौपाई, दोहा तथा सोरठा छंदों का प्रयोग किया गया है।

इसका प्रारम्भ—प्रथम सुमिरि जिनराय, महीतल सुरासुर नाग खग,
भव भव पातिक जाय, सिद्ध सुमति साहस बढै।

दोहा—इन्द्र चन्द्र और चक्कवै हरि हलधर फनिनाह,
तेऊ पार न लहि सकैं जिन गुण अगम अथाह।

चौ०—सुमरौं सारद जिनवर बानि, करौ प्रणाम जोरि करि पानि,
मूरख सुमरै पंडित होय, पाप पंक नहि धातै सोय।

इसमें सात चौपाइयों तक सरस्वती की शोभा का वर्णन किया गया है, यथा—

उज्जलहार अनूपम हिये, विधना कहै तिसोई किये,
पग नूपुर उज्जल तनचीर, कनक कांतिमय दिपै शरीर।[1]

---

१. कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पाँचवा भाग पृ० ४१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने जसकीर्ति, सुखेमकीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति का सादर स्मरण किया है। आगे अपनी लघुता प्रकट करता हुआ कवि लिखता है—

छंद भेद पद भेद हौं तो कछु जानें नाहि,
ताकौ कियो न खेद, कथा भई निज भक्तिवश।

दोहे, सोरठों की भाषा प्रवाहपूर्ण एवं प्रसाद गुण संपन्न हिन्दी है।
आगरा का वर्णन देखिये—अगम आगरो पवरुपुर उठकोह प्रसाद,
तरे तरंगि नदी बहे नीर अमी सम स्वाद
धन कन पूरन तुंग अवास, सबहि निःसंक धर्म के दास,
छत्राधीस हुमायुवंश अकबरनंदन वैर विध्वंस।

× × ×

नाम काम गुन आपु वियोग, रचिपचि आपु विधाता योग।
जहाँगीर उपमा दीजै काहि, श्री सुलतान नू दीसै साहि,
कोस देस मंत्री अति गूढ़, छत्र चमर सिंघासनरूढ़।

रचनाकाल—करैं असीस प्रजा सब ताहि, वरनौं कहा इति मति आहि,
संवत सोलह सै उपरंत त्रेषठि जानहु वरस महंत।

सोरठा—माघ उजारी पाख, गुरु वासरि दिन पंचमी,
बंध चौपइ भाषा कही सत्य साखरती

दोहा—कथा सुदर्शन सेठ की पढै सुनै जो कोय,
पहिले पावै देवपद पाछे सिवपुर होय।

ज्ञान—आपने सं० १६७० से पूर्व रत्नागरपुर में 'स्त्री चरित्र रास' की रचना की। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

नवरइ एक नाटिक रचिउं रत्नागरपुर मांहि,
षंति करीनि राषज्यो आप्यु मनि उच्छाहि।
न्यान भणइ हो भाइयों स्त्री चरित्र अपार,
जे छयल अेहने छेतरइ ते नर धन्य अवतार।[1]

ज्ञानकीर्ति—आप भट्टारक वादिभूषण के शिष्य थे। आमेर के राजा मानसिंह प्रथम के मंत्री नानू गोधा की प्रार्थना पर इन्होंने

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४८० (प्रथम संस्करण) और
वही, भाग २ पृ० १३६-१३७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'यशोधर चरित्र' नामक एक काव्य की रचना सं० १६५९ में की जिसकी प्रतिलिपि आमेर के शास्त्रभंडार में संग्रहीत है। इस कृति के अंत में यह विवरण दिया गया है—"इति श्री यशोधर महाराज चरित्रे भट्टारक श्री वादिभूषण शिष्याचार्य श्री ज्ञानकीर्ति विरचिते राजाधिराज महाराज मानसिंह प्रधान साह श्री नानू नामांकिते भट्टारक श्री अभयरुच्यादि दीक्षाग्रहण स्वर्गादि प्राप्त वर्णनो नाम नवमः सर्गः।"[1]

ज्ञानकुशल—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिनरंगसूरि गीतानि शीर्षक के अन्तर्गत दूसरा गीत ज्ञानकुशलकृत है जिसमें कवि ने जिनरंगसूरि की प्रशस्ति में उन्हें खरतरगच्छ की रंगविजय शाखा का युवराज बताया है, यथा "खरतरगच्छ युवराजिपद, थ्यापउ श्री जिनराजवरे।" इस शाखा की गद्दी लखनऊ में है। यह रचना १७ वीं शताब्दी की है। इसके साथ प्रथम गीत राजहंस गणि का और उसके पश्चात् तृतीय गीत कमलरत्न का है। ये सभी कवि १७वीं शताब्दी के हैं। इनकी चर्चा यथास्थान की गई है।[2]

ज्ञानचन्द—खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि की परम्परा में पुण्य प्रधान>सुमतिसागर के शिष्य थे। इन्होंने ऋषिदत्ता चौपइ, प्रदेशी चौपइ, चित्तसंभूतिरास, जिनपालित जिनरक्षित रास और चौबीसी की रचना की है।[3] रचनाओं का संक्षिप्त विवरण एवं कुछ उद्धरण आगे दिए जा रहे हैं—

ऋषिदत्ता चौपइ—सं० १६७४ से १७२० के बीच यह किसी समय लिखी गई होगी क्योंकि रचना में जिनसागरसूरि राज्ये लिखा है। जिनसागर सूरि का यही समय है। यह रचना मुलतान में की गई।

केसी प्रदेशी राजा रास-(४१ ढाल, सं० १६९८ से पूर्व) आदि

प्रणमी श्री अरिहंत पय, समरी सिद्ध अनंत,
आचारिज उवझाय धवलि, साधु सहू भगवंत।

× × ×

---

१. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० २११
२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—'जिनरंगसूरि गीतानि'
३. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८२

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

रायपसेणी बीओ उपांग थी उद्धरी अे अधिकार,
परदेसीय परबोध मइ रच्यो रंग सु प्रश्नोत्तर विस्तार।

× × ×

धन्य शासन महावीर नो सेवीये जिहां रह्या अे अधिकार,
कहे ज्ञानचंद इम सद्गुरु सेवता पामीये शिवसुखसार।[1]

यह रचना 'प्राचीन जैन रास संग्रह' (प्रकाशक जीवणलाल संघवी) में प्रकाशित है।

चित्रसंभूति रास, जिनपालित जिनरक्षित रास और शीलप्रकाश रास का विवरण उद्धरण नहीं मिल पाया। इनमें से कितनी कृतियां प्रस्तुत ज्ञानचंद शिष्य सुमतिसागर की हैं और कितनी-अन्य ज्ञानचंद शिष्य गुणसागर की हैं यह भी श्री मो० द० देसाई के विवरण से स्पष्ट नहीं हो पाता। उन्होंने स्वयं ऋषिदत्ता चौपाई के कर्त्ता कवि ज्ञानचंद को गुणसागर का शिष्य कहा है और उन्होंने कवि की जो गुरुपरंपरा खरतरगच्छ जिनचंद्रसूरि>पुण्यप्रधान>सुमतिसागर की बताई है वह 'परदेशी राजा रास' में कवि द्वारा लिखित गुरु परंपरा से मेल नहीं खाती। इसलिए लगता है कि ऋषिदत्ता चौपाई और केशी प्रदेशी राजानो रास नामक दो कृतियां तो ज्ञानचंद की हैं किन्तु उनकी गुरुपरम्परा ठीक नहीं है। शेष तीन के सम्बन्ध में अधिक शोध की अपेक्षा है।

ज्ञानतिलक—खरतरगच्छीय पुण्यसागर के प्रशिष्य एवं पद्मराज के शिष्य थे। आपने 'गौतम कुलक वृत्ति' नामक टीका लिखी है। इसके अलावा 'नेमिधमाल', नेमिनाथ गीत, शांतिस्तवन और नंदीसेन फाग'[2] नामक मरुगुर्जर की रचनायें भी की हैं किन्तु इन रचनाओं का नामोल्लेख मिलता है। इनके विवरण एवं उद्धरण नहीं प्राप्त हो सके हैं।

ज्ञानदास—आप लोकागच्छीय नान जी के शिष्य थे। आपने सं० १६२३ कार्तिक शुक्ल ८, रविवार को बडोदरा में 'यशोधर रास' रचा।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५८७-८८ भाग ३ पृ० १०८५-८८ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ३३४-३३५ (द्वितीय संस्करण)

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि—श्री गोइम ने चरणे नमुं, ध्यान धरी हइडर समुं,
वीनवुं टाली मन सुं आमलड अे।
जिनवाणी जे सरस्वती, मया करउ मझनी अती,
सरस्वती वचन अेक मझ सांभलु अे।

ग्रंथी मोटा माहिथी प्रबंध कीधु तेहथी जसोधर वर्णनसार,
हंसाउथा अेक दया था अेक आपक पुन्य उदार हो।

रचनाकाल—संवत सोल त्रेवीसइ रुथडउ कारतिग सुदि रवीवार,
अष्टमी तथि बउदरि नीपनु चरीत्र मनोहर सार हो,
पाप दूरि पडइ नवनिधि सांपडइ, आवडइ जेहनइ रास,
लूंका गछि हूंतउ रषि नानजी उत्तम, तेह सांणधि (शिष्य)
कहइ ज्ञानदास हो[1]

रास की भाषा अटपटी, छंद गतिहीन, मात्रा भंग आदि के कारण रचना में प्रवाह और सरसता नहीं है। ये तिथि को 'तथि' और ऋषि को 'रषि' लिखते हैं। श्री देसाई ने इन्हें 'स्त्रीचरित्र रास' का भी लेखक बताते हुए इन्हें और ज्ञान को एक ही व्यक्ति माना है किन्तु 'यशोधर रास' में ऐसा कोई अन्तःसाक्ष्य नहीं मिला जिससे श्री देसाई के कथन की पुष्टि होती हो। छंदों का अनगढ़पन और भाषा का अटपटापन अवश्य दोनों रचनाओं में एक समान मिलता है। इस आधार पर ज्ञान और ज्ञानदास के एक होने के अनुमान को अवश्य कुछ बल मिलता है।

ज्ञानमूर्ति—आप अंचलगच्छीय आचार्य धर्ममूर्ति की परम्परा में विमलमूर्ति के प्रशिष्य एवं गुणमूर्ति के शिष्य थे। आप उत्तम कवि और अच्छे गद्यकार थे। आपने रूपसेनराजर्षि चौपाई, प्रियंकर चौपाई, बावीस परीषह चौपाई आदि कई उत्तम पद्य रचनाओं के अलावा संग्रहणी बालावबोध नामक गद्य ग्रन्थ भी लिखा है इनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण एवं उद्धरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

रूपसेन राजर्षि चौपाई अथवा रास (६ खंड, ५८ ढाल, १२९६ कड़ी) सं० १६९४ आसो शुक्ल ५ को पूर्ण हुई। इसके छह खण्डों में भिन्न-भिन्न देशियों का प्रयोग किया गया है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९५८-५९ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १३५-१३६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्त्थंकर त्रेवीसमो पुरिसादाणी पास,
कामकुंभ चिंतामणि वंछित पूरइ आस।
मंगलकरण मनोहरु प्रभावती भरतार,
चरण नमुं हूं तेहना विघन निवारण हार।
काशमेरु मुखमंडणी रूपइं झाकझमाल,
सुरनरपन्नग रंजवइ वाहृती बेलि रसाल।
हंसासणि सा सरसती पंडित कहृइ तत्काल,
पाय नमुं हूं तेहना आपइ वाणि विसाल।

× × ×

रूपसेनकुमार नो सुणज्यो सार अधिकार,
सांभलस्ये ते आवस्ये जिममालति मधुकार।
सरस सुधारस सारिखा, भावभेद भंडार,
षट्खंड ज छत्रे सोहामणा, रस केरा अंबार।
श्रोतानइ संभलावता कविता सरस सवाद,
मूरख आगलि मांडता महिषी आगलिनांद।

कवि को अपने कविकर्म के साथ सहृदय श्रोताओं पर जितना विश्वास है उतना ही मूर्खों के आगे काव्य-निवेदन करने का अनुत्साह भी है। मूर्खों के आगे काव्य की उपमा भैंस के आगे नांद से बड़ी स्वाभाविक है।

गुरुपरंपरा—श्री अंचलगछ राजीउ अे, गुणमहिमा करि गाजिउ अे,
श्री धर्ममूर्ति सूरीसरु अे, तास गुणमणि आगर सीसू अे,
उवज्झाय विमलमूरती अे, तास सीस विद्यावलि सरसति अे,
गुणमूरति वाचकवरु अे, तास सीस ज्ञान मुनीसरु अे।

रचनाकाल—संवत सोल चउराणु रे, आसो सुदी उदार,
पांचमिदिन पूरो थयो रे, छठो खंड श्रीकार।
इग्यारढाल प्रथम भणी रे, बीजइ दश दश पन्न,
शेष नव नव जाणीइ रे, सर्व थइ अट्ठावन्न।

रूपसेन ने अपने पुण्य प्रताप से सभी ऋद्धि-सिद्धियों को प्राप्त किया; अन्तमें दीक्षा ली और मुक्ति को भी प्राप्त किया। कवि लिखता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपसेन रलीयामणो मुनिवर सुगुण सुजान,
६ खंडइ करि गांइयो प्रतपो जांलगि भांण।
पुण्य तणा परताप थी पगि पगि पामी ऋद्धि,
अंतइ चारित्र आदरी अेकांतरि भविसिद्धि।[1]

प्रियंकर चौपाई—यह भी कई खण्डों में रचित विशाल प्रबन्धकथा है किन्तु प्रति के खंडित होने के कारण न तो रचनाकाल प्राप्त हो सका है और न रचना सम्बन्धी विशेष विवरण उपलब्ध है। तीसरे खंड के प्रारम्भ में नेमि की वंदना करता हुआ कवि लिखता है—

अहनिसि प्रणमुं अधिकतर, गिरुओ गुणभंडार,
यादव वंसि वखाणीइ, गिरिनारि सिणगार।
नारी नवल यौवना जीवदया मनि आणी,
परहरि नइ पाछु वलिउ तृणा तणी परिजाणी।
भाषा लिखि सकला कला सरसति शुद्ध प्रवीण,
छ राग छत्रीसइ रागिणी ते शुं रहइ नितिलीन।[2]

इसमें गच्छनायक कल्याणसागर की वंदना की गई है, यथा—

प्रणमुं ग्रहमां गुरु वडु ज्योति वीमां जिमिचन्द।
तिम गिरुउ गच्छनायकइ श्री कल्याणसागर सूरिंद।
प्रवर पंडित पंगतइ कोइ न जाणइ जीपी,
प्रणमुं गुरु गुणमूरति ऐरावत जिम द्वीपि।

बावीस परीषह चौपाई सं० १७२५ चौमासा नवानगर

संवत सत्तर पंचवीसइ सुन्दर श्री शांतिनाथ प्रसन्नो रे,
नूतन पुरि चउमासि करी तिहां रच्यो रास रतन्नो रे।[3]

इसमें भी उपरोक्त गुरु परम्परा दुहराई गई है। इसमें बाईस परीषहों का वर्णन किया गया है, यथा—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०४३, भाग ३ खण्ड २ पृ० १२३४
और पृ० १६२८ (प्रथम संस्करण)
तथा भाग ३ पृ० ३०१ (द्वितीय संस्करण)

२. वही

३. वही पृ० १९५
और १६२८ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० ३०१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परीषह बावीस वर्णवुं भाषित जिम भगवंत,
रास रचुं रलियामणी सांभलयो सहु संत।

जैसा पहले कहा जा चुका है आप अच्छे गद्य लेखक भी थे। यद्यपि आपकी गद्य रचना 'संग्रहणी बालावबोध' का उद्धरण प्राप्त नहीं हो सका है फिर भी यह प्रमाणित तो होता ही है कि आप गद्य लेखक भी थे। यह रचना भी सं० १७२५ की है अर्थात् ये दोनों कृतियाँ अठारहवीं शताब्दी (विक्रमी) की हैं। इस रचना को जैन गुर्जर कविओ के प्रथम संस्करण में श्री देसाई ने ज्ञानमूर्ति की अन्य रचनाओं से अलग दिखाया था किन्तु द्वितीय संस्करण के संपादक ने इसे निश्चित रूप से ज्ञानमूर्ति की ही रचना बताया है और उन्हीं के साथ इसका भी विवरण दिया है। आप १७ वीं एवं १८ वीं शताब्दी की संधिबेला के श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार हैं। आपकी रचनाओं में काव्य के विविध अंग-उपांगों, रस, छंद, अलंकार के साथ भाषा का शिष्ट प्रयोग उल्लेखनीय है। इन्हें भाषा और काव्य शास्त्र का उत्तम ज्ञान प्रतीत होता है जिसका इन्होंने अपनी रचनाओं में उचित प्रयोग किया है। कवि और साहित्यकार के साथ वे एक श्रेष्ठ संत और शास्त्रमर्मज्ञ भी थे जैसा उनकी निम्न पंक्तियों से व्यक्त होता है—

भजइ गणइ ये (जे) सांभलइ, साध तणा गुण गावइ रे,
भावन बार भली परि भांवइ, उपशम संवर पावइ रे।
समता रस मां मन रहइं, शत्रु मित्र सम जाणइ रे,
वाक परुपइं न पारको, कर्त्ता कर्म्म वषाणइ रे।
नव विधि चउद रयण घरि राजइ, सुरवर सेवा सारइं रे,
मारग साध तणो अे सुन्दर, भव सागर मां तारइ रे।[१]

ज्ञानमेरु—खरतरगच्छ के साधुकीर्ति के शिष्य महिमसुन्दर आपके गुरु थे। विजयशेठ-विजयाप्रबन्ध, गुणावली चौपाई, कुगुरुछत्तीसी और कालकाचार्य कथा नामक आपकी रचनायें उपलब्ध हैं।[२] 'विजय-शेठ विजया प्रबन्ध' (३७ कड़ी) सं० १६६५ फाल्गुन शुक्ल १० को सरसा, पाटण में लिखी गई। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है–

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०४३, भाग ३ खण्ड २ पृ० १२३४
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन चउवीसे नमी, सहु गुरु पय प्रणमेवि,
सीलतणां गुण गायस्युं सानिधि करि श्रुति देवि ।

रचनाकाल—सोलह सइ पइसठि समइ, दसमी फागुण सुदि सार,
सरखा पट्टण मइं कीयउं, अे सम्बन्ध उदार रे ।

गुरु परम्परा—श्री साधुकीरति पाठकवरु खरतरगण नभचंद,
महिमसुन्दर गणि चिरजयु तसु शिष्य कहइ आणंदो रे ।
इम जाणी सील जे धारइं शिव ते पामइ अपार,
ज्ञानमेरु मुनि इम भणइ, सुगुरु पसाय जयकारो रे ।

यह रचना साह थिरपाल के आग्रह पर लिखी गई। इसमें शेठ-शेठानी का आदर्शशील दर्शाया गया है।

गुणावली चौपाई—इसका पूरा नाम है, गुणकरंड गुणावली रास अथवा चौपाई। यह सं० १६७६ आसो शुक्ल १३ को फत्तेहपुर में लिखी गई। इसका प्रारम्भ देखिये—

प्रणमु चोवीसे जिन पाय, वाली भावि वंदु गुरुपाय,
पुण्य तणा फल कहिसुं हेव, सानिधि करयो श्री श्रुतदेव ।

रचनाकाल—संवत सोल छिहुत्तरइ, प्रथम मेहइ आसो मासि,
फत्तेपुर तेरस दिनइ संघ अनुमति उल्हासि ।[1]

इसमें खरतरगच्छीय आचार्य जिनराजसूरि, जिनभद्रसूरि और साधुकीर्ति आदि का वंदन किया गया है। इसकी अन्तिम कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

श्री साधुकीरति पाठकवरु नाण चरण भण्डार,
श्री महिमसुन्दर वाचकवरु तासु विनेय गुणधार ।
तस पयपंकज सेवक, ज्ञानमेरु कहि अेम,
ढाल धन्यासी सोलमी, सुणता होवइ सर्वषेम ।
षंड त्रीजइ यत गुण कह्या, सुणी जे भावना भावंति,
रिधि वृद्धि संपद सवे, मन वंछित आवंति ।[2]

कुगुरु छत्तीसी (गा० ३६) यह जैनयुग वर्ष ५, अंक ४-५ पृ० १८०

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४९५-९६, भाग ३ पृ० ९७९-८० (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ९४-९६ (द्वितीय संस्करण)

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर प्रकाशित है। यह रचना प्रभावशाली एवं पाठकों में प्रिय है। इसमें गुरु के दोष और उनसे सतर्कता की चेतावनी है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

प्रणमूं जिनवर गुरुना पाय, प्रणमूं जे सुधा गण धाय,
भक्ति सदा इम उच्चारिसी, किम तरिसी गुरु किम तारिसी।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

सीष कहइ ज्ञानमेरु गणिइसी, भविकां लगइ अमृतजिसी,
जे मन मांहि न संभारिसी, किम तरिसी गुरु किम तारिसी।[1]

ज्ञानसागर—आप तपागच्छीय आचार्य विजयसेनसूरि के प्रशिष्य एवं रविसागर के शिष्य थे। आपने सं० १६५५ में १४४ कड़ी की एक रचना 'नेमि चन्द्रावला' जीर्णगढ़ या जूनागढ़ में पूर्ण की, जिसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरसति भगवति मन धरी रे, समरी श्री गुरुपाय,
नेमकुंवर गुण गायवा रे, मुझ मन ऊलट थाय।
मुझ मन ऊलट थाय अपार, स्ववस्यूं यादव कुल सिणगार,
बावीसमो जिनवर ब्रह्मचारी, जय जय नेमजी जगहितकारी
राजीमती भरतार वली बली वंदीये रे, रेवंतगिरि हितकार,
देष्यां चित्त आणंदिये रे।

रचनाकाल—संवत सोल पंचावने रे, जीरणगढ़ चौमास,
रैवतकाचल ऊपरे रे, ऊजल सम कैलास।
ऊजल सम कैलास प्रसाद, दीठा थी टलियो विषवाद,
नेमि जिणेसर सामी थुणियो, तिहां थीं सफल जमवारो
गणिओ।

गुरु परम्परा—तपगछनायक जग जयो रे, श्री विजयसेन सूरींद,
तपगछ माहि गाजतो रे, रविसागर मुणिद।
रविसागर मुणिद सोभागी, तप जप किरिया सुंलयलागी
सेवक न्यानसागर सुषकारी, स्तवीओ नेमि स्वामी
आधारी।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९४-९६ (द्वितीय संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३१७, भाग ३ पृ० ८२५ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० २९८-२९९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(**ब्रह्म**) **ज्ञानसागर**—आप दिगम्बर परम्परा के ब्रह्मचारी थे किन्तु आपके गुरु का नाम अज्ञात है। आपने अपनी रचना 'हनुमान चरित्र' (सं० १६३० आसो सुदी ५) में आत्मपरिचय इस प्रकार दिया है—

हुंबड न्याति गुनिलु साह अकाकुल भाण,
अमरा दे उधर ऊपनउ श्री ज्ञानसागर ब्रह्म सुजाण।[1]

अर्थात् आप हुंबड जातीय साह गुनिलु और अमरादे के पुत्र थे।

रचनाकाल—श्री ज्ञानसागर ब्रह्म ऊचरि हनुमंत गुणह अपार,
कर जोड़ी करि वीनती स्वामी देज्यो गुण सार।
संवत सोलत्रीसि वर्षे अश्वनी मास मझार,
शुक्लपक्ष पंचमी दिन नगर पालु वासार।
शीतलनाथ भवन रच्युं रास भलु मनोहार,
श्री संघ गिरुउ गुणनिलु स्वामी शैल करयु जयजयकार।

ज्ञानसोम—आपका भी जीवनपरिचय ज्ञात नहीं हो सका है। आपने सं० १६६९ से पूर्व भाषा गद्य में 'कोशशास्त्र' लिखा है जिसके अन्त में लिखा है—

'संवत् १६६९ वर्षे आषाढ़ शुदि ५ दिने लिखितानि इलाप्राकार मध्ये मुनि ज्ञानसोमेन।'[2]

ज्ञानसुन्दर—आप खरतरगच्छीय अभयवर्द्धन के शिष्य थे। आपने सं० १६९५ ज्येष्ठ कृष्ण २ को सूयगडांग सूत्र अध्ययन १६ मानी सज्झाय अथवा जंबू पृच्छा सज्झाय (४१ कड़ी) की रचना की। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सिद्ध सबेनइ करूं प्रणाम, धरमाचारिज लेई नाम,
गुण गाइस मुनिवर तणां, जेहना गुण आगम छइ घणां।
भगवंत केवलि नइ परिणाम, वर्द्धमान जिन भासइ आम,
हिव पनरम अध्ययनानंतरइ, सोलमा अध्ययन कहइ इणि परइ।

---

१. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ४१९

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० १६०३ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १४२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंत में रचनाकाल इस प्रकार कवि ने बताया है—

अैन्द्री निधि रसि ससिहर वरसइ,
जेठ मासि वदि बीजानइ दिवसइ,
अभयवर्धन सदगुरु पसायइ,
सुणतां ज्ञानसुन्दर सुखथायइ।[1]

ज्ञानानंद—आपका इतिवृत्त अज्ञात है। इनके पदों में 'निधिचरित' का नाम जिस श्रद्धा से लिया गया है उससे अनुमान होता है कि संभवतः निधिचरित आपके गुरु का नाम हो। पं० बेचरदास ने इन्हें १७वीं शताब्दी का कवि बताया है।[2] डॉ० अम्बाशंकर नागर ने इनकी हिन्दी भाषा में गुजराती का प्रभाव अधिक देखकर इनके गुजराती होने का अनुमान किया है। संतों जैसी भाषा शैली में अध्यात्म एवं ज्ञानसम्बन्धी चर्चा ही इनके अधिकतर पदों का विषय है। इनका पद साहित्य भारतीय संतपरंपरा का प्रतीक है। इनकी रचना 'जोगीरासा' पद की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ आगे प्रस्तुत हैं—

अवधू ! सूता क्या इस मठ में ?
इस मठ का है कवन भरोसा पड़ जावै चटपट में।
छिन में ताता छिन में शीतल रोग शोग बहु घट में।[3]

डुंगर—आप अंचलगच्छीय क्षमासाधु के शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का निश्चित पता चलता है (१) खंभात चैत्य परिपाटी और (२) होलिका चौपाई। खंभात चैत्य परिपाटी १३ कड़ी की छोटी रचना है जो जैनयुग पुस्तक १ पृ० ४२८ पर प्रकाशित है। इसमें लेखक का नाम डुंगर आया है, यथा—

थानकि बइठा जे भणइं मनि आणी ठाणि,
पणम्यानइं फल पामिसि अे मनि निश्चइ जाणि।
मनवंछित फल पूरिस अे थंभणपुर पासो,
डुंगर भणइ भवीयण तणी, तिहां पूजइ आसो।[4]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०५८ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ३१० (द्वितीय संस्करण)

२. डा० हरीश शुक्ल—गुर्जर जैन कविओ की हिन्दी कविता पृ० १२८-१२९

३. वही

४. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७३९ (प्रथम संस्करण); भाग २ पृ० १५५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरसति सामिणि करउ पसाय, मझ एक रहा डे,
खंभनयर जिनभवन अछइ, तिहां चैत्य प्रवाडे ।१।

इसमें खंभात स्थित पार्श्वनाथ चैत्य की वंदना है। इनकी दूसरी रचना 'होलिका चौपाई' से इनकी गुरु परंपरा का पता चलता है यथा—

अंचलगछ गुणइ भरपूर, गछनायक धर्ममूरति सूरि,
तसु आज्ञा गुण करीय अगाधि, वाचकमंडल श्री खिमासाध ।
तास सीस डूंगर मनिरली, भण्यु चरित्र गुरुमुखि संभली ।
जे नरनारि सुणस्यइं सदा, तिन्ह घरि बहुली हुइ संपदा ।८३।

होलिका चौपइ ८३ कड़ी की रचना है। यह सिकन्दराबाद में सं० १६२९ चैत्र वदी २ को लिखी गई। इसमें होलिका की उत्पत्ति बताई गई है, यथा—

इणि परि होली उतपति लही, चरित थिकी संखेपइ कही,
अधिकउ ऊछउ कहिउ जेह, मिच्छादुक्कड़ मुझनइ तेह ।
सोलह सइ गुणतीसइ सार, चैत्रह वदि दुतिया बुधवार ।
नयर सिकंदराबादि मझारि, श्री नेमिश्वर नइ करीय जुहारि ।[1]

आपकी एक अन्य रचना नेमिनाथस्तवन (७५ कड़ी) भी उपलब्ध है पर यह निश्चित नहीं है कि इसके लेखक अंचलगच्छीय क्षमासाधु के शिष्य डुंगर हैं या अन्य कोई दूसरे डूंगर। जैन गुर्जर कविओ के नवीन संस्करण के संपादक श्री कोठारी ने इस विषय में शंका तो उठाई है किन्तु समाधान का कोई संकेत नहीं दिया; अस्तु। इसकी कुछ पंक्तियाँ देखिये--

बालब्रह्मचारी सजाण, आसो भावस केवलनाण,
बावीसमउ हुउ जिणंद, प्रणमइं आप अमूलइ कंद ।
श्री नेमि राणी रायमई, मन सुद्धिहि गुण गाऊं किमइ,
अनदिन ध्याउं जिणवर चरण, भणइ डूंगर मंगलकरण ।[2]

१६वीं शताब्दी में भी एक डूंगर कवि हो गये हैं जिन्होंने 'नेमि-

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७३९ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १५५ (द्वितीय संस्करण)

२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १५६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाथ फाग या बारहमासा' सं० १५३५ के आसपास लिखा था। उन्होंने अपना नाम डूँगरस्वामी लिखा था, यथा --

अहे राजिमति सिउ राइमइ, पुहुत सिद्धिशलाय,
डूँगरस्वामी गाईता, अफल्या फलइ तांह।[१]

अतः १६ वीं शताब्दी के डुंगरस्वामी से १७ वीं शताब्दी के डूंगर भिन्न व्यक्ति मालूम पड़ते हैं और प्रस्तुत रचना नेमिनाथ स्तवन डूंगर (शिष्य क्षमासाधु) की ही लगती है।

(शाह) ठाकुर—आपने सं० १६५२ में 'शान्तिनाथपुराण' की रचना की। हिन्दी भाषा में शान्तिनाथ पर यह पुराण संभवतः सबसे प्राचीन है। इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि भट्टारकीय शास्त्रभंडार, अजमेर में संग्रहीत है;[२] किन्तु इसका उद्धरण और विवरण उपलब्ध नहीं हो पाया है। श्री नाहटा ने इसे 'शान्तिनाथ चरित्र' कहा है और लेखक का नाम (शाह) ठाकुर बताया है। अतः उपरोक्त ठाकुर कृत शान्तिनाथ पुराण के कर्त्ता यही शाह ठाकुर हैं। सं० १६५२ में लिखी यह रचना पाँच संधियों में विभक्त है। यह विस्तृत रचना काव्यतत्वों से युक्त है।[३] आपकी दूसरी रचना 'महापुराण कालिका' एक प्रबन्धकाव्य है जो २७ संधियों में विभक्त है। इससे पता चलता है कि ठाकुर या शाह ठाकुर के गुरु अजमेर शाखा के भट्टारक विशालकीर्ति थे। आप आमेर नरेश मानसिंह के समय वर्तमान थे। लुवाइणिपुर निवासी खंडेलवाल जाति के वैश्य श्री खेता आपके पिता थे।[४] शान्तिनाथचरित्र का उल्लेख हिन्दी साहित्य के वृहद् इतिहास में किया गया है किन्तु वहाँ भी इतनी ही सूचना है कि इसमें १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का चरित्र पाँच संधियों में वर्णित है। इस संबंध में सूचना के लिए प्रशस्ति संग्रह भाग २ पृ० १२३ भी देखा जा सकता है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ४९२ (प्रथम संस्करण)
२. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० २५ और पृ० ३००
३. अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २०९
४. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ३ पृ० २६८ प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजचंद—आप तपागच्छीय सकलचंद की परंपरा में मानचंद के शिष्य थे। आपने सं० १७०० मागसर वदी ५, सोमवार को 'पुण्यसार रास' लिखा जिसका प्रारम्भ इस प्रकार है —

सकल सीद्ध चलणे नमुं, नमु ते श्री जीवराय,
समरुं सरसती सामिनी, वर द्यो करीय पसाय।
पिंगल भेद न ओलखुं, वगती नही व्याकर्ण,
मूरखमंडण मानवी, हुं सेवक तुझ चरण।

इसमें पुण्यसार की कथा के दृष्टान्त द्वारा दानपुण्य का माहात्म्य समझाया गया है, यथा—

दान ऊपरि अे अधिकार, सुणीले जो सहू नरनारि।

इसका रचनाकाल देखिये—

संवत सतर मांहि भणो अे अधिकार पुन्यसारह भणो।[1]

गुरुपरंपरा बताते समय कवि ने अंचलगच्छीय विजयदेव सूरि से लेकर चंदशाखा के सकलचंद, लक्ष्मीचंद, पुण्यचंद, वृद्धिचंद और मानचंद तक की नामावली गिनाई है। अपने को कवि ने मानचंद का शिष्य कहा है।

तेजचंद मुनि अेम भणंति, भणि गुणे तिहां काज सरंति।
ते सवि पामइ वंछित सिधि, धन आरोग घरि अविचल ऋद्धि।

यह रचना दसाड़ा में कोठारी अमथा के आग्रह पर की गई।

तेजपाल—आप कड़वागच्छ के लेखक थे। आपने सं० १६५५ में दीक्षा ली थी और सं० १६८९ में आपका निधन हुआ। आपने सं० १६८२ में 'सीमंधर स्वामी शोभातरंग' की रचना ५ उल्लासों में की है। यह रचना अभयसागर द्वारा संपादित होकर सिद्धचक्र में प्रकाशित है। पहले श्री मोहनदास देसाई ने इसे सेवक[2] की रचना कहा था और सेवक को गुणनिधान का शिष्य बताया था किन्तु श्री अगरचंद नाहटा ने जैनसत्यप्रकाश में इस पर भलीभाँति विचार करके इसे तेजपाल की रचना बताया है। इसकी अंतिम पंक्ति में आये 'सेवक'

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९८, भाग ३ पृ० १०९१ (प्रथम संस्करण), भाग ३ पृ० ३४१ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० ५८४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द से श्री देसाई को लेखक का भ्रम हुआ होगा, पंक्ति इस प्रकार है—

तोरी वदन शोभा मंडपि मोह मन्नभावन वेलि,
घनश्याम स्यूं वीजली झलकंति करती गेलि।
कोटि सूरीय जोति आधिकी, तुझ वदन देती हेलि,
तेजपुंज विराजती सेवक हूं रंगरेलि।[1]

पर यह 'सेवक' शब्द लेखक का नाम नहीं अपितु विशेषण हो सकता है।

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

श्री जैनेंद्र दिवाकरा, अरिहा त्रिभोवन चंदा रे,
अठ महा पाडिहेर जे तेणि जुत्ता सुखकंदा रे।

इस रचना का उल्लेख १६ वीं शताब्दी के इतिहास में सेवक के साथ किया जा चुका है अतः उसे सुधारकर पढ़ा जाय।

तेजविजय—आप विजयतिलक के पट्टधर विजयाणंद के शिष्य विवुधविजय या विजयबुध के शिष्य थे। आपने सं० १६८२ भाद्र वदी १० को वीरमगाम में 'शांतिस्तव' नामक काव्यकृति का निर्माण किया। रचनाकाल देखिये—

संवत जाणयो नयन वसु ससिकला,
भाद्रपद मास वदि दसमिपुर्ष्यि।
वीरमगाम सुभ ठाम नो राजीउ,
गाइयो श्री विजय विबुध शिष्यइं।[2]

यह ९९ कड़ी की रचना है। इसकी अन्तिम कड़ी इस प्रकार है—

तपगछ भूषण दलित दूषण विजयतिलक सूरीसरो,
तस पट्टधारी विजयकारी विजयाणंद मुनीसरो।
दीवान दीपक वादि जीपक श्री विजयबुध सुंदरो,
तस सीस लेसि तेजविजयइं गाइओ श्री जिनवरो।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २४१-२४२ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० २४८ (द्वितीय संस्करण)
३. वही, भाग ३ पृ० ९९२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजरत्नसूरि शिष्य – तपागच्छीय तेजरत्नसूरि का प्रतिमा लेख सं० १६१५ का प्राप्त है अतः इनका शिष्य १७ वीं शताब्दी का ही होगा। इनके एक शिष्य कीर्तिरत्नसूरि ने 'अतीत अनागत वर्तमान जिनगीत' लिखा है, हो सकता है कि उन्होंने ही वर्तमान रचना 'गोड़ी पार्श्व' स्तवन भी लिखी हो। यह ६० कड़ी की कृति है और सं० १६१६ फाल्गुन सुदी २, रविवार को पूर्ण हुई है। रचनाकाल इसमें इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोल वसू अछूआ जासणो, फागण स्ताद वीजा रविवार गणो,
जे भणसे सुणसे नरनारी, तास नाम पामसे जयकारी।

इसकी प्रारम्भिक एवं अन्तिम पंक्तियां अधोलिखित हैं—

आदि—सरस वचन सरसति तणा, पामी अविचल मात,
श्री गोड़ी पार्श्व जिणंद नी स्तवसू जिनगुणकीत।

अंत—भलो भाव भगते भलो जगते पुरिसादाणी स्तव भणी,
श्री तेजरतन सूरिंद सीसो स्तवो गोड़ीपुर धणी।[1]

'वसू अछुआ' का अर्थ आठ×दो=सोलह लगाया गया है। १७वीं शताब्दी तक भाषा विकास के बावजूद भी जैनमुनि परंपरित भाषा शैली का ही प्रयोग करते रहे।

त्रीकममुनि—आप नागौरी लोंकागच्छ के साधु आसकरण> वणीवीर के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६९९ में रूपचन्द ऋषि रास (अकबरपुर), सं० १६८९ में 'अमरसेनरास' सं० १७०६ बंकचूलरास और रामचरित्र चौपइ की रचना की।[2] श्री अगरचन्द नाहटा ने अमरसेन-रास का रचनाकाल सं० १६८९ और श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने सं० १६९८ दिया है। ऐसा करने का किसी विद्वान् ने कोई आधार नहीं दिया है। रूपचन्द ऋषिरास (११ ढाल, २२४ कड़ी, सं० १६९९ बुधवार, भाद्र कृष्ण ३, अकबरपुर) का आदि इस प्रकार है—

महावीर त्रिभुवन धणी, केवल न्यान पडूर,
सेव करइ सुरनर सदा, पूरइ वंछित पूर।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६८८ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १-२ (द्वितीय संस्करण)

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तास सीस गणधर नमूं श्री गौतम मुनिराय,
अष्ट महासिद्धि संपजइ, पूरइ वंछित काज।[1]

रचना में गुरुपरंपरान्तर्गत रूपचंद, वस्तपाल, भैरव, नेमिदास, आसकरण और वणवीर का सादर स्मरण किया गया है। रचनाकाल और स्थान आदि का विवरण इस प्रकार किया गया है--

संवत सोल नन्याणु मास विराजइ भादव सुखकरु हे,
वरसइ अति असराल, कांठलिबोधि चिहुं दिस मनहरु हे।
पक्ष वहुल तिथि तीज, श्री बुधवारु महामहिमा निलउ हे,
अकबरपुर अभिराम महियलमंडण नगर सिरां तिलउ हे।
तेथ कियउ चउमास श्री वणवीर सद्गुरु महिमा रली हे,
तास प्रसादइ अेह, अधिक महारस कीधी मंडणी हे।[2]

बंकचूलरास-(१७ ढाल, सं० १७०६ भाद्र शुक्ल ११ गुरु, किशनगढ़)

आदि श्री रिसहेसर पय नमी आदि पुरुष परधान,
जिण चउबीसी ऊपनो, प्रथम ही केवल ज्ञान।
समरुं श्री चक्केसरी कुंडलहार विशाल,
शीशफूल शिरझिगमिगे तिलक विराजत भाल।

X X X

बंकचूल राजातणो रसिक कहुं अधिकार,
अेकमना सुणतां थका पामीजे भवपार।

गुरु परंपरा- तास तणे गछ दीपतो श्री वणवीर मुणिंद हो,
दरसण थी दोलत मिले मन में हुवे आणंद हो।
तास सीस तीकम कीयो अे अधिकार अनूप हो,
सांभलता सज्जन जनां दिनदिन अधिकी चूंप हो।

रचनाकाल- संवत सतरै छडोतरै कीध चउमासो सार हो,
किसनगढ़े आणंद घणे श्री वणवीर उदार हो।
भादवा सुदी अेकादसी बृहस्पतिवार सुवार हो,
ढाल भणी सतरमी 'तीकम' कहै सुविचार हो।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५८८-९१, भाग ३ खण्ड २ पृ० १५२० (प्रथम संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० ३३७-३४० (द्वितीय संस्करण)

३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमरसेन रास का उद्धरण नहीं प्राप्त हो सका अतः उसके रचना-काल का ठीक निर्णय भी संभव नहीं हुआ।

त्रिभुवनकीर्ति—आप रामसेनान्वय भट्टारक सोमकीर्ति की परंपरा में विजयसेन के शिष्य कमलकीर्ति उनके शिष्य यशःकीर्ति और उनके शिष्य उदयसेन के शिष्य थे। आपके जन्म, परिवार और दीक्षा आदि का विवरण नहीं प्राप्त है। ब्रह्म कृष्णदास ने 'मुनि सुव्रत पुराण' में उदयसेन एवं त्रिभुवनकीर्ति का उल्लेख निम्न पद्य में किया है—

कमलपतिरिवाभूत्सदुध्याद्यन्ततेन,
उदित विशदपट्टे सूर्य शैलेन तुल्ये,
त्रिभुवनपति नाथांह्यिदयासक्त चेता,
स्त्रिभुवनकीर्ति नामि तत्पट्टधारी।[1]

आप संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी के ज्ञाता थे। संस्कृत में आपने 'श्रुतस्कंधपूजा' नामक रचना की है। आपने गुजरात, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली में खूब बिहार किया अतः इनकी भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है अर्थात् इनकी भाषा परवर्ती मरुगुर्जर भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। मरुगुर्जर में आपकी दो रचनायें उपलब्ध हैं—जीवंधररास और जम्बूस्वामीरास जिनका परिचय क्रमशः आगे दिया जा रहा है।

जीवंधररास सं० १६०६, कल्पवल्ली नगर में रचा गया एक प्रबन्ध काव्य है। जीवंधर के चरित्र पर आधारित रचनायें संस्कृत अपभ्रंश आदि में कई लिखी गई जैसे हरिश्चन्द्रकृत जीवंधर चम्पू, शुभचन्द्रकृत जीवंधर चरित्र, यशःकीर्तिकृत जीवंधर प्रबन्ध और अपभ्रंश में रइधूकृत जीवंधर चरिउ और ब्रह्म जिनदासकृत जीवंधररास आदि। प्रस्तुत रास उसी शृंखला की एक सुन्दर कड़ी है। इसमें दूहा, चउपइ, वस्तुबंध, ढाल, राग और नाना रागिनियों का प्रयोग किया गया है। राजपुत्र जीवंधर का जन्म श्मशान में हुआ था। एक अन्य महिला ने उसका पालन-पोषण किया। युवा होकर बड़ा पराक्रमी और प्रतापी राजा हुआ। अंत में वैराग्य हुआ और दीक्षा संयम द्वारा

१. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—ब्रह्मरायमल्ल एवं भट्टारिक त्रिभुवनकीर्ति व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० २७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्ति को प्राप्त किया। इसमें प्रतिनायक नहीं है। इसके वर्णन सुन्दर हैं। जीवंधर की माता विजया का सौन्दर्य वर्णन देखिये—

मस्तक वेणी सोभतु ए, जाणो सखी भार,
सिथइ सिंदूर पूरती ए, कंठइ रूडउ हार।
रंभा स्तम्भ सरीखडीए, विन्यइछि जंघ,
हंसगति चलइ सदाए, मध्यइ जैसी संघ।।

वसंत वर्णन—

सखी एकदा मास वसंत, आव्यु मननी अति रलीए,
मंजरी आंबे रसाल, केसू पड़े राती कलीए।

जीवंधर को देखकर गुणमाला उसके विरह में सुध-बुध खो देती है

मंदिर आवी ताम, स्नान मंज्जन नवि करइ ए,
रजनी न धरइ नींद, दिवस भोज नवि करइ ए।[1]

रास का आदि– आदि जिणवर आदि जिणवर प्रथम जे नाम,
जुग आदि जे अवतरया, जुगआदि अणसरीय दीक्षा।

गुरु परंपरा–नदी अऊ गच्छ मझार रामसेनान्वपि हवउ
श्री सोमकीरति, विजयसेन, कमलकीरति यशःकीरति हवउ,
तेह पाटि प्रसिद्ध चरित्र भार धुरंधरो,
वादीय भंजन वीरश्री उदयसेन भूरीश्वरो।

रचना समय एवं स्थान –कल्पवल्ली मझार संवत सोल छहोत्तरी,
रास रचउं मनोसरि रिद्धि ह्यो संघह धरि।

अंत—जीवंधर मुनि तप करी, पुहुतु शिवपद ठाम,
त्रिभुवन कीरति इम वीणवइ, देयो तुम्ह गुणग्राम।[2]

इसमें कवि ने आया, पाया, विनयकिया आदि खड़ी बोली हिन्दी की क्रियाओं के स्थान पर आव्यु, पामी-पामीय, वीनव्यु आदि शब्द रूपों का प्रयोग किया है जिससे कहीं कहीं भाषाशैली अटपटी हो गई है।

---

१. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—ब्रह्मरायमल्ल एवं भट्टारिक त्रिभुवनकीर्ति पृ० २७६

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंबूस्वामी रास—प्रथम रचना के १९ वर्ष बाद अर्थात् सं० १६२५ में आपने यह द्वितीय रचना की। जैन धर्म के अन्तिम केवली जम्बूस्वामी पर आधारित यह रास अति प्रसिद्ध और लोकप्रिय है। जम्बू राजग्रही के नगरसेठ अर्हत का पुत्र था। बचपन में ही उसने राजा श्रेणिक के उन्मत्त हाथी को वश में कर लिया था। १६ वर्ष की अवस्था में वह केरल के राजा की सहायता के लिए सेना लेकर गया और अपनी अपूर्व वीरता से विजय किया। चार कन्याओं से विवाह करता है। अंत में वैराग्य और केवलज्ञान का अधिकारी होता है इस प्रकार प्रबन्ध काव्य में वीर, शृंगार और शांत आदि प्रधान रसों की निष्पत्ति का यथावसर अच्छा सुयोग प्राप्त हुआ है। जंबूकुमार के हृदय में रतिभाव उत्पन्न करने के लिए सुंदरी पत्नियाँ नाना उपाय और चेष्टायें आदि करती हैं, यथा—

कामाकुल ते कामिनी करिते विविध प्रकार,
अंग देखाडि आपणां वलीवली जंबू कुमार।
गीत गान गाहे करी, कुमर उपाइं राग।

परन्तु जंबू पर प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि अधिकतर जैन काव्यों का लक्ष्य नारी सौन्दर्य के प्रति अरुचि उत्पन्न करके जीव के मन में वैराग्यभाव को जागृत करना है। कवि अपने इस लक्ष्य को अच्छी प्रकार प्राप्त कर सका है। भाषा सरल, सहज और प्रवाहयुक्त है। इसमें भी दूहा, चौपाई, वस्तुबंध, ढाल और राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है। जैन साहित्य में नेमि और स्थूलिभद्र के पश्चात् जंबू का चरित्र अत्यधिक मर्मस्पर्शी और लोकप्रिय है। अतः रास प्रभावशाली है। यह ब्रह्मरायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति-व्यक्तित्व एवं कृतित्व नामक ग्रंथ में प्रकाशित है। कुछ उद्धरण–जंबू का परिचय—

मगध देश राजग्रहि अर्हदास थिरसार,
जिनमती कूखि अवतिरि जंबूकुमर भवतार।

जंबू पर पद्मावती, कनकश्री, विनयश्री एवं लक्ष्मी नामक चार सुंदरियाँ मुग्ध थीं, कवि कहता है—

च्यार कन्या अछि अति भलीए, रूप सोभगनी खाणि।
पृथु पीन पयोधरा, बोली अमृत वाणि।

केरल युद्ध में जाते समय विन्ध्याचल पर्वत का वर्णन देखिये—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सैन्य सहित तिहां आवीउ, विन्ध्याचल उत्तंग,
जीवघणा तिहां देखीया विस्मय पाम्यु मनचंग।
पिककेकी वाराहनी, हरण रोझ गींमाउ,
हंस व्याघ्र गज सांबरा मृग वृष महिष नकाय।[1]

केरल युद्ध विजय के बाद लौटते समय सुधर्माचार्य के दर्शन हुए और उनके उपदेश से वैराग्य हुआ पर आचार्य की आज्ञा से घर लौट कर चारों कन्याओं से शादी किया। उसी रात्रि में चोर घुस आया, उधर जम्बू पत्नियों को उपदेश देते रहे, इधर चोर सुनकर प्रभावित होता रहा। प्रातःकाल जंबू दीक्षा लेने गये, साथ में माता-पिता, पत्नियाँ और उस चोर ने भी दीक्षा ली। खूब विहार किया, उपदेश दिया, अन्त में निर्वाण प्राप्त करने हेतु विपुलाचल पर्वत पर संल्लेखना ग्रहण की। यह एक कथा प्रधान काव्य है। यह रास जवाछ नगर के शांतिनाथ चैत्यालय में रचा गया था। इसका आदि--

वीर जिणवर वीर जिणवर नमु तेसार,
तीर्थंकर चुवीसमु वांछितफल बहुदान दातार।
वालपनि रिधि परिहरी, धरीय संयम भारसार।

कुल छंद संख्या ६७७, अंतिम छंद-

संवत सोल पंचदीसी, जवाछ नगर मझार,
भुवन शांति जिनवर तणि रच्यु रास मनोहार।[2]

त्रिभुवनचन्द्र--आप आगरा निवासी थे और पांडे रूपचंद्र तथा कवि बनारसीदास के सान्निध्य में थे। इनकी रचनायें भी आध्यात्मिक भावों से ओतप्रोत हैं। आपके पारिवारिक जीवन एवं गुरुपरम्परा के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। ये कविता में अपने उपनाम 'चंद्र' का प्रयोग करते थे। इनकी अग्राङ्कित रचनायें प्राप्त हैं-- अनित्य पंचाशक, षट्द्रव्य वर्णन, प्रास्ताविक दोहे और कुछ स्फुट कवित्त आदि। इसमें से अनित्य पंचाशक और षट्द्रव्य वर्णन संस्कृत में लिखित रचनायें हैं; इन्होंने इन रचनाओं का हिन्दी (मरुगुर्जर) में अनुवाद किया है। प्रास्ताविक दोहे और स्फुट कवित्त इनकी मौलिक

---

१. डॉ० कासलीवाल--ब्रह्मरायमल्ल एवं भट्टारिक त्रिभुवनकीर्ति पृ० २७७
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतियां हैं। भाषा शैली के आधार पर 'चन्द्रशतक' को भी इन्हीं की रचना कहा जाता है।

अनित्य पंचाशक (पद्य संख्या ५५, सं० १६५२ से पूर्व) इसमें छप्पय और सवैया छन्दों का प्रायः प्रयोग किया गया है। भाषा के नमूने के लिए मंगलाचरण की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

सुद्ध स्वरुप अनूपम मूरति जासु गिरा करुनामय सोहै,
संजमवंत महामुनि जोध जिन्हों पर धीरज चाप धरो है।
मारन को रिपु मोह तिन्हैं वह तीक्षन सारक पंकति हो है,
सो भगवंत सदा जयवंत नमो जग में परमातम जो है।[1]

अंत– पद्मनंदि मुनिराज तासु आनन जलधारी,
ता तहिं भई प्रसूति सकल जनमन सुखकारी।
धन वनिता पुत्रादि सोक दावानल हारी,
भयदलनी सद्बोध अंत उपजावन हारी।
उन्नत मतिधारी नरनि को अमृत वृष्टि संसय हरनि,
जय जय अनित्य पंचाशिका त्रिजगचंद्र मंगल करनि।

दूहा– मूल संस्कृत ग्रंथ तैं भाषा त्रिभुवनचंद,
कीनी कारन पाइ कै पढ़त बढ़त आनंद।[2]

मूल रचना पद्मनंदि ने संस्कृत में की थी, 'चन्द्र' ने उसका अनुवाद भाषा में किया। अनुवाद सुबोध एवं प्राञ्जल है, भाव (अध्यात्म) की बानगी के लिए भी कुछ पंक्तियां देखिये–

जहाँ है संयोग तहां होत है वियोग सही,
जहाँ है जनम तहाँ मरण को वास है।
संपति विपति दोऊ एक ही भवन दासी,
जहाँ बसै सुष तहाँ दुष को विलास है।
जगत में बार-बार फिरे नाना परकार,
करम अवस्था झूठी थिरता की आस है।
नट कैसे भेष और और रूप होहिं तातें,
हरष न सोग ग्याता सहज उदास है।[3]

१. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० १०१
२. वही
३. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य एवं कवि पृ० १२८-१३०

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

चन्द्रशतक–(१०० पद्य) कवित्त, सवैयों में लिखित एक प्रौढ़ रचना है। इसके भी भाव आध्यात्मिक हैं और भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है। इसका भी एक उद्धरण प्रस्तुत है—

गुन सदा गुनी मांहि, गुन गुनी भिन्न नाहिं,
भिन्नतो विभावता स्वभाव सदा देखिये।
सोई है स्वरूप आप, आप सों न है मिलाप,
मोह के अभाव में स्वभाव शुद्ध देखिये।
छहो द्रव्य सासते, अनादि के ही भिन्न-भिन्न,
आपने स्वभाव सदा ऐसी विधि लेखिये।
पांच जड़ रूप भूप चेतन सरूप एक,
जानपनों सारा 'चन्द्र' माथे यो विसेखिये।[1]

यद्यपि यह निश्चित नहीं है कि यह कृति इन्हीं की है अथवा किसी अन्य की, किन्तु इसकी भाषा, काव्य शैली आदि के आधार पर अधिकतर विद्वान् इसे इन्हीं की रचना मानने के पक्ष में हैं, फिर भी इस सम्बन्ध में शोध की अपेक्षा है। इनके फुटकर कवित्तों में से कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं हो पाया किन्तु जितना उद्धरण प्राप्त है उससे ये एक सक्षम आध्यात्मिक भाव सम्पन्न कवि सिद्ध होते हैं।

दयाकुशल—तपागच्छीय आचार्य हीरविजयसूरि की परंपरा में मेहमुनि के शिष्य कल्याणकुशल आपके गुरु थे। आपकी अनेक महत्वपूर्ण रचनायें उपलब्ध हैं और उनमें से कई प्रकाशित भी हो चुकी हैं। इनमें विजयसेनसूरि रास—लाभोदय रास (सं० १६४९) सर्वाधिक ऐतिहासिक महत्व की कृति है। इसमें हीरविजयसूरि और सम्राट् अकबर की भेंट का महत्वपूर्ण विवरण है। यह रचना अकबर की मृत्यु से चार वर्ष पूर्व की गई। इसमें अकबर की विजयों और साम्राज्य-प्रसार का भी ब्यौरा है। कवि ने लिखा है कि सम्राट् की सेवा में बड़े-बड़े राजा-महाराजा, रोमी, फिरंगी आदि उपस्थित रहते थे। यह १४१ कड़ी की रचना आगरा में लिखी गई थी। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियों में सरस्वती और हीरविजयसूरि की वंदना है, यथा—

सरसति मति अति निरमली, आपु करीय पसाय।
जे संग जी गुण गावतां अविहड वर दिऊ माय।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैनभक्ति काव्य एवं कवि पृ० १२८-१३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीरविजय नाडोलाई नगरी के ओसवालवंशी साह कम्मा की पत्नी कोडमदे की कुक्षि से उत्पन्न हुए थे, वे आगे चलकर तपागच्छ के गच्छनायक बने। इस बीच की प्रायः सभी प्रमुख घटनायें इसमें वर्णित हैं। इसके अन्त की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

धन्य गुरु हीर धन्यधन्य तपगच्छ अे, धन्य जेसंग जगमइ वदीतु,
साही अकबर सदसि जिणइ निज अतुल बलइ,
थामी जिनधर्म वर वाद जीत्यु।

रचनाकाल और स्थान—आगरइ सहरि श्री पास पसाउलइं,
संवत सोल उगणपंसाचइ।
कल्याणकुशल गुरु राज कल्याणकर,
सीसदयाकुशल मनरंगि भाषइ।[१]

इसके अतिरिक्त तीर्थमालास्तवन सं० १६७८, त्रेसठशलाका पुरुष विचारगर्भित स्तोत्र सं० १६८२, पदमहोत्सवरास सं० १६८५, ज्ञानपंचमी नेमिस्तवन और विजयसिंह सूरि रास सं० १६८५ आदि आपकी अन्य उल्लेखनीय रचनायें उपलब्ध हैं। इनमें से विजयसिंह सूरि रास जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। यह २३३ कड़ी की रचना है इसी के साथ वीरविजय कृत 'विजयसिंह सूरि निर्वाण स्वाध्याय' (सं० १७०८) भी छपा है। इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

सोल पंचासी इसी रे असाढ़ि शुदि पूनिम दिने अे
रुडो तिहां रविवार, रास रच्यो मन ऊलट अे।२३१।[२]

अर्थात् यह रचना सं० १६८५ आषाढ़ शुक्ल १५ रविवार को पूर्ण हुई।

आदि—सरस वचन रस वरसती, सरसती भगवती देवि,
तुझ प्रसादें गुरुगुण थुणु, हीयडे हरष धरेवि।

इसमें तपागच्छ के ६१वें गच्छनायक विजयसिंह सूरि का गुणानुवाद किया गया है।

यह रास राग देशारत तथा वेलाउल (विलावल ?) में बद्ध होने

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २५७ (द्वितीय संस्करण)

२. जैन गुर्जर ऐतिहासिक काव्य संचय क्रम सं० १४, पृ० १८०-८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से गेय है। भाषा प्रसाद गुणसंपन्न है इसलिए यह लोकप्रिय रचना है। इसकी कुछ पंक्तियाँ प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

माल पिता गुरु देवता, गुरु अति मति दातार;
गुरुविण भवजलनिधि तणौ कवण उतारे पार।
अनंत तीर्थंकर जे हूआ, होसे वली अनंत,
ते सहु सुगुरु पसाउलो, गुरु गुणनो नहि अंत।
त्रिभुवन मां जे जे कला, गुरु विण ते नहि कोअे,
जिम जल विणसवि बीजनो, उद्‌भव कहियनकोय।[1]

अन्त—

'हीरजी हीरलो तास पटि अति भलो,
श्री विजयसेन सूरीश राजे,
श्री विजयदेव सूरि तास पटि निरमलो,
भाग्य सौभाग्य वैराग्य छाजे।
थापियो जेणि निज पाटि विजयसिंह जी,
सदा उदयवंत गुरु अेह गायो,
कल्याणकुशल गुरु शिष्य सुखरंगरस,
कहे दयाकुशल सही में ज पायो।[2]

ज्ञानपञ्चमी नेमिजिन स्तवन (३० कड़ी) भी प्रकाशित है। यह 'जैन प्राचीन पूर्वाचार्यों विरचित स्तवन संग्रह' में संकलित है। पद महोत्सव रास सं० १६८५ की रचना है। इसमें हीरविजयसूरि का पद-महोत्सव वर्णित है। त्रेसठ शालाका पुरुष स्तोत्र ५९ कड़ी सं० १६८२ की रचना है। इसका आदि और अन्त उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

आदि—श्री जिनचरण पसाउले, मनह तणे उमाहलइ,
हुं थुणं त्रिहसठि शलाका पुरुष ने अे।

अन्त—तपगच्छपति श्री विजयदेव गुरु आचारज विजयसंघ सूरी,
सोल बिआसीइ त्रिहसठि शलाका पुरुष तणी में थुत्तिलही।
कल्याणकुशल पंडित गुण मंडित तास पसाइ अेह कहुँ,
दयाकुशल कहे उल्हट आणी, परमाणंद सुख सहीअ लहुं।४९।[3]

१. ऐतिहासिक जैन गुर्जर काव्य संचय पृ० १८१
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २६० (द्वितीय संस्करण)
३. वही, पृ० २५८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थमाला स्तवन अथवा पूर्वदेश चैत्यपरिपाटी स्तवन सं० १६४८ की रचना कही गई है। यह इनकी संभवतः प्रथम रचना है। श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २९६-३०० पर इसका रचनाकाल सं० १६७८ बताया था। द्वितीय संस्करण में उसे सुधारकर सं० १६४८ बताया गया है, जो कवि द्वारा बताये रचनाकाल की दृष्टि से संगत बैठता है, यथा—

वसु सागर रस ससी मित वरखे कीधी जात्रा अेह,
दयाकुशल कहे आणंद आणी, नितनित समरुं तेह।

इसमें कवि ने मेहमुनि का नाम दिया है, उदाहरणार्थ देखिये—

मेह मुनिसर सीस सिरोमणि, विबुध सभा सणगार,
कल्याण कुशल गुरु तपागछ मंडण निरमल ज्ञान भण्डार।

इसके प्रारम्भिक पन्ने फटे होने से रचना का आदि नहीं दिया जा सका है। सं० १६८९ में लिखित इस प्रति पर कवि के हस्ताक्षर हैं। इसकी ४३ वीं कड़ी में भी सं० १६४८ का उल्लेख यात्रा के प्रसंग में किया गया है, यथा—

मूकी मूरत डीगाम्बर तड़ी, संवत १६ अडताले घणी।

इन कृतियों की अनेक प्रतियाँ विभिन्न ज्ञान भण्डारों में उपलब्ध होने से इनकी लोकप्रियता का पता चलता है।

दयारत्न—श्री अगरचन्द नाहटा इन्हें हर्षकुशल का और श्री मो० द० देसाई इन्हें जिनहर्ष का शिष्य बताते हैं पर दोनों इनकी उन्हीं कृतियों का विवरण देते हैं अतः यह निश्चय है कि दोनों एक ही दयारत्न का परिचय दे रहे हैं। इनकी दो प्रमुख रचनायें उपलब्ध हैं पहली हरिबल चौपाई पद्य ५८१ जिसकी प्रति नाहर जी संग्रह (कलकत्ता) में है। यह रचना सं० १६९१ जोधपुर में हुई। दूसरी कृति 'कापड़हेड़ा रास' सं० १६९५ में लिखी गई जो ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३ में प्रकाशित है।[1] जोधपुर रियासत में विलाडा से जोधपुर मार्ग पर विलाडा से १६ मील दूर कापडहेड़ा एक छोटा सा गाँव है। यहाँ पर पार्श्वनाथ का एक भव्य जिनालय है। उसकी मूर्ति के प्रकट होने और उसकी स्थापना के सम्बन्ध में यह रास लिखा गया है। खरतरगच्छ की आचार्य शाखा के जिनचंद्रसूरि को सं० १६७० में जोधपुर में देवी वचन से यह ज्ञात हुआ कि कापड़हेडा में भूमि के नीचे पार्श्वनाथ की

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमा है। सूरिजी वहाँ गये, आराधना की और सं० १६७४ में मूर्ति क्रमशः प्रकट हुई। सं० १६७६ में नारायण भण्डारी ने मन्दिर का निर्माण कराया और सं० १६८१ में मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई। भानु या भाणपुत्र नारायण भंडारी ने इस पर बड़ा धन व्यय किया। कवि भंडारी की प्रशंसा में कहता है—

'भंडारी भाना सुतन नारायण नारायण रूप कि,
देवगुरु रागी भागमल इणसम अवरन दीठ अनूप कि।'

जिनचन्द्र के पट्टधर जिनहर्ष भी पार्श्वनाथ की कृपा से यशस्वी एवं चमत्कारी संत थे। कहते हैं कि उन्होंने पानी से दीपक जलाया और सातसेर लपसी से गाँवभर को जिमाया आदि। इन्हीं स्वयंभू पार्श्वनाथ की सन्निधि में बैठकर दयारत्न ने यह ४३ कड़ी का छोटा रास लिखा। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोल पचाणवें राजे श्री हरषसूरीस कि,
पास तणा गुण पूरिया सविहि दयारतन सुसीस कि।[1]

स्वयं प्रकट हुई मूर्ति का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

सप्त फणो सोहामणो आप रूप कीधो आकार कि,
प्रगडयो पूरो नहीं किण विधि आवै हिव कयवार कि।

इसकी मूर्ति प्रतिष्ठा का समय कवि ने इस प्रकार बताया है—

संवत सोल इक्यासियै वइसाषां सुदि तीज विचार कि,
दंडकलश चाटण दिवस ध्वज महुरत जोयो निरधार कि।[2]

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियां निम्नाङ्कित हैं—

हुं बलिहारी पास जी, कापड़हेड़ा स्वामी सयंभ कि,
गुण गावण मनि गहगहै, आपो सद्‌गुरु वचन अचंभ कि।[3]

हरिबल चौपाई का अधिक विवरण उपलब्ध नहीं हो सका पर कापडहेड़ा रास से जो उद्धरण दिये गये हैं उनसे कवि की भाषा शैली और कवित्व शक्ति का अनुमान पारखी पाठक लगा सकते हैं।

१. ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३ पृ० ५९-६०

२. वही

३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५७३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखक दयारत्न की गुरु परम्परा को लेकर जो प्रारम्भ में शंका की गई थी, उस संबंध में यह पता चला कि जिनहर्षसूरि शिष्य दयारत्न ने सं० १६२६ में आचारांग की प्रतिलिपि लिखी थी और हर्षकुशल के शिष्य गुणरत्न के गुरुभाई दयारत्न ने एक प्रति सं० १६९२ में लिखी। क्या ये दोनों दयारत्न एक ही व्यक्ति हो सकते हैं।[1]

दयाशील—आप अंचलगच्छीय विजयशील के शिष्य थे। इन्होंने सीलबत्तीसी, इलाची केवली रास, चन्द्रसेन चंद्रद्योत नाटकीया प्रबंध आदि रचनायें मरुगुर्जर में लिखी जिनका परिचय आगे प्रस्तुत है। 'सीलबत्तीसी' की रचना नवानगर में सं० १६६४ में हुई। इसके कुल ३२ छन्दों में शील की महिमा बखानी गई है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं—

सील बत्तीसी वरणवुं सु मात करेसु प्रमाण,
बेधक जन मुखि उच्चरइ सु सुरता करइ बखाण।
सुरता करइं बखाण भाण जिम तेज विराजइ,
सीलवंत नर जिके तास, त्रिभोवन जसच्छाजइ।
सुरनर करइ प्रशंस वंस थिर थावन लील,
दयाशील बम्हइ परनारि नेह तजि पालु सील।[2]

अन्तिम संवत सार सिंगार काय वली वेद संवच्छर,
नूतनपुर वर मांहि सांति सानिधि लही वरतर।
सीलबत्तीसी रंगि अंगि ऊलट धरी गाई,
धर्मवंत नरनारि तास मनि खरी सुहाई।

'इलाचीकेवलीरास' सं० १६६६ कार्तिक वदी ५ सोम, को भुज में पूर्ण हुई। इसमें इलाची केवली की कथा दी गई है। रचनाकाल और गुरु परंपरा के लिए निम्नाङ्कित पंक्तियां देखिये—

अंचल गच्छि श्री धर्म्ममूर्ति सूरि सूरिसिरोमणि दीपइ,
तस पाटि श्री कल्याणसागर सूरि मयण महाभड जीपइ रे।
संवत षट रस वाण (काय) निशाकर, कातिक वदि सोमवारि,
पांचमि जोडि करी अे रूडी, श्री भुज नगर मझारि रे।
वाचक वंश सुहाकर मुणिवर, श्री विजयशील मुणिंद,

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २५९ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० ९०३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तास सीस दयाशील पयंपइ वंदु इला मुनि चंद रे।
इलाची मुनि ना गुण गांता, पातिक दूरि पलाइ,
श्री चिंतामणि पास प्रसादिइं ऋद्धि वृद्धि थिर थाइ रे।[1]

इसका प्रथम छन्द इस प्रकार है—

पणमवि सिरि जिणवर वंछित सुरनर सामी,
वर्द्धमान विबुधपति पायं नमइ सिर नामी।

चंद्रसेन चंद्रद्योत नाटकीय प्रबंध –सं० १६६७ भीनमाल में यह कृति रची गई। काव्यरूप की दृष्टि से यह नूतन प्रयोग है। नाना प्रकार की ढालों और राग-रागिनियों से युक्त होने के कारण यह रचना नाटकीय आकर्षण उत्पन्न करती है। अन्त में कवि ने रचनाकाल इस प्रकार दिया है—

संवत मुनिरस सोल सोहइ, भीनमाल नगर मझारि,
चंद्रद्योत चंद्र नरिंद्र चरितं, रचितं सांति अधारि।[2]

यह कृति चंद्रद्योत के चरित्र पर आधारित है। इसकी भाषा सरल प्रवाहयुक्त मरुगुर्जर है, यथा——

मेरी सज्जनी मुनि गुण गावरी,
चंद्रद्योत चंद्र मुणिंद मेरा नामइ हुइ आणंद,
संसार जलनिधि जलह तारण, मुनिवर नाव समान, मेरी०।[3]

दयासागर—खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा के आप साहित्यकार थे। श्री अगरचन्द नाहटा ने आपकी दो रचनाओं 'मदननरिन्द्र चरित्र' सं० १६१९ जालौर और चित्रलेखा चौपइ का उल्लेख किया है, किन्तु इनका विवरण-उद्धरण नहीं दिया है।[4]

दयासागर या दामोदर –आप अंचलगच्छीय कल्याणसागरसूरि > भीमरत्न > उदयसागर के शिष्य थे। इन्होंने भी मदनकुमार राजर्षि रास अथवा चरित्र लिखा है। इसका रचनाकाल सं० १६६९ आसो शुक्ल १० गुरु, जालौर बताया गया है। पिप्पलक शाखा वाले दया-

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९०४-५ (प्रथम संस्करण)
२. वही
३. डॉ० हरीश—गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी को देन पृ० १२१-१२२
४. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागर की मदननरिंद्र चौपाई का रचनाकाल सं० १६१९ स्थान जालौर कहा गया है। काफी संभावना है कि ये रचनायें एक ही हों और सं० १६६९ के बदले भूल से १६१९ छप गया हो। इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—(मदननरिंद्र चौपाई)

सोलह सय उगणोत्तरइ पुर जालोर मझारि,
आसु सुदि दशमइं कियउ, कथाबंध गुरुवारि।[1]

इसमें भी संयम-शील का उपदेश दिया गया है, यथा—

मदन महीपति चरित विचारि, बोल्यउं शील तणइं अधिकारि,
जे नरशील सदा मनि धरइं, शिवरमणी जे निश्चइ वरइं।

गुरुपरंपरा – श्री अंचलगच्छ उदधि समान, संघरयण केरउ अहिठाण।
उदयउतास बधारण चंद, श्रीधर्म्ममूर्ति सूरीश मुणिंद।
आचारिज श्रीगुरु कल्याणसागर सम गुणनांण,
तासपक्षि महिमाभंडार, पंडित भीमरतन अणगार।
तास विनेय विनयगुणगेह, उदयसमुद्र सुगुरु ससनेह,
ताससीस आणंदिइ घणइं, दयासागर वाचक
(पाठान्तर, मुनि दामोदर) इम भणइ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इनका नाम दयासागर या दामोदर दोनों है। ये अंचलगच्छ से संबद्ध हैं। हो सकता है कि इनकी रचना मदनकुमार राजर्षि चरित्र पहले वाले दयासागर की रचना 'मदन-चौपाई' से भिन्न हो। मदनकुमार रास की प्रशस्ति में मदनशतक का उल्लेख है जो इनकी १०१ दोहे की रचित हिन्दी रचना है। यह एक प्रेमकथा है।[2] लेखक ने इसमें मदनशतक का भी उल्लेख किया है।

मदनशतक ना दूहडा, अेकोत्तर सयसार।
ते पणि भइं पहिलां कीया, जाणइ चतुर विचार।

मदनशतक की सरस प्रेमकथा का मदनराजर्षि चरित्र में विस्तार

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४०३-४०५, भाग ३ पृ० ९०५-९०८ (प्रथम संस्करण)
भाग ३ पृ० १०० (द्वितीय संस्करण)
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९०;
डॉ० हरीश—गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी कविता की देन पृ० १२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया है। कवि ने यह रचना अपने गुरुभाई के आग्रह पर की थी, यथा—

गुरुभाई लहुडउ रिषिदेव, विनयवंत सारइ नितसेव,
आदरि तेह तणइ अे थइ, मदनराज ऋषि नी चउपइ।[1]

इसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

आदि जिणेसर अतुल बल, शांतिनाथ सुखकार,
नेमिपासु प्रणमूं सदा, वीर विनेय भंडार।

सुरपति कुमार चौपाई (सं० १६६५ बीजा भाद्र शु० ६ सोमवार) पद्मावतीपुर (पुष्कर के पास) में लिखी गई। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

प्रणमुं स्वामी शांतिजिन, मनवंछित दातार,
सुरपति जसु सेवा करइ, दरसण हरष अपार।

यह रचना दान के विषय में लिखी गई है, यथा—

सुरपति नामइ नृपकुमर, जिण जगि भोग महंत,
बिलस्या दान प्रभाव थी, विरचिसु तास वृतंत।[2]

इसमें भी वही गुरुपरंपरा दी गई है जो मदनकुमार रास में थी।

रचनाकाल—वत्सर विक्रमराय थी, सोल सहे पइसठि,
भाद्रवि बीजा श्वेत पखिय, सोमवार तिहां छठि।

स्थान—शिवशासन तीरथ बडुं, पुष्कर नामि प्रसिद्ध,
तसु पासइं पदमावती, फणि कणि रिध समृद्ध।

लेखक और रचना का नाम—

तास सीस वाचकपद धरइ, दयासागर गणि अेम उच्चरइं,
सुरपतिकुमार तणी चउपाइ, पदमावतीपुर मांहि थइ।

दामोदर और दयासागर को पहले अलग-अलग माना गया था किन्तु बाद में दोनों को एक मान लिया गया। इसलिए इतना तो निश्चित है कि दामोदर और दयासागर एक ही हैं किन्तु पिप्पलक शाखा के दयासागर और आंचलगच्छीय दयासागर दो हैं या एक? यह निश्चय नहीं हो पाया। इस संबंध में शोध अपेक्षित है।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९९ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, पृ० ९७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दल्लभट्ट—ये पार्श्वचंद्र गच्छ के हीरराज के शिष्य पुंजराज के अनुयायी भक्त थे। आपने सं० १६९९ फागुन शुदी में 'पूंज मुनि नो रास' (२१ कड़ी) लिखा। इसमें पुंजराज का गुणानुवाद किया गया है। यह रचना जैन राससंग्रह भाग १ पृ० १६१-६३ पर प्रकाशित है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत नवाणुआं फागुण सुदि रे, मोटो मान जगीश,
नवहजार बाणुं आगला रे, वधे नरनारी आसीश।
ऋषि हिरराज सुपसावले रे, ऋषि श्री पुंजराज गुणसार रे।
दल्लभट्ट सुख संपति लहे रे, भाणजो सहू नरनार रे।[1]

इस रास की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सरसति सामिणि विनवुं, प्रणमी सद्गुरु पाय लाल रे,
क्षमासमण गुणआगलो, अे गिरुओ ऋषि रायलाल रे।
पुंजराज गुण गाइअे.........

दर्शनविजय या दर्शनमुनि—आप हीरविजयसूरि की परंपरा में मुनिविजय के शिष्य थे। आपकी प्रथम रचना 'चंदायणोरास' सं० १६०१ आसो सुदी १० को पूर्ण हुई। श्री मो० द० देसाई ने इसे दर्शनमुनि की रचना मानकर इनका विवरण अलग दिया था।[2] लेकिन जैन गुर्जर कविओ के द्वितीय संस्करण के संपादक का मत है कि दर्शनमुनि और दर्शनविजय एक ही व्यक्ति हैं। दर्शनविजय की तीन अन्य रचनायें—'नेमिजिनस्तवन', 'प्रेमलालक्षीरास' और 'विजयतिलक सूरि रास' उपलब्ध हैं। इनमें से प्रथम रचना के कर्त्ता को श्री देसाई ने हीरविजय>मुनिविजय शिष्य बताकर एक भिन्न कवि कहा था,[3] तथा अन्तिम दो के कर्त्ता दर्शनविजय को राजविमल>मुनिविजय शिष्य बताकर एक अन्यकवि बताया था किन्तु नवीन संस्करण के संपादक की स्पष्ट राय है कि ये तीनों व्यक्ति एक ही दर्शनविजय हैं[4] अतः इन चारों कृतियों का लेखक एक ही दर्शनविजय को स्वीकार करना उचित लगता है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३३७ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० १०९० (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग १ पृ० १८२ (प्रथम संस्करण)
३. वही, भाग १ पृ० ५४९-५३ तथा भाग ३ ९०१ तथा १०३५-३९
४. वही, भाग ३ पृ० ८६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना परिचय—नेमिजिनस्तवन (रागमाला) की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिये —

सकल मनोरथ पूरवइ, प्रणमी गुरु थुणस्यु हवइ,
नवनवइ रागि जिणेसरु अे।

यह रचना सं० १६६४ मागसर पौष २, सूरत में लिखी गई और कुल ५९ कड़ी की है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तपगछराज हीरविजय सूरि, तास सीस मुनिवरो,
मुनि विजयवाचक सीस दर्शनविजय कहइ श्री जिनवरो।
मि स्तव्यो भावि वेद रस चंद्र मित संवच्छरो,
सहइ मासि द्वितीया राजयोगे सूर्यपुर बंदिर वरो।५९।

प्रेमलालच्छी रास अथवा चंदचरित (९ अधिकार ५३ ढाल सं० १६८९ कार्तिक शुक्ल १० बुरहानपुर) यह रचना आनंद काव्य महोदधि मौक्तिक १ में प्रकाशित है। इसमें चंदनरेश, जो चंदमुनि हो गये थे, के शील का वर्णन किया गया है। इसका आदि इस प्रकार है--

श्री सुखदायक जिनवरु नामि परमाणंद,
प्रणमी गौतम गणधरु श्री वसुभूति नंद।

गुरु परंपरा–श्री विजयाणंद सूरीसरु तपगछपति सुप्रसादि,
वाचक मुनिविजय गुरु, गुण समरुं आल्हादि।

शील का माहात्म्य—शील प्रभावि सुख घणु, शील सुमतिदातार,
शीलि शोभा अति घणी, शील सदानंद नार।[1]

रचनाकाल—संवत सोल ब्यासी कार्तिक सुदि दसमी बार
गुरु पुष्यते दिवसमेव,
श्री बुर्हानपुर नयरवरमंडणो जहाँ मनमोहन पास राजइ।

इसमें गुरु परम्परा का उल्लेख करते समय कवि ने सर्व प्रथम हीरविजय और अकबर के मिलन प्रसंग का उल्लेख है। विजयसेन सूरि, विजयतिलकसूरि, विजयाणंदसूरि के शिष्य मुनि विजय को कवि ने अपना गुरु बताया है। इससे इनकी गुरु परंपरा का स्पष्ट निर्देश मिलता है। विजयतिलकसूरिरास में रचनाकाल और गुरु परम्परा को इस प्रकार बताया गया है (दूसरे और अन्तिम अधिकार का रचना समय यह है)—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत ससि रस निधि मुनि वरसिं पोस सुदि रविकर योगे जी,
रास रच्यो अे आदर करीने शास्त्र तणे उपयोगे जी।
वीसल नयर केसव सा नंदन धिन्न सोमाइ माय जी।
श्री राजविमल वाचक सीस अनोपम मुनि विजय उवझाय जी।[1]

इसलिए शंका उत्पन्न होती है कि एक रचना में कवि ने अपने प्रगुरु का नाम विजयाणंद और दूसरी जगह राजविमल बताया है, पर दोनों रचनाओं में गुरु एक ही मुनिविजय हैं। अतः ये दोनों कवि एक ही व्यक्ति हैं। यह रचना ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ४ में प्रकाशित है। इसमें विजय तिलक सूरि का विवरण दिया गया है। इस कवि ने छन्द, लय और तुक का अच्छा प्रयोग किया है।

यथा—तास प्रसादें अे विस्तरयो, महि मंडलि अे रास जी,
जे गीतारथ जगहितकारी, तेह तणो हूँ दास जी।

आरम्भ—उदय अधिक महिमा घणो, मनमोहन पास,
संघ सयल आणंदकरु, सुख संपद बहुवास।

अन्त—जिहाँ लगे अे शासन श्री जिननुं, जिन आणाना धारी जी,
तिहाँ लगे अे भणयो सुणयो रास विजय जयकारी जी।

यह रास दो अधिकारों में विभक्त है। पहला अधिकार सं० १६७९ में लिखा गया, यथा—

तास सीस पभणइ बहुभगति दर्शनविजय जयकारी जी,
ससि रस मुनि निधि वरसि रचीओ रास भलो सुखकारी जी।

दूसरे अधिकार में विजयाणंद जी का वृत्तान्त दिया गया है। रासनायक विजयतिलकसूरि विजयसेनसूरि के पट्टधर थे और विजयसेन हीरविजयसूरि के पट्टधर थे। धर्मसागर के शिष्यों ने विजयदेव सूरि को मिलाकर गच्छनायक के विरुद्ध लोगों को भड़काया। दर्शनविजय ने सागर पक्ष वालों से वाद-विवाद किया। इस विवाद के चलते पं० रामविजय को आचार्य पदवी मिली और नाम पड़ा विजयतिलकसूरि। इसी वृत्तान्त को इस अधिकार में वर्णित किया गया है। भानुचन्द्र ने भी जहाँगीर से विजयतिलक के पक्ष में सिफारिस की। बादशाह ने दोनों पक्षों को बुलवाया और विजयदेव सूरि को हीरविजय सूरि के आदेशानुसार चलने को कहा। विजयतिलक ने सं० १६७६ में

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने पट्ट पर कमलविजय को बैठाकर उनका नाम विजयाणंद रखा और स्वयं स्वर्गस्थ हुए। इसी घटनाक्रम के साथ पहला अधिकार समाप्त हुआ है। यह १५३७ कड़ी का है। दूसरा अधिकार पहले की अपेक्षा छोटा २२२ कड़ी का है। इसमें विजयदेव और विजयाणंद की मैत्री, विजयतिलक की साधुता और चरित्र, शीलगुण, विहार, प्रवचन आदि का विवरण है। यह रास साम्प्रदायिक इतिहास के इस महत्वपूर्ण पक्ष पर अच्छा प्रकाश डालता है। इसमें विजय पक्ष का समर्थन किया गया है।[1]

दानविजय—आप खरतरगच्छ के वाचक धर्मसुन्दर के शिष्य थे। श्री देसाई ने इनका नाम दानविनय लिखा है।[2] श्री अगरचन्द नाहटा ने भी दानविनय ही नाम दिया है।[3] किन्तु मूल पाठ में नाम दानविजय है जो 'नंदिषेण चौपाई' की निम्नाङ्कित पंक्तियों से स्पष्ट होता है—

संवत सोल पइसठा वरसइ, नगर नागोर कीयउ मन हरसइ,
श्री धर्मसुन्दर वाचक सीस, दानविजय पभणइ सुजगीस।
श्री जिनचन्द सुरीसर राजइ, अेह सम्बन्ध भण्यउ हितकाजइ,
श्री जिनकुशलसूरि सुपसायइ, भणतां गुणतां नवनिध थायइ।[4]

श्री दानविजय (दान विनय) की यह रचना ८६ गाथा की है और सं० १६६५ नागौर में लिखी गई है। इसकी प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में है। इनकी अन्य दो रचनायें—नेमिनाथ रास और अष्टापदस्तवन भी प्राप्त हैं। नेमिनाथ रास १३४ गाथा की विस्तृत और सरस रचना है। आप अच्छे गद्य लेखक भी थे। आपने 'उवसर्ग हर स्तोत्र' पर बालावबोध लिखा है।

दुर्गादास--आप उत्तरार्धगच्छीय सरवर मुनि के प्रशिष्य और अर्जुनमुनि के शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का पता चलता है—पहली खंधककुमार सूरि चौपाई (६३ कड़ी) जो सं० १६३५ भाद्र वदी ५ लाहौर में रची गई। दूसरी 'त्रिषष्टिशालाकास्तवन' अपेक्षाकृत

१. ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ४ पृ० ७१
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९०२ (प्रथम संस्करण)
३. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८४
४. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोटी २२ कड़ी की रचना कसूरकोट में लिखी गई थी। कसूरकोट लाहौर से ४७ मील दूर दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यद्यपि इन दोनों रचनाओं का उल्लेख श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अलग-अलग स्थानों पर किया है पर रचना स्थान की समीपता, रचनाकार का नाम ऐक्य यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि दोनों कृतियों का कर्त्ता एक ही व्यक्ति दुर्गादास था। कवि ने खंधककुमारचौपइ में गुरु परम्परा इस प्रकार लिखी है—

उत्तराध गच्छ मंडण गुरु, सरवर नामि सुजाणो रे,
तासु सीस अर्ज्जन मुनी, महिम मंडलि जनु मानो रे।
तासु सीस दुर्ग्गदास गणी, लाहोर नयरि मुनि ध्यायारे,
संवत सोल सये पणतीसइ, भादो वदि पंचमि गाया रे।[1]

इसका आरम्भ इस प्रकार किया गया है—

मुनि सुव्रत जिन वीसमउ पय प्रणमउं जिनचन्द,
खंधकसूरि शिषह तणी, चरीय भणउ आनंद।

दूसरी कृति 'त्रिषष्टिशलाका स्तवन' का आदि, अन्त इस प्रकार है—

आदि— वंदी जिण चउवीस्स अे चक्की वर बार जगीस्स अे,
नव नव वल वसुदेव अे पडिसतू नव वलिदेव अे।

अन्त—सुरइंद चंद्दा वेर्वविदा वामकामनिनासणो,
दालिद भं-मोह गंजण, वामकाम विहंडणो।
सुभाव गभीयां दुरगदासि ढविया कसूरकोटहि सुहकरो।[2]

लाहौर में रहने के कारण पंजाबी द्वित्व की प्रवृत्ति के चलते अर्ज्जन, दुगदर्गादास, चउबीस्स, जगीस्स आदि एक रूप दिखाई अवश्य देते हैं पर मूल भाषा शैली मरुगुर्जर ही है और प्रमाणित करती है कि जैन साधु एवं साहित्यकार दूर-दराज के स्थानों में भिन्न-भिन्न काल में रहते हुए भी एक विशेष मिश्र शैली का प्रयोग करते थे, जिसे मरुगुर्जर नाम दिया गया है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७४० (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १६३ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० ३६५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देद —(जैनेतर कवि) आपकी दो रचनायें मरुगुर्जर में प्राप्त हैं। ये रचनायें सं० १७०१ से पूर्व अर्थात् १७वीं शताब्दी की हैं। ये रचनायें छोटी हैं पहली का नाम 'कवीरापर्व' और दूसरी का 'अभिमन्यु नुं ओझणं' है। दोनों रचनायें महाभारत की कथा पर आधारित हैं। खाण्डवबनदहन के समय से ही कवीरा के मन में पाण्डवों के प्रति द्वेष सुलग रहा था। उसने बनवास के समय उसका बदला लेना चाहा, किन्तु भीम ने उस दानव का वध करके सबकी रक्षा कर ली। इसी प्रसंग का वर्णन कवीरा पर्व में कवि ने किया है। माधवदास कवि ने महाभारत की रचना के ७६वें से ७८वें छन्द में इस प्रसंग का वर्णन किया है। इस रचना के प्रारम्भ में गौरी-गणेश की वंदना, तत्पश्चात् शारदा की प्रार्थना है। उसके बाद कवि लिखता है—

पंच पंडवं बनमांहइ वासइ, कवीरु परवत आवइ,
वहु वयर आगइ पांडव बननुं, वे मन माहइ सालइ।[1]

जब भीम राक्षस का वध करके सबको बचा लेते हैं तो अंत में कवि कहता है—

भीम तणा बंधव सवइ मलीआ, कपट कबीरो सीजइ,
देद भणइ रे स्वामी माहरा, हवइ अमनइ कृपा लीजइ।
अेकमना अे कथा सांभलइ, तीर्थदान फल अेह,
यंत्र मंत्र बीष उतरइ, बीभ पातिग नासइ देह।१४६।

यह संभवतः १४६ कड़ी की ही रचना है। इसकी प्रति सं० १७०१ की लिखित प्राप्त है अतः यह अवश्य उससे पूर्व की कृति होगी। अभिमन्युनुं ओझण'–कवि महाभारत का बड़ा प्रशंसक प्रतीत होता है। वह लिखता है कि जो पुण्य काशी, प्रयाग, द्वारिका, गंगा आदि तीर्थ सेवन या सूर्य, चन्द्र पूजन से या चंद्रायण आदिव्रत से या दान-पुण्य, शील-तप से होता है वह पुण्य महाभारत सुनने से होता है। इस रचना पर सं० १५५० के आसपास लिखित देल्ह कवि कृत अभिमन्यु ओंझणु' का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

प्रारम्भ—गवरीनंदन प्रणमूं पाये, अेहनी कृपाये ग्रंथ वंधाये,
सीद्ध बुद्ध हीये आती घणी, अखील वाणीअ वरणतणी।

× × ×

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० २१६२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मानीं बेटी सरस्वती, गुरु वचन चाले गजगती,
कलस कुंदल वेणा साथ, पुस्तक षठ जामणं हाथ।[1]

इसमें कवि ने देल्ह की रचना के कुछ अंश का विस्तार किया है। कथा मनोरम है किन्तु कविकर्म शिथिल है। इसकी अन्तिम पंक्तियां उदाहरणार्थ उद्धृत हैं :—

जो तू आवे सामो अणी, तो मानु त्रिभुवनद्धणी।
कुड रमें ने रषि माम, बाहर काट पोचाडु हाम।
अे पूजावत सामी बाथ, तो तो जाण द्वारकानो नाथ
जीत्यो झगडो कीम हरीये, गोले मरे तेने वीषं नवी मारीये[2]

देवकमल—खरतरगच्छीय साधुकीर्ति की परंपरा में आप दयाकलश के शिष्य थे। साधुकीर्ति को सं० १६३२ में जिनचन्द्र सूरि ने उपाध्याय पद दिया था और आपने इससे पूर्व ही सं० १६२५ में तपागच्छवादियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। साधुकीर्ति ने सं० १६४६ में जालौर में शरीरत्याग किया था। इनके जीवनक्रम पर आधारित अनेक शिष्यों और प्रसंशकों ने कई रचनायें लिखी हैं। देवकमल का भी एक गीत प्राप्त है जो मात्र ४ कड़ी का है। यह ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में श्री साधुकीर्ति 'जयपताका गीतम्' के अन्तर्गत तीसरी रचना 'गहूली' के नाम से संकलित है। गीत राग आसावरी में आबद्ध है। इसका आदि और अंत दिया जा रहा है—

आदि—वाणि रसाल अमृत रससारिखी, मोह्या भवियण लोई जी।
सूत्र सिद्धंत अर्थ सूधा कहइ, सुणतां सवि सुख होई जी।१।
अंत—दरसणि नवनिधि सुख संपति मिलइ दयाकलश गुरु सीसो रे,
देवकमल मुनि कर जोड़ी भणइ, पुरवउ मनह जगीसो रे।[3]

देवगुप्तसूरिशिष्य (सिद्धि सूरि) आप उपकेशगच्छ की बिंबदणीक शाखा के विद्वान् होंगे। देवगुप्त सूरि के अनेक प्रतिमा लेख १६वीं शताब्दी के अंत के लिखे उपलब्ध हैं, अतः आपके शिष्य सिद्धिसूरि का समय १७वीं शताब्दी का प्रारम्भिक चरण होगा। आपकी

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० २१६४ (प्रथम संस्करण)
२. वही
३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—पृ० १३७-१३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना का नाम है—अमरदत्त मित्रानंद रास। इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा है—

> कुंण संवत्सर केहे मास, रच्यो रास ते कहुं विमास।
> संवत सोल छिडोत्तरा जांण शाके चौद बहुत्तरि वषांण।
> वदि वैशाख चौथि तिथि सार, मूल नक्षत्र निर्मल रविवार।
> तेणे दिन निपायो रास, सांभलता सवि पुहअे आस।

अर्थात् यह रचना सं० १६०६ वैशाख वदी ४ रविवार को हुई। इसमें मित्रानंद के चरित्र के माध्यम से कर्मफल का प्रभाव दर्शाया गया है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं—

> पयपंकज प्रणमी करी भले भावे भारती नमेवीय,
> सहिगुरु चरणे सिरनमि अेकचित्ते कविराय सेवीय।
> कर्मफला फल जाणवा मित्रानंद चरित्र,
> बोलिसि बहु बुद्धि करी सुणयो सहु इकचित्त।[1]

इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार है :—

> मेरु महीधर महीअलिसार, जिहां प्रतपि दिनकर संसारि,
> तां अे रास सदा सुखकार, जयु जयु श्री संघ मझारि।[2]

देवचंद—तपागच्छीय भानुचंद के शिष्य थे। ये भानुचन्द सकलचंद की परंपरा में सूरचंद्र के शिष्य थे और अकबर के दरबार में प्रतिष्ठित जैन विद्वान् के रूप में रहते थे। देवचंद के पिता अहिम्मनगर के अंबाइया गोत्रीय ओसवाल वैश्य रिंडोशाह थे। इनकी माता का नाम वरबाइ था। बचपन में इन्हें गोपाल नाम से पुकारा जाता था। नैवें वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपने भाई और माता के साथ पं० रंगचंद्र के पास दीक्षा ली। इनका दीक्षा नाम देवचंद और इनके भाई का विवेकचंद रखा गया। सं० १६६५ में विजयसेनसूरि ने इन्हें पंडित पद प्रदान किया। इन्होंने राजस्थान और गुजरात के विभिन्न स्थानों में सघन विहार किया और संयम, व्रत-नियम का पालन किया। सं० १६९७ में जब वे सरोतरा में चौमासा कर रहे थे, उसी समय कुछ अस्वस्थ हुये और आठ दिन के अनशन के उपरान्त वैशाख शुक्ल २ को शरीर त्याग किया।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २००-२०१ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० ६७३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनायें—आपने सं० १६९२ से पूर्व 'नवतत्व चौपाई' लिखी और सं० १६९५ में आपने 'शत्रुंजयतीर्थपरिपाटी' की रचना की जो प्राचीन तीर्थमालासंग्रह भाग १ के पृ० ३८ से ४७ पर प्रकाशित है। आपकी तीसरी रचना 'पृथ्वीचंद्रकुमाररास' (१७४ कड़ी) १६९६ फाल्गुन शुक्ल ११ को साबली में पूर्ण हुई। इन तीन प्रमुख कृतियों के अतिरिक्त आपने कई स्फुट रचनायें भी की हैं जैसे महावीर २७ भवस्तवन पार्श्व-स्तव, शंखेश्वरस्तवन, पोसीनापार्श्वस्तवन, नेमिस्तवन, आदिनाथस्तवन आदि। ये स्फुट रचनायें भक्तिभावपूर्ण स्तवन हैं जिनपर भक्तिकाव्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इन्होंने संस्कृत में 'सौभाग्य-पंचमी स्तुति' की रचना की है। इससे विदित होता है कि ये राज-स्थानी, हिन्दी आदि के साथ ही संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे।

नवतत्वचौपइ की अन्तिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं जिनसे इनकी गुरु-परंपरा आदि पर प्रकाश पडता है—

सुविहित साधु तणो शृंगार, श्री विजयदेव सूरिगणधार।
तास पाटे प्रगट्यो सूरिसिंह विजयसिंह सूरि राखी लीह।
गुरु श्री सकलचन्द उवझाय, सूरचंद पंडित कविराय।
भानुचंद वाचक जगचंद, तास सीस कहे देवचंद।
अे चोपइ रचीकर जोड़, कविता कोइ म देजो खोड।
अधिको ओछो सोंधी जोडि, भणंता गुणंता संपति कोड।[1]

शत्रुञ्जयतीर्थपरिपाटी (सं० १६९५) प्रकाशित है; इसका प्रारम्भ निम्नपंक्तियों से हुआ है–

सकल सभा रंजन कला, दियो सरसति वरदानो जी।
श्री विमलाचल स्तवन भणुं, पामी श्री गुरु मानो जी।
संवत सोल पंचाणुये, इडर रही चौमासो जी,
यात्रा करवा संचया, शुभ दिवस शुभ मासो जी।

अंतिम कलस—गुरु श्री हीरविजय सूरि पसायें श्री भानुचंद उवझाया,
कासमीर अकबर सा पासइ शेत्रुंजय दाण छुराया
तास सीस देवचंद कहें अे गिरगिरनो राया
भेटचो भावधरी अे तीरथ, मनवंछित सुखदाया,
आज मनवांछित सुख पाया।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २८८-२९० (द्वितीय संस्करण)
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वीचंद कुमार रास (सं० १६९६) आदि--

प्रणमुं भगति भगवति भारती, जे तूठी आपइं शुभमती ।
जस सेवइं सुरनर भूपती, जेह्नि नामइं सुखसंपती ।

शीलगुण का प्रभाव दिखाने के लिए पृथ्वीचंद कुमार का चरित्र दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत किया है, यथा—

सीलवंत मांहि जस लीह, सील पालवा हूया सीह,
ते तो पृथिवी चंद्र कुमार, गुणसागर पणि बीजे सार ।
सावली नगरि रही चोमासि, संवत सोल छन्नुइं उलासि,
फागुण सुदि अेकादशी धारि, वार कहुं ते हवइं विचारी ।'

इसकी अंतिम पंक्तियों में गुरुपरंपरा इस प्रकार कही गई है–

तपगछपति गुरु गोयम समान, विजयदेव सूरि युगह प्रधान,
तास पाटि प्रगट्यो जिम भाण, विजयसिंह सूरि गुणनो जाण ।
वाचक भानचंद नो सीस, देवचंद प्रणमें निसदीस ।१७४।[1]

जैन गुर्जर कविओ में पहले इनके नाम पर 'सुकोशल संझाय' भी श्री देसाई ने दिखाया था ।[2] लेकिन द्वितीय संस्करण के संपादक ने इस रचना को अन्य देवचंद की कृति बताया है जो गुरु परंपरा आदि की भिन्नता को देखते हुए उचित लगता है। उनका विवरण आगे दिया जा रहा है ।

देवचन्द (ii) तपागच्छीय विजयदान सूरि के शिष्य विद्यासागर के शिष्य थे । इन्होंने सुकोशल महाऋषि संझाय अथवा गीत (१३ कड़ी) की रचना सं० १६०२ में की थी । पहले इसे भी देसाई ने विद्यासागर की रचना बताया था (जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६४७) लेकिन फिर इसे देवचन्द की कृति बताया (वहीं पृ० ७३२ प्र० सं०) श्री देसाई को इसके कर्त्ता के संबंध में बराबर शंका बनी रही। वे जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०७२ पर देवचंद की और भाग ३ के खंड २, पृ० १५०२ विद्यासागर अथवा देवचन्द ? की रचना बताते हैं किन्तु

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २९० (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग १ पृ० ५७९-८१ और भाग ३ पृ० १०७०-७२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय संस्करण के संपादक श्री कोठारी का स्पष्ट मत है कि यह रचना विद्यासागर के शिष्य देवचंद की है।[1]

इसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

जंबूद्वीप मझारि, क्षेत्र भरत मांहि, नयरी अयोध्या जाणीइ अे,
तिहा श्री विजयनरिंद, दोइ सुत तेहना, विजयबाहु पुरंदरु अे,
विजयबाहु कुमार चालिउ घर थकी, इक दिन नाटापुर भणी अे,
परणी राजकुमारि, नाम मणोरमा, परणी वलीउ धार मणी अे।[2]

रचनाकाल और गुरुपरंपरा कवि ने स्वयं इस प्रकार बताई है—

कीरतिधर अभिराम, संयमपालीयइ, मुगति गया मनि समराइ अे।
श्री सुकोशल साधु, वलीय कीरतिधर, सेवकजन ने सुखकरु अे।
संवत सोल सइ (पाठा० सोल) दोय,
आसो मसवाडइ, थुणी आ दोइमुनि पुंगवा अे,
श्री विजयदान सूरिंद, श्रीविद्यासागर, सेवक देवचंद इम...।"

यह रचना पहले प्रथम देवचंद, जो भानुचंद के शिष्य थे, के नाम दर्शायी गई थी। काल क्रमानुसार ये ही प्रथम हैं और पहले का स्थान बाद में पड़ता है।

देवरत्न—खरतरगच्छ की जिनभद्रसूरि शाखा में देवकीर्ति नामक साधु आपके गुरु थे। इनकी गुरुपरंपरा इस प्रकार है : जिनभद्र>दयाकमल>शिवनंदन>देवकीर्ति। देवरत्न ने सं० १६९८ में शीलवती-चौपाई' की रचना बालसीसर नामक स्थान में कार्तिक माह में की।[3] कवि ने इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत सोल अठाणु काती समे रे, बालीसीस (सर) नयर मझारि,
सीलवती नी कीधी चोपइ रे, सीलतणे अधिकारी।

आगे गुरुपरम्परा के अन्तर्गत जिनराजसूरि से लेकर जिनभद्रसूरि शाखा के उपरोक्त गुरुओं का वर्णन किया गया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ११ (द्वितीय संस्करण)
२. वही
३. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तासु सीस लवलेसे उपदिशे रे, देवरतन कहे अेम,
खंड त्रीजे ने ढाल धन्यासीरी रे चढ़ी परिणामे तेम।
सतीय चरित्र संभालता भणता छवी रे हुइ आणंद रंगरोल,
देवरतन कहइ तेहने संपजइ रे, लखिमी तणा कल्लोल।[1]

यह रचना तीन खंडों में विभक्त है। इसमें शीलवती के माध्यम से शीलगुण का ही बखान किया गया है। इसकी भाषा सरल मरु-गुर्जर है। कवित्व सम्बन्धी कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं मिली।

देवराज—आप विजयगच्छ के मुनि पद्मसूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६६२ चैत्र शुक्ल ९ रविवार को 'हरिणी संवाद' नामक काव्य पूरा किया। इन्होंने सं० १६८९ से पूर्व ही अपनी दूसरी रचना 'सकोशलऋषिढाल' (६४ कड़ी) भी पूर्ण की थी। 'संकोशलऋषिढाल' का आदि—

सुहगुरु वयणे सांभली अे रे, हू ऊ मुझ आनंद,
गुण समरऊं हुं तेहना जी वंछइ रोहणि चंद।

अंत—वीरधवल ऋषि बाघणि बूझवी, आप्या अणसण सार,
अणसण पाली बेहुं सुरवर थया, लहसइं मोक्षद्वार ते धन्य।
नर चारित्र चोखु आदरी, वर्ज्जइं च्यारि कषाय,
सुरनर सारइं तेहनी सेवना, दिवराज प्रणमइ पाय।
ते धन्य दहाडा जइनइ वंदिसु।६४।[2]

इस रचना में गुरुपरंपरा नहीं है, लगता है श्री देसाई ने गच्छ-गुरुपरंपरा 'हरिणी संवाद' से लिखा है।[3]

देवशील—आप तपागच्छ के सौभाग्यहर्ष सूरि की परंपरा में प्रमोदशील के शिष्य थे। आपने अपनी रचना 'वेताल पंचवीसी रास' अथवा चौपाई अथवा प्रबंध में गुरुपरंपरा के अन्तर्गत सौभाग्यहर्ष के शिष्य सोमविमल सूरि उनके शिष्य लक्ष्मीभद्र उनके शिष्य उदयशील और उनके शिष्य चारित्रशील का उल्लेख किया है। चारित्रशील के शिष्य प्रमोदशील आपके गुरु थे। यह रास ८२२ कड़ी की विस्तृत

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३३५-३३६ (द्वितीय संस्करण) और वही, भाग १ पृ० ५८५ और भाग ३ पृ० १०८० (प्रथम संस्करण)

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८३ (द्वितीय संस्करण)

३. वही, भाग ३ पृ० ८९७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

रचना है। यह कृति सं० १६१९ के दूसरे श्रावण मास के कृष्णपक्ष की नवमी, रविवार को वडवागाम में लिखी गई थी। यह रचना १७वीं शताब्दी में हुई किन्तु इसकी भाषा शैली विमलप्रबंध और कान्हडदे प्रबंध की भाषाशैली से खूब मेल खाती है। कवि शामलभट्ट की 'महा पचीसी' का मूल इसमें व्यक्त है। कथासरित्सागर और वृहत्मंजरी आदि संस्कृत ग्रन्थों में वेतालपचीसी कथा का मूल प्राप्त होता है। इसका प्रारम्भिक छंद निम्नांकित है—

सरसती सामिणी पयनमी, मांगु उचित पसाय,
कासमीर मुख मंडणी, वांणी दिउ मुझ माय।

अन्त—प्रमोदशील पंडित गुरुराय, ते सहिगुरुना प्रणमी पाय;
करी चोपाइ नांम वेताल, पचवीसें अे कथा रसाल।

रचनाकाल—संवत सोल उंगणीसा वर्ष बीजे श्रावण शांमल पख्ख।
नुमि तणो दिन रविवार, नक्षत्र पुनर्वसु आव्यु सार।
वडवे गांमि रह्या चोमास, रचिउ वासुपूज्य नि पास,
चौपै कथा संबंध विनोद, सांभलताउपजे प्रमोद।[१]

कवि ने कुल छंद संख्या ८२३ बताई है पर श्री देसाई ने ८२२ बताया है; कवि कहता है—

दूहा गाहा बंध चोपाई, आठसिं नि त्रेविस जे हुई।

लेकिन श्री देसाई ने अंतिम छंद इस प्रकार बताया है—

करजोडी प्रणमु कविराय, सोधी अक्षर ठवज्यो ठाय,
जिहां लगे तारा रविचंद, कथा रहिज्यो जिहाँ तपें जिणंद।२२।[२]

यह रचना जगजीवनदास दयाल जी मोदी ने संशोधित करके छपाई है।

देवसागर—आंचलिक गच्छ के साधु थे, किन्तु गुरुपरम्परा अज्ञात है। इन्होंने 'कपिल केवली रास' की रचना सं० १६७४ श्रावण शुक्ल १३ जोवाष्टक में की। इस रचना का अन्य विवरण या उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका।[३]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ११४-११६ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग १ पृ० २२१-२२३ और भाग ३ पृ० ७०२ तथा १५०८ (प्रथम संस्करण)
३. वही, भाग ३ पृ० ९७१ (प्रथम संस्करण) एवं भाग ३ पृ० १८७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवीदास द्विज—संभवतः ये खरतरगच्छीय समयसुंदर उपाध्याय के शिष्य देवीदास से भिन्न थे। उन्होंने अपनी षडारक [६ आरा] महावीर स्तोत्र या स्तवन में तपागच्छीय विजयदान सूरि का सादर स्मरण किया है। इनकी यह रचना सं० १६११ आसो सुदि १५ शुक्र को राडहृद में लिखी गई। इसके अन्त की कुछ पंक्तियाँ इस संदर्भ में उद्धृत कर रहा हूँ—

इम हरष धरीनइं स्तवीउ वीर जिणंद,
राडबरपुरमंडण पाय प्रणमइ सुरिंद।
मइ पुन्यपसाइं पाम्या जिनवरराय,
मुझ पापपडल सवि दुःकृत दूरि जाइं।
श्री तपगच्छनायक श्री विजयदान सूरिंद,
तस पाय प्रणमीनइं सेवइ सुरनरवृंद॥

रचनाकाल—

संवत सोल इग्यारोत्तरा वरसह केरुं मान
आसो सुदि पुनिमि वार शुक्र शुभथान।

कवि ने इसमें अपने को विजयदान का शिष्य स्पष्ट रूप से नहीं कहा है किन्तु लगता है कि वह इनका भक्त शिष्य है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सकल जिणंद पाअे नमी, पांमी परमाणंद,
दोइकर जोडिवीनवुं चोवीसमा जिणचंद।

इसका अंतिम कलश देखिये—

इम थुणिउ जिनवर वीर सुखकर, राडवरपुरमंडणु
तस पाय पणमी सीस नामी, दुरिअ दुरगति खंडणु।
सेवइ सुरासुर थुणइ भासुर, गरभवास विभंजणो,
द्विज भणइ देवीदास सेवक, सकल संघ मंगलकरो।[1]

यह रचना चैत्यबंदन स्तुति स्तवनादि संग्रह भाग ३ में प्रकाशित है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४८-४९ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० २०२ तथा भाग ३ पृ० ६७५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवीदास—ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में समयसुंदरउपाध्यानां गीतम् शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित सात कड़ी का एक गीत उपलब्ध है जिसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

समयसुंदर बाणारस वंदिए सुललित वाणि वखाणो जी,
राय रंजण गीतारथ गुणनिलो जी, महिमा मेरु समाणो जी।

श्री समयसुन्दर ने मुसलमान शासक अकबर को प्रभावित कर जीवदया का जो महत्वपूर्ण कार्य किया था, इस गीत में उसकी प्रशस्ति की गई है। इसमें समयसुन्दर के सुयोग्य शिष्य वादी हर्षनन्दन का भी उल्लेख किया है, यथा —

हर्षनंदन सरखा शिष्य जेहने, वादी विरुद प्रसिद्धो जी,
समयसुंदर गुरु चिर प्रतपै सदा, द्ये देवीदास असीसो जी।[1]

इससे लगता है कि ये खरतरगच्छीय समयसुंदर उपाध्याय के शिष्य थे। ये अपना नाम केवल देवीदास लिखते थे। इनकी अन्य रचना का पता नहीं चल सका है। यह निश्चय है कि देवीदास द्विज और देवीदास दो भिन्न कवि थे।

देवेन्द्र—देवेन्द्र कवि विक्रम के पुत्र थे जो संस्कृत एवं हिन्दी के अच्छे कवि थे। विक्रम और गंगाधर दोनों भाई जैन ब्राह्मण थे। गुजरात के कुतलू खाँ के दरबार में जैनधर्म की प्रतिष्ठा बढ़ाने का श्रेय ब्रह्म शान्तिदास को था। इसी प्रभाव के कारण इन भाइयों के माता पिता ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था। देवेन्द्र ने महुआ नगर में 'यशोधरचरितरास' की रचना सं० १६३८ में किया। रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है—

संवत १६ आठत्रीसि आसो सुदी बीज शुक्रवार तो,
रास रच्यो नवरस भरयो महुआ नगर मझार तो।[2]

जैनग्रंथ सूची के संपादक डॉ०कस्तूरचन्द ने इसका अर्थ सं० १६८३ लगाया है जो उचित नहीं लगता। 'आठत्रीसि' अड़तीस होगा न कि

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—समय सुन्दर उपाध्याय गीतम्
२. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची ५ वां भाग पृ० २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरासी। श्री मो० द० देसाई ने इसका रचनाकाल सं० १६३९ से पूर्व बताया है जो ठीक लगता है।[1]

यह काव्य काफी बड़ा है और इसमें यशोधर के प्रसिद्ध चरित्र का वर्णन किया गया है। लगता है कि देवेन्द्र का संबंध दिगम्बर संप्रदाय से था क्योंकि देसाई इनकी कृति का नामोल्लेख मात्र करके रह गये हैं। उन्होंने न तो कवि के संबंध में और न कृति के संबंध में कुछ लिखा है। यद्यपि रचना बड़ी है और नवरस पूर्ण है पर इसका उल्लेख अगरचंद नाहटा ने भी नहीं किया है इससे अनुमान होता है कि इनका संबंध श्वेताम्बर सम्प्रदाय के खरतर या तपागच्छ से नहीं था, अपितु ये दिगम्बर परम्परा से सम्बद्ध थे।

देवेन्द्रकीर्ति —दिगम्बर साधु सकलकीर्ति की परम्परा में आप भुवनकीर्ति के शिष्य ज्ञानभूषण उनके शिष्य विनयकीर्ति उनके शिष्य शुभचंद्र उनके शिष्य सुमतिकीर्ति उनके शिष्य गुणकीर्ति उनके शिष्य वादीभूषण उनके शिष्य रामकीर्ति और उनके शिष्य पद्मनंदि के शिष्य थे। कवि ने अपनी रचना 'प्रद्युम्नकथा' का रचनाकाल नहीं बताया है। रामकीर्ति के उपदेश से सं० १६७६ में श्रीपाल कथा की रचना हुई थी। अतः उनके प्रशिष्य देवेन्द्रकीर्ति का समय १७वीं शताब्दी का अंतिम चरण ही होगा। इस ग्रंथ की कथा हरिवंश से ली गई है। प्रारम्भ में कवि ने जिनेश्वर एवं सरस्वती की वंदना के बाद गुरु परंपरा का उल्लेख किया है तथा सकलकीर्ति से लेकर पद्मनंदि तक का सादर स्मरण किया है; उसके बाद कवि लिखता है—

अे गछपती पदनमी कहूँ प्रद्युम्न कथा प्रबंध,
हरीवंश ग्रन्थ थी उद्धरी, जेह सुद्ध संबंध।[2]

कवि का नाम इन पंक्तियों में आया है—

साखि बलभद्रह करी कर्यो संखमणी अंगिकार,
देविंद्र कीरति कहीं पुण्यिं पामिसिं जयकार।

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७४८ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १७५ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग ३ पृ० ३४५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकल भव्य सुखकर सदा, नेमी जिनेश्वर राय,
यदुकुल कमल दिवसपती, प्रणमुं तेहना पाय।
जगदंबा जय सरस्वती, जिनवाणी तुझकाय,
अवीरल वाणी आपने, तुं तूठी मुझ माय।[1]

देवेन्द्रकीर्ति शिष्य—ये दिगम्बर परम्परा के देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने हिंदी में आदित्यवार कथा (गा० ९०) लिखी है जिसका रचनाकाल नहीं है किन्तु रचना १७वीं शताब्दी की ही है। इसमें आदित्यवार या रविव्रत का माहात्म्य बताया गया है। धरणेन्द्र और पद्मावती की कृपा भक्त को रविव्रत से प्राप्त होती है। वे उसकी सभी मनोकामनायें पूर्ण करते हैं। इसका प्रारम्भ देखिये—

प्रथम समिरि जिनवर चौविस, चौदह सै त्रेपन न्यु मुनीस,
समिरो सारद भक्ति अनंत, गुरु देवेन्द्रकीर्ति महंत।

अंत—रविव्रत तेज प्रताप गई लच्छि फिरि आई,
कृपा करी धरनेन्द्र और पद्मावती आई।
जहाँ गये तहां रिद्धिसिद्धि सब ठौर जु पाई,
मिलै कुटंब परिवार भले सज्जन मन भाअे।[2]

धनजी—अंचलगच्छ के विद्वान् मुनि दयासागर आप के गुरु थे। दयासागर या दामोदर का समय सं० १६६५ के आसपास निश्चित किया जा चुका है। अतः उनके शिष्य धनजी भी १७ वीं शती के अन्तिम चरण में वर्तमान रहे होंगे। 'सिद्धदत्तरास' नामक आपकी एक रचना प्राप्त है जिसका रचनाकाल निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। रचना में कवि ने गुरु परम्परा तो दी है किन्तु रचनाकाल नहीं है। गुरु परम्परा के अन्तर्गत कवि ने कल्याणसागर और दयासागर का उल्लेख किया है। रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

चउविह मंगल मनि धरउं, जे शिव सुख दातार,
वलि समरउ मुखमंडनी, सुरराणी सुखकार।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०९६ (प्रथम संस्करण)
२. वही
३. वही, भाग ३ पृ० ३४३-३४४ (द्वितीय संस्करण) एवं भाग ३ खण्ड २ पृ० १०९३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुमति लहि सहगुरु तणी, तीजा व्रत अधिकारि,
कहिस कथा सिद्धदत्त की, शास्त्र तणइ आधारि ।

गुरु स्मरण—सकल जीवनइं हितकरु सु श्री दयासागर नाम ते,
प्रसिद्ध सकल पुहवी विषइ सु, नाम विसउ परणाम ते ।
तास शिष्य इण परि कहइ सु, मुनि धनजी सुविचार ते,
पुण्य करइ प्राणी जिकेसु,
ते पामइं सुखसार तेह सुविचारि रे ।[1]

धन विजय—१७ वीं शताब्दी में दो धनविजय नामक लेखक मिलते हैं। प्रथम धनविजय विजयसेन सूरि के शिष्य थे, दूसरे तपागच्छीय कल्याण विजय उपाध्याय के शिष्य थे।

प्रथम धनविजय की एकमात्र कृति 'हरिषेण श्रीषेणरास' संवत् १६५० के आसपास की रचना है। रचना के संबंध में अन्य विवरण तथा उद्धरण नहीं प्राप्त है, किन्तु लेखक के सम्बन्ध में श्री मो० द० देसाई ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि सं० १६५४ वैशाख वदि १३ को अपने शिष्य गुणविनय के लिए अहमदाबाद में 'हैमव्याकरण बृहद्वृत्तिदीपिका' की रचना करने वाले धन विजय यही होंगे।[2] इससे लगता है कि धनविजय संस्कृत भाषा, व्याकरण और जैनागमों के बहुपठित विद्वान् थे।

धनविजय (ii)—मूलतः गद्यकार थे। इन्होंने सं० १७०० माघ शुक्ल पक्ष में खंभात में '६ कर्मग्रन्थ पर बालावबोध' लिखा। लगता है कि धनविजय प्रथम की तरह ये भी संस्कृत, प्राकृत आदि के विद्वान् थे। इन्होंने ग्रन्थ की प्रस्तावना संस्कृत में इस प्रकार दी है—

संयम शत मिति वर्षे माघे मासे सिताभिधे पक्षे,
श्री वीरगण मिति तिथौनगरे स्तंभनक पार्श्वयुत्ते,
श्री विजयदेव सूरीश्वर राज्ये प्राज्य पुण्य पुण्यतिथौ,
कर्मग्रन्थ व्याख्या 'लोकगिरा' किंतु लिखिते यं ।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३४३-४४ द्वि० सं०
२. वही, भाग १ पृ० २९६ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० २६६ (द्वितीय संस्करण)
३. वही भाग १ पृ० ६०३ और भाग ३ पृ० १६१२ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० ३४२ (द्वितीय संस्करण),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने अपनी मरुगुर्जर (हिन्दी) भाषाशैली को लोकगिरा कहा है अर्थात् वह जनता की वाणी थी। ये तपागच्छीय कल्याणविजय उपाध्याय के शिष्य थे। इनकी गद्यशैली का नमूना मिलने से तत्कालीन लोकप्रचलित भाषा शैली का पता चलता, लेकिन वह संभव न हो सका।

धनहर्ष या सुधनहर्ष—आप इस शताब्दी के अच्छे रचनाकार थे। तपागच्छीय हीरविजय सूरि की परंपरा में धर्मविजय के आप शिष्य थे। आपकी चार-पाँच रचनाओं का पता चला है, जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है, १. जंबूद्वीपविचार स्तवन (१३ ढाल सं० १६७७ मकर संक्रान्ति पोस वदी १३ रविवार), २. देवकुरुक्षेत्रविचार स्तवन, ३. तीर्थमाला सं० १६८१ बहुलमास सुदी ५ रविवार, ऊना और ४. 'मंदोदरीरावणसंवाद' मधुमास सुदी ३, रविवार, सेनापुर।

जंबूद्वीप विचार स्तवन आदि—

श्री जिन चउवीसइ प्रणमीनइ, वलिप्रणमीगुरु पाइ रे।
ब्रह्माणी नइ करीअ वीनती, मुझनइ तूसो माई रे।१।
जंबूद्वीप विचार लिखेस्यूं किंपि जाणवा कामि रे,
यथा प्रकाशो वीर जिणिंदि पूछइ गौतम स्वामि रे।

रचनाकाल—संवत सोल सत्योतरइ अे, संक्रान्ति मकरि रवि संचरइ अे,
पोस बहुल रवि तेरसि अे, वलि दश वागी मूलि वसि अे।

हीर जी की प्रशंसा के साथ कवि अकबर का इस प्रकार उल्लेख करता है—

श्री हुमाऊ सुत नृपोकव्वरो, तेणि जसकीर्ति जिन श्रवणि निसुणी,
दर्शनार्थं समाकारितो यो गुरु, निज समिये भवांभोधितरणी।[1]

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अंत—तेह गुरु हीरना शिष्य सोहाकरा, धर्मविजयाभिधा विबुधचंदा,
तास शिशु इम कहइ, क्षेत्र सुविचार अे,
भावि भणतां सुद्धनहर्षवृंदा।

'तीर्थमाला' का रचनाकाल अस्पष्ट है। यथा—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २०६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इशांवक वसु वलि कहुरे, दर्शनमाह्वनारि रे,
अे संवत्सर मइ कह्यो रे, पंडित तुम मनिधारि रे।

इसका अर्थ तो सचमुच कोई पंडित ही लगा सकता है। श्री मो० द० देसाई ने भी सं० १६८१ बताकर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है। पर मुझे लगता है कि इशअम्बक शिव के नेत्र अर्थात् '३' अर्थ लगाकर सं० १६८३ निश्चित किया जाना चाहिए। रचना का आरम्भ आर्या छंद में है, यथा—

नत्वा श्री विद्यागुरु रम्य श्री विजयसेन सूरींदान,
श्री धर्मविजयवुधान गुरुन गुरु निवधियास्माकान।

रचना उन्नतपुर (ऊना) में की गई, यथा—

उन्नतपुर संघाग्रहि रे, स्तवन किआं मति चंग रे,
सुघनहर्ष पंडित कहइ रे, भणत सुणत होइ रंग रे।[1]

अकबर-हीरविजय मिलन की चर्चा इसमें भी है जैसे—

श्री विजयदान सूरिंद पट्टोधर, सूरि गुरु हीरविजयाभिधाना,
नगर गांधार थी जेह तेडाविआ, साहि श्री अकबरि दत्तमाना।

अकबर ने हीरजी के प्रबोधन से प्रभावित होकर जीववध-वंदी का फरमान निकाला।

पर्व पज्जूसणि दिवस द्वादश लगिं कुणि कुण जीवनोवध न करेवा,
इस्यां फरमान करि सुगुरुनइ अप्पिआं,
नहि कृपा विणि किसी जन्म तरेवा।

कवि अपना नाम सुघनहर्ष और धनहर्ष दोनों लिखता है जैसा इसकी अंतिम पंक्तियों से प्रकट होता है—

तास पद युग्म अम्भोज मधुकर समो,
तास शिशु विबुध धनहर्ष भावइ।
पंच अे श्री जिनाधीश संस्कृति थकी,
प्रगट हुऊं पुण्य रस सुधा चाखइ।[2]

कुरुक्षेत्र विचार स्तवन:—

आगम सवि तुझ थी हुआ, वली अे वेद पुराण,
देखावइ सवि अर्थ तुं, सहस किरण जिम भाण।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २०७ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, पृ० २०८ और भाग १ पृ० ३१२-१३ और पृ० ५०४-५०६ तथा भाग ३ पृ० ९९०-९२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंत—हीरविजय सूरि शिष्य सोहाकर, धर्मविजय बुधचंद,
शिष्य तेहनो इणि परि जंपइ, धर्म थकी आणंद रे।
ऋद्धि वृद्धि, धनहर्ष महोदय, शिवपद होवइ धर्मि,
जनमन सकल समीहित पूगइ, वलि सुख होइ धर्मि।[1]

मन्दोदरी-रावण संवाद– इसके भी रचनाकाल सं० १६१२ पर श्री मो० द० देसाई ने प्रश्नवाचक चिह्न लगाया है। एक रचना १६१२ में और दूसरी सं० १६८१ में कुछ अस्वाभाविक भी लगती है। पंक्तियों का ठीक अर्थ न लग पाने के कारण ही यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। रचनाकाल सम्बन्धी पंक्ति इस प्रकार है—

महासेन वदना हिमकर हरि विक्रम नृपसंवत्सरि,
जेम मधु नांमि मास कहीजइ, तेथी गुह मुहमास लहीजइ।

नवीन संस्करण के संपादक ने इसका अर्थ इस प्रकार सुझाया है— महासेन वदन = ६, हिमकर = १, हरि १२–१४, इस प्रकार महासेन का अर्थ षडासन से लिया है फिर भी सं० १६१२ या १४ ठीक नहीं बैठता है। रचनास्थान इस प्रकार कहा गया है—

ऋषभदेव करइ अनुभावि, श्री सेनापुर नगरि आवि,
छंद रच्यो मइ अेणइ राणइ, चतुर होइ तें ततखिण जाणइ।

अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—हीर विजय सूरीसर केरो,
धर्मविजय बुध शिष्य भलेरो।
तस शिशु सुधनहर्ष इम कहवइ,
धर्म थकी सुखसंपदलहवइ।

आपकी रचनाओं से आपके संस्कृत भाषा का ज्ञान एवं पांडित्य प्रकट होता है। आपको अपने प्रगुरु हीरविजय सूरि और महान अकबर की भेंट का निरंतर ध्यान रहता था तथा प्रायः सभी रचनाओं में उसका उल्लेख किसी न किसी प्रकार अवश्य किया है। पण्डिताई प्रदर्शन के चक्कर में रचनाकाल को गूढ़ पहेली बनाकर तिथिज्ञान अनिश्चित कर दिया गया है, पर सामान्यतया रचनाओं की भाषा सरल और प्रसाद गुण सम्पन्न है।

धनविमल—आप तपागच्छीय विनयविमल के शिष्य थे। आपने विशालसोम सूरि के समय (सं० १६८७ से १६९६ के बीच) 'प्रज्ञापना

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २०८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

सूत्रबाला व बोध' की रचना की। ये मूलतः गद्यलेखक थे। इस कृति की प्रति अंबालाल संग्रह पालीताणा में उपलब्ध है। श्री देसाई ने इन्हें १८वीं शताब्दी में दिखाया था[1] किन्तु जैन गुर्जर कविओ के नवीन संस्करण के सम्पादक श्री जयन्त कोठारी ने इन्हें १७वीं शताब्दी का लेखक बताया है।[2] उसका कारण यह बताया है कि विशालसोम सूरि का समय १७वीं शताब्दी में था अतः ये १७वीं शती के लेखक हैं। संभवत प्रथम संस्करण में श्री देसाई ने भूल से इन्हें १८वीं शताब्दी में रख दिया होगा।

धर्मकीर्ति—आप खरतरगच्छीय जिनचंद्रसूरि के शिष्य धर्मनिधान उपाध्याय के शिष्य थे। गद्य और पद्य विधाओं में रचना करने की कुशलता आप में समानरूप से देखी जाती है। पद्य में नेमिरास, जिन-सागरसूरि रास, 'मृगांक पद्मावती चौपइ', 'वरकाणा यात्रा स्तवन' और चौवीस जिनबोल आदि आपकी उल्लेखनीय रचनायें हैं। गद्य में आपकी एक रचना 'साधुसमाचारी बालावबोध' प्राप्त है।[3] आपकी भाषा शैली और काव्यशिल्प का नमूना देने के लिए 'नेमिरास' की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। यह रास ७१ कड़ी का है और सं० १६७५ फाल्गुन शुक्ल ५ रविवार को लिखा गया है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

सरसति माता मुझ भणी, देजे अविरल बुद्धिविशाल कि,
नेमि तणा गुण चित्त धरी, पभणु रंगइ अतिहि रसाल कि।१।
सील सिरोमणि नेमि जी, गाइसु हुं जिणवर सुखकार कि,
सील सुजस जगि विस्तर्यउ, जादव कुलनउ अे सिणगार कि।[4]

इसकी रचनातिथि और अपनी गुरुपरंपरा अंतिम पंक्तियों में कवि ने इस प्रकार बताई है—

खरतरगछि गुणनिलउ, जुगप्रधान जिणचंद मुणिंद कि,
पाठक धरमनिधान जी, धरमकीरति मनि धरिअ आणंद कि,
सोलह सय पचहुत्तरइ फागुण सुदि पंचमि रविवार कि,
रास भण्यउ जिणवर तणउ, सयल संघनइ मंगलकार कि।[5]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० १६२५ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० ३२० (द्वितीय संस्करण)
३. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८२
४. वही, भाग ३ पृ० १८९ (द्वितीय संस्करण)
५. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जिनसागरसूरि रास' आपकी महत्वपूर्ण रचना है जिसमें जिनसागर सूरि के परिचय के साथ जिनराज सूरि और जिनसागर सूरि के मनोमालिन्य के फलस्वरूप भट्टारकीय और आचारजीय नामक दो शाखाओं में गच्छ के विभाजन का ऐतिहासिक विवरण भी दिया है। यह रास १०३ कड़ी का है और सं० १६८१ पौष वदी ५ को लिखा गया। यह 'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह' में प्रकाशित है। इसके प्रारम्भ में यह मंगलाचरण है—

श्री बंभणपुरनउ धणी पणमी पास जिणंद,
श्री जिनसागरसूरि ना गुण गावुं आणंदि।

इसमें जिनचन्द्र सूरि से लेकर धर्मनिधान तक की गुरुपरंपरा का उल्लेख है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है :—

तासु शिष्य अति रंग सु अे धर्मकीर्ति गुण गाय
संवत सोलह इकासिये, पोष वदि पंचमी भाय।
श्री जिनसागरसूरि नु अे रास रच्यौ सुखकंद,
सुणता नवनिधि संपजे अे, गावां परमाणंद।[1]

इस रास के अनुसार जिनसागर सूरि बीकानेर निवासी बोथरा गोत्रीय साह वच्छा की पत्नी मृगादे की कुक्षि से सं० १६५२ में जन्मे थे। बचपन का नाम चोला था और प्यार से लोग 'सामल' कहकर पुकारते थे। जिनसिंह सूरि के उपदेश से सं० १६६१ में दीक्षा ली। बड़ी दीक्षा राजनगर में जिनचंद्रसूरि से ली और सिद्धसेन नाम पड़ा। कविवर समयसुन्दर के प्रखर शिष्य वादी हर्षनंदन से विद्याध्ययन किया। जहाँगीर से मिलने जाते समय जिनसिंह सूरि का मेड़ते में अकस्मात् निधन होने पर सं० १६७४ में जिनसागर नाम से सिद्धसेन को आचार्य पद दिया गया। प्रस्तुत रास में पदस्थापना के बाद जिनसागर सूरि के विहार और उपदेशों का वर्णन है। गच्छनायक जिनराज सूरि और आचार्य जिनसागर में मनोमालिन्य हो गया और दोनों के साथ लोग विभक्त हो गये। एक शाखा भट्टारकीय और दूसरी आचारजीया कही गई। शाखा भेद होने पर जिनसागर के साथ जिनचन्द्र की शिष्यमंडली के अधिकांश लोग जैसे राजसोम, राजसार,

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १७८-१८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमतिगणि, दयाकुशल, धर्ममंदिर, समयनिधान, ज्ञानधर्म और सुमतिवल्लभ आदि थे। सं० १७१९ ज्येष्ठ कृष्ण ३ शुक्रवार को जिनसागर सूरि का स्वर्गवास हो गया। धर्मकीर्ति कृत जिनसागर सूरि की कथा का यही सारांश है। इसके वर्ण्य विषय के संबंध में कवि ने लिखा है—

कवणपिता कुण मातु तस, जनम नगर अभिहाण,
कुण नगरइ पद थापना, धरमकीरति कहइ वषाणि।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तां प्रतपउ गुरु महियलइ, जां जगनइ दिनईस,
धरम कीरति गणि इम कहइ अे, पूरे सकल जगीस।[1]

'मृगांक पद्मावती चौपइ' की अपूर्ण प्रति नाहटा संग्रह में है। २४ जिनबोल स्तवन और वरकाणायात्रा स्तवन का अधिक विवरण नहीं मिल सका है। ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में हिन्दी भाषा के पाँच सवैये 'जिनसागरसूरि सवैये' नाम से हर्षनंदनकृत भी संकलित है इससे लगता है कि सयमसुन्दर के शिष्य हर्षनंदन आदि सभी जिनसागर सूरि के साथ थे।

धर्मदास—आप लोकागच्छीय बूरा के शिष्य शामल जी के शिष्य जीवराज के शिष्य[2] थे, किन्तु जैन गुर्जर कविओ के नवीन संस्करण में इन्हें वरसिंह का शिष्य बताया गया है। इस संस्करण के संपादक श्री जयंत कोठारी ने स्पष्ट किया है कि कवि ने बूरा के प्रशिष्य एवं शामल जी के शिष्य जीवराज के सांनिध्य में वरसिंह के प्रसाद से अपना 'जसवंत मुनिरास' नामक ग्रन्थ लिखा अतः प्रतीत होता है कि वह वरसिंह का शिष्य होगा। कवि ने गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई है—

ऋषि श्री बूरा शिष्य सामल जी जीवराज गुणसारु अे,
तास सानिधि रचीइ रंगइ, हइअे हर्ष अपारु अे।
अति भाव आणी निरमल वाणी, दिनदिन प्रति गुणगाइअे,
धर्मदास कहे तुम्हें सुण भवीयण, साधु सेवतां सुख पाइअे।[3]

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १७८-१८९
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८१९ (प्रथम संस्करण)
३. वही, भाग २ पृ० २८५-२८६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका रचनाकाल सं० १६५२, भाद्र वदी १० और रचना स्थान खंडेरा है, यथा—

रचनाकाल—संवत सोल बावन वच्छरइ, भाद्रव वदि दसमी दिनइ,
हालार मध्ये पुन्यवंत नगरइ, खंढरा नामइ भलि।

वरसिंह को गुरु मानने का आधार ये पंक्तियाँ भी हैं—

गायसु गुण जसवंत जीवा सुणु भवीयण सार,
ने तार मुनिवर तेह छइ, सर्व जीवना आधार।
आधार सर्व जीवना नइ मनमोहन राय,
तास तणा गुण वर्णवुं, श्री वरसिंह तणइ पसाय।[1]

इस कृति की प्रारम्भिक पंक्तियां निम्नाङ्कित हैं—

सकल गुणे करी सारदा मन धरी, मागुंअ बुद्धि विनइ करी,
दिउ मुज्झ वाणीय, मांगु मा ब्रह्माणीय।
राणी अचुल्ल हेमवंत नी अे, पद्मद्रह वासिनी,
नमो माता सासणी, जास पसाइ गुण गाईसु अे।

धर्मप्रमोद—खरतरगच्छीय कल्याणधीर के शिष्य थे और संस्कृत के पूर्ण पंडित थे। इन्होंने संस्कृत में चैत्यवंदनभाष्य, लघुशांति वृत्ति टीका आदि लिखा है। मरुगुर्जर या पुरानी हिन्दी में आपकी एक रचना का उल्लेख मिलता है 'महाशतक श्रावक संधि'[2] किन्तु इसका विवरण उद्धरण उपलब्ध नहीं है।

धर्मभूषण—आप दिगम्बर साधु देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य एवं धर्मचंद्र के शिष्य थे। आपने 'चंपकवती चौपइ या शीलपताका चौपाई' की रचना की। देवेन्द्रकीर्ति का सं० १६०४ में लिखा प्रतिमालेख प्राप्त है। ये सरस्वती गच्छ के बलात्कारगण शाखा के भट्टारक चन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। अतः देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य धर्मचंद्र और उनके शिष्य धर्मभूषण १७वीं शताब्दी के अंतिम चरण में अवश्य विद्यमान रहे होंगे। इस रचना की प्रतिलिपि भी सं० १७५९ की प्राप्त है अतः रचना के १७वीं शताब्दी के अन्त में लिखे जाने की पर्याप्त संभावनायें हैं। कवि ने रचनावर्ष नहीं दिया है, मास तिथि का उल्लेख मिलता है यथा—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २८५-८६ (द्वितीय संस्करण)

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गछ दिगंबर सकल सुखकर वैशाख सुदि बीजा जाणियइं,
दक्षिण देसइं सुरजाल्हणां शीलपताका वखाणीइं।
देवेन्द्रकीर्ति पटधारी धर्मचंद्र पटोधरु,
धर्मभूषण रची चोपइ, नरनारी सुणयो सुखकरु।[1]

इसमें दान, शील, तपादि में भी शील का सर्वाधिक महत्व चंपकवती के चरित्र के दृष्टान्त से प्रमाणित किया गया है।

प्रारम्भ—परमपुरुष शासन धणी, प्रणमु श्री महावीर,
शील तणां गुण वर्णवु, निम्मॅल गंगानीर।
दान शील तप भावना, शिवपुर मारग च्यार,
सरखा छे तो पणि इहां, शील तणो अधिकार।
भूषण मांहि चूडामणी, देव मांहि जिम इंद्र,
शील वडो सवि दर्शनइं, तारा मांहि जिम चंद्र।[2]

इसमें शील की महिमा उपमा अलंकार के माध्यम से कवि ने प्रतिष्ठापित की है। इसमें सोलहसतियों में प्रसिद्ध चंपावती की शीलकथा का वर्णन किया गया है, यथा—

सोल सती ग्रंथइं कही, लोक मांहि परसिद्ध,
हे सरखी चंपावती, कथा कहुंअ प्रसिद्ध।

अंत में भी कहा है—
चंपावती ना जे गुणगाय, तेहनइलाभघणेरो थाय।
चंपावती गुणतो नहि पार, मइं भाष्यो माहरी मतिसार।

धर्ममेरु—खरतरगच्छीय जिनभद्र के शिष्य सिद्धान्तरुचि थे। इनके शिष्य साधुसोम और साधुसोम के शिष्य कमललाभ थे। आप इन्हीं कमललाभ के प्रशिष्य एवं चरणधर्म के शिष्य थे। आपने सं० १६०४ में 'सुखदुख विपाकसंधि' नामक रचना बीकानेर में की। यह रचना जिनमाणिक्य सूरि के सूरिकाल में लिखी गई। इसमें जिनभद्र से लेकर चरणधर्म तक की गुर्वावली दी गई है। कवि ने रचना काल इस प्रकार दिया है—

संवत मनु लोचन सइं ऊपरि वलि च्यारि,
विक्रमपुर माहइ शुभ दिवसइं शुभ वारइ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १६८ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० ७४६-४७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनमाणिक्य का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

हिव संप्रति श्री जिनमाणिक्य सूरि सुजांण,
जिणि राजइ करतइ, दीप्यउ संघजिम भाण।

अंत—मुनि धर्ममेरु भणंति जे नर संधि हियइ धरइ,
ते लहइ समकित सुणउ भवियण भवसमुद्र सुखउ तरइ।[1]

अंत में सूचना है—अेकादशम अंग विपाक श्रुत विंशति अध्ययनानां सुख दुख विपाकानां संधिरियं समाप्तः।

धर्ममूर्ति सूरि शिष्य—आप आंचलिक धर्ममूर्ति के शिष्य थे। इनकी रचना का नाम–विधिरास (१०१ गाथा) और रचनाकाल सं० १६०६ भाद्र शुदी, फिरोजपुर है। इसका आदि इस प्रकार है—

सरसति सामिणि वीनवु अे, कइकर जोड़ेवि,
विधिरास सूत्र विचार, हरषे पभणेवी।
जंबूअदीव पन्नात्तिया अे, इगज्जुग संवत्सरि,
पूछिउं गोयमसामि, कहिउं श्री वीर जिणेसर।

रचनाकाल—संवत सोलच्छीलोतरे अे, भाद्रव सुद इग्यारस,
नगर पेरोजपुरि रास रचिओ, जिहां भोहंड पारस।

गच्छ एवं गुरु—अंचलगच्छ विधिपक्ष सकल, तसु कोइ न जीपइ,
श्री धर्ममूरत सूरि गुणगंभीर, बहु दिन दिन दीपइ।

रचना का नाम—जिउं मंदिर गिरि चूलिका अे, सोहिं अति चंगी,
विधिरास सब रास भलउ, सुणीयहु मनरंगी।[2]

इस प्रकार तमाम विवरण तो हैं किन्तु लेखक का ही नाम कहीं नहीं है।

धर्मरत्न—आप खरतरगच्छीय वाचक कल्याणधीर के शिष्य थे। आपने सं० १६४१ आगरा में 'जयविजय चौपई' की रचना की। इनकी दूसरी रचना 'तेरह काठिया संझाय' भी उपलब्ध है। जयविजय चौपइ में खरतरगच्छ की चोपड़ा शाखा के तेइसवें पाट पर सुशोभित जिन-

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० १५०३ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १८-१९ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग २ पृ० ३२-३३ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ६५८-६५९ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणिक्य सूरि से लेकर कल्याणधीर तक का सादर स्मरण किया गया है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

श्री जिनचंद्रसूरि राजइ, कथा कही सुख काजइ,
संवत ससिकला मानइ इगतालइ सुय प्रधानइ।
आसू मास उदारइ विजयादशमी सितवारइ,
आगरा नयर मझारइ सारद तणइ आधारइ[1]।

'तेरह काठिया संज्झाय' का मात्र नामोल्लेख श्री नाहटा एवं श्री देसाई दोनों ने किया है किन्तु किसी ने विवरण-उद्धरण नहीं दिया है।[2]

धर्मसागर (ब्रह्म)—आप भट्टारक अभयचंद्र द्वितीय के शिष्य थे। आप अच्छे कवि और संगीतज्ञ थे। विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न रागों में गीत बनाकर गुरु की प्रशंसा में आप स्तवनादि लिखा करते थे। इस तरह के ११ गीत प्राप्त हैं। ये अधिकतर भट्टारक अभयचन्द्र या नेमिनाथ की स्तुति में लिखे गये हैं। नेमि-राजुल के गीतों में राजुल के विरह और उसकी सुन्दरता का अच्छा वर्णन मिलता है यथा—

दूखड़ा लोउं रे ताहरा नामनां, वलि वलि लागुं छुं पायन रे,
बोलडो धोरे मुझने नेम जी, निठुर न थइये यादव रायन रे।
किम रे तोरण तम्हें आविया, करि अमस्यु घणो नेहन रे,
पशुअ देखी ने पाछा वल्या, स्युं दे विमास्यु मन तेहन रे।
इम नहीं कीजे रुडा न होला, तम्हें अति चतुर सुजाणंन रे,
लोकह सार तन कीजिए, छेह न दीजिए निरवाणिन रे।[3]

यह अंश कवि की प्रसिद्ध रचना नेमिगीत से उद्धृत है। इसके अतिरिक्त आपकी नेमीश्वर गीत, गुरुगीत, लालपछेवडी गीत आदि अन्य गीत भी प्राप्त हैं।

धर्मसिंह—आप लोकागच्छीय देवमुनि के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६९७ में 'शिवजी आचार्यरास' नामक काव्य की रचना सोजत में

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २६७-२६८ (प्रथम संस्करण), भाग ३ पृ० ७६४ (प्रथम संस्करण), भाग २ पृ० १९०-१९१ (द्वितीय संस्करण)
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा ७६
३. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० २०७-२०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की।[1] श्री मो० द० देसाई इसका रचनाकाल सं० १६९२ और रचना-स्थान उदयपुर बताते हैं।[2] जैन गुर्जर कविओ के द्वितीय संस्करण में संपादक ने सूचित किया है कि पाटण में धर्मसंग या धर्मसिंह कृत शीलकुमाररास अथवा मोहनवेलिरास की प्रति है। शायद वह यही रास है। उसमें रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

'नय मंदन रसचंद संवत्सरा'।[3] किन्तु द्वितीय संस्करण में रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

ऋषि नाकर शिष्य देवजी मुनिवर, तस शिष्य कहि सुविचार,
नयन नंद रस चंद संवछर, श्रावण पून्य शशिधार।

रचना स्थान—सुरतरु सरखा सवि गुरु जाणी आणी प्रेम अपार अे,
रास सुन्दर रुचिर रागि, उदेपुर मझार अे।[4]

शिवजी की परम्परा के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि भगवान महावीर के दो हजार वर्ष पीछे रुपि ऋषि हुए। उनके पट्टधर जीवराज और उनके पट्टधर कुंवर जी हुए। कुवर जी के श्री मलजी और श्री मलजी के रतन ऋषि, रतन ऋषि के पट्टधर केशवजी हुए, इनके शिष्य महामुनि शिवजी ऋषिराय हुए। उन्हीं शिवजी के संबन्ध में यह रचना की गई है—

सुखदायक शिवजी तणोगाऊ रास रास रसीक करि रंग
ढाल विशाल प्रथम आख्यानि, कहि मुनि धर्म संघ।

जैन गुर्जर कविओ द्वितीय संस्करण के संपादक का अनुमान है कि शायद शिवकुमार ऋषि का नाम ही शीलकुमार है अतः शीलकुमार रास या शिवजी ऋषिरास एक ही रचना है। इनकी अन्य तीन रचनायें प्राप्त हैं जो सभी प्रकाशित हैं। तीनों संज्झाय हैं—

षट्साधुनी संज्झाय, सामायिक संज्झाय, और रत्नगुरुनीजोड या संज्झाय। प्रारम्भिक दोनों रचनाओं में गुरु परम्परा नहीं है। इसलिए

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९१
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५८५ और भाग ३ पृ० १०८० (प्रथम संस्करण)
३. वही, भाग ३ पृ० २९६-९७
४. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २९६-२९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके सम्बन्ध में अधिक निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। आपकी अन्य रचना मल्लिनाथ स्तवन का रचनाकाल सं० १६०७ बताया गया है किन्तु यह भ्रान्तिपूर्ण है इसकी अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

श्री रतनसंघ गणीन्द्रतस पट केशवजी कुलचंद अे,
तस पटि दिनकर तिलक मुनिवर श्री शिवजी मुनिन्द अे।
धर्मसिंह मुनि तस शिष्य प्रेमी पूण्या मल्लि जिणंद अे।[1]

कवि ने गुरु परम्परा के साथ रचनाकाल एवं रचनास्थल इस प्रकार बताया है।

संवत नय निधि रस शशिकर श्री दीपावली श्री कारए,
शृङ्गार मरुधर नयर सुन्दर बीकानेर मझार ए।
श्री संघ वीनती सरस जाणी कीधो स्तवन उदारए,
श्री मल्लि जिणवर सेवक जननि सदाशिव सुखकार ए।

इसकी प्रति आर्या जवणादे के पठनार्थ लिखी गई जो दिगम्बर जैन संभवनाथ मन्दिर, उदयपुर में सुरक्षित है। इससे गुरुपरम्परा ठीक मिल जाती है और निश्चय ही उन्हीं शिवजी ऋषि के शिष्य धर्म सिंह की यह रचना मल्लिनाथ स्तवन भी है। इसमें जो रचनाकाल दिया है उसके आधार पर सं १६०७ के स्थान पर सं० १६९७ होना चाहिये। इससे उनकी अन्य रचनाओं के काल से भी सामञ्जस्य बैठ जायेगा—(निधि = ९ और नय = ७)

धर्महंस—आगमगच्छ के ज्ञानरत्न सूरि के शिष्य हेमरत्न सूरि आपके गुरु थे। आपने नववाडि (ढाल ९, कड़ी ५७ सं० १६२० के लगभग) की रचना की। इसका आदि—

आदि आदि जिणेसर नमउं,
मयण (मोह) महाभड लीलां (हेला) दमउं।
नवनिधिवाडी जे ब्रह्मनी, जासवयो ते कुमति कर्मनी।
यती अनइ श्रावक ते जाणि, ते पालइ जिनवर नी आणि।
आन्याभंगि समकित जाइ, कांजी थी किम दही जा थाइ।

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची ५वां भाग पृ० ७५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त—श्री आगमगच्छे गहिगहिउ (गुरु राजीयो) श्री न्यारतन सूरिंद,
तास गछ गुण राजीउ, पूज्य पंडित रे हेम मुणिद।
तस तणइ सुपसाउलइ धर्महंस कवि भाखइ रे।
जे नरनारी भणइ गुणइ ऋद्धि वृद्धि रे मंगलमाल।[1]

श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ (प्र० सं०) में इसके अतिरिक्त संयमरत्नसूरि स्तुति को भी इन्हीं की रचना बताया था किन्तु नवीन-संस्करण में संपादक ने इसे अन्य धर्महंस की कृति कहा है। आगम गच्छ में इसी के आस-पास एवं अन्य धर्महंस हो गये हैं। उनका विवरण भी साथ ही दिया जा रहा है।

धर्महंस—(ii) आप संयमरत्न सूरि के शिष्य विनयमेरु के शिष्य थे संयम रत्न का समय सं० १५८० से १६१६ तक मान्य है अतः आगम-गच्छीय इन धर्म हंस का समय १७वीं शती का प्रथम चरण ही होगा। इस कवि ने अपने गुरु की स्तुति में संयमरत्न सूरि स्तुति लिखा है जो जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। उसके अनुसार संयमरत्न प्रागवंशीय वैश्य कुल में सं० १५९५ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अपने अनुज विनयमेरु को गच्छभार सौंपा था। प्रस्तुत स्तुति उन्हीं विनयमेरु के शिष्य धर्महंस ने लिखी है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरसति सामिणि वीनवू, प्रणमू जिनवर देव,
हंसवाहन गजगामिनी सुरनर सारइसेव।

इसमें कुछ साहित्यिक स्थल भी हैं। संयम हीन साधु के संबंध में कवि की यह उक्ति देखिये—

नवि सोभइ जिम हाथी ओ रे, दंत बिना उत्तंग,
रूप वलि करी आगलु रे, गति बिना तुरंग।
चन्द्र बिना जिम रातडी रे, गंध बिना जिम फूल।

उसी प्रकार—

मुनिवर चरित्रहीन तिम, नवि सोभइ गुणचंग,
सर्वविरति तिणि सोहती, पालि मनि जिरंग।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ—भाग ३ पृ० ७०२-७०३ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ११७-११८ (द्वितीय संस्करण)

२. जैन ऐतिहासिक काव्य संचय (सं० मुनि जिनविजय) रचना क्रम सं० २४

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

संयमरत्नसूरि ने क्रियोद्धार किया, स्वयं संयमव्रत का निष्ठा पूर्वक पालन करते थे और अनेक लोगों को संयम-नियम पूर्ण जीवन यापन के लिए प्रेरित किया। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

आगमगछ गिरुआ गच्छनायक, श्री विवेकरत्न सूरिसर,
तास पट्टि उदयाचलि दिनकर, षटजीव आधार।
चरणसेवक इम विनवइ रे धर्महंस कर जोडि,
अवर जिको बली साधु छइ रे, प्रणमूं तेहनइ नितकरजोडि।[1]

इस रचना की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है किन्तु यह निश्चय ही १७ वीं शताब्दी की रचना है। इसमें साहित्य रस और धर्मोपदेश का सुन्दर समन्वय साहित्योपयोगी भाषा शैली में सुलभ है। नवीन-संस्करण के संपादक ने भी श्री देसाई की तरह इनके गुरु का नाम संयमरत्न बताया है जो रास देखने पर गलत ठहरता है। इनके गुरु विनयमेरु ही हैं।

नगर्षिगणि (नगा ऋषि)—आप तपागच्छीय आचार्य हीर विजय सूरि की परंपरा में कुशलवर्द्धन के शिष्य थे। आप संस्कृत के विद्वान् थे और आपने संस्कृत में दण्डकावचूरि की रचना की है। इसमें अपनी गुरु परम्परा का विवरण देते हुए इन्होंने बताया है—

विजयसेन सूरि युवराज्ये सकल पण्डित सभारंजन,
श्री उदयवर्द्धन तच्छिष्य कुशलवर्द्धन, तच्छिष्य नगर्षिगणि।[2]

आपने स्थानांगसूत्र पर स्थानांगदीपिका नामक वृत्ति सं० १६५७ में लिखी। पुरानी हिन्दी या मरुगुर्जर में भी आपने प्रभूत साहित्य रचा है, यथा—सिद्धपुर जिन चैत्यपरिपाटी स्तवन सं० १६४१, राम-सीतारास सं० १६४९, अल्पबहुत्वविचारगर्भित स्तवन, चतुर्विंशतिजिन सकल भव वर्णन स्तवन सं० १६५७, वडलीमंडन वंध हेतु गर्भितवीर-जिनविनति स्तवन सं० १६९८ से पूर्व इत्यादि। श्री देसाई ने सिद्धपुर जिन चैत्यपरिपाटी स्तवन को कुशलवर्द्धन के नाम से जैन गुर्जर कविओ के भाग १ पृ० २६८ पर दिखाया है जबकि कवि ने स्वयं लिखा है "कवि कुशलवर्द्धन सीस पभणइ" इसी प्रकार वंध हेतु गर्भित वीर जिन स्तवन में भी कवि कुशलवर्द्धन सीस पभणइ, नगागणि

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ११८ (द्वितीय संस्करण).
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १८७ (द्वितीय संस्करण).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगल करो, यह स्पष्ट सूचित करता है कि इन रचनाओं के कर्त्ता कवि नगर्षिगणि हैं और वे कुशलवर्द्धन के शिष्य हैं। इसीलिए नवीन-संस्करण में इन रचनाओं को एकत्र नगर्षिगणि के नाम से ही दर्शाया गया है। श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २९० पर केवल रामसीतारास का संक्षिप्त विवरण नगर्षि के नाम पर दिया था। उसमें भी कवि ने लिखा है, 'कवि कुशलवर्द्धन सीस पभणइ, नगागणि वंछीय करो' अर्थात् लेखक प्रायः इसी प्रकार अपना परिचय सर्वत्र देता है और ये सभी रचनायें उन्हीं की हैं। सिद्धपुर जिन चैत्य परि-पाटी स्तवन (सं० १६४१ भाद्र शुक्ल ६, सिद्धपुर) के अन्त में रचना-काल इस प्रकार दिया गया है—

चंद्र नइ रस जाणीइ, तु भमरुली वेद वेलससि जोइ,
ते संवच्छर नाम कहुं तु भमरुली भादव सुदि छठि होइ।

इसका अन्तिम कलश इस प्रकार है—

सीधपुर नयर मझारि किधि चइत परिपाटी भली,
जे भणइं भवियण कहइं कवियण, तास घरि संपद मिली।
तवगच्छमंडन दुरियखण्डन श्री हीरविजय सूरीसरु,
कवि कुशलवर्द्धन सीस पभणइ सकलसंघ मंगलकरु।[1]

रामसीतारास आपकी प्रसिद्ध रचना है। इसमें सीताराम का जैनमतसंमत चरित्र चित्रित किया गया है। इसका रचनाकाल इस प्रकार कवि ने लिखा है—

चन्द्र अब्रइ रस वेद निहालु, नन्द भलु तिमालु (सं० १६४९)

अल्पबुद्धि विचारगर्भित श्रीमहावीरस्तवन (३९ कड़ी) की रचना हीर विजयसूरि के समय हुई। आपने स० १६५३ फाल्गुन वदी १३ भृगुवार को संग्रहणी टब्बार्थ (गद्य) लिखा। इसका लेखन विजय-सेन सूरि के समय हुआ। चतुर्विंशतिजिनसकलभव वर्णन स्तवन (७१ कड़ी) की रचना सं० १६५७ श्रावण शुक्ल १० गुरु को पूर्ण हुई। इस रचना का प्रारम्भ देखिये--

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १८८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समरिय सरसति देवि सुगुरुचरणनमी,
चउवीसी जिनवर तणी अे।
निज निज भव परिमाण, कहण थकी सुणु,
निरमलभगति धरी धणी अे।

रचनाकाल--चंद्र अनइ रस जाणीइ तु भमरुली,
सुमति (समिति) मुनी परिमाण।
श्रावण सुदि दसमी गुरु सा भमरुली,
वरिस वार तिथि जाण।[1]

अंतिम पंक्तियाँ—तपगच्छ गयण दिणेस समुवडि श्री विजयसेन सूरीसरा,
कवि कुशलवर्द्धन सीस पभणइ, नगागणि वंछियकरा

(बडली मंडन) वंध हेतु गर्भित वीर जिन विनति स्तवन (५३ कड़ी) की रचना सं० १६९८ से पूर्व हुई। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

सकल मनोरथ पूरणो वंछित फल दातार।
वीर जिणेसर नायकू जय जय जगदाधार।

इसमें कर्मबंध पर विचार किया गया है, यथा—

सत्तावन्न हिति करी, करमबंध विचारि,
बंधण बांध्यो चोर जिम, भमीऊं अपार।
करम विपाक तणो घणो, अरथ कह्यो तइं जेह,
गुरु मुखइं मइं श्रवणइं सुण्यो, सुणज्यो भवियण तेह।

अन्त—इय वीर जिनवर सयल सुहकर नयर वडली मंडणो,
मि थुण्यो भगति प्रवर युगति,
(पाठान्तर—भलीय सुगति) रोगसोग विहंडणों।
तपगच्छ निरमल गयण दिणकर श्री विजयसेन सुरीसरो,
कवि कुशलवर्द्धन सीस पभणइ, नगा ऋषि मंगलकरो।[2]

आपकी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आप

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १८८ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग २ पृ० १८९ (द्वितीय संस्करण) और
भाग १ पृ० २६८-६९ तथा २९०, भाग ३ पृ० ७९०-९१ तथा १६०० (प्रथम संस्करण)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में साहित्य सर्जन करते थे। आपका संस्कृत, प्राकृत के साथ पुरानी हिन्दी (मरुगुर्जर) पर भी अच्छा अधिकार था। आपने अधिकतर स्तवन विनती आदि पद्य में लिखे हैं जिनसे आपके हृदय की भक्ति-भावना का पता चलता है।

नन्द कवि[1]— आप आगरे के पास गौसुना के निवासी थे। इनके पूर्वज यहाँ बयाना से आये थे। कवि की कृतियों—यशोधर चरित और सुदर्शन चरित से पता चलता है कि कवि के पिता का नाम भैरो था। इनके पिता गोयल गोत्रीय अग्रवाल थे। इनकी माता का नाम चन्दनबाई था। कवि नन्द ने आगरा नगर की प्रशंसा की है जहाँ उस समय जहाँगीर शासन करता था। इनके गुरु भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति थे। इनकी तीन रचनायें उपलब्ध हैं—यशोधर चरित्र, सुदर्शन चरित्र और गूढ़ विनोद। यशोधर चरित्र सं० १६७० श्रावण शुक्ल सप्तमी को लिखा गया। यशोधर के प्रसिद्ध आख्यान पर पुष्पदंत से लेकर नन्द तक कई चरित्र काव्य लिखे गये हैं। प्रारम्भ में कवि सरस्वती की बन्दना करता है, यथा—

द्वै कर जोडि नऊं सरसती, बढ़ै बुद्धि उपजै शुभमती,
जिन बानी मानी जिन आनी, तिनकौ वचनचढ्यौ परवान।

आगरा और नागरिकों के धर्म-कर्म का वर्णन इन पक्तियों में द्रष्टव्य है—

होहि प्रतिष्ठा जिणवर तणी, दीसहि धर्मवंत बहुधनी,
एक करावहि जिणवर धाम, लागे जहाँ असंखिनदाम।
एक लिखावे परमपुरान, एक करहि संतीक प्रधान,
राज चैन कोउ सकत्ति न लुपै, कविता कवित्ततपी तप तपै।[2]

यशोधर या जसोधर चरित्र का रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

संवत सोलशें अधिक सत्तरि शावन मास,
सुकुल सोमदिन सत्तमी, कही कथा मृदु भास।[3]

---

१. कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १२६
२. डा० प्रेमसागर जैन—जैन भक्ति काव्य पृ० १५८-१६०
३. खोज रिपोर्ट नागरी-प्रचारिणी सभा काशी—पृ० ४३१ (२० वां त्रैवार्षिक विवरण) संपादक—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने इसमें अपना वंश परिचय दिया है, यथा—

अगरवाल वर वंश गौसुना गाँव कौ,
गोइल गोत प्रसिद्ध चिन्हता ठाँव कौ,
माता हि चंदन नाम पिता भयरौ भन्यो।
नंद कही मन मोद गुनी गुनना गन्यो।[१]

सुदर्शन चरित्र—इस पर अपभ्रंश की रचना सुदंसण चरिउ का व्यापक प्रभाव लक्षित होता है। इसमें सेठ सुदर्शन का निर्मल चरित्र चित्रित है। इसकी रचना सं० १६६३ माघ शुदी० पञ्चमी गुरुवार को हुई। इसका उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है—

संवत सोरह सै उपरंत, त्रेसठि जानहु वरिख महंत,
माघ उज्यारे पाख गुरुवासर दिन पञ्चमी,
वंधि चौपई भाष नन्द, करी मति सारशी।[२]
कथा सुदर्शन शेठि की पढ़ै, सुनै जो कोइ,
पहिलै पावै देवपद पाछे शिवपुरी होइ।

इसका प्रारम्भ सोरठा—

प्रथम सुमिरि जिनपाइ सहित सुरासुर नाग षग,
भव भव पातिक जाइ, सिद्धि सुमति साहस बढ़े।

दोहरा—इन्द चन्द अरु चम्बावे हरि हलधर फणिनाह,
तेऊ वरन नहीं सके जिनगुन अगम अथाह।

चौ०—सुमिरि शारदा जिनवर वानि,
करौ प्रनाम जोरिकर पानि,
मूरिष सुमिरे पण्डित होइ,
पापपंक मल डारे धोइ।[३]

आगरा वर्णन—अगम आगरो पवरुपुर ऊचकोट प्रासाद,
तरे तरंगिनि नदि बहे नीर अमी सम स्वादु।[४]

इससे यह प्रमाणित होता है कि आगरे के निवासी धनधान्य संपन्न थे और निसंक भाव से अपने-अपने धर्म का पालन करते थे, यथा—

१. संपादक डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल—हस्तलिखित ग्रन्थों का बीसवाँ त्रैवार्षिक विवरण—नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ० ४३०-४३१
२. वही
३. वही
४. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन कन पूरन तुंग अवास, वसहिं निसंक धर्म के दास,
छत्राधीश हुमायूँ वंश, अकबर नन्द वैरि विध्वंस ।[१]

गूढ़ विनोद नामक तृतीय उपलब्ध कृति अध्यात्म सम्बन्धी रचना है जो गीतों और गेय पदों में आवद्ध है। यह मुक्तक रचना है।

नन्द कवि के गुरु भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति शास्त्र एवं साहित्य के पारंगत विद्वान् थे। अतः कवि ने भी अपनी गुरु परंपरा के अनुरूप साहित्य एवं शास्त्र में निपुणता प्राप्त की थी।

नन्नसूरि—कोरंटगच्छीय कक्कसूरि आपके गुरु थे। एक नन्नसूरि १६वीं शताब्दी में भी हो गये हैं जो सर्वदेवसूरि के शिष्य थे। उन्होंने विचारचौसठी आदि रचनायें की थी। प्रस्तुत नन्नसूरि की मात्र एक ही रचना क्षेत्रविचारतरंगिणी (१२४ कड़ी) उपलब्ध है। यह सं० १६१७ में लिखी गई, जैसा कवि की इन पंक्तियों से प्रकट होता है—

संवत सोल सइ सतरोतरइ, नन्नसूरि कवियण उच्चरइ,
अेह बिचार सयल जाणिवउ, सांचउ हुइते मनि आणिवउ।

इसमें कवि ने अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार बताई है—

श्री कोरंटगछ दीपंतु, हेला मोह भयण जंपतु,
श्री कक्कसूरि गुरुपथ अणुसरी, एकचित्ति मइं सेवाकरी।[२]

नयनसुख—आप श्रावक केसराज के पुत्र थे। आपने सं० १६४९ में वैद्यक का ग्रन्थ वैद्य महोत्सव बनाया। इसकी भाषा सरल हिन्दी है।

रचनाकाल—अेक वेद रस मेदनी शुक्लपक्ष चैत्रमास,
तिथि द्वितीया भृगुवार फुनि पुण्यचन्द्र सुप्रगास।[३]

आदि—सिवसुत प्रणमूं हूँ सदा रिद्धि सिद्धि निति देइ,
कुमति विनासन सुमतिकार मंगल मुदित करेइ।

१. हस्तलिखित ग्रन्थों का बीसवां त्रैवार्षिक विवरण, पृ० ४३०-३१
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ९२ (द्वितीय संस्करण), भाग ३ पृ० ६८९-९० (प्रथम संस्करण)
३. वही, भाग २ पृ० २६३-६४ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७९२-७९३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैद्य ग्रन्थ सब मत्थि के रचिउं सुभाषा आनि,
अरथ दिखावुं प्रगट करि औषद रोग निदान।
वैद्यमनोत्सव नाम धरि देखी ग्रंथ सुप्रकाश,
केसराज सुत नयनसुख श्रावक कुलहि निवास।

× × ×

केसराज सुत नयनसुख कीयउ ग्रंथ अमृत कन्द,
सुभनगरसीहनन्द मइ, अकबर साह नरिन्द।

अर्थात् यह ग्रन्थ सं० १६४९ चैत्र शुक्ल द्वितीया, मंगलवार को सीहनन्द नामक स्थान में अकबर सम्राट् के शासनकाल में लिखा गया था। यद्यपि इस ग्रन्थ का साहित्य से सम्बन्ध नहीं है फिर भी छन्दबद्ध रचना होने से पद्य भाषा-शैली का नमूना प्रस्तुत करने के लिए इसका संक्षिप्त उल्लेख कर दिया गया है।

नयरङ्ग—जिनभद्रसूरि की शाखा के आचार्य गुणशेखर (खरतर०) आपके गुरु थे। आप प्राकृत, संस्कृत और मरुगुर्जर भाषाओं के ज्ञाता थे और इन भाषाओं में आपने रचनायें की हैं। प्राकृत भाषा में विधि कन्दली की रचना की और सं० १६२५ में स्वयं उसकी संस्कृत में वृत्ति वीरमपुर में लिखी। आपने सं० १६२४ में संस्कृत भाषा की रचना 'परमहंस संबोधचरित्र' वीरमयुर में रची। मरुगुर्जर में आपकी निम्न रचनायें प्राप्त हैं—

मुनिपति चौपइ सं० १६१५, सतरभेदी पूजा सं० १६१८, अर्जुनमाली संधि सं० १६२१, कुबेरदत्ता चौपइ सं० १६२१, केशी-प्रदेशी सन्धि, गौतमपृच्छा, गौतमस्वामी छन्द, जिनप्रतिमा छत्तीसी और चौबीसी आदि।[1]

आपकी गुरु परम्परा श्री देसाई ने इस प्रकार बताई है। खरतरगच्छीय जिनभद्रसूरि शाखा के समयध्वज के शिष्य ज्ञानमन्दिर के शिष्य गुणशेखर के शिष्य नयरंग थे। गौतमपृच्छा और गौतमस्वामी छंद का विवरण-उद्धरण दिया जा रहा है।

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७४ और राजस्थान का जैन साहित्य पृ० १७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतमस्वामी पृच्छा (५९ गाथा) सं० १६१७ या सं० १६१३ वैशाख बदी १० को सिन्धुदेश के शीतपुर में लिखी गई। इसमें दोहा छंद का प्रयोग हुआ है। गौतम गणधर ने भगवान महावीर से जो प्रश्न पूछे और महावीर ने जो उत्तर दिया, इसमें उसी का उल्लेख है। रचना का प्रारम्भ देखिये—

वीर जिणंद तणा पय वंदि, त्रिकरण शुद्ध करी आणंदि
धर्म अधर्म तणो फल जाणि, श्री गौतम पूछे सुप्रमाण।
किम करमे जीव नरके जाय, तेहि ज जीव अमर किम थाय ?
तिरिय तणी गति किण परिलहे, मांणस पणों किम संग्रहे।

इसके अन्तिम दो छंद भी उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

गौतम पृच्छा अेहवी, प्रश्नोत्तर अडयाल
भवियण भावे सांभलो, श्रवण सुधा सुविशाल।
भणै गुणै जे भाव धरि तिहां घरि रङ्ग अभंग
मनवंछित सुहिला फलै इम पभणै नयरङ्ग।[1]

गौतमस्वामी छन्द—१०८ गाथा की स्वतन्त्र रचना है जिसकी कुछ पंक्तियां देखिये—

इला लोक आणंद सामिवीर सुपसायइ,
गरुया गणधर नामि जरामरण भय जायइ।
पुहवी मात प्रसिद्ध जनक वसुभूति जुगत्तइ,
गौतम गोत्र गोपालमेरु अविचल महिमत्तइ।
तपसीया तिलक लीला लबधि जलधि इम नयरङ्ग जपइ
श्री इन्द्रभूति संघह सहित पुन्न पडूरइ प्रपपइ।

२४ जिन स्तुति की प्रारम्भिक पंक्ति इस प्रकार है—

नाभिराया कुलचन्द मरुदेवी केरो नन्द।[2]

इन उद्धरणों से इनकी भाषा शैली एवं काव्य क्षमता का अनुमान किया जा सकता है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ९२-९३ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० ६९८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयविजय —आप तपागच्छीय विजयसेन सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६४४ आसो शुदी १० को 'साधुवंदना' की रचना पाटण में की। इसकी भाषा परिष्कृत एवं काव्योचित है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ देखिये –

कंदकली परि निर्मली सकल कला गुण वेलि,
मझ मनमानसि झीलती, हंसासणि करि केलि।
ऊं नमो श्री ऊसह जिण, सिद्ध वधू उरि हार,
केवलनाण दिवायरु सिद्धि बुद्धि दातार।[1]

गुरुपरंपरा—संप्रति नरक्षेत्रि विहरता, जिण नाणी मुणि कोडि,
जगगुरु गुणनिधि हीरजी, वंदु बे कर जोडि।
तस पट्टालंकार हार श्री विजयसेन गणधार,
तस पद प्रणमी हुं रचुं, मुनिवंदन विस्तार।

इसमें साधु या मुनि की वंदना की गई है।

रचनास्थान एवं समय—

पुण्य पवित्त पाटण पुरवरि, साधु वंदनावर जांण,
संवत भू रस वेद जुग वरसि, विजया दिनि सुप्रमाण।

इसका अन्तिम—'कलश' इसकी भाषा-शैली के उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

श्री हीरविजयसूरि पट्ट धुरंधर, प्रवर गुणमणि सायरु,
श्री विजयसेनसूरिंद तपगछतिलक संघ सुहंकरु।
तस पादपद्मपराग तिलकित नयविजय गुरुपद भजि,
परमेष्टि थुणतां संपदी आनंद सुख वृद्धि संपजि।

जैन गुर्जर कविओ में जंबूस्वामी रास का भी श्री देसाई ने इन्हीं को बताया था किन्तु गुरु का नाम कुशलविजय बताया था। नवीन संस्करण के संपादक का विचार है कि यह रचना १८वीं शताब्दी के कवि नयविमल की है जिनके गुरु का नाम कुशलविजय था। यह भूल से नयविजय के साथ छप गई थी।[2] अतः उसे छोड़ दिया गया है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २३२-२३३ (द्वितीय संस्करण), भाग ३ पृ० ७७७-७८ (प्रथम संस्करण)

२. वही, भाग २ पाद टिप्पड़ी पृ० २३३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयविलास—आप मुख्यरूप से गद्य लेखक थे। खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि के आप शिष्य थे। आपने सं० १६९८ से पूर्व लोकनाल-बालावबोध की रचना की। इसकी आरम्भिक पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

प्रणम्य श्री महावीर लोकालोक प्रकाशकं,
लोकनालाख्य शास्त्रस्य कुर्वे बालावबोधकं।
स्वच्छे खरतरगच्छे श्री जिनचन्द्रसूरि राजानां,
शिष्योऽत्र नयविलासः शास्त्राम्नायं यथाज्ञातं।[1]

लेखक संस्कृत का पंडित लगता है। इनकी हिन्दी गद्य शैली का नमूना नहीं प्राप्त हो सका।[2]

नयसागर उपाध्याय—आप आंचलगच्छीय कल्याणसागरसूरि के शिष्य रत्नसागर के शिष्य थे। कल्याणसागरसूरि को आचार्य पद सं० १६४९, अहमदाबाद में और गच्छेश पद सं० १६७० पाटण में मिला था। उनके प्रशिष्य नयसागर ने अपनी रचना 'चैत्यवंदन' (८ ढाल) सं० १६७० और कल्याणसागरसूरि के स्वर्गारोहण सं० १७१८ के बीच किसी समय की होगी। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखें—

इम त्रिजगवंदन दुख निकंदन सकल जनमन सुंदरो,
सासय असासय चैत्य पडिमा थुण्यो मइ उल्लट धरो।
विधि पक्षि उदयाचल दिवाकर श्री कल्याणसागर सूरीसरो,
तस सीस सुंदर सुगुण मंदिर श्री रत्नसागर उवझायरो,
तस सीस सादर नयसागर रच्यो चैत्यवंदन वरो।[3]

आपकी दूसरी रचना 'चौबीसी' की अन्तिम पंक्तियाँ भी उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

श्री अंचलगण दिनमणी, श्री कल्याणसागर सूरिराय,
तास सीस शोभानिलो, श्री रतनसागर उवझाय।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३३३ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ खण्ड २ पृ० १६११ (प्रथम संस्करण)

२. राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २३०

३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १६७-१६८ (द्वितीय संस्करण), भाग १ पृ० ५९२-५९३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

सीस तास हरषि री, अेहुकरी तवननी जोड़ि,
उवझाय नयसागर भणइ, नित भणतां रे होइ मंगलीक
कोडि कि भेट्यो श्री महावीर।

नयरत्न शिष्य—(बड़तपगच्छ) आप बड़तपगच्छीय नयरत्न के शिष्य थे। इससे अधिक इनके सम्बन्ध में ज्ञात नहीं है। इनकी रचना 'प्रतिबोधरास' (८५ कड़ी) सं० १६३४ आसो सुदी १ मंगलवार को हालीसा में लिखी गई। इसका आदि इस प्रकार है—

सकल सरसति पयनमी मांगु वचन प्रकाश,
सहि गुरुपाय पसाउलि गाऊं प्रतिबोध रास।

गुरु—बड़तपगछि मुनिवर सुणु पंडित नयरत्न दख्य,
तासतणी अनुमति लही, रास करिउ मन हरख्य।

रचना समय—सोल चुत्रीसा संवछरि अश्वन मास अतिसार,
चंद्रोदय तिथि ऊजली रूयडु भृगुवार।
थोड़ी मति कर जोड़ि करि आणि मनि उछाहि,
रास कीउ प्रतिबोधनु गाम हालीसा मांहि।[1]
भणु गुणु हीयडि धरु, आणु अति उल्हास,
सा रधि सीधि मंदिरि घणी, मंगलीक घरि तास।

इसकी भाषा कमजोर है, दख्य, हरख्य, रधि आदि शब्द इसके प्रमाण हैं।

नयसुन्दर—बड़तपगच्छीय भानुमेरु गणि के शिष्य थे। भानुमेरु के गुरु का नाम धनरत्न सूरि था। नयसुन्दर समर्थ कवि और विद्वान् उपाध्याय थे। आप गुजराती, हिन्दी के अतिरिक्त प्राकृत, संस्कृत और उर्दू के भी जानकार थे। आपने मरुगुर्जर भाषा में पर्याप्त साहित्य लिखा है। 'आनन्द काव्य महोदधि' मौक्तिक छह में आपकी प्रसिद्ध रचनायें—रूपचंद कुँवर रास, नलदमयंती रास तथा शत्रुंजय उद्धार रास छपी है। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में श्री देसाई ने कवि का जीवन-वृत्त भी दिया है। यशोधरनृप चौपाई, प्रभावती (उदायन) रास, सुरसुन्दरी रास, शीलशिक्षारास, गिरनार उद्धार रास, आत्मप्रतिबोध

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १६२-६३ (द्वितीय संस्करण), भाग ३ पृ० ७३५-३६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुलक, शंखेश्वर पार्श्व स्तवन और शांतिनाथ स्तवन आदि आपकी प्रमुख रचनायें उपलब्ध हैं जिनका विवरण क्रमशः दिया जा रहा है। मुनिजिनविजय के संग्रह में नलदमयंतीरास की एक ऐसी प्रति है जिसमें प्राचीन कवियों के काव्यांश सुभाषित रूप में संग्रहीत हैं। उनसे यह मालूम होता है कि कवि नयसुन्दर के समय गुजरात में हिन्दी प्रचलित थी और गुजराती मिश्रित हिन्दी का प्रयोग कवि अपनी काव्य भाषा में करते थे, यथा—

कुण वैरी कुणवल्लही, कवण अनेरो आप;
भव अनंता भमता हुआ नित्य नवां मां बाप।[1]

इस समय तक गुजराती कवि मुस्लिम संपर्क के कारण अपनी भाषा में उर्दू (अरबी-फारसी) के प्रचलित प्रयोग भी करने लगे थे, नलदमयंतीरास की पंक्तियां देखें—

दुनियां में यारा विगर जे जीवणा सवि फोक,
कह्या न जावे हर किसूं आपणे दिल का शोक।[2]

कवि ने दिल और शोक और फोक को एक ही छंद में जड़ दिया है। इससे भाषा में सहजता और रवानी आ गई है।

यशोधरनृप चौपइ सं० १६१८ या १६७८ की पौष वदी १ गुरुवार की रचना है। इसका ठीक-ठीक संवत् निश्चित नहीं है, कवि ने इस प्रकार कहा है—

तस लघु वंधवइ अेह रास रच्यु शमगेह,
वसुधा वसु मुनि रस एक संवत्सर सुविवेक।६९।
प्रतिपद पौषनी असिता, कथा संपूरण विहिता,
सुरगुरु वासर सार, पुष्य नक्षत्र उद्धार।७०।[3]

इन शब्दों से १८, ७१ और ७८ अंक मिलते हैं, श्री देसाई सं० १६१८ के पक्ष में हैं। इसके प्रारम्भ में मंगलाचरण संस्कृत में है जिससे इनके संस्कृत ज्ञान का भी प्रमाण मिलता है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७४८-५५ (प्रथम संस्करण)

२. श्री ह० ग० शुक्ल 'हरीश'—जैन गुर्जर कविओ की हिन्दी कविता पृ० ७७

३. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ९४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुविशद मनो यस्य व्याप्तं शमामृतसिंधुना,
नयनयुगलं यस्याप्यासीत कृपापयसाविलम्।
हरिरविगुणानयस्य प्रोक्तु न याति समर्थता,
स मम हृदय वीरस्वामी स्थिरि भवताच्चिरम्।

गुरु परम्परा के अन्तर्गत बड़तपगच्छ के धनरत्न, अमररत्न, तेजरत्न, देवरत्न, विजयसुन्दर, धनरत्न और भानुमेरुगणि का सादर स्मरण किया गया है। भाषा के नमूने के लिए इस रचना का कलश उद्धृत किया जा रहा है—

चउवीस जिनवर सदा सुखकर चरण तास आराहइ,
संभली गुण श्री साधू जीना अेह अरथि उमाहिइ।
उवझाय नयसुन्दर सुवाणी भणु चित्तचोखू करी,
बली गुण सद्‌गुण संभलु अध दहु लहु निवृत्तिपुरी।[1]

रूपचंदकुंवर रास—यह आनंदकाव्य महोदधि में प्रकाशित है। इसकी रचना तिथि १६३७ मागसर शुक्ल ५ रविवार से प्रायः सभी सहमत हैं, रचना बीजापुर में हुई। इसमें रचनाकाल कवि ने इस प्रकार कहा है—

लघु विनती नयसुन्दर वाणि, छट्टो खंड चड्यो परिमाणि।
मुनि शंकरलोचन रसमान भेले इंदु जो सावधान।[2]

जैनकाव्य का प्रयोजन बताता हुआ कवि लिखता है—

कवित कवित करी सहुको कहे, कवित भाव तो विराग लहे,
सोइ कवित्त जेणे दुश्मन दहे, पंडितजन परखी गहगहे।

इसलिए काव्य का अंत शम या शान्ति में ही होता है। कवि का यह कथन बड़ा महत्वपूर्ण है—

प्रथम शृङ्गाररस थापियो, छेड़ो शांतरसे व्यापियो,
बोल्या चार पदारथ काम, श्रवण सुधारस रास सुनाम।

कवि कहता है कि श्रोता यदि अप्रतिबद्ध हो तो कवि की रचना कुशलता वैसी ही विफल होती है जैसी अंधपति की सँवरी-सजी नारी की शोभा व्यर्थ होती है, यथा—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ९४ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, पृ० ९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रतिबद्ध सभा मंहि जोय, कवि चतुराई निष्फल होय।
जिम नारी सोले श्रृंगार, आगल विफल अन्ध भर्त्तार।

इसके प्रारम्भ में भी संस्कृत भाषा में मंगलाचरण है और इसमें भी वही गुरुपरंपरा दी गई है जो यशोधर चौपइ में थी। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

अेकमना आणी उल्हास, नयसुंदर जाणी अे रास।
जे नरनारी भणे सांभले, ते घर निश्चे अफलां फले।

शत्रुञ्जय (सिद्धाचल) अथवा विमलगिरि उद्धाररास सं० १६३८ आसो सुदि १३, मंगलवार को अहमदाबाद में रची गई। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

सोल अडत्रीसे आशो मासे, शुदि तेरस कुजवार,
अहमदाबाद नयर मांहे में गायो रे शत्रुञ्जय उद्धार के।

यह भी आनन्दकाव्यमहोदधि में प्रकाशित रचना है। इसके कलश की दो पंक्तियाँ देखिये—

इम त्रीजग नायक मुगतिदायक, विमलगीरी मंडण धणी,
उधार शेत्रुञ्जे सार गायो, सुणो जिण मुगति धणी।[1]

प्रभावती (उदायन) रास अथवा आख्यान (सं० १६४० आसो शुद ५ बुध विजापुर) आदि—

प्रथमनाथ दाता प्रथम, जयगुरु प्रथम जुगादि,
प्रथम जिणंद प्रथम नमुं, जेणेकरी पुण्यादि।

यह आख्यान उत्तराध्ययन के अठारहवें आख्यान पर आधारित है जिसमें प्रभावती और राजा उदायी का चरित्र चित्रित है। रचनाकाल और स्थान का विवरण देखिये—

षट् सत्तिरी विद्यापुरी वे, मइ रहीया चुमासि,
श्रीसंघ ने आग्रहे ऊलही जिनवीर वंदी उलासि।
सोल च्यालिसी वरषि हरषे आसो पंजमी ऊजली,
बुधवार अनुराधा नक्षत्रे प्रीतियोगे मनरुली।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ९९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरसुन्दरी रास (सं० १६४६ जेठ शु० १३) इसमें नवकार मंत्र का माहात्म्य बताया गया है। यह भी आनन्दकाव्यमहोदधि में प्रकाशित है। इसके ३८ प्रतियों की सूचना श्री देसाई ने दी है अर्थात् यह अति लोकप्रिय रचना रही हैं। इसकी दो पंक्तियाँ देखिये–

आगे जिणे अेकचित्त ध्यायो सो परमानंद पायो,
सुरसुंदरी सतीअे समर्यो तब तसकष्ट गमायो।
कवण सती सा हुइ सुरसुंदरी किम राख्यु तेणे शील,
श्री नवकार मंत्र महिमाथे किम सा पामी सील।[1]

नलदमयंती अथवा नलायनरास (सं० १६६५ पोष सुदी ८ मंगलवार) यह रास माणिक्यसूरि विरचित नलायन ग्रन्थ पर आधारित है। इस सम्बन्ध में कवि ने लिखा है—

माणिक्यसूरि महायती तिणि करिउ नलायण ग्रंथ,
नवरस पयोधि विरोलिवा करि थयुजे सुरमंथ।

ग्रंथ विवरण—

ग्रंथ संख्या हवइ बौलु सुद्ध, दूहा श्लोक काव्य गाहा किद्ध,
भाष्या छंद षोड······दे, सहस्र तीनसइं अठाव
सतपांत्रीस श्लोक अनमान, हर्ष धरी सहु करयो गांन,
अे संभलता शिवसुष होइ, ज्ञानवंत विचारो जोइ।
ग्रंथ नलायन तु उद्धार नल चरित्र नवरस भंडार,
वाचक नयसुंदर सुभभाव, अे तलि अे षोडस प्रस्ताव।[2]

शील शिक्षारास—(विजयविजया सेठानी कथा गर्भित) सं० १६६९ भाद्रपद। इसमें सेठ विजय-विजया की कथा के माध्यम से शील की शिक्षा दी गई है।

गिरनार उद्धार रास (दधिग्राम में लिखी गई), यह मुनि वाल-विजय द्वारा श्री देसाई की प्रस्तावना के साथ प्रकाशित है। इसके आदि की दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

---

१. जैन गुर्जर कविओ पृ० १०२

२. वही, पृ० १०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकल वासव सयल वासव वसय पयमूल,
नमस्युं निरंतर भक्तिभर सांतिकरण चौबीस जिनवर,
नेमिनाथ बावीसमो सयल रयण भंडार सुहकर।[1]

आत्मप्रतिबोध कुलक—इसकी अन्तिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

अे आतमा प्रतिबोध अनोपम, जे भणसिइ नरनारी,
संभलसि जे वली सुखकारी, ते सही तुच्छ संसारि।
जुहार मित्र स्युं रंगि मिलसि, ते तरसइं संसार,
धर्म प्रभावि सदाफल सुंदर, नित-नित जयजयकार।

शंखेश्वर पार्श्व स्तवन अथवा छंद १३२ कड़ी। यह संस्कृत तथा गुजराती मिश्रित रचना है। यह रचना 'त्रण प्राचीन गुजराती कृतियों, नामक संकलन में शार्लोटि काउजी के सम्पादन में प्रकाशित है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—

बुध भानुमेरु सेवक भणइ, स्वामी मया साची करु,
नयसुंदर शिष्य संपतिकरण जयउ पास शंखेसरु।

शांतिनाथस्तवन ६४ कड़ी, यह एक सुंदर भक्ति काव्य है। इसका आदि देखिये—

जिनमुख पंकजवासिनी तत्त्वबुद्धि प्रकाशिनी,
विकासिनी मुझ मुख नयण-कमल सदा अे
सो सामिणि हीयडि धरुं, मिथ्या मति सवि परिहरुं,
स्तुति करूं शान्ति जिणंद तणी मुदा अे।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नयसुंदर विद्याविनय-संपन्न साधु एवं श्रेष्ठ साहित्यकार थे। इन्होंने अनेक उच्चकोटि की रचनायें की है तथा सदैव नम्रतापूर्वक भूलों के लिए क्षमा याचना की है। इनकी भाषा और काव्यकला सम्बन्धी क्षमता प्रायः अधिकांश जैन साधु लेखकों से अधिक सम्पन्न एवं पुष्ट है, श्री देसाई ने इनका नाम सर्वत्र नयसुन्दर लिखा है। इन्होंने स्वयं अपनी रचनाओं में अपना यही नाम दिया है पर डॉ हरीश शुक्ल ने इनका नाम नयनसुंदर दिया है यद्यपि

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १०८ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग १ पृ० २५४-६७, भाग ३ पृ० ७४८-५५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस नाम का कोई कारण नहीं बताया है पर जैन कवियों की हिन्दी कविता[1] उनका शोधप्रबन्ध है और शायद उन्होंने किसी शोध के आधार पर यह नाम रखा हो। मुझे तो यह छापेखाने की भूल लगती है और नाम नयसुंदर ही उचित लगता है।

नर्बुदाचार्य (नर्मदाचार्य) आप तपागच्छ कमलकलश शाखा के आचार्य मतिलावण्य के शिष्य कनक द्वितीय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६५६ विजयादशमी बुधवार को बुरहानपुर में 'कोककला (शास्त्र) चौपाई' लिखी। इसका विषय इसके नाम से ही स्पष्ट है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

मातंगी मति आपीये, जिम कवित करुं सुरसाल,
कोककला गुण वर्णवुं, प्रीछे बालगोपाल।

रचनाकाल—

संवत सोल छपने सार, शक पनर अेकवीस मझारि,
धातू अयम दक्षिणदिश रवि, शरदसपति महिबाल कवि।८०।[2]

यह रचना कोका कृत कोकशास्त्र पर आधारित है–

कोकशास्त्र कोके कीयउ, ते जाई सुविचन्न,
कवि नरबद इम ऊचरइ, बोलू कवित कथन्न।

रचना में कवि परंपरा विस्तार से दी गई है जिसमें मतिलावण्य के अनेक शिष्यों में कनक मुनि और उनके शिष्यों में कवि ने अपने नाम का उल्लेख किया है—

सूरिश्वरना गणधर अेह, केतला नाम कहुं बहु तेह;
गच्छ मांहि गुणवंत गंभीर, यतिअत कनक नमैं धीर।
अेहवा गुरु भटारक जेह, कहु उपमा सवाइ तेह,
शिष्य नरबुद नैं करुण करी, दीधो पद तैं ऊतम धरी।

कवि ने खानदेश के असीरगढ़ के किले और बुरहानपुर नगर का उल्लेख करते हुए वहाँ के बलशाली राजा दलशाह और उनके पुत्र बहादुरशाह का भी वर्णन किया है। वह स्वयं को कविराज कहता है—

---

१. डॉ० हरीश—जैन गुर्जर कविओ की हिन्दी कविता को देन पृ० ७७

२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३००-३०८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाना ग्रंथ तणा मत जोय, कोक चोपइ कीधी सोय,
श्री नरबुद कहै कविराज, अेह ग्रन्थ थरि हस्यो समराज।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कामशास्त्र अति उत्तम अेह, देइ चित्त नें सुणसें जेह,
अनंत सुख पामिसें सदा, श्री नरबुद कहे सुखसंपदा।[1]

कवि अहमदाबाद के श्रीमाली वैश्य देवराज के पुत्र थे। इनकी माता का नाम राजुल दे था; कवि ने इसका विवरण इस प्रकार दिया है—

श्री श्रीमाली तिहा विवहार, देवराज नामे उपचार,
मान दीयै महमद सुलताण, महिता मांहि बड़ो बंधाण।
नेह धरे कुलवंती सार, विपक्षचूरण कुलविखात,
राजुल दे नामे ऊतरे, तेहनी कुखे हूँ अवतर्यो।[2]

नरेन्द्रकीर्ति—श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इन्हें दिगम्बर सकलभूषण का शिष्य बताया है।[3] लेकिन डा० कासलीवाल इन्हें वादिभूषण और सकलभूषण दोनों ही संतों का शिष्य कहते हैं।[4] श्री नरेन्द्रकीर्ति ने ब्रह्म नेमिदास के आग्रह पर 'सगर प्रबन्ध' नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की। यह कृति सं० १६४६ आसो सुदी दशमी को पूर्ण हुई। यह अच्छी रचना बताई जाती है। इनकी दूसरी रचना 'तीर्थंकर चौबीसना छप्पय' है। इन ग्रन्थों की प्रतियाँ उदयपुर के शास्त्र भंडार में सुरक्षित हैं। इनका उद्धरण डॉ० कासलीवाल और श्री देसाई ने भी नहीं दिया है, इसलिए इनकी भाषाशैली एवं रचनाशैली का नमूना उपलब्ध नहीं हुआ। नरेन्द्रकीर्ति की एक अन्य रचना 'अंजनारास' का (सं० १६५२ मागसर शुदी १३ जावरा) जैन गुर्जर कविओ से उद्धरण दिया जा रहा है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३२३-३२६ और भाग ३ पृ० ८२७-८२८ (प्रथम संस्करण)

२. वही

३. वही, भाग २ पृ० २८० (द्वितीय संस्करण)

४. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० १९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री हनुमंत केवली थयो, कर्म हणीनि मुगति गयो ।
अनंत सौख्य पाम्यो मुनिराय, नरेन्द्रकीरति प्रणमी तस पाय।
मूलगंध उदयाचल भांन, कुंदकुंद गुणह निधान,
अनुक्रमि सकलकीर्ति मुनीराय, भुवनकीर्ति सुरपूजित पाय ।

× × ×

जंगम तीर्थ जग मांहि जांण, सकलभूषण संजमकज भांणि,
तेह पदकमल हृदय निज धरी, नरेन्द्रकीरति गुणमाला करी ।

यह रचना भी ब्रह्म नेमिनाथ के आग्रह पर की गई है। कवि ने रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

सोल बावनि मागसिर मास, शुदी तेरस तिहा करी निवास,
आदर नेमिदास ब्रह्म तणी, करी गुणमाला उद्यम घणि ।

आपकी चौथी रचना 'नेमिश्वर चन्द्रायणा' का मंगलाचरण निम्नांकित है—

परम चिदानंद मन्यधरी अनि प्रणमी श्री गुरु पाय,
हरष आणंदि सुं स्तवु श्री नेमिश्वर जिनराय ।[1]

गुरुपरंपरा :

तत्पट्ट पंकज सुर समान, सुमतिकीरति सुरी गुणह निधान,
ते चरण चित्त धरी रे विशाल, नरेन्द्रकीर्त्ति कहि रे रसाल ।
नरेन्द्रकीरति पाठक कहि अनि नेमि चंद्रायण सार,
भाव सहित भणि सांभली, ते पावे भवपार ।[2]

इसका रचनाकाल नहीं मालूम हो सका, लेकिन इसकी प्रतिलिपि सं० १६९० की उपलब्ध है। इसमें कुल १०४ पद्य हैं। इस रचना में कवि ने नेमिनाथ का पावन और मनोरम चरित्र चित्रित किया है। इनकी भाषा अन्य दिगम्बर कवियों की तरह स्वच्छ सरल हिन्दी है।

नवलराम—आप बुन्देलखण्ड के निवासी थे। आपने मुनिसकलकीर्ति के उपदेश से प्रेरित होकर अपने पुत्र के सहयोग से 'वर्द्धमान पुराण भाषा' नामक ग्रन्थ का प्रणयन सं० १६९१ में किया। यह काव्य

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २८० (द्वितीय संस्करण)

२. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २३२-२३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर स्वामी के जीवन पर आधारित है।[१] उस समय तक महावीर के जीवनवृत्त पर कम ही काव्य ग्रंथ लिखे गये थे अतः इस रचना का स्थान महत्वपूर्ण था। जिस समय महाकवि बनारसीदास समयसार नाटक लिख रहे थे तभी यह काव्य भी लिखा गया था। यह एक विस्तृत काव्यग्रंथ है। इसकी प्रति दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर, कामा में उपलब्ध है। इसमें कवि ने रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

सोरहसै इक्याणवै अगहण सुभ तिथिवार,
नृप जुझार बुन्देल कुल जिनके राज मझार।
यह संक्षेप वषाण करि कहौं प्रतिष्ठा धर्म,
पर जाग जुत्तवाडी विमल तिण उत्पत्ति बहुधर्म।

इसमें लेखक ने अपने कुल और वैश्यकुल के अन्य ८४ गोत्रों का वर्णन किया है। कवि ने सकलकीर्ति का उल्लेख भी किया है—

सकलकीर्ति उपदेश प्रवाण, पिता-पुत्र मिलि रच्यो पुराण।

इसकी अंतिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

पंचपरम जगचरण नमि, भव जग बुद्ध जुत धाम
क्रपावंत दीजे भगत दास नवल परणाम।[२]

नानजी—आप लोंकागच्छीय रूप > जीव > कुंवरजी > श्रीमल > रतनसी के शिष्य थे। आपने सं० १६६९ दीपावली के समय नवानगर में अपनी रचना 'पंचवरण स्तवन' को पूर्ण किया। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखें—

श्री अरिहंत पाओ नमीअ, स्तवन रचिसि जिनराय,
पंचवरण जिनवर तणां जी, कहिवा मुझ मन थाय।

रचनाकाल—गणि नेमि जिणंद सलोह मुनि नानजी अणि परि बोली,
संवत सोल उणोत्तरा वर्षे दीवालि दिन मन हरषे।

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची ५वां भाग पृ० २४

२. वही, पृ० २९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी दूसरी रचना 'नेमि स्तवन' (३१ कड़ी, सं० १६७२ दीपावली, अहमदाबाद) का मंगलाचरण निम्नाङ्कित है—

मंगलकारक दुरिय निवारक, पास जिणंद सिर नामीजी,
श्री नेमिसर भुवनदिणेसर, गुण गाइ मति पामी जी।[1]

रचनाकाल—संवत सोल बहुतिरि दिवसि दीवाली सूभ आज अे,
श्री जिनराज गुण गाइया, सिद्ध थया सर्व काज अे।

नारायण (१)—आप रत्नसिंह गणि के शिष्य चावा ऋषि के प्रशिष्य एवं समरचंद के शिष्य थे। आपकी नलदमयंतीरास, कुंडरिक पुंडरिक रास, श्रेणिक रास, अंतरंग रास और अयमत्ताकुमार रास नामक पाँच रासग्रन्थ उपलब्ध हैं। एक छोटी रचना १८ नात्रा संझाय भी प्राप्त है। इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

नलदमयंतीराम—(३१५ कड़ी, सं० १६८२ पौष शुक्ल ११ गुरुवार खाखा ग्राम) – रचनाकाल कवि के शब्दों में देखिये—

संवत सोल बीहासिया वरषे, पोष शुदि अेकादशी,
गुरुवार कृतिका तणइ जोगइ, कीधउ जीम उल्लसी।[2]

अन्तरङ्गरास—सं० १६८३ में लिखी गई। तीसरी कृति अयमत्ता कुमाररास (२१ ढाल १३५ कड़ी सं० १६८३ पौष वदि बुद्ध काचवल्ली) का कलश इस प्रकार है—

अरिहंस वाणी हृदय आणी पूरी इति निजआस अे,
श्री रत्नसीह गणि गछनायक पाय प्रणमी तास अे।
संवत सोला त्रिहासीआ वर्षे बुधि बदि पोस मास अे,
कल्पवल्ली मांहि रंगे रच्यो सुन्दर रास अे।
चावा ऋषि शिष्य समरचंद मुनि विमल गुण आवास अे,
तस शिष्य मुनि नरायण जंपे धरी मनि उल्हास अे।१३५।[3]

कुंडरिक पुंडरिक रास (२१ ढाल सं० १६८३)

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९५५-५६ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १५८ (द्वितीय संस्करण)

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २४२ (द्वितीय संस्करण)

३. वही, भाग ३ पृ० २४३-२४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि—

श्री जिनवयण आराधीइ, आणी हरष अपारो रे,
त्रिसलासुत नामइं सदा, लहीइं ज्ञान उदारो रे।
श्री रतनसागर गच्छपति ऊपम नेमकुमारो रे,
प्रात समय प्रेमइं नमु छकाय आधारो रे।

अन्त— ज्ञाताधर्म कथांग मांहि इम भासीउ जगनाह,
अे ढाल कही अेकवीसमी मनसुधिइं रे भणतां बहुलाह।

यह रचना ज्ञाताधर्म की कथा पर आधारित है।

'१८ नात्रासंझाय' ३८ कड़ी की लघु कृति है। इसकी पहिली कड़ी निम्नवत् है—

वंदु श्री जिन सुखदातार, त्रिसलानंदन जगदाधार,
सुणिरे भविया कर्मविचार, मत कोइ संचो कर्मभंडार, सुणिरे।

अंत अनंत सुख सु प्रेम आणी सेवीइ जिनदेव अे,
दयाधर्म गुरु साध केरी कीजिइ नित सेव अे।
समरचंद ऋषिराय जसधार तास पाय नमेव अे,
मुनि नारायण वंदि रंगइ साधुवयण सुणेव अे।[1]

इनकी प्रसिद्ध रचना 'श्रेणिकरास' दो खंडों में विभक्त है। इसका आदि देखिये—

परम पुरुष प्रणमु सदा, श्री महावीर जिणंद,
त्रिसलानंदन जग गुरु

इसमें मगध सम्राट् श्रेणिक अर्थात् बिम्बसार का वर्णन किया गया है। कवि कहता है—

प्रथम जिणेसर श्रेणिक सार, होसइ भरत क्षेत्र मझारि,
तेह तणुं छइ चरित्र रसाल, भणतां सुणतां मंगल माल।

प्रथम खंड की अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

श्रेणिक अभयकुमार चरित्र, भणतां सुणतां अतिहि पवित्र,
मुनि नारायण कहि शुभवाणि, प्रथम खंड संपूर्ण जाणि।

दूसरे खंड का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५१५-१९ और भाग ३ पृ० ९९९ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जिननायक भाव सुं वंदु हुं जगदाधार,
वर्द्धमान स्वामी जयु सेवकजन हितकार।
× × ×

अन्त-नेम यदुपति जामलि दुष्कर महाव्रत घाट,
श्री सद्गुरु सुपसाउलिउ, मि रचीउ रे खंड बीजु सार रि।३९।
सासन सोहकर समरचंद मुनीवरा, धर्मधोरंधर धीर,
अति उदार सहिक गुण तेहने निति-निति रमइ कवी मन कीर।
तस शिष्य ऋषि नारायण हरष सु, इम भणि वचन रसाल,
जेह भावि भणइ मोद आणी तेहनइ मंगलमाल।४१।[1]

नारायण (२)—आप लोकागच्छीय रूप ऋषि के प्रशिष्य एवं जीव राज ऋषि के शिष्य थे। आपने भी 'श्रेणिकरास' नामक काव्य की रचना ४ खंडों में की है। यह ५०५ कड़ी की विस्तृत रचना सं० १६८४ आसो वदी ७ गुरुवार कल्पवल्ली में रची गई। ये दोनों कवि न केवल समसामयिक हैं बल्कि समस्थानिक भी हैं और एक ही विषय श्रेणिक पर दोनों ने रचनायें की हैं। पर दोनों की गुरु परंपरा और रचनायें भिन्न-भिन्न है, इसका भी प्रारम्भिक अंश फटा है अतः आदि नहीं दिया जा सकता। इसके चौथे खंड की कुछ पंक्तियां देखिये—

श्रेणिक राय तणु मनमोहन, सुंद चरित्र उराल,
चउथउ खंड चतुरचितरंजक, भाष्युं अेह रसाल।

रचनाकाल एवं गुरु परंपरा—

श्री जिनशासन शुद्ध प्ररूपक रूप ऋषीश्वर जाणु,
तेह तणइ पाटिइ गछनायक श्री जीवराज बखाणु
राग धन्यासी करी सुन्दर बत्रीसमी अे ढाल,
मुनी नारायण इणि परि जंपइ, सुणतां अतिहि रसाल।
वेद वसु रस चंद वरसइ आसो वदि पक्ष सार अे,
कल्पवल्ली मांहि रचीउं सप्तमी गुरुवार अें।
बहुरंग आणी भविक प्राणी लाभ जाणी मति अती,
मधुरवाणी सरस जांणी भावि भणज्यो शुभमती।[2]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २४६-२४७ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ५१५-१९ तथा भाग ३ पृ० ९९८-९९ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० २५९-६० (द्वितीय संस्करण) तथा भाग ३ पृ० १००० (प्रथम संस्करण)

१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोबो—आपका इतिवृत्त नहीं प्राप्त हो सका। आपने सं० १६७५ से पूर्व 'आदिनाथ विवाहलो' नामक काव्य की रचना की। यह २४५ गाथा की रचना है।[1] इसके अतिरिक्त कोई सूचना न तो कवि के सम्बन्ध में प्राप्त है और न कृति के बारे में।

नेमिविजय—तपागच्छीय विद्याविजय आपके गुरु थे। आपने सं० १६९५ आसो सुदी ३ रविवार को 'अमरदत्त मित्रानंद चौपाई' की रचना २४ ढाल में की। इसकी प्रति त्रुटित है, अतः आदि और अन्त के आवश्यक विवरण अज्ञात हैं। रचनाकाल अवश्य उपलब्ध है, यथा—

सोलइ पंचाणूइ वरषइ, आसोजइ त्रीज रवि हरषइं,

सहु श्रावक चतुर सुजाण··· के पश्चात् त्रुटित है किन्तु इतना निश्चित हो जाता है कि यह रचना सं० १६९५ की है। इसमें गुरु परम्परा भी दी गई है जिसके अन्तर्गत तपागच्छीय विजयदेव से लेकर विद्याविजय तक का उल्लेख है। २३वीं ढाल की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

राग रामगिरि कहीजइ, त्रेवीसमी अे ढाल रे,
नेमविजय कहइ कंठि कहता, रंजइ नर भूपाल रे।

इन पंक्तियों से अनुमान होता है कि कवि अच्छा गवैया था और अपनी रचना को स्वयं गाकर सुनाता था। श्रोता उसके कंठ की प्रशंसा करते होंगे। मित्रानंद की कथा के माध्यम से कवि ने क्रोध, कषाय आदि पर विजय प्राप्त करने का मनुष्यों को संदेश भी दिया है, यथा—

थोड़इ क्रोध न कीजइ, जिण धरम तणां फल लीजइ,
सुणी मित्रानंद अधिकार, सहु छोड़ो क्रोध संसार।
अे चउपइ सरस अपार, शांति चरित्र थी कीउ उद्धार,
लही सद्गुरु नो आदेस ओडी म्हइं सरस विशेष।

यह कथा शांति चरित्र पर आधारित है और शांति का संदेश देती है।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९७१ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १८८ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० ३११-१२ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० १०६०-६१ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्मकुमार—आप खरतरगच्छीय पूर्णचन्द्र के शिष्य थे। आपने सं० १६८४ में 'मृगध्वज चौपइ' की रचना की।[1] यह रचना ८४ कड़ी की है और सं० १६६१ से पूर्व लिखी गई। इसकी प्रारंभिक पंक्तियां उद्धृत की जा रही हैं—

पणमिय सिरि गोयम गणहर मणह खाय,
हुं गावसि गिरुया मृगध्वज मुनिवर राय।
स्रावस्ती नगरी अमरावती संमाण,
तिहां राज करइ जितशत्रु नरेसर जाण।१।

इसकी अंतिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

मृगध्वज मुनि तणउ चरित्र, सुणता हुई जनम पवित्र,
श्री नेमिनाथ वारइ अेह, रिषि हूंया गुणगण गेह।
धन धन मृगध्वज मुनिराय, यह ऊठी प्रणमुं पाय,
तसु नामइ नवइ निधान, पामीजइ सुख संतान।
खरतरगच्छ सत्गुरुराय, श्री पूर्णचन्द्र उवझाय,
तासु सीस सद्द सुविचार, इम बोलइ पद्मकुमार ।[2]

पद्ममंदिर—आप खरतरगच्छ की सागरचन्द्रसूरि शाखा में देवतिलक उपाध्याय के शिष्य थे। आप गद्य और पद्य रचना में समान रूप से कुशल थे। गद्य में आपकी कई रचनायें उपलब्ध हैं जिनमें गणधर सात शतक लघुवृत्ति (सं० १६४६, जैसलमेर) प्रकाशित हो चुकी है। आपने सं० १६५१ में ११ हजार श्लोकों में 'प्रवचनसारोद्धार बालावबोध' नामक भाषा टीका लिखी। आपकी एक अन्य गद्यकृति 'पार्श्वनाथदसभवबालाबोध' भी प्राप्त है।[3] इससे प्रमाणित होता है कि गद्य विधा में आपकी विशेष गति थी। विजयराज>देवतिलक शिष्य पद्ममंदिर की एक रचना 'बृहत्स्नात्रविधि' भी गद्य में है। इसका रचनाकाल सं० १६५९ है। रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है 'पहिली छत्रपरिभ्रमण प्रक्षेप बलि दिकपाल स्थापनाइ रहित स्नात्र

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८६

२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४६३ और भाग ३ पृ० ९३७ (प्रथम संस्करण) तथा भाग २ पृ० ३९३ (द्वितीय संस्करण)

३. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधि लिखीयइ छइ। पहिली धूप झलि सत्क मंगलदीव इ कीधइ. बीजा धूपवलि वाजित्र बजाडि।"[1]

पद्य में आपने अपने गुरु देवतिलक उपाध्याय की प्रशंसा में 'देवतिलकोपाध्याय चौपइ (१५ गाथा) लिखी है जो ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है। इसका आदि इस प्रकार है–

पास जिणेसर पयनमु निरुपम कमलानंद,
सुगुरु थुणता पामियइ, अविहड सुख आणंद।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ भी उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं–

गुरु श्री देवतिलक उवझाय प्रणम्यइ बाधइ सुहसमवाय,
अरि करि केसरि-विसह चोर समर्थउ असिव निवारइ घोर।१४।
अे चउपइ सदा जे गुणइ, उठि प्रभाति सुगुरुगुण थुणइ,
कहइ पद्ममंदिर मन शुद्धि तसु थाये सुखसंपति सिद्धि।१५।[2]

आप एक श्रेष्ठ गद्य लेखक और अच्छे कवि थे।

पद्मरत्न—आप खरतरगच्छ की आद्यपक्षीय शाखा के लेखक थे। यह शाखा शान्तिसागर और जिनदेव सूरि से प्रारम्भ हुई थी। यह पता नहीं चल पाया कि आपके गुरु कौन थे। आपने सं० १६६५ में 'अजापुत्र चौपइ' लिखी थी।[3] चौपइ का अन्य विवरण एवं उद्धरण प्राप्त नहीं हो सका।

पद्मराज—आप खरतरगच्छ के महोपाध्याय पुण्यसागर के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६५० में 'अभयकुमार चौपइ' की रचना जैसलमेर में की। क्षुल्लककुमार राजर्षि चरित्र या क्षुल्लकऋषिप्रबन्ध (सं० १६६७ कार्तिक शुक्ल ५, मुलतान) यह १४१ गाथा की रचना है। सं० १६६९ में सनत्कुमाररास लिखा। अन्य स्तवन और गीतादि भी इन्होंने लिखे हैं। पुण्यसागर के साथ मिलकर पद्मराज ने कई संस्कृत ग्रन्थ और विद्वत्तापूर्ण टीकायें भी लिखी हैं।[4] इनकी कुछ प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३६७ (द्वितीय संस्करण)

२ ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ५५;
जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३६७ (द्वितीय संस्करण)

३. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८८

४. वही, पृ० ७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभयकुमार चौपाई का आदि—

अविचल सुख संपतिकरण, प्रणमुं पास जिणंद,
शासन नायक सेवीइ, वर्द्धमान जिनचंद।
गोयम गणधर प्रणमी सवि, समरुं सद्गुरु पाय,
सरस वचन रस वरसती, सरसति करउ पसाय,
सुणता चित्त अचरिज करइ, बहुविध बुद्धि विशाल;
मुनिवर अभयकुमार नउं भणिसु चरीय रसाल।

अन्त—जे जिनवचन विरुद्ध कह्याइ, मिच्छा दुक्कड़ ते मुज्झ थाय।

रचनाकाल—

संवत सोलह् सइ पचास, जेसलमेरु नयर उल्लासि।
खरतरगछ नायक जिनहंस, तासु सीस गुणवंत वयंस,
श्री पुण्यसागर पाठक सीस, पद्मराज पभणइ सुजगीस।[1]

क्षुल्लककुमारराजर्षिचरित्र के आदि की पंक्तियां निम्नांकित हैं—

पास जिणेसर पयकमल, पभणिस परम उल्लास,
सुखपूरण सुरतरु समउ, जागइ महिमा जासु।

रचनाकाल— सोलह् सइ सतसठा वच्छरइ, श्री मुलतान मझारि,
फागुण मासि धवल पंचमी दिनइ, संघ सयल सुखकार।

आगे गुरुपरंपरा दी गई है और जिनहंस तथा पुण्यसागर का पुण्यस्मरण किया गया है। इस ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ विभिन्न भंडारों में उपलब्ध हैं, इससे इसकी लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है। आपकी भाषा शैली से लगता है कि आपका हिन्दी, गुजराती के साथ संस्कृत-प्राकृत पर भी अच्छा अधिकार था। उदाहरणार्थ दो पंक्तियाँ देखिये—

भवतरु मूल वखाणिया जिनवर च्यारि कषाय,
लोभवली तिणमइ अधिक, पापह् मूल कह्याइ।

---

१. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची, ५वाँ भाग पृ० ३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसउ लोभ जीपइ जीके, आणी मन संतोष,
मुनिवर क्षुल्लकुमार जीम, ते पामइ सुखखेम।[1]

इस रचना में कवि पद्मराज ने क्षुल्लककुमार के जीवनादर्शों के आधार पर यह उपदेश दिया है कि संतोषपूर्वक लोभ पर विजय पाना बड़ा पुरुषार्थ है। इस चरित्र की भाषा प्रांजल और प्रसादगुण सम्पन्न है।

'भगवद्वाणी गीत' नामक छह कड़ी की एक छोटी रचना के लेखक भी पद्मराज हैं, किन्तु ये पुण्यसागर के शिष्य और क्षुल्लककुमार चरित्र आदि के लेखक हैं या कोई अन्य, यह निश्चित नहीं हो सका क्योंकि गीत का जो अंश श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ[2] में उद्धृत किया है उसमें गुरुपरंपरा नहीं है। यह गीत सं० १७६४ से पूर्व लिखा गया है। इसके लेखक पद्मराज को ज्ञानतिलक का गुरु कहा गया है। ज्ञानतिलक का समय सं० १६६० है अतः यह निश्चित है कि ये पद्मराज निश्चित रूप से १७वीं शताब्दी के ही कवि हैं। अतः इनकी रचना का उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

आदि—वाणी तौ वीर तिहांरी त्रिभुवनजन मोहन गारी
जिनवरवाणी बे।
वाणी तौ सबही सुहामणी श्रवणकुं अमृत समांणी जि०।
वाणी तौ घन जिम गाजइ बहु राज जुगुति करी छाजइ जि०।

× × ×

अंत— वाणी तौ ईष रसाला रिझइ सब बाल गोपाला जि०।
इण वाणी ते कोइ न तोलइ श्री पद्मराज इम बोलइ जि।[3]

यह गीत राग सारंग में आबद्ध है और गेय है। इसकी प्रति रत्नसिंधु द्वारा सं० १७६४ में पाटण में लिखी गई थी। काफी सम्भावना

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २६५ (द्वितीय संस्करण), भाग १ पृ० ३९३ और भाग ३ पृ० ८७५-७७ (प्रथम संस्करण)।

२. वही, भाग ३ पृ० ३६६ (द्वितीय संस्करण)।

३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि दोनों पद्मराज एक ही व्यक्ति हों पर निश्चित प्रमाण के अभाव में अंतिम निर्णय शोधी विद्वानों के लिए छोड़ दिया जाता है।

पद्मविजय—आप तपागच्छीय हीरविजयसूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६५२ से पूर्व ही 'तीर्थमाला' की रचना की। इसे 'तीरथमाला-गुणस्तवन' भी कहा गया है।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

समरसि समरसि सरसति, वरसति वचनविलास,
तूं तूंठी मुझ आपजे, सांचो वचन बिलास।
वाणी वाणी इम भणे, तू तूठी अेकंति,
कवि केलवणी केलवइं, केवल आंणे खंति।

इसका अन्तिम कलश इस प्रकार है—

अे तीरथमाला गुणविशाला कंठपीठजेठवे,
तसमुगतिबाला अतिरसाला वरणवरमालाठवे।
श्रीहीरविजयगुरु सुरिपुरंदरसीस पद्मविजयकहे,
जे सुगुणगुणस्ये अने सुणस्ये मंगलमाला ते लहे ॥[1]

पद्मसुन्दर (१)—खरतरगच्छीय देवतिलक उपाध्याय के शिष्य विजयराज आपके गुरु थे। आपने सं० १६५१ में 'प्रवचन-सारोद्धार बालावबोध' लिखा। इनकी कोई पद्य रचना नहीं मालूम है, अतः ये गद्य लेखक ही प्रतीत होते हैं।[2]

पद्मसुन्दर (२)—आप बिवंदणिकगच्छीय माणिक्यसुन्दर के शिष्य थे। इनकी अनेक उत्तम काव्य रचनायें उपलब्ध हैं जिससे प्रकट होता है कि ये अच्छे कवि थे। श्रीसार चौपइ या रास, ईशान-चन्द्र विजया चौपइ, रत्नमालारास, श्रीपाल चौपइ रास, कथाचूड चौपइ, कनकरथरास, श्रीदत्त चौपइ आदि आपकी प्रमुख काव्य रचनायें प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त उपशमसंज्झाय आदि कई लघुकाव्य कृतियाँ

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७८ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ३०८ (प्रथम संस्करण)

२. वही, भाग २ पृ० २७२ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० १५९७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी प्राप्त हैं। इनमें से कुछ का विवरण-उद्धरण नमूने के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीसार चौपइ (गा० ३५८ सं० १६४० चाडा)। श्रीसारराजा अपनी मनमोहनी पत्नी के मोह में पड़कर तमाम जगहों में भटकता और अनेक कष्ट पाता है। प्राचीनकाल से लोगों में यह दन्तकथा प्रचलित थी। उसी के आधार पर कवि ने यह रचना प्रस्तुत करके जनता को मोह से मुक्त होने का संदेश दिया है।

कवि ने लिखा है—

म करु मोह इम जाणीनइ, पालुश्रीजिनवाणि
संवत् कमलिणिपतिकला, संवछरवि बीसजाणि ॥५६॥
दंतकथा इम सांभली, समंध कोसइ आधार,
चउपइ कही मन रीझवा, चाडा गाममझारि।[1]

ईशानचन्द्र विजया चौपइ (गा० ५११, सं० १६४२ कार्तिक, शुक्ल १५, गुरुवार, चाडा, तरंगा जी के पास) यह रचना जैन धर्म के महत्वपूर्ण सिद्धान्त सम्यक्त्व की महिमा पर प्रकाश डालती है। दृष्टान्त रूप में ईशानचन्द्र विजया की कथा 'कथाकोश' से ली गई है। कवि ने लिखा है—

सुगुरु आंणसरिनीति वहूं, श्रुत जोइ आधार,
कथाकोसि चुपै कहूँ, मतिहोयो मुझसार।
जैनधरम अगिदोहलु, जासमूल समकित,
प्रथम मनिइं राखु खरुं सत्रूमित्र समचित्त।

इसके अन्त में रचना तिथि और गुरु परम्परा इस प्रकार कही गयी है—

बिवंदणीक पंडित गुरुराय, माणिक्यसुन्दर पणमी पाय,
संवत् चंद्रकलाजांणीइ, वरस अेह हइइ आंणीइ।
करम तणा बीजा जे सार, धरम तणा जेतला प्रकार,
इम सम्वछर जांणु सही, मास वरस धुरिजे कही।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १७८-१८५ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७५६-७६४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तथि संख्याइ तथि जांणयो सुरगुरु उस्ताद वार मांनयो।
इसमें 'उस्ताद' शब्द का प्रयोग दर्शनीय है।

रत्नमालारास (गा० १३८, सं० १६४२ कार्तिक शुक्ल १०, सोमवार, चाडा)।

इसका रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

सोमकला संवत संवछर दोइ अधिक च्यालीस,
गीता छन्द इहां अेहरचीउ माणिक्यसुन्दर सीस।

रत्नमाला ने प्राणों की परवाह न करते हुए अपने शील की रक्षा की—यही उपदेश इस कृति का है।

श्रीपाल चौपइ (गा० २४५, सं० १६४२ कार्तिक वदी ७, गुरु, चाडा) कवि ने इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

आठ दोअे सम्वत् बिच्यार, बरस धुरिइं ते मास विचार,
सतमि सांमा नइ गुरुबार, चाडि रास रचिउ सुविचार।[1]

इसका अन्तिम कलश निम्नांकित है—

वरिसवि सुखराय श्रीपति दीन दानिइ ऊधरिउ,
साधुदानि राजा रांम त्रणि २ लीला वरिउ।
आपदा सवि दूरी कीधी सम्पदा वंछित फली,
सहित समकित दांन देतां दूध जिम साकर भली।

ऊपर की तीनों रचनायें ईशानचंद्र चौपइ, रत्नमाला रास और श्रीपाल चौपइ सम्वत् १६४२ के कार्तिक मास में चाडा में ही लिखित बताई गई है, आश्चर्य होता है कि कवि कर्म में पद्मसुन्दर को कितना लाघव प्राप्त था कि उन्होंने इतनी बड़ी रचनायें मात्र एक माह में एक ही स्थान पर पूरी कर डालो।

कथाचूड़ चोपाई (सं० १६६४ माग० वदी १ गुरु, चाडा) इसका आदि देखिये—

परम अरथ जेंणि साधीउ, ते प्रणमूं त्रिणिकाल,
सरसति सुगुरु पसाउलि, कहुँ चुपै रसाल।

1. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १८०-१८२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप ऊपरि सुन्दर सरस, जेह थी छूटी करम,
सइं मुखि कहि जिणवर असिउ, तप छि ऊतम धरम।

इससे प्रकट है कि यह रचना तप के प्रताप का वर्णन करने के लिए लिखी गई है। यह कथा भी कथाकोश से ली गई है।

कनकरथरास (गा० २७२) भी कथाकोश पर आधारित रचना है। इसमें दान का माहात्म्य समझाया गया है। सम्बन्धित पंक्तियाँ देखिये—

अरिहंत चुवीसइ जपउं वंछउ कवि आसीस,
दान तणां फल वर्णवउं कनकरथ नरइस।

इसके अन्त में लिखा है–कथाकोसिइं कथाकोसिइं कहिउ दृष्टान्त[1]

श्रीदत्त चौपइ (४६१ गाथा, सं० १६४२ आसो शुद ३ गुरु, चाडा)

आदि—सरसती भगवति पाय प्रणमुं, दीऊ बुद्धि भण्डार,
हूं मूढ़ नि मतिहीण छउं, पणि आपि तुं आधार।

रचनाकाल—सम्वत आठ बिवार, वरस बिनई च्यार,
बांमांकिइ गणउ अे सहू अे अे भणउ अे।

अन्तिम पंक्तियाँ—

श्रीदत्त मुनिवर सुगुण सुन्दरराग विराग ऊपरि रचिउ;
ढाल चूपै दूहा भेली मनह मेली अे रचिउं
जि भणि भावइं सुणि गावइं तस मनवंछित फलि,
राजरद्धि राणिम सपरिवारह ईहां भवि परभवि भलि।[2]

उपशमसज्झाय (२१ कड़ी, सं० १६४७ वैशाख वदी, १० गुरुवार, चाडा)

रचनाकाल—संवत सोल सतताल नइं रे, वदि वैसाख विसेसो,
दसमी गुरुवारइ रचीरे, ओछ मतइ लवलेसो।
लवलेस कही छइ पांच सझाइ, पदमसुन्दर बोलइ उवझाइ;
चाडउ नयरे आणंद आवइ, उपसम सु सुणज्यो भावइ।[3]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १८३-१८४ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, पृ० १८५

३. वही, भाग ३ पृ० ७५६-६४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार कथाकोश की विभिन्न कथाओं को दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि पद्मसुन्दर ने दया, दान, शील, सम्यक्त्व और वैराग्य आदि का सन्देश मनोरम भाषा शैली में पाठकों तक अनेक रचनाओं के माध्यम से पहुँचाया है।

पद्मसुन्दर (३)—आप नागौरी तपागच्छ के विद्वान् साधु पद्ममेरु के शिष्य थे। इनके दादागुरु आनन्दमेरु का सत्कार हुमायूँ ने किया था। यह बात 'अकबरसाहि शृङ्गारदर्पण' नामक आपके ग्रन्थ से प्रमाणित होती है। बादशाह अकबर के दरबार के ३३ हिन्दू सभासदों के पाँच विभागों में से प्रथम विभाग में पद्मसुन्दर का नाम था। इससे प्रकट होता है कि प्रस्तुत पद्मसुन्दर का सम्राट् अकबर के दरबार में सम्मान था। आप जोधपुर के राजा मालदेव द्वारा भी सम्मानित थे। आप अनेक दर्शनों के ज्ञाता कहे गये हैं। आपने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। भविष्यदत्त चरित्र सं० १६१४, रायमल्लाभ्युदय सं० १६१५, पार्श्वनाथ चरित्र सं० १६१५, अकबरशाहि शृङ्गार दर्पण और जम्बूचरित आदि आपकी प्राप्त पुस्तकें हैं।[1] सम्वत् १६३९ में जब अकबर की भेंट हीरविजयसूरि से हुई थी तब सम्राट् ने इनकी पुस्तकों का संग्रह सूरिजी को भेंट किया था। प्रथम तीन ग्रन्थ रायमल्ल की प्रेरणा से लिखे गये थे। अग्रवाल रायमल्ल दिगम्बर सम्प्रदाय के श्रीमन्त थे और पद्मसुन्दर श्वेताम्बर थे, किन्तु दोनों के पारस्परिक निकट सम्बन्ध को देखते हुए यह भी अनुमान होता है कि अकबर की समन्वयात्मक नीति के चलते इन दोनों सम्प्रदायों में भी पर्याप्त निकटता आ गई थी। रायमल्ल अग्रवाल थे और मुजफ्फरपुर जिले के चरथावल (चरस्थावर) के निवासी तथा राजसम्मान प्राप्त श्रीमन्त थे। कवि ने उनके पूरे परिवार की बड़ी प्रशंसा की है। इनकी किसी रचना का उद्धरण नहीं प्राप्त हुआ। जो विवरण उपलब्ध है, उससे पता लगता है कि माणिक्यसुन्दर के शिष्य पद्मसुन्दर और पद्ममेरु के शिष्य पद्मसुन्दर दो व्यक्ति थे।

परमा—लोकागच्छ के श्रीपत>तेजसिंह>सोभा>मोल्हा> वीरजी>धर्मदास>भानु>चतुर्भुज> राजसिंह के शिष्य थे। आपने

१. श्री नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास पृ० ३९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० १६४८ महा शुद १० शनिवार को शील विषय पर प्रभावती चौपाई लिखी। इसकी भाषा पर पंजाबी प्रभाव परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये—

दिन दिन प्रतपो श्री गच्छनायक श्रीपत पटे भावंदा,
साधु सुधर्मा ने गति चले, गुण छत्तीस सुहावंदा।
आचारज चिरजीवो तेजसिंघ, चौरासी गछ-गुण गावंदा
तास गच्छ थेवर अति उत्तम तपजप क्रिया-दिपावंदा।

× × ×

कवि ने अपना संक्षिप्त परिचय इन पंक्तियों में दिया है—
दिन-दिन प्रतपो श्री गुरु-मेरा श्रीराजसिंघ मुनिंदा ॥९३
तास शिष्य निर्मल मति जाका मुनि फेरु जग भावंदा।
तसु सुत लघु गुरु भाई परमा, शील तणा गुण गावंदा ॥९४

अर्थात् कवि के गुरु राजसिंह थे। कवि के पिता फेरु भी उनके शिष्य थे। इस प्रकार गृहस्थ जीवन के पिता फेरु वैराग्य जीवन में गुरुभाई थे। परमा ने यह गीत शील के माहात्म्य पर लिखा है।[1]

परमानन्द -खरतरगच्छीय पुण्यसागर के प्रशिष्य एवं जिनसुन्दर के शिष्य थे। इन्होंने सम्वत् १६७५ में 'देवराजवच्छराज चौपइ' की रचना मरोठ में की।[2]

श्री देसाई ने परमानन्द को खरतरगच्छीय जिनसागर सूरि शाखा के जीवसुन्दर का शिष्य बताया है। लगता है कि जिनसुन्दर की जगह जीवसुन्दर भ्रम वश लिख पढ़ लिया गया है,[3] क्योंकि रचना का नाम हंसराज वच्छराज चौपइ ही लिखा है और रचनाकाल सम्वत् १६७५ तथा स्थान मरोठ लिखा है। अतः काफी सम्भावना है कि उक्त दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हों और रचना के नाम में देवराज और हंसराज का हेरफेर हो गया हो।

परमानन्द(२) —तपागच्छीय आणंदविमलसूरि>श्रीपति>हर्षाणंद के आप शिष्य थे। आपने सं० १६५२ में 'हीरविजयसूरि निर्वाण'

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४५-४६ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७९१-९२ (प्रथम संस्करण)
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७२
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९७२ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १८८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखा। हर्षाणंद के दूसरे शिष्य विवेक हर्ष ने हीरविजयसूरि (निर्वाण) रास भी इसी समय लिखा था। परमानंद के ग्रंथ का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

समरी सरसति भगवति शुभमति, आपे अविरल वाणी जी,
हीरविजयसूरि जगगुरु गाऊं, परमाणंद चिति आणी जी।
जय जय जय जगगुरु गछपति गुरुओ।

रचनाकाल–संवत पन्नर ? (सोल) बावने आसो वदि सातमि जाणजीरे,
परमानंदे ऊनागढ़े रचिओ हीरनिर्वाण जी।

रचनाकाल सं० १५५२ हो ही नहीं सकता क्योंकि सूरि (हीरविजय) जी का निर्वाण तब नहीं हुआ था। इसलिए यह सं० १६५२ ही होगा। यह रचना ऊनागढ़ में हुई और इसका नाम केवल 'हीर निर्वाण' ही कवि ने लिखा है। यह १०२ कड़ी की रचना है। अन्तिम कड़ी की दो पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

तास चरणसेवाकरु परमाणंद भल सीसे जी रे,
बोल्या गुण जगगुरु तणा, जयवंता जगिदीसे जी रे।१२०।[1]

परमानन्द (३)—तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य विजयसेनसूरि के शिष्य थे। इन्होंने सम्वत् १६७१ से पूर्व नानादेशदेशीभाषामय स्तवन लिखा है। विजयसेन सूरि सम्वत् १६७१ में स्वर्गवासी हुए थे, अतः यह उससे पूर्व ही रची गई होगी। आदि

ॐ त्रिभुवनतारण तीरथ पास चिंतामणी रे,
कि विजय चिंतामणि रे;
चाल्ति चतुर प्रिउ यात्रि जाइइ इम भणइ भामनी रे।
प्रिय सेज वालि जो तारा वि कि धवल धुरंधरा रे।
तस सींगि सीवनषोलि कि धम धम धूधरा रे।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—

इम सकल तीरथ सबल समरथ, पास त्रिभुवन नु धणी।
तपगछि जिणइ जयकार दीघु तिणइ विजयचिंतामणी।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७८-२७९ (द्वितीय संस्करण) तथा भाग १ पृ० ३१० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारमल्ल राजा वड दवाजा करी थाप्या जिनवरु,
श्री विजयसेन सूरींद सेवक पंडित परमाणंद जयकरु ।७७।[1]

यह रचना कुल ७७ कड़ी की है और इसे कवि ने कच्छ के विजयाचिंतामणि मंदिर में लिखा था।

परिमल या परिमल्ल—आप गोपाचल या ग्वालियर निवासी वरहिया वैश्य कुल के चौधुरी चंदन के वंश में आसकरन के पुत्र थे। वरहिया ग्वालियर की एक सम्पन्न विरादरी थी। चौधुरी चंदन का ग्वालियर के राजा मानसिंह के दरबार में सम्मान था। कवि ने अपनी प्रसिद्ध लोक प्रिय रचना 'श्रीपालचरित्र' में अपना वंशपरिचय इन पंक्तियों में दिया है—

गोपाचल गढ़ उत्तिम थांन, सूरवीर तहाँ राजा मान,
ताको दलु बलु बहुत असेस, गढ़ पै राजु करै सुनरेश।
ता आगे चंदन चौधरी कीरति सबै जगत बिस्तरी,
जाति वानिया (वरहिया) गुन गंभीर,
अति प्रताप कुल मंडन धीर।[2]

बाद में आप ग्वालियर को छोड़कर आगरा चले आये थे। उस समय आगरा पर सम्राट् अकबर का शासन था। कवि ने सम्राट् के सम्बन्ध में लिखा है—

बब्बर पातिसाहि होइ गयौ, ता सुतु साहि हिमाउ भयौ,
ता सुतु अकबरु साहि सुजानु, सो तप तपै दूसरौ भानु।
ताके राज न कहूँ अमीत, चलै विक्रमाजीत की रीत।[3]

अपने आगरे में बसने के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है—

ता सुत रामदास परवीन, नन्दनु आसकरन सुखलीन,
ता सुत कुलमंडन परिमल्ल, वसै आगरे में तज्जि सल्लु।

कवि ने सम्राट् अकबर, नगर आगरा और नदी यमुना के साथ अपने वंश का भी विवरण रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। सम्वत्

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १७०-१७१ (द्वितीय संस्करण)
२. हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की २० वीं त्रैमासिक रिपोर्ट नं० ४ नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ० ४६८
३. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६५१ में परिमल्ल ने श्रीपालचरित्र रचा। यह अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है। इसकी तमाम प्रतियाँ और उनके अनेक विवरण उपलब्ध हैं। यह उच्चकोटि का प्रबन्ध काव्य है। इसमें राजा श्रीपाल एवं रानी मैना सुन्दरी की कथा है जिसने अपनी जिन भक्ति के बल पर पति का कोढ़ ठीक कर लिया था। धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, हिंसा-अहिंसा का घात-प्रतिघात दिखाकर कवि ने बड़े कौशल से श्रीपाल के चरित्र का दृष्टान्त मैना सुन्दरी के शील के आधार पर प्रस्तुत किया है। अन्त में जैनधर्म का महत्व दिखाते हुए प्रबन्धकाव्य समाप्त किया गया है। यह रचना दोहे-चौपाइयों में लिखी गई है। भाषा में तद्भव शब्दों की प्रधानता है किन्तु यति गति का बराबर ध्यान रखा गया है। काव्य भाषा में अनुप्रास एवं अन्य अलंकारों का समावेश है। भाषा में ब्रज-बुन्देली और मारवाड़ी के मिले-जुले शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। भाषा के नमूने के लिए कुछ छन्द प्रस्तुत हैं—

> प्रथमहि लीजै ऊँ अकारु, जो भव दुख विनासन हारु।
> सिद्धचक्रव्रत केवलरिद्धि, गुन अनंत फल जाकी सिद्धि।
> प्रनमौ परम सिद्ध गुरु सोइ, अन्य समल सब मंगल होइ,
> सिधपुरी जाकौ सुभ थान, सिध पुरी सुभ अनंत निधान।[1]
> वंदौ जिनशासन के धम्म, आप साय नासे अधकम्मं,
> वंदो गुरु जे गुण के मूर, जिनते होय ग्यान कौ पूर।
> वंदौ माता सिंहवाहिनी, जातें सुमति होय अति घनी,
> बंदौं मुनियन जे गुनधम्म, नवरस महिमा उदति न कर्म।[2]

यह सं० १६५१ में लिखी गई, यथा—

> संवत सोरह सै ऊचरौ, समझौ इक्यान आगरौ,
> मास असाढ़ पहौचो आइ, वर्षा रितु को अे कहो बढ़ाइ।
> पछि उजारौ आवै जानि, शुक्रवारु वारु परवान,
> कवि परमल्ल सुध करि चित्त, आरम्भौ श्रीपालचरित्र।[3]

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची ५वाँ भाग पृ० ३९५
२. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य—पृ० १३५-१३६
३. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची पृ० ३९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन गुर्जर कवियो में एक अन्य परमल्ल नामक कवि को भी श्रीपालचरित्रभाषा नामक काव्य का हिन्दी में कर्त्ता लिखा गया है और उन्हें दिगम्बर बताया गया है पर श्री मोहनदास दलीचन्द देसाई ने इनका समय १९वीं शताब्दी में रखा है। वस्तुतः वह प्रतिलिपि का समय है। मूल रचना परमल्ल कवि ने १७वीं शताब्दी में (सं० १६५१) में ही की थी। देसाई ने 'श्रीपालचरित्रभाषा' की जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं उनमें से प्रारम्भिक दो पंक्तियाँ 'श्रीपाल चरित्र' की प्रारम्भिक पंक्तियों से पूर्णतया मिलती है। पंक्तियाँ निम्न हैं—

सिद्धचक्र विधि केवल रिद्ध गुन अनंत फल जाकी सिद्धि
प्रणमो वरन सिद्धि गुरु सोइ, भवि संघज्यो मंगल होइ।[1]

अतः यह भी आशंका है कि ये दोनों परमल्ल और उनकी रचना श्रीपालचरित्र एक ही है। इस पर शोध अपेक्षित है।

प्रभसेवक—आप मुखशोधन गच्छ के लेखक थे। आपने सं० १६७७ में भगवती साधु वंदना की रचना की। यह ५९ कड़ी की रचना है। कवि की संस्कृत भाषा में अभिरुचि ज्ञात होती है जैसा कि इन उद्धरणों से प्रकट होता है, यथा—

आदि—स्तवीमि वीरं जिनसूर मंडलं प्रतापविस्तारित भूमि मंडलं,
सुवर्णकान्ति नवदेवमंडलं, चमत्कृतं ताविष राजमंडलं ।१।

दोहा—प्रथम पंचम गणधर नत्वा परम गणीन्दुं,
वक्ष्ये भगवती भावितान् मुनिवरान् मुनीन्दं।
साधुतणा गुण गावतां, पामूं सुख अनंत,
दुषम कालि आलंबन भय भंजन भगवंत।

इसके अंत में रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

साधुतणा गुणगावता मुझ निजे परमानंद सारं,
ते मुझ जांणि जीव अनि वली कि अंग नाणी धारं।
निःकारण जगबंधू मि गाया, मुनि मुनि सोल सुशरदं,
मुखशोधन गछि वदि प्रभसेवक मंगलकारण वरदं।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० १५६५ (प्रथम संस्करण)

२. वही, भाग १ पृ० ५०३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाचन्द--(गद्यकार) इन्होंने 'तत्त्वार्थसूत्रभाषा' नामक हिन्दी गद्य रचना का निर्माण किया है। इसकी प्रतिलिपि सं० १८०३ की प्राप्त है। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इस रचना को १७वीं शताब्दी का बताया है। इसमें सूत्रों का विस्तृत अर्थ हिन्दी भाषा में समझाया गया है। इसकी भाषा शैली का नमूना देखिये—

केइक जीव कर्मभूमि बिना सिद्ध होइ हैं।
केइक जीव दीपस्यों सिद्ध होइ हैं।
केइक जीव उदधि स्यौं सिद्ध हैं।
केइक जीव थल सिद्ध हैं।
केइक जीव रिधि प्राप्त सिद्ध हैं,
केइक जीव रिद्धि बिना सिद्ध हैं।
...केइक जीव अधोसिद्ध हैं।

कई भांति करि घणा ही भेद स्यौं सिद्ध हुवा है। सो सिद्धान्त थे समझि लीज्यो। इति तत्त्वार्थाधिगम मोक्षशास्त्रे दसमोध्यायः।[1]

प्रमोदशील शिष्य—तपागच्छीय प्रमोदशील के इस अज्ञात शिष्य ने सं० १६१३ फाल्गुन शुक्ल १० को ३७ कड़ी की एक रचना 'सीमंधर जिन स्तोत्र' (विचार संयुक्त) लिखा, जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

सरसति सामिणि बे कर जोड़ी,
गुण गायसु आलस सवि छोड़ी,
सीमंधर जिनराय तु, जयु जयु सीम०
पुष्कलावती विजयनूं नाम पुडरीकिणी नयरी अभिराम,
आस मी करीयसु शोभतु-जयु जयु सीमं०।

रचनाकाल—अनइ सोल तेरोत्तरइ सार, शुदि फागुण दसमी उदार,
इम गायु ऊलट आणी, तम्हें वंदउ भविअण प्राणी।

अन्त में कलश इस प्रकार है—

इय सीमंधर जिनवर नमिइं, असुरासुर भासुर सम जिनराय तुह,
दुख दुर्गतिभंजण जणमणरंजण, भवीयण पूरिइं तुह सुह।

---

१. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह, पृ० २१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपगछि सुहाकर गुणमणि आगर, प्रमोदशील पंडितवर,
तसु शीस बोलइ अमीय तोलइ सीमंधर जयकार कर।[१]

आपकी अन्य कई रचनायें भी प्राप्त हैं जिनमें से २० विहरमान बोल ५ संयुक्त १७० जिननामस्तवन (२६ कड़ी), बीरसेन सज्झाय २५ कड़ी और खंधक सूरि सज्झाय के विवरण आगे दिये जा रहे हैं। प्रथम रचना सं० १६१३ फाल्गुन शुक्ल १० को पूर्ण हुई जैसा कि इसकी अन्तिम पंक्तियों से विदित होता है, यथा—

संवत सोल तेरोत्तरइ अे, फागुण सुदि दसमी जाणिउ,
सत्तरिसु जिन संयुण्या अे, ऊलट हीयडइ आणितु।

बीरसेन सज्झाय की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सरसति सामिणी पहिलुं प्रणमीइ,
अविरल वाणी जेह नामि पामीइ।
पामीइ वाणी जेह नामिइं तेहना पय प्रणमी करी।[२]
क्षमा सम्बन्ध हूंअ बोलू सांभलज्यो ऊलट धरी,
नयरीय चंपा अतिहि रुयड़ी, तिहां जितशत्रु राजीऊ,
पुर गाम देसह करी मोटउ सुजस महीयलि गाजऊ।[३]

खंधक सूरि सज्झाय मात्र आठ कड़ी की रचना है। इसकी अन्तिम पंक्तियां नमूने के तौर पर दी जा रही हैं—

खंधक सूरिनिइं घामिइ घाली पीलअे, अगनिकुमार पदवी पावअे,
पावअे पदवी क्रोध कारणि देस तिहां बालिउ घणउ।
दंडकारण्य नाम हूऊं क्रोध फल अेहवां सुणु,
तहे तणे शिष्ये पांचसिइ तिहां मुगति हेलां माहिवरी,
प्रमोदशीलह शीस जंपइ धर्म करु क्षमा मनि धरी।[४]

प्रीतिविजय—तपागच्छीय विजयदानसूरि के प्रशिष्य एवं आणंदविजय के शिष्य थे। आपने सं० १६१२ (७२?) माग शुद १३ गुरुवार को सुहाली नामक स्थान में 'वार व्रत रास' की रचना की। यह ४६१

१ जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ६६-६७ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, पृ० ६८
३. वही, भाग २ पृ० ६९ (द्वितीय संस्करण)
४. वही, भाग १ पृ० १९१-१९३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

गाथा की विस्तृत रचना है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

प्रणमी शांति जिणेसर स्वाम, संपति लहीइ जेहने नाम,
शांति जिणंद तणो उपदेश, सुणज्यो भविका कहुं लवलेस।

× × ×

प्रथम धरम जाती नो कहूँ, शांतिनाथ चरित्र थीं लहुं,
क्षिति प्रतिष्ठित नगर मझार, धनी सार्थवाह तिहां सार।

रचनाकाल—संवत सोल बहोत्तरो मान, मागसिर सुदि तेरसि जाण,
सुहाला नगरे गुरुवार, रच्यो बारव्रत रास उदार।

गुरुपरम्परा—तपगणग्यान विभासन भाण,
श्री विजयदान सूरि गुणमणि षाण।
तास सीस पंडित परधान,
आणंद विजय गणि गुणह निधान,
तस पद पंकज भ्रमर समान,
जास नामें सघले जसमान।
प्रीतिविजय कहे भणता अेह,
वंछित संपद आवे गेह।[1]

आणंदविजय के समय को देखते हुए इसका रचना काल सं० १६७२ ही उचित लगता है। इसमें तत्सम शब्दों में प्रयोग की प्रवृत्ति लक्षित होती है।

प्रीतिविमल—तपागच्छीय विजयेनसूरि के प्रशिष्य एवं धर्मसिंह के शिष्य जयविमल आपके गुरु थे। आपने सं० १६४९ में 'मृगांक कुमार पद्मावती चौपाई' गुंदवच में लिखी। इसमें गुरुपरम्परा और रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

तास सेवक शुभ सांभल्यो साचलो, गणि धर्मसी धुरि लगइ धर्मधोरी,
तास सेवक गणि जयविमल कीर्ति निरमली गोरी।
गुंदवच ग्राम गुणधाम धरणि, संवत सोल उगणपंचासइ,
सकल संभलइ सर्व आस्या फलइ, प्रीतिविमल मुनि कहइ उल्हासइ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २०३ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ५२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी दूसरी कृति 'अष्टप्रकारीपूजारास' सं० १६५६ में क्षेमपुर में लिखी गई। यह छोटालाल मगनलाल, अहमदाबाद से प्रकाशित है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

प्रथम तीर्थंकर प्रथम जिन प्रथम करी परिणाम,
अष्ट प्रकार पूजा तणा प्रबन्ध कहुं अभिराम।

इसमें सं० १५८२ में आणंदविमलसूरि द्वारा यतिपंथ के प्रकटीकरण से लेकर उनके पट्टधर विजयदान>हीरविजय>विजयसेन> धर्मसिंह>जयविमल तक की गुरुपरम्परा गिनाई गई है। अन्त में लिखा है—

तास सेवक गणि जयविमल सेवको,
प्रीतिविमल क्षेमपुरी चउमासे,
संवत सोलछपन वरसि कव्या,
सकल संघ मांही बेठो विमासे।[1]

तीसरी रचना 'दानशीलतप भावनारास' सं० १६५८ के पश्चात् किसी समय लिखी गई। इसमें विजयदेव सूरि के पट्ट पर विराजित होने की बात कही गई है और वे सं० १६५८ में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए थे, अतः यह रचना उसके कुछ बाद की होगी। इसका विषय तो इसके शीर्षक से ही स्पष्ट है। इनकी चौथी कृति का नाम 'गोडी पार्श्व स्तवन' है। यह ५ ढालों में लिखी गई और 'प्राचीन स्तवन रत्नसंग्रह' भाग २ में प्रकाशित है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

वाणी ब्रह्मावादनी, जागे जगविख्यात,
पासतणा गुणगावतां, मुझ मुख वसज्यो मात।
नारंगे अणहिलपुरे, अहम्मदाबादे पास,
गोडीनो धणी जागवो पूरे सहुनी आस।

आपकी पाँचवी रचना 'इर्यापथिकाआलोयणसज्झाय' १८ कड़ी की छोटी रचना है। यह 'प्राचीन संज्ञाय तथा पदसंग्रह' में प्रकाशित है। इनकी अधिकांश रचनायें पूजा-पाठ से सम्बन्धित हैं। मृगांककुमार पद्मावती में आख्यान का आधार लेकर उपदेश दिया गया है जबकि

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २६०-२६३ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० २९४-२९६ और भाग ३ पृ० ७९६-७९७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य रचनायें प्रत्यक्षतः उपदेश प्रधान हैं और पूजा पाठ के विधि-विधान पर आधारित है।

पं० पृथ्वीपाल—आपकी रचना का नाम 'श्रुत पंचमी' है। इसका रचनाकाल सं० १६९२ निश्चित है। आप अग्रवाल थे और पानीपत के निवासी थे। इसकी प्रति पंचायती मन्दिर, दिल्ली में उपलब्ध है।[1] अन्य विवरण-उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका।

पृथ्वीराज राठौड़—आप बीकानेर के महाराज थे। आपके पिता का नाम राजा कल्याण सिंह था। आपके भाई का नाम राजा राय सिंह था। आपका अकबर के दरबार में अच्छा स्थान था। इनके भाई राय सिंह या रायमल्ल तथा इनके मन्त्री कर्मचन्द भी अकबर के दरबारी थे। राजस्थानी की सुप्रसिद्ध और सर्वोत्तम काव्य कृति—'कृष्ण रुक्मिणी री बेलि,[2] आपकी उत्कृष्ट रचना है। इस बेलि की रचना आपने सं० १६३८ में की थी। इस मनोहर बेलि में कृष्ण रुक्मिणी की मनोहर कथा वर्णित है। यह बड़ी सरस तथा लोकप्रिय रचना है। इसके प्रारम्भ और अन्त की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

आदि—परमेसर प्रणमि प्रणमि सरसति पणि,
सद्‌गुरु प्रणमि त्रिणेततसार।
मंगलरूप गाइइ माहव (माधव)
चारसह (चारसु) अेही मंगलचार।

अन्त—वरस अचल गुण अंग ससि,
संवति तवीउ जस कवि श्री भरतार
करि श्रवणे दिनराति कंठ करि,
पामइ श्री फल भगत अपार।[3]

श्री अगरचन्द नाहटा ने इसकी भाषा को डूंगरी कहा है। डूंगरी की इस उत्कृष्ट रचना को समझने में सर्वसाधारण को कठिनाई होती है

---

१. श्री कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १३५

२. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७१ और राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २३१

३. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३ खण्ड २ पृ० २१३५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए कई जैन विद्वानों ने इस काव्य की टीकायें संस्कृत व राजस्थानी भाषा में की हैं। इसी रचना के आधार पर आप राजस्थानी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। कहा जाता है कि जब महाराणा प्रताप जंगल की खाक छानते-छानते एक बार निरुत्साहित हो गये थे तब इन्हीं के एक प्रभावशाली पत्र ने ऐसी प्रेरणा दी कि पुनः प्रताप अपना इरादा बदल कर दृढ़ निश्चय के साथ हिन्दुत्व की रक्षा और मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए युद्ध में जुट गये थे। यद्यपि ये स्वयं अकबर के दरबारी थे किन्तु जाति और देश का स्वाभिमान इनमें बहुत था तथा उसकी स्वतन्त्रता इन्हें भी अभीष्ट थी।

पुंजाऋषि—पार्श्वचन्द्र गच्छ के विद्वान् हर्षचन्द्र आपके गुरु थे। आपने सं० १६५२ आसो शुद १५, बुधवार को पाटण में 'आरामशोभा चरित्र' (३३२ कड़ी) नामक काव्य की रचना की। यह रचना पं० लालचन्द द्वारा प्रकाशित है। इसकी भाषा शैली का नमूना देखने के लिए कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

आदि आदि जिणेसर पाय नमी शांती नेमिकुमार,
श्री पास वीर चुवीसमउ, वंदिइ जय जयकार।

× × ×

पूरब संचय पुन्यनउ उदय हुओ अभिराम,
तेह थकी तिणि पामीयुं आरामशोभा नाम।

रचनाकाल—सोल सइं बावन्नइं वली, आसो मास पूनिम निरमली,
अश्वनी रखि बुधवारिइं करी, गुरु प्रसादि करी पूरण चरी।

गुरुपरंपरा—श्री श्रीमाली वंशे बखाण,
श्री हंसचंद्र वाचक गुरु जाण,
तास सीस रिषि पुंजे कहइ,
भणइं गुणइं ते सिवसुख लहइ।[१३]

पुण्यकीर्ति—आप खरतरगच्छीय महिमामेरु के प्र-प्रशिष्य हर्षचन्द के प्रशिष्य एवं हर्षप्रमोद के शिष्य थे, इन्होंने पुण्यसार रास सं० १६६६ सांगानेर, नेमिरास, रूपसेनरास सं० १६८१ मेड़ता; मत्स्योदर चौपइ

१३. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २८६-२८८ (द्वितीय संस्करण) और भाग पृ० ८२०-८२२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० १६८३ बिलपुर; अमरसेन-वयरसेन चौपइ सं० १६६६ सांगानेर, धन्नाचरित्र सं० १६८८ बिलपुर; कुमारमुनिरास, मोहछत्तीसी और मदछत्तीसी आदि रचनायें की, जिससे सहज ही अनुमान होता है कि आप एक श्रेष्ठ रचनाकार थे।[1] पुण्यसाररास इनकी सर्वप्रसिद्ध रचना है, उसका संक्षिप्त विवरण पहले दिया जा रहा है। यह २०५ कड़ी की रचना है। इस रचना की कथा जैन पाठकों में पर्याप्त प्रचलित है और इसकी अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं। श्री कासलीवाल ने इसका रचनाकाल सं० १६६० मागसिर सुदी १० बताया है[2] किन्तु पुस्तक में रचनाकाल 'छाठसि' दिया गया है, यथा—

संवत सोले सै छाठसि समइ, बीजे दसमी गुरुवार,
सांगानेर नगर रलीयामणो, पभण्यो अेह विचार।[3]

आदि—नाभिराय नंदन नमु, शांति नेमि जिन पास,
महावीर चोवीसमो प्रणम्या पूरे आस।
श्री गौतम गणधर सधर, लीलालब्धिनिधान,
समरी सहगुरु सरसती वपुषि वधारे वान।

× × ×

धर्मे कीयां धन संपजे, धर्मे रूप अनूप
सांचा सुख धर्मे हुवे, धर्मे लीलविलास।

इसमें पुण्यसार के धर्म कार्यों का महत्व दर्शाया गया है। गुरु परम्परा इस प्रकार कही गई है।

हरषचंद्रगणि हर्षे हितकरु, वाचक हर्षप्रमोद,
तास सीस पुन्यकिरति इम भणे, मन धरी अधिक प्रमोद।

श्री देसाई ने इस रास की बीसों प्रतियों का उल्लेख जैन गुर्जर कविओ में किया है जिससे इसकी लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८०

२. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ४६३

३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४०५ और भाग ३ पृ० ९११-९१४ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १२०-१२५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन्नाचरित्र सं० १६८८ भाद्र शुक्ल १३, रविवार को बिलपुर में संपूर्ण हुई।

रूपसेनकुमाररास—(२० ढाल ३०१ कड़ी सं० १६८१ विजयादशमी, रविवार, मेड़ता) का आदि—

कामितदायक कलपतरु, कमला केलि निवास,
पुरुसादांणी प्रणमीयइं श्रीफलवधिपुर पास।

इसमें कवि ने गुरुपरंपरा विस्तार से बताई है और खरतरगच्छ के जिनराज सूरि से लेकर जिनसागर, जिनकुशल, महिमामेरु, हर्षचंद्र तथा हर्षप्रमोद तक का पुण्यस्मरण किया है। रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत सोल इक्यासीयइ, विजयदसमि रविवार,
नगर मनोहर मेड़तइ, अेह रच्यो अधिकार।

यह रचना दान का महत्व दर्शाने के लिए रची गई है, यथा—

दांनइ सुखसंपद मिलइ, दांनइ दालिद्र जाइ।
दांनइ संकट सवि टलइ, दांनइ दउलति थाइ।[1]

मत्स्योदर चौपाई—(१७ ढाल सं० १६८२ भाद्रशुक्ल १३ रविवार) इसका कथानक शांतिनाथ चरित्र का एक अंग है। कवि लिखता है—

शांतिनाथ चरितइ अछइ, अेह कथानक चंग,
जिनभाषित धर्म आदरोजिम होइ रंग अभंग।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सोहगसुंदर सुखकरण, पूरण परम जगीस,
सुमति सुमतिदायक सदा, जगजीवन जगदीस।

इसमें जैनधर्म ग्रहण करने का आग्रह किया गया है, यथा—

अे संबंध सुणी करी ध्रम कीजे रे,
लीजे नरभवलाह, जैन धर्म कीजै रे।

रचनाकाल—संवत सोल ब्यासीये, सगले हुउ सुगाल,
सघन घनाघन वरसीया फलिय मनोरथ माल
जैन धर्म कीजे रे।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

भणे गुणे जे सांभले तासु घरे नवनिद्धि,
सुमतिपास सुपसाउले थापइ घरि नवनिद्धि।

मोहछत्तीसी गाथा ३७, सं० १६८४, नागौर में लिखित लघुकृति है। मदबत्तीसी सं० १६८५ आषाढ़ वदी १३ मेड़ता में लिखी गई। इन दोनों रचनाओं के उद्धरण-विवरण न प्राप्त होने के कारण इनकी भाषाशैली का नमूना देना संभव नहीं हो सका किन्तु जिन कृतियों के विवरण उपलब्ध हैं वे इस बात के सबल प्रमाण हैं कि आप १७वीं शताब्दी के श्रेष्ठ कवियों में गणनीय हैं। इनकी कथा रचना एवं भाषा शैली प्रभावशाली है। आप इन कथाओं के माध्यम से दान, तप आदि का महत्व प्रतिपादित करके पाठकों तक जैनधर्म का संदेश पहुँचाने में सफल हुये हैं।

पुण्यभुवन—खरतरगच्छीय जिनरंगसूरि के शिष्य थे। आपने उदयपुर में 'पवनंजय अंजनासुन्दरीसुत हनुमंत चरित्ररास' सं० १६८४ माह सुदी ३ गुरुवार को पूर्ण किया, इसमें हनुमान की कथा जैन पुराणों के आधार पर वर्णित है। कवि को इस कथा का सूत्र 'शील-तरंगिणी' नामक ग्रन्थ से मिला, कवि स्वयं लिखता है—

शील तरंगिणी ग्रंथ थी, अ रचीओ संकेत,
कांइक कविमति केलवी भीन्न कीयो तिणहेति।

निम्नांकित पंक्तियों से प्रकट होता है कि रचना के समय उदयपुर में राणा जगतसिंह का शासन था।

श्री जिनराज सूरी पटि दिनकरा, आगम अरथ निधान,
श्री जिनरंग सूरीसरु सत्यवर, जाणे सर्वनिधान।
तासु आदेस संवत सोल चोरासीई, उदेपुरी चौमासि,
जगतसंघ राणो गाजे तिहांकणि, हांछु ऊपतां जसवास।

सतीत्व का वर्णन करने के लिए इसमें अंजना का चरित्र प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया गया है, यथा—

सतीयारे सिर अंजना, बखाणे कविराय,
सांभलता तन ऊलसै, चतुरोने चित्त दाय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्दर्शन ना ग्रंथ में अंजना केरी अे बात,
पवनसुत हनुमंत ना प्रगट घणा अवदात ॥[1]

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

श्री गणधर गौतम प्रमुख, ऐकादश अभिराम।
मन वांछित सुख संयजे, नित्त समरतो नाम।
पवनंजय राजा तणी अंजना सुन्दरि नारि,
तासु कथा सुणतां थका, होसि अल्प संसार।
सति शिरोमणि अंजना, सील विभूषित देह
नाम जयंता ग्रह समे आये रिद्धि अछेह।[2]

पुण्यरत्नसूरि—आंचलगच्छीय सुमति सागर सूरि>गजसागर सूरि के आप शिष्य थे। आपने सं० १६३७ वैशाख वदी ५ रविार को 'सनतकुमाररास' नामक २८१ गाथा की एक रचना पूर्ण की। 'इसके अंत में विधिपक्ष के आर्यरक्षित से लेकर जयसिंह सूरि, धर्मघोषसूरि, महेन्द्रसिंह, सुमतिसागर और उनके शिष्य गजसागर सूरि तक का वंदन किया गया है। परम्परा के अंत में कवि ने लिखा है—

तस सीस अे भणज्यो, पुण्यरत्न कहि रास रे,
भणइ गणइ जे संभलइ तेहनी पुहवुवइ आस रे।

रचनकाल—संवत सोल वे जाणज्यो साउन्नीसउ ते सार रे,
वैशाख वदि भला पंचमी, रास रच्यउ रविवार रे।

सनतकुमार रास की कथा का प्रारम्भ करता हुआ कवि लिखता है—

कंचणपुर नयर अतिहि अनोपम सार,
विक्रम यश राजा राज करइ सुविचार।
पांचसि राणी वाणी सुधाय समान,
रिद्धि बुद्धि पूरा सूरा बहुय प्रधान।

अन्तिम पंक्तियाँ—पास जिनवर अमर सुखकर तरण तारण ततपरा,
तस्य आस पूरइ विधान चूरइ सधा सिखर जिनवरा।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० १५१७-१९ (प्रथम संस्करण)
२. वही
३. वही, भाग २ पृ० १६६-१६७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी दूसरी रचना 'सुधर्मा स्वामी रास' ७२ कड़ी की है। यह सं० १६४०, फाल्गुन शुक्ल १३, गुरुवार को पटेलाद में पूर्ण हुई। इसकी आरम्भिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

वीर जिननइ करुं प्रणाम, सरसति भावि आपु अभिराम।
गाऊं गणहर सोहम्म स्वामी, जाइ पाप जस लीधइ नाम।

रास के अन्त में रचना सम्बन्धी कई सूचनायें हैं, यथा रचनाकाल—

संवत सोल ते जाणज्यो च्यालीस निरधारी,
फागण सुदि तेरसि भली, नक्षत्र रे पुष्यनइ गुरुवार के।

गुरुपरंपरा—विधिपक्ष गछइ जाणीइ, श्री सुमतिसागर सूरींद,
श्री गजसागरसूरि तस तणइ, पाटइ रे उदयु दिणंद के।
तास सीसि पेटलादमि रचउ पुण्यरत्नसूरि,
ऋषभदेव पसाउलि हुइ रे आनंद भरपुर के ॥७२॥[1]

श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ के प्रथम संस्करण भाग १ पृ० २४३ पर पुण्यरत्न की एक और रचना 'नेमिरास-यादवरास' का उल्लेख किया है। किन्तु भाग ३ पृ० ७३६ पर लिखा है कि यह रचना भूल से १७वीं शती में दिखाई गई है, वस्तुतः यह १६ वीं शती के अन्य पुण्यरत्न कवि की कृति है। भाग ३ के पृ० ६१८ पर इसका रचना काल १५९६ बताते हुए उसे किसी अन्य पुण्यरत्न की कृति बताया गया है। इसलिए नवीन संस्करण के सम्पादक ने इन पुण्यरत्न के साथ उक्त कृति का उल्लेख नहीं करके उचित ही किया है।

उपाध्याय पुण्यसागर—आप खरतरगच्छ के आचार्य जिनहंस सूरि के शिष्य थे। इनके पिता का नाम उदयसिंह और माता का नाम उत्तम दे था। यह तथ्य ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह (सम्पादक—श्री अगरचंद नाहटा) में संकलित पुण्यसागर सम्बन्धी हर्षकुल कृत एक गीत से ज्ञात होता है। जिनहंस सूरि का प्रतिमालेख सं० १५५७ और सं० १५६१ का प्राप्त है। अतः उपाध्याय पुण्यसागर की उपस्थिति भी उसी के आस-पास होनी चाहिये। श्री देसाई ने आपकी रचना 'सुबाहु संधि' (गाथा ८९ सं० १६०४, जैसलमेर) का रचनाकाल सं०

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १६८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६०४ बताया है,[1] वही ठीक लगता है। श्री कस्तूरचंद कासलीवाल ने रचनाकाल सं० १६७४ बताया है, लेकिन वह संगत प्रतीत नहीं होता है।[2] कवि ने स्वयं रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत सोल चडोतर बरसइ, जेसलमेरु नयर सुभदिवसइ,
श्री जिनहंससूरि गुरु सीसइ, पुण्यसागर उवझाय जगीसइ।
श्री जिनमाणिक सूरि आदेसइ, सुबाहुचरित भणियउ लवलेसइ।
पास पसायइ अे रिषि थुणतां, रिद्धि सिद्धि थायउ जितु भणता।

अर्थात् यह रचना जिनहंस सूरि के समय या उसके कुछ आस-पास ही रची गई होगी। अतः चडोतर का अर्थ चार तो ठीक लगता है पर चौहत्तर उचित नहीं लगता। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पणमी पास जिणेसर केरा, पयपंकज सुरतरु अधिकेरा,
जसु समरण सीझइं बखाणी, ते गुरु सुयदेवी मन आणी।
वीर जिणंद इग्यारम अंगइ, सोहम आगलि सुखदुख भंगइ,
सुख विपाकि बीजइ सुय खंधइ, दसम अज्झयण तणइ परबंधइ।

इनकी दूसरी रचना साधुवंदना (८८ गाथा) के अलावा कई अन्य स्तवनादि श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में उपलब्ध हैं।[3] साधुवंदना का प्रारम्भ इस प्रकार है—

पंच परमेठि पयकमलवंदीकरी;
　　　　भावबलिमालतलि अेह अंजलि धरी,
साधु भगवंत नै नामग्रहण करी,
　　　　जम्म सुपवित्त हुं करिस श्रुत अणसरी ॥१

अंत—इम सुगुरु श्री जिनहंससूरिस, तासु सीसैं अभिनवो।
उवझाय वर श्री पुण्यसागर कहै अे रिषि संथवो।
उपदेश श्री जिनचंद्र सूरीसर तणै जे मुनि थुणै,
तसु साधुवंदण सुहानंदन हवउ सिवसुखकारणै।[4]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १९-२१ (द्वितीय संस्करण)
२. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल —राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ४१७
३. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७२
४. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० १८८ और भाग ३ पृ० ६५३-५५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

श्री पुण्यसागर दीर्घायु संत थे। इनके कई शिष्य श्रेष्ठ साहित्यकार थे, जिनमें पद्मराज और जिनसुन्दर आदि की चर्चा पहले की जा चुकी है। इन्होंने तथा इनके शिष्यों-प्रशिष्यों ने बड़ा साहित्य प्रस्तुत किया है। इन लोगों ने मिलकर कई संस्कृत ग्रंथ एवं विद्वत्तापूर्ण टीकायें भी लिखी हैं। पुण्यसागर ने 'प्रश्नोत्तरकाव्यवृत्ति' सं० १६४० और 'जम्बूद्वीप पन्नतिवृत्ति सं० १६४५ जैसलमेर में राजा भीम के शासन काल में लिखा था। श्री देसाई ने उक्त दोनों मरुगुर्जर की रचनाओं की कई प्रतियों का विवरण दिया है, जिससे इन रचनाओं की लोकप्रियता प्रमाणित होती है। इनकी कृति नेमि राजर्षिगीत (पद्य ५४) जैन जगत् के जाने-माने काव्य नायक नेमिकुमार एवं राजीमती की लोकप्रिय कथा पर आधारित एक मार्मिक गीत है। इसके अलावा इनके अनेक स्तवन आदि भी उपलब्ध हैं।

पुण्यसागर II—पीपलगच्छ के लक्ष्मीसागर सूरि की परंपरा में कर्मसागर आपके गुरु थे। आपकी दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है—नयप्रकाश रास सं० १६७७ और अंजनासुन्दरीरास। दूसरा रास ३ खण्डों में विभक्त है। इसमें २२ ढाल और ६३२ कड़ी है। यह रास सं० १६८९ श्रावण शुक्ल ५ को पूर्ण हुआ। श्री मो० द० देसाई ने जैन-गुर्जर कविओ भाग १ (पृ० ५३०-३३) में इसके दो पाठान्तर दिये हैं। इनमें से एक पाठ में कवि ने अपनी गुरुपरंपरा के अन्तर्गत पीपलगच्छ के लक्ष्मीसागरसूरि > विनयराज और कर्मसागर का उल्लेख किया है किन्तु दूसरे पाठ में कवि का नाम पुण्यभुवन है, यथा—

पुण्यभुवन कहे भाव धरी घणो गिरुया नो जसवास।
अधिक ओछो इहाकणि जे कर्यो, हुवे मिच्छामिदुक्कडतास ॥[1]

इस पाठ में कवि की गुरु परंपरा भी खतरगच्छ के जिनराजसूरि > जिनरंगसूरि की बताई गई है। यह पाठ भ्रमवश पुण्यसागर के साथ जुट गया लगता है। यह वस्तुतः खरतरगच्छीय पुण्यभुवन की कृति 'पवनंजन अंजना सुन्दरीचरित्ररास' की प्रशस्ति का पाठ है। श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०२७-२८ पर इसका रचनाकाल सं० १६८९ श्रावण शुक्ल ५ ही बताया है। यही समय मूलपाठ में भी दिया गया है, यथा—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५३३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत सोल नेव्यासीइ, श्रावणमास रसाल,
सुदी तीथि पंचमी निरमला, ऋद्धि वृद्धि मंगल माल।

या तो पुण्यसागर ने अपनी रचना से चार-पाँच वर्ष पूर्व रची गई पुण्यभुवन की रचना का कुछ अंश इसमें डाल दिया हो या श्री देसाई से भ्रमवश पाठों में घालमेल हो गया हो, यह स्पष्ट नहीं है, पर कुछ न कुछ गड़बड़ अवश्य हुआ है। आठवीं ढाल के चार छन्द दोनों रचनाओं में ज्यों के त्यों मिलते हैं यह विचारणीय है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

गोतम गणधर प्रमुख अेकादश अभिराम
मनवांछित सुख संपजइ नित समरता नाम।

ठीक इन्हीं पंक्तियों से पुण्यभुवन की कृति का भी आरम्भ हुआ है। श्री कस्तूर चन्द कासलीवाल ने इसका नाम अंजनासुन्दरीचउपइ कहा है और सं० १६८९ श्रावण शुक्ल पंचमी तिथि रचनाकाल बताया है।[1] उन्होंने इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार बताई हैं—

ते गछ दीपै दीपतउ सांचउर मझार,
वीर जिणेसर रो जिहां तीरथ अछइ उदार।

× × ×

गुरुपरंपरा—तासु पाटि अनुक्रमि आलसमीसागरसूर,
विनयराज कर्मसागरु वाचक दोऊ सबूर।
तास सीस पुण्यसागर वाचक भणै एम;
अंजना सुन्दरी चउपइ परणु वचते प्रेम ॥[2]

ऊपर की ये दोनों पंक्तियाँ जैन गुर्जर कविओ भाग ३ के पृ० २०४ पर भी दी गई हैं। अतः यह अवश्य कोई स्वतंत्र कृति है किन्तु इसमें दो रचनाओं का पाठ मिश्रित हो गया लगता है। इस विषय में शोध की आवश्यकता है।

नयप्रकाश रास का उद्धरण अप्राप्त होने के कारण देना संभव नहीं हुआ।

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ३१४

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेममुनि—आप लोकागच्छ से सम्बद्ध थे। आपकी दो रचनाओं का विवरण मिलता है:—(१) मंगलकलशरास और (२) द्रौपदी रास। मंगलकलशरास की रचना सं० १६९२ में हुई। द्रौपदीरास की रचना एक वर्ष पूर्व अर्थात् सं० १६९१ में हो गई थी जैसा कि निम्न पंक्तियों से प्रकट होता है—

संवत सोल अेकाणु अे, श्रावणसुदिरे बीजि गुरुवार,
रास रच्यो मइ रंगिस्यउं, प्रेमइ गायइरे भणइ नरनारि।

इसका प्रारम्भ निम्न दूहे से हुआ है—

विमलमति सरसति मुदा, समरी मनि आणंद,
गास्युं साध सिरोमणी, पांडव पांच मुणिंद।[1]

द्रौपदीरास में केवल 'प्रेम' नाम आया है इसलिए जैन गुर्जर कविओ के नवीन संस्करण के संपादक ने शंका उठाई है कि पता नहीं कि मंगलकलशरास के कर्त्ता प्रेममुनि और द्रौपदीरास के कर्त्ता प्रेम एक ही व्यक्ति हैं या दो? क्योंकि 'प्रेम' के साथ लोकागच्छ का उल्लेख नहीं हुआ है।[2]

प्रेमविजय—ये तपागच्छ के साधु विनयहर्ष के शिष्य थे। उन्होंने सं० १६६३ में 'आत्मशिक्षा' नामक रचना उज्जैन में की। यह प्रकाशित हो चुकी है।[3] श्री देसाई ने इन्हें तपागच्छीय विजयसेन का प्रशिष्य और त्रिमलहर्ष का शिष्य बताया है।[4] आत्मशिक्षा या आत्मशिक्षा भावना में १८५ दोहे हैं। यह सं० १६६२ वैशाख शुक्ल १५ गुरुवार को उज्जैन में लिखी गई। रचना 'जैनप्रबोध' पुस्तक के पृ० ३७७ से ३९३ पर प्रकाशित हुई है। मंगलाचरण इन पंक्तियों से हुआ है—

श्री सरसति जिन पाय नमी, मन धरि हर्ष अपार
आतमशिक्षा भावना, भणुं सुणो नरनार।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०५५ (प्रथम संस्करण) और भाग १ पृ० ५६७ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० २८१ (द्वितीय संस्करण)
३. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९०
४. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३८२-३८३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने रत्नहर्ष के सान्निध्य में रह कर इस ग्रन्थ की रचना की, इसमें रचनाकाल इस प्रकार लिखा है—

संवत सोल बासठ, वैशाख पुन्यम जोय,
वार गुरु सहि दिन भलो, अे संवत्सर होय।

इससे पूर्व इन्होंने सं० १६५९ (पौष वद १, गुरुवार, खंभात) में 'तीर्थमाला' की रचना की थी। कवि ने रचनाकाल इन पंक्तियों में लिखा है—

संवत ससि रस सार, भणु वेद भलइं वार,
पोष वदि गुरुवार षडवेनु दिनसार।

इसमें जो गुरुपरंपरा कवि द्वारा बताई गई है उससे वे विनयहर्ष के नहीं बल्कि विमलहर्ष के ही शिष्य सिद्ध होते हैं यथा—

श्री विमलहर्ष सरताजिइ, वाचक पदवी छाज्जइ;
तस सीस प्रेमविजय नाम, मांगि शिवपुरि ठाम।[1]

आपकी तीसरी रचना 'वस्तुपाल तेजपाल रास' प्रसिद्ध अमात्य बन्धुओं के जीवन चरित पर आधारित है। यह २५ ढाल और ५०४ कड़ी की लम्बी रचना है। यह रचना सं० १६७७ आसो सुदी १० को पूर्ण हुई। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है :—

प्रथम रीषभ जिनराय मुनी, प्रथम आदि दातार,
जुगला धर्म निवारयो नाभिनृपकुल सणगार।
× × ×
कासमेर मुख मंडणी हंसवाहण जस बार जोयणुं;
ब्रह्मसुता गुण आगली, कर पुस्तक वीणा तेय बखाणुं।

इस रास में अनेक ऐतिहासिक महत्व की घटनाओं का स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलता है जैसे सम्राट् अकबर द्वारा हीर विजयसूरि और विनयसेन सूरि का सम्मान आदि। रास–रचना का समय कवि ने इन शब्दों में लिखा है—

संवत विधु रस लेश्या बार प्रमाण,
आसो सुदि दसमी सुणज्यो चतुर सुजाण।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३८२-३८३ (द्वितीय संस्करण)
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने रचना का विवरण देते हुए कहा है—

रास गाथा संख्या पांचसि उगणीस च्यारि,
ढाल पच्चवीस सरस अति सुणो नरनारि।

इसका कलश देखिये —

वस्तपाल तेजपाल समोवडि अेणि जग नहीं कोय अे,
जस दान आगलि देव हारि, सुणो भविजन सोय अे।
आखराज नन्दन जगआणंदन तास कुअर माय अे,
कहि प्रेमविजय मुनि प्रेमइ आणी, भणत सुणत सुख थाय अे ॥[1]

शत्रुञ्जय स्तवना (आदिनाथविनति रूप)— 'शत्रुञ्जय तीर्थमाला-रास' में प्रकाशित है। इसमें रचनाकाल नहीं है; गुरुपरंपरा वही है जो अन्य ग्रन्थों में बता चुके हैं, अतः नमूने के रूप में इसका भी कलश प्रस्तुत है —

इम थुण्यो स्वामी मुक्ति गामी, आदि जिन जगदेव अे,
नित्य नमे सुर नर असुर व्यंतर, करे अहोनिश सेव अे।
जे भणें भगतें भली युक्तें, तस घर जयजयकार अे,
कहे कवियण सुणो भवियण, जीम पावो भवपार अे।

इनकी अन्य दो रचनाओं—धनविजयपन्यास रास और सीतासती सञ्झाय का विवरण-उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका। सीतासती सञ्झाय 'जैन सञ्झाय संग्रह' में प्रकाशित है। इनकी छह उपलब्ध कृतियों में से वस्तुपाल तेजपालरास, जो ऐतिहासिक रास है, को छोड़कर शेष पांच रचनायें अध्यात्म और धर्म-दर्शन, पूजापाठ से सम्बन्धित हैं। इन कृतियों के विवरण-उद्धरण से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेमविजय एक कुशल कवित तथा संत थे।

बनवारी लाल—आप माखनपुर के निवासी थे। आपने सं० १६६६ में 'भविष्यदत्त चरित्र' नामक काव्य खतौली के चैत्यालय में रहकर पूर्ण किया। यह धनपाल के ग्रन्थ का पद्यानुवाद है। इसमें वणिक्पुत्र भविष्यदत्त की महत्ता और वीरता का वर्णन किया गया है। वणिक्पुत्र भविष्यदत्त अपने राजा (हस्तिनापुर नरेश) के शत्रु से

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३९७-९८ और भाग ३ पृ० ८८५-९० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लड़ने का बीड़ा लेता है। राजा को उसकी वीरता पर शंका होती है तब वह उत्तर देता है—

रण संग्राम पीठ नहिं देउं, हांको सुभट जगत यश लेउं।
परचक्री आन लगाऊं पाय, तो मुंह दिखाउँ तुझको आय ॥

उसने जैसा कहा था वैसा ही युद्ध क्षेत्र में किया—

रणसंग्राम भिड़े सो जाय, पायक लाग्या पायक आय।
गयवर सो गयवर भिड़ै, रथ सेती रथहीं सो जुड़ै।
रणधर आगै भागै वीर, कोलाहलु सेनाहु गहीर।
अनी मुड़ी पोदनपुरराय, उलटा दल भाग्या सो जाय ॥[1]

भविष्यदत्त ने शत्रु को बन्दी बनाया और उसे लाकर राजा के चरणों में डाल दिया।

रचना में काव्यत्व अति सामान्य कोटि का है।

बाना श्रावक विजयाणंद सूरि के श्रावक शिष्य थे। विजयाणंद सूरि का जन्म सं० १६४२, आचार्य पद स्थापना सं० १६७६ और स्वर्गवास सं० १७११ में हुआ था। बाना श्रावक का समय भी १७वीं शताब्दी में ही होगा। आपकी प्रसिद्ध रचना 'जयानंदरास' ५ खण्डों में विभक्त है, और १२०७ कड़ियों की विस्तृत रचना है। यह सं० १६८६ पौष शुक्ल १३, गुरुवार को अहमदाबाद के पास बारेजा में लिखी गई। कवि ने कृति के प्रारम्भ में गुरु विजयाणंद को सादर स्मरण करते हुए लिखा है—

शांति जिनवर शांति जिनवर नमीय बहुभत्ति;
श्री सारदा समरी सदा, करुं चरित्र मनिरंग आणीय।
जयानंद गुण वर्णवं श्री विजयाणंद गुरुलहीय वाणीय।
हंसासनि सेवुं सदा कवियण नी आधार,
सरस कथा जयानंद नी आवीकर जे सार।

रचनाकाल—कुण संवत्सर कुण दिन, हुवो केमो हुल्लास,
संवत सोले छयासिये गुरुवारे जे चोमास।

---

१. श्री कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने यह कथामृत श्री विजयाणंद गुरु के श्रीमुख से ही ग्रहण किया था—

तस मुख कमल थी अे लही वाणि, मइं रास कर्यो सहि जाणि।
वारेजा वर नगर मझारि, अल्प बुद्धि कर्यो गुरु-आधारि।

अन्त में रचनाकाल पुनः दिया है, यथा—

संवत (१६) सोल छयासीइ जाणि, पोस सुदि तेरसि चढ़िउ प्रमाण
बार गुरो सर्वांकंज सार, भणइ गुणइ तस जय जयकार ॥[1]

यह रचना—'आनंद काव्य महोदधि' में प्रकाशित है।

बनारसीदास—आपने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्द्धकथानक' में अपना जीवनवृत्त लिखा है। उसके आधार पर संक्षेप में दिया जा रहा है।

जीवनवृत्त—प्राचीन हिन्दी साहित्य में यह प्रथम आत्मचरित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इसका उल्लेख किया है। इस आत्मचरित के अनुसार महाकवि के पितामह मूलदास नरवर के नवाब के मोदी थे और फारसी-हिंदी के विद्वान् थे। मूलदास की मृत्यु के बाद किसी बात से नाराज होकर नवाब ने सब धन-सम्पत्ति छीन ली और उनकी विधवा अपने पुत्र खड्गसेन के साथ अपने मैके-जौनपुर में आकर रहने लगीं। जौनपुर को पठान जौनशाह ने बसाया था। यह उस समय बड़ा सम्पन्न नगर था। खड्गसेन के नाना मदनसिंह चिनालिया जौनपुर के प्रख्यात जौहरी थे। खड्गसेन बड़े होकर आगरा चले गये और वहाँ साझे में व्यापार शुरू किया, व्यापार अच्छा चला; शादी की, पुत्र हुआ पर मर गया; तो दूसरे पुत्र के लिए बनारस आकर पार्श्वनाथ की मनौती की गई। फलतः जो पुत्र हुआ, उसका नाम विक्रमाजीत से बदलकर बनारसीदास रखा गया क्योंकि वह बनारस के पार्श्वनाथ की कृपा से उत्पन्न हुआ था।

बनारसीदास की तीन शादियाँ हुईं। पहिली शादी तो विद्यार्थी अवस्था में ही खैराबाद के कल्याणमल की पुत्री से हो गई थी। वह शीघ्र ही दिवंगत हो गई। इन्होंने पंडित देवदत्त से नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष, अलंकार आदि का अध्ययन किया था। बाद में

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २८६ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ५४२-४५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि भानुचंद से भी अध्ययन किया और उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। उसके बाद इनकी क्रमशः दो शादियाँ और हुईं। उनसे सात पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं, पर सभी कालकवलित हो गये। इसका कवि के मन पर बड़ा उदास प्रभाव पड़ा। पढ़ाई लिखाई तो ठीक से नहीं हो पाई, पर बनारसी दास में कविप्रतिभा जन्मजात थी। १५ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने 'नवरस' नामक सरस काव्य की रचना की थी जिसे बाद में उन्होंने गोमती में प्रवाहित कर दिया।

आप श्रीमाल वंश और विहोलिया गोत्र के वैश्य थे। रोहतक के पास विहोली नामक गाँव के आधार पर इनका गोत्र विहोलिया हो गया था। यद्यपि आपका जन्म श्वेताम्बर परिवार में हुआ था परन्तु ये श्वेताम्बर-दिगम्बर की रूढ़ सीमाओं में बँधे नहीं थे। उस समय आगरे में आध्यात्मिकों की एक शैली या गोष्ठी थी। बनारसीदास उसके प्रभावशाली सदस्य थे। पांडेराजमल्ल कृत समयसार की टीका पढ़कर इनकी अध्यात्म की ओर अभिरुचि बढ़ी जो पाण्डेय रूपचंद से गोम्मटसार पढ़ कर और पुष्ट हुई। इनके पाँच साथी—रूपचंद्र, चतुर्भुज दास, भगवतीदास, कुंवरपाल और धर्मदास थे। इन लोगों ने उच्चकोटि का साहित्य निर्माण किया है। इन लोगों ने अध्यात्मवाद को अनुभूतिमय काव्य का रूप दिया। बनारसी दास के बाद का हिन्दी जैन साहित्य उनकी रचनाओं से काफी प्रभावित हुआ है। कहा जाता है कि इनकी तुलसीदास से भेंट हुई थी पर अर्धकथानक[1] में इसका उल्लेख नहीं है। इनकी भेंट संत सुन्दरदास से हुई थी, दोनों समकालीन थे। सुन्दर ग्रन्थावली के सम्पादक पं० हरनारायण शर्मा ने इस भेंट का उल्लेख किया है लेकिन अर्धकथानक में इसका भी उल्लेख नहीं है।

रचनायें—बनारसीदास ने अर्द्धकथानक के अतिरिक्त नाममाला, नाटक समयसार, मोह विवेक युद्ध और मांझा आदि कई रचनायें की हैं। इनकी रचनाओं का एक वृहद् संग्रह 'बनारसी विलास' नाम से प्रकाशित हो चुका है। नवरस, जिसे इन्होंने यमुना में प्रवाहित कर दिया १००० पद्यों की विशाल रचना थी। इस प्रकार इन्होंने विपुल साहित्य का सृजन किया किंतु श्री अगर चन्द नाहटा और श्री मोहन

---

१. पं० नाथूराम प्रेमी—अर्द्धकथानक भूमिका पृ० ९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाल दलीचन्द देसाई ने अपने साहित्येतिहासों के ग्रंथों में इनको अपेक्षित महत्व नहीं दिया है।

रचनाओं का विवरण—नाममाला की रचना सं० १६७० आश्विन सुदी १०, जौनपुर में हुई। यह छोटा सा शब्दकोष है। इसमें १७५ दोहे हैं। धनंजय की नाममाला के आधार पर इसकी रचना की गई है किन्तु इसमें संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के नये शब्दों का समावेश होने के कारण यह मौलिक रचना बन गई है।

नाटक समयसार—यह महाकवि की श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। यह रचना कुन्दकुन्दाचार्य कृत समयसार पाहुड़ (प्राकृत) पर लिखी अमृतचंद्रकृत आत्मख्यातिटीका (संस्कृत ९वीं शताब्दी) पर आधारित है। इस पर पांडे राजमल्ल ने हिन्दी गद्य में बालबोधिनी टीका लिखी थी पर इसका यह अर्थ नहीं कि समयसार नाटक मात्र अनुवाद है, यह पर्याय मौलिक रचना है। 'आत्मख्याति' में २७७ कलश है जबकि समयसार नाटक में ७२७ है। इसमें टीका के कलशों से अभिप्राय अवश्य ग्रहण किया गया है किन्तु दृष्टान्तों, उपमा-उत्प्रेक्षाओं द्वारा कवि ने अपने कलशों को ऐसा सजाया है कि इनसे रसानुभूति होती है। सारांश यह कि कविप्रतिभा ने नीरस आध्यात्मिक विषय को सरस काव्यकृति का मौलिक रूप दे दिया है। पाहुड और उसकी टीका दर्शन के ग्रंथ हैं जबकि नाटक समयसार में कवि की भावुकता, रसपेशलता आदि लक्षित होती है। उसमें जीव-अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष नामक सात तत्व अभिनेता है। जीव नायक और अजीव प्रतिनायक है। आत्मा के स्वभाव और विभाव को नाटक के ढंग पर दर्शित करने के कारण इसे नाटक कहा गया है। इसमें रूपकत्व और भक्ति दर्शन का अच्छा परिपाक हुआ है। विषय सुख के लिए भटकते जीव की स्थिति इन पंक्तियों में देखिये—

काया चित्रसारी में करम परजंक भारी,
माया की संवारी सेज चादर कलपता,
सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिए
मोह की मरोर यहै लोचन को ढपना।
उदै बलजोर यहै श्वास को सबद घोर,
विषै सुखकारी जाकी दौर यहै सपना,

ऐसी मूढ़ दशा में मगन रहै तिहुंकाल,
धावे भ्रम जाल में न पावै रूप अपना ॥[1]

भाषा का वैभव, छन्द का प्रवाह और भक्ति की प्रगाढ़ता इन दो पंक्तियों में देखिये—

मदन कदनजित परम धरमहित,
सुमिरत भगति भगति सब डर सी,
सजल जलद तन मुकुट सपत फन,
कमठ दलन जिन नमत बनरसी।

पार्श्वनाथ की स्तुति से ये पंक्तियाँ ली गई हैं जिनके वे 'दास' (भक्त) थे।

बनारसी विलास—आपकी रचनाओं का संग्रह ग्रन्थ है। इसमें इनकी ५० रचनायें संकलित हैं। यह संकलन आगरा के दीवान जगजीवन द्वारा किया गया था। इसमें इनकी अन्तिम रचना कर्मप्रकृति विधान, जो सं १७०० फागुन सुदी ७ को समाप्त हुई थी, भी संकलित है। इसके अलावा ज्ञानबावनी सं० १६८६; जिनसहस्रनाम सं० १६९०; सूक्ति मुकावली १६९१ आदि भी संकलित हैं जिनसे कुछ उदाहरण भाषा, भाव और गेयता के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर रहा हूँ।

पद—
दुविधा कब जैहै या मन की।
कब जिननाथ निरंजन सुमिरौं, तजि सेवा जन-जन की।
कब रुचि सौ पीवै दृग चातक, बूँद अखय पद धन की।
कब शुभ ध्यान धरौ समता गहि,
करूँ न ममता या तन की, दुविधाकब जै है…।

'नवरस' के बाद बनारसीदास ने 'मोहविवेक युद्ध' लिखा था। कवि उस समय वास्तविक जीवन में भी मोह और विवेक के युद्ध में फँसा था। मोह की असारता का आभास तो हो ही गया था, तभी तो 'नवरस' को प्रवाहित कर दिया होगा। इसमें ११० पद्य हैं, इसकी शैली कवि की अन्य प्रौढ़ रचनाओं की तुलना में हल्की है। पं० नाथूराम प्रेमी द्वारा संपादित बनारसी विलास में पहले की अपेक्षा तीन नये पद अधिक संकलित हैं। जयपुर से भी इसका प्रकाशन हुआ है।

१. डॉ० प्रेमसागर जैन—जैन भक्ति काव्य पृ०१८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह इसके अनेक प्रकाशन हुये हैं और हरबार कुछ नवीन सामग्री भी आई है। आत्मा किस प्रकार मिथ्यात्व के पर्दे से ढकी है, इसका रूपक के माध्यम से वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

जैसे कोऊ पातुर बनाय वस्त्र आभरन,
आवति अखारे निसि आठौ पट करिकै,
दुहूँ ओर दीवटि संवारि पट दूरि कीजै,
सकल सभा के लोग देखें दृष्टि धरि कै।
तैसे ज्ञानसागर मिथ्याति ग्रंथि मेटि करि,
उमग्यो प्रगट रह्यौ तिहूँलोक भरिकै।
ऐसो उपदेश सुनि चाहिये जगत जीत,
सुद्धता संभारै जंजाल सौ निसरि कै।

यह 'पातुर' की उपमा भी कवि की स्वानुभूत थी। अर्द्धकथानक में कवि ने स्वयं लिखा है कि एक समय वह आशिकी में दिन-रात डूबा रहता था। व्यापार, स्वास्थ्य सब गँवाने पर चेत हुआ, और एक बार चेतने पर वह श्रेष्ठ जैन भक्त कवि हो गया। मोह मुक्त होने की स्थिति का वर्णन निम्न सवैये में द्रष्टव्य है—

पुन्य संजोग जुरे रथ-पाइक, माते मतंग तुरंग तबेले।
मानि विभौ अंगयौ सिरभार, कियो बिसतार परिग्रह ले ले।
बंध बढाइ करी थिति पूरन, अन्त चले उठि आप अकेले।
हारि हमालकी पोटली डारि कै, और दिवाल की ओट ह्वै खेले।[1]

इन्होंने अधिकतर संस्कारित भाषा का ही प्रयोग किया है किन्तु अपभ्रंश मिश्रित भाषा का प्रयोग एकदम नहीं छोड़ दिया था क्योंकि वह काव्य की रूढ़ शैली के रूप में बराबर प्रयुक्त हो रही थी। मोक्ष-पदी से इस संदर्भ में भाषा के उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

इक्क समय रुचिवंतनो गुरु अक्खै सुवमल्ल,
जो तुझ अंदर चेतना वहै तुसाड़ी अल्ल।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने प्रशस्तिसंग्रह पृ० २४१ पर बनारसी विलास से और पृ० २५८ पर समयसार नाटक, कल्याण मंदिर

१. हिन्दी काव्य गंगा—प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पृ० १३६-१३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तोत्र माला से उद्धरण दिए हैं किन्तु बिस्तारभय से अधिक उद्धरण नहीं दिये जा रहे हैं। कुछ उद्धरण विवरण 'अर्द्धकथानक' से देना अपेक्षित है। यह एक सफल आत्मकथा है। इसमें कवि ने अपने दोषों को भी खुलकर मध्यदेश की बोली में व्यक्त किया है। व्रजभाषा और खड़ी बोली की मिश्रित शैली को ही कवि ने मध्यदेश की बोली कहा है, यथा—

मध्यदेस की बोली-बोलि, गर्भित बात कहौं हिय खोलि।

अरबी-फारसी के चलते शब्द भी यत्रतत्र प्रयुक्त हुए हैं। इसमें सं० १६९८ तक की सभी घटनायें आ गई हैं। ५५ वर्ष को आधी आयु मानकर इसका नाम उन्होंने अर्द्ध कथानक रखा था पर इसके दो ही वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो गई। इसलिए यह उनकी एक तरह से पूर्ण प्रामाणिक जीवनी है। इसमें छह सौ पचहत्तर दोहे-चौपाइयाँ हैं। कवि के जीवन काल की अनेक प्रमुख ऐतिहासिक महत्व की घटनाओं का इसमें उल्लेख मिलता है जैसे आगरे में फैली प्लेग की भयंकर महामारी का वर्णन इन पंक्तियों में देखिये—

इस ही समय इति विस्तरी, परी आगरे पहिली मरी।
जहाँ तहाँ सब भागे लोग, परगट नया गाँठ का रोग।
निकसै गांठि मरै दिन मांहि, काहू की बसाय कछु नाहि।
चूहे मरैं वैद्यनहि जांहि, भय सों लोग अन्न नहिं खांहि॥[1]

ये संपूर्ण जैन साहित्य में अद्वितीय कवि हैं। नाथूराम प्रेमी ने लिखा है कि जैनों में इनसे अच्छा कोई कवि ही नहीं हुआ। यह कथन काफी हद तक उचित भी लगता है। इनकी रचनाओं में साम्प्रदायिक सौमनस्य, विश्वमानव-प्रेम और अहिंसा का सन्देश भरा हुआ है। पहले कहा गया है कि बनारसी दास श्वेताम्बर मुनि भानुचंद्र के भक्त थे, दूसरी ओर उनके अधिकतर ग्रन्थ दिगम्बर आचार्यों की रचनाओं से प्रभावित हैं। अकबर की समन्वयवादी धार्मिक नीति का उदार एवं प्रशस्त प्रभाव तत्कालीन संपूर्ण सांस्कृतिक वातावरण पर दिखाई पड़ता है और महाकवि बनारसीदास, तुलसीदास, सुन्दरदास आदि की रचनाओं में वह धार्मिक समन्वयवादी वृत्ति स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

---

१. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २४०, २५८, २७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालचन्द्र – लोकागच्छीय रूपचंद>जीवजी>कुंवरजी>रतनजी,> श्रीमल्लजी>गंगदास के शिष्य थे। आपने सं० १६८५ दीपावली, अहमदाबाद मैं 'बालचंदबत्तीसी' की रचना की। इसमें गुरुपरंपरा उपरोक्त ढंग से विस्तृत रूप में दी गई है। इसलिए केवल उदाहरणार्थ इसके आदि और अंत के पद्य दे रहा हूँ। यह रचना जैनप्रकाश, (भावनगर) पृ० ३०३ से ३१२ पर प्रकाशित है। आदि—

सकल पातिकहर, विमलकेवलधर,
जाको वासो सिवपुर तासु लग लाइये।
नादबिंद रूपरंग, पाणि पाद उत्तमंग,
आदि अंत मध्य भगा जाकूं नहि पाइये।
संघेण संठाण जाण, नहि कोई अनुमान,
ताही को करत ध्यान शिवपुर जाइये।
भणे मुनि बालचंद सुनो हो भविक वृन्द,
अजर अमरपद परमेसर को ध्याइये।[1]

अन्त में गुरुपरंपरा और रचनाकाल आदि भी है, यथा—

श्रीय रूप जीव गणि कुंअर श्रीमल्ल मुनि,
रतन सीस जास धनी त्रिभुवन मानियें।
विमल शासन जास मुनि श्रीयगंगदास,
हस्तदीक्षिततास बत्रिशी बखानिये।
बाण वसु रस चंद (१६८५) दीवाली मंगल वृन्द,
अहम्मदाबाद इदं रंग मन आनिये।
भणे मुनि बालचंद सुनो हो भविक वृन्द,
महानंद सुखकंद रुपचंद जानिये॥[2]

इसमें कुल ३३ पद्य हैं। इनकी कविता की भाषा तथा भाव दोनों ही परिष्कृत, प्रांजल एवं सरस हैं। इनकी भाषा सरल प्रवाहपूर्ण हिन्दी है।[3]

कवि विष्णु—उज्जैन निवासी कवि विष्णु ने सं० १६६६ में 'पंचमीव्रतकथा' नामक काव्य लिखा है। इसमें भविष्यदत्त का संक्षिप्त चरित्र दिया गया है। कवि ने लिखा है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २६६ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग १ पृ० ५४१-४२ (प्रथम संस्करण)
३. डा० हरीश—जैन गुर्जर कविओ की हिन्दी कविता पृ० १२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरी उजैनी कविनिको दासु, बिस्नु तहां करिरह्यौ निवास।
मन वचक्रम सुनौ सबु कोइ, वंध्या सुनै पुत्रफल होइ।

रचना का प्रारम्भ—

प्रथम नवति वंदौ जिन देव, ताके चरननि प्रनऊ सेव,
औह गौतम गनराजु मनाइ, मुनि सारद के लागौ पाइ॥[1]

वीरचंद—आप भट्टारक लक्ष्मीचंद्र के शिष्य थे। इनका सम्बन्ध सूरत की भट्टारकीय गादी से था। आपकी व्याकरण एवं न्यायशास्त्र में विशेष गति थी। छंद, अलंकार और संगीत में भी रुचि थी। ये वादशिरोमणि कहे जाते थे। साधुचर्या का कठोरता से पालन करते थे। नवसारी के शासक अर्जुन जीवराज इनका बड़ा सम्मान करते थे। भट्टारक शुभचंद्र, सुमतिकीर्ति और वादिचंद आदि ने अपनी रचनाओं में वीरचंद की प्रशंसा की है। वे संस्कृत, प्राकृत, गुजराती और हिन्दी के अच्छे विद्वान् तथा लेखक थे। उनकी आठ रचनायें उपलब्ध हैं—वीरविलासफाग, जम्बूस्वामीबेलि, जिनआंतरा, सीमंधर-स्वामी गीत, संबोधसत्ताणु, नेमिनाथरास, चित्तनिरोधकथा और बाहुबलिबेलि।

वीरविलासफाग एक खण्ड काव्य है जिसमें २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ की जीवन घटनाओं का वर्णन किया गया है। इसमें कुल १३७ पद्य हैं। रचना के आरम्भिक अंशों में नेमि के सौन्दर्य और बाद के पद्यों में राजुल की शोभा का मनोहर वर्णन है। नेमि की शोभा का वर्णन इन पंक्तियों में प्रस्तुत है—

वेलि कमलदल कोमल, सामल वरण शरीर,
त्रिभुवनपति त्रिभुअननिलो, नीलो गुणगंभीर,
लीलाललित नेमीश्वर अवलेश्वर उदार,
प्रहसित पंकज पांखडी अंखडी रूप अपार।

राजुल की सुन्दरता इन पंक्तियों में वर्णित है—

कठिन सुपीन पयोधर, मनोहर अति उत्तङ्ग,
चंपकवर्णी चंद्राननी, माननी सोहि सुरङ्ग।

---

१. कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरषी हरषी-निज नयणीउ वयणीउ साह सुरंग,
दंत सुपंती दीपंती, सोहती सिरवेणी बंध ।

नेमि के विरक्त होकर चले जाने के बाद राजुल का विलाप बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त हुआ है—

कनकमि कंकण मोड़ती, तोड़ती, मिणिमिहार,
लुंचती केश कलाप विलाप कर अनिवार ।
नयन नीर काजलि मलि, रलवलि भामिनी भूर,
किम करुं कहि रे सहिलड़ी, विहिनडि गयो मझनाह ।[1]

कवि ने इसमें रचनाकाल नहीं दिया है। जंबूस्वामीबेलि की भाषा पर डिंगल का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसमें भी रचनाकाल नहीं है। भाषा की दृष्टि से ये रचनायें अध्ययन करने लायक हैं, अन्यथा काव्यत्व तो सामान्य कोटि का ही है। इसमें दूहा, त्रोटक एवं चाल छंदों का प्रयोग हुआ है।

जिन आंतरा—एक तीर्थंकर से दूसरे तीर्थंकर के बीच का अन्तर बताने वाली रचना है। संबोधसत्ताणुभावना (५७ पद्य) दोहे छंद में एक उपदेशपरक रचना है। दोहे शिक्षाप्रद एवं भावपूर्ण हैं, यथा—

दया बीज विण जे क्रिया ते सधली अप्रमाण,
शीतल सजल जल भर्या नेम चंडाल न बाण ।
कंठ विहूणूं गान जिम, जिम विण व्याकरणे वाणि,
न सोहे धर्मंदया बिना, जिमभोयणविण पाणि ।।[2]

सीमंधरस्वामीगीत—सीमंधर के स्तवन में एक लघु गीत है। 'चित्त निरोधककथा' (१५ पद्य) में चित्त को वश में रखने का उपदेश दिया गया है। 'बाहुबलिवेलि' में बाहुबली की कथा त्रोटक, रागसिंधु आदि विविध छंदों और रागों में कही गई है। 'नेमिकुमार रास' नेमि की वैवाहिक घटना पर आधारित अच्छी कृति है। यह सं० १६७३ में लिखी गई। कवि ने रचना काल इस प्रकार बताया है—

संवत सोल ताहोत्तरि श्रावण सुदि गुरुवार,
दसमी को दिन रूयडो, रास रच्यो मनोहार ।

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० १०९
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इससे प्रमाणित होता है कि ये १७वीं शताब्दी के लेखक थे। डॉ० हरीश का यह कथन है कि ये १७ वीं शताब्दी के प्रथम चरण के कवि थे[1] किन्तु इस रास में दिये रचनाकाल से वह अप्रमाणिक लगता है। डा० हरीश ने और कोई नवीन सूचना नहीं दी है।

भगवतीदास—अंबाला जिले के बूढ़िया नामक स्थान के निवासी श्री किसनदास अग्रवाल के पुत्र थे। भगवतीदास बूढ़िया से दिल्ली चले आये थे। आप काष्ठासंघ—माथुरगच्छीय भट्टारक गुणचंद्र> सकलचंद्र>महेन्द्रसेन के शिष्य थे। आपके समय दिल्ली में जहाँगीर का शासन था। आपकी उपलब्ध रचनायें प्रायः सं० १६८२ से लेकर सं० १७१५ के बीच लिखी गई हैं अर्थात् आप १७वीं शती के अंतिम और १८वीं के प्रथम चरण के कवि थे। इनकी २५ रचनायें प्राप्त हैं, जो दिल्ली, आगरा, हिसार आदि अनेक स्थानों पर लिखी गई हैं। ये रचनायें अध्यात्म और भक्तिभाव से पूर्ण हैं। इनकी भाषा सरल, सरस हिन्दी है। उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

मुगतिरमणीचूनड़ी—यह एक रूपक काव्य है। इसकी रचना सं० १६८० में बूढ़िया में ही हुई थी। इसमें ज्ञानरूपी जल एवं सम्यक्त्व रूपी रंग में रङ्गी अध्यात्मिक चूनड़ी का वर्णन किया गया है। इसमें कुल ३५ पद्य हैं। लगता है कि दिल्ली आने से पूर्व अपने पैतृक स्थान पर ही यह रचना कवि ने की थी।

लघु सीतासतु—सं० १६८४ में आपने बृहत्सीतासतु लिखा, फिर सं० १६८७ में उसे संक्षिप्त करके चौपाई बद्ध किया। इसमें कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

गुरु मुनि महिंद सैण भगौती, रिसिपद पंकज रेणु भगौती,
कृष्णदास बनि तनुज भगौती, कुरिय गह्यौ व्रतु मनुज भगौती।
नगर बूडिये वासि भगौती, जन्मभूमि चिरु आसि भगौती।
अग्रवाल कुल वंश लगि, पंडित पद निरखि भमि भगौती॥[2]

इसमें पिता, गुरु, वंश का परिचय वही है जो पहले लिखा गया है किन्तु निवास स्थान बूढ़िया की जगह चूड़िया कहा गया है। लगता

१. डा० हरीश—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी को देन पृ० ९८-१००

२. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है ब और च के लिखने-पढ़ने में किसी स्तर पर भ्रम हो गया है। अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में एक बड़ा गुटका है जिसमें भगौतीदास की सभी रचनायें हैं।

सीतासुत में मंदोदरी और सीता का संवाद है। मंदोदरी रावण का वरण करने के लिए सीता से आग्रह करती है किन्तु सीता अपने सतीत्व पर दृढ़ रहती है। यह संवाद बारहमासे के तर्ज पर लिखा गया है। जैसे आषाढ़ आने पर मंदोदरी सीता को समझाते हुए कहती है :—

तब बोलइ मंदोदरि रानी, रुति अषाढ़ घन घट घहरानी,
पीय गये ते फिर घर आवा, पामर नर नित मंदिर छावा।
लवहि पपीहे दादुर मोरा, हियरा उमंग धरत नहिं भोरा।
बादर उमहि रहे चौमासा, तिय पिय बिनु लिहिं उसन उसासा।
नन्हीं बूँद झरत झर लावा, पावस नभ आगमु दरसावा।
दामिनि दमकत निसि अँधियारी, विरहिनि काम बान उरि मारी।
भुगवहि भोग सुनहिं सिख मोरी, जानत काहे गई मति भोरी।
मदन रसाइन हुइ जग सारु, संजम नेम कथन विवहारु॥[1]

मंदोदरी की बातों का सीता इस प्रकार उत्तर देती है--

अपना पिय पद अमृत जानी, अवर पुरुष रवि दग्ध समानी,
पिय चितवनि चितु रहइ अनंदा, पिय गुन सरस बढ़त जसकंदा।
प्रीतम प्रेम रहइ मनपूरी, तिनि बालिमु संग नाहिं दूरी।

मनकरहा रास—यह भी एक रूपक काव्य है। मन को करहा (ऊँट) कहा गया है। लगता है कि कवि ने यह उपमा मुनि रामसिंह के पाहुड़ दोहा से लिया है। इसमें कुल २५ पद्य हैं।

संसार रूपी रेगिस्तान में मनरूपी करहा के भ्रमण का रूपक बाँधा गया है। रचना सरल एवं मौलिक है।

जोगीरास (३८ पद्य)—जीव इन्द्रियसुख के पीछे संसार में भटकता है। कवि कहता है कि अपने मन को स्थिर कर अपने अंतर में चिदानंद का अनुभव करके भवभ्रमण से मुक्त होना ही परम पुरुषार्थ है, यथा—

---

१. डॉ० प्रेम सागर जैन— हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १६४-१६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेखहु हो तुम पेखहु भाई, जोगी जगमहि सोई,
घट घट अंतरि बसइ चिदानंदु, अलख न लखिये कोई।
भव बन भूलि रह्यो भ्रमरावलु सिवपुर सुध विसराई,
परम अतीन्द्रिय सिवसुख तजिकरि, विषयन्मि रहिउ लुभाइ।[1]

चतुर बनजारा—यह ३५ पद्यों का रूपक काव्य है जिसमें कवि ने बताया है कि वह जीव चतुर बनजारे के समान है जो संसार की असारता का अनुभव करके इससे मुक्त होने का प्रयत्न करता है। 'वीरजिनिन्द गीत' में भगवान महावीर की स्तुति से सम्बन्धित पद हैं 'राजमतीनेमीसुर ढमाल' में नेमि-राजुल की लोकप्रिय कथा से सम्बन्धित कुल २१ पद्य हैं।

टंडाणारास—एक आध्यात्मिक रचना है, कवि कहता है—

धर्म सुकल धरि ध्यान अनूपम, लहि निज केवल नाणा बे,
जंपति दासभगवती पावहुँ, सासउ सहु निव्वाणा बे।

अर्थात् शुक्ल ध्यान धारण कर जीव को निर्वाण प्राप्त करना चाहिये।

अनेकार्थनाममाला—कोश ग्रन्थ है। इसके तीन अध्यायों में क्रमशः ६३, १२२ और ७१ दोहे हैं। अनेकार्थ शब्दों का पद्यबद्धकोश बनारसीदास की नाममाला के १७ वर्ष पश्चात् लिखी गई उत्तम कोशकृति है। यह रचना सं० १६८७ आषाढ़ कृष्ण तृतीया गुरुवार को देहली में की गई।

मृगांकलेखाचरित—यह सं० १७०० अगहन शुदी पंचमी सोमवार को हिसार के वर्द्धमान मंदिर में लिखी गई। इसकी भाषा प्राचीन मरुगुर्जर है। इसमें चन्द्रलेखा-सागरचन्द्र की कथा के माध्यम से सतीत्व का महत्व बताया गया है।

भगवतीदास की दो रचनायें साहित्येतर विषयों पर मिली हैं—ज्योतिषसार और वैद्यविनोद। इनसे लगता है कि वे साहित्य के अलावा ज्योतिष, वैद्यक आदि के भी जानकार थे। उनका हिन्दी और अपभ्रंश आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। कवित्व शक्ति उच्च

१. डॉ० प्रेम सागर जैन—जैन भक्ति काव्य पृ० १६६
२. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० २०-३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोटि की थी। उन्होंने प्रभूत परिमाण में साहित्य सृजन किया जैसे आदित्यव्रतरास, दशलक्षणरास, खिचड़ीरास, साधु समाधिरास, रोहिणीव्रतरास, आदित्यवार कथा, अनथामी कथा आदि व्रत पूजा से सम्बन्धित रचनाओं के अलावा आदिनाथ स्तवन, शान्तिनाथ स्तवन आदि तीर्थंकरों के स्तवन भी कई लिखे हैं। इनमें से अधिकतर रचनायें १८ वीं शती में पड़ती हैं अतः उनके विवरण नहीं दिये गये हैं। जो विवरण-उद्धरण उपलब्ध हैं उनसे पूर्णतया प्रमाणित होता है कि वे एक श्रेष्ठ कवि थे। जैन साहित्य में इनके आस-पास ही चार भगवतीदासों का उल्लेख मिलता है। पहले ब्रह्मचारी भगवतीदास जिनदास के गुरु थे। जिनदास ने ब्रह्मचारी भगवतीदास का उल्लेख जंबूस्वामीचरित्र में किया है। दूसरे भगौतीदास बनारसीदास के पंचमहापुरुषों में एक थे। अतः उनका काल भी १७वीं शताब्दी में ही पड़ता है। तीसरे भगवतीदास भट्टारक महेन्द्रसेन के शिष्य प्रस्तुत कवि भगवतीदास ही है। चौथे भगवतीदास भैया भगवतीदास के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे पूर्णतया १८वीं शताब्दी के कवि हैं। इसलिए पहले भगवतीदास १७वीं से पूर्व के और चौथे भगवतीदास १८वीं शताब्दी के हैं। पर दो-पं० भगवतीदास और भगौतीदास १७वीं शताब्दी के ही हैं। शायद वे दोनों एक ही हों। डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने पं० भगवतीदास और भगौतीदास (बनारसीदास के मित्र) को एक में मिला दिया है। इन्होंने 'अर्गलपुर-जिनवंदना' नामक एक रचना का कर्त्ता भगौतीदास या भगवतीदास को बताया है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह रचना भगौतीदास की हैं जो कवि बनारसी दास के मित्र थे।

भगौतीदास कृत अर्गलपुर जिनवंदना में (सं० १६५१) आगरे के सभी जिन मंदिरों और चैत्यालयों का वर्णन किया गया है। इसमें २१ पद्य हैं। प्रत्येक पद १२ पंक्तियों का है। गीत का टेक है—

अर्गलपुर पट्टणि जिणमंदिर जो प्रतिमा रिसिराई।

एक जिनालय का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

साहु नराइनी कीउ जिनालय अति उत्तंग धुज सोहइ हो,
गंध कुटी जिनबिंबविराजत अमर खचर खोहइ हो।

× × ×

समुझि सखहि मनमांहि सगुण जण सुनिबानी गुरुदेवा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुर मुख देखि अभै पद पावहिं करहिं साधुरिसि सेवा।[१]

इनकी एक अन्य रचना 'दानशीलभावना' भी हो सकती है जिसकी प्रति दिग० जैनमन्दिर बीसपंथी द्योसा में सुरक्षित है।[२]

श्री कामता प्रसाद जैन का विचार है, कि महेन्द्रसेन के शिष्य भगवतीदास या भगौतीदास एक ही हैं। ये ही बनारसीदास के पंच सखाओं में थे जिनमें रूपचंद, चतुर्भुज, भगौतीदास, कुँवरपाल और धर्मदास की गणना है, यथा —

> यथा रूपचंद पंडित प्रथम, दुतीय चतुर्भुज नाम,
> तृतीय भगौतीदासनर कौरपाल गुन धाम।
> धर्मदास ए पंचजन मिलि बैसे इकठौर,
> परमारथ चरचा करें इन्हके कथा न और।[३]

श्री कामताप्रसाद जी लिखते हैं "भगवती दास जी जैन साहित्य में प्रसिद्ध कवि भैया भगवतीदास से भिन्न व्यक्ति हैं और यह वह कवि प्रतीत होते हैं जो मुनि महेन्द्रसेन के शिष्य थे और सहजादिपुर के रहने वाले अग्रवाल वैश्य थे।[४]

भद्रसेन—आप खरतरगच्छीय कवि थे। जब जिनराज सूरि ने शत्रुजंय पर प्रतिष्ठा की थी उस समय वहाँ गुणविनय आदि के साथ भद्रसेन के भी उपस्थित रहने की सूचना मिलती है।[५] आपकी रचना 'चंदन मलयागिरि चौपाई' १८४ पद्यों की एक सुन्दर, लोककथा पर आधारित कृति है। यह पर्याप्त लोकप्रिय भी है। इसकी अनेक प्रतियाँ राजस्थान एवं गुजरात के शास्त्रभंडारों में उपलब्ध हैं जिनमें से कई सचित्र भी हैं। सं० १६७५ के आस-पास इसकी रचना हुई होगी। इसमें कुसुमपुर के राजा चंदन और शीलवती रानी मलयगिरी

---

१. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ३९-११४

२. वही

३. श्री कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० ११३

४. वही

५. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९६-९८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

की कथा निबद्ध है। इसकी भाषा सरस एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है।[1] यह आचार्य ध्रुव (आनंदशंकर ध्रुव) स्मारकग्रन्थ में प्रकाशित है। रचना दोहा छंद में है, बीच-बीच में कुछ गाथायें भी दी गई हैं।

प्रारम्भ के दो दोहे निम्नलिखित हैं—

स्वस्ति श्री विक्रमपुरे, प्रणमी श्री जगदीश,
तनमन जीवन सुखकरण, पूरण जगत जगीस
वरदायक वरसरसती, मति विस्तारण मात,
प्रणमी मनि धर मोद सु, हरण विघन संघात ॥[2]

यह रचना बीकानेर में हुई। गुरुपरंपरा का पता नहीं चल पाया परंतु कवि खरतरगच्छीय आचार्य जिनराज सूरि का भक्त प्रतीत होता है। यथा—

मम उपगारी परमगुरु गुण अक्षर दातार,
बंदी ताके चरण युग भद्रसेन मुनिसार।

इसमें रचनाकाल भी नहीं है। अन्तिम दोहा यह है—

दुष गयो मन सुख भयो, भागो विरह वियोग,
मात-पिता सुत मिलत ही, भयो अपूरव योग।

जैन गुर्जर कविओ के नवीन संस्करण में इसका अपरनाम 'वार्ता-रास' भी बताया गया है। इसमें रचनाकाल सं० १७०९ से पूर्व कहा गया है। जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०/८ पर सं० १७०९ की प्रतिलिपि प्राप्त कही गई है।[3] अतः यह रचना १७वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की अवश्य होगी।

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल ने भी इसे १७वीं शताब्दी की रचना बताया है। उन्होंने ग्रन्थ सूची विवरण में इसे हिन्दी पद्य में रचित कथा बताया है। इसकी प्रति का प्राप्ति स्थान (दिगम्बर जैन मंदिर कोटडियों का) डूंगरपुर बताया है।[4]

---

१. हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता पृ० १२३-२४
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९६-९८ (प्रथम संस्करण)
३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० १८१-१८३ (द्वितीय संस्करण)
४. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ४३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवान—तपागच्छीय सोमविमलसूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६२६ में ४८३ कड़ी की रचना 'वंकचूल रास' पाटण में लिखी। कवि ने इसका रचना काल इस प्रकार बताया है—

संवत सोल छवीसमे रास रच्यो उल्हासि,
सुकल पक्षि दसमी दिने सोहिया चोमासि।

प्रारम्भिक मंगलाचरण के अन्तर्गत कवि ने आदि जिणेसर, अजित, सुमति, चंद्रप्रभ, शांतिदेव, नेमिनाथ और महावीर आदि तीर्थंकरों की वंदना की है, फिर कवि कहता है—

साचोरे श्री वीरज वंदो, कंदो पूरब पाप,
दोहग दुरगति दूरे पलाइ, थाई निरमल आप।
सहि गुरु पय प्रणमी ने बालिसु, बंकचूलनो रास।
सरसति सामिणि पाइ लागु, मांगु वचन विलास॥[1]

गुरु परंपरा इस प्रकार बताई गई है—

तपगछि गुरुअे गुणनिलो सोमविमल सूरीश,
परिवार सहित अे गुरुवली, प्रतिपो कोडि वरीस।
कासमीरपुर पाटणि जिहां मूलनायक पास,
चरण कमल तेहना नमी, कीधों बंकचूल रास।

अंतिम पंक्ति में कवि के नाम की छाप है—

कहि कवियण ने सांभले, हीय धरी बहू ध्यान,
ते पामे शिव संपदा, कहे करजोडि भवान॥४८३॥[2]

भानुकीर्तिगणि—आप दिगम्बर परम्परा के भट्टारक और साहित्यकार थे। अपने सं० १६७८ में 'आदित्यवार कथा' (२५ कड़ी) की रचना की। इसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

आदि श्री सुखदायक पास जिणेस, सिमरों भव्य पयोज दिनेस।
सिमरों शारदा पग अरविंद, दिनकर प्रगट्यो पास जिणंद।
अंत—संवत वसु मनु शशि की कला, विस्तृत कविता यह निरमला।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १५२-५३ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७१६-७१७ (प्रथम संस्करण)
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढ़त सुनत नर बहु सुख लहे, भानुकीर्तिगणि अइसे कहे ।।[1]

भानुमंदिर शिष्य—बडतपगच्छीय धनरत्नसूरि के शिष्य भानुमन्दिर के इस अज्ञात शिष्य ने सं० १६१२ वैशाख शुक्ल ३, रविवार को पुण्यधरा ? में 'देवकुमार चरित्र' नामक अपनी १२८९ कड़ी की बृहद् रचना चार खंडों में पूर्ण की।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरसति सामिणि वीनवुं मांगु निरमल बुद्धि,
कवित्त करिसि सोहामणुं, देवो वचन विसुद्धि।

इसमें मगध सम्राट् श्रेणिक प्रश्न पूछता है और भगवान महावीर उत्तर देते हैं, यथा—

कर कमल जोड़ी करि, श्रेणिक राय पूछंति।
सात व्यसन संबंध तु मुझ प्रति तेह कहंति।

सप्त व्यसनों के सम्बन्ध में भगवान उत्तर देते हैं—

वर्द्धमान बलतुं कहि, सुणि राजन सुविचार,
चरित्र तास कौतक घणुं, कहीइ तेह विचार।

अन्त में चंद्रगच्छ के रत्नसिंह से लेकर उदयसागर, लब्धिसागर, धनरत्न, भानुमंदिर तक गुरुओं का वर्णन किया गया है। रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

तस सेवक कीधी चुपइ, संवत सोल बारोत्तरि हुई।
विशाख सुकल त्रीज रविवार, नगर पुण्यधरा मझारि।

अन्त— देवकुमार चरित्र वर परिपूर्ण हवु रास,
भानुमंदिर शिष्य इम कहि चतुर्थ हउ उल्लास।[2]

भाव या अज्ञात—आपके सम्बन्ध में विवरण नहीं ज्ञात हो सका है। 'पाप पुण्य चौपाई' नामक रचना में 'भाव' शब्द आया है लेकिन

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९८४ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २१३ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० ६६२-६४ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ५३-५४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द-प्रयोग से यह स्पष्ट नहीं होता कि यह कर्त्ता का नाम ही है। सम्बन्धित पंक्तियाँ देखिये—

भाव सहित बरगत मनि धरउ, सिद्धि रमणि लीला जम वरउं।

यहाँ 'भाव' शब्द किसी व्यक्ति के बजाय भावना के अर्थ में ही प्रयुक्त प्रतीत होता है, किन्तु श्लेष के आधार पर यदि दोनों अर्थ लिए भी जाय तो भी कवि ने अपने या अपनी कृति के सम्बन्ध में कोई अन्य अन्तःसाक्ष्य नहीं दिया है। इसकी रचना तिथि तथा स्थान का भी कवि ने इङ्गित नहीं किया है। यह ७८ कड़ी की रचना है। इसका प्रथम छन्द यह है—

पाप पुण्य नां फल सांभलो, क्रोध मान माया परिहरऊ,
इदी नोंद्री सवि वसि करउ, धर्म भणी सहुइ अणुसरऊ।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अे चउपइं मनरंजिइ भणइ, मोटां पाप सवे परिहरउ,
भाव सहित बरगत मनि धरउ, सिद्धि रमणि लीला जम वरउ।[1]

भावरत्न—तपागच्छीय हेमविमलसूरि > अनंतहंस > हीरहंस > विनयभूषण > रत्नभूषण के आप शिष्य थे। सं० १६६० द्वितीय अषाढ़ कृष्ण ७, रविवार को ५०६ कड़ी की रचना 'कनकश्रेष्ठिरास' आपने लिखी। इसका रचनाकाल कवि ने इन पंक्तियों में बताया है—

संवत रस ने चंद्र युग्म त्रीसे रे मेली लाहो संवत्सरे रे,
आसो द्वितीय (बदि तीज) चंद सातमि रे शुभ योगे रविवारे रे।
शयराष्ट्र मझारि सांभर नयरे उपकंठे सोहामणी रे,
मथुरा ने अणुसारे पुहुरि नामे रे त्रिसी परिणामे बहुगणी रे।
तसमंडन श्री पास पय प्रणमी रे, रास रच्यो रलीयामणी रे,
पहुते सघली आस भावरत्न रे कहे भवियाँ भावे सुणी रे।

ऊपर लिखी गई गुरुपरंपरा का भी कवि ने उल्लेख किया है और अपने को रत्नभूषण पंडित का दक्ष शिष्य कहा है, यथा—

श्री रत्नभूषण पंडित दक्ष सेवकरे भावरत्न भावे भणे रे।[2]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५०७ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २८१ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग १ पृ० २४५ और भाग ३ पृ० ७४०-४२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री मो० द० देसाई ने पहले रचनाकाल सं० १६३२ कहा था, बाद में सं० १६६० निश्चित किया है। जो हो, रचना १७वीं शताब्दी की है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

विमल वाणि वाणि दीओ, कविजन पूरो आस,
हंसवाहनी गजगमिनी, देयो बुद्धि प्रकाश।

× × ×

शासन देवता देव सवि प्रणमी तेहना पाय,
रास रच्यु रलीयामणो कनकसेठि गृहीराय।
एकमनाने सांभले भणे गणे सविसेस,
अविचल लीला सो लहे, विलसे भोग विसेस।[1]

भावविजय -तपागच्छीय उपाध्याय विमलहर्ष के शिष्य मुनिविमल आपके गुरु थे। आपने सं० १६९६ चैत्र कृष्ण १०, रविवार को खंभात में ध्यानस्वरूप (निरूपण) चौपाई की रचना की। इसके अतिरिक्त आपकी अधिकतर रचनायें 'स्तवन' रूप में ही प्राप्त हैं जैसे शांतिजिनस्तवन, शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन, अंतरीक्ष पार्श्वनाथ छंद और २४ जिनगीत आदि। इसके अलावा 'स्तवनावली' नामक स्तवनों का एक संकलन भी प्राप्त है जिसमें अरनाथ स्तव, मल्लिनाथ स्तव, सुव्रतस्तव, नेमिनाथस्तव आदि स्तवन संग्रहीत हैं। आपकी एक विस्तृत रचना 'श्रावकविधिरास' अथवा शुकराजरास भी प्राप्त है। इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

ध्यानस्वरूप चौपाई का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सकल जिनेसर पाय वंदेवि, समरी माता सारद देवि।
ध्यान तणें हूं करुं विचार, श्री जिणवचन तणें अनुसार।
जीव तणो जे थिर परिणाम, कहिइ ध्यान तेहनु नाम।
तेहे तणा छे च्यार प्रकार, दोय अशुभ दोय शुभ मनिधार।[2]

रचनाकाल—वर्षधर निधि सुधारुचिकला वछरइ (१६९१)

चैत्रवदि दसमी रविवार संगइ।
ध्यान अधिकार अविकार सुख कारण,
खंभनयरि रच्यो चित्त रंगइ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३९१-९२ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग १ पृ० ५८१ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुपरंपरा—श्री तपागच्छ सोहाकरो, श्री हीरविजयो गुरु जुगप्रधानो।
देसना जस सुणी साहि अकब्बर गुणी, धमकामइं थयो सावधानो।

इसके बाद विजयानंद, विमलहर्ष और मुनिविमल तक का स्मरण किया गया है। यह रचना 'प्रकरणादि विचार गर्भित स्तवन संग्रह' में जैनधर्म प्रसारक सभा द्वारा प्रकाशित है।

श्रावकविधिरास अथवा शुकराजरास १००१ कड़ी की विस्तृत रचना है। यह सं० १७३५ में लिखी गई; कवि लिखता है—

भूतभवन रयणायर धरणी (१७३५) अे संवत सूधो जाणो।
दिन दिवालइ रासनी रचना, सिद्धि चढ़े हरखाणो।।[1]

यह रचना १८वीं शताब्दी की है, अतः अधिक विवरण नहीं दिया जा रहा है। भावविजय १७वीं और १८वीं शताब्दी के कवि थे।

२४ जिनगीत एक चौबीसी है। यह '११५१ स्तवनमंजूषा' और 'चौबीसी तथा बीसी संग्रह' में प्रकाशित है। इसका आदि—

श्री विमलाचल मंडणउ रे, श्री आदीसर जगदीश रे।
भगतवछल प्रभु माहरउ रे, तेहं ध्यान धरत जगदीश रे।

आदीश्वरस्तवन के बाद १२वीं कड़ी में धर्मनाथ का स्तवन इस प्रकार है—

इम दिसि कुमरी रे सूतिकरम करे, जेहनां धरीअ आंण हो जी।
भावविजय मुनि हरष धरइ धणउ, नामि ते धरम जिण हो जी।

शांतिजिनस्तवन का कलश देखिये—

इम शांतिपालक शांतिसुहकर, शुण्यो शांति जिणेसरो।
श्री कहेलवाडा नयर मंडण, कर्मपंक दिवाकरो।।
जगजंतुनायक सुगतिदायक, कामसायक संकरो।
उवझाय श्री मुनि विमल सेवक, भाव सुख संतति करो।।[2]

शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन का कलश भी उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

इति दुक्खवारक सुक्खकारक श्री शंखेसर जिनवरू।
मइं थुण्यो भगति आप सगति भवियवंछिय सुरतरु।।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३२३-३२४ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, पृ० ३२५-३२६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवझाय विमलहर्ष सोहइ सुकृत भूरुह जलधरो,
उवझाय श्री मुनि विमल सेवक भाव विजय जयकरो ।

'अंतरीक्षपार्श्वनाथछंद' (५१ कड़ी) की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिये—

सरसति मात मया करी, आपौ अविचल वाणि,
पुरिसादाणी पास जिण, गाऊं गुणगणि खाणि ।

इसके भी अंत में वही गुरुपरंपरा बताई गई है।

नारंग पुराहव पार्श्वस्तव (२३ कड़ी) सं० १७०७ का रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवतसत्तर छडोत्तरा, वरषिजेठवदित्रीजइ बहुहरखइ,
बहुप्रतिमा वृन्द संघाति, प्रभु थाप्या अछवथाति ।

आप अच्छे संत और उत्तम कवि थे। आपकी रचनाओं में प्रवाह है क्योंकि छंद प्रायः खंडित नहीं है। मात्रा, तुक आदि का ध्यान रखा गया है। इस प्रकार आप १७वीं शताब्दी के अन्तिम और १८वीं सदी के प्रथम चरण के एक सशक्त कवि सिद्ध होते हैं। भाषा में प्रसाद गुण के साथ प्रवाह भी है।

भावशेखर—आंचलगच्छीय कल्याणसागरसूरि के शिष्य विवेकशेखर आपके गुरु थे, आपने सं० १६८३ ज्येष्ठ शुक्ल १४ को ३ खंडों ३१ ढालों में ७४७ कड़ी की रचना रूपसेन ऋषिरास' प्रस्तुत की।

इसका आदि देखिये—

स्वस्ति श्रीशांतीसरु, प्रणमुं एकचित्त भावि,
विघन निवारण सुखकरु, लीलालवधि सुन्दावि ।

मंगलाचरण के अन्तर्गत शारदा, गौतम गणधर आदि की वंदना है। इसमें रूपसेन की कथा के माध्यम से पुण्य का माहात्म्य समझाया गया है—

पुण्ये तेजस झलहलइ, प्राची दिसिजिमि भाण,
पुण्य कथा कहुं हरष धरी, रूपसेन गुण जाण ।

× × ×

जिम भाषिउ पुरव मुनिइ तिम दाखुं हूँ रेह,
साधुकथा कहिता थकां होवि लाभ सुनेह ।
नवनगरि श्री शांति जिणेसर, तस सानिधि थउ अेह,
बंधव विजयशेखर नी साहिज कहेउ अधिकार सुनेह रे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम खण्ड में २७८ गाथा और ११ ढाल हैं। द्वितीय खंड में ११ ढाल और २५७ गाथायें तथा तृतीय खंड में १९४ गाथायें हैं। तृतीय खंड की नवीं ढाल में रचनाकाल इस प्रकार लिखा गया है—

> संवत सोलसि त्रासीइ मास जेठ मनिरंगिरे लाल,
> त्रीजे खंड मनोहरु नवमी ढाल रसाल रे लाल।[1]

कवि ने श्लोक संख्या ११०५ बताई है।

भावहर्ष—खरतरगच्छ की भावहर्षी शाखा के आप प्रवर्त्तक आचार्य थे। यह घटना सं० १६२१ की है। इसकी गद्दी बालोतरा में है। आपने १६३ गाथा की एक सुन्दर रचना 'साधुवंदना' नाम से रची है जो सं० १६२२ में जोधपुर में रची गई।[2] इसके अतिरिक्त आपने करीब २० सरस गीत और भाव प्रवण स्तवनादि लिखे हैं। इनकी रचनाओं का उद्धरण नहीं उपलब्ध हो सका।

भीमभावसार—आप लोकागच्छ के वरसिंह के शिष्य थे। आपनें 'श्रेणिकरास' तीन खण्डों में (सं० १६२१ भाद्र शुक्ल पक्ष में बड़ोदरा (वटपद्र) में लिखा है। इसके प्रथम खण्ड का आदि इस प्रकार है—

> गोतिमनइ सिर नाभीय, मनवांछित फल पामीय।
> स्वामीय सेवक नी दया करो अे।
> सारदानइ चरणे लागु', शुद्धि बुद्धि माता हुं मांगु,
> द्यो मुझनइ वाणी अनोपम रुअडी अे।

अंत—वटपद्र नयर संवत सोल अेकवीसइ, भाद्रपद सुदि शुभवारे।[3]

इसका द्वितीय खंड एक दशक बाद लिखा गया। यह ४१६ कड़ी का है। बडोदरा में ही यह भी लिखा गया जैसा कि इसकी अंतिम पंक्तियों से प्रकट होता है—

वटपद्र नयरि संवत सोलत्रीसइ भाद्रपदवदि बीजइ सुकतइ।

इसमें गुरुपरम्परा कुंवरपाल से पाल्हा और वरसिंह तक बताई गई है। इसका आदि देखिये —

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९९६-९९८ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २५३-२५५ (द्वितीय संस्करण)

२. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८८

३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २२६-२२७ और भाग ३ पृ० ७०५-७०८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मातसरसति मातसरसति तणइ सुपसाय।
राजश्रेणिक तेह तणउ प्रबंध रास रसाल कीधउ;
गुणी गुरुश्रीवरसिंघ रिषितणइप्रसादिसउअर्थ सीधउ।

तीसरे खंड की रचना सं० १६३६ आसो वदि ७ रविवार को पूर्ण हुई, यथा—

संवत सोल छत्रीसइ वरसइ आसो वदि रविसप्तमी,
श्रेणिकरास खण्ड त्रीजउ कीधउ, श्रुत देव्यानि परणमी।

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

स्वामी अे सरब सिद्ध नमूं कर जोडि अे,
गोयम आदि साध सहू नमूं अे।[1]

आपकी दूसरी प्राप्त रचना 'नागल कुमार नागदत्त रास' है। यह २०१ कड़ी की कृति है।

इसकी रचना सं० १६३२ आसो शुदी ५ भृगुवार को बडोदरा में हुई। आदि—

प्रथम अे गौतम स्वामीनुं नाम अे
सीझइ सहुकाम प्रणाम करुं अे।
सक्ति अे सारदा लागुं हुं पाय रे,
मया करउ माइ पदवंध करूं अे।

रचनाकाल—वटपद्र संवत सोलबत्रीसि, आसो सुदि भृगू पंचमी,
भीम भणइ मि रचीउ रंगि श्रीगुरुनिचरणे नमी।[2]

भीम मुनि—श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग ३ के पृष्ठ ७०५ पर भीम भावसार और भीम को अलग-अलग बताया है किन्तु अन्त में दोनों को एक ही माना है, अतः भीम के नाम से प्राप्त श्रेणिक रास के द्वितीय और तृतीय खंड को भीमभावसार की ही रचना स्वीकार कर लिया है। लेकिन भीम मुनि कोई अन्य व्यक्ति प्रतीत होते हैं। इसकी रचना 'बैकुण्ठ पंथ' सं० १६९९ की है। भीमभावसार से इनके बीच समय के लम्बे अन्तराल के कारण ये अलग व्यक्ति लगते हैं। यह रचना जैनप्रकाश पृ० ४०३ से ४०८ पर प्रकाशित है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२० (द्वितीय संस्करण)
२. वही, पृ० १२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अन्त में रचना सम्बन्धी विवरण इस प्रकार बताया गया है—

चौरासी लाख जीवा जोनियां फिरिया वार अनन्त,
मुनि भीम भणे अरिहंत जपो, जिम पामो भवअन्त।
संवत सोल नवाणुये, बीजा जे बुधवार,
आसो मासे गाइयो, छीकारी नगरी मझारि।

यह छीकारी में लिखी गई यानि इसका रचना स्थान भी भिन्न है। भीमभावसार की सभी रचनायें बडोदरा में लिखी गई थीं। इस कृति का आदि--

वैकुण्ठ पथ बीहामणो, दोहिलो छे घाट,
आपणनो तिहा कोई नहीं जे देखाउ बाट,
मार्ग वहे रे उतावलो।

अन्त—भीम भणे सहु सांभलो, नवि कीजे पाप,
ऊँछो आधिको जे मे कह्यो ते तमे करजो माफ
मार्ग वहे रे उतावलो।[1]

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर भीम मुनि को भीमभावसार से भिन्न कवि स्वीकार किया गया है।

भुवनकीर्ति गणि—आप खरतरगच्छीय क्षेमशाखा स्थापक क्षेमकीर्ति संतानीय शिवसुन्दर पाठक>पद्मनिधान>हेमसोम>ज्ञाननंदि के शिष्य थे। इनकी रचनायें सं० १६६७ से सं० १७०६ तक की प्राप्त हुई हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि ये मुख्यतः १७वीं शताब्दी के कवि थे। १६वीं शती में एक दिगम्बर भट्टारक भुवनकीर्ति हो गये हैं जो सकलकीर्ति के शिष्य थे, दूसरे भुवनकीर्ति कोरंटगच्छीय कक्कसूरि के शिष्य थे। इन दोनों का परिचय १६वीं शताब्दी के अन्तर्गत यथास्थान दिया जा चुका है। ये उन दोनों से भिन्न कवि हैं। इनकी 'अघटितराजर्षिचौपइ' सं० १६६७ लवेरा, 'भरतबाहुबलि चौपइ' सं० १६७५ जैसलमेर, जम्बूस्वामी चौपइ' सं० १६९१ खंभात, 'गजसुकुमाल चौपइ' सं० १७०३ खंभात, 'अन्जनासुन्दरीरास' सं० १७०६ उदयपुर, पार्श्वधवल सं० १६९२ आदि कई बड़ी रचनायें प्राप्त हैं। आप सुकवि के साथ ही एक अच्छे गद्यकार भी थे। आपकी गद्यरचनाओं

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९८-५९९ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ३४०-४१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में शत्रुंजयस्तवन बालावबोध सं० १६९२ उल्लेखनीय है।[1] आपकी कुछ रचनाओं के विषय, भाषा शैली तथा काव्यत्व के नमूने के रूप में कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

अघटित राजर्षि चौपइ (१६६७ कार्तिक, शुदी ५ गुरु, लवेरा) का रचनाकाल कवि ने इस पंक्तियों में बताया है।

सोल सइ सतसठुइ संवते काती सुदि वर मासि,
पंचमि गुरुवारे सिद्धि जोग जी, संति पसाय उलासि।

इसके पश्चात् उपरोक्त गुरुपरंपरा दी गई है। अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

इणिपरि जीवदया जे पालिस्ये, लहिस्ये ते भवपार,
भणे गुणे जे सुणिसी प्रतिदिन, ता घरिमंगलच्यार।[2]

भरत बाहुबलि चरिय—(६ खंड ८३ ढाल, सं० १६७१ श्रावण शुक्ल ५, गुरु, जैसलमेर) आदि—

श्री आदीसर सामिनइ करि प्रणाम मनसुद्धि,
वीनति अेती वीनवुं आपउ निरमल बुद्धि।

× × ×

भरत बाहुबलि तणउ, चरित्त कहुं चितलाइ,
जनम करुं सफलउ जगइ, पातक जेम पुलाइ।
वीरा रस इहा अधिक छइ, चरित्र शास्त्र संभावि,
ठामि-ठामि रस ओर पिण सुणिज्योभवियणभावि।१४।

अर्थात् इस रचना में प्रधान रस वीर है, बीच-बीच में अन्य रसों का भी समावेश किया गया है। रचनाकाल—

संवत सोल रसा ऋषि मासइ श्रावणइ रे,
सुदि पंचमि गुरुवार रे, सिद्धियोग प्रम भावनइ रे।

गुरु परंपरा के अन्तर्गत खरतरगच्छ के यशस्वी आचार्य जिनचंदसूरि से लेकर जिनसिंह के पश्चात् क्षेम शाखा का विवरण दिया गया है। जिसमें जससुन्दर, पद्मनिधान, हेमसोम और ज्ञाननंदि का स्मरण किया गया है। यथा—

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा पृ० ८४
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १२५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाननंदि गुरुराज विनवइ रे,
भुवनकीरति गणि अे भणइ रे।
साहज्यइ कवि लावण्यकीरति गणि तणइ रे,
भणीयउ अे संबंध सुन्दर रे, ढाल त्रियासी इहां किणउ रे।

रचना की भाषा के सम्बन्ध में कवि कहता है—

गुजराती तिम सिंधू मारु पूरवी रे,
भाषायइ सुप्रसिद्ध सुणतां रे, प्रकटइ मति अतिनवीरे।

जंबूस्वामी चौपइ—(४ अधिकार ५५ ढाल, सं० १६९१ श्रावण शुक्ल ११, १३६९ कड़ी) का रचनाकाल भिन्न-भिन्न प्रतियों के दो पाठांतरों में दो प्रकार से मिलता है। दूसरे पाठान्तर के अनुसार यह रचना सं० १७०५ में हुई है।[1]

एक प्रति में पाठ है। संवत सोल सह हे 'अेकाणुये' और

दूसरे प्रति के पाठान्तर में—संवत सतरै से पंचोत्तरे, श्रावणसुदि इग्यारसि वासरे दिया गया है।

गजसुकमाल चौपाइ—(सं० १७०३ माघ, वद ११ गुरु, खंभात) का कलश देखिये—

श्री वीर जिनवर पाटपाटे गच्छ खरतर से घणी,
श्री जिनरंग सूरींदराजे षेमसाखें दिनमणी,
श्री ग्याननंद गणीद वाचक चरणसेवक तास अे,
श्री भुवनकीरति कहे गजसुकुमालमुनिनो रासअे

अंजनासुन्दरीरास - (३ अधिकार ४३ ढाल, ७०३ कड़ी सं० १७०६ माघ शुक्ल १२ गुरुवार, उदयपुर) आदि—

करता सगली साधना, सत्य गुरुकहवाय;
हूँ पिण इहाँ किणि ते भणी, प्रथम नमु गुरुपाय।[2]

श्री जिनरंगसूरि के आदेश से इन्होंने उदयपुर में चौमासा किया, उस समय वहाँ का शासक राणा जगतसिंह था, यथा—

तसु आदेसइं संवत सतर छडोतरइ रे उदयापुर चौमास,
जगतसिंघ राणो गाजइ, जिहां रे हिंदूपति तसवास।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १२७-१२
२. वही, पृ० १३२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इम श्री भुवनकीरति कहि भाव धरीधणो रे गिरुआनो जसवास
अधिको ओछो इहां किण जेह कह्यो रे हुबइ रे मिच्छादुकड़ तास।

शील एवं सम्यक्त्व का माहात्म्य इस कथा द्वारा कवि ने स्पष्ट किया है। अन्त में कवि ने लिखा है---

सील प्रभावइ समकित गुणनइ धारविइ रे,
दिनप्रति कोटि कल्याण।
तिणि अे भणता गुणता सुणता चउपइरे,
जीविन जनम प्रमाण।

इन पाँच प्रमुख रचनाओं के अलावा आपने कई धवल, स्तवन आदि छोटी रचनायें भी की हैं। पार्श्वलघुस्तवन की कुछ पंक्तियाँ इनके प्रतिनिधि रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह ९ कड़ी की लघु कृति है। इसका आदि इस प्रकार है--

तु ग्यानी तुझ जे कहुँ जी तेहन तिल पोसाय,
पिण ससनेहा माणसां जी विगर कह्या न रहाय।

अन्त-- सांनिधि करिजाइ अवसरइ जीइतरइ कोटि कल्याण,
मन बीसरो मन थकी जी, भुवनकीरति कुलभांण।[1]

नवीन संस्करण (जैन गुर्जर कविओ) के संपादक भी जयंत कोठारी को निश्चित विश्वास नहीं है कि यह रचना उन्हीं भुवनकीर्ति की है। लेकिन जब तक श्री देसाई की स्थापना के विरुद्ध कुछ निश्चित प्रमाण नहीं मिलता तब तक उसे अमान्य करने का मुझे औचित्य नहीं दीखता, अतः इसे मैं इन्हीं भुवनकीर्ति की रचना मानता हूँ।

मतिकीर्ति--आप खरतरगच्छीय क्षेमशाखा के प्रमोदमाणिक्य > जयसोम > उपाध्याय गुणविनय के शिष्य थे। अपने चित्त-ललितांगरास, अघटकुमारचौपइ सं० १६७४ आगरा और धर्मबुद्धि-रास सं० १६९७ नामक काव्य रचनायें की हैं। गद्य में 'प्रश्नोत्तर' नामक रचना भी उपलब्ध है।[2]

अच्छयकुमार चौपइ (२७२ कड़ी सं० १६७४ आगरा) के आदि की पंक्तियाँ देखिये--

---

१. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३ पृ० ३७८
२. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसापूरणा पास प्रभु पुहवि प्रसिद्ध उजासु,
सुजस सुरासुरवर मिली, गावइ धरिय उलास,
धरममरम अति दोहिलउ, कहतां विणु गुरुवाणि,
भविष्यत पुण्यइ उदयवसि, लहिय ते गुणखाणि।
बन रन शत्रु जलन जालइ धरम हवइ रखपाल,
इह उपनय वर विबुधवर अघटकुमार संभाल।

कवि कहता है कि अघटकुमार ने जैसे उद्यमपूर्वक धर्माचरण करके निर्वाण प्राप्त किया, उसी प्रकार संसारी जीवों का भी कर्तव्य है। अन्त में कवि लिखता है—

जाणी उद्यम धरमइ धरउ जिम सुखसंपद लीलावरउ,

रचनाकाल—अंबुधि मुनिरस ससिधर वरसइ,
अे संबंध भण्यउ मन हरसइ।

यह रचना जहाँगीर के शासनकाल और जिनसिंहसूरि के सूरि-काल में रची गई थी। यथा—

युगप्रधान श्री जिनसिंह सूरि, राजइ राजइ जे गुणभूमि,
जिहाँ जहाँगीर साहि सबरोज, नय महि प्रजापालइजिम भोज।

आगे गुरुपरंपरा दी गई है।

धर्मबुद्धि मंत्रीश्वर चौपाई (सं० १६९७ राजनगर)

आदि—आणि आणंद अंगमइ, पणमी पास जिणंद,
फलदाई फलवाधपुरइ कलियुगिसुरतरुकंद।[1]

रचनाकाल—संवतमुनिनिधि रस शशि वरसइ,
अे सम्बन्ध रच्यो मन हरसइ।
राजनगरि संपद भरि सरसइ,
जासु शोभागु फुण पुरफरसइ।

आपने एक खंडन मंडन युक्त साम्प्रदायिक रचना भी की है जिसका नाम है—लुंपक मतोत्थापक गीत (गा० ६१) उसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—

अहे भाव आगमि भण्यउ श्री गुण विनय पसाइ,
मत कीरत वाचक मणइ, निजमन केरइ भाइ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १८५ (द्वितीय संस्करण) तथा भाग १ पृ० ५७७ और भाग ३ पृ० १०६८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गद्य में आपने लखमसी कृत प्रश्नोत्तर रूप संवाद सं० १६९१ भाद्र वदी ६ बुध जैसलमेर में लिखी है। इसमें २७ प्रश्नों पर संवाद है। आपकी भाषा सरल, शुद्ध और गतिशील है, यथा--

पुण्य तणउ फल जेह न मानइ, मोह मलिन मति आप गुमानइ,
ऊँचनीचगति मइ बहु थानइ, दुख लहइस्यइ नर तेह अगानइ।
पाप तणी मति दुरइ करिसइ, संग कुसंग तिनऊ परिहरसइ।
पुण्य तणउ फल सुखि मनि धरसइ, मतिसागर जिम ते सुख वरिसइ।

ये पंक्तियाँ धर्म बुद्धि मंत्रीश्वर रास से उद्धृत हैं। इनमें पाप पुण्य का सुन्दर निरूपण सरस भाषा शैली में किया गया है।

मतिचंद--आप गुणचन्द गणि के शिष्य थे। आप मुख्यरूप से गद्यकार थे। आपका रचनाकाल १७वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। आपकी दो गद्य कृतियाँ उपलब्ध हैं--

१. कर्मग्रन्थबंधस्वामित्व बालावबोध और
२. षडशीति (चोथो कर्म ग्रन्थ) बालावबोध।[1]

मतिसार I--आप खरतरगच्छीय जिनसिंह सूरि के शिष्य थे। श्री मो० द० देसाई ने इनकी चार रचनायें गिनाई थीं--शालिभद्रमुनि चतुष्पदिका सं० १६७८, चंपकसेनरास सं० १६७५, गुणधर्म रास सं० १६९९ और चंदराजा चौपइ।[2] जैन गुर्जर कविओ के द्वितीय संस्करण के संपादक ने इनकी दो ही रचनायें बताई हैं--गुणधर्मरास और चन्दराजा चौपइ। यहाँ शालिभद्रमुनि चतुष्पदिका का कर्त्ता जिनसिंह के शिष्य जिनराज को बताया गया है। चंपकसेनरास वस्तुतः मतिसार की कृति नहीं है इसका नाम द्वि० सं० के संपादक ने रचना सूची में ही नहीं गिनाया है। चंदराजा चौपइ को संपादक ने मतिसार की कृति बताया है किन्तु उसके सम्बन्ध में यह शंका व्यक्त की है कि यह रचना संभवतः करमचन्द की है और निम्नलिखित पंक्ति के कारण शायद भ्रमवश श्री देसाई ने इसे मतिसार की रचना मान ली हो :--

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १६०७ (प्रथम संस्करण) तथा भाग २ पृ० २७० (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग १ पृ० ५०१-५०३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"मतिसारइ मइ कीऊ प्रबन्ध"[1] यहाँ मति के अनुसार के बजाय मतिसार को कर्त्ता के अर्थ में लिया गया लगता है, इस प्रकार निर्भ्रान्त रूप से इनकी दो ही रचनायें समझ में आती हैं--गुण धर्म रास और शालिभद्र चतुष्पदिका। चंपकसेन रास में कर्त्ता के स्थान पर स्पष्ट रूप से मतिसागर का नाम आया है।

कवि मतिसागर इम भणइ घरि-घरि मंगल ऋद्धि।[2]

इस प्रकार चंपकसेन रास मतिसार की कृति नहीं है किन्तु शालिभद्र चतुष्पदिका को संपादक श्री कोठारी क्यों मतिसार की कृति नहीं मानते यह समझ में नहीं आया। वे इसे जिनराज सूरि की रचना मानते हैं, पर उन्होंने कोई स्पष्ट प्रमाण अपने मत संपादन के पक्ष में नहीं दिया है। रचना में कर्त्ता के स्थान पर मतिसार का नाम मिलता है। यथा--

श्रीजिनसिंह सूरि सीस मतिसारे भवियणनि उपगारे जी,
श्रीजिनराज बचन अनुसारइ चरित कह्यो सुविचारइजी।

यहाँ स्पष्ट बताया गया है कि जिनसिंह सूरि के शिष्य मतिसार ने जिनराज के वचनानुसार यह चरित लिखा। ये जिनराजसूरि भी हो सकते हैं या जिनभगवान भी हो सकते हैं जिनके वचनानुसार कवियों ने रचनायें की हैं। इस अर्थ में जिनराज का प्रयोग अन्य कई कवियों ने किया है। यदि जिनराज का अर्थ जिनराज सूरि किया जाय तो भी यह अर्थ नहीं बैठता कि जिनराजसूरि इसके कर्ता हैं, अतः मैं चतुष्पदिका को मतिसार की रचना मानकर उसकी कुछ पंक्तियाँ नमूने के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ--

आदि

सासणनायक समरीयइ वर्द्धमानजिनचंद,
अलिय विघन दूरइ हरइ आपइ परमाणंद।
दानशील तप भावना शिवपुर मारगच्यार,
सरिषा छइ तो पिण इहाँ दान तणउ अधिकार।
शालिभद्र सुखसंपदा पामे दान पसाय,
तासुचरित वषाणता पातिक दूरि पलाय।

---

१. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३ पृ० ३३५-३३६ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग २ पृ० २५-२६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें शालिभद्र के माध्यम से दान का माहात्म्य बताया गया है। रचना की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

साधुचरित कहिवा मन तरस्ये तिण अे उद्यम भाष्यो हरषे जी,
सोलह सत अठहत्तर वरस्ये आसू वदि छठि दिवस्ये जी।
शालिभद्र धन्नोरिस रास।[1]

इस प्रकार चतुष्पदिका और गुण धर्मरास इनकी दो रचनायें निर्विवाद प्रतीत होती हैं।

मतिसार II—संभवत: जैनेतर कवि थे। इन्होंने सं० १६०५ चैत्र शुक्ल ११ रविवार को 'कपूरमंजरीरास' की रचना की। यह कृति 'फार्बुस गुजराती सभा के त्रैमासिक पत्र के मार्च-अप्रैल-जून सन् १९४१ के अङ्क में छपी है।

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

प्रथम गणपति वर्णवउं गवरि पुत्र उदार,
लक्षलाभजेपुरवइ देव सविहुं प्रतिहार।
काशमीर मुख मंडनी, सरसति समरुं माय,
तेह तणइ सुपसाउलइं बुद्धिपामइ कवि राय।
अे सविहूँ आपसलही, मांडसु कथारसाल,
इन्द्रमाला जे पूतली कपूरमंजरी रसाल।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

कपूरमंजरी कथा अभिनवी, संवत सोल पंचोत्तरइ कवी।
चैत्र शुदि इग्यारसि रविवार, बोलइ कवि पंडित मतिसार।[2]

मतिसागर I—आगमगच्छीय गुणमेरु के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६७५ पौष मास में 'संग्रहिणी ढाल बंध' की रचना की थी। इसमें कवि ने अपना नाम इस युक्ति से बताया है—

पहिलु अक्षर मन तणु, बीजओ यति नु जाणि,
मनसा त्रीजु आणयो, चुथइ वइराग आणि।
वइरागर नु पंचम अेहजि कविता नाम,
श्री जीराउलि मंडणु करुं तेहनइ प्रणाम।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५०१-५०३ (प्रथम संस्करण)
२. जैन गुर्जर कवियो भाग ३५०-६५७ और भाग ३ खंड २ पृ० २१२९ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० २४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया है--

तासु सीस भाविइ करी, रचियो रास सुविचार,
संवत सोल पंचोत्तरइ, पोष मास उदार।

यहाँ पचोत्तर का अर्थ ७५ लिया है जबकि मतिसार की रचना कर्पूरमंजरी रास में आये पचोत्तर का अर्थ पाँच लिया गया था। यह संदेहास्पद है। इसका आरम्भ देखिये—

अरिहंतादिक पंचमेपरमेष्ठी प्रधान,
नमुं निरंजन चित्तस्युं मांगु अविचल मान।
कास्मीर निवासिनी सरसति समरु माय,
तास चरण भावइ नमी करुं कवित्त उच्छाहि।

गुरु परंपरा के अन्तर्गत उदयरत्न और सौभाग्यसुन्दर का उल्लेख किया है और अपने को सौभाग्यसुंदर के शिष्य गुणमेरु का शिष्य कहा है।[1]

मतिसागर II--आपकी गुरुपरंपरा का पता नहीं चल पाया, अतः यह भी निश्चित नहीं है कि गुणमेरु शिष्य मतिसागर और ये एक ही व्यक्ति हैं या दो भिन्न व्यक्ति हैं। श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५०३; भाग ३ पृ० ६५५ पर इनकी रचना 'चंपकसेन रास' का कर्त्ता मतिसार को बताया था। यह मतिसार के विवरण के साथ कहा जा चुका है किन्तु रचना में कर्त्ता का नाम मतिसागर स्पष्ट रूप से आया है अतः मतिसार इसके कर्त्ता नहीं हैं।

सन्दर्भित पंक्तियाँ देखिये--

संवत सोल पचोत्तरइ (१६०५) रचीउ श्रावण मासि,
श्री शांतिनाथ सुपसायलउ रचिउ हर्ष उल्हासि।
अेह जि रास जे नर भणइ श्रवण सुणइ बहु बुद्धि,
कवि मतिसागर इम भणइ घरि घरि मंगल ऋद्धि।[2]

इस कृति का संदेश तप, व्रत, संयम द्वारा निर्वाण की प्राप्ति है। चंपकसेन की कथा दृष्टान्त रूप में दी गई है--यथा

तप व्रत संजम सूधइ रहइ, अमर रिधि ते निश्चय लहइ,
शिवसुख पांमीजइ सही जेणि, जिम पामिउ राय चंपकसेन।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४११-६७ (प्रथम संस्करण,
२. वही, भाग २ पृ० २५-२६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद चंपकसेन कौन था, कहाँ का राजा था? इत्यादि वृत्तान्त वर्णित है। यह ३८८ कड़ी की रचना है। सम्पूर्ण रास में वस्तु, चौपाई और दोहा तीन छन्द ही प्रयुक्त हुए हैं। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है--

शान्ति जिणेसर मनधरी, निमनाथ बहुभत्ति जुत्तिय,
जीरावलि जगदीपतउ, पास देव मनिसिधि ध्याइय।[1]
महावीर चुवीसमउ प्रणमी पांचइ देव,
पंचे परमिठ भाविसुं अनुदिन सेव।

मधुसूदन व्यास--'विक्रमचरित्र' इनकी लोकप्रिय रचना है। ये भी जैनेतर कवि थे इसलिए इनके सम्बन्ध में विशेष विवरण नहीं मिल सका है। रचना का आदि देखिये--

प्रथम सारद प्रणमु वाघवाणि वरदाय,
उजेंणी तो राजीयो, त्रणविशविक्रमराय।
माय सुतात गुरुवइ नमुं सुरतेत्रीसे कोडि,
विक्रमचरित्र वीवाह कहुँ रुषे कोय काढ़िखोडि
विक्रमादेव जिहां वसइ, उजैणी अहिठाण,
व्यास भणइ रचनावली सरसी आखिर आणि।

मधुसूदन ने अपना नाम मदनसूदन लिखा है, यथा--

देषइ नाक जिसो तिलफूल, ऊपरि मोती को नहि मूल,
देवइ भमर भमइ रणझणइ, कवि मदनसुदन इणि परि भणइ।[2]

कवि ने रचनाकाल और अन्य विवरण नहीं दिया है। इसकी प्रति हरजी ऋषि द्वारा लिखित प्राप्त है।

मनजी ऋषि--पार्श्वगच्छीय विनयदेव> विनयकीर्ति के शिष्य थे। आपने अपने गुरु की वंदना में सं० १६४६ पौष शुदी ७ भृगुवार को बुरहानपुर में 'विनयदेवसूरि रास' लिखा। यह रास 'ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३' में प्रकाशित है। विनयदेव पार्श्वचन्द्र के शिष्य थे। उन्होंने सुधर्मगच्छ चलाया था। इस रास की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५०३, भाग ३,
पृ० ६५५ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० २५-२६ (द्वि० सं०)
२. वही, भाग ३ खंड २ पृ० २१५७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकल सिद्धि आनन्दकर जिनशासन शृंगार,
चउद पूरब नो सार अे जगि जपउ मंत्र नवकार।

भाषा शैली के नमूने के रूप में अन्त की कुछ पंक्तियाँ भी प्रस्तुत हैं—

पूज्य चउमास तिहां रह्या अे लोक करे धरमध्यान।
श्री विनयदेव पट्टधरु अे, श्री विनयकीरतिराय
सुधरमगच्छ आज दीपतो अे आदरयो मनभाय।
नयाबुरहाणपुर जाणीइ, अे देशविदेश विख्यात;
संवतसोलछइतालइ अे सुणयो भवियणबात।
मणजीऋषि आणंद सूं अे चोथ्यो रच्यउप्रकाश;
अेह रास जगि नांदओ अे, जां लगि मेरुथिर वास।[1]

ऐतिहासिक रास संग्रह में दिये गये विनयदेवसूरिरास के मूलपाठ से निम्नांकित सूचनायें प्राप्त होती हैं—पार्श्वचन्द्रगच्छ के संस्थापक पार्श्वचन्द्र के शिष्य और सुधर्म गच्छ के स्थापक विजयदेव सूरि और विनयदेव सूरि अथवा ब्रह्मऋषि के चरित्र को लक्ष्य करके सं० १६१६ में उनके शिष्य मनजी ऋषि अथवा माणेकचन्द्र ने बुरहानपुर में यह रास लिखा। इसमें ३७वीं कड़ी तक मंगलाचरण, तत्पश्चात् रास का उद्देश्य बताया गया है। जंबूद्वीपान्तर्गत मालवा और उनके निवास स्थान आजणोठ का वर्णन किया गया है। उस समय वहाँ सोलंकी राजा पद्मराय का राज्य था। उनकी पच्चीस रानियों में सीतादे पट्टमहिषी थी। उनके धनराज नामक पुत्र था। सं० १५६८ में दूसरा पुत्र ब्रह्मकुंवर हुआ। माँ-बाप ८ वर्ष की अवस्था में बच्चों को छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। उनके काका दोनों बच्चों को लेकर संघ के साथ गिरिनार गये। वहाँ रँगमंडण ऋषि के उपदेश से बालक ब्रह्मकुंवर को वैराग्य हुआ। काका गुणसिंह वापस लौट गये और बच्चों ने दीक्षा ली और पार्श्वचंद्र से शास्त्राभ्यास किया। दक्षिण को विहार किया। गुजरात से लौटते समय रास्ते में विजयनगर के राजा रामराय के दरबार में दिगम्बरों को वाद में पराजित किया। वहीं धनराज को आचार्य पदवी देकर नाम विजयदेवसूरि रखा गया। ब्रह्मऋषि ने जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति की टीका लिखी। जब बिहार करते दोनों खंभात पहुँचे तो विजयदेव रोगग्रस्त हो गये और वहीं उन्होंने

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २८७ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० २३८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ब्रह्मऋषि को सूरिमंत्र देकर उनका नाम विनयदेव रखा। स्वयं अनशनपूर्वक स्वर्गवासी हो गये। ब्रह्मऋषि ने अहमदाबाद में क्षमासागर सूरि के सहयोग से नवीनगच्छ का स्थापनोत्सव कराया। सं० १६४६ में विनयदेव के शिष्य विनयकीर्ति बुरहानपुर में चौमासा रहे, वहीं मनजी ऋषि ने चार प्रकाशों में यह रास लिखा। रास में बड़े सुन्दर स्थल यत्रतत्र मिलते हैं जैसे रानी की शोभा का वर्णन—

दाडिम कली जिम दन्त अधर प्रवाल सोहंत।
जीभडी अमिय भंडार, बोल्ल बोलइ सार।
हंस गति चालंति सदा वयण हसंति,
वरसंति वाणी अमीय सरषी।[1] इत्यादि

इसके प्रथम प्रकाश में ७७, द्वितीय में १२१, तृतीय में १६५ और चतुर्थ में २४३ छंद हैं। यह रास न केवल कलेवर में बड़ा है अपितु यह काव्यत्व एवं ऐतिहासिक सूचनाओं की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

मनराम—आप महाकवि बनारसीदास के समकालीन थे। इन्होंने अपनी रचना 'मनराम विलास' में बनारसीदास का सादर स्मरण किया है। इनकी रचना भी उन्हीं की तरह आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत है। इन्होंने खड़ी बोली का प्रयोग किया है। हो सकता है कि ये मेरठ के आसपास के रहने वाले हो। डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल ने इन्हें संस्कृत का विद्वान् बताया है। इनकी रचना 'मनराम विलास' सुभाषितों का संग्रह है। इसे किसी बिहारीदास ने संकलित-संपादित किया है, यथा—

मेरे चित्त में अपनी, गुनमनराम प्रकाश,
सोधि वीनये एकठे किए बिहारीदास।[2]

इसमें दोहा, सवैया और कवित्त आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। प्रारम्भ में पंचपरमेष्ठि की भक्तिपूर्ण प्रार्थना देखिये—

करमादिक अरिन को हरै अरहंतनाम,
सिद्ध करै काज सब सिद्ध को भजन है।
उत्तम सुगुन-गुन आचरत्व जाकी संग,
आचारज भगति बस जाकै मन है।

---

१. ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३

२. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १९३-१९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय ध्यान तै उपाधि समहोत,
साध परिपूरण को सुमिरन है।
पञ्च परमेष्ठी को नमस्कार मंत्रराज ध्यावै,
मनराज जोइ पावै निज धन है।[1]

इसमें भगवान के निर्विकार रूप, मोह कर्म की सामर्थ्य, भगवान नाम की महिमा आदि का विवेचन किया गया है—

मन भोगी तन जोग लखि जोगी कहत जहान,
मन जोगी तन भोग तसु जोगी जानत जान।

इसके अलावा मनराम की अन्य कई रचनायें उपलब्ध हैं। रोगापहार स्तोत्र में रोगों को दूर करने के लिए भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना की गई है।

बत्तीसी (३४ पद्य) इसके सभी पद्य भगवान जिनेन्द्र की भक्ति से सम्बन्धित हैं।

बड़ा कक्का—इसमें अक्षरमाला के ५२ अक्षरों में से प्रत्येक पर एक-एक पद्य रचा गया है।

धर्म सहेली (२० पद्य) इसमें जैन धर्म की महिमा का उल्लेख किया गया है।

पद—इसमें भक्ति सम्बन्धी पद संकलित हैं जो सरस एवं भक्ति-भाव से सराबोर हैं, यथा—

चेतन यो घर तेरो नाहीं, अथवा 'जिय तै नरमन यो ही खोयो।'

गुणाक्षर माला—इसमें भी जिनभक्ति सम्बन्धी पद्य है, यथा—

मन वच कर या जोडि कै रे वंदौ सारद माय रे,
गुण आखिरमाला कहुं सुणौ चतुर सुख पाइ रे।
परम पुरुष प्रणमो प्रथम रे, श्री गुर सब आराधो रे,
ग्यान ध्यान मारिगि लहै, होइ सिधि सब साधो रे।
भाई नर भव पायो मिनख को।[2]

इस प्रकार मनराम विलास के अलावा इनकी पाँच-छह अन्य उल्लेखनीय रचनायें प्राप्त हैं किन्तु कवि के सम्बन्ध में अधिक विवरण

१. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १९४
२. वही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं प्राप्त हैं। ये निःसन्देह उच्चकोटि के कवि हैं। भक्तिभावपूर्ण रचनायें मार्मिक एवं सरस हैं। इनमें हृदय की तल्लीनता है। इनके अलावा परंपरित ढंग की उपदेशपरक एवं धर्मप्रचार सम्बन्धी साहित्य तो इन्होंने लिखा ही है।

मनोहरदास--ये विजयगच्छ के सन्त मल्लीदास के शिष्य थे। सं० १६०६ में इन्होंने 'यशोधर चरित्र' की रचना लसकर में की[1] अपनी गुरु परम्परान्तर्गत इन्होंने गुणसूरि >देवराज> मल्लिदास का नाम गिनाया है।

कवि ने रचनाकाल बताते हुए लिखा है--

संवत सोल छहत्तरइ सार, श्रावण वदि षष्ठि गुरुवार,
दशपुर नवफण दास पसाय, रच्यो चरित्र सवइ सुखदाय।[2]

इसमें हिंसा का त्याग और जीवदया का संदेश दिया गया है। कवि ने लिखा है—

हिंसा तजी दया आदरु, जिम भवसायर हेलां तरु।

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं--

श्री शांतीश्वर शांतिकर पास जिणंद दयाल,
तस पदपंकज नमवि करि, चरितरचिससुविशाल।

गुरुपरम्परा—

विजयगछि गुणसूरि सुरींद, जश दरसण हुइ परमाणंद।
श्री मुनि देवराज सुखकंद, तास शिष्य मल्लिदास मुनींद।
तस पदपंकज सेवक सदा, मनोहरदास कहइ मुनिमुदा।[3]

मल्लिदास—आप विजयगच्छी नूनो>विजयराज>भीमराज> पद्मदेवराज के शिष्य थे। आपने सं० १६१९ आसो शुक्ल ३, भृगुवार को जम्बूस्वामी रास (पञ्चमचरित्र) की रचना ३० ढालों में की। कवि ने गुरु परम्परा के अन्तर्गत उपरोक्त गुरुओं का नाम गिनाकर स्वयं को पद्मदेवराज के बजाय देवराज का शिष्य लिखा है। लगता है कि छन्द के आग्रह से या लघुता की सुविधा से 'पद्म' शब्द छोड़

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९०
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १९९-२०० (द्वितीय संस्करण)
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया है। रचनाकाल –

अश्वती पास पसाइ, पूरी मइं तीस ढाल,
संवत सोल गुणवीसइ कीनु, आसुज सुदि भृगुवार।

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सरसति सरस सुकवि सवित, उक्ति अनोपम आनि,
मोही महा मही मोहनी, देवी देवद दानि।[1]

मल्लिदेव—श्री मोहनदास दलीचन्द देसाई ने आपकी एक रचना 'कर्मविपाकरास' (सं० १६४८) का उल्लेख जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २९० पर किया है। अन्य कोई विवरण नहीं दिया है और न रचना से उद्धरण ही दिया है। द्वितीय संस्करण के सम्पादक श्री जयन्त कोठारी ने शङ्का की है कि यह रचना संस्कृत भाषा की हो सकती है। अतः इसके सम्बन्ध में अधिक छानबीन नहीं की गई है। इसकी प्रतिलिपि माणेक भंडार में उपलब्ध है।

महानन्दगणि—तपागच्छीय हीरविजयसूरि की परम्परा में विद्याहर्ष आपके गुरु थे। शायद गुजराती थे। इन्होंने 'अंजनासुन्दरी रास' की रचना सं० १६६१ में रायपुर में की। इसमें हीरविजयसूरि और विजयसेन सूरि की सम्राट अकबर से मुलाकात का भी हवाला दिया गया है। अन्जना हनुमान की माँ हैं। उन्हें जिनभक्त के रूप में चित्रित किया गया है। अन्जना की सास ने उन्हें गर्भावस्था में घर से निकाल दिया। उस करुण दृश्य का मार्मिक अङ्कन कवि ने इस रचना में यथास्थान किया है। बीच-बीच में प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण भी स्वाभाविक ढंग से हुआ है। जैसे ऋतु वसंत में अन्जना अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई इस प्रकार दिखाई देती है—

फूलिय बनह बनमालीय वालीय करइं रे खोल,
करि कुंकुम रंगरोलिय घोलीय झक्कमझोल।
खेलइ खेल खंडोकली मोमली सहीपर साथ,
अंजनासुन्दरी सुन्दरी मंजरी ग्रही करी हाथ।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७००-७०१ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० ११४ (द्वितीय संस्करण)

२. डा० प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १४०-४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति वर्णन का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मधुकर करइं गुंजारव मार विकार वहंति,
कोयल करइं पटहूकड़ा टूकड़ा मेलवा कंत।

मलयाचल श्री चलकिउ पुलकिउ पवन प्रचंड,
मदन महानृप दाझइ विरहिनि सिर उद्दंड।[1]

श्री हरीश शुक्ल ने जैन गुर्जर कविओ की हिन्दी कविता, पृष्ठ १२० पर यही विवरण महानन्दि गणि के सम्बन्ध में हू-ब-हू दिया है, अतएव कोई नवीन उल्लेखनीय सूचना नहीं है।

महिम सिंह या मानकवि—आप खरतरगच्छीय उपाध्याय शिव-निधान के शिष्य थे। आप मानकवि के नाम से प्रसिद्ध थे। आपने सं० १६७० में 'कीर्तिधर सुकोशल प्रबन्ध' पुष्कर में लिखा। पुष्कर में ही आपने 'मेतारी ऋषि चौपइ' सं० १६७० और क्षुल्लककुमार चौपइ (गा० १४९) की रचना की। सं० १६७५ में आपने 'हंसराजबच्छराज चौपइ' की रचना कोटड़ा में की। इन प्रमुख कृतियों के अलावा आपने झूठापुर में अरहद्दास संबंध, उत्तराध्ययन छत्तीसी गीत, योग बावनी, उत्पत्ति नामा, शिक्षा छत्तीसी और रसमंजरी आदि पद्यबद्ध रचनायें भी की हैं। रसमंजरी की भाषा स्वच्छ हिन्दी है, किन्तु अन्य रचनाओं की भाषा मरुगुर्जर या पुरानी हिन्दी है।

आप पद्य के साथ-साथ अच्छे गद्य लेखक भी थे। गद्य में इन्होंने 'जीव विचार टब्बा' और 'कल्याणक मन्दिर बालावबोध' की रचना की है।[2]

रचनाओं का संक्षिप्त परिचय—कीर्तिधर सुकोशल प्रबन्ध का रचनाकाल श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ २१९ पर सं० १६१७ और भाग ३ में सं० १६७० बताया है। वस्तुतः रचनाकाल सं० १६७० ही उचित है क्योंकि यह रचना जिनसिंह के समय लिखी गई थी जिनका आचार्यपद स्थापन सं० १६७० और स्वर्गारोहण सं० १६७४ में हुआ था।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १४०-१४२
२. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा, पृ० ८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने रचना के अन्त में स्वयं लिखा है—

श्री खरतरगच्छ छाजइ श्री जिनसिंह सूरि राइज,
संवत सोलह सत्तरि, दीवाली दिनि गुणभरि।
अे सम्बन्ध रसाल सुणतां लीलविलास,
श्री शिवनिधान गुरु सीस कहइ मुनि मान जगीस।[1]

मेतार्य ऋषि चौपइ सं० १६७०। आदि—

विदुरलोक सुखदायिनी, सरसति समरि उल्हासि,
मेतारिज रिषचरित सुभ कहिसुं ग्रंथ प्रकासि।

अन्त--संबन्ध अे सरस कहिउ, शिवनिधान गणि सीस,
मुनि वदति मान सुप्रेम सुं सुखकारणि हो धरिमनहजगीस।

रचनाकाल—

संवत सोलह सत्तरइ पुहकरण नयरि मझारि,
सम्बन्ध अेह कहिउ सही, अति सुन्दर हो निजमति अनुसारि।

क्षुल्लक कुमार चौपइ—(साधु संबंध, गा० १४९ सं० १६७० के आसपास, पुष्करिणी) आदि—

श्री सद्गुरु पद जुग नमी, सरसति ध्यान धरेसु;
क्षुल्लक कुमार सुसाधुना, गुण संग्रहण करेषु।
गुणग्रहतां गुण पाइयइ, गुणि रंजइ गुणजाण,
कमलि भमर आवइ चतुर, दादुरग्रहइन अजाण।
गुणिजन संगत थइ निपुण, पावइ उत्तम ठाम,
कुसुमसंग डोरो कंटक कंतकि सिरि अभिराम।
पहिलउ धर्म न संग्रहिउ, मात कहिइ गुरुवयण,
नटुइवयणे जागीयइ, विकसे अंतरनयण।[2]

इसमें लेखक ने अपना नाम मानसिंह दिया है, यथा—

अे संबंध सरस कह्यउ शिवनिधान गुरु सीस,
मानसिंह मुनि इम कहइ श्री पुष्करणी जगीस।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६९४-९८ तथा पृ० १५०७-०८ (प्रथम संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० १६०-१६४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने अपना नाम मानसिंह, महिमासिंह, मनचंद और मान जगह-जगह लिखा है पर जैसा पहले कह चुके हैं कि ये मानकवि के नाम से ज्यादा जाने जाते थे।

उत्तराध्ययन गीत (सं० १६७५ श्रावण वदि ८ रविवार) आदि—

श्री जिनवर पद युगनमी, श्री सरसति गुरुपाय,
उत्तराध्ययन छत्तीस गुण, गाइसुं निरमल भाय॥

इस रचना में कवि ने अपना नाम महिमासिंह दिया है, यथा—

गुरुबंधव पंडितप्रवर कनकसिंह, मतिसिंह,
तिणि आग्रह कीधइ घणइ, भाषइ महिमासिंह॥

यह रचना कवि ने अपने गुरुभाई कनकसिंह एवं मतिसिंह के आग्रह पर किया। रचनाकाल—

सोलह सय पचहत्तरइ श्रावणवदि रविवार,
आठम दिन अध्ययन गुण गामा सुविचार॥

वच्छराज हंसराज चौपाई (५४९ कड़ी सं० १६७५ कोटडा) यह कथा दान-पुण्य एवं धर्माचरण के दृष्टान्त रूप में वर्णित है। इसका रचनाकाल इस प्रकार कवि ने लिखा है—

महिमसिंघ सुमति धरी, इम दान तणागुण गावइ रे,
सोलह सय पंचहुत्तरे श्री कोटडा नगरि सुभावइ रे।

श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड २ पृ० १४२३ पर शिवनिधान शिष्य महिमासेन के नाम से जो वच्छराज हंसराज चौपइ दिखाई है, वह यही रचना है। वहाँ रचनाकाल १७७५ अशुद्ध है, वह सं० १६७५ है जैसा ऊपर की पंक्तियों से प्रमाणित है। इसका आदि इस प्रकार है—

श्री आदीसर जिन तणा पद पंकज पणमेवि,
आदि करण जिन समरीयइ समरी सरसति देवि।[1]

× × ×

धर्म का महत्व—धर्म प्रसादइ सुख लह्या हंसराज, वछराज,
घर तजि परदेसइफिर्या सीधा बंछिति काज॥

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड पृ० १४२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हद्दास प्रबंध मेड़ता के कपूरचंद चोपड़ा के आग्रह पर लिखा गया। रसमंजरी का कोई उद्धरण नहीं मिला।[1]

महिम सुन्दर—आप खरतरगच्छीय साधुकीर्ति के शिष्य थे। आपने सं० १६५६ में 'नेमि विवाहला'(गाथा ३०१) की रचना सरसामें की। सं० १६६९ में आपने 'शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारकल्प' (गाथा ११६) की रचना जैसलमेर में की। श्री नाहटा ने नेमिविवाहलो का रचनाकाल सं० १६५६ और श्री देसाई ने सं० १६६५ बताया है।[2] उद्धरण या अन्य प्रमाण दोनों सज्जनों ने नहीं दिया है इसलिए यह निर्णय करना कठिन है कि किस सज्जन की तिथि मान्य है। इनकी दूसरी रचना 'शत्रुञ्जय तीर्थोद्धारकल्प' का विवरण-उद्धरण श्री देसाई ने दिया है जिसे संक्षेप में आगे दिया जा रहा है। रचना का आदि—

विमल बिमलगिरि मंडणउ, रिसहेसर जिनराज,
प्रणमूं तेहना पाय हूँ, जिम सीझइ सविकाज।

रचना काल—

संवत सोल गुहुत्तरा, सुदि जेठ नवमी शुभ वासरइ,
सिरि निलय दिनि-दिनि विजयराजइ, जेसलमेरु शोभावरइ।[3]

अन्त में गुरुपरंपरा बताई गई है और जिनचंद्रसूरि से लेकर महिमसुन्दर तक का क्रमवार नाम गिनाया गया है। जिस प्रकार तपागच्छीय प्रायः हीरविजयसूरिसे गुरुपरम्परा गिनाते हैं उसी प्रकार १७वीं शताब्दी के अधिकतर खरतरगच्छीय कवि अपनी गुरुपरम्परा जिनचंद्रसूरि से गिनाना प्रारम्भ करते हैं क्योंकि दोनों अकबर महान के प्रतिबोधक कहे जाते हैं।

महिमामेरु—आप खरतरगच्छीय सुखनिधान के शिष्य थे। आपने सं० १६७३ में 'नेमिराजुलफाग' की रचना ४ ढाल और ६५ गाथाओं में नागौर में किया। इसकी प्रति केसरियानाथ भंडार जोधपुर में सुरक्षित है। रचना का आदि और अन्त नमूने के तौर पर

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २, पृ० १५०७-०८
२. अगरचन्द नाहटा-परम्परा, पृ० ७४
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९१० (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ९६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत किया जा रहा है।[1] आदि—

सरसति सामिणि विनवुं, सारउ वंछित काज ललना,
नेमि तणा गुण वर्णवुं, वादी समा जिनराज ललना।

अंत–सहस बरस पूरउ करी हो, पहुता मुगति मझारि,
अे परबंध रच्यउ रली हो, श्री नागउर दसार।
वाचक पदवी गुणनिलउ, सुखनिधान गुरु सीस,
महिमामेरु मुनिवर भणइ, संघा सदा सुजगीस।[2]

भट्टारक महीचंद—इस नाम के तीन भट्टारकों में प्रथम महीचंद भट्टारक विशाल कीर्ति के शिष्य थे। प्रस्तुत महीचंद भट्टारक वादिचंद्र के शिष्य हैं। तीसरे महीचंद भट्टारक सहस्रकीर्ति के शिष्य हो गये हैं। वादिचंद्र शिष्य भ० महीचंद्र ने 'नेमिनाथ सवशरणविधि' आदिनाथ विनति, आदित्य व्रतकथा आदि रचनायें की हैं। लवांकुश छप्पय भी संभवतः आपकी ही रचना है। डा० हरीश शुक्ल का कथन है कि 'आदिनाथ विनति' इनकी लघु रचनाओं का संग्रह है। आदित्यव्रत कथा २२ पद्यों की लघु रचना है। लवांकुश छप्पय में कुल ७० पद्य हैं। छप्पय में रचनाकार के स्थान पर महीचंद का नाम आया है अतः यह रचना इन्हीं महीचंद की होनी चाहिये। अन्त में सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कै अक्षौहनि कटक मेलि रघुपति रणचल्यो,
रावण रणभूमीय पड्यो सायर जल छल्यो।
जयनिशान बजाय जानकी निजघर आंणी,
दशरथसुत कीरति भुवनत्रय मांहि बखानी।
राम लक्ष्मण एम जीति ने नयरी अयोध्या आवया,
महीचंद कहे फल पुन्य थिएडा बहुपरे बामया।[3]

राम ने सीता की कलंककथा चरों से श्रवण कर उन्हें वन भेज दिया जहां वे एकाकी विलाप कर रही थी।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १८१ (द्वितीय सं०) भाग ३ पृ० ९६५ (प्रथम संस्करण)
३. डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैनसंत पृ० १९८-२०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोदन करे विलाप एकली जंगल जेहवे,
अजजंघ नृप एहपुन्य थी आव्योतेहवें।

वहाँ सीता के दो पुत्र लव और कुश उत्पन्न हुए। बड़े होकर जब यह कथा उन्होंने सुनी—

'भगिनी करि धरि लाव्यो तेहथि तुम्ह दो सूत थया' तो बड़े क्रुद्ध हुए और राम से युद्ध किया। नारद की मध्यस्थता से शांति स्थापित हुई। लवकुश अयोध्या लौटे, पर सीता साध्वी बन गई और सत्य-भूषण केवली की आर्यिका बनकर उन्होंने घोर तप किया और स्वर्ग गई। इसकी भाषा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी है। यह डिंगलशैली के समीप है, यथा—

रण निसाण बजाय सकल सैन्या तबमेली,
चढ्यो दिवाजे करि कटककरिदशदिस भेजी।
हस्ति तुरंग मसूर भार करि शेषज शंको,
खड्गादिक हथियार देखि रवि शशियण कंप्यो।[1]

महेश्वरसूरि शिष्य—आपका नाम अज्ञात है किन्तु यह निश्चित है कि आप देवानन्दगच्छ के महेश्वर सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६३० आषाढ़ शुक्ल ३ गुरुवार को अपनी २५५ कड़ी की रचना 'चंपकसेन रास' पूर्ण की। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

गणपति गुणनिधि बीनवुँ, सरसति करो पसाय,
तुझ पसाईं गायस्युं प्रणमी गोयम पाय।
नाभिनवनिधि पामीइ, लब्धि तणो भण्डार,
गौतम गणधर समरता हुई जय जयकार।

इसमें दान की महिमा बताई गई है। यथा—

दानि महिमा त्रिभुवनि होय, भाव सहित देयो सहूकोय,
दानि सहूं को द्याइ आसीस, दानि जीवो कोडि वरीस।

रचनाकाल—

संवत सोलत्रीसा वर्ष सही आषाढ़ शुदि त्रीज दिन लही,
गुरुवार ते दिनसार पूरो रास तणो विस्तार।

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० २०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुपरंपरा--देवानन्द गछि गुरु जाणि श्री महेश्वर सूरि प्रगटप्रमाणि,
तेह श्री गुरु पसाई करी, रच्यो रास मनि ऊलट धरी ।[1]

माधवदास--आपके पिता का नाम चारण सुखदेव था। आपने 'रामरासो' लिखा है जिसकी भाषा हिन्दी है। इसमें श्रीरामचंद्र का चरित्र वर्णित है। प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखें--

ॐ ऊकार अपार अनन्त, अन्तरजामी जीव अनन्त,
आप भगत वरदान अनन्त, अहं प्रणाम मनेव अनन्त ।

सरस्वती बंदना की भाषा देखिये--

हंसा गमने ब्रह्माणी हंसारूप हंस आरूढ़ा,
दंवर गणवर वाणी, नध वाणी देवतभ्योनमं ।

कवि ने कृष्ण व्यास (द्वैपायन) वाल्मीकि, सुखदेव आदि का सादर स्मरण किया है। कुछ उदाहरण—

कृसन व्यास जामदेव कवि वाल्मीक सुखदेवअन,
किव गरु सल्य अहं, भाव छंद गुणभेव ।

दूहा—रासो जस श्री राम से बदे विदुख सुखवेद,
करणकुकवि जांणे कसो, रमसे किविसुं भेद ।
नट मरकट जिम नाचवै मंत्री मंत्र जेव,
कहिया तिम तमे कथे, हासणउ दुख सदेव ।

सोरठा—वाचे जे वाखाण रासोपि श्री राम रस,
लखियु दास कल्याण कथीयो माधवदास कवि ।[2]

आप जैनेतर चारण राजस्थानी कवि हैं। मिश्रबन्धु विनोद में आपका कविता काल सं० १६६४ दिया गया है।[3]

मानसागर—तपागच्छ के आचार्य बुद्धिसागर आपके गुरु थे। आपने "गुरु (गुरुकुल वास) स्वाध्याय" (१६ छप्पय) विजयसेनसूरि के सूरिकाल में अर्थात् सं० १६५२ से ७२ के बीच लिखा। इसका आदि इस प्रकार है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७३१ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० १५७-५८ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ खंड २ पृ० २१४८ (प्रथम संस्करण)

३. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ४०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकल मनोरथ पूरवा सुरतरु (पाठा० समर्थजो) सांचो,
शान्ति जिणेसर देव देखी, मन मोहि नाचो।
शांति जिणेसर सोलमा अे तेहना प्रणमी पाय,
भगतिभाव आणी घणो कहस्युं गुरु संझाय।

गुरु परंपरा में हीरविजयसूरि से लेकर विजयसेन> बुद्धिसागर तक का उल्लेख है, यथा—

महियल मांहि मुनिपति अे प्रतपो कोडिवरीस,
मानसागर कवि इम कहइ बुद्धि सागर गुरु सीस।[1]

मालदेव—आप खरतरगच्छीय आचार्य भावदेव सूरि के शिष्य थे। इस गच्छ की गद्दी बीकानेर राज्य के भटनेर (आधुनिक हनुमानगढ़) में थी। वाचक मालदेव उच्चकोटि के कवि थे। इन्होंने संस्कृत और प्राकृत में भी ग्रंथ रचना की है किन्तु मरुगुर्जर की रचनायें संख्या और स्तर की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनकी एक रचना—पुरंदर चौपइ तो अत्यधिक प्रचारित है। इनकी भाषा में गुजराती की अपेक्षा पंजाबी शब्दों का प्रयोग भी कम नहीं मिलता क्योंकि इन्होंने गुजरात की तुलना में पंजाब में अधिक विहार किया था। अतः इनके शिष्य पंजाब और सिन्ध में अधिक हुए।

इनकी अधिकतर रचनायें कथात्मक हैं। उनमें सुभाषितों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। अनेक परवर्ती कवियों ने उन्हें अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है जैसे जयरंग कवि ने सं० १७२१ में रचित अपनी कृति 'कयवन्नारास' में मालदेव के सुभाषितों का प्रचुर प्रयोग किया है, यथा—

दुसह वेदन-विरह की साँच कहे कवि माल,
जिनकी जोड़ी विछड़ो तिणकाकवण हवाल।

इनकी अधिकतर रचनाओं में रचनाकाल और स्थान नहीं दिया गया है पर ये अधिकतर भटनेर के आस-पास ही रहे। वीरांगद चौपइ में रचना समय सं० १६१२ दिया है। अतः इनकी अन्य रचनायें भी इसी के आस-पास रची गई होंगी। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा ने शोधपत्रिका उदयपुर में दो लेख

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५४० (प्रथम संस्करण); भाग २ पृ० २८८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखे हैं जिनसे इनके कृतित्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इनकी रचनाओं की सूची निम्न है—

रचनायें— पुरंदर चौपइ पद्य ३७२, सुरसुन्दर चौपइ पद्य ६६९, वीरांगद चौपइ पद्य ७५९ सं० १६१२, भोजप्रबन्ध पद्य २०००, पंचपुरी, विक्रम पंचदंड चौपइ गाथा १७२५, देवदत्त चौपइ पद्य ५२०, धनदेव पद्मरथ चौपइ पद्य १८४, सत्य की चौपइ पद्य ४४६, अन्जना सुन्दरी चौपइ पद्य १५९, मृगांक पद्मावती रास पद्य ४७८, पद्मावती पद्म श्री रास पद्य ८१५, अमरसेनवयरसेन चौपइ पद्य ४०८, कीर्तिधर सुकोशल सम्बन्ध पद्य ४३१, नेमिनाथ नवभवरास पद्य २३०, नेमिराजुल धमाल पद्य ६५, स्थूलिभद्र धमाल पद्य १०७, बृहद्गच्छीय गुर्वावली पद्य ३७, महावीरपारणा, महावीरपञ्चकल्याणक स्तव गाथा २८, मालशिक्षा चौपइ पद्य ६७। इसके अलावा अनेक गीत, स्तवन; सन्झाय आदि भी प्राप्त हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने इनकी कृति महावीर पारणा और महावीर लोरी को प्रकाशित किया है। पुरंदर चौपइ का सम्पादन श्री भँवरलाल नाहटा ने किया है।[1]

इन्हें कोई गुजराती का तो कोई हिन्दी का कवि कहता है, वस्तुतः ये भी मरुगुर्जर के कवि हैं। प्रसिद्ध गुजराती कवि ऋषभदास ने 'कुमारपालरास' में प्राचीन गुर्जर कवियों के साथ मालदेव का भी ससम्मान उल्लेख किया है। मुनिविजय इनकी रचना पुरंदर चौपइ को हिन्दी की रचना मानते हैं, उनकी भाषा का जायजा लेने के लिए भोजप्रबन्ध से एक दोहा उद्धृत कर रहा हूँ—

गोकुल काई ग्वारिनी ऊंची बइठी खाटि,
सात पुत्र सातउ बहू दही बिलोवति माटि।

इस भाषा को राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी में से कुछ भी कहा जा सकता है। भोज प्रबन्ध लगभग २००० पद्यों की तीन अध्यायों में विभक्त विस्तृत रचना है। कथा का आधार प्रबन्ध चिन्तामणि तथा बल्लाल का भोज प्रबन्ध है। रचना प्रौढ़ एवं मौलिक है।

युद्ध में पराजित मुन्ज की दशा का यह वर्णन देखिये—

वन ते वन छिपतउ फिरउ, गह्वर बनह निकुंज,
भूखउ भोजन मांगिवा गोवलि आपउ मुंज।[2]

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७१-७२

२. डा० हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी सेवा पृ० ८८

२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस रचना की कथा सिंहासन बत्तीसी से ली गई है, यथा—

सिंहासन बत्तीस की कथा सरस अवदात,
राजा भोजु न होत जउ, को तसु जानत बात।

इसका आदि देखिये—

जासु अलक्ष रूप जगि, मनि ध्यावउ भगवंत,
राजा भोज कथा कहउं सुनहु सवइं तुम्हसंत।

कुछ काव्य स्थल देखिये—

प्रीति नहीं जोबन बिना, धन बिनु नाही घाट,
माल धर्म बिनु सुख नहीं, गुरुबिनुनाही बाट।[1]

विक्रम और भोज की कथाओं पर आधारित इनके कई कथात्मक काव्य ग्रन्थ हैं। इन पर एक अलग लेख श्री मो० द० देसाई ने जैन हेराल्ड सन् १९१५ में लिखा है। जैन परम्परा का इतिहास भाग २ पृ० ५८९ पर लिखा है कि सं० १६१३ में मालदेव वर्तमान थे। उनके पाट पर सं० १६१९-४४ तक शीलदेव विराजमान थे। मालदेव का समय इसके आसपास ही होगा। वीरांगद चौपइ (पुण्य के विषय में लिखी गई है) ७०४ कड़ी की यह रचना सं० १६१२ ज्येष्ठ शु० ९ को पूर्ण हुई। इसका आदि—

संतिजिनेसर पय नमी समरुं सरसति माइ रे,
करुं नवी हूँ चउपइ निय गुरु नइ सुयसाइ रे।
पुण्य करउ तुम्ह भवियणउ सहु जेम भवपारो रे,
मणयजनम पामी करी पुण्य पदारथ सारो रे।

अन्त—श्री बड़गच्छ गच्छहि पुण्यप्रभ सुरीस,
भावदेव सुरीसर भाग्यवंत तसु सीस।
चउपइ प्रबन्ध इसउ ऊलट धरि अंग,
श्री मालदेव तसुसीस कहइ मनरंगि।

पुरंदर कुमार चौपइ (सं० १६५२ से पूर्व) में दोहा, सोरठा के साथ ढालों का भी प्रयोग हुआ है। आदि—

वरदायक सुरदेवता गुरुप्रसाद आधार,
कुमर पुरंदर गायस्युं शीलवंत सुविचार।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५६-६० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा में सुभाषित प्रयोग देखिये—

सरस कथा जो होय तो सुनहि सबहि मनलाय,
ज्यों सुबास होवे कुसुम, मधुप तहाँ ही जाय।
मीठा भोजनशुभवचन मीठा बोली नारि,
सज्जन संगति माल कहे, किसहि प्यारेप्यार।
मुओ सुत खिण इक दहे, बिनु जायो फुनि तेउ,
दहे जन्म लगु मूढ़ सुत सो दुख सहीइकेउ।

विक्रम पंच दंड कथा—

राजा विक्रम कइ चरितु सभा लोक अे सर्व,
सुणहुलाइ करि श्रवणमन माल न मांगै दव्व।
कलिजुगि हुयउविक्रम बड़उ राजा नृपति सिरमौर;
जिणिसंवच्छर आपणो कीयो जगिरे कोइ न और।
विक्रम चरित कथा कही बड़गच्छ गछ भूपाल,
भावदेव सूरिंद शिष्य कहइ इमरे सेवक मुनि माल।

देवदत्त चौपइ आदि—

श्री जिनवर मुख वासिनी श्रुत देवी महमाइ,
तसु पसाइ कविता करउं सुनहु चतुरमनलाइ।

कवि को अपनी सरस कथा की लोकप्रियता पर विश्वास है, वह कहता है—

वस्तु भली जइ आपणी ग्राहक तउ जग होइ,
खोटउ नाणउ आपणउ तउतस लेइ न कोइ।
जउ कवि सरस कथा कहइ तउ नर सुणहिं अनेक,
पणि विरलउ को माल कहइ मिलइ चतुर सविवेक।[1]

पद्मरथ चौपइ सं० १६७६ से पूर्व लिखी गई। यह शील के विषय में रचित है। सुरसुन्दरी चौपइ सं० १६९० से पूर्व और मालदेव शिक्षा चौपइ भी इसी के आसपास की रचना है।

स्थूलिभद्र फाग अथवा धमाल (१०७ कड़ी) सं० १६५० से पूर्व लिखी गई उनकी प्रसिद्ध एवं प्रकाशित रचना है। यह 'प्राचीन फागु

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५५-६६ तथा भाग ३ पृ० ३६२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह' में प्रकाशित है। राजुलनेमि की कथा के समान स्थूलिभद्र-कोशा की कथा भी जैन साहित्य में बहुत लोकप्रिय है। प्राचीन फागु संग्रह में दो अन्य फागु भी स्थूलिभद्र एवं कोशा की कथा पर आधारित हैं जिनसे इसकी लोकप्रियता प्रमाणित होती है। स्थूलिभद्र कोशा वेश्या के यहाँ १२ वर्ष भोगविलास में लिप्त रहे। ये नंदराजा के मंत्री शकडाल के पुत्र थे। नन्द ने शकडाल से नाराज होकर उन्हें मरवा दिया। स्थूलिभद्र को राजप्रपंच से वैराग्य हो गया। स्थूलिभद्र ने संभूतिविजय से दीक्षा ली और दृढ़संयम का अभ्यास किया। अन्त में गुरु के आदेश से वर्षावास में कोशा के यहाँ पुनः गये। उस समय का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

घनकारी घटा अम्बर छायु बरसे रस घन गाजि रे,
सांझ समइ कोशा वेश्या सवि सणगार ते साजि रे।

कुच ऊपरि नवसर वण्यु मोतीहार सोहावइ रे,
परवत तिजन ऊतरती गंग नदी जल आवइ रे।
नाभि गंभीर सोभावणी जानु कि मदन सरोवर रे,
कामीजन तृसना मिटि देषित रूप मनोहर रे।

वह पूर्ण श्रृङ्गार करके स्थूलिभद्र को रिझाने का यत्न करती है पर व्यर्थ हो जाता है, यथा—

एक अङ्ग कइ नेह कइ कछू न होवइ रंगो रे,
दीवा के चिति मोहे नहीं जलि जलि मरो पतंगो रे।

इसी तरह एकपक्षीय प्रेम का संताप कई छंदों में वर्णित है। वह हावभाव नृत्य गीत करके थक गई पर स्थूलिभद्र संयम से नहीं डिगे। अन्त में कामविजय के कारण उनकी स्तुति करता हुआ कवि कहता है—

कान्ह पड्यु वसि काम कइ, काम विगोयु ईसो रे,
पारबती आगलि नाच्यु भरत कला निस्दिीसो रे।
काम सुभट जिणि जीतिउ ते धनधन्न वषाणु रे,
ये नर काम न वस कीऊ थूलिभद्र सो जाणो रे।[1]

वहाँ चौमासा पूरा करके थूलिभद्द गुरु के पास लौटे और श्रुतिज्ञानी बने। कवि कहता है कि आश्चर्य तो यह है कि जिस काम पर

१. डा० भोगीलाल सांडेसरा—ऐतिहासिक फाग संग्रह, पृ० १४१-१४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजय के लिए नेमिनाथ को पर्वत पर तप करना पड़ा उसे स्थूलिभद्र ने कोशा वेश्या के घर रहकर जीत लिया, यथा—

नेमिनाथ परबत लीइ, काम सुभट येणि जीतु रे,
थूलिभद्र कोशा घरे, साध्यु मदन वदीतु रे।

रचना का अन्त--

मालदेव मुनि वीनवइ नारी संगति टालु रे,
थूलिभद्र मुनि नी परि, शील महाव्रत पालु रे।

यही इस कथा का सार उपदेश है। नारी आसक्ति से मुक्त होकर शील का पालन करना ही मुक्ति का मार्ग है। आपकी भाषा प्राचीनता की रूढ़ि से मुक्त, प्रसाद गुण सम्पन्न है। आप १७वीं शताब्दी के समर्थ कवि हैं। ये कोरे धर्मोपदेशक नहीं, अपितु दुरूह दुहरे दायित्व का निर्वाह करने वाले प्रतिभाशाली साहित्यकार थे जिनका साहित्य रस के साथ भक्ति और निर्वेद का संदेश देने में सक्षम है।

राजुलनेमि धमाल ६५ कड़ी सं० १६५९ से पूर्व की परम मार्मिक रचना है इसका आदि देखिये—

समुद्रविजय के लाडीला, तोरणतइ किउ न जाई रे,
मरेउ कह्यो अवगुण वस्यो,
प्रीय तेरइं मन माही मेरे प्राण पीयो रे नेमजी।

अंत —मुकति जाई दोइ मिले, राजुल अरु जदुराया रे,
जगि जसु जिनकउ गाइयउ, माल नमइ नित पाया रे।

नेमिनाथ पर दूसरी रचना नेमिनाथ नवभवरास २३० कड़ी

आदि—

श्री नेमीश्वर जिन तणां नवभव कहउं चरित्र,
तीर्थंकरं गुण गावतां मनतन होइ पवित्र।
को सिंगार कथा कहइ को गावइ जिनराइ,
कडुवइ किसती कहुं रुचइ किसही मधुर सुहाय।

अंत —लहिन्यां नकेवल तिहां सीधा, माल नवइं त्रिकाल अे;
गावतां नवभव नेमि रासउ पुन्य हुइ दुख टाल अे।

शील बत्तीसी और शील बावनी भी शील पर आधारित रचनायें हैं। शील बावनी की अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नर बिनु अवगुण क्या करइ इकु अकेली नारि,
ताली अेक न बाजइ चित्त बहु माल विचारि।
बावन अक्षर सार यहु दान सील उपगार,
कीजइ माल सफल जनम नरनारी अवतार।[1]

'सत्य की संबंध' (४२६ कड़ी) का आदि देखिये—

अतिसय गुणपूरि तरिकत त्रिगुणातीत अनंत,
चिदानंदमय माल प्रभु नमियइ नितु भगवंत।
नरभव लहि रे माल अब कला सीखियइं दोइ,
सुखआजीवी जीवतां मुझे न दुर्गति होइ।

कीर्तिधर सुकोशल संबंध (४३१ कड़ी)–इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

श्री आदीश्वर जगत गुरु, संभु विधाता रूप,
पुरुषोत्तम कहि बुद्ध प्रभु भावइ भावना भूप।
ऋषिमंडल प्रकरण कह्या जती दुविधनि ग्रंथ,
माल तृकाल नमइं तिन्हइ साधइं जे सिवपंथ।

अंत—धन्य कीर्तिधर मुनिवर गाइयइ रे, श्री जिनशासन मांहि सीधार,
धन्य सुकोशल वंध्यइ रे, अनुमोदतां न्यानादिक पइयइ रे।[2]

इसके अलावा वैराग्य गीत, भमरा गीत आदि का भी परिचय दिया गया है। अतिशय विस्तार भय के कारण सभी रचनाओं के विस्तृत विवरण एवं उद्धरण देना संभव नहीं है किन्तु जो थोड़ी सी झलक प्रस्तुत की गई है उससे यह अवश्य विदित हो गया होगा कि मालदेव १७वीं शताब्दी के प्रतिभाशाली काव्यगुणसम्पन्न महाकवि थे।

मालमुनि—श्री मो० द० देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४६३-६४ और भाग ३ पृ० २८-२९ पर इनकी रचना 'अंजना सती रास' (१५४ कड़ी) को १९वीं शताब्दी में दिखाया था, परन्तु बाद में भाग ३ पृ० ९३८ पर इसका सुधार करके रचनाकाल सं० १६६३ से पूर्व बताया है। इनकी गुरुपरंपरा आदि का पता नहीं चल पाया है किन्तु ये मालदेव से भिन्न हैं। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिये—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ६६ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ३६२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरसति सामणी प्रणमीयइ, गोतम स्वामिना पाय रे,
अंजनासुंदरी नी कथा, नारिनर सुणहुं मनलाइ रे।
सील भवियण भलइ पालीयइ, पाइयइ सुजसु संसारि रे,
सब कुसंगति वली टालियइ, जाइयइ भवसमुद्र पारि रे।
सील भवियण भलइ पालियइ। पाइयइ सुजसु संसारि रे।

अंत—धन धन अंजनासुंदरी, सुमिरो चित्ति त्रिकाल रे,
सील भलो तिणे पालीयो, जसु गावइ मुनिमाल रे।[1]

माहावजी—कड़वागच्छ के शाह रत्नपाल के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६५० के लगभग ३२९ कड़ी की रचना 'नर्मदासुंदरीरास' लिखा। कड़वाशाह ने सं० १५६२ में कड़वापंथ चलाया था। कड़वा के पश्चात् खीमशा, वीरशा, जीवराज, तेजपाल और रत्नपाल हुए थे। रास की प्रारम्भिक पंक्तियाँ ये हैं—

प्रथम आदीश्वर प्रणमतां ऊपन्नउ आनंद,
नाभिरायां कुलि चंदलउ, मरुदेव्यानु नंद।
गोयम गणधर प्रमुख थी, सकल साधु सुप्रभाव,
सरसति देवी पयनमी, पामी तासु पसाय।

अंत—रास मनोहर नर्मदा केरउ सयला सुखदातार रे,
कीरति पण अे दिअे वली रुडी, धुरि गुण मां सरदार रे।
वीर जिणेसर शासन सुन्दर, सती नर्मदा ते जाणो रे,
दास वली श्री वर्द्धमाननु व्रतधारक मनि आणो रे।[2]

काव्यत्व साधारण कोटि का है।

मुनिकीर्ति—आप खरतरगच्छ के हर्षचंद्र के प्रशिष्य एवं हर्षप्रमोद के शिष्य हैं। इन्होंने सं० १६८२ विजयादशमी, गुरुवार को सांगानेर में 'पुण्यसार रास' लिखा। गुरुपरंपरा में खरतरगच्छ के

---

१. जैन गुर्जर कवियो भाग १ पृ० ४६३-६४, भाग ३ पृ० २८-२९ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ९३८ (प्रथम संस्करण), भाग ३ पृ० ७९ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० ७९९-८०१ (प्रथम संस्करण) तथा भाग २ पृ० २६६-२६८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युगप्रधान जिनचंद्र सूरि, जिनसिंह सूरि, हर्षचन्द्र, हर्षप्रमोद का उल्लेख करके कवि ने लिखा है—

तास शिष्य मुनिकीर्ति इम भणे मनिधर अधिक प्रमोद।

रचनाकाल–संवत सोल व्यासी सम विजयदसमी गुरुवार,
सांगनेर नगर रलीयामणो पभणे अेहविचार।

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ भी उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

नाभिरायनंदन नमुं शांति नेम जिन पास,
महावीरचउवीसमो प्रणम्यां पूरे आस।
धर्म किया धन संपजे ओपम अछे अनेक,
पुण्य थकी पुन्यसारनो सुणमो अति सुखरेख।[1]

मुनिप्रभ—आप खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य युगप्रधान श्री जिनचंद्र सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६४३ में दान-धर्म के माहात्म्य से सम्बन्धित रचना 'गजभंजन चौपइ' बीकानेर में लिखी। इसमें कुल २०३ गाथायें हैं।[2] आपके गुरुभाइयों में समयप्रमोद, समयराज, हर्षवल्लभ, सुमतिकल्लोल, धर्मकीर्ति, जिनसिंह सूरि और जिनराज सूरि आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। गजभंजन चौपइ का उद्धरण उपलब्ध न होने से इनकी काव्यक्षमता एवं भाषाशैली का नमूना नहीं प्राप्त हो सका।

मुनिशील—आंचलगच्छ के विद्याशील>विवेकमेरु आपके गुरु थे। आपने सं० १६५८ माह वदी ८ को 'जिनपाल जिनरक्षित रास' लिखा जिसकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

श्री अञ्चलगच्छ सुहगुरु सुरतरु सारिखाजी, श्री धरममूरति सूरि,
ते सहगुरुना चरणकमल निति वांदीइजी, दोहग जाई दूरि।

रचनाकाल—

करि शर रस इंदु मास कुमारइ सलही जी, बहुल आठमिदिनचार,
सन्धि रची अे संघ तणइ आग्रहि करीजी रवि शशि नयरमझार।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३७९-८० (द्वितीय संस्करण)
२. श्री अगरचंद नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० १७५

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

गुरुपरंपरा--

श्री विद्याशील सीस सुयरि सोहामणि पंडित पुहुवि प्रवीण,
विवेकमेरु गणि संयमगुणकरि विचरता जी हूंतस्य चलर्णे लीण।
त्रीज जिनवर संभवनाथ पसाउलि जी पुनि जंपइ मुनिशील,
जे नरनारी भणस्यइ गुणस्यइ सांभलइजी लषि परि पामइलील।[1]

कवि की भाषा अटपटी और छंद यत्रतत्र टूटे हुए हैं, काव्यत्व सामान्य कोटि का है।

मुक्तिसागर--आप तपागच्छ के आचार्य लब्धिसागर के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६८६ में सूरिपद प्राप्त किया और नाम राजसागरसूरि पड़ा। इनकी रचना 'केवली स्वरूप स्तव (६८ कड़ी, सं० १६८६ से पूर्व) प्रकाशित है। संग्रह का नाम है, जैन ज्ञान स्तोत्र अने केवली स्वरूप स्तवन'

आदि--सरस वचन दिउ सरसती, वरसति वचन विलास;
कविजन केरी माय तु आपे बुद्धि प्रकाश।

गुरुपरम्परा--

श्री हीरविजय सूरीसरु अभिनव घनो अणगार,
कलिकालइ श्रुति केवली गोयम सम अवतार।

इसके बाद विजयसेन और विजयदेव का उल्लेख किया गया है। धर्म के सम्बन्ध में कवि लिखता है--

धर्म-धर्म सहु को कहइ, धर्म न जाणइ वत्त,
जिन शासन धुधुं अछइ जिहां सूधात्रिण तत्त।

अन्त-कलश --

श्री जैन वाणी शुद्ध जाणी संथुण्यो खेमंकरो,
सिद्धान्त युगति विविध भगति केवली तीर्थङ्करो।
उवझाय श्री गुरुलब्धिसागर नेमिसागर मुनिवरा,
आदेश पामी सीसनामी मुक्तिसागर जयकरा।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३९०, भाग ३ पृ० ८७२ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० ३०५-०६ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ खंड २ पृ० १५०५-०६ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० २६७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना राजसागरनाम पड़ने से पूर्व अर्थात् १६८६ में सूरिपद प्राप्त करने से पूर्व लिखी गई होगी। सूरिपद प्राप्त करने के पश्चात् की लिखी इनकी कोई रचना मुझे नहीं मिली।

मूलावाचक—अञ्चलगच्छ के धर्ममूर्ति सूरि के शिष्य रत्नप्रभ आपके गुरु थे। आपकी दो रचनायें उपलब्ध हैं जिनका विवरण प्रस्तुत है।

गज सुकुमाल संधि अथवा चौपाई (१३४ कड़ी, सं० १६२४ फाल्गुन शुक्ल ११, सांचौर) की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिये—

पणमिय वीर जिणेसर स्वामि, हुई नवनिधि जस लीधइ नाम,
स्वामी तणा पंचम गणधार, सोहम स्वामि करइं विहार।

रचनाकाल—

संवत सोल चउबीसा वरसइं, फागुण सुदि इग्यारसि दिवसइं।
साचउर मंडण वीर पसाइं, अलीय विघन सवि दूरइ जाइ।

अञ्चलगच्छ के धर्ममूर्ति और वाचक रत्नप्रभ का नामस्मरण करने के पश्चात् कवि कहता है--

तास सीस ऋषि मूलइ कीध,
गज सुकुमाल तणी अे सन्धि।
अेह संधि से भणइ भणावइ,
ऋद्धि वृद्धि तस मंदिर आवइ।१३४।

इस प्रकार यह चौपइ १३४ चौपाई छन्दों में निर्मित है। इसमें गजसुकुमाल की कथा का वर्णन किया गया है। आपकी दूसरी रचना [शाश्वताशाश्वत जिन अथवा वृद्ध] चैत्यवंदन (८ ढाल) को श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ के भाग ३ पृ० ७१० पर रत्नप्रभ शिष्य के नाम से दिखाया था किन्तु उसी भाग में सुधार कर पुनः पृष्ठ ९४१-४२ पर मूलावाचक के नाम से दिया गया है। वस्तुतः यह रचना वाचक रत्नप्रभ के अज्ञात शिष्य की न होकर रत्नप्रभ के शिष्य मूलावाचक की ही है, जैसा इसकी अन्तिम पंक्तियों से स्पष्ट है, यथा--

गच्छ विधिपक्ष पूज्य परगट श्री धर्ममूर्ति सुरिंदुअे,
वाचक मूला कहे भणतां ऋद्धि वृद्धि आणंदुअे।[1]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४६८-६९, भाग ३ पृ० ७१० तथा ९४१-९४२ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० १३७-१३८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रचना 'जैनप्रबोध' पुस्तक के पृ० ३२०-२६ पर प्रकाशित है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

केवलनाणि श्री निरवाणी, सागर महाजस विमल ते जाणी।
सर्वानुभूति श्रीधर गुणखाणी, दत्त दामोदर वंदो प्राणी।

भाषा से अनुमान होता है कि मूलावाचक सुबोध एवं सुपठित ऋषि थे। इनकी भाषा में तत्सम शब्दों की अधिकता और प्रासादिकता है।

मेघनिदान---आप खरतरगच्छ की भावहर्षी शाखा के आचार्य जिनतिलकसूरि के प्रशिष्य एवं रत्नसुन्दरसूरि के शिष्य थे। इन्होंने जिनोदयसूरि के आदेश से सं० १६८८ में 'क्षुल्लककुमारचौपइ' की रचना तिंवरी में की। इसके अतिरिक्त तिंवरी पार्श्व स्तवन, जोधपुर पार्श्व स्तवन, नाकोडा पार्श्व स्तवन> आदि भक्तिभावपूर्ण स्तवन भी आपने लिखे हैं।[1]

(वाचक)**मेघराज**--आप पार्श्वचन्द्र > समरचन्द्र > राजचन्द्र > श्रवण ऋषि के शिष्य थे। आप उत्तम कवि के साथ अच्छे गद्य लेखक भी थे। आपने 'राजचंद्र प्रवहण' नामक काव्य (सं० १६६१) अपने दादा गुरु की स्तुति में लिखा था। इसके अलावा 'नलदमयंती रास सं० १६६४, सोलसती भास' अथवा संज्झाय, ज्ञातासूत्र १९ अध्ययन पर संज्झाय अथवा भास आदि प्रमुख रचनायें उपलब्ध हैं। आपने पार्श्वचंद्र स्तुति अथवा सलोका और सद्गुरु गीत या भास नामक रचनायें गुरुओं की भक्ति पर आधारित करके लिखी हैं। गद्य में आपने राजप्रश्नीय उपांग बालावबोध, समवायांगसूत्र बालावबोध, उत्तराध्ययनसूत्र बालावबोध, औपपातिकसूत्र बालावबोध, साधु समाचारी और लघुक्षेत्र समास बालावबोध आदि अनेक महत्त्वपूर्ण रचनायें की हैं। नलदमयन्तीरास और ज्ञातासूत्रभास प्रकाशित रचनायें हैं। आगे इनका विवरण-उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८९;
जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५१९ (प्रथम संस्करण) तथा
भाग ३ पृ० २७९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नलदमयन्तीरास--आनन्द काव्य महोदधि मौक्तिक ७ में प्रकाशित है।

आदि--नगर निरुपम गजपुरे श्री विश्वसेन नरिंद,
अचिरा राणी उरवरे आव्या श्री शांतिजिणंद।
सेवा करता जेहनी रे सम्पदा परगट हुई,
देवी दवदंती तणी रे आपदा दूरे गई।

रचनाकाल--

सरवण ऋषि जगे प्रगटियो महामुनि जी कीधुं उत्तमकाज,
ते सही गुरुना चरण नमी कहे जी, वाचक श्री मेघराज।
संवत सोल चउसठ संवच्छरे थवीओ नल ऋषिराज,
भणजो गणजो धर्म विशेष जो जी, सारता वांछित काज।[१]

राजचन्द्र प्रवहण या संयम प्रवहण (सं० १६६१ खंभात)--इसमें राजचंद्रसूरि के साधु जीवन तथा संयम आदि का वर्णन किया गया है। प्रारम्भ देखिये--

रिसह जिणेसर जगतिलउ नाभि नरिंद मल्हार,
प्रथम नरेसर प्रथम जिन त्रिभुवन जग साधार।[२]

इसका अंतिम पद रागधन्यासी में आबद्ध है, उसकी कुछ पंक्तियाँ देखिये--

गछपति दरिसणि अति आणंद,
श्री राजचंद सूरिसर प्रतपउ जा लगि हुं रविचंद।
संयम प्रवहण मालिम गायउ नयर खम्भावत मांहि।
संवत सोल अनइ इकसठइ आणी अति उछाह।[३]

'गुरुभास' की अन्तिम पंक्तियाँ इसी के साथ प्रस्तुत हैं--

नयर जोधाणइं सोम सुणी
वली नागोर नगीनइ पूजा घणी,
सानिधि करउ पूजा संघ तणी
मुनि मेघराज भावइ सुखलाभ गणी।[४]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४०१-२, भाग ३ पृ० ९००-१, भाग ३ खंड २ पृ० १६०३-४ (प्रथम संस्करण)
२. डा० हरीश शुक्ल --जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी सेवा पृ० १२१
३. डा० प्रेमसागर जैन--हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १४२
४. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६७-६८ तथा पृ० ३७२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सोलसतीभास'—इसमें जिनदत्त की पुत्री सती सुभद्रा का चरित्र-चित्रित है। यह रचना शीलोपदेश कथा पर आधारित है, यथा—

श्री शीलोपदेश मालादिक ग्रंथे सोलसती गुण कहीअे जी,
भणतां गुणतां जेह्ने नामे अष्ट महासिद्धि लहीइ जी।

'ज्ञातासूत्र १९ अध्ययन संज्झाय'—संज्झाय संग्रह में प्रकाशित है। इसका आदि—

वीर जिणेसर वांदो विगतिस्यूंजी प्रणमीगोतम पाय।
थविस्यु हर्षे हु ऋषि राजियोजी मेघकुमर भले भाय।[1]

राजप्रश्नीय उपांग बालावबोध का प्रारम्भ इस श्लोक से हुआ है—

देवदेवं जिनं नत्वा श्रुतदेवी विशेषतः,
राजप्रश्नीय सूत्रस्यवार्तिक प्रद्ध्याम्यहं।

यह रचना सं० १६७० के आस-पास लिखी गई। साधु समाचारी की रचना राजचंद्रसूरि के समय सं० १६६९ में हुई। क्षेत्र समास बालावबोध की रचना सं० १६७० में बताई गई है। इन गद्य रचनाओं का उद्धरण उपलब्ध न होने से तत्कालीन गद्य शैली तथा गद्य भाषा का स्वरूप समझने की सुविधा सुलभ नहीं हो पाई।

मेघराज II—अंचलगच्छीय धर्ममूर्तिसूरि के प्रशिष्य एवं भानुलब्धि के शिष्य थे। अंचल गच्छ की पट्टावली में धर्ममूर्तिसूरि ६३वें पट्टधर हैं। इन्हें सं० १६०२ में आचार्य और गच्छ नायक पद प्राप्त हुआ था तथा सं० १६७० में इनका देहावसान हुआ था। अतः मेघराज का रचनाकाल भी यही होगा। आपने 'सत्तर भेदी पूजा' लिखी जो 'विविध पूजा संग्रह' में प्रकाशित है।

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सर्व्वज्ञं जिनमानम्य नत्वा सद्गुरुमुत्तमं
कुर्व्वे पूजाविधिं सम्यक्भव्यानाम् सुखहेतवे।
वंदी गोयम गणहरे समरुं सरसति अेक,
कवियण वर आपे सदा, वारे विघन अनेक।

---

1. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६७-६८ तथा पृ० ३७२(द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अंचल गच्छे दिनदिन दीपे, श्री धर्ममूरति सूरिराया।
तास तणे पखे महीयल विचरें, भानुलब्धि उवज्ञाया रे।
तास सीस मेघराज पयंपे चिरनंदो जा चंदा रे।
अे पूजा जे भणसे गणसे, तस घर होइ अणंदा रे।[1]

आपकी एक अन्य रचना 'ऋषभ जन्म' की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

विणीय नयरी विणीय नयरी नाभि नियंगेह,
अरुदेवी ऊंअरसरैं रायहंस सारित्य सामीय,
रिसहेसर पढम जिण पढम रायवर वसह गामीय,
वसह अलंकिय कणय तणू, जायो जुगआधार,
तसु पायवंदी तसुतणो कहिसुं जनम सुविचार।[2]

यह रचना ऋषभदेव के जन्म कल्याणक से सम्बन्धित है। भाषा सरल मरुगुर्जर है।

ब्रह्ममेघराज I (मेघमंडल) आप दिगम्बर सन्त ब्रह्मशान्ति के शिष्य थे। इन्हें मेघमंडल भी कहा जाता है। इन्होंने सं० १६१७ से पूर्व 'शान्तिनाथ चरित्र' की रचना की जिसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

वीर जिणवर वीर जिणवर पाय प्रणमेवि,
दुखमकाल भवि जीवने दिव्यवाणि प्रतिबोध दीधो,
आयु कर्म सत्तरि हुई बरसकाल हूइ गयो सिधो।

दूहा—सरसति स्वामीणी वीनवुं दीगम्बर गुरुराय,
परम गुरु वलि समरिसु, शान्त ब्रह्म तणां पाय।

इसमें नाना प्रकार की देशी रागों का प्रयोग किया गया है जिन्हें कवि ने भास कहा है, जैसे—'भास १ जसोधरनी'

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४६७-६८ और भाग ३ पृ० ९४१ (प्रथम संस्करण) ३ पृ० १६४-६५ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० ६९०-९२ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० ८९-९० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शांतपुराण कथा कहूँ मनि हरषे चंग,
भवियण जन ब्रह्म सांभलो भावधरी मनिरंग।

सम्राट् श्रेणिक भगवान महावीर के पास जाकर प्रार्थना करता है और उनसे शांतिनाथ की कथा श्रवण करता है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कथाकोस नहीं सांभल्यो नहि आगम नो ज्ञान,
अध्यातम नहि सांभल्यो जायो न महापुराण।
भक्तिमान छे माहारो कर्मक्षिय ने काज,
चरित्र श्री सांति जिन तणो कीधो कहे मेघराज।[1]

ब्रह्म मेघराज II—आप भी दिगम्बर आचार्य सकलकीर्ति>भुवनकीर्ति>ज्ञानभूषण>विजयकीर्ति>शुभचन्द्र> सुमतिकीर्ति> गुणकीर्ति के शिष्य थे। गुणकीर्ति के एक अन्य शिष्य वस्तुपाल की रचना सं० १६५४ की प्राप्त है अतः इनका भी समय इसी के आसपास होगा। आपने 'कोहला बारसी' अथवा 'श्रावण द्वादशी रास' इसी के आसपास लिखा है। इसकी सं० १७५४ की प्रतिलिपि प्राप्त है।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

वीर जिनवर वीर जिनवर प्रणमुं तस पाय,
तीर्थङ्कर चउवीसमो मुगति दानदातार।
ते पदपंकज मनिधरी समरत्री सारदा माय,
श्री सकलकीरति जगि जानीये,
गुरु भुवनकीरति अवतार।[2]

इसके बाद उपरोक्त गुरु परंपरा देकर कवि अपने गुरु गुणकीर्ति का सादर स्मरण करता है—

तेहतणा गुण मन धरी, रास रचुं सुकोमाल,
श्रावण द्वादशी फल वरणवुं सुणो सहुबालगोपाल।

इसमें श्रावण द्वादशी व्रत का फल बताया गया है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६९०-९२ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० ८९-९० (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० १०९४-९६ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २३०-२३१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

जिनवर स्वामियें जो कह्यां ते व्रत साधलां चंग,
भावना भावो अे व्रत करी, जिम पामो सौख्य अभंग।
श्री सुमति कीरति चरण चित्तें धरी, ब्रह्ममेघराज कहि सार,
भवियण भावि तमें सुणो जिम पामो शिवपुरी वास।[1]

मंगलमाणिक्य—ये आगमगच्छ की बीड़ालम्ब शाखा के विद्वान् उदयसागर के शिष्य थे। इनकी दो रचनायें काफी लोकप्रिय हैं—१. विक्रमखापराचोररास और अम्बड चौपाई। इन रचनाओं के आधार पर आपकी गुरुपरंपरा इस प्रकार है, बीड़ालम्ब शाखा के मुनिरत्न > आनन्दरत्न > ज्ञानरत्न > उदयसागरके शिष्य मंगलमाणिक्य थे।

'विक्रमखापराचोररास'(सं० १६३८ महासुद ७ रविवार, उज्जैनी) इसकी कथा सिंहासनबत्तीसी और वैतालपच्चीसी की कथाओं से ली गई है, यथा—

विक्रम सिंहासन छइ बत्रीस, कथा बैतालणी पंचवीस,
पंचदंड छत्रनी कथा, विक्रम चरित्र लीलावइ कथा
प्रवेस परकाय नी बात सीलमती खापरनी ख्याति,
विक्रम प्रबंध अछइ जे घणा, कहइता पार नहीं गुणा।
इति ऊमाहुं अंगिसुं धरी, गुरुकवि संतचरण अणुसरी,
गद्यकथा रास उद्धार, रचिउप्रबन्ध वीररस सार।

अर्थात् यह कथा राजा विक्रमादित्य सम्बन्धी विभिन्न गद्य कथा ग्रन्थों से लेकर वीर रस प्रधान प्रबन्ध काव्य के रूप में रची गई है। रचना काल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोल आठनी त्रीस, माघ शुदि सातमि रविदीस,
आश्लेषा शुभयोगि रही उजेणीइं कथा अे कही।[2]

गुरुपरंपरा—

विडालंबगच्छ आगम्य आणंद रत्न सूरि अनुपम्म,
तास सीष्य मंगलमाणिक्य वाचकइ वरिउकथा आधिक्य।

---

१. जैन गुर्जर कविओ, भाग १ पृ० २४७-४५२ (प्रथम संस्करण) तथा भाग २ पृ० १६९-१७४ (द्वितीय संस्करण)

२. वही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंबड कथानक चौपइ २२२५ कड़ी की विस्तृत रचना सात आदेश या भागों में पूर्ण हुई है। इसका समापन सं० १६३९ कार्तिक शुक्ल १३ सोमवार को उज्जैन में हुआ जबकि इसका प्रारम्भ सं० १६३८ ज्येष्ठ शुक्ल ५, गुरुवार को किया गया था। इस प्रकार इसमें प्रायः दो वर्ष लग गये। यह रचना प्रकाशित है। इसके सम्पादक ब० क० ठाकोर हैं। यह रचना कवि ने अपने मित्र लाडजी के लिए लिखी थी। संबंधित पंक्तियाँ देखिये —

मित्र लाडजी सुणिवा काजि,
वाची कथा विडालंबी राजि।

रचनाकाल —

संवत सोल उगणच्यालीस, कार्तिकसित तेरसि शशि दीस।
सिद्धियोग ऋक्ष आश्विनी, अंबडरास चउपइ नीपनी।

इस रचना में यथावसर यद्यपि नवो रस हैं पर प्रधानता वीररस की पाई जाती है, यथा —

नवरस मय अंबडरायनी श्रोता जन पावनी,
वीरकथा भावइं जे कहइ, च्यारिपदारथ सहिजइं लहइ।

रचना का प्रारम्भ —

संवत सोल अठतीसइ सार, जेठ सुदि पंचमीगुरुवार,
मांडिउ रास मूलसिधियोग, रही उजेणिपुरी संयोगि।

उस समय उज्जैन पर निजामों का शासन था, कवि लिखता है —

भटीश्शान निजाम पसाय, विद्या भणी भानुभट पाय।

यह रचना मुनिरत्नसूरि की अम्बडकथा का पद्यानुवाद प्रतीत होती है जैसा निम्न पंक्तियों से प्रकट होता है —

पण्डित आगलि ते मतिमंद, भानुभट गुरु विद्या वृन्द;
रची चउपइ तासु प्रसाद, अम्बड कथा तणो अनुवाद।[1]

इस रचना में भानुभट की कृपा का कई बार उल्लेख किया गया है, यथा —

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २४७-५२ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १६९-१७४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीर कथा कहिवा रस थाय, ते गुरु भानुभट्ट महिमाय ।

लगता है ये भानुभट्ट कवि के विद्यागुरु थे क्योंकि दीक्षा गुरुओं की परम्परा में इनका नाम नहीं है। अब रचना का आदि और अंत देकर यह विवरण समाप्त किया जा रहा है—

आदि—— सदा सम्पद सदा सम्पद रूप ओंकार,
परमेष्टी पंचइ सहित, देव त्रणि सारदा सेवित,
महाज्ञान आनन्दमय ब्रह्म बीज योगीन्द्र वंदित,
भूयण त्रणि गुणत्रणिमय, विद्या चौद निवास,
हुं प्रणमुं परमातमा, सर्व सिधि सुषवास ।

अन्त—— कहइ वाचका मंगलमाणिक्य, अंबड कथा रसइं आधिक्य,
ते गुरुकृपा तणो आदेश, पूरा सात हुआ आदेश ।[1]

यह मुनिरत्नसूरि की मूल अंबडकथा का अनुवाद है, मौलिक कृति नहीं है फिर भी इसकी लोकप्रियता को देखते हुए इसे प्रकाशित किया गया है। इसकी लोकप्रियता में कवि कर्म की कुशलता और कथा का औत्सुक्य ही मूल कारण है।

मोहनदास कायस्थ——आपकी एक रचना 'स्वरोदय' आयुर्वेद पर प्राप्त है। इस लघुकृति में स्वर के साथ नाड़ी परीक्षा का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। यह रचना सं० १६८७ में कन्नौज प्रान्तान्तर्गत नैमिसार तीर्थ के समीप कुरस्थ नामक ग्राम में लिखी गई। यह पद्य-बद्ध अवश्य है किन्तु इसे साहित्य नहीं कहा जा सकता।[2] अतः इसका विवरण-उद्धरण नहीं दिया जा रहा है।

उपाध्याय यशोविजय—आप तपागच्छीय श्री नयविजय गणि के शिष्य थे। आपकी उपस्थिति सं० १६८० से सं० १७४४ तक निश्चित है। अतः आपकी अधिकतर रचनायें अठारहवीं शताब्दी में रची गई हैं, परन्तु आपके जीवन के प्रारम्भिक दो महत्व-

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २४७-५२ (प्रथम संस्करण) तथा भाग २ पृ० १६९-१७४ (द्वितीय संस्करण)

२. डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल——राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ण दशक १७वीं शताब्दी में भी बीते अतः आपको १७वीं शताब्दी के कवियों में गिन लेने का लोभ रोक न पाने के कारण इनका विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। आपकी जीवनी के सम्बन्ध में अनेक प्रामाणिक तथ्य 'श्री सुजसवेली भास' में उपलब्ध हैं। इसके कर्त्ता तपागच्छीय हीरविजयसूरि > कीर्तिविजय के शिष्य कान्ति विजय हैं। यह रचना सं० १७४५ के आसपास लिखी गई, जिसमें यशोविजय जी का गुणानुवाद किया गया है। यशोविजय जी उपाध्यायजी के नाम से प्रसिद्ध थे। विनयविजय इनके गुरुभाई थे। दोनों ने साथ-साथ काशी में शिक्षा ग्रहण की थी और अपने समय के महान् पण्डित हुए। उपाध्याय जी को श्रुतकेवली, कूर्चालिशारदा आदि विरुदों से विभूषित किया गया था। इनके बचपन का नाम जसवंतकुमार था। आपका जन्म गुजरात में पाटण के समीप कन्होडु नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम नारायण और माता का नाम सोभाग दे था। इन्होंने सं० १६८८ में नयविजय से दीक्षा ली और नाम यशोविजय पड़ा। इनके साथ ही इनके अनुज पद्मसिंह ने भी दीक्षा ली और उनका नाम पद्मविजय पड़ा। सं० १६९९ में इन्होंने संघ के समक्ष राजनगर में अष्टावधान किया। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर शाह धनजी ने नयविजय से आग्रह किया कि इन्हें विद्याभ्यास के लिए काशी भेजा जाय, धन मैं दूँगा। काशी में किसी भट्टाचार्य से इन्होंने शास्त्राभ्यास किया और न्याय, मीमांसा जैमिनी, वैशेषिक तथा बौद्ध आदि सिद्धान्तों का तीन वर्ष तक गहन अध्ययन किया, तत्पश्चात् आगरा जाकर किसी पंडित जी से तर्क, प्रमाण आदि शास्त्रों का गम्भीर अभ्यास किया। इसके बाद अहमदाबाद गये जहाँ गुजरात के सूबेदार महाबत खाँ ने इनका आदर-सत्कार किया। इन्होंने सैकड़ों ग्रंथों की रचना की है। विजयदेव के पट्टधर विजयप्रभसूरि ने इन्हें सं० १७१८ में उपाध्याय पद से विभूषित किया। सं० १७४४ में यशोविजय जी जब डभोइ नगरी में चातुर्मास कर रहे थे तभी अपनी आयु पूर्ण जान अनशनपूर्वक शरीर त्याग किया।

आप तपागच्छीय हीरविजयसूरि की परंपरा में उपाध्याय कल्याणविजय > लाभविजय गणि > जितविजय के गुरुभाई नयविजय गणि के शिष्य थे। आपका तत्कालीन अनेक विद्वानों ने यशोगान किया है। आप व्याकरण, काव्य, कोष, अलंकार, छन्द, तर्क, आगम-सिद्धान्त, नय, निक्षेप, प्रमाण आदि नाना विषयों के पारंगत विद्वान् थे। उनके ग्रन्थों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में कवित्व शक्ति, वचनचातुरी, पदलालित्य, अर्थ गौरव, रसपोषण, अलंकार निरूपण, परपक्ष खंडन, स्वपक्ष मंडन आदि जगह-जगह पर मिलता है। आपकी मरुगुर्जर रचना 'द्रव्य गुण पर्याय रास' का संस्कृत में अनुवाद हुआ और साथ ही इनकी अनेक संस्कृत रचनाओं का भाषानुवाद भी हुआ है। इनकी कुल ग्रन्थ संख्या ३०० तक है जिनमें मौलिक और टीका ग्रंथ सम्मिलित हैं। इसमें 'खण्डनखण्ड-खाद्य' जैसा देश-विश्रुत ग्रन्थ भी हैं जिससे इनकी पैनी प्रतिभा का प्रमाण प्राप्त होता है। इनकी सृजनशक्ति और प्रतिभा को देखते हुए श्री देसाई ने इन्हें १८वीं शती का युग पुरुष माना है और उस शताब्दी के सं० १७०१ से १७४३ तक के काल को यशोविजय युग कहा है।[1] ऐसे धुरंधर लेखक की समग्र कृतियों का संक्षिप्त परिचय देने के लिए एक स्वतंत्र ग्रंथ अपेक्षित है। अतः यहाँ कुछ नमूने के लिए उद्धरण और कुछ अति महत्त्वपूर्ण रचनाओं का उल्लेख मात्र करना ही संभव है। आप उच्चकोटि के रसिक, सहृदय कवि, रचनाकार और साधक सन्त थे। आपने 'अरसिकेषु कवित्त निवेदनं शिरसि मां लिख मां लिख' के तर्ज पर 'श्रीपालरास' में लिखा है—

शास्त्र सुभाषित काव्यरस, वीणानाद विनोद,
चतुरमलेजे चतुर ने तो ऊपजे प्रमोद।
जे रुठो गुणवंत ने तो देजो दुख पोठि,
देव न देजो एक नुं साथ गमारा गोठि।
रसिया ने रसिया मले केलवता गुण गोठ,
हिये न माये रीझ रस कहेसी नावे होठ।

श्रीपाल रास की रचना में इनके सहपाठी विनयविजय ने भी योगदान किया था उसकी भाषा सरल हिन्दी है, यथा—

पढ़त पुरान वेद अरु गीता, मूरख अरथ न पावै,
पुद्गल से न्यारो प्रभुमेरो, पुद्गल आपुछिपावै।

हेमचन्द्राचार्य के पश्चात् समग्र जैन जगत् में यशोविजय जैसा प्रभावक, सर्व शास्त्र पारंगत आचारवान्, प्रतिभाशाली साहित्यकार शायद ही और कोई हुआ होगा। इन्होंने अपने समय के महात्मा आनन्दघन की प्रशंसा की है। आनन्दघन जी मार्ग में चलते-चलते

---

१. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास पृ० ६१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाने लगते थे, उनके इस सहज साधक स्वरूप पर यशोविजय जी मुग्ध थे। उनके सम्बन्ध में उपाध्याय जी ने 'आनन्दघन अष्टपदी में लिखा है।

मारग चलत चलत गात, आनन्दघनप्यारे,
रहत आनंद भरपूर।
ताको सरूप भूप त्रिहुंलोक थे न्यारो,
बरसत मुख पर नूर।

कवि का विचार है कि आनन्दघन को जानने के लिए उनकी भाव भूमि तक जाना होगा; सब नहीं जान सकते, कवि कहता है—

आनन्द की गत आनंदघन जाणे,
वाइ सुख सहज अचल अलखपद, वा सुख सुजस बखानें।
सुजस विलास जब प्रगटे आनन्दरस,
आनन्द अखय खजाने,
ऐसी दशा जब प्रगटे चित्त अंतर, सोही आनंदघन पिछानै।[1]

कहते हैं कि अर्बुद क्षेत्र के किसी समीपस्थ गाँव में यशोविजय जी व्याख्यान दे रहे थे उसी सभा में आनन्दघन से उनकी भेंट हुई थी और आनन्दघन के अध्यात्मरस का प्रबल प्रभाव यशोविजय पर पड़ा, उन्होंने अष्टपदी में लिखा है—

आनन्दघन के संग सुजस ही मिले,
जब तब आनन्द सम भयो सुजस।
पारस संग लोहा जो फरसत,
कंचन होत ही ताके कस।

आपकी कुछ प्रमुख रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है—

जसविलास—यह रचना 'संज्झाय, पद और स्तवनसंग्रह' में छपी है। इसमें ७५ मुक्तक पद हैं। सभी जिनेन्द्र स्तवन से संबंधित हैं उदाहरणार्थ—

हम मगन भये प्रभु ध्यान में,
बिसर गई दुविधा तन मन की, अचिरा सुत गुन गान में।
हरिहर ब्रह्म पुरंदर की रिधि आवत नहि कोउ मान में।
चिदानन्द की मौजमची है, समता रस के पान में।

---

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी भक्तिकाव्य और कवि पृ० २०३-०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतने दिन तू नाहि पिछान्यो, जन्म गंवायो अजान में।
अब तो अधिकारी हैं बैठे, प्रभुगुन अखय खजान में।
गई दीनता सभी हमारी, प्रभु तुझ समकित दान में।
प्रभु गुन अनुभव के रस आगे, आवत नहि कोउ ध्यान में।[1]

दिक्पट चौरासी बोल—यह कृति पं० हेमराज के सितपट चौरासी बोल का खंडन करने के लिए लिखी गई है। इसका प्रारम्भिक पद्य देखिये —

सुगुण ध्यान शुभध्यान, दानविधि परम प्रकाशक,
सुघट मान प्रमान, आन जस मुगति अभ्यासक।
कुमतवृन्द तमकंद, चंद परिद्वंद विनासक।
कचिद मन्द मकरन्द, सन्त आनन्द विकासक
यश वचन रुचिर गम्भीर निजे, दिग्पट कपट कुठार सम,
जिन वर्द्धमान सोइ वंदिये, विमल ज्योति पूरण परम।

साम्यशतक में १०५ पद्य हैं। यह श्री विजयसिंह सूरि के साम्यशतक को आधार मानकर हेमविजय के लिए लिखा गया था।

समुद्रबहाण संवाद सं० १७०० का रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

मुनि विबुध संवत जाणी अेहो ते हर्ष प्रमाण,
कवि जसविजये अे रच्यो उपदेश चह्यो सुप्रमाण।

द्रव्यगुणपर्याय रास सं० १७११ की रचना है। इसमें कल्याणविजय, लाभविजय, श्रीजीतविजय और उनके गुरुभाई नयविजय को अपना गुरु बताया है—

श्री गुरुजीतविजय मनि धरी श्री नयविजय सुगुरु आदरी,
आतम अर्थीनइं उपकार, करूं द्रव्य अनुयोग विचार।

साधुवंदना सं० १७२१ विजयादशमी, खंभात का प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है—

प्रणमुं श्री ऋषिभादि जिणेसर सुवण दिणेसर देव,
सुरवर किन्नर विद्याधर जेहनी सग्रइं सेव।

---

१. डा० प्रेमसागरजैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य पृ० २०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिक्रमण हेतु गर्भित स्वाध्याय सं० १७२२ सुरत, ११ अंगनी संज्झाय सं० १७३२ सुरत, आदि व्रत-नियम आदि से सम्बन्धित रचनायें हैं।

समकितना षष्टस्थान स्वरूपनी चौपाई (टब्बा सहित, सं० १७३३) जैन कथा रत्नकोष (पृ० २८२-३१९) में प्रकाशित हैं। महावीर स्तवन, हूंडी स्तवन १५० गाथा, (ढुंढकमत खंडन) सं० १७३३ विजयादशमी, इन्दिलपुर; निश्चय व्यवहार विवाद, श्री शांतिजिनस्तवन, सं० १७३२, संयमश्रेणिविचारस्तवन, सीमन्धरस्वामी स्तवन आदि स्तवन और साम्प्रदायिक खंडनमंडन सम्बन्धी रचनायें हैं। आठ दृष्टि संज्झाय प्रकाशित है। इसमें हरिभद्रसूरि के योगदृष्टिसमुच्चय का सुन्दर भावानुवाद है। इस पर ज्ञानविमलसूरि ने टब्बा लिखा है। ब्रह्मगीता भी प्रकाशित रचना है। ये सभी १८वीं शताब्दी की रचनायें हैं। इसलिए इनका विस्तार से उद्धरण-विवरण नहीं दिया जा रहा है। तीन चौबीसी, बीसी, सम्यक्त्वना, ६७ बोल संज्झाय, १८ पाप स्थानकनी सं०, अमृतबेलीनी सं०, चार आहारनी सं०, सुगुरु स्वाध्याय आदि अनेक छोटी मोटी रचनायें प्रकाशित हैं। सुगुरु स्वाध्याय के अन्त में प्राकृत की यह गाथा उनके प्राकृत ज्ञान का सूचक है—

सिरि पद्मविजय गुरुणं पसाय मासज्ज सयत्न कम्मकरं
भणिया गुणा गुरुणं साहुण जससिणए ।

पञ्चपरमेष्ठी गीता, कुगुरुनी संज्झाय, शीतलजिनस्तवन, नवपद-पूजा, जिनसहस्रनाम वर्णन, चउती पउती की सज्झाय, हरियाली, स्थापना कुलक, संयमश्रेणिनी संज्झाय आदि रचनायें धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कुमतिखंडन १० मत स्तवन आदि—

सुखदायक चोबीशमो प्रणमी तेहना पाय,
गुरुपद पंकज चित्तधरी, श्रुत देवी सारदमाय
त्रण तत्व स्वरूप छे आतमतत्व धरेय,
देव तत्व गुरुतत्वरे, धर्मतत्व ज्यो लेय ।[1]

इनके कुछ पद गुर्जर साहित्य संग्रह से दिए जा रहे हैं, ताकि इनकी कवित्व शक्ति का पाठकों को आस्वाद प्राप्त हो सके। इनके पदों को भक्तिकाल के समर्थ कवि सूर, तुलसी, नन्ददास, मीरा और सुन्दरदास

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १७-५६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि के पदों के समकक्ष रखा जा सकता है। इन पदों की भाषा हिन्दी है। भजन—

भजन बिनु जीवित जैसे प्रेत,
मलिन मन्द मति घर-घर डोलत, उदर भरन के हेत,
दुर्मुख वचन बकत नित निन्दा, सज्जनसकलदुख देत।
कबहुँ पापको पावत पैसो, गाड़े धूरिमें देत,
गुरु ब्रह्मन अबुत जन सज्जन, जात न कवण निकेत।
सेवा नहीं प्रभुतेरी कबहुं, भुवन नील को खेत।[1]

× × ×

कंत बिनुकहो कौन गति नारी,
सुमति सखी जाइ वेगें मनावो, कहे चेतना प्यारी।

रीतिकालीन दूती प्रसंग की झलक इस रूपक में देखी जा सकती है, किन्तु रीतिकालीन अधिकांश कवि मांसल शृंगार की विवृत्ति में लगे थे और जैन कवि उन लोकप्रिय माध्यमों का सदुपयोग आध्यात्मिक क्षेत्र में कर रहे थे। प्रिय से चेतना का मिलन होता है और लय की उस आनन्द स्थिति का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

मन कितही न लागे हे जे रे
पूरन आस भई अली मेरी, अविनाशी की सेजे रे।

इसी प्रकार कहीं पर ब्रह्म परमात्म का स्वरूप, कहीं माया की भयानकता आदि के द्वारा कवि ने अध्यात्म का मर्मस्पर्शी संदेश दिया है। इन्होंने 'हरियाली' लिखा है जिसकी शैली संतकवियों की उलटबासियों जैसी है, जैसे—

कहियो पंडित ! कोण अे नारी[2]
बीस बरस की अवधि विचारी कहियो।
दोय पिताअे अेह निपाई, संघचतुर्विधिमन में आई।
कीडीअे एक हाथी जायो, हाथी साहमो ससलो धायो।

---

१. सं० मुनि श्री कीर्तियश विजय —'गुर्जरसाहित्यसंग्रह'—१,
प्रकाशक —जिनशासनरक्षा समिति, लालबाग, बम्बई
२. गुर्जर साहित्य संग्रह—१ पृ० १७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये जीवन जगत और धर्म दर्शन का सभी कोना झांक आये हैं और सर्वत्र मार्ग-दर्शन किया है। इन्होंने आचार्य गुण वर्णन, उपाध्याय गुण वर्णन, साधु गुण वर्णन, नवकार मंत्र महिमा आदि नाना विषयों पर कुशलतापूर्वक प्रभूत साहित्य उच्चकोटि का प्रस्तुत किया है। वस्तुतः १७वीं के अन्त और १८वीं के पूर्वार्द्ध में ये सर्व श्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। जंबूस्वामी ब्रह्मगीता, श्री पंचपरमेष्ठी गीता आदि कई गीता भी रच डाली है। बहुत सी चौपाइयाँ, रास, संज्झाय और बोल आदि रचे हैं। इनके अनेकविध काव्य रूपों की विविधता वर्ण्य विषयों की विविधता को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने में बहुत सहायक सिद्ध हुई हैं।

यशोविजय-जसविजय—आप तपागच्छीय विमल हर्ष के शिष्य थे। आपने सं० १६६५ में लोकतालिका बालावबोध लिखा।[1] देसाई ने इन्हे १८वीं शताब्दी और बाद में १७वीं शती में दिखाया है। यदि इन्होंने सं० १६६५ में रचना की और उपा० यशोविजय जी सं० १६८० में पैदा हुए तो ये निश्चय ही उपाध्याय यशोविजय से भिन्न और अवस्था में उनसे काफी बड़े तथा निश्चित रूप से १७वीं शताब्दी के लेखक हैं; किन्तु इनकी रचना तथा इनका कुछ भी विवरण श्री देसाई ने कहीं नहीं दिया है। केवल रचना का नामोल्लेख मात्र किया है।

भट्टारक रत्नकीर्ति-आप घोघानगर निवासी, हूंबड गोत्रीय श्रेष्ठि श्री देवीदास के पुत्र थे। आपकी माता का नाम सहजलदे था। आप भट्टारक अभयनन्दि के शिष्य थे। इन्होंने जैनसिद्धान्त, काव्यशास्त्र, व्याकरण और ज्योतिष आदि विषयों का गुरु के सान्निध्य में गहन अभ्यास किया था। सं० १६४३ में इन्हें भट्टारक पद पर प्रतिष्ठित किया गया। आप विद्वान् के साथ ही स्वरूपवान् भी थे।
कवि गणेश ने लिखा है—

अरध शशि सम सोहे भाल रे,
वदन कमल शुभ नयन विशाल रे।
दसन दाडिम समरसना रसाल रे,
अधर बिंबाफल विजित प्रवाल रे।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ५९०, भाग ३ पृ० १६०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंठ कंबू सम रेखा त्रय राजे रे,
कर किसलय सम नख छवि छाजे रे।[1]

वस्तुतः यह उनके यथार्थ सुन्दरता वर्णन से अधिक परिपाटी-विहित सौन्दर्य वर्णन का एक अंश लगता है। आपकी प्रेरणा से संघपति मल्लिदास ने बलासड नगर में विशाल प्रतिष्ठा कराई थी। इसका वर्णन तत्कालीन कवि जयसागर ने एक गीत में किया है, उसकी दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

पालखी चामर शुभ छत्र, राजगामिनी नाचें विचित्र,
घाट चूनडी कुंभ सोहावे, चंद्राननी ओडीने आवे।

आपके कई शिष्य अच्छे सन्त और साहित्यकार थे। उनमें कुमुदचंद्र, गणेश, जयसागर और राघव के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके पट्टधर कुमुदचंद्र ने तो प्रायः अपनी सभी रचनाओं में अपने गुरु का सादर स्मरण किया है। राघव ने अपने एक गीत में इनके राज-सम्मान का संकेत इस प्रकार किया है।

लक्षण बत्तीस सकल अंगि बहोत्तरि,
खान मलिक दिए मान जी।

रचनायें—इनके ३६ पद प्राप्त हैं। इनके अधिकतर पदों का विषय राजीमती की विरहव्यथा है। राजुल अपने नेत्रों को मना करती है पर वे निरन्तर नेमि के पथ की प्रतीक्षा करते रहते हैं, यथा—

वरज्यो न माने नयन निठोर,
सुमिरि गुन भये सजलघन, उमंगी चले मति फोर।
चंचल चपल रहत नहीं रोके, ना मानत जु निहोर।
नित उठि चाहत गिरिको मारग, जेहि विधि चंद्र चकोर।
तन मन धन जोबन नहिं भावत, रजनी न भावत भोर।
रत्नकीरति प्रभुवेगो मिलो तुम, मेरे मन के चोर।
वरज्यो न मानत।[2]

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैनसंत पृ० १२८
२. वही, पृ० १३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजुल कभी सोचती है कि नेमि ने पशुओं तक की पुकार सुनी पर मेरी नहीं सुनते और एक पद में कहती है 'सखी री नेमि न जागी पीर।' पदों के अलावा आपने 'नेमिनाथ फाग' और नेमिनाथ बारहमासा नेमि-राजुल के मार्मिक आख्यान पर ही लिखा है। फाग में ५७ पद्य है। यह हांसोट में लिखा गया। राजीमती की रूपशोभा का वर्णन कवि की इन पंक्तियों में देखिये—

चंद्रवदनी मृगलोचनी, मोचनी खंजन मीन,
वासग जीत्यो वेणिइ, श्रेणिय मधुकरदीन।
चिबुक कमल पर षट्पद आनन्द करे सुधापान।
ग्रीवा सुन्दर सोभती, कंबुकपोल ने बान।

नेमि बारहमासे में १२ त्रोटक छंद हैं। यह घोघानगर के चैत्यालय में लिखा गया। ज्येष्ठमास से सम्बन्धित कुछ पंक्तियां देखिये। इस मास में विरहिणी को काम सर्वाधिक सताता है—

आ ज्येष्ठमासे जग जलहर नो उमाह रे,
काई बाप रे बाय विरही किम सहे रे।
आरत ते आरत उपजे अंग रे,
अनंग रे संतापे दुख केहे रे।[1]

डा० प्रेमसागर जैन भट्टारक रत्नकीर्ति द्वारा 'काम' शब्द के प्रयोग की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि काम शब्द कामदेव का नहीं अपितु विरहका सूचक है जैसे कालिदास की इस पंक्ति 'कामार्त्ता हि प्रकृत कृपणः—'में काम का प्रयोग विरह के अर्थ में है। लेकिन निवेदन यह है कवि ने केवल 'काम' का ही नहीं 'अनंग' शब्द 'अनंग रे संतापे' का भी प्रयोग किया है और यह भी विरह के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है पर यह विरह का पर्यायवाची नहीं है। मैं इन प्रयोगों के लिए किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं समझता। ऐसे स्पष्टीकरण इसलिये आवश्यक लगते हैं क्योंकि ये लोग कवि को केवल संत मानते हैं, साथ ही कवि और सरस साहित्यकार नहीं समझते। भ० रत्नकीर्ति बड़े सहृदय, भावुक और सरस कवि थे। आपके पदों में राजुल की रूप-शोभा और सुन्दरता तथा वियोग की मार्मिक दशा का सुन्दर अंकन हुआ है। इसी प्रकार कवि ने परंपरित ढंग से बारहमासे में कामपीड़ा का वर्णन भी किया है और किसी प्रकार के बचाव या वकालत की

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य पृ० १०७-११०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा नहीं रखता। लगता है कि रत्नकीर्ति को कबीर, सूर, मीरा के पदों और संस्कृत के विरह काव्यों से प्रेरणा मिली थी। वे स्वयं संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे पर उन्होंने हिन्दी (मरुगुर्जर) में रचनायें की और अपने शिष्यों को भी इसी भाषा में लिखने का उपदेश दिया। आपने 'नेमिनाथ विनती' भी लिखी है। विषय के चुनाव से कवि की भावुक प्रवृत्ति का परिचय मिल जाता है। नेमिराजुल आख्यान से भिन्न आपने 'महावीर गीत', सिद्धधुल' और 'बलिभद्र नी विनती' आदि रचनायें भी लिखी हैं किन्तु भाषा एवं भाव की दृष्टि से आपके पद अति उत्कृष्ट हैं। इनके अलावा नेमिराजुल आख्यान सम्बन्धी रचनाओं में कवि का मन अधिक रमा है अतः वे विशेष रमणीय हैं। शेष रचनायें भी सरस हैं।[1]

रत्नकुशल—आप तपागच्छीय मेहर्षि के प्रशिष्य एवं दामर्षि के शिष्य थे। आपने सं० १६५२ में 'पंचाशक वृत्ति' लिखी जिसमें अपने गुरु दामर्षि का उल्लेख किया है। सं० १६५२ के आसपास ही आपने पार्श्वनाथ संख्या स्तवन लिखा जो प्राचीन तीर्थमाला संग्रह (पृ० १६९-१७०) में प्रकाशित है। इसका आदि इस छंद से हुआ है—

श्री जीराउलि नवखंड पास वषाणीइ रे
नामइं लील विलास,
संकट विकट उपद्रव सवि दूरइं टालइ रे,
मंगल कमला वास।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—

भोग संयोग ते पामइ मानव नव नवारे
जास तूसइ श्री पास,
गणि दामा शिष्य रतनकुशल भगतिइ कहइरे
आपो चरणइं वास।[2]

---

१. डा० हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता को देन पृ० ८५-८२

२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३९२ (प्रथम संस्करण) तथा भाग २ पृ० २८८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भट्टारक रत्नचंद— आप भट्टारक सकलचन्द्र के शिष्य थे। इनकी अबतक केवल एक कृति 'चौबीसी' प्राप्त है। यह सं० १६७६ में लिखी गई। इसमें २४ तीर्थङ्करों का गुणानुवाद किया गया है। अंतिम २५वें पद्य में कवि ने अपना परिचय दिया है। रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है—

संवत सोल छोत्तरे कवित्त रच्या संघारे,
पंचमी सु शुक्रवारे ज्येष्ठ वदि जान रे।

गुरुपरम्परा— मूलसंघ गुणचंद्र जिनेन्द्र सकलचंद्र,
भट्टारकरत्नचंद्र बुद्धि गछभांण रे।

आत्मपरिचय—

त्रिपुरो पुरोपि राजस्वतो ने तो अम्रराज,
भामोस्यो मोखलराज त्रिपुरो बखाण रे।
पीछो छाजु ताराचंद, छीतरछंद,
ताउ खेतो देवचंद एहुं की कल्याण रे।[1]

रत्नचंद I—आप बड़तपगच्छीय समरचंद्र के शिष्य थे। आपने सं० १६४८ आश्विन ५, शनिवार को 'पंचाख्यान अथवा पंचतन्त्र चौपाई की रचना की।[2] इनका और इनकी कृति का अन्य कोई विवरण तथा रचना से उद्धरण उपलब्ध नहीं है।

रत्नचंद II—आप तपागच्छीय उपाध्याय शांतिचंद्र के शिष्य थे। आपने सं० १६७६ पौष शुक्ल १३ को सूरत में सम्यकत्वसप्तति का बालावबोध (सम्यकत्व रत्नप्रकाश) लिखा।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

रचनाकाल— रस मुनि रस शशि वर्षे पौषे शुक्ले त्रयोदशी दिवसे,
सूरत वंदिर मुख्ये परमार्हत संघ श्रमणीये।

इसकी कथा जैन कथा रत्नकोश भाग ३ में प्रकाशित है। आपकी दूसरी रचना 'संग्रामसुर कथा' भी सम्यकत्व के ऊपर ही आधारित

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल— राजस्थान के जैन संत पृ० १९५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७९० (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० २५१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। यह भी सूरत में सं० १६७८ में लिखी गई, जैसा कि कवि ने स्वयं लिखा है—

'वसुमुनि रस शशि'....। इनकी गद्यशैली का नमूना प्राप्त नहीं हो सका।[1]

रत्ननिधान—'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह' में आपकी दो रचनायें संकलित हैं। 'जिनचंदसूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत १५ वीं रचना 'गुरुजी गीत' (१७ कड़ी) के अन्त में पाठक रत्ननिधान ने लिखा है—

> श्री जिनचंद सूरीसरु चिरजपउ जुगह प्रधान रे,
> इणिपरि गुरु गुण संथुणइ पाठक रत्ननिधान रे।[2]

इससे स्पष्ट है कि ये खरतरगच्छ के युगप्रधान जिनचंदसूरि के शिष्य हैं। आपने दूसरे गीत 'गहुंली' में भी जिनचंद को सुगुरु बताया है, यथा —

> सुगुरु मेरउ कामित कामगवी,
> मनसुद्ध साही अकबर दीनी, युगप्रधान पदवी।

रत्नभूषण सूरि—आप दिगम्बर परम्परा के भट्टारक ज्ञानभूषण > प्रभाचंद्र > सुमति कीर्ति के शिष्य थे। मरुगुर्जर भाषा में आपकी तीन रचनाओं का पता चला है—रुक्मिणीहरण, अनिरुद्धहरण अथवा ऊषाहरण और जिनदत्तरास। रुक्मिणीहरण में गुरुपरंपरा इस प्रकार है। गुरुपरंपरा के अनुक्रम में गौतम, पद्मनंदी, विद्यानंदी, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचंद और वीरचंद, ज्ञानभूषण आदि को गिनाया है -

> तेह अनुक्रमि रे रत्नभूषणसूरि रे, रत्नभूषण जेहसार,
> श्री ज्ञानभूषण चरण नमि कहे ऋषीमणिहरण विचार।

---

१. जैन गुर्जर कवियो भाग १ पृ० ६०२,, भाग ३ पृ० ९८९ और भाग ३ खंड २ पृ० १६०५ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० १९५-१९६ (द्वितीय संस्करण)

२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—जिनचन्द सूरि गीतानि १५वां और ३०वां गीत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल के अन्तर्गत कवि ने महीना और दिन बताया है किन्तु वर्ष का पता नहीं है, यथा—

श्रावणवदि रे सुन्दर जाणिइ वलि अेकादसी दीस,
सुरत मांहि रे अे रचना रची, जहाँ आदि जिन जगदीस।[1]

इसमें श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी के हरण की कथा कही गई है।
ऊषा अनिरुद्ध हरण—आदि

परम प्रतापी परमंतु परमेश्वर स्वरूप,
परम ठांव को लहीजे अकल अक्ष अरूप।
सारदा देवी सुन्दरी सारदा तेहनु नाम,
श्री जिनवर मुख थी ऊपनी उमे उत्तमा ठाम।

भाषा पर गुर्जर प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है, यथा—

ऊषा बोलि माधुरी वाणि, सांभल सखी तु सुखनी खांण।
सखी लखी तु देखाडि लोक, बाहरी मलागति सघली फोक।

कृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है—

वसुदेव केरो सुन्दर पुत्र जिणे घर राख्या घरना सत्र,
सुन्दरनारायण ति राम रूप देख्यारया तें अभिराम।[2]

अन्त—श्री गिरिनारि पडियो सिद्ध तणु पद सार
सुख अनन्ता भोगवे अकल अनंत अपार।
अनिरुद्ध हरण ज सांभलो एकचित सहुआज,
जिनपुराण जोई रच्यु जिथी सरी बहुकाजि।
श्री ज्ञानभूषण ज्ञानी नमूं जे ज्ञान तणो भंडार,
तेहतणा मुख उपदेश थी रच्यो अनिरुद्ध हरणविचार।

आपकी तीसरी रचना 'जिनदत्तरास' में भी रचना का महीना है पर वर्ष नहीं दिया गया है, यथा—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५१०-११ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० १५१-१५२ (द्वितीय संस्करण)
२. सं० डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रन्थसूची ५वां भाग पृ० ४२२-४२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसोमास सोहामणो सुदिपंचमी बुधवार,
ए रचना पूरी करी सांभलो भविजन सार।[1]

इसका आदि देखिये—

सकल सुरातुर पद नमी नमूं ते जिनवर राय,
गणधर गोतम नमूं बहु मुनि सेवित पांय।
सुखकर मारिगवाहिनी, भगवती भवनी तार,
तेहतणांचरण कमल नमूं जे वीणा पुस्तकधार।
श्री ज्ञानभूषण ज्ञानी नमूं, नमूं सुमतिकीर्ति सुरिंद,
दक्षण देसनो गछपतिनमूं श्रीगुरुधर्मचन्द।

इससे स्पष्ट है कि जिनदत्तरास के कर्त्ता रत्नभूषणसूरि मूलसंघ बलात्कार गण के भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य एवं सुमतिकीर्ति के शिष्य थे। अतः रुक्मिणीहरण और उषाहरणरास के कर्त्ता तथा जिनदत्तरास के कर्त्ता रत्नभूषणसूरि एक ही कवि हैं। रत्नभूषण का समय १७वीं शताब्दी निश्चित है। अतः ये तीनों रचनायें उसी काल की हैं। श्री रत्नभूषण ने अन्तिम रचना जिनदत्तरास हांसोट नगर में लिखी—

श्री हांसोट नगर सुहामणूं श्री आदि जिनंद भवतार,
तिणि नगरे रचना रची जिनसासनि शृङ्गार।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जे नरनारी ये भणिसि भणावसि तेह घर मंगलचार,
श्री रत्नभूषण सूरीश्वर इम कहिसी,
आदि जिणंद जयकार।[2]

इन तीनों रचनाओं की भाषा अन्य दिगम्बर लेखकों के समान सरल हिन्दी है जिस पर राजस्थानी-गुजराती प्रभाव यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है। इसीलिए इस प्रकार की भाषा शैली का नाम मरुगुर्जर रखा गया है।

---

१. सं० डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल——राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रन्थसूची ५वां भाग पृ० ६३४-६४०

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्नलाभ—ये खरतरगच्छ की क्षेम शाखा के मुनि क्षमारंग के शिष्य थे। इनकी रचना 'ठंठणकुमारचौपाई' सं० १६५६ जयतारण में और दूसरी रचना 'श्रीपालचौपाई' सं० १६६२ में लिखी गई।[1] ठंठणकुमार चौपाई का रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है--

संवत सोल सो छपन्ना, सावणइ आठमि तिथि भृगुवार,
श्री जयतारण पुरवर परगडउ मंडोवर शृङ्गार।
तिहाँ श्री विमलनाथ सुपसाउले, खिमारंग गणि शिष्य,
रत्नलाभ गुणगावतां, पूजइ मनह् जगीस।[2]

इसमें कुल ३५ गाथायें हैं—'श्रीपालप्रबन्ध चौपाई' (सं० १६६२ भाद्र कृष्ण ६) का आदि—

चउवीसे जिणवर मनि ध्याई, सूयदेवी समरुं मनलाई।
पभणिसु महिमा मानव पद सार, मंत्र अनोपम श्री नवकार।

इसमें श्रीपाल की कथा के उदाहरण से नवकार मंत्र की महिमा बताई गई है, जैसा कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

सिद्धि चक्रनउ अेह्ज मंत्र, नवपद आराह्उ जे तंत्र,
मयणासुन्दरि जिम श्रीपाल, आराधत फलिउ तत्काल।

रचनाकाल--संवत सोलह् सइ बासठा वरसइ,
भादव वदि छठि दिन ह्रषइ।
युगप्रधान जिनचंद सूरिराज रे,
श्री जिनसिंह् सूरि युवराजइ।
वयणा चरिय अमरमाणिक्य गणि,
खिमारंग तसु सीस सिरोमणि,
रत्नलाभ गणि तेह्नइ सीसइ,
अेह् प्रबन्ध रच्यउ सुजगीसइ।[3]

रत्नप्रभशिष्य--अंचलगच्छीय रत्नप्रभ के किसी अज्ञात शिष्य ने 'गजसुकुमार चौपाई' की रचना सं० १६२४ में की। यह रचना धर्ममूर्ति

---

१. श्री अगर चन्द नाह्टा—परम्परा पृ० ८५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३, पृ० ८९१-९२ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० २९९ (द्वितीय संस्करण)
३. वही, भाग ३ पृ० ८९१-९२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरि के समय हुई। इससे अधिक इस कवि और इसकी कृति के सम्बन्ध में सूचनायें नहीं उपलब्ध हो पाई।[1]

रत्नविमल--आप तपागच्छीय सौभाग्यहर्ष के प्र-प्रशिष्य, प्रमोद-मंडन के प्रशिष्य एवं बिमल मण्डन के शिष्य थे। सौभाग्यहर्ष सूरि को सं० १५८३ में खंभात में सूरि पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। साह सोमसिंह ने इस अवसर पर मह्रोत्सव किया था। रत्न विमल ने अपनी रचना 'दामनकरास' का रचनाकाल नहीं दिया है किन्तु इसकी प्रति सं० १६३३ की लिखित प्राप्त है। अतः यह रचना १७वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण की है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है--

वचन सरस दिउ सरसती, विद्वज्जननी मात;
वीणा पुस्तक धारणी हंसगमनि विख्यात।
एकमना थइ जेह नर जपि निरंतर नाम,
तेह्नि तूसी भारती, जगि विस्तारइ नाम।

यह रचना जीवदया के दृष्टान्तस्वरूप लिखी गई है। सम्बद्ध पंक्तियाँ देखिये—

जिन सरसति गुरु तेह तणा, पायकमल पणमेवि,
दामन्नग कुअर तणउ, रास रचिउ संखेवि।
× × ×
भूतलि स्वर्ग समान खंभनयर अभिराम कि,
विवहारी आवसि अे, पुण्यि उल्हासि अे।
तिहां अे रचिउं रास प्रणमी थंभण पास कि,
ऊलट आपणि अे रत्नविमल भणइ अे।[2]

रत्नविशाल—आप खरतरगच्छ के जिनमाणिक्य के शिष्य विनय-समुद्र के प्रशिष्य एवं गुणरत्न के शिष्य थे। आपने सं० १६६२ में 'रत्नपाल चौपाई' महिमावती में लिखी। इसमें ४९९ पद्य हैं। आपने सं० १६८२ में 'मुल्तान पार्श्व स्तवन' (३१ पद्य) लिखा।[3] रत्नपाल

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७१० (प्रथम संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७३२-३४ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० १६०-१६१ (द्वितीय संस्करण)
३. श्री अगर चन्द नाहटा—परम्परा, पृ० ७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपइ सं० १६६२ में दीपावली को लिखी गई थी। यह रचना दान के महत्व को रत्नपाल के चरित्र के आलोक में प्रकाशित करती है। इसके मंगलाचरण में ऋषभ के साथ शांति, नेमि, महावीर और गौतम गणधर की वंदना की गई है।

पहिलउं प्रणमुं प्रथम जिण आदीसर अरिहंत,
नाभि नरेसर कुलतिलउ, विमलाचलि जयवंत।

दान सम्बन्धी पंक्तियाँ—

रतनपाल कुमरइ दियउ, पूरब भवि जलदान,
तिणि पुण्यइ रस तुंबडउ पाम्यउ राजप्रधान।
रतनपालनी चउपइ कहिस्युं श्रुत अनुसारि,
सानिधि करेयो सारदा लहियइ वचन बिचार।

रचनाकाल—सोलहसइ बासठि समयइ महिमावतिपुर मांहि,
दीपोत्सवि पूरण थयउ, अेह प्रबन्ध उमाहि।

गुरुपरम्परा—खरतरिगछि गुरु परगडउ तेजइ जीसइ सूर,
महिमावंत मुणीसरु श्री जिनमाणिक सूरि।
शिष्य विनयगुण सोभता, विनयसमुद्र गणीस,
वादी गजमद गंजता, प्रतपइ छइ तसु सीस।
वाचक वादि शिरोमणि श्री गुणरतन मुणिंद,
तासु सीस गणि इम भणइ रतनविशाल आणंदि।

अन्तिम पंक्तियाँ—

गुण अनन्त छइ साधुना केता मुखि कहवाइ,
सहस जीभ जउ मुखि हवइ, तउ पिण पूर्ण न थाइ।
श्री खरतरगछ राजियउ युगप्रधान जिनचंद,
जसोवाद भागइ भयउ प्रतपउ जां रविचंद।
तासु राजि मइं इम भण्यउ, मुनिवर चरित प्रकाश,
अेह प्रबंध सुणता हवइ अंगइ अधिक उल्हास।[1]

रत्नसार—आपने सं० १६४१ में 'सागरश्रेष्ठि नी कथा' लिखी। कवि और कृति के सम्बन्ध में अन्य विवरण अनुपलब्ध है।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८९४-९५ (प्रथम संस्करण); भाग ३ पृ० २२-२३ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग १ पृ० २८७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्नसुन्दर—आप पूर्णिमागच्छीय सौभाग्यरत्नसूरि के पट्टधर गुणमेरु के शिष्य थे। आपने कई रचनायें की हैं जो भाषा एवं भाव की दृष्टि से सरस एवं काव्यगुण सम्पन्न हैं। पंचाख्यान चौपाई, रत्नवती चौपाई, शुकबहोत्तरी और सप्तव्यसन चौपाई आपकी उल्लेखनीय रचनायें हैं। पंचाख्यान चौपाई संस्कृत की अतिविख्यात रचना पंचतन्त्र पर आधारित है। यह अनुवाद नहीं है अपितु इसमें पर्याप्त मौलिकता एवं काव्यत्व है। इसके तीन नाम हैं— (१) पंचाख्यान चौपई, (२) कथाकल्लोल और (३) पंचकारण रास। यह रचना सं० १६२२ आसो शुदी ५ रवि को साणंद में सम्पन्न हुई। कवि संस्कृत का अध्येता एवं विद्वान् था। रचना के प्रारम्भ में प्राप्त संस्कृत के सुन्दर श्लोक इस कथन के प्रमाण हैं। पञ्चाख्यान के प्रारम्भ में यह श्लोक है—

> प्रणम्य पूर्व्वं परमात्मनः पदं सरस्वतीमीश सुतं च सद्गुरु,
> सुदीप रूपामिव मूढ़भावसे सुपञ्चाख्यान चतुष्पदी बुवे।[1]

इसके पश्चात् संस्कृत में सरस्वती वंदना है, कवि ने सरस्वती की शोभा का कई छन्दों में वर्णन किया है, यथा—

> कमलनयणिकाजल नी रेह, अधररंग पखाली गेह,
> दन्त पंक्ति दाडिमनी कली, कै जवहर हीरे सुं मली।

पंचतंत्र के लेखक विष्णुशर्मा के प्रति आभार इस पंक्ति में देखिये—

> विष्णुशर्मा बाडव भलो श्री गोड नाति सुजाण,
> सरस कथा रस वीनवे, नामे पञ्चाख्यान।

प्रथम आख्यान मित्रभेद-विचार के बाद द्वितीय अधिकार में मित्र-प्राप्ति से सम्बन्धित कथा है। इसी प्रकार तीसरा, चौथा और पाँचवाँ अधिकार पूरा किया गया है।

> नीतिशास्त्र कहीइ अे नाम, पंचाख्यान बीजउ अभिधान;
> तेह ग्रन्थ अणुसारइ कही, बडा कूपा पासइ अे कूइ।

रचनाकाल—सोल चउवीसउ वछर सार, सुदि आसो पांचमि रविवार,
साणंद नयर शोभइ शुभठाम, पूनिम पखि गछ अभिराम।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२८ (द्वितीय संस्करण) और वही पृ० १२७-१२५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्नवती चौपाई अथबा रास (४०३ कड़ी, सं० १६३५ श्रावण वदी २, रविवार खंभात) का आदि –

सकल सिद्धि नवनिधि दीइ, जिनचउवीसि देव,
आपइ वाणी अति भली, सांची सहिगुरु सेव।[1]

अंत—पोतनपुरवरिरुडइठामि, श्रीमुखि वीरि प्रकासिउ ताम।
रत्नवती सती संबंध, निसुणी जीव वार्या भवबंध।

रचनाकाल –

सोल पांत्रीसि श्रावण मासि, वदि बीज रवि दिन उल्हासि,
खंभनयरि श्री थंभणा पासि, रत्नवतीनु रचीउ रास।
रत्नवती सतीनुं चरित्र भणता गुणता पुण्य पवित्र,
कविता कोइ म देशु खोडि, रत्नसुन्दर प्रणमइ कर जोडि।

शुकबहोत्तरी कथा चौपइ का दूसरा नाम कवि ने रसमञ्जरी भी बताया है। यह सं० १६३८ आसो सुदी ५ सोमवार को खंभात में लिखी गई है। आदि—

सयल सुरासुर माया, मंगल कल्याण सुजस जयनिलय,
वर विज्जा घण दाया, सा सारदा पढम पणमामि।

कवि संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और गुजराती भाषा के प्रयोग में प्रवीण लगता है। रचनाकाल—

सोल से आठत्रीसो सार, आसो सुदि पंचमि शशिवार,
पूनिमपक्ष गछपति गणधार, श्री गुणमेरु सूरि गुरु सार।

रचनास्थान—गुज्जरदेश त्रंबावतिठाम, थंभण पास तीरथ अभिराम,
सांन्निधि श्री जिनशासणि करी,
अे कही कथा शुकबहोत्तरी।
छप्पय गाहा दूहा चोपई, वस्तु अडयल पदबंधे थइ।
संख्या सर्व सुणेयो सही, शत चौबीस ऊपरि अे कही।
प्रसिद्ध नाम अे शुकबहुत्तरी, बीजे नाम अे रसमंजरी।

कवि रचनाओं के अनेक नाम रखने का शौकीन लगता है। इसमें कवि ने सम्पूर्ण शुकबहुत्तरी कथा कहने का दावा किया है, यथा –

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २३०-३४, भाग ३ पृ० ७२०-२५ और भाग ३ खंड २ पृ० १५१३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे कवि कहेता रहे, अधविचि काई ऊण;
घरि छेदडे ओछूं अधिक, तें करिस्युं परिपुन्न।[1]

सप्तव्यसन पर चौपाई (१३७० कड़ी सं० १६४१ पौष शुदी ५ रविवार, खंभात)

आदि— प्रणम्य परमा भक्त्यां जिनान चैव सरस्वती,
व्यसनानां कथां कुर्वे नाम्ना रत्नप्रदीपिका।

माँ शारदा की वन्दना के पश्चात् कवि कहता है :—

मति विण यश मांगू कवि तणुं, हंसा रुपे म होसिइ घणुं।
ऊर्ध्व वृक्षफल लेवा काजि, वामन परि विभासिऊं आज।
पांडव हरी चक्री नृप चरी, अतुल उदधि तखु भुजे करी,
पर्वत सिरिसी भखी बाथ, पुण मुझ सिरि सुगुरुनो हाथ।

रचनाकाल—

चंद्र वेद रस पुहुवीमान, बारमास सितपोष प्रधान,
पंचम तिथि रविवार दिणेस, खंभनयर श्री पास जिणेस।[2]

इस प्रकार इनकी अनेक रचनाओं के आधार पर इन्हें १७वीं शताब्दी के श्रेष्ठ रचनाकारों में गिना जाना चाहिये।

मुनिराजचन्द—आप एक साधु थे लेकिन आपकी गुरु परम्परा का पता नहीं चल पाया है। आपकी एक रचना 'चंपावती सील कल्याणक' (सं० १६८४) उपलब्ध है जिसकी प्रति दिगम्बर जैन खण्डेलवाल, उदयपुर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित हैं। इसमें १३० पद्य हैं। इसके अन्तिम दो पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

सुविचार धरी तप करी, ते संसार समुद्र उत्तरी।
नरनारी सांभलि जे रास, ते सुख पामी स्वर्ग निवास।

रचनाकाल—

संवत सोल चुरासीइ एह, करी प्रबन्ध श्रावण वदि तेह।
तेरस दिन आदित्य सुद्ध वेलावही,
मुनिराजचंद्रकहि हरखज लही।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२७-१३५ (द्वितीय संस्करण)
२. वही
३. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० २०७

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

राजचन्द्रसूरि—आप पार्श्वचंद्र सूरि की परम्परा में रामचन्द्रसूरि के पट्टधर थे। आपने सं० १६७८ या सं० १६६७ चैत्र, २ को दशवैकालिक सूत्र पर बालावबोध लिखा। अधिकतर प्रतियों में रचनाकाल सं० १६६७ ही दिया गया है, संभवतः यही ठीक तिथि है। आपकी गद्य शैली का नमूना उपलब्ध नहीं हो सका है।[1]

राजपाल--पिप्पलक गच्छ की पूर्णचंद्र शाखा के पद्मतिलकसूरि > धर्मसागर सूरि > विमलप्रभसूरि के आप शिष्य थे। पिप्पलक गच्छ में एक और धर्मसागर सूरि हुए हैं वे इसी गच्छ की त्रिभविया शाखा के धर्मसुन्दरसूरि के पट्टधर थे। प्रस्तुत धर्मसागरसूरि पिप्पलक गच्छ स्थापक शांतिसूरि के १५वें पट्ट में स्थापित पूर्णचन्द्र शाखा के पद्मतिलकसूरि के पट्टधर थे। हमारे कवि राजपाल इन्हीं धर्मसागर सूरि के प्रशिष्य एवं विमलप्रभ सूरि के शिष्य थे। इन्होंने 'जंबूकुमार रास' (५२५ कड़ी सं० १६२२ माह वदि ७, रविवार) लिखा है जिसमें प्रसिद्ध केवली जंबू स्वामी का चरित्र चित्रित है।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है--

> सकल जिनवर सकल जिनवर सकल सुखकार।
> सकल कला शोभित विमल मुख मयंक सम अमल सोहे।
> सकल कर्म संखेपे करि मुगति नारि स्युं रंगे मोहे।
> तसु पदपंकज नित नमुं आणी मनि उल्हास,
> गौतम गणधर प्रणमतां, आवे बुद्धि प्रकाश।[2]

रचनाकाल —कणिका उपदेशमाल थी गुरुमुखे हीये विचार रे।
> तेह अरथ जांणी करी मे रचियो अे राससार रे।
> विक्रम राये थापियो संवत ऋतु इन्द्र जाणो रे।
> दोइ युग वरस विचारयो मास मने मधु आणो रे।

इन संकेतों से रचनाकाल का स्पष्ट निर्णय न कर पाने के कारण श्री देसाई ने पहले सं० १६०६ और बाद में सं० १६२२ कहा। जैन

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २, पृ० १६०६ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १३७ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग १ पृ० १८९-१९१, भाग ३ पृ० ६६१ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १२५-१२६ द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) के संपादक सं० १६२२ स्वीकार करते हैं, किन्तु 'दोइ जुग' का अर्थ तो ४४ भी हो सकता है, इसी प्रकार रचनाकाल सं० १६२४ भी हो सकता है, अतः इस विवाद में न पड़कर आगे इनकी गुरु परम्परा दे रहा हूँ—

चंद्रतणी शाखें हूआ शांति सूरि गुरुराय रे,
पीपलगच्छ तेणे थापियो आठ शाषतिहां थाय रे।
शासनदेवी चक्रेसरी गुरु ने सांनिधि आवे रे,
महिमा अतिहि वधारती शासन जिननुं शोभावे रे।
कही अे शाखा अे पांचवी पूर्णचंद्र गुरुनाम रे,
हूआ पाटे पनरमे पद्मतिलक सूरि नाम रे।
श्री धर्मसागर सूरिवर तसु पाटे गुण गाजे रे,
श्री विमलप्रभ सूरीवर सोहे जयवंता अे राजे रे।
ते गुरुना पय प्रणमी गाअे जंबुकुमार रे,
मुनिराजपालभणे इम कीजे सफल अवतार रे।[1]

राजमल्ल (पांडे)—आप काष्ठासंघीय भट्टारक हेमचंद्रजी की आम्नाय के थे जिसका सम्बन्ध माथुरगच्छके पुष्करगण से था। आप जयपुर से ४० मील दूर दक्षिण में स्थित वैराठ नामक स्थान के रहने वाले थे। ये संस्कृत भाषा, साहित्य, व्याकरण और छंदशास्त्र तथा जैनसिद्धान्त के पारंगत विद्वान् थे। अध्यात्म-दर्शन के प्रचारार्थ ये मारवाड़, मेवाड़, ढूढाड़ में भ्रमण करते रहते थे। आपने प्रभूत साहित्य का निर्माण किया है। अधिकतर रचनायें संस्कृत में हैं। हिन्दी गद्य में इनकी एक रचना 'समयसार की टीका' उपलब्ध है। यह टीका इन्होंने अमृतचन्द्र कृत समयसार की टीका पर मरुगुर्जर या हिन्दी में लिखी है। जंबू स्वामी की रचना सं० १६३२ में हुई। संस्कृत भाषा में इनकी रचना 'अध्यात्मकमल मार्तण्ड उपलब्ध (२५० श्लोक) है। इसमें सात तत्व और नौ पदार्थों का वर्णन है। 'लाटी संहिता में सात सर्ग हैं। इसमें आचारशास्त्र का निरूपण है। यह रचना वैराठनगर के जिनमंदिर में सम्पन्न हुई थी। पञ्चाध्यायी के पाँचों अध्याय लेखक के निधन हो जाने के कारण पूर्ण नहीं हो पाये। इनका समय निश्चित रूप से वि० १७वीं शती है।[2]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२७ (द्वितीय संस्करण)
२. कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० ११३-१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयसार की यह टीका पहली भाषा टीका कही गई है। यह पुरानी खण्डान्वयी शैली में लिखी गई है। शब्दों का पर्याय देकर उनका अर्थ बताया गया है। इसकी भाषा को नाहटा जयपुरी या ढूढाड़ी कहते हैं। भगवानदास तिवारी उसे हिन्दी कहते हैं किन्तु वस्तुतः वह मरुगुर्जर है जैसा कि निम्न उदाहरण से स्वयं स्पष्ट हो जायेगा, यथा -

कोई जीव मदिरा पीवाइ करि अविकल कीजै छै,
सर्वस्व छिनाइ लीजै छै।
पद ते भ्रष्ट कीजै छै तथा अनादि ताई लेइ करि
सर्व जीव राशि राग द्वेष मोह अशुद्ध करि मतवालो
हुओ छै तिहि तै ज्ञानावरणादि कर्म को बंध होइ छै।[1]

सर्वनाम और क्रियाओं का अर्थ जान लेने पर वचनिका का भावार्थ सुगम हो जाता है।

कवि राजमल—डा० कस्तूरचंद कासलीवाल इन्हें ही 'छंदो-विद्या'[2] का लेखक बताते हैं। यह ग्रन्थ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी में निबद्ध है। यदि कवि राजमल और पांडे राजमल्ल एक ही व्यक्ति हों तो वे केवल गद्य लेखक ही नहीं कवि भी सिद्ध होते हैं। छन्दो विद्या की रचना कवि राजमल ने श्रीमालवंशीय राजा भारमल्ल के लिए की थी। यह नागौर का संघपति था। छंदो विद्या को 'पिंगलशास्त्र' भी कहा जाता है। इससे तत्कालीन हिन्दी कविता और भाषा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। भारमल्ल अकबर का समकालीन प्रभावशाली धनाढ्य वैश्य था इसके पास राजे-युवराज भी आते थे—

ठाढ़े तो दरबार राजकुमार वसुधाधिपति;
लीजै न इक जुहारु भारमल्ल सिरिमालकुल।

इसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के छन्द शास्त्र का अच्छा विवेचन किया गया है।

---

१. हुकुमचंद भारिल्ल—राजस्थानी गद्य साहित्य, राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० २४७

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छन्दो विद्या को शायद इसीलिए कामताप्रसाद ने पिंगलशास्त्र कहा है।[1] श्री राजमल्ल पांडे और उनकी लाटीसंहिता (श्रावकाचार सं० १६४१, संस्कृत) की प्रति का परिचय डा० कस्तूरचंद कासलीवाल ने राजस्थान के जैनशास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ९ पर और प्रशस्ति संग्रह के पृष्ठ २१ पर भी दिया है।

यदि छन्दो विद्या के लेखक पाण्डे राजमल्ल ही हैं तो यह भी स्पष्ट होता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय उस समय अकबर की समन्वयवादी नीति के प्रभाव से काफी करीब आ गये थे क्योंकि भारमल्ल श्वेताम्बर और राजमल्ल दिगम्बर थे। डा० प्रेमसुमन जैन ने भी कवि राजमल को ही छंदो विद्या का लेखक बताया है।[2] अतः यह निश्चित होता है कि पांडे राजमल्ल और कवि राजमल संभवतः एक ही व्यक्ति थे और वे संस्कृत आदि कई भाषाओं के ज्ञाता तथा गद्य और पद्य की विधाओं के उत्तम लेखक थे। आपकी रुचि विशेषरूप से अध्यात्म में थी और उसका प्रचार वे स्वयम् उपदेश द्वारा तथा अपनी रचनाओं द्वारा करते रहे।

प्रो० जगदीशचंद्र इनके विषय में लिखते हैं—'कवि राजमल्ल की रचनाओं के ऊपर से मालूम होता है कि आप जैनागम के बड़े भारी वेत्ता एक अनुभवी विद्वान् थे। आपने जैनवाङ्मय में पारंगत होने के लिए कुंदकुंद, समंतभद्र, नेमिचन्द्र, अमृतचंद्र आदि विद्वानों के ग्रन्थों का विशाल तथा सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन और आलोडन किया था।[3] कामताप्रसाद जैन इनकी संस्कृत की चार रचनाओं के साथ पाँचवीं रचना छन्द शास्त्र अथवा पिंगल' का भी उल्लेख करते हैं। इससे स्पष्ट है कि छन्दो विद्या के लिए ही वे छन्दशास्त्र या पिंगलशास्त्र नाम देते हैं और लाटी संहिता आदि के लेखक पांडे राजमल्ल ही छंदो विद्या के लेखक हैं। वे ही कवि राजमल कहे गये हैं। इस रचना के आधार पर का० प्र० जैन उन्हें इस (१७वी) शताब्दी का श्रेष्ठ कवि मानते हैं। इसकी प्रति श्री दि० जै० सरस्वती भवन पंचायती मंदिर.

---

१. पं० कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास परिशिष्ट।

२. प्रेम सुमन जैन 'राजस्थान का प्राकृत साहित्य (लेख)' राजस्थान का जैन साहित्य पृ० ३७

३. कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० ७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मसजिद खजूर, देहली में सुरक्षित है। इसके कुछ छंद उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

गयंद राजि गज्जियं, समाजि-बाजि सज्जियं
दिस णिसांन वज्जियं, चमू-समूह धाइयं।
कमाण-बाण धारियं, कृपाण पाणि नारियं।
द्रुवण हुं हंकारेयं, रजो गगण छाइयं।

× × ×

दंति निकट वाजि विकट, जोहधिकट कुप्पियं।
सिंधु सरणि धूलि तरणि लुप्पियं।
खग्ग चमक भूम्मि दमक सद्द गमक वज्जियं।
'मल्ल' भणाय लच्छितनय देवतनय सज्जियं।[1]

ये नमूने डिंगल भाषा के निकट वीर रस के हैं। सरल हिन्दी का एक नमूना देखिये—

जिनके गृहहेम महावन है तिनको बसुधा हय हेम दिए,
जिनको तनजेब तरावन है तिनके घरते दरबार लिए।
सुरनंदन भारहमल्ल बली, कलि विक्रम ज्यों सकबंधविए;
जस काज गरीब निवाज सबे सिरिमाल
निवाजि निहाल किए।

इन छन्दों में भारमल्ल के वैभव, दान और वीरता आदि की प्रशंसा की गई है।

पं० नाथूराम प्रेमी ने ब्रह्मरायमल्ल को ही पांडे रायमल्ल समझा था किन्तु ये बनारसीदास से पूर्व हुए थे तभी इनके लिए बनारसीदास ने लिखा होगा। पांडे रायमल्लजी समयसार नाटक के मर्मज्ञ थे। उन्होंने समयसार की बालबोधिनी भाषा टीका बनाई जिसके कारण समयसार का बोध घर-घर फैल गया।[2] समयसार जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थ का सामान्य जनता में प्रचार कर जैन पण्डितों ने सन्तों और सूफी कवियों के कार्य को आगे बढ़ाया था, तथा विभिन्न वर्गों के बीच भाईचारा और मेलमिलाप का वातावरण बनाया था।

१. कामताप्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० ८९
२. वही, पृ० ९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजरत्नगणि –आप तपागच्छीय लक्ष्मीसागर सूरि>चंद्ररत्न> उभयभूषण>उभयलावण्य>हर्षकनक>हर्षलावण्य>विवेकरत्न> श्रीरत्न>जयरत्न के शिष्य थे। आपकी दो रचनायें—'नर्मदासुन्दरीरास' और विजयसेठ विजया सेठानी रास प्राप्त हैं। दूसरी रचना का अपरनाम 'कृष्णपक्षीय शुक्लपक्षीय रास' भी है। यह ४० कड़ी की रचना सं० १६९६ में ईडर में पूर्ण हुई। इसमें चंदन मलयागिरि से सम्बन्धित कथा भी है। इसका प्रथम छन्द इस प्रकार है।

श्री विमलाचल मंडणो आदिनाथ जिनचंद,
नामइनवनिधिसंपजइ, पूज्यई परमानन्द।[1]

इसके पश्चात् शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की वंदना है। इसमें नाना प्रकार की देशी और ढालों का प्रयोग किया गया है। ढाल १ 'इणि अवसरि नगरी कावेरी' इस देशी की तर्ज पर कवि सरस्वती की वंदना करता है—

श्री जिनवदन नलिन स्थितकारी,
श्रुतदेवी गुण गाऊं संवारी, सिद्धिबुद्धि लहुंसारी
कलहंस ऊ।रिआसनधारी,
जयगति त्रिभुवन माँहि संचारी, पहियो वेष विस्तारी,
पयसोवन घूंघर धमकारी, उरि नवसर वरमोतिनहारी,
करि चूडी खलकारी।
जड़ित मनोहर भूषण भारी,
अमृत भीनी लोचन तारी, सारद नाम उचारी।

रचनाकाल—रस निधि रे दरशन शशी संवच्छरइ रे
(१६९६) ईडरनगरमझारि;
श्री पोसीना पार्श्वनाथ सुपसाउलइ रे,
कहि राजयरतन उवझाय भावइ रे।

यह रचना शील के महत्व पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से लिखी गई है। इसमें विजयसेठ विजया सेठानी की कथा के अन्तर्गत चंदन-मलयागिरि की उपकथा भी सम्बद्ध है। इसकी भाषा परिष्कृत और छंद प्रवाहपूर्ण है। कथाबंध के साथ-साथ यत्र-तत्र सरस काव्यात्मक

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५७४, और भाग ३ पृ० २०६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थल भी उपलब्ध होते हैं। 'नर्मदासुन्दरीरास' की रचना सं० १६९५ में हुई। इसमें नर्मदा के सतीत्व एवं शील पर प्रकाश डाला गया है। विजयाशेठ रास की अन्तिम पंक्तियों से इनकी भाषा शैली का अनुभव हो जायेगा—

> कृष्णपक्ष शुक्लपक्ष ना गुण गाया मनोहार,
> जेहवा गुरुमुखि सांभल्या, तेहवो रच्यो अधिकार।[1]

राजसागर उपाध्याय—पीपलगच्छ के धर्मसागर सूरि की परंपरा में आप विमलप्रभ सूरि के प्रशिष्य और सौभाग्यसागर सूरि के शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का विवरण उपलब्ध हो सका है—

'प्रसन्नचंद्रराजर्षिरास' और 'लवकुशरास' जिनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रसन्नचंद्र राजर्षिरास' (सं० १६४७ पौष कृष्ण ७, थिरपुर)—
रचनाकाल—

> अेह संबंध रचीउ मइं रुयडउ, सास्त्र तणइ अनुसारि,
> आप मति करि अधिकउ कहिउ, ते खमयो नरनारि।
> सोल सठताल अे पोस मासिइ भलइ, बहुल सातमि गुरुवार,
> थिरपुर नयरि निरुपम रुयडइ चंद्र शाखा गुणधार।

गुरुपरम्परा—पीपलगच्छे गिरुया गुणसागर, श्री धरमसागर सूरि;
> तसुपटि श्रीविमलप्रभ सूरिवर, दुरित पणासे दूरि।
> लहीयप्रसाद ते गुरु केरउ, प्रसन्नचंद्र ऋषिराय,
> गाइयु मिइं कविता जन इम कहे रे,
> सीधला वंछितकाज।[2]

इसके प्रारम्भ में ऋषभदेव से लेकर गौतम गणधर तक की विस्तृत वंदना है—प्रथम दो पंक्तियां देखें—

> पढम तित्थेसुणवर, प्रणमु रिसह जिणंद,
> चरणकमलसेवइ सदा, मुणिसुर असुरनरिंद।

दूसरी रचना—'लवकुशरास' को रामसीतारास या शीलप्रबन्ध भी कहते हैं। ५०५ कड़ी की यह कृति सं० १६७२ ज्येष्ठ शुक्ल ३,

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५७४ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ३०६ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, भाग ३ पृ० १६८-६९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुधवार, को सम्पूर्ण हुई। भाषा और काव्यत्व के उदाहरणार्थ इसकी प्रारम्भिक पक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

आदि अजित संभव जिन, अनुपम श्री अभिनन्दन,
वंदन सुमति पद्मप्रभ नितु करुं अे।
श्री सुपार्श्व जिन सप्रेम, चंद्रप्रभ श्री अष्टम,
नवमा सुविधिनाथ वंदन करु अे।[1]

रचनाकाल—

संवत सोल बरस बहुत्तरी जेठ सुदी बुधवार,
तिथि त्रीजनिदिनिरास पूरण अेहवु मंगलकार।
नगर थिरपुर रुयडु, जिहांकरइकमलावास;
जिहां वसइ बड़व्यवहारिआ, मतिधर्म उपरिजास।

इसमें भी उपरोक्त गुरुपरंपरा दी गई है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

बीनवइ वाचक राजसागर रास अेह रंगि मुदा,
नरनारि भावि संभलइ, तसु संपजइ घरि संपदा।[2]

राजसागर—तपागच्छीय विजयदान सूरि की परम्परा में हर्ष-सागर के शिष्य थे। आपने सं० १६४३ के आसपास २८ कड़ी की एक साम्प्रदायिक रचना 'लुंकामतनी स्वाध्याय' नाम से लिखी। इसके प्रारम्भ में लुंकामत की स्थापना और लोकाशाह के सहयोगी लखमसी का उल्लेख है—

शंखेश्वर जिन करूँ प्रणाम, नितु समरुं सहगुरुनुं नाम;
बोलिसि बोल सिद्धांतइ घणा, भविक जीवनइहितकारणा।

× × ×

संवत पनर अठोत्तरइ जोइ, नामइं लुंको लखतो सोइ,
मुहि मांग्यो गरथ नापिउ कुणइ,
जिनशासन थी फयौततखिणइ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४८५-८६ और भाग ३ पृ० ९६२-६४ (प्रथम संस्करण)
२. वही, ३ पृ० १७० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लुंकट शेठ खरुं मुझ नाम, विरुद बहीनइ ऊठिउ ताम,
जाइ मिल्यो पारखि लखमसी, तेहनी बुद्धि···।
तेण बिहुं मिली विमास्युं कस्युं,
प्रकटिउं नाम लुंकामत इस्युं।

अन्त में गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई गई है--

श्री विजयदानसूरिप्रवरसूरिंद, श्री हर्षसागर उवझाय मुणिंद
राजसागर कहइ सुमति मनि धरउ,
भवसायर जिमलीलां तरउ।[1]

राजसमुद्र--इनका विवरण जिनराज सूरि शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा चुका है। आपकी अधिकतर रचनायें जिनराजसूरि के नाम से ही लिखी गई हैं। राजसमुद्र आपका दीक्षा नाम था और आचार्य नाम जिनराजसूरि था। इन्हें सं० १६७४ में आचार्य पद प्राप्त हुआ था। आपने राजसमुद्र के नाम से १४ गुणस्थान बंध विज्ञप्ति सं० १६६५ में लिखी थी लेकिन 'शालिभद्रमुनिचतुष्पदिका' सं० १६७८ में जिनराज नाम से लिखा है। बीस विहरमानजिनगीत (सं० १६८५) चतुर्विंशति जिनगीत सं० १६९४ पार्श्वनाथगुणवेलि सं० १६८९, गजसुकुमालरास सं० १६९९ और अन्य रचनायें जिनराजसूरि के नाम से ही लिखी गई हैं। जिनका विवरण-उद्धरण जिनराजसूरि शीर्षक से दिया जा चुका है। राजसमुद्र नाम से आपका एक गीत ऐतिहासिक जैनकाव्यसंग्रह में 'जिनसिंहसूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत दसवें क्रम पर संग्रहीत है। गीत का शीर्षक है 'गुरुवाणी महिमा गीत।' इस गीत में जिनसिंहसूरि और शाहसलीम (जहाँगीर) के सम्बन्ध की ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सूचना दी गई है। तत्सम्बन्धी दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

वचन चातुरी गुरु प्रति बूझवी साहि सलेमनरिंदो जी,
अभयदान नउ पउहो वजावियउ श्री जिनसिंहसूरिंदो जी।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २१२-१३ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७६८-६९ (प्रथम संस्करण)

२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह। २७ वां गीत श्री जिनसिंह सूरि गीतानि' का १० वां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह गीत आपने अपने गुरु खरतरगच्छीय प्रसिद्ध आचार्य जिनसिंह सूरि के सम्बन्ध में लिखा है।

राजसिंह—आप खरतरगच्छीय वाचक नयरंग के प्रशिष्य एवं विमल विनय के शिष्य थे। श्री अ० च० नाहटा ने इन्हें नयरंग का ही शिष्य कहा है।[1] यथा 'इनके शिष्य (नयरंग के) राजसिंह रचित विद्याविलासरास सं० १६७९ चंपावती और आरामशोभा चौपइ सं० १६८७ वाहड़मेर एवं कई गीत और स्तवन प्राप्त हैं।' आप वस्तुतः नयरंग के शिष्य विमल विनय के शिष्य थे क्योंकि विद्याविलासरास अथवा विनयचट रास (सं० १६७९ वैशाख, चंपावती) में कवि ने अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार बताई है--

वाचनाचारिज जगिजयो रे, श्री नयरंग जतीस,
वाचकवर गुण आगलो अे, श्री विमलविनय तसु सीस।
ताससीसरंगे कही अे, राजसिंह आणंद;
विद्याविलासनृप गाइयो अे दान अधिकसुखकंद।

इससे स्पष्ट है कि आप नयरंग के प्रशिष्य और विमलविनय के शिष्य थे और यह रचना दान के माहात्म्य से सम्बन्धित है। रचनाकाल इन पंक्तियों में दिया गया है--

संवत सोल गुण्यासीयइ, मास वैशाख सुहाइ,
नयरि चंपावती जाणीए रे, संतीसर सुपसाय।[2]

दानपुण्य के बारे में कवि लिखता है--

दानपुण्य फलगाइयइ, दाने सिवसुख जोइ,
दाने माने महिमती दाने देव वसि होइ।
विद्याविलास नृप पामीया, दाने सुख सनमान,
चरित कहुं हिव तेहनो, सुणिज्यो भविक सुजान।

आदि-श्री जिनवरमुखवासिनी, प्रणमु सरसति माय,
कवियण वयण समुच्चरइ ते सारद सुपसाय।[3]

---

१. अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ७४
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २२७-२२८ (द्वितीय संस्करण)
३. वही, १ पृ० ४४६-४७ और भाग ३ पृ० १०३४-३५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

आरामशोभा चौपइ (२७ ढाल सं० १६८७ ज्येष्ठ शुक्ल ९ बाहड़मेर) में भी कवि ने अपने को नयरंग के शिष्य विमलविनय का शिष्य बताया है। रचनाकाल और स्थान इस प्रकार कहा है—

संवतसोल सत्यासीइहो, जेठमास सुखवास
धवली नुंमी दीनइ भलइ हो कविउ पूजाफल वास।[1]
बाहड़मेर नित गहगहइ श्री सुमतिनाथ जिणराइ
तस प्रसादि मइं रच्यु श्री संघनइ सुषदाइ।

प्रारम्भिक मंगलाचरण देखिये--

सकल कला गुण आगला, आदीस्वर, अरिहंत,
नाभिरायकुलसेहरु, प्रणमूँ श्रीभगवंत।

इसकी २७वीं ढाल की धुन है--'वंसी वाजइ वेणु', इसी प्रकार अन्य ढालों द्वारा कविगण रास की मूलप्रवृत्ति गेयता की रक्षा का यत्न करते रहे, किन्तु रास आकार में विस्तृत और चरित्र प्रधान हो गये थे। इसलिए वे क्रमशः अभिनेय के स्थान पर पाठ्य होते जा रहे थे।

राजसुन्दर –आप खरतरगच्छीय श्री जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६६९ के वैशाख सोमवार को देवकुल पाटन में 'खरतरगच्छ की पट्टावली' लिखी। यह श्री मो० द० देसाई कृत जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ६९५ पर छपी है। श्री अगरचन्द नाहटा ने भी यह सूचना दी है।[2] यह रचना श्राविका थोभण दे के लिए लिखी गई है। इसमें कुल १९ छन्द हैं। इसमें राजा दुर्लभराय द्वारा जिनेश्वरसूरि को सं० १०८० में 'खरतर' विरुद प्रदान करने की घटना का उल्लेख है। जिनेश्वरसूरि के चौथे पाट पर जिनचन्द्रसूरि, पाँचवे पर नवांगी अभयदेवसूरि के पश्चात् जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि और जिनचंद्रसूरि II, जिनपतिसूरि, जिनप्रबोध, जिनेश्वर, जिनचंद III, जिनकुशल, जिनपद्म, जिनलब्धि, जिनचंद IV, जिनोदय, जिनराज, जिनवर्धन, जिनचंद्र V अर्थात् २०वें पट्टधर, जिनसागर, जिनसुन्दर, जिनहर्ष, जिनचंद VI, जिनशील, जिनकीर्ति, जिनचंद। इस प्रकार जिनचंद VII तक ३९ सूरियों की पट्टावली गिनाई गई है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २२७-२८ (द्वितीय संस्करण)

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका प्रथम छन्द इस प्रकार है—

समरुं सरसति गौतम पाय, प्रणमुं सहि गुरु खरतरराय,
जासु नामइं होय संपदा, संभरता नावइ आपदा।
पहिला प्रणमु उद्योतनसूरि बीजा वर्द्धमान पुन्यपूरि,
करि उपवास आराहि देवि, सूरिमंत्र आप्यो तसु हेवि।

अन्तिम दो छंद निम्नाङ्कित हैं—

अे खरतर गुरु पट्टावली, कीधी चउपइ मननिरमली,
ओगणत्रीस अे गुरुमां नाम, लेतां मनवंछित थाअे काम।
प्रह उठी नरनारी जेह, भणइ, गुणइ ऋद्धि पामइं तेह,
राजसुन्दर मुणिवर इम भणइ, संघ सहूनइ आणंदकरइ।[1]

राजसोम—खरतरगच्छीय हर्षनंदन के प्रशिष्य और जयकीर्ति के शिष्य थे। इनके गुरु और प्रगुरु दोनों ही प्रसिद्ध विद्वान् एवं लेखक थे। वादी हर्षनंदन महोपाध्याय समयसुन्दर के प्रमुख शिष्य एवं १७वीं शताब्दी के विशिष्ट विद्वान् थे। जयकीर्ति गद्य और पद्य रचना में समान रूप से निपुण थे।

राजसोम ने समयसुन्दर की प्रशस्ति में गीत लिखा है जो ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में 'महोपाध्याय समयसुन्दर गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत तीसरा गीत है। इसमें कुल १२ कड़ियाँ हैं। इसका आदि देखिये—

नवखंड में जसुनाम पंडित गिरुआ हो, तर्क व्याकर्ण भण्या।
अर्थ किया अभिराम पद एकण राहो, आठ लाख आकरा।

सम्राट अकबर ने समयसुन्दर की प्रशंसा की थी, कवि लिखता है—

साधु बड़ो ए महन्त अकबरशाहे हो जेह बखाणीयो,
समयसुन्दर भाग्यवंत पातिशाह,
यूँ ढोहो थायलि इम कह्यो रे।

इस गीत में समयसुन्दर के साहित्यसर्जक रूप की भी स्तुति की गई है, यथा—

परं उपगार निमित्त कीधी सगलो हो, धन-धन इम कहे।
गीत छंद बहु वृत्ति कलियुग मांहे हो, जिणे शाको कियो।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ६९५-९७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं---

प्रगट जासु परिवार भाग्यवंत मोरो हो, वाचक जाणिये।
दिन दिन जयकार जग चिरंजीवो हो, राजसोम इम कहे।[1]

इस गीत की भाषा सरल, रचना ऐतिहासिक सूचनाओं से पूर्ण किन्तु काव्यत्व की दृष्टि से सामान्य कोटि की है। इनकी किसी अन्य रचना का पता नहीं चल सका है। श्री अगरचन्द नाहटा ने इनकी गणना १७वीं शती के कवियों में की है किन्तु किसी रचना का नामोल्लेख नहीं किया है।[2]

राजहंस (I) आप खरतरगच्छ के विद्वान् सन्त हर्षतिलक के शिष्य थे। आपने सं० १६६२ से पूर्व 'दशवैकालिकसूत्र बालावबोध' और 'प्रवचनसार' का निर्माण किया। श्री मो० द० देसाई ने इसकी दस प्रतियों की सूचना जैन गुर्जर कविओ में दी है किन्तु इसके आदि और अन्त से जो उद्धरण दिया है वह संस्कृत में है और उससे इसकी मरु-गुर्जर गद्य शैली का पता नहीं चलता। इसके आदि और अंत की पंक्तियाँ आगे प्रस्तुत हैं --

आदि--नत्वा श्री वर्धमानाय प्रशमामृतशालीने,
दशवैकालिकं सूत्रं श्री शय्यंभव सूरिभिः।
साध्वाचार विचाराधं यत् कृतं पुत्रकामया,
बालावबोध अधुनाकामं तस्य तनोमिअहम्।

अंत --इति श्री खरतरगच्छाधीश जिनराजसूरि,
विजयिनि वाणारीस हर्षतिलक गणि,
शिष्य श्री जिनहंस महोपाध्याय विरचित,
चउहा गोत्रमंडन श्री मदनराज
समभ्यर्थनया श्री दशवैकालिक
बालावबोधे समिक्षु तामाध्ययनम्।[3]

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा---ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह--'महोपाध्याय समयसुन्दर गीतम्'

२. श्री अगर चन्द नाहटा---परंपरा पृ० ७९

३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३७२ और पृष्ठ २ (द्वितीय संस्करण) तथा भाग १ पृ० ६०३, भाग ३ पृ० १६०१ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री अगरचन्द नाहटा ने 'प्रवचनसार' की भी सूचना दी है किन्तु अन्य विवरण-उद्धरण नहीं दिया है। उन्होंने इन्हें १६वीं शताब्दी के लेखकों में रखा है।[1] किन्तु रचनाकाल या अन्य कोई प्रमाण ऐसा नहीं दिया है जिससे इन्हें विक्रम सं० १७वीं शताब्दी का लेखक न माना जाय। श्री देसाई ने जिन हस्त प्रतियों का ब्यौरा दिया है उनमें से कई प्रतियों में इसका रचनाकाल सं० १६६२ दिया गया है अतः यह रचना १७वीं शताब्दी के प्रथम चरण की भी हो सकती है। श्री देसाई ने तो इसे १७वीं शताब्दी की ही रचना माना है। अतः यहाँ भी १७वीं शताब्दी के लेखकों में इन्हें स्थान दिया गया है।

राजहंस II—आप खरतरगच्छीय आचार्य जिनचन्दसूरि की परम्परा में उपा० समयराज के प्र-प्रशिष्य अभयसुन्दर के प्रशिष्य एवं कमललाभ के शिष्य थे। आपने विजयशेठ चौपइ सं० १६८२ मुलतान में लिखी।[2] इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

प्रणमी पास जिणंद पहु, विधि स्युं वर दातार,
मूलताणि महिमा प्रगट, जगजीवन जयकार।
श्री वर्द्धमानजिनवंदीयइ, सासननायकसार;
गौतम सुधर्म प्रमुख गुरु, सुयदेवी श्रुतधार।[3]

गुरुपरंपरा और रचनाकाल—

देस विदेसइ विचरता रे, आया श्री मुलताण,
कमललाभ पाठकज्यां रे, सुललित करइ बषांण।
लबधिकीरति गणि तेहना रे, सीस सिरोमणि जाणि,
राजहंसगणि इम भणइ रे, सील संबंध सुवाणि।
संवत सोलह ब्यासीयइ रे, माह सुदि पंचमि जोगि,
सुमतिनाथसुपसाउलइरे सफल फल्यउ उपयोगि।[4]

'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में 'जिनरंगसूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत प्रथम गीत के कर्त्ता राजहंस गणि हैं। जिनरंगसूरि खरतर-

---

१. श्री अगर चन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २२९
२. श्री अगर चन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८२
३ जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २४७ (द्वितीय संस्करण)
४. वही, भाग ३ पृ० १०२४-२६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गच्छ की रङ्गविजय शाखा के प्रवर्तक थे। जिनरङ्गसूरि का दीक्षानाम रङ्गविजय था। आपने सं० १६७८ फाल्गुनवदी सप्तमी को जैसलमेर में दीक्षा ली थी। जिनराजसूरि ने इन्हें उपाध्याय या पाठक की पदवी दी थी। इस गीत से ये सूचनायें प्राप्त होती हैं, यथा—

मनमोहन महिमानिलउ, श्री रङ्गविजय उवझायन रे,
सेवत सुरतरु सम बड़इ सबहिकइ मनभायन रे।
संवत सोल अठहत्तरइ जेसलमेरु मझारिन हो,
फागुणवदि सत्तमि दिनइ, संयमल्यउ शुभवारन हो।

आप सिंधुड़ वंशीय सांकर साह और उनकी पत्नी सिंदूरदे के सुपुत्र थे। अनेक राजा-सामन्त आपका सम्मान करते थे। इस गीत की अंतिम पंक्तियां निम्नवत् हैं—

बड़शाखा जिम विस्तरउ प्रतपउ जां रवि चंदन रे,
राजहंस गणि बीनवइ, देज्यो परम आणंदन रे।

इसमें कुल सात कड़ियाँ हैं।

रामदास ऋषि—गुजराती लोंकागच्छीय, रूपजी > जीवजी > वरसिंह > लघुवरसिंह > जसवंत > रूपसिंह > कुंरपाल > हापा > उत्तम के आप शिष्य थे। आपने 'पुण्यपालनो रास' नामक रचना चार खण्डों में ८२३ कड़ी की सं० १६९३ ज्येष्ठ कृष्ण १३ गुरुवार को सारङ्गपुर (मालवा) में पूर्ण की। इसका आदि देखिये—

श्री शांतिसर सोलमा, समरुं सरसति माय,
मूरख ने पंडित करे, प्रणमुं श्री गुरुपाय।
दान शील तप भावना भवोदधि तारण पोत;
अनन्त सुखने अनुभवे, शिवपुर होय उद्योत।

यह दान-पुण्य पर आधारित चरित्र है, कवि ने लिखा है—

दाने सम्पति संपजे, कीरति करे कल्लोल,
अलिय विघन दूरे पुले, पगि-पगि छाकमछोल।
जिनपति पदवी पामीया, चक्रवर्ति इन्द्र विमान,
सुखीया जे जग जाणीइं, सघले दान प्रधान।[1]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २९८-२९९ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० १०४१-४२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस के पश्चात् ऋषि जी ने गुजराती गच्छ की गुर्वावली दी है। उन गुरुओं की प्रशंसा में कवि लिखता है—

जेहनो जग जस निर्मलो, दिन-दिन दीपे तेज,
तसु सीस आदेस गुरु ने, ऋषिरामदास रे पभणेसुहेज।
पंडित मांहि सरोमणी, विचरेजिम गजेन्द्र,
श्री उत्तमभाई भला, थिवर गुणिधण रे जसवंत मुणिंद।

रचनाकाल—

संवत सोल ब्याणुवा वर्षे, मालव देस मझारि,
सारंगपुर सुन्दरनगरे, जेठ वदि तेरस रे बृहस्पतिवार।
पुन्यपाल चरित सोहामणो, सांभले जे नर सुजांण,
ऋद्धि समृद्धि सुख सम्पदा,
ते पगि पगि पामे रे कोड्डि कल्याण।[1]

रायचंद—पद्मसागर के शिष्य गुणसागर आपके गुरु थे। आपने सं० १६८२ कार्तिक शुक्ल ५ गुरुवार को सोपरगढ़ में 'विजयसेठ विजयसती रास' की रचना की। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत सोल बयासीयइ काती सुदि पंचमि गुरुवार तओ,
श्री सोपरगढ़मइं भलउ रास रच्यो मन हर्ष अपार तओ।

गुरुपरंपरा रचना में निम्न प्रकार से दी गई है—

श्री पद्मसागर पाटि प्रतपइ श्री गुणसागर प्रभु सदा,
रामचंद मुनि तसु पाय प्रणमी रच्यो प्रकृत धरि मुदा।[2]

इसमें विजया सेठानी के सतीत्व की प्रशंसा करके शील का माहात्म्य समझाया गया है। १८वीं शताब्दी (विक्रमीय) में रायचंद नाम के एक अन्य प्रसिद्ध कवि हो गये हैं जिनका विवरण श्री मो० द० देसाई ने जैन गुर्जर कविओ के भाग २ पृ० ५८४ पर दिया है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २९९ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० २४ (द्वितीय संस्करण), तथा भाग १ पृ० ५१४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मरायमल्ल—आप दिगम्बर सम्प्रदाय, मूलसंघ एवं सरस्वती गच्छ के भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रशिष्य एवं अनंतकीर्ति के शिष्य थे। इनका केन्द्र राजस्थान का ढूढाड़ प्रदेश था। इनका जन्म सं० १५८० के आसपास हुआ। आप प्राचीन हस्तप्रतों को पढ़ने और लिपिबद्ध करने का कार्य करते थे। आपने सं० १६१३ में प्राचीन ग्रंथों की हस्तलिपि करने का कार्य दिल्ली में प्रारंभ किया। दिल्ली से चलकर बाद में झूझनू गये और वहाँ स्वतन्त्र साहित्य लेखन कार्य प्रारम्भ किया। वहीं सं० १६१५ में 'नेमीश्वर रास' लिखा। आपने सं० १६१५ से सं० १६३६ के बीच हिन्दी में पन्द्रह काव्य ग्रन्थों की रचना की। ये सभी रचनायें प्रायः राससंज्ञक हैं यथा नेमीश्वर रास, हनुमंत रास इत्यादि। गुजरात में इसी के आसपास एक अन्य रायमल्ल हो गये हैं जो संस्कृत के विद्वान् थे और जिन्होंने संस्कृत भाषा में 'भक्तामरस्तोत्र वृत्ति' की रचना की है। वे हुंबडवंशीय मह्य और चम्पा के पुत्र थे। प्रस्तुत रायमल्ल की जीवनी के सम्बन्ध में विशेष विवरण नहीं ज्ञात है। अतः उनके कृतित्व का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। डा० प्रेमसागर जैन और डा० हरीश शुक्ल इन्हीं के पिता का नाम हुंबडवंशीय मह्य या महीय और माता का नाम चंपा दे बताते हैं किन्तु डा० कासलीवाल और नाहटा इसे नहीं मानते और उनके पुत्र राय-मल्ल को इनसे भिन्न बताते हैं।

रचनायें—नेमीश्वर रास सं० १६१५, हनुमन्तकथा सं० १६१६, ज्येष्ठ जिनवर कथा सं० १६२५, प्रद्युम्नरास सं० १६२८, सुदर्शनरास सं० १६२९, श्रीपालरास सं० १६३०, भविष्यदत्त चौपइ सं० १६३३, परमहंस चौपइ सं० १६२६, जम्बूस्वामी चौपइ, निर्दोषसप्तमीकथा, चिन्तामणि जयमाल, पंचगुरु की जयमाल, जिनलाडू गीत, नेमिनिर्वाण चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न।[1]

इनकी प्रमुख रचनाओं का विवरण-उद्धरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

नेमीश्वर रास—इसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवनचरित्र वर्णित है। ये श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे। जामवंती नेमि से नाराज

---

१. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल—महाकवि ब्रह्मरायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति पृ० ५-१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई, बात बढ़ गई और नौबत कृष्ण-नेमि के मल्लयुद्ध की आ गई। कृष्ण ने नेमि के बल का अनुमान कर उनके पिता समुद्रविजय और माता शिवादेवी को समझाया कि वे लोग किशोर नेमिकुमार का विवाह उग्रसेन की कन्या राजीमती से कर लें। आगे की कथा परंपरित है। राजुल के शृंगार का वर्णन देखिये—

अहो मंदिरि राजल करौजी सिंगार,
सोहैजी गली रत्नाड्यौ हार।
नासिका मोती जी अति वण्यो, अहो,
पाईं नेवर मह्रा सिरहा मैंह मंद।
काना ही कुंडल जति भला, अहो,
मेरुं दुहुं दिसो जिम सूर अर चंद।[1]

पशुओं की करुण पुकार सुनकर नेमि कंकण तोड़कर तपस्या के लिए गिरिनार पर्वत पर चले गये, उस पर कवि कहता है--

स्वामी जीव पसू सहु दीना जी छोड़ि,
चाल्यौ जी फेरि तप नै रथ मोड़ि।
× × ×
जप तप संजम पाठ सहु पूजाविधि त्यौहार,
जीव दया विणा सहु अफल, ज्यौं दुरजन उपगार।

राजुल नेमि के गिरनार जाने की सूचना पाकर मूर्छित हो गई—

अहोजी वचन सुणता मुरछाई,
काहिजी वेलि जैसी कुमलाई।

इस रचना में रचनास्थान-झूंझनू नगर तथा वहाँ के उद्यान, रहनेवाली ३६ जातियाँ, राजपरिवार और पार्श्वनाथ के जैनमंदिर आदि का यथास्थान वर्णन किया गया है। कवि ने अपने गच्छ का परिचय दिया है—

श्री मूलसंघ मुनि सरसुति गच्छ,
छोड़ि हो चारि कषाय निभंछ।
अनंतकीर्ति गुरु विदितौ तासु
तणे सिषि कीयौ जी वषाण।

---

१. डा० कस्तूरचंद कासलीवाल--महाकवि ब्रह्मरायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति पृ० १९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मरायमल्ल जगि जाणियै,
स्वामी जी पार्श्वनाथ को जी थानि ।[1]

रचनाकाल--अहो सोलाहसै पन्दरह रच्यौ रास,
सावलि तेरस सावण मास ।

झूंझनू--रचनास्थान का वर्णन

बागवाड़ी घणी नीकंजी ठाणि,
वसै हो महाजन नग्र झाझौणि ।
पौणि छत्तीस लीला करैं
गाम को साहिब जाति चौहाण ।

इसमें कुल १४५ कड़वक छंद है ।[2]

हनुमंतकथा (रास या चौपइ)--यह कृति कवि ने रविषेण की संस्कृत रचना पद्मपुराण की कथा के आधार पर तैयार की है। पवन आदितपुर के राजा प्रह्लाद के पुत्र थे। उनकी शादी वसंतनगर के राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना से हुई थी। शादी के तत्काल बाद वे रावण की सहायता के लिए घर से चल पड़े किन्तु रास्ते में एक सरोवर के पास विरह व्याकुल चकवी को देख उन्हें अंजना की चिन्ता हुई और वे घर लौट आये, रात्रि विहार किया, अंजना गर्भवती हो गई और पवन रात्रि में ही सैन्यछावनी में चले गये। बाद में गर्भवती अंजना पर सन्देह करके उसे देशनिकाला दे दिया गया; कवि कहता है--

जा दिन आवै आपदा ता दिन प्रीत न कोई,
माता पिता कुटुंब सहु ते फिरि वैरी होई ।

इसका मंगलाचरण देखिये—

स्वामी सुव्रतनाथ जिणंद, सुमिरत होइ सिद्धि आणंद ।
नमौ सीस जोड़कर दोय, तासै पाप भलीमति होय ।[3]

घर से निकलकर अंजना जंगल में मुनि से णमोकार मंत्र पाकर उसी का जाप करती रही, वहीं पुत्र पैदा हुआ, पवन ने युद्ध से वापस आने पर अंजना को ढूढ़ा और उसे पाकर सुख पूर्वक रहने लगे।

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—महाकवि ब्रह्मरायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति, पृ० २१

२. वही, प्रशस्ति संग्रह, पृ० २३२

३. वही, पृ० २७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके पश्चात् हनुमान की कथा प्रारम्भ हो गई। हनुमान को राम के दूत से सीताहरण का समाचार मिला, वे राम से मिले और फिर परंपरित कथा है। राम-रावण युद्ध के पश्चात् हनुमान कुण्डलपुर पर राज्य करने लगे। अन्त में वैराग्य हुआ, दीक्षा ली और निर्वाण प्राप्त किया। संवतोल्लेख वाली यह दूसरी रचना सं० १६१६ वैशाख कृष्ण ९ को समाप्त हुई। इसमें ७५७ पद्य है जो वस्तुबंध, दोहा, चौपाई आदि छंदों में निबद्ध है। इसकी भाषा राजस्थानी प्रभावित हिन्दी ही है जिसे सुविधा पूर्वक मरुगुर्जर कहा जा सकता है।

ज्येष्ठजिनवर कथा—यह लघु रचना प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव के जीवन पर आधारित है। यह सं० १६२५ में सांभर में रची गई। रचना सामान्य कोटि की है। इसकी प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है। 'प्रद्युम्नरास परदवणरास' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। यह सं० १६२८ भाद्र शुक्ल २, बुधबार को हरसोर में लिखी गई। इसके प्रारम्भ में तीर्थङ्कर वंदना के बाद द्वारिका वर्णन से रास की कथा का प्रारम्भ होता है। इसमें सत्यभामा के रूपगर्व को दूर करने के लिए नारद द्वारा कृष्ण का रुक्मिणी से विवाह कराना, प्रद्युम्न की उत्पत्ति और कालसंवर की पत्नी कञ्चन-माला की प्रद्युम्न के प्रति आसक्ति, कालसंवर की पराजय, प्रद्युम्न का द्वारका लौटना तथा रुक्मिणी का हरण और कृष्ण से युद्ध होने तक का वर्णन किया गया है। कवि युद्ध का वर्णन करता हुआ कहता है—

हो असवारां मारैं असवारो, हो रथ सेथी रथ जुडै झुझारो।
हस्ती स्यौ हस्तो भिडैजी, हो घणों कह्यौ तो होइ विस्तारो।[1]

अन्त में दुर्योधन की पुत्री उदधिमाला से प्रद्युम्न का विवाहोत्सव और सुखपूर्वक जीवन-यापन के पश्चात् वैराग्य, दीक्षा और मुक्ति आदि परंपरित बातें कही गई हैं। प्रत्येक छंद के आरम्भ में 'हो' भरती का शब्द भरा गया मिलता है। दिखावण, बोल्या, चाल्यौ, आइयौ आदि राजस्थानी बोलचाल के प्रयोग या हियडै, किस्न, ब्याहु जैसे ठेठ राजस्थानी प्रयोग इसकी भाषा की विशेषतायें हैं। इसके रास छंद के ६ पद हैं, जिनमें २० से १८, १७-१७ तथा १९-१९ मात्रायें हैं। कवि ने इसे कड़वा छन्द कहा है। इसमें कुल १९५ पद्य हैं।

---

१. कस्तूरचन्द कासलीवाल—भट्टारक ब्रह्मरायमल्ल और त्रिभुवनकीर्ति पृ० ३३

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

इसका प्रथम छन्द—

हो तीर्थङ्कर वंधों जगिनाहो,
हो जिन्ह समिरण मनिहोइ उछाहो ।
हूवा अब छै होइस्य जी, हो त्याह को ज्ञान रह्यो भरि पूरे ।
गुण छियल सोभै भलाजी,
हो दोष अट्ठारह कीया दूरेज रास भणौ परदवणकोजी ।[1]

लेकिन प्रशस्तिसंग्रह में यह प्रथम छंद निम्न रूप में दिया गया है—

तिह कारण रहै घट पूरि गुण छीयालिस सोभभलाजी ।
दोष अठारह किया दूर तो रास भण्यो परघमनकोजी ।[2]

इसका अन्तिम छन्द देखिये—

हो कड़वा एक सौ अधिक पचाणू,
हो रास रहस परदमन बखाणूं ।
भावभेद जुवाजी हो, जैसी मति दीन्हौं अवकासो,
पण्डित कोई मत हंसौजी,
हो जैसी मति कीन्हों परगासो, रासभणौ परदवण को जी ।

प्रद्युम्न रास या चरित्र का डा० कस्तूरचंद कासलीवाल ने संपादन-प्रकाशन किया है। इसकी भूमिका में डा० सत्येन्द्र ने सधारूकृत प्रद्युम्नरास को सूर पूर्व ब्रज भाषा का प्रथम महाकाव्य कहा है।

सुदर्शन रास—इसमें सच्चरित्रता के लिए प्रसिद्ध सेठ सुदर्शन की कथा वर्णित है। अकबर के शासनकाल में सं० १६२९ वैशाख शुक्ल सप्तमी को धौलपुर में यह रास रचा गया। २०१ पद्यों में निर्मित यह एक कथा प्रधान रास है।

सुदर्शनसेठ से कपिला ब्राह्मणी और रानी अभया दोनों ने संभोग के लिए आग्रह किया किन्तु सेठ संयम पर अविचल डटा रहा। अन्त में देवों ने सेठ की मदद की और सभी आपदाओं से मुक्त होकर वह अपने घर जाकर आनन्द पूर्वक रहने लगा।

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—ब्रह्मरायमल्ल और त्रिभुवनकीर्ति पृ० ३३
२. वही, प्रशस्ति संग्रह पृ० २३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रास के अन्त में कवि ने अपनी गुरुपरंपरा पूर्ववत् दुहराई है और रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

> अहो सोलह सै गुणतीसै वैशाखि,
> सातैजी राति उजालै जी पाखि।
> साहि अकबर राजिया, अहो भोगवैराज अति इन्द्र समान।
> चोर लबांड राखै नहीं, अहो छह दर्शण की राखैजी मान।[1]

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

> प्रथम प्रणमों आदि जिणंद, नाभिराजा कुलि उदयाजी चंद।
> नगर अयोध्या ऊपने स्वामी, पूरब लाख चौरासी जी आई।
> मरुदेजी मात हे उरि धरिउ।[2]

रचना की पंक्तियों के बीच प्रयुक्त 'हो' 'जी', 'अहो' आदि भरती के शब्द भाषा को लचर बनाते हैं।

श्रीपाल रास (सं० १६३०, रणथंभौर) – कथासार – उज्जयिनी के राजा पहुपाल ने अपनी कन्या मैनासुन्दरी का विवाह श्रीपाल नामक एक कोढ़ी से कर दिया। दोनों की सेवा से प्रसन्न होकर मुनि ने सिद्धचक्रव्रत का माहात्म्य बताया, जिसके पालन से श्रीपाल का कोढ़ ठीक हो गया। श्रीपाल की वीरता से प्रभावित हो धवल सेठ ने उसे अपना धर्म पुत्र बना लिया। वह रत्नदीप गया और उसके छूते ही चैत्य के वज्र कपाट खुल गये। राजा ने प्रसन्न होकर रत्नमंजूषा नामक राजकुमारी का उससे विवाह किया पर सेठ धवल रत्नमंजूषा पर आसक्त हो गया। सेठ के मन्त्री ने श्रीपाल को समुद्र में फेंक दिया। सेठ ने रत्नमंजूषा के साथ बलात्कार करना चाहा किन्तु उसकी देवियों ने सहायता की। उधर श्रीपाल णमोकार मन्त्र के बल से बहता-बचता किसी द्वीप के किनारे जा पहुँचा। वहाँ के राजा धनपाल ने अपनी कन्या गुणमाला का उससे विवाह किया और खूब दहेज दिया। अन्त में वह अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुख पूर्वक रहने लगा।

कोंकण देश के राजा की आठ कन्याओं के प्रश्नों का उत्तर देकर उनसे भी विवाह किया। १२ वर्ष बीतने पर वह पुनः उज्जयिनी में

---

१ डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—महाकवि ब्रह्मरायमल्ल एवं त्रिभुवनकीर्ति पृ० ३७

२. वही, प्रशस्ति संग्रह पृ० २६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैनासुन्दरी के पास पहुंचा। उसके वियोग का वर्णन यथा स्थान उत्तम हुआ है। वीर रस के वर्णन का अवसर भी कवि को तब मिल गया है जब उज्जयिनी से वह चंपा जाते समय राजा वीरदमन को युद्ध में परास्त करता है, एक नमूना देखिये—

हो घोड़ा भूमि खणै सुरताल,
जो जाणि कि उलटिउ मेघ अकाल।
रथ हस्ती बहु साखती हो, दहुं पक्ष की सेना चली।
सुभग संजोग संभालिया हो, अणी दुहुं राजा की मिली।[1]

अन्त में उसे श्रुतसागर मुनि के उपदेश से एवं कीचड़ में फँसे हाथी को देखकर वैराग्य हुआ; दीक्षा ली और मुक्ति पाया। इस प्रकार यह रास २९७ पद्यों में समाप्त हुआ। इसकी भाषा ढूढाड़ प्रदेश की बोलचाल की भाषा से प्रभावित है।

नायक श्रीपाल और नायिका मैना का चरित्र अच्छी तरह वर्णित है। चरित्र के माध्यम से णमोकार मन्त्र का माहात्म्य भी दिखाया गया है। दोहा और रास छंद का इसमें प्रयोग किया गया है। प्रत्येक छन्द के अन्त में 'रासभणों श्रीपालको' अंतरा दिया गया है। रचनाकाल और स्थान इस प्रकार कहा है—

सोलहसै तीसो सुभ वर्ष,·· रणथभ्रर सोभैं कविलास, साथ ही अपनी गुरुपरंपरा भी दी है। प्रारम्भिक पद्य देखिये—

हो स्वामी प्रणमौ आदि जिणंद,
वन्दौ अजित दोइ अति चंग।
संभौ वेदौ जुगतिस्यों हो अभिनन्दन का प्रणउं पाइ।
सुमति नमौ स्वामी सुमति दे हो, पद्मप्रभ प्रणमौं बहुभाइ।
रास भणौं सिरिपाल को।[2]

अन्तिम छंद इस प्रकार है—

हो द्वै से अधिका छिनवै छंद, कवियण भण्यो तासु मतिमंद।
पद अक्षर की सुधि नहीं, हो जैसी मति दीनौ ओकास।
पंडित कोई मति हंसौ, वैसी मति कीनौ परगास।
रासभणौं सिरिपाल को।

---

१. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल–महाकवि ब्रह्मरायमल्ल पृ० ४८, पृ० २०१
२. वही, प्रशस्ति संग्रह पृ० २६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भविष्यदत्त चौपाई—इसकी कथा जैन समाज में बड़ी लोकप्रिय रही है। प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत और हिन्दी में इस कथा पर आधारित अनेक रचनायें लिखी गई हैं। प्रस्तुत रचना सं० १६३३ में महाराज भगवन्तदास के राज्यकाल में सांगानेर में लिखी गई थी। कथा का संक्षेप इस प्रकार है। कुरु प्रदेश के हस्तिनापुर नगर में सेठ धनवइ की पत्नी कमलश्री का पुत्र भविष्यदत्त था। कुछ समय बाद सेठ ने कमलश्री को तिरस्कृत कर उसकी छोटी बहन सरूपा से विवाह रचा लिया जिससे एक पुत्र बन्धुदत्त पैदा हुआ। बन्धुदत्त के साथ भविष्यदत्त भी रत्नद्वीप व्यापार के लिए चला पर रास्ते में बन्धुदत्त ने उसे छोड़ दिया। वह एक शिला पर बैठकर परमेष्ठि का ध्यान करने लगा। फलतः वह मदन द्वीप का राजा हो गया और उसकी शादी भविष्यानुरूपा से हो गई। कमलश्री श्रुतपंचमी का व्रत करके पुत्र की मंगल कामना कर रही थी अतः भविष्यदत्त का मंगल हुआ किन्तु बन्धुदत्त बड़ी मुसीबतों में फंस गया। रास्ते में फिर दोनों की भेंट हुई। साथ-साथ हस्तिनापुर के लिए रवाना हुए, पर बन्धुदत्त ने पुनः धोखा किया। भविष्यदत्त को छोड़ दिया और घर पहुँचकर कुमारी भविष्या और सारे धन को अपना बताया। तभी भविष्यदत्त भी आ पहुँचा। सब सच्चा वृत्तान्त जानकर राजा ने बन्धुदत्त को देश निकाला दे दिया। भविष्यदत्त की वीरता से प्रभावित होकर राजा ने अपनी कुमारी की शादी भी भविष्यदत्त से कर दिया। इसीलिए कवि कहता है—

> जैन धर्म निहचौ करौ, चालै मारग न्याय,
> तसु सेवा सुरपति करै, अंति सुर्गं जाइ।

इस प्रकार वह पुत्र परिवार से सम्पन्न होकर अनेक वर्षों तक राजसुख भोगता रहा अंत में विमलबुद्धि के उपदेश से उसे वैराग्य हुआ, संयमव्रत धारण किया और निर्वाण प्राप्त किया।

काव्य भाषा सरल ढूढाड़ी है। इसका मङ्गलाचरण इस प्रकार प्रारम्भ हुआ है—

> स्वामी जिनप्रभ जिणनाथ, नमौं चरण धरि मस्तकि हाथ।
> लंछिन वण्यो चंद्रमाता सु, काया उज्जल अधिक उजासु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिम पद्य देखिये—

> मूलसंघ शारद शुभ गच्छि, छोड़ी चार कषाय निरमधि,
> अनतकीर्तिमुनि गुणहनिधान,
> ता सुत नै सिख कीयो बखाण ।
> ब्रह्मरायमल थोड़ी बुधि, आखर पद की न लहै सुधि ।
> जैसी मति दीनै औकास, व्रत पंचमी को कीयो परकाश ।[1]

श्रुत पंचमी के माहात्म्य के दृष्टान्त स्वरूप भविष्यदत्त की कथा उल्लिखित है । यथा—

> व्रत पंचमीजे को करै, केवल ऊसमतहिनै फुरै ।
> जै याह कथा सुणै दै कान, काललहवि पावै निर्वाण ।

परमहंस चौपइ—यह इनकी अन्तिम महत्वपूर्ण रचना है । यह एक रूपक काव्य है । इसमें परमहंस आत्मा नायक है । जीव के स्वरूप वर्णन से काव्य का प्रारम्भ हुआ है । माया ने परमहंस आत्मा की पटरानी बनकर उसकी पाँचों इन्द्रियों को वश में कर लिया । आगे मन का राजा बनना, प्रवृत्ति-निवृत्ति से विवाह करना, प्रवृत्ति से पुत्र मोह और निवृत्ति से पुत्र विवेक का उत्पन्न होना वर्णित है । माया ने विवेक को बन्दी बनवा कर मोह को उत्तराधिकारी बनवाया और वह राज्य करने लगा ।

कवि उसके राज्य का हाल लिखता है—

> पुरी अज्ञान कोट चहुंपास, त्रिसना खाई सोभे तास ।
> च्यारुं गति दरवाजा वण्यां, वीसै तहां विषै मन घंणा ।
> मिथ्या दरसन मंत्री तास, सेवक आठ करम को वास ।[2]

नगर में अनैतिक व्यसनों की चौकड़ी जमने लगी । निवृत्ति और विवेक को देश निकाला हो गया । वे जिनशासित सुन्दर देश में पहुँचे जहाँ—

> तिहां भलो दीसै संजोग, पानी छाण्या पीव सहुलोग ।
> मुनिवर वहु पालैं आचार, पाप पुण्य को करै विचार ।

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २४४

२. वही, भ० ब्रह्मरायमल्ल और महाकवि त्रिभुवनकीर्ति पृ० ५९-६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ के राजा विमल बुध ने इन दोनों का सम्मान किया। विवेक का सुमति से विवाह किया। उसने मुनि-प्रवचन और जिन दर्शन से शान्ति लाभ किया, तीर्थङ्कर के आशीर्वाद से वह पुण्य नगरी का राजा बन गया। उधर मदन ने मोह राजा के आदेशानुसार विवेक पर आक्रमण किया किन्तु पराजित हुआ। अन्त में विवेक ने संयमश्री से विवाह किया और सबको सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने लगा। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपनी गुरु परंपरा लिखी है।

यह रचना सं० १६३६ ज्येष्ठ कृष्ण १३ शनिवार को तक्षकगढ़ टोडारामसिंह के पार्श्वनाथ मंदिर में लिखी गई थी। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

> परमहंस अती गुण निलो, जो वंदे बहु भाइ,
> तीह को परगाह वरणऊं, सुनहु भविक मन लाइ।[1]

अन्तिम पद्य देखिये—

> जो लग धरती सुभ आकाश, तो लग तीष्टौ टोडो वास।
> राजा परजा तिष्टौ चंग, जिनशासन को धर्म अभंग।[2]

आगे कुछ लघुकृतियों का अति संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। निर्दोष सप्तमी व्रतकथा में वाराणसी के सेठ लक्ष्मीदास और उनकी पत्नी लक्ष्मीमति के द्वारा निष्ठा पूर्वक इस व्रत का पालन करने तथा इसके फलस्वरूप सर्प का हार बन जाने आदि अद्भुत घटना क्रमों का वर्णन है। पूरी कथा ५९ पद्यों में कही गई है—

'पञ्च परम गुरु जयमाल' (२१ पद्य) इस स्तुति परक रचना में पूजा, दान, धर्म आदि का महत्व बखाना गया है। यथा—

> पांच परम गुरु वंदिस्यां सारद प्रणमी पाये जी।
> आठ द्रवि पूजा रच्यौ, सद्गुरु तणौ पसाये जी।

जिनलाडू गीत—एक रूपक गीत है जिसमें निर्वाण के लिए लाडू का रूपक बनाकर मानव को मुक्ति की प्रेरणा दी गई है। चारित्र रूपी

---

१ डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—महाकवि ब्रह्मरायमल्ल एवं त्रिभुवनकीर्ति पृ० १९८-२००

२. वही, पृ० १९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन्दर लाडू खाने से सब कुछ सम्भव होता है। यह रचना सं० १६३० के आस-पास सांभर में की गई थी।

चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न (२५ पद्य) यह प्रारम्भिक काल की ही रचना प्रतीत होती है। स्वप्नों का जैनपुराणों में बड़ा महत्व है। तीर्थङ्कर के गर्भ में आने से पूर्व माता को १६ स्वप्न आते हैं। इसमें चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्नों का वर्णन है। उसने अपने गुरु भद्रबाहु से स्वप्नों का फल पूछा तो उन्होंने कहा कि बारह फण वाला सर्प का फल है, बारह वर्ष का दुकाल और कूड़े में उगते हुए कमल का फल है कि संयम धर्म अब केवल वैश्य जाति में रहेगा और ब्राह्मण क्षत्रिय भ्रष्ट होंगे। इसी प्रकार उगते हुए चन्द्रमा में छिद्र का फल है कि जिनशासन अनेक भागों में बंट जायेगा। इत्यादि—इन फलों को सुनकर सम्राट को वैराग्य हुआ और उसने संयम व्रत धारण किया।

जंबू स्वामी चौपइ—में जम्बू स्वामी का पावन प्रेरणादायक चरित्र-चित्रित है। नेमिनिर्वाण में नेमिनाथ का स्तवन है। इसी प्रकार 'चिन्तामणि जयमाल' भी एक स्तवन प्रधान कृति है। ये सभी लघु-रचनायें सामान्य स्तर की हैं। काव्य की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं किन्त इनकी आठ बड़ी रास संज्ञक रचनायें इनके काव्य प्रतिभा की परिचायक हैं तथा काफी लोकप्रिय रही हैं। इनकी अनेक हस्तप्रतियाँ नाना शास्त्रभंडारों में सुलभ हैं।

भाषा में ढूढाड़ी विशेषतायें जैसे बोलचाल की स्वाभाविक माधुरी और सरलता आदि पाई जाती हैं। शब्दों के राजस्थानी रूप जैसे उज्जयिनी का उजेणी, दहेज का डाइजो, जिनालय का जिणालै, विधवा का रांड, वणिक का वाण्यां, बहिन का वहण आदि प्रचुर रूप से मिलता है। 'से' कारक के लिए स्यौं भी अधिक प्रयुक्त हुआ है। लुगाई, टीकना आदि ठेठ प्रयोग भी मिलते हैं।

इनकी कुछ रचनाओं,जैसे श्रीपाल रास, हनुमंतकथा, प्रद्युम्नरास, सुदर्शन रास की कथा पौराणिक है और कुछ जैसे जंबूस्वामी और नेमिरास की कथा ऐतिहासिक है तथा परमहंस चौपइ की कथा आध्यात्मिक है। इनमें भक्ति, शृंगार और वीर रसों के साथ प्रकृतिवर्णन भी मनोरम ढंग से किया गया है। ये लोकप्रिय कवि हैं क्योंकि प्रायः रचनायें लोकरुचि और भावानुसार रची गई हैं। ये घुमक्कड़ थे और अच्छे संगीतज्ञ भी थे। अतः इनकी रचनाओं में लोकतत्व और संगीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है। आप तुलसीयुग के कवि थे। अतः देश में व्याप्त भक्तिधारा से अछूते नहीं थे। ये सं० १६०१ से सं० १६४० की अवधि के सशक्त लोककवि थे। ये केशव के समकालिक हैं और दोनों में कहीं-कहीं साम्य भी मिलता है जैसे पोदनपुर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

मारण नाम न सुनजे जहाँ, खेलत सारि मारि जे तहाँ।
हाथ पाइ नवि छेदै कान, सुभद्र खाय वे छेदे पान।
बंधन नाइ फूल बंधेर, वधन कोइ किसहा न देइ।
कामणि नैणकाजल होइ, हियडै मनुस न कालो होय। इत्यादि

मिलाइये केशव की इस पंक्ति से—

भूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाई,
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाई।

यह भक्तिकाल का प्रभाव था कि कवि की रचनाओं में प्रायः भक्तिरस की छटा भी दिखाई देती है। इनके सभी पक्षों और विशेषताओं पर विचार किया जाय तो 'बाढ़ै कथा पार नहिं लहऊँ' की उक्ति सार्थक होती है अतः यह विवरण यहीं समाप्त किया जाता है।[1]

पांडे रूपचंद—रूपचंद नामक कई विद्वानों की चर्चा १७ वीं शताब्दी में प्राप्त होती है। नाथूराम प्रेमी ने बनारसीदास कृत 'अर्द्ध कथानक' के संशोधित संस्करण में रूपचंद नामक चार व्यक्तियों का उल्लेख किया है।[2] इनमें से प्रधान रूपचंद वे हैं जिनके साथ बैठकर कवि बनारसीदास अध्यात्मचर्चा किया करते थे। दूसरे वे हैं जिनसे गोम्मटसार जीवकाण्ड पढ़कर उनका मिथ्यात्व दूर हुआ था। तीसरे वे हैं जिन्होंने संस्कृत में 'समवशरण पाठ' की रचना की है और चौथे वे हैं जिन्होंने नाटक समयसार की भाषा टीका लिखी है। इनमें से दूसरे और तीसरे रूपचन्द एक ही व्यक्ति हैं और यही प्रस्तुत पांडे रूपचंद हैं।

---

१. देखिये डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० ११०-११५ और डॉ० हरीश—जैन गुर्जर कविओं की हिन्दी कविता पृ० ९०-९२; श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ९१-९२

२. नाथूराम प्रेमी—अर्द्धकथानक पृ० ८९-९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवशरण पाठ को 'केवलज्ञान कल्याण चर्चा' भी कहते हैं। इसकी रचना सं० १६९२ में हुई। इसकी प्रशस्ति से पता चलता है कि पांडे रूपचंद का जन्म सलेमपुर निवासी गर्गगोत्रीय भगवानदास की दूसरी पत्नी की कुक्षि से हुआ था। इन्होंने काशी में शिक्षा प्राप्त की और व्याकरण, जैनदर्शन आदि का गूढ़ अध्ययन किया। काशी से लौटकर वे दरियापुर गये जहाँ अब उनका परिवार रहने लगा था। बाद में वे आगरा गये। वहाँ वे तिहुना साहु के मंदिर में रहते थे; अर्द्ध कथानक में लिखा है--

अनायास इस ही समय नगर आगरे थान,
रूपचंद पण्डित गुनी आयो आगम जान।
तिहुना साहु देहरा किया, तहां आय तिन डेरा लिया।
सब अध्यातमी कियो विचार, ग्रन्थ बचायो गोम्मटसार।[1]

इस मन्दिर में भट्टारक या उनके शिष्य ही ठहर सकते थे। इसी आधार पर नाथूराम प्रेमी ने अनुमान किया है कि वे किसी भट्टारक के शिष्य थे। उस समय भट्टारकों के शिष्य 'पांडे' कहे जाते थे, शायद इसीलिए रूपचन्द पांडे कहे जाते होंगे। कवि बनारसीदास को समयसार की राजमल्लीय टीका से जो भ्रम उत्पन्न हो गया था, उसका उन्मूलन इन्हीं रूपचन्द पाण्डे ने किया था। इनसे गोम्मटसार पढ़कर बनारसीदास और उनकी मण्डली का मिथ्यात्व दूर हुआ और वे दृढ़ जैन हो सके; उन्होंने लिखा है--

सुनि-सुनि रूपचन्द के बैन, बानारसी भयो दिढ़ जैन।
(पद्य ६३५)

इन कथनों से स्पष्ट है कि पांडे रूपचंद जैनदर्शन, अध्यात्म एवं जैनसिद्धान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे, साथ ही वे अच्छे कवि भी थे। इन्होंने हिन्दी में उच्चकोटि का पद्य साहित्य भी रचा है। उनकी महत्वपूर्ण रचनायें-- परमार्थी दोहाशतक, गीत परमार्थी, मंगल गीत प्रबन्ध, नेमिनाथ रासा, खटोलना गीत, वणजारागीत आदि हैं। इसके अतिरिक्त सैकड़ों गेयपद भी प्राप्त हैं। इनका मंगलगीत प्रबंध 'पंच-मंगल' नाम से जैनसमाज में खूब प्रचलित है। इनका देहावसान सं० १६९४ में हुआ।[2]

---

१. नाथूराम प्रेमी--अर्द्धकथानक (बनारसीदास) पद्य सं० ६३०-३१

२. जैन हितैषी भाग ६ अंक ५-६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'परमार्थी दोहा शतक' को परमार्थ दोहरा भी कहा जाता है। इसमें १०१ दोहे हैं। यह 'जैनहितैषी' में रूपचंदशतक के नाम से प्रकाशित भी हो गया है। यह रचना अध्यात्म तत्व के मनोरम पद्यों से युक्त है। रूपचंद पांडे दृष्टान्त देने में पटु थे, यथा—

चेतन चित परिचय बिना, जप तप सबै निरत्थ,
कन बिन तुस जिमि फटकतैं, आवै कछू न हत्थ।[1]

प्रति का प्रथम पत्र अप्राप्त होने के कारण श्री मो० द० देसाई ने १४वीं कड़ी से इसके प्रारम्भ का उद्धरण दिया है—

...बालक फणि सों खेल।
विषयनि सेवत सुख नहीं कष्ट भले ही होइ,
चाहत हुउ कर चाक ने निखंगु सलिल विलोइ।

इसकी अंतिम दो कड़ियाँ इस प्रकार हैं—

गुरुनि सखायो, मै लख्यौ, वस्तुभली परि दूरि,
मन सरसीरुह नाल ज्यउं, सूत्र रह्यो भरपूरि।
रूपचंद सद्‌गुरुजी की जन बलिहारी जाइ,
आपुन पे सिवपुर गये भव्यनुं पंथ दिखाइ।[2]

कवि की रचना-शैली कबीर की रचनाओं, विशेषतया 'गुरुभक्ति कौ अंग' का स्मरण दिलाती है, इन्होंने भक्तिरसयुक्त पद भी लिखे हैं यथा—

प्रभु तेरी परम विचित्र मनोहर मूरति रूप बनी।
अंग अंग की अनुपम शोभा, बरनि न सकत फनी।
सकल बिकार रहित बिनु अंबर सुन्दर सुभ करनी।
निराभरन भासुर छवि सोहत, कोटि तरुन तरुनी।
वसुरस रहित सांत रस राजत, खलि इहि साधुपनी।
जाति विरोधि जंतु जिहि देखत, तजत प्रकृति अपनी।
दरिसनु दुरित हरै चिर संचित, सुरनर फनि मुटनी।
रूपचंद कहा कहौ महिमा, त्रिभुवन मुकुट मनी।[3]

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह पृ० २३५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३८५ (द्वितीय संस्करण)
३. डॉ. प्रेमसागर जैन— हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १६८-१७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह काव्य 'दोहराशतक' नाम से जिस गुटके में मिला था उसे बनारसीदास के मित्र कुंवरपाल ने लिखा था।

गीत परमार्थी--यह रचना चेतन (जीव) को सम्बोधित करके लिखी गई है। सद्गुरु अमृतमय हितकारी वचनों से चेतन को समझाते हैं, किन्तु वह नहीं समझता, कवि कहता है—

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिअ आवै।
अमृत वचनहितकारी, सद्गुरु तुम्हहि पढावै।
सद्गुरु तुम्हहि पढ़ावै चितदै, अरु तुमहू हौ ज्ञानी,
तबहू तुमहि न बयौहू आवै, चेतन तत्व कहानी।

चेतनतत्त्व का ज्ञान समझाने पर भी जीव नहीं समझता पर विषयों को बिना बताये ही जीव सीख लेता है, यथा—

विषयनि चतुराई कहिये, को सरि करै तुम्हारी,
बिनु गुरु फुरत कुविद्या कैसे, चेतन अचरज भारी।

मंगल गीत प्रबन्ध—अनेक स्थानों से प्रकाशित हो चुका है। भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से 'ज्ञानपीठ पूजांजलि संग्रह' (सन् १९५७) में पृ० ९४ से १०४ पर भी छपा है। इसमें तीर्थङ्कर के पंचकल्याणकों—गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष को लेकर भक्ति भावपूर्ण पदों की रचना की गई है। भगवान के जन्मोत्सव का वर्णन इन पंक्तियों में देखिये—

दलदलहिं अपछर नटहिं नवरस हावभाव सुहावने;
मणि कनक किंकिण वर विचित्र सुभ्रमर मंडप सोहये।
घन घंट चंवर धुजा पताका देखि त्रिभुवन मोहये।

लघुमंगल—इसमें केवल पाँच पद्य हैं। प्रत्येक पद्य में छह पंक्तियाँ हैं।

नेमिनाथ रासा—नेमिनाथ के मनोहारी चरित्र पर आधारित एक सरस रचना है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

पणविवि पंच परम गुरु मण वचकाय विसुद्धि,
नेमिनाथ गुण गावउं उपजे निर्मल बुद्धि।
सोरठ देस सुहावनो पुहमी पर परसिद्ध,
रस गोरस परिपूरन धन जन कनक समिद्ध।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिम पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

रूपचंद जिन वीनवै, हौं चरननु कोदास,
मैं इय् लोक सुहावनो, विरच्यो किंचित रास।[1]

खटोलना गीत—इसमें १३ पद्य हैं, सभी अध्यात्मभाव सम्पन्न हैं। इसके अतिरिक्त 'सोलह स्वप्न फल' और 'जिनस्तुति' नामक रचनायें भी प्राप्त हैं। इससे प्रकट होता है कि आप एक समर्थ कवि और जैन विद्या के मार्मिक ज्ञानी थे। आपकी कविताओं के सीधे-सादे भाव पाठकों को प्रभावित करते हैं। आपके गीतों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जैसे परमार्थ जकड़ी संग्रह (प्रकाशक जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई) में इनके छह गीत हैं और 'वृहज्जिनवाणी संग्रह' (सं० पन्नालाल बाकलीवाल, किसननगर) में इनके दस गीत संकलित हैं। इनसे इनकी रचनाओं की लोकप्रियता का अनुमान होता है।

रंगकुशल—आप खरतरगच्छीय कनकसोम के शिष्य थे। आपकी अमरसेन वयरसंधि सं० १६४४ सांगानेर, स्थूलिभद्र रास (पद्य ४८) सं० १६४४, होली गीत सं० १६६८ बीकानेर, अंतरङ्गफाग और महावीर सत्ताइस भव सं० १६७० आदि रचनायें प्राप्त हैं।[2] इनकी प्रथमकृति 'समरसेन वयर प्रबन्ध' आषाण शुक्ल सं० १६४४ में रची गयी थी। इसका रचनाकाल कवि ने इन पंक्तियों में दिया है—

संवत सोल बरसि चमालइ, अेह प्रबंध रच्यउ सुरसालइ।
मासि असाढ़इ पखि उजवालइ,
पुरि संग्राम नगर सुविसालइ।

आदि—श्री जिनमुखवासिनि समरिज्जइ,
सद्गुरु चरण पंकज पणमिज्जइ।
पूजादान तणा फल गिज्जइ,
अमरसेन वयरसेन चरिय भणिज्जइ।

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह भाग १ प्रस्तावना पृ० सं० ८१ और पृ० २३५

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार बताई है—

सिरि खरतरगच्छि बहु सनमानइ,
श्री जिनचन्द्र राजि प्रधानइ,
श्री जिनभद्रसूरि संतानइ, श्री पद्ममेरु वाचक बहुमानइ।
तासु सीस मतिवर्द्धन राजइ, मेरुतिलक दयाकलश निवाजइ,
अमरमाणिक वाचक वरसीस,
कनकसोम गणि लहइ जमीस।
तासु सीस अे रच्यउ चरित, रंगकुशल कहि पुण्य पवित्त।[1]

अर्थात् कवि खरतरगच्छ जिनचंद्रसूरि की परम्परा में जिनभद्रसूरि> वाचक पद्ममेरु> मतिवर्द्धन> मेरुतिलक> दयाकलश> अमरमाणिक्य> कनकसोम का शिष्य था।

महावीर सत्ताइस भव इनकी संभवतः अंतिम रचना है जो सं० १६७० ज्येष्ठ कृष्ण १३ को पूर्ण हुई। स्थूलिभद्र रास उत्तम रचना है। स्थानाभाव के कारण अधिक विवरण-उद्धरण देना सम्भव नहीं है।

रंगविमल – तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य हीरविजयसूरि के आप शिष्य थे। आपने सं० १६२१ कार्तिक शुक्ल ११ बुधवार को पाटण में ३६७ कड़ी की एक रचना 'द्रौपदी चौपाई' नाम से लिखी।
इसकी प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं—

सुमति जिणेसर पणमी पाय, वाणी आपु भारती माय।
तुं ब्रह्माणी नि सरस्वती, बार नाम ते तुं भगवती।
हुं मांगु छुं ताहरि पास, सांचउ अक्षर वचन विलास।
सती द्रूपदी तणुं चरित्र, करतां हुइ जनम पवित्र।[2]

अंतिम पंक्तियां आगे उद्धृत की जा रही हैं—

बीजा सतीअ छिइ ते घणी, द्रूपदी सती मि आदि भणी,
संघली सतीनां लीजि नाम, मुक्तिपुरीनुं लाभि ठांम।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २३१-३२ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७७८-७९ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग २ पृ० ११९-१२० (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७०४-०५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु परम्परान्तर्गत कवि वीरपट्ट के सुहमसामि से नाम देना प्रारम्भ करता है, फिर जंबू केवली का स्मरण करने के बाद काकंदी-कोटि गण के बयरस्वामी चंद्रगच्छ और तपागच्छ का उल्लेख करता है। तत्पश्चात् वह तपागच्छ के आनंद विमल, विजयदानसूरि और हीरविजयसूरि को सादर नमन करता है। इसके बाद कवि कहता है–

तास सीस चउपइ कहई, भणि गुणि ते नवनिधि लहई।

रचनाकाल —

संवत सोल अेकवीसि जाण, कातिका सुदनु मास बखाण।
ऐकादशी तित्थ ते कही, वार बुद्ध भलुउ लाधु सही।

रचना स्थान—

रंगविमल कीधी मनि रंग, पाटण नयरइ हुई चंग।
जिहाँ पंचासरु छि श्रीपास, सविहुं जन नी पूरइ आस।
× × ×
सूत्र विरुद्ध जु काइं होय, सुद्ध करु गीतारथ सोय।
अे कीधी मिं सूत्र आधार, कवियण पामइ हर्ष अपार।

अंत सती द्रूपदी लीधु नाम, सुखसंपद नूं लाधुं ठामि।
अेहु चउपइ तां चिरनंद, जा द्रू तारा मेरु गिरींद।
भणसइ सुणसइ जे नरनारि, तिहि घरि मंगल जयजयकार।[1]

रंगसार —आप खरतरगच्छीय भावहर्ष के शिष्य थे। 'जिनपालित जिनरक्षित चौढालिया' सं० १६२१ गाथा ७१; ऋषिदत्ता चौपइ सं० १६२६ जोधपुर, शान्तिनाथरास सं० १६२४, गिरनार चैत्य परिपाटी २८ गाथा, वीरमपुर, शांति स्तवन २८ गाथा, नेमिनाथ बृहद्स्तवन और संयति गीत आदि आपकी रचनायें उपलब्ध हैं।[2] श्री अगरचंद नाहटा ने रचनाओं की सूची तो दी है किन्तु अन्य विवरण-उद्धरण कम ही देते हैं। उन्होंने रङ्गसार कृत ऋषिदत्ता चौपइ का आदि और अन्त दिया है जो आगे उद्धृत किया जा रहा है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७०४-०५ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १२० (द्वितीय संस्करण)

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि— पढम पणमिय पढम पणमिय तित्थ चउवीस ।
हंसासणि गयगमणि वागवाणि सरसति नमेवि,
करि पुस्तक वीण वर कलस चिन्ह सासणदेवि ।
तासु तणउ सुपसाउ लहि, हीयइ हरष धरेवि;
ऋषिदत्ता सती तणउ, चरित कहिसुसंखेवि ।

रचनाकाल—

सामिणि सरसति सुप्रसादइ, अे प्रबंध रचयउ भलउ,
संवत सोल छबीस वछरि, मास आसूगुण निलउ ।

गुरुपरम्परा के अन्तर्गत कवि खरतरगच्छीय जिनचंद्रसूरि और भावहर्ष की स्तुति करके लिखता है—

गुण निलउ सुहगुरु सफल सुरतरु, संघ शाखा विस्तरइ,
तसु सीस मुनि रङ्गसार जंपइ, अे प्रबंध इसी परइ ।

अन्त में कवि कहता है—

जे भविय भणस्यइ अनइ सुणस्यइ,
ताह घरि हुवइ सुख घणा ।
नव निधि ऋद्धि समृद्धि थापइ, सदा वृद्धि वधामणा ।[1]

रंगसार खरतरगच्छ की भावहर्षी शाखा के अच्छे कवियों में थे ।

लखपत—ये सिन्धु देश के सामुहीपुरवासी कूकड़चोपड़ा गोत्रीय तेजसी के पुत्र थे । इन्होंने सं० १६९१ में बहुरा अमरसिंह के आग्रह पर 'त्रिलोकसुन्दरी मंगलकलश चौपइ' नामक काव्य की रचना की । इसका केवल अन्तिम पत्र तपागच्छ भण्डार जैसलमेर में उपलब्ध है । मूल प्रति १२ पृष्ठों की थी । प्रारम्भिक ११ पृष्ठ अप्राप्त होने के कारण इसके अधिकांश विवरण अनुपलब्ध हैं । इसी प्रकार आपकी रचना 'मृगांकलेखारास' (सं० १६९४) की प्रति के भी केवल अंतिम दो पत्र उसी भण्डार में उपलब्ध हुए हैं, शेष २३ पृष्ठ लुप्त हो गये हैं अतः इसका भी विवरण-उद्धरण प्राप्त नहीं हो सका है ।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १५३-५४ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७१९-२० (प्रथम संस्करण)
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मीकुशल—तपागच्छ के सोमविमलसूरि की परम्परा में आप विशालसोम के प्रशिष्य और जिनकुशल के शिष्य थे। आपने सं० १६९४ कार्तिक शुक्ल १३, शुक्रवार को ईडर के समीप ओडाग्राम में 'वैद्यकसार रत्नप्रकाश चौपाई' की रचना की। इसमें लेखक ने तपागच्छ के वीरपाट के ५७ वें पट्टधर सुमतिसाधु से लेकर हेमविमल, सौभाग्य-हर्ष, सोमविमल, हेमसोम, विमलसोम, विशालसोम और जिनकुशल तक के आचार्यों का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। कवि ने अपने को जिनकुशल का शिष्य कहा है, यथा—

जिनकुशल पंडित तेहमां जांण,
ग्रहगण मांहि दीपइ जिम भांण।
लक्ष्मीकुशल तसु केरो सीस,
गुरु प्रसादइ हुई जगीस।[1]

रचनाकाल—संवत सोल चुराणुं जेह, फागुण सुदि तेरस वली तेह,
शुक्रवार संयोगइ सही, लक्ष्मीकुशल अे चउपइ कही।
देवगुरु प्रसादि करी, रत्नप्रकाश अे चउपइ खरी,
आगेय निदानसुश्रुत्त नु सार, अपर ग्रंथ तणो उद्धार।
ग्रही नाम रतन ते जांणि, शास्त्र विचारी बोली वाणी,
हितकारिणी अे चउपइ सार, रच्या अेकादश अधिकार।

इसमें ११ अधिकार या भाग हैं। यह आयुर्वेद के सुश्रुत आचार्य की परंपरा पर आधारित ग्रंथ है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सरसति सरस वांणी मुझ आपि,
पापपंक टलि तुझ जपि।
तुझ नामइं संकट ऊपसमइ,
मनवंछित तुझ नामइं जपइ।[2]

श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०५८ (प्रथम सं०) पर इन्हें जयकुल का शिष्य कहा था। जयकुल या जयकुशल तो बाद में हुए हैं अतः इनके गुरु का नाम जिनकुशल ही उचित प्रतीत होता

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३०० (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० ३०१ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ५७२-७३ तथा भाग ३ पृ० १०५८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जैन मुनि साहित्य धर्मदर्शन के अतिरिक्त जंत्र-मंत्र, वैद्यक, शकुन स्वप्न आदि विषयों पर भी पर्याप्त रचनायें करते थे। यह उसी प्रकार की एक वैद्यक विषयक रचना है।

लक्ष्मीकुशल की एक छोटी रचना 'नेमिनाथ गहूँली' भी प्राप्त है किन्तु यह रचना जिनकुशल शिष्य लक्ष्मीकुशल की है या किसी अन्य लक्ष्मीकुशल की – यह निर्णय कर पाना मुश्किल है। यदि यह उन्हीं की रचना हो तो वे आयुर्वेद के साथ ही सरस साहित्यकार भी रहे होंगे। नेमिनाथ गहूँली १२ कड़ी की छोटी रचना अवश्य है पर इसका वर्ण्य विषय इतना मार्मिक और लोकप्रिय है कि विषय का चयनकर्ता अवश्य कविहृदय रहा होगा। इसकी कुछ पंक्तियाँ नमूने के रूप में उद्धृत की जा रही हैं—

आदि —द्वारका नयरी सुन्दर वरु जी
तंदुकवण अभिराम हो गुणवंती गुहंली करें फाग मां तारु जी।
नेम जिणंद समोसर्या वा० वणपालक दीइं वधार हो गु०।
श्री कृष्ण अग्रमहेषी आठ सुं वा, वंदन पडइ बजाय हो गु०।

× × ×

अंत—लक्ष्मीकुशल शिवपद लहें वा, विनय सफल फली आसा हो,
गुणवंती गहुली करे फागमां तारुजी।[1]

लक्ष्मीप्रभ – आप नाहटावंशीय कनकसोम के शिष्य थे। आपने सं० १६७०-७४ के बीच १५ ढालों में २९१ गाथा की एक रचना 'पुण्यसार चौपइ' नाम से लिखी जिसकी प्रति मुनि जिनविजय जी के संग्रह में है। इसके अतिरिक्त आपने सं० १६६४ में धर्मगीत (गाथा ८७), सं० १६७६ में अमरदत्त मित्रानंदरास, सं० १६७७ में मृगापुत्र संधि (गाथा ९५) मुलतान और चौबीसजिनस्तवन नामक ग्रंथ भी लिखे।[2]

धर्मगीत का अपरनाम 'यतिधर्मगीत' भी है। यह रचना लक्ष्मीप्रभ की नहीं बल्कि इनके गुरुभाई कनकप्रभ की है। जैन गुर्जर कविओ के द्वितीय संस्करण के संपादक का विचार है कि संभवतः 'अमरदत्त

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३८२ (द्वितीय संस्करण)
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मित्रानंद रास' भी इनकी कृति न होकर सिद्धिसूरि की रचना हो सकती है। जब तक इन रचनाओं का मूलपाठ न उपलब्ध हो और उनसे प्राप्त अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध न हो जाय कि इनके लेखक का नाम क्या है तबतक इन्हें किसी कवि की निश्चित रूप से रचना कह देना अवैज्ञानिक प्रयास है। श्री अगरचंद नाहटा और श्री मो० द० देसाई ने केवल रचनाओं की सूची गिनाई है पर दोनों विद्वानों ने इन रचनाओं का विवरण-उद्धरण आदि नहीं दिया है अतः यह कहना कठिन है कि इनमें से कौन रचना लक्ष्मीप्रभ की है और कौन किसी अन्य की।[1] पुण्यसार चौपइ का कुछ विवरण दिया गया है और वह मुनि जिनविजय जी के संग्रह में है इसलिए उसकी प्रामाणिकता पर शंका नहीं की जा सकती, पर शेष रचनाओं के सम्बन्ध में अधिक छानबीन की आवश्यकता है।

लक्ष्मीमूर्ति—आप सकलहर्ष सूरि के शिष्य थे। सकलहर्ष को आचार्य पद सं० १५९७ में प्राप्त हुआ था। उनके शिष्य लक्ष्मीमूर्ति ने १७ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में किसी वर्ष 'शान्तिनाथ स्तवन' की रचना की होगी। यह ७० कड़ी की रचना है इसका आदि और अन्त नमूने के तौर पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

आदि—त्रिभुवनपति जिन पय नमी संति जिणेसर राय,
कर जोड़ि करुं विनति, लहि सहिगुरु पसाय।

अन्त—इय सन्ति जिनवर नमित सुरनर कुमर गिरिवर मंडणो,
श्री सकल हरष सूरिंद सुहकर सकल दुख विहंडणो।
वीनव्यो भगति भाव युगति सुणी अचिरानंदणो।
श्री लक्ष्मिमूरति सीस जंपइ देहि सुहमणनंदणो।[2]

लक्ष्मीरत्न—श्री अगरचंद नाहटा इन्हें खरतरगच्छीय साहित्यकार बताते हैं और वे इनकी दो रचनाओं का उल्लेख करते हैं—प्रथम

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९७७ (प्रथम संस्करण), भाग ३ पृ० १९५ (द्वितीय संस्करण)

२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ८-१० (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० १५०३-०४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कापड़हेड़ातीर्थ रास (सं० १६८३, सोजत), द्वितीय अयमन्ता मुनि सज्झाय।[1] श्री मो० द० देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५७ (प्र० सं०) में 'सुरप्रियरास' को इनकी रचना बताया था किन्तु भाग ३ पृ० ४८४ में अपने पिछले वक्तव्य को सुधार कर उक्त रचना को इनके शिष्य की कृति कहा है। वहीं पर देसाई ने लक्ष्मीरत्न कृत आठकर्म-रास (चौपाई) सं० १६३६ का उल्लेख किया है जो आसो शुक्ल ५ रविवार को उभयापुर में लिखी हुई बताई गई है। निम्नांकित पंक्तियों से यह कथन ठीक भी प्रतीत होता है, यथा—

सं० १६३६ सो आसो शुदी ५ रविवार,
कीधी चउपइ उभयापुर मझार,
श्री गुरु लक्ष्मीरत्न ऋषि राय।

ये पंक्तियां उनके किसी शिष्य की प्रति के प्रशस्ति में लिखी गई मालूम होती हैं, किन्तु द्वितीय संस्करण के संपादक का विचार है कि ये कोई अन्य लक्ष्मीरत्न हैं और सुरप्रिय कुमार रास के लेखक लक्ष्मी-रत्न शिष्य भी किसी अन्य लक्ष्मीरत्न के शिष्य हैं क्योंकि उन्होंने गुरु परम्परान्तर्गत श्री जयकल्याण और विमलसोम सूरि को नमन किया है। जयकल्याणसूरि तपागच्छ में सं० १५०२ के आस-पास आचार्य-गद्दी पर बैठे थे अतः उस परंपरा के लक्ष्मीरत्न अन्य व्यक्ति होंगे और उनका समय १६वीं शताब्दी होगा। जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३६१ प्रथम संस्करण पर लक्ष्मीरत्न सूरि शिष्य विमलसोम की रचना सुरप्रिय कुमार रास का समय सं० १७४१ बताया गया है अतः ये १८वीं शताब्दी के हैं। सम्भावना यह लगती है कि १६वीं, १७वीं और १८वीं शताब्दी के तीन लक्ष्मीरत्नों में घपला हो गया है। प्रस्तुत लक्ष्मीरत्न १७वीं शताब्दी के लेखक हैं किन्तु इनकी गुरु परम्परा और रचनाओं का निश्चय नहीं हो सका है। वहीं पृ० ३६० पर लक्ष्मीरत्न के शिष्य हीररत्नकृत खेभाहडालियानों रास का भी उल्लेख मिलने से १८वीं शती के लक्ष्मीरत्न और उनके दो शिष्यों हीररत्न और विमल-सोम का निश्चय होता है किन्तु प्रस्तुत लक्ष्मीरत्न के सम्बन्ध में निश्चित सूचनायें नहीं प्राप्त होती हैं।

लक्ष्मीविमल—आप कीर्ति विमल के शिष्य थे। आपने 'चौबीसी' की रचना की है जिसका आदि और अन्त दिया जा रहा है—

---

१. अगरचन्द नाहटा - परंपरा, पृ० ८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि -- तारक ऋषभ जिनेसर तुं मिल्यो, प्रत्यक्षपोत समान हो,
तारक जे तुझनि अवलंबिया, तेणे लहुं उत्तम स्थान हो।

अन्त - वीर धीर शासनपति सांचो, गांता कोडि कल्याण,
कीर्ति विमल प्रभु परम सोभागी, लक्ष्मी वाणी प्रमाण रे।[1]

लब्धिकल्लोल उपाध्याय—ये खरतरगच्छ की कीर्तिरत्नशाखा के विद्वान् विमलरंग के शिष्य थे। कीर्तिरत्न की परंपरा में हर्ष-विशाल > हर्षधर्म > साधुमन्दिर > बिमलरङ्ग क्रमशः पट्टासीन हुए थे। श्री मो० द० देसाई लब्धिकल्लोल को विमलरंग के शिष्य कुशल-कल्लोल का शिष्य बताते हैं।[2] लेकिन प्रसिद्ध रचना 'उत्तराध्ययन वृत्ति' के लेखक ने गुरुपरंपरा के अन्तर्गत बिमल रंग के पश्चात् लब्धि-कल्लोल का ही नाम दिया है। सम्भवतः इसी कारण श्री अगरचंद नाहटा इन्हें विमलरङ्ग का ही शिष्य मानते हैं।[3]

आपकी प्रमुख रचनाओं का संग्रह श्री नाहटाजी के पास हैं, जिनमें 'रिपुमर्दन भुवनानन्द चौपई' सं० १६४९, जिनचंदसूरिरास सं० १६५८, कृतकर्मरास सं० १६६५, तीर्थचैत्यपरिपाटी, कीर्तिरत्नसूरि गीत, आबूयात्रास्तवन, जिनचंदसूरि गीत और कई अन्य स्तवन एवं गीतादि हैं। 'श्रीजिनचंदसूरि अकबर प्रतिबोधरास' (१३६ कड़ी सं० १६५८ ज्येष्ठ वदी १३ (अहमदाबाद) ऐतिहासिक महत्व की रचना है। यह ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में (पृ० ५९ से ७८ तक) विमलरंग के शिष्य कवियण के नाम से छपी है। इसमें जो रचनाकाल बताया है 'वसु युग रस शशिवच्छरइ' उससे सं० १६४८ निकलता है किन्तु जिन-चंद्रसूरि को सं० १६४८ में युगप्रधान पद मिला था अतः इस रास का रचनाकाल सं० १६५८ माना गया है। अन्त में कवि कहता है—

पढ़इ सुणइ गुरुगुण रसी ए, पूजइतास जगीस,
कर जोड़ि कवियण कहइ रंगविमलमुनि सीस।

कवियण लब्धिकल्लोल हो सकते हैं क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है—उत्तराध्ययन वृत्ति में विमलरङ्ग के शिष्य लब्धिकल्लोल का नाम है। यथा—

१ जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९६ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग २ पृ० २४७ (द्वितीय संस्करण)
३. अगरचन्द नाहटा--परंपरा पृ० ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषां विनेया वियलादिरंगा मान्या बभूवुर्मुनि सत्तमानं,
श्रीलब्धिकल्लोल गणिस्तदीये, पट्टेऽभवत् वाचक वर्गवर्य: ।[1]

युगप्रधान जिनचंदसूरि और सम्राट अकबर की भेंट पर आधारित इस ऐतिहासिक रास का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है -

जिनवर जगगुरु मनधरि, गोयम गुरु पणमेसु,
सरस्वती सद्गुरु सानिधइ, श्रीगुरुरास रचेसु ।[2]

'जगगुरु' शब्द से ध्वनित होता है कि रास रचना से पूर्व जिनचंद्र को युगप्रधान की पद्वी प्राप्त हो चुकी थी। बीकानेर के राजा रायसिंह के मन्त्री कर्मचंद से अकबर ने जिनचंदसूरि की प्रशंसा सुनी और मानसिंह से सन्देश भेजा गया। सूरि जी खंभात से चलकर अनेक स्थानों—नगरों का विहार करते अपनी साधु मण्डली (जयसोम, कनकसोम, समयसुन्दर आदि) के साथ दरबार में पहुँचे और अकबर को प्रतिबोधित किया—

गच्छयति द्यौ उपदेश,
अकबर आगलि, मधुर स्वर वाणी करीए।
जे नर मारइ जीव ते दुख पुरगति पामइ पातक आचरी ए।

अकबर प्रभावित हुआ 'इम सांभलि गुरुवाणि रंजिउ नरपति श्री गुरु ने आदरइए। धण कंचण वर कोणि कापड़ बहुघरि, गुरु आगइ अकबर धरइ ए, किन्तु गुरु ने कहा 'सुगुरु कहइ' हम क्या करां ए।' इससे अकबर अधिक प्रभावित हुआ और युगप्रधान की पद्वी दी 'युगप्रधान पदवीदिउगुरुकूं', विविध वाजा बाजिया, बहुदान मानइ गुणह गानइ, संघ सवि मन गाजिया। उस समय कर्मचंद्र ने बड़ा उत्सव किया। अकबर ने जीवहत्या रोकने का शाही फरमान निकाला। जिनचंद्र के शिष्य महिमसिंह को सूरिपद के पट्ट पर विराजमान करके उन्हें जिनसिंह सूरि नाम दिया गया। इसी अवसर पर जयसोम, रत्ननिधान को वाचक और गुण निधान तथा समयसुन्दर को उपाध्याय की पद्वी भी दी गई। रास में वर्णित घटनाओं का उल्लेख कवि ने श्रुति के आधार पर किया है, इससे प्रकट होता है कि ये घटनायें रचना से कुछ काल पूर्व घटित हो चुकी थीं, इन्हीं सब आधारों पर रचनाकाल सं० १६५८ स्वीकार किया गया है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४७ (द्वितीय संस्करण)

२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ५८-५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस रास में कुछ द्विपदी, कुछ चतुष्पदी और कुछ षट्पदी छंद हैं। ये अलग-अलग रागों और ढालों के तर्ज पर निबद्ध हैं।

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिनचंद्रसूरि गीतानि के अन्तर्गत २६, २७, २८ और २९ वें गीत भी लब्धिकल्लोल के लिखे संग्रहीत हैं २६-२७ वें 'गीत' 'गहुंली' गूजरी राग में हैं। २७ वें गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

दुनिया चाहइ द्वौ सुलतान,
इक नरपति इक यतिपति सुन्दर, जाने हइ रहमान।
राय राणा भू अरिजन साधी, वरतावो निज आण।
बाबर वंश हुमाऊनंदन, अकबर साहि सुजाण।[1]

२८ और २९ गहूंली भी गेय और सरल भाषा की रचनायें हैं। रिपुमर्दन भुवनानंदरास (२०८ कड़ी, सं० १६४९ विजयादसमी, गुरुवार, पालनपुर) का आदि इस प्रकार है—

आदि जिणेसर आदि कर संतीसर गुणवंत,
नेमि पास सिरिवीर जिण प्रणमी श्री भगवंत।

इस रास में कवि ने स्पष्ट रूप से अपने आपको कुशलकल्लोल का शिष्य बताया है, यथा—

विमलरंग तसु शिष्य सुजाण, सुगुण रमण गुण केसरि खांणि,
तसु सुविनय कुशलकल्लोल,
सीस सुपरि कहइ लब्धिकल्लोल।[2]

रचनाकाल—संवत सोल गुण पंचासइ जांणि,
त्रिजयदसमी गुरुवारि बखाणि।
तिणि दिन कीधउ अेह ज रास,
सांभलता सवि पुहतइ आस।

कवि संस्कृत और साहित्य शास्त्र का जानकार था। रास के अन्त में नम्रता पूर्वक वह लिखता है—

पामी संघ तणउ आदेश, जाणी सम तणउ लवलेस,
रिपुमर्दन नउ रचीउ रास, भणतां गुणतां लील विलास।

---

१. ऐतिहासिक काव्य संग्रह पृ० १२१

२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरि आण्या सरस संयोग, गाथा दूहा काव्य सिलोग,
कविमति काई शास्त्र विचार, सुध करिज्यो पंडित सुविचार।
× × × ×
सायर ध्रु जिहां मेरु गिरिंद, ग्रहगण तास जिहां रविचंद,
तिहां लगि नंदउ अेह प्रबन्ध, भणतां गुणतां नितु आणंद।[1]

कृतकर्म राजर्षि चौपई (४०७ कड़ी सं० १६६५ विजयादसमी, बव्बेरपुर)

इसमें कवि ने स्वयं को विमलरंग का ही शिष्य बताया है और कुशलकल्लोल का नाम नहीं दिया है, यथा—

तासु सीस वलि विमलरंग महामुणी,
सीस सुपरि कहे लब्धिकल्लोल गणि।

रचनाकाल—संवत सोल पइसठि वरसइ, विजयदसमी वासरे,
वब्बेरपुरवर रास रचीयो, शास्त्रसंगत सादरे।
शुद्ध करिय भणिज्यो मया करिज्यो संत सज्जन जे गुणी,
वाचतां सुणतां सुचिर नंदो, जांम सायर दिनमणी।

श्री जिनचंदसूरि रास में पर्याप्त ऐतिहासिक तथ्य हैं किन्तु निम्नाङ्कित पंक्तियों से आभास होता है कि कवि ने बहुत कुछ प्रत्यक्ष अनुभव से नहीं बल्कि अन्य लोगों से सुन-जान कर भी लिखा था, इसलिए कुछ कम-बेशी की भी संभावना है—

बात सुणी जिन जनमुखइ, ते तिम कहिस, जगीस,
अधिको ओछो जो हुवइ, कोय करो मत रीस।

आपकी भाषा मरुगुर्जर है किन्तु उसमें अनुप्रास आदि के प्रयोग से कवि ने प्रवाह और लय उत्पन्न किया है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। कृतकर्म रास की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिये—

अजर अमर अकलंक जिन, आदि अनादि अनंत,
तारक त्राता त्रिजग गुरु, पय पणमी भगवंत।

इस पंक्ति में अ, त और प का अनुप्रास काव्य की झंकृति उत्पन्न करता है। तुक और लय की दृष्टि से ये पंक्तियाँ देखें—

रिषिराज मोटो नहीय खोटो देइ दोटो कर्मने,
जिण कुगति वामि सुगति पामी ध्यान धरि निज शुभ मने।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७८४-८९ (प्रथम संस्करण)

२. वही, भाग २ पृ० १५० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लब्धिरत्न या लब्धिराज—ये खरतरगच्छ की क्षेम शाखा के धर्ममेरु शिष्य थे।[1] नारद चौपई (सं० १६७६, नोहर, पद्य संख्या ११३) और शीलफाग अथवा शीलविषये कृष्णरुक्मिणी चौपई (सं० १६७६ फाल्गुन, नवहर) आपकी प्रमुख उपलब्ध रचनायें हैं। श्री मो० द० देसाई ने शीलफाग के कर्त्ता का नाम लब्धिराज लिखा है।[2] लेकिन कवि ने रचना के अन्त में अपना नाम लब्धिरत्न ही दिया है। इसलिए लेखक का नाम लब्धिरत्न ही है; कथन के प्रमाणस्वरूप निम्न पंक्ति प्रस्तुत है—

वाचक लबधिरतन गणि इम कहइ मुनि सुव्रत सुप्रसादि,
अे संबंध सुपरि करइ वांचता दूरि टलइ विषवाद।

रचना का प्रारम्भ—

सरस वचन मुझ आपिज्यो, सारद करि सुपसाउ,
सील तणा गुण वर्णवुं मनिधरि अधिकउ भाउ।

गुरुपरंपरा—खेमकीरति साखइ अतिभलउ श्री धर्मसुन्दर गुरुराय,
धर्ममेरु वाणारीस गुणनिलउ तासु सीस मनि भाय।

रचनाकाल—संवत सोलहसय छहोतरइ, फागुन मास उदार,
नवहर नगरइ अे संबंध रच्यउ, गुणे करी सुविचार।

अंत— सील तणा गुण मुवधइ गावतां रिद्धि वृद्धि आणंद,
अविचल कमला ले लहइ वरइ पामइ परमाणंद।[3]

नारद चौपई का उद्धरण उपलब्ध नहीं हो पाया है।

लब्धिविजय—आप तपागच्छीय विजयदेवसूरि > संयमहर्ष > गुणहर्ष के शिष्य थे। आपने 'दानशील तप भावना अे हरेक अधिकार पर दृष्टांत कथा रास' ४ खंडों, ४९ ढालों, १२७४ कड़ियों में सं० १६९१ भाद्र शुक्ल ६ को पूर्ण किया। इसके अतिरिक्त 'उत्तमकुमार रास' अजापुत्ररास, मौन एकादशीस्तवन, गुरुयुत्रछत्तीसीस्तवन आदि

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९७५ (प्रथम संस्करण)
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३७८ (द्वितीय संस्करण) और पृ० १९६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनायें भी लिखी हैं जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। प्रथम रचना 'दानशील कथारास' का आदि इस प्रकार है—

श्री सरसति तुं सारदा, भगति मुगति दातार,
जैनी जगदंबा जगे, तुझ थी मति विस्तार।

गुरुपरम्परा के अन्तर्गत लेखक ने हीरविजयसूरि से लेकर विजयसेन, विजयदेव, बिजयदान, अमीपाल और गुणहर्ष तक का सादर-स्मरण किया है। कवि उसके बाद कहता है—

तेहनो सीस सवि कवि मुकुट कवि चरण,
शरण अनुकरण मति मन्निआणी।
लब्धिविजयाभिधो परसु गुणवणमधो
कहति सुणिमात शिशुवचन वाणी।
च्यार खंडे अखंडे अलिय वचन मे भाषिऊ,
रास लवलेस करता,
साधयो कवि बड़ा सयल गुणना घणा,
कहुं बहु प्रवचन थकी अ डरती।

रचनाकाल—सोल सत बाणुइं बरस विक्रम थकी,
भाद्रवे मासि सुचि छठि दिवसे,
रास लिखियो रसे सुणत सुख होइसी,
जेह जण जोइसिमन्न हरसि।[1]

'उत्तमकुमार रास' (४ खण्ड, ४४ ढाल, १५४० कड़ी, सं० १७०१ कार्तिक शुक्ल ११ गुरुवार) का आदि—

श्री गुणहरष (गुरु) तणो, पामी पुण्य प्रभाव,
विषम विघन जल तारवा, जे बड़ अविहड नाव।
वीणा पुस्तक धारणी, भगवति भारति देवि,
कवित करुं संखेप थी, हियडे तुझ समरेव।
श्री उत्तमराय तणी में कथा कही लवलेस,
जीरण शास्त्र तणे अनुसारे ढालबंध सुविशेष।

रचनाकाल और अंत—

संवत सतरशतअेक ऊपरि वरसि कातिमास,
उज्ज्वल अग्यारसे गुरुवासरे रच्यो रास उल्लास।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २८१-२८७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुपरंपरा पूर्वरचनानुसार इसमें भी दी गई है। अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तिहां ताई उत्तमराय नो जानो उत्तम रास रसाल,
भणे गुणे निसुणे जे भावे, तिहां घर मंगल माल।
तपगछ मंडण संजमहर्ष सुशिष्य श्री गुणहर्ष सुसीस,
लब्धिविजय कहे रास रसालो, प्रतपों जाँ निसदीस।[१]

अजापुत्र रास—(७ खंड, २९ ढाल, १४२० कड़ी, सं० १७०३ आसो सुद १० शुक्रवार)

आदि वंदु श्री जिनवर चरण कमल उल्हास,
जे प्रणमते पामीइ शिवसुख बारेमास।
जेहथी जग जस पामीअे सरे मनवछित काम,
श्री गुणहर्ष गुरु जीतणां जंगजयवंतु नाम।

रचनाकाल—संवत सत्तर त्रन आसु सुदमा दसमी शुक्रे सही,
श्री अजापुत्र कथा सकोमल रास बंधे अेम कही।

इसमें भी विजयदान से लेकर गुणहर्ष तक की गुरुपरंपरा दी गई है।

मौन एकादशी स्तवन, सौभाग्य पंचमी अथवा ज्ञान पंचमी स्तव, पंचकल्याणकाभिधजिनस्तवादि आपके स्तवन साहित्य के ग्रन्थ हैं। पंचकल्याणकाभिध जिन स्तवन का आदि और अंत नमूने के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

आदि चोबीसइ जिणवर नमीं, निअ गुरु चरण नमेवि,
कल्याणक तिथि जिन तणी, सुणि भवियण संषेवि।

अन्त— श्री विजयदेव सुरींद सगुरु सगुण,
श्री गुणहर्ष वरविबुध सीसो,
पंच कल्याणक आविध तवन जिन तणु
लवधि पभणइ प्रबल जगि।[२]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २८४-२८७ तक (द्वितीय संस्करण)

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गुरुपुत्र छत्रीसी' संज्झाय का आदि इन पंक्तियों से हुआ है—

श्री गुरु गुरु गिरुआ नमूं जी सद्गुरु समकीत मूल,
श्रण्य तत्व मां मूलगुन्जी सद्गुरु तत्व अमूल रे,
आतम ते सेवउ गुरुराय।

अंत-- गुरुगुण छत्रीसइं छत्रीसी, जोयो आगम अवधि।
श्री गुणहरष विबुधवरसीसइ लहीइ सीस लबधि।[1]

लब्धिशेखर—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिनचंदसूरि गीतानि शीर्षक के अन्तर्गत १०वाँ गीत लब्धिशेखर कृत है। यह ९ कड़ी की लघु गीत रचना राग मल्हार में निबद्ध है। इसमें युगप्रधान जिनचंद सूरि का गुणगान किया गया है। इनकी कोई अन्य रचना उपलब्ध नहीं है।

ललितकीर्ति--आप खरतरगच्छीय कीर्तिरत्नसूरि शाखा में हर्षविशाल> हर्षधर्म> विनयरंग के शिष्य उपाध्याय लब्धिकल्लोल के शिष्य थे। आपने माघकाव्य और शीलोपदेशमाला की संस्कृत टीका की थी। मरुगुर्जर में आपने 'अगड़दत्तरास'[2] की रचना सं० १६७९ भुजनगर, कच्छ में की। ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में आपकी एक रचना 'श्री लब्धिकल्लोल सुगुरु गीतम्' नाम से सङ्कलित है। इससे लब्धिकल्लोल के सम्बन्ध में ये सूचनायें मिलती हैं। वे कीर्तिरत्नसूरि शाखा के विमलरङ्ग के शिष्य थे। उनके पिता श्रीमाल वंशीय लाड़णशाह और माता लाडिमदे थीं। सं० १६८१ में वे भुज में स्वर्गवासी हुए थे। इस गीत का प्रारम्भ देखिये—

गुरु लब्धिकल्लोल मुणिंद जयउ, जाणे पूरब दिसि रवि उदयउ।
मन चिन्तित कारिज सिद्ध थयउ, दुख दोहग दूरइं आज गयऊ।
सोलह सइ इक्यासी वर वरसइ, भवियण लोकण देखण हरसइ।
गच्छपति आदेशइं भुज आया, चउमास रह्या श्रीसंघ भाया।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ११९-२४; भाग ३ खंड २ पृ० १०३९-४१ और भाग ३ खण्ड २ पृ० १०८८ तथा ११८०

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शायद यह रचना इसी समय हुई होगी, अर्थात् सं० १६८१ में जब भुज में चौमासा था। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं--

निज सेवक नइ दरसण आयइ,
पगि पगि सानिध करि दुख कायइ।
गणि ललितकीर्ति चढ़तइ दावइ,
वंदइ गुरु चरण अधिक भावइ।[1]

इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना अगड़दत्तरास (३९६ कड़ी) सं० १६७९ ज्येष्ठ शुक्ल १५, रविवार, भुजनगर में लिखी गई। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियां आगे दी जा रही हैं--

नाभि महीपति सिरितिलउ, आदीसर अरिहंत,
मन वचनइ काया करीं, पणमी श्री भगवंत।
वचन सुधारस वासती, सरसती प्रणमी पाय,
कालिदास नइं तइ कीयऊ मूरष थीं कविराय।
हितकारण माता-पिता वलि विशेष गुरुराज;
अे तीनइ प्रणमुं सदा सारइ वंछित काज।
द्रव्यभाव निद्रातजी, जिण जीतउ परमाद,
अगड़दत्त गुणगावतां, नाषिदीयउ विषवाद।

रचनाकाल--संवत सोल इगणासी वच्छरइ रे श्री भुजनयर मझारि,
जेठ सुदि पूनम रलियामणी रे दिनकर मोटो वार।

गुरु परम्परा--श्री खरतरगछ नायक दीपतो रे श्री जिनराज सुरींद,
तेहनइ राजइ इणि मुनिवर तणा रे गुण गाया आणंद।

अंत-- इम ललितकीरति कहइ भवियण,
सांभलो रे साधुतणा गुणगाइ।
रसना कीध पवित्र मइ आयणी रे, लब्धिकल्लोल सुपसाय।
सांभलतां भणतां गुण साधुना रे, रोम रोम सुख थाय।
नितु नितु रङ्ग वधामणा रे, अविचल सम्पद थाय।[2]

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—लब्धिकल्लोल सुगुरु गीतम्
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५०९ और भाग ३ पृ० ९९२ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० २२८-२३० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें अगडदत्त मुनि के चरित्र के माध्यम से साधुचर्या का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। भाषा सरस मरुगुर्जर है। ये संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और गुजराती भाषाओं के जानकार, उत्तम साधु एवं साहित्यकार थे।

ललितप्रभसूरि--पूर्णिमागच्छीय भुवनप्रभ > कमलप्रभ > पुण्यप्रभ के शिष्य विद्याप्रभ आपके गुरु थे। आप पूर्णिमागच्छ की प्रधान-शाखा में विद्याप्रभ के पट्टधर थे। आपका प्रतिमालेख सं० १६५४ का प्राप्त है जिसमें लिखा है सं० १६५४ वर्षे माघ वदि १२वाँ श्रीमाल ज्ञातीय दोसी वीरपाल भार्या पुजी सुत दोषी रहिआकेन श्री सम्भवनाथबिंब कारापितं श्री पूर्णिमापच्छे प्रधानशाखायां श्री विद्याप्रभसूरि-पट्टे श्रीललितप्रभसूरिभिः प्रतिष्ठितं।[1] आपकी रचना 'पाटण चैत्य-परिपाटी' (२३ ढाल) सं० १६४८ आसो वदी ४, रविवार को लिखी गई थी। इसके आदि की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

> सयल जिणेसर प्रणमी पाय, सरसति सहगुरु हियडइ ध्याइ,
> पाटण चैत्य परिवाडी कहुं जिनबिंब नमता पुण्यज लहुं।

रचना में भी उपरोक्त गुरुपरम्परा दी गई है। रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है--

> संवत रे सोलवली अठतालउइ रे, आसो मासि विचारी,
> वहुल पखि रे(२) चऊथि तिथि वली जाणीइ रे।
> आदित रे वार अनोपम ते कहिउ रे, तिणिदिन आदर आणि,
> भावइरे भावइ रे जिन ना गुण वखाणीई रे।

अन्त में कलश की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं- -

> इमि चैत्य प्रवाड़ी मनि रुहाडी रची अति सोहामणी।
> श्री पास पसाइं चित्तिध्याइं अठाहल्ल पाटण तेहतणी॥
> श्री सद्गुरु पामी धरउ धामी स्तवन रूपी सुहाकरो।
> संखेसरु श्री पास स्वामी सयल भुवनइ जयकरो॥[2]

आपकी दूसरी रचना 'चंदराजानोरास' ४ खंडों की विस्तृत रचना है, यह सं० १६५५ माह सुदी १०, गुरुवार को अणहिलपाटण में रची

१. जैन गुर्जर कवियो भाग २ पृ० २५१ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग २, पृ० २५२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई थी। इसका आदि देखिये—

मंगलकरण प्रणमु' सदा, महामंत्र नवकार,
नवपद ध्यातां पामीइ, संपद यश विस्तार।
सरसति भारति मुझ दीयु, सुन्दर वाणिविलास,
तुझ पय ध्यानि कवियरस विरचइ मनि उल्हासि।

चतुर्थ खंड के अन्त में चूलिका दी गई है, इसमें विस्तारपूर्वक गुरुपरंपरा और रचनाकाल आदि बताया गया है। सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

संवत सोल पंचावने अे, माघ मासि विचार तु।
सुकलपक्ष तसु जाणीइ' रे, दसमि तिथिइ' ते सार तु।
गुरुवार रचना करी अे, रोहणी क्षेत्र जोई तु।
भणे गुणे जे भावसिउं अे, तसु अे सुखकर होइ तु।
अणहलवाडे पाटण अे, ढंढेरवाडे जाणि तु।
साभलो पास सोहाकरु अे, नमिइ आणंद आणिसु।[1]

आपकी तीसरी रचना एक ऐतिहासिक स्तवन है। 'धंधाणी नु' स्तवन' उसे कहते हैं, वह सं० १६६९ माह वदी ४ को लिखी गई। रचना छोटी है, मात्र २५ कड़ी की है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ आगे उद्धृत की जा रही हैं—

श्री पद्मप्रभु ना पाय नामी, प्रणमु श्री जिनराय।
प्रगट थइ प्रतिमा घणी वाधे जग जसवाद।

यह मूर्ति शायद सं० १६६६ में प्रकट हुई थी। यथा--

विक्रम संवछर जाणीअे, छासठा धर सोल,
जेठ सुद अग्गारसे भविक हुओ रंगरोल।

रचनाकाल—संवत सोल उगणोतरा वरसे माहा मास मन आणो जी।
वद चौथे जिनवर जी भेट्या पून तासु ओधाणो जी॥
वरद्धमान प्रासादे कहीअे महिमा महीमा व्यापा जी।
श्री ललितप्रभसूरि सुखदायक सब पूरधर करी थापाजी।[2]

संभवतः स्थापना के अवसर पर ही यह स्तवन रचा गया हो।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २५४ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग २ पृ० २५१-२५४ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ३२०-२२ तथा भाग ३ पृ० ८२५-२७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

लाभोदय —ये खरतरगच्छीय भुवनकीर्ति के शिष्य थे। कयवन्ना रास, संखेश्वरस्तवन सं० १६७०, नेमिराजुल बारहमासा सं० १६८९, श्रीमंधरस्तवन आपकी प्राप्त रचनायें हैं।[1] कयवन्नारास की एक अपूर्ण प्रति पंचायती भंडार जयपुर में है। उसमें छठें खण्ड की नवीं ढाल तक का अंश ही है, इससे लगता हैं कि रचना काफी विस्तृत रही होगी। इन्होंने संस्कृत में 'आणंदसार संग्रह' नामक ग्रंथ भी लिखा है। नेमिराजीमती बारहमासा १५ कड़ी की छोटी किन्तु भावपूर्ण कृति है जो सं० १६८९ आसो शुक्ल १५ को लिखी गई थी। इसके आदि और अंत की पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

आदि सखी री सांभलि हे तूं बाणी, इम बोले राजुल राणी।
नेमजी मुझ जीवन प्राणी, तिण तोडी प्रीति पुराणी हो लाल।
नेमजी नेमजी करती, नेमजी ध्यान धरती हो लाल।

अंत सखीरी संवत सोल सौ निव्यासी, आसू पूनिम उजासी '
भणतां गुणतां सुख खासी, लाभोदय लील बिलासी हो लाल।
नेमजी नेमजी करती।[2]

यह कृति श्री देसाई के निजी संग्रह में थी।

संखेश्वर पार्श्व स्तवन (१७ कड़ी) सं० १६९५ मागसर वदी ९ को लिखा गया। श्री देसाई ने उसका रचनाकाल सं० १६७५ लिखा था किन्तु प्रति में स्पष्ट 'सोल पचाणुअे' लिखा है, अतः नवीन संस्करण में रचनाकाल सुधार कर सं० १६९५ कर दिया गया है जो उचित है। आपकी विस्तृत रचना कयवन्ना रास की प्रति खंडित होने से उसका उद्धरण नहीं प्राप्त होता है।[3]

लइआ ऋषि शिष्य —लाइआ ऋषि के किसी अज्ञात शिष्य ने संवत १६४० से पूर्व 'महाबलरास' लिखा। लाइआ ऋषि हीरविजयसूरि के समकालीन कर्ण ऋषि के शिष्य जगमल के शिष्य थे। सूरीश्वर अने सम्राट में इनका नाम लहुआ बताया गया है किन्तु

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८५

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २७९ द्वितीय संस्करण)

३. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५३४, भाग ३ पृ० १०२८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लहुआ और लाइया एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं। जगमाल को हीरविजयसूरि ने गच्छ से बाहर कर दिया था। इसलिए वह अपने शिष्य लहुआ के साथ पेटलाद जाकर वहाँ के हाकिम से मिला और हीरविजयसूरि को पकड़वाने के लिए सिपाहियों को भिजवाया। यह घटना सं० १६३० की बताई गई है और प्रस्तुत रचना सं० १६४० की है अत: लइआ और लहुआ एक ही व्यक्ति होंगे 'हु' का 'इ' पढ़ा जाना सम्भव है अतः लहुआ का लइआ पढ़ लिया गया होगा। इस रास की प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नलिखित है—

गौतम देव नमो सदा, लहीइ सवि सुषसम्पदा,
सारदा वाणी आपु निर्मलीइ।

उल्लास—निर्मली वाणी मुझनी आपु, मुक्तिइ सहित गुणवंती।
सुरवर नरवर मध्ये दीपइ, अेहवी सही सोभंती।
तेहि तणां प्रसाद थकी हूँ महाबलनु आख्यान।
बोलिसि युक्ति करी निसुणयौ पुरुसोत्तम परधान।[1]

रास की अन्तिम पंक्तियाँ भी नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं—

श्री ऋषि लाइया मोटा मुनिवर
तेह सिष्यि रचिउ रास रे, सोहामणा।
भणि गणि भावि करि श्रवणि,
सुणति मति उल्हासि रे, सोहामणा।
बेगि महारा भाइडा, दया रुडी परि राखि रे, सोहामणा।[2]

लाल—(जैनेतर) ये खडक देशीय जबाछ नगर के पोरवाड़ वणिक थे। इन्होंने सं० १६२४ आषाढ़ वदी ५, गुरुवार को 'विक्रमादित्यकुमार चौपाई' पूर्ण की। इसका आदि इस प्रकार है—

सरसति सामणि वीनवुं, मांगु अेक पसाय;
करजोड़ी कवियण कही, सारद तणइ पसाय।
ब्रह्मा बेटी वीनवुं हंसा वाहनी मात,
अक्षर पद जे उच्चरइ सारथ हो जे मात।

सरस्वती की वंदना के पश्चात् कवि ने जिनभगवान की वंदना के स्थान पर गौरीनन्दन की वंदना की है, इसीलिए इन्हें जैनेतर

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १७८ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग १ पृ० २४० और भाग ३ पृ० ७३०-३१ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माना गया है। रचनाकाल इन पंक्तियों में है—

संवत सोल चुवीसि साषि, मास असाढ़ होत ज पाष।
तिथि पंचमीनि गुरुवार, करी चौपई मोटी सार।
दूहा गीत सरस बातड़ी, सुणता पातग जाइं हरी।
जे भणसि गुणसइं नरनारि, तिहां घरि लक्ष्मीलालविलास।

रचना के अन्त में कवि ने अपना परिचय निम्न पंक्तियों में दिया है—

षडक देस नगरी जवाछ, नाति प्रागवाट पोरूवाड,
लाल कहि सुणजो तम्हें सहु, तिहां घरि ऊछव मंगलबहु।

जैन कवि हीरकलश ने सं० १६३६ में सिंहासन बत्तीसी कथा लिखी थी, उसमें कई अन्य कवियों के साथ इस कवि की भी चर्चा है, अतः लाल कवि का महत्व प्रमाणित है। कवि ने अपनी रचना के सम्बन्ध में लिखा है—

जे फल कन्या दीजि दान, जे फल कीधइ माघ सनान,
जे फल तीरथ दीधि दान, ते फल सुणतां श्रवणे कान।
एकमना हुई सर्वसिद्धि, ते पामि सवि अविचल रिद्धि,
राजरद्धि रामा परिवार, भलइं अणचीत्युं तेणिवार।[1]

लालचंद—आप खरतरगच्छीय आचार्य जिनसिंह सूरि के प्रशिष्य एवं हरिनन्दन के शिष्य थे। आपने मौन एकादशी स्तवन सं० १६६८, देवकुमार चौपइ सं० १६७२ (अलवर), हरीश्चन्द्ररास सं० १६७९ (गंधाणी), 'बीसी' सं० १६९२, रूपसेनचतुष्पदी (३३१ गाथा) सं० १६९३ और वैराग्य बावनी सं० १६९५ में लिखा।[2] इसी समय लालचंद नामक दो-तीन और कवि भी हो गये हैं। आपकी अन्तिम रचना वैराग्य बावनी पर हिन्दी प्रभाव और शेष रचनाओं पर गुजराती का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। वैराग्यबावनी की तुलना हीरानंद कृत 'अध्यात्मबावनी' से की जाती है।[3] वैराग्य बावनी (५१ कड़ी) सं० १६९५ भाद्रवा शुक्ल १५ को रची गई। रचनाकाल कवि ने इन

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खंड २ पृ० २१३०-३१ (प्रथम संस्करण)
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८३
३. डां० हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता पृ० १२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंक्तियों में बताया है —

संवत सोले पंचाण् वरसै, भाद्रवा पुनम हित जी,
मुनि वैरागे अधिकै भावै, जोड़ रची लालचंद जी।
हरषधरी वैराग्य बावनी, गुणसी जे नरनारी जी,
इणभव मांहे हरष पामसी, परभवे सुष अपार जी।

इसमें गुरु परंपरा इस प्रकार कही गई है—

खरतर गच्छपति सिंध सूरीसर, हीरानंद तसु सीसजी।
गुण लालचंद आतमकाजे, प्रतिबोध्या सुजगीस जी।[1]

हरिश्चन्द्र चौपई (३८ ढाल, गाथा ८०८) सं० १६७९ कार्तिक शुक्ल १५ धंधाणी में लिखी गई। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

शुभमति आपो सारदा, सरस वचन सरसत्ति,
ब्रह्माणी सहु विघन हर, भलो करे भारति।
चउवीसे जिनवर चतुर नाम हुवइ नवनिधि,
श्री गौतम गणधरसधर, सदा करो सांनिधि।

इसमें गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई गई है—

षरतरगछनायक खरो, जंगम जुगपरधान,
श्री जिनसिंह सूरीसरु नमीयइ सुगुणनिधान।
विनयवंत विद्यानिलो गणि हीरनंदन गाय,
गुरु सुपसायइ गायसुं, रंगइ हरिचंदराय।

रचनाकाल—संवत निधि मुनि ससिकला कातिगी पूनिमचंद्र,
चउसाल कीधी चउपइ, ललति गति दो गणिवर लालचंद।

श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४८१ पर हरिश्चंद्र चौपई को हरिनंदन की रचना बताया था बाद में भाग ३ पृ० ९७०-९७१ पर सुधार कर लालचंद कृत बताया है।

इस रचना का विवरण कवि ने इन पंक्तियों में दिया है—

ग्रंथाग्र गाथा गोपठी, सहु अष्ट गगन सुसिद्ध,
अठतीस ढाल अछइ इहाँ, पुन्यवंता हो करीजो परसिद्ध।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १७४-१७६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहिल कीआ अरु जनपुरी, नइ हिव धंधाणा नाम,
तिहां जैन प्रतिमा सिवतणी, अे प्रगटी हो जिहांकणि अभिराम।[1]

देवकुमार चौपइ (अदत्तादान विषये) सं० १६७२ श्रावण शुक्ल ५, को अलवर में लिखी गई। 'मौन एकादशी स्तवन' एकादशी व्रत के माहात्म्य पर रचित एक स्तवन है और बीसी में जिनभगवन्तों की स्तुति है। सभी रचनाओं का विवरण-उद्धरण स्थानाभाव के कारण दे पाना संभव नहीं है। रूपसेन चतुष्पदी या चौपाई विस्तृत रचना है। इन रचनाओं की सूची और कुछ रचनाओं के नमूने देखकर यह सहज ही अनुमान होता है कि लालचन्द अच्छे कवि थे।

लालविजय - तपागच्छीय कल्याणविजय के शिष्य शुभविजय आपके गुरु थे। शुभविजय (हीरविजयसूरि शिष्य) तर्कभाषावार्तिक, काव्य कल्पलतावृत्ति मकरंद, स्याद्वादभाषासूत्रवृत्ति, सेन प्रश्ननो संग्रह आदि ग्रन्थों के रचयिता कहे गये हैं। लालविजय के गुरु शायद यही शुभविजय रहे हों। लालविजय ने भी प्रभूत साहित्य रचा है, जिसमें से बहुत रचनायें प्रकाशित भी हो चुकी हैं। आपकी निम्न रचनाओं के विवरण उपलब्ध हैं—'महावीर स्वामी नुं २७ भव स्तव', ज्ञाताधर्म ओगणीस अध्ययन संज्झाय, नंदनमणियार रास, घी संज्झाय, द्वादसमास आदि। इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

महावीर २७ भव स्तवन' (६ ढाल) सं० १६६२ विजयादशमी, आद्रियाणां में लिखी गई। यह जैन काव्यप्रकाश भाग १-२ में प्रकाशित है। इसमें कवि ने अपनी गुरु परंपरा इस प्रकार बताई है—

श्री वीरपाट परंपरागत, श्री आणंदविमल सूरीसरो,
श्री विजयदान सूरि तास पाटे, श्री विजयदेवसूरि हितधरो।
कल्याणविजय उवझाय पंडित, शुभविजय शिष्य जयकरो।

रचनाकाल—

संवत सोल बासठे तो भ० विजयदशमी उदार तो,
लालविजये भगति कह्युं तो भ०, वीर जिन भवजल तारतो।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १७४-१७६ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० १८-१९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री देसाई ने इस रचना का कर्ता भूल से शुभविजय को बताया था, बाद में सुधार दिया गया।

ज्ञाताधर्म ओगणीस अध्ययन सं० १६७३ आषाढ़ बदी ४ रविवार छठियाडा में लिखी रचना है। इसका रचनाकाल कवि ने इन पंक्तियों में बताया है—

संवत सोल त्रिहुंतरि संवत्सरे, आदितवारे आसाढ़ मासे,
शुभविजय शिष्य लालविजय अेणि परि कहे भणे गुणे।

'घी संज्झाय' प्रकाशित हो चुकी है। नंदनमणियार रास और घी संज्झाय का उद्धरण नहीं प्राप्त हो सका। विचार संज्झाय ५ कड़ी की छोटी रचना है। इसके आदि और अन्त की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

आदि—प्रथम धरुं सहुगुरु नाम, जिम मनवंछि जै काम।

अन्त—शुभविजय सीस लालविजय कहई,
सुयगडांग वृत्ति थी लहई।

सुदर्शन संज्झाय (४२ कड़ी) सं० १६७६ मागसर की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिये—

श्री गुरुपद पंकज नमी हुं मांगु वचन विलास,
सुदर्शन शियल बखाणीइ, हुछूं तुम्ह पाये दास।

रचनाकाल—संवत सोल सितोतरे, मागसिर कड़ी मझारि,
श्री पार्श्वनाथ पसाउलउ, शीले काम कीधुं उदार।

भरतबाहुबल संज्झाय (३१ कड़ी) इसमें भी उपरोक्त गुरुपरंपरा दी गई है। कयवन्नाऋषि संज्झाय (१४ कड़ी) कयवन्ना को दान के प्रभाव से मुक्ति मिली थी उसी का दृष्टान्त इसमें दिया गया है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

अे हवे विर आव्या, साते स्त्री जूओ साथे,
दीक्षा लीधी तिहां साचा श्री गुरु हाथे।
लट काली तिणें भुगत न पामी, ते तो दान प्रभावे,
उतमना गुण लेइ देइ कर्यो संज्झाय सुभ भावे।[1]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४८७-८९, और भाग १ पृ० ५९३-९४ तथा भाग ३ पृ० ९६९-७० और भाग ३ पृ० १०८६-८७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिनाथ द्वादसमास एक बारहमासा है। यह २६ कड़ी की सरस, भावपूर्ण रचना है, इसकी भाषा हिन्दी है। इसके प्रारम्भ और अन्त की कड़ियाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

आदि-- बीनवि उग्रसेन की लाडली कर जोरि
के नेम कै आगि खरी,
तुम काहि पिया गिरनार चढ़े,
हमसे तो कहो कहा चूक परी।
यह वेस नहीं पिया संजम की तुम
काहीं कुं येसी विचित्र धरी।
कैसे बारहमास बीतावोगे, समझावोगे मुझि याह धरी।

अन्तिम २६वीं कड़ी इस प्रकार है—

बारह मास जो पूरे भये तब नेमकु राजल जाय सुनायो,
जामें द्वादश भात वणी तव पीछे से राजलकुं समझायो।
राजलवी तब संजम लेकर निर्जरा के
वश निज कर्म्म जलायो,
राजल के यत नेम जिणंद है,
उत्तर लालविजै विधि गायो।[1]

प्रस्तुत बारहमासे में लालविजय का नाम तो है किन्तु गुरुपरंपरा नहीं दी गई है इसलिए यह शंका की जाती है कि शायद यह रचना किसी अन्य लालविजय की हो किन्तु जब तक ऐसा प्रमाणित न हो जाय, केवल शंका के आधार पर इसे किसी अन्य की रचना मान लेना युक्तिसंगत नहीं लगता। इसकी सरसता के उदाहरणार्थ चार पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

बड़ाई कहा करीये मुनिराजुल जीवन हे निसिको सुपनो,
सुत बंधव बंधु सब जात चले जलबुंदन सो नीतनो अपनो।
दिग च्यारन के मजमांन सबे
चिरता न रहा कछु सबही अपनो,
तिहां ते यह जांणि आनंद सबे
अमरे अब सिद्धन को जपनो।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १८-२२ (द्वितीय संस्करण)

२. वही पृ० २१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लावण्यकीर्ति—ये खरतरगच्छीय ज्ञानविलास के शिष्य थे। हरिबल चौपाई सं० १६७१ जैसलमेर, पुरोषोदय धवल, गजसुकुमाल चौपइ, देवकी छ पुत्र रास, आत्मानुशासन गीत और रामकृष्ण चौपाई इनके उपलब्ध काव्य ग्रन्थ हैं।[1] रामकृष्ण चौपइ अथवा रास ६ खण्डों में ६८ ढाल युक्त १२०० कड़ी की विस्तृत एवं महत्वपूर्ण रचना है। इसमें कृष्ण और बलराम के चरित्र चित्रित हैं। यह वैशाख शुक्ल ५, सं० १६७७ में ओसवाल भंसाली बाघमल के आग्रह पर लिखी गई थी। इसकी रचना विक्रमपुर या बीकानेर में सम्पन्न हुई। इसका आदि इस प्रकार हुआ है—

जगत आदेकर जगतगुरु, आदिसर अरिहंत,
विघनहरो सेवक तणां भयभंजण भगवंत।

इसमें नेमि, पार्श्व और वर्धमान की स्तुति की गई है। कवि कहता है कि महापुरुषों का चरितगान करने से जीव पाप रहित होता है और संसार सागर से तर जाता है—इसीलिए वह रामकृष्ण का गुणानुवाद करता है। इसमें रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

राजइ सूरजसिंह नरिंद नइं विक्रमपुरि गहगाह,
संवत सोलहसय सतहत्तरइ, सुदि पंचमि वइसाह।

आगे कवि ने आग्रहकर्त्ता माघमल्ल के सुपुत्र का इन पंक्तियों में उल्लेख किया है—

जेंतमाल सुत धीर सधरसही, माघमल्ल वर जास;
पुत्ररयण तस सुपुरिस परगडो, धरम करम घर नाम।
तेह तणे आग्रह मन आंणियइ, जांणी लाभ विशेष;
हेमसूरि कृत नेमिसर तणो, चरित्रभणी परिदेख।[2]

श्री देसाई ने इन्हें क्षेमशाखा (खरतर) में गुणरंग का प्रशिष्य एवं ज्ञानविशाल का शिष्य कहा है किन्तु कवि ने रामकृष्ण चौपइ में अपने को ज्ञानविलास का ही शिष्य कहा है। यथा—

षेमसाखि जाणीता जगन्नमइ वाचक श्री गुणरंग,
तासु सीस वाचक गुरु चिरजयउ ज्ञानविलास अभंग।[3]

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८४-८५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २११ (द्वितीय संस्करण)
३. वही पृ० २१० और भाग १ पृ० २१७-१८ तथा भाग ३ पृ० ९९२-९४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गजसुकुमाल रास और देवकी ६ पुत्र चोपाई संभवतः एक ही रचना के दो नाम हैं, जो हो, यह विशेष रूप से मूल पाठों का मिलान करके ही निश्चय किया जा सकता है। यहाँ गजसुकुमालरास से कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है—

वंदीवा छुड़ावीया रे, सगला नगर मझारो,
मुहमांग्या दीधा घणा रे मणमाणकभंडारो।
महमाण कवहुं दीधा देषी, मनरी अेछा कोइ न राषी,
लावणकीरती ढाल ज भाषी, चोथी पांचमी अे तहु साषी,
जी माताजी जी हो।

दूहो—हाथी नो हु त्रेतालवो, देवकी सुत सुकमाल,
बालक जनम्यो तेहवो नामै गजसुकुमाल।

भाषा में संगीत सुलभ लय और गेयता है, ऐसा प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कवि ने अनेक लोकप्रिय धुनों या देसियों का प्रयोग किया है।

लावण्यभद्रगणि शिष्य (गद्यकार)—आपकी रचना 'सत्तरी (कर्म) बालावबोध'—यह मूलतः चंदमहत्तर की प्राकृत रचना पर लिखित बालावबोध है। इसकी गद्य भाषा का नमूना प्रस्तुत करने के लिए कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

आदि — मुक्ति ना काम सुखनइ विषय
दीपावणहार अेहवउ श्री सिद्धांत जयवंतु वर्त्तउ।
कुबोधरूपी आतापे करी आताव्या जीवनइं
अे श्री सिद्धान्त मलयाचल ना वाय समान छइ।
ते भणी अे सिद्धान्तनइं नमस्कार करुं।

अन्त— चंद महत्तर····महासती (महाशतक)
नइ अणुसारि कही सत्तरि गाथा कहीइ।
निर्युक्तिकार नइ मति निश्चइ ऊणी निऊ गाथा।
अेता निव्यासी आथा हुई।[1]

---

1. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३६० (द्वितीय संस्करण)
टिप्पणी—श्री मो० द० देसाई में इस बालावबोध में महासती शब्द को देखकर ग्रन्थकर्ता को चन्द्रमहत्तरा मान लिया वस्तुतः सत्तरी के कर्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लूणसागर— आपके सम्बन्ध में कोई विवरण उपलब्ध नहीं हो सका। आपकी प्राप्त रचना 'अंजना सुन्दरी संवाद' का रचनाकाल सं० १६८९ ज्ञात है।[1]

वच्छराज —आप पार्श्वचंद्र के प्र-प्रशिष्य समरचंद्र के प्रशिष्य एवं रत्नचरित्र के शिष्य थे। आपने सं० १६४२ माघ सुदी ५ गुरुवार को त्रंबावती (खंभात) में १४८४ कड़ी की एक विस्तृत रचना 'सम्यकत्व कौमुदी रास' नाम से लिखी। कवि की भाषा शैली और अन्य सूचनाओं से सम्बन्धित पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

प्रारम्भ— वीर जिणवर वीर जिणवर सुगुण भंडारइ,
सर्व संघ कल्याणकर जासु तित्थ जयवंत जागइ,
मनवंछित फल ते लहइ, जब जीव तसु चरण लागइ।
अकलरूप तिहुअण तिलउ, त्रिभुवनु आधार,
चउवीस जिनपति नमुं जिमलहउं हर्ष अपार।
बड़तपगछ बड़तपगछ श्री पासचंद सूरीसर,
तसु पय प्रणमी हुं रचउं सरस सार संबंध।
श्री समकित गुण कौमुदी, विमल कथा प्रबंध।

गुरुपरंपरा—श्री महावीर सोहम गणधार, तास परंपर आव्या सार,
बड़तपगछ नायक मुनिचंद, श्री पूज्य पासचंद सूरि।
तास पटोधर अधिक जगीस, श्री समरचंद सूरींद सुणीस।
तास पाटि प्रभावक भला श्री राजचंदसूरि चडती कला।
श्री समरचंदसूरि सीस पवित्र वाचक श्री रत्नचरित्र,
तास सीस रची चुपई, गुरुप्रसादि पूरी थई।[2]

रचना स्थान— त्रंबावती नगरी सुखबास, थंभण श्री नवपल्लव पास,
तास प्रसादि रची चुसाल,
श्री समकित गुण कथा रसाल।

चन्द्रर्षि महत्तर माने जाते हैं। महासती अनुसरई से बालावबोधकार का तात्पर्य शती का अनुसरण करके लिखा गया (सत्तरी नामक ग्रन्थ)- महा विशदता का सूचक है।—(डा० सागरमल जैन)

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५४७ (प्रथम संस्करण)

२. वही भाग २ पृ० १९२-१९३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

रचनाकाल— संवत सोल बइताला तणउ,
माघ मास अति रलियामणऊ ।
ऊजलि पाख पंचमि गुरुवारि, सिद्धियोग शुभमुहूर्तसार ।
अंत— समकित सहित जिनभाषित धर्मं,
आचरंता हुई शिवपदशर्मं ।
ऋषि वछराज कहि आणंद आणि,
नवखंड ऊपरि चूलिका जांणि ।

नीतिशास्त्र पंचाख्यान (पंचतन्त्र) चौपाई अथवा रास (३४९६ कड़ी) सं० १६४८ आसो शुदी ५, रविवार को पूर्ण हुआ। इसमें कवि ने अपने गुरु का नाम रत्नचरित्र के बजाय रतनचंद लिखा है, इसलिए श्री देसाई ने नाम 'रत्नचंदचारित्र' लिखा है। कवि की पंक्तियाँ देखिए—

श्री समरचंदसूरि शिष्य उदार,
श्री रतनचंदपंडित तस विचार।
श्री गुरु नो पामी सुपसाय,
गणि वच्छराज जिन प्रणमइ पाय।

शेष गुरुपरंपरा पूर्ववत् है। यह रचना विष्णुशर्मा कृत पंचतन्त्र पर आधारित है, यथा—

विष्णुशर्मा ब्राह्मण मतिनिलउ,
श्री गोडन्याति बडउ कुलतिलउ।
सरस कथा तिणि कही केलवी,
पञ्चाख्यान आव्या अभिनवी।

रचनाकाल—संवत सोल अड़ताला तणइ,
आसू मास अति रलियामणइ।
पञ्चमतिथि उत्तम रविवार,
शुभ मुहूरत अे कीधी सार।[1]
सरजल थी उपजे शतपत्र, गंधपवन विस्तारइ तत्र,
तिम उत्तम करइं उपगार,
परगुण ग्रहण रसिक सविचार।
दूहा श्लोक काव्यनइं वस्तु, आर्या चउपइ मिली समस्त,
सर्वअंक गणतां चउपइ, चउत्रीस सय छनुं सविथइ।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १९२-१९३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि की काव्य प्रतिभा का नमूना देखने के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

सोमकला गुणि चंद्रमा श्री पासचंद सूरिराय,
भवजल तारण पोत सम, प्रणमुं तेहना पाय।
जगि जे जे विद्या अछि ते सवि सुगुरु प्रमाणि,
तेल विन्दु जिम जलि मिल्यउ पसरइ संसयमाणि।
जउ गुरु तूसी भाव स्यउं अक्षर एक दीयंति,
वटवृक्षना बीज जिम, सय साखइ पसरंति।[1]

इसके मंगलाचरण की कुछ पंक्तियाँ देकर इनका विवरण समाप्त किया जा रहा है—

आदि जिणवर आदि जिणवर विमलगुण गेह,
त्रिभुवनमंडन जगि जयउ, सकलमंगलवृद्धि कारक.
लोकालोक प्रकाशकर नाणमाण जगजीव तारक।
नाभिराय मरुदेवि सुत मनवांछित दातार,
परमपुरुष अे प्रणमता सुखसंपत्ति फलसार।[2]

वर्द्धमान कवि—आप भट्टारक वादिभूषण के शिष्य थे। आपने सं० १६६५ में भगवान महावीर पर 'भगवाम महावीर रास' लिखा। यह रचना भगवान महावीर के जीवन पर आधारित हिन्दी रचनाओं में पर्याप्त प्राचीन तो है ही, काव्यत्व की दृष्टि से भी अच्छी है। इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि अग्रवाल दिगम्बर जैनमंदिर उदयपुर में सुरक्षित है।[3] वर्द्धमान कवि ब्रह्मचारी थे। इससे अधिक इनके सम्बन्ध में सूचना नहीं मिल सकी है। ग्रंथ रचना से सम्बन्धित पंक्तियाँ आगे दी जा रही हैं—

संवत सोल पासठि मार्गसिर सुदि पंचमी सार,
ब्रह्म वर्द्धमान रास रच्यो, तो सांभलो तम्हें नरवार।[4]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १९२-१९७ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग १ पृ० २६९-२७४ और भाग ३ पृ० ७६७ (प्रथम संस्करण)
३. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—'राजस्थानी पद्य साहित्यकार'–राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २१०
४. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—प्रशस्तिसंग्रह पृ० ३३ और राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची ५ वां भाग पृ० ६४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बल्हपंडित शिष्य (संभवतः जैनेतर)—सं० १६६२ से पूर्व रचित 'कुकडामार्जारी रास' का लेखक पहले तो श्री देसाई ने वल्हपंडित को ही बताया था किन्तु रचना की निम्न पंक्तियों से लेखक वल्ह पंडित का शिष्य ही मालूम पड़ता है, यथा —

प्रथम कि प्रणमौं गणपति देव,
काजसिद्धि जिउ करइ ततखेव।
गवरीशंकर भल उतपति जास,
कहइ वल्ह पंडित कइ दास।

इसके आधार पर जैन गुर्जर कविओ के द्वितीय संस्करण (भाग ३ पृ० ४) में संपादक ने इसे वल्ह पंडित के शिष्य की रचना बताया है। कवि ने इसमें 'जिन' शब्द का ऐसा क्लिष्ट प्रयोग किया है, जिससे जैनतीर्थङ्कर और 'मातापिता' दोनों अर्थ निकाले जा सकते हैं; फिर भी संभावना यही है कि वह जैनेतर है, वैसे जैन कवि भी कभी-कभी गणेश की वंदना करते हैं—संदर्भित पंक्तियां इस प्रकार हैं—

फुनि दूजइ सारदमनि धरइ, कवित काव्य तस तूठइ करइ।
लाडु कुसुममाल कर लेई, विनायकु हम सिद्धि बुद्धि देई।
अवरे मात-पिता प्रणवाऊं, हउं बलिहारी तिसकइं जाऊँ।
'जिन' प्रसाद दीर्षै संसार, तिन तूठा होइ मोक्षदुवार।

यहाँ जिन स्पष्ट हीं सर्वनाम है और माता-पिता के लिए प्रयुक्त हुआ है किन्तु जैन तीर्थङ्कर का अर्थ भी लगाया जा सकता है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—

मांजरी तणी सोक रति करइ,
जिणि छंदि लीअउ तिणिहि उतरइ।[1]

श्री देसाई ने विल्ल या विल्ह नामक किसी कवि की एक अनाम रचना (३०४ छंद) के केवल अंतिम दो-तीन छंदों को जैन गुर्जर कविओ में उद्धृत किया है। रचना-कर्ता ने उन दो तीन छंदों में दो बार अपना नाम बिल्ह ही दिया है, यथा—

बारमासि विल्ह उच्चरइ सदीयल तु कयर कप्पतर।
या सुकवि विल्ह इम उच्चरइ, स्त्री विसास झुणि कोइ करइ।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४६३ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० ४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन पंक्तियों के आधार पर कवि का नाम विल्ह ही ठीक जंचता है। संभवतः वह रचना स्त्री के मायावी या छली रूप को व्यक्त करने के उद्देश्य से लिखी गई है। हो सकता है कि ये वे ही विल्ह हों जिनके शिष्य ने 'कुकडा मार्जारी रास' लिखा है। इस सम्बन्ध में सतर्कता पूर्वक शोध की आवश्यकता है।[1]

वस्तुपाल(वाचक)–तपागच्छ के पार्श्वचंद्रसूरि की परम्परा में आप विजयचंद्रसूरि के प्रशिष्य एवं हीरमुनि के शिष्य थे। आपने हंसवच्छ-राज़ प्रबन्ध अथवा चौपाई लिखी है। इसका प्रथम खण्ड ही प्राप्त है। इसमें कुल कितने खण्ड थे और यह रचना किस संवत् में की गई थी यह पता नहीं चल पाया है क्योंकि प्रति प्रथम खंड के पश्चात् खण्डित है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं––

श्री गुरुचरण कमल नमूं, सुमति सुख दातार,
मूरख थी पण्डित हुवे, ते श्री गुरु आधार।

अन्य जैन कवियों के समान वस्तुपाल भी ढालों-देसियों, धुनों और रागों के प्रयोग में प्रवीण हैं। इन्होंने केवल प्रथम खंड में १६ ढालों का प्रयोग किया है जैसा निम्न पंक्तियों से प्रकट होता है––

सोलवी ढाल अे पूरीथइ, बीरहे बीथा विहु दूरे गई,
सुणता भणता लहीजे भोग, मनवंछित मानवसंजोग।
पहेलो खण्ड अे पुरो थयो, हंसावती नृप मेलो हुयो,
वणारसी कहे वस्तुपाल, पुण्ये पहुंचे मनोरथ माल।[2]

प्रथम खंड के अन्त तक कथा हंसावती और बच्छराज के मिलन तक पहुंच गई है, यह रचना दान के माहात्म्य पर आधारित है, कवि ने लिखा है–

कोतुहल मन आवीयो करुं कथा परबंध,
हंसवच्छ बंधवतणो रचुं सरस सम्बन्ध।
दानै दुरीत सवी टलै हंस वछ जिम जाण,
दान थकी संपद लह्या, करुं तास बखाण।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० २१४१ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग २ पृ० २५४-२५५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना में लेखक ने अपनी गुरु परंपरा इस प्रकार दी है—

श्री पूज्य पासचंद सूरीराय, पाट पटंबर सोभ सवाय,
पूज्य श्री विजयचंद सुरिंद, बीजयवंत सदा आणंद।
हंस वच्छ नो अे प्रबंध, सुणता सरस लागे सम्बन्ध।
सुरगुरु समबड श्री गुरुराय, श्री हीर मुनि तसु प्रणमे पाय।[1]

चूंकि विजयचंद सूरि का समय १७वीं शताब्दी निश्चित है इसलिए उनके शिष्य हीर के शिष्य वस्तुपाल का रचनाकाल अवश्य ही १७वीं शताब्दी रहा होगा।

ब्रह्मवस्तुपाल—आप दिगम्बर सरस्वतीगच्छ के भट्टारक शुभचन्द्र के प्र-प्रशिष्य सुमतिकीर्ति के प्रशिष्य एवं गुणकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६५४ आषाढ़ शुक्ल ३ सोमवार को सावली में अपना प्रबन्ध 'रोहिणी व्रत प्रबन्ध' पूर्ण किया था। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

वासुपूज्य जिन वासुपूज्य जिन नमु ते सार,
तीर्थंकर जे बारमो मनवांछित बहुदान दातार सार अे,
अरुण वरण सोहामणो सेव्यां विधि सुखतार अे।
बाल ब्रह्मचारी रुवडो सत्तरिकाय उन्नत सहुजल,
वसुपूज्य राज्यनंदन निपुण विजया देवी मात कुक्षिनिरमल।
जास पसाईं जाणीयि कवित कला सुविचार,
विघन सवि दूरि टलि मंगल वर्ति सार।

दूहा पुत्री आर्यिका जेह तारे स्त्रीलिंग करीय विणास,
सरगि गया सोहामणा पाम्या देवपदवास।
रोहिणी कथाव्रत सांभली रे श्रेणिक राजा जाणि,
नमोस्तु करी निज थानि गयो भोगवि सुख निर्वाण।[2]

कवि ने दिगम्बर सम्प्रदाय के मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कार-गण के भट्टारक शुभचंद्र से लेकर गुणकीर्ति तक का गुणगान करने के

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७६६-६७ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग २ पृ० २९६-२९७ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ८२३-८२४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद लिखा है—

तस्य पदपंकज मधुकर गुणकीरति सुविशाल,
तस्य चरणे नमी सदा बोले ब्रह्म वस्तुपाल ।

रचनाकाल—विक्रमराय पछि सुणो संवछर सोल सार,
चोपनो ते जाणीइ आषाढ़ मास सुखकार ।
श्वेतपक्ष सोहामणो रे तृतीयानी सोमवार,
श्री नेमि जिन भुवन भलुं रे रास पुरु हवो तार ।
भणि गुणि जे सांभली मनि आणी बहुभाव,
ब्रह्म वस्तुपाल सुधुकहि तेहनि भवजल नाव ।[1]

वसु, वासु या वस्तो—श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ में १७वीं शताब्दी के जैनेतर कवियों की सूची में वसु, वस्तो या वासो का विवरण दिया, किन्तु कवि की रचना 'सगालशा शेठ चौपई' (सं० १६४७ से पूर्व) के प्रारम्भ में 'श्री राजमूर्ति गणि गुरुभ्यो नमः' लिखा है। राजमूर्ति गणि की वंदना प्रतिलिपिकार ने की है पर यह पता नहीं कि लेखक का जैन धर्म से सम्बन्ध था अथवा नहीं। इस कथा पर आधारित 'सगालशा रास' की रचना इसके पश्चात् जैनकवि कनकसुन्दर ने की है। यह रचना प्रकाशित है। वसुविप्र द्वारा विरचित एक रचना 'विक्रमराय चरित्र' भी उपलब्ध है और श्री देसाई का अनुमान है वसुविप्र (विक्रमराय चरित्र के लेखक) और वस्तो या वासु (सगालशा शेठ चौपई के लेखक) एक ही व्यक्ति हैं। दोनों रचनाओं के प्रारम्भ में गणेश वंदना है, दोनों में कोई गुरुपरंपरा नहीं दी गई है, इसलिए अनुमान होता है कि यह कवि जेनेतर हैं, विप्र हैं और इन्होंने दोनों रचनाओं का निर्माण किया है। दोनों रचनाओं की कुछ पंक्तियाँ यत्र-तत्र से उद्धृत कर रहा हूँ—

सगालशा० शेठ चौपई का प्रारम्भ—

प्रथम गणपति वीनवूँ, सरसति लागूं पाय,
कर्णकथा हूँ वीनवूँ जउमति आपु माय।

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डार की ग्रन्थ-सूची ५ वां भाग पृ० ४७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमरायचरित्र का प्रारम्भ—

श्रीवर दी वरदायक सदा, गजवदन गुणगंभीर,
एकदंत अगोनीसंभव, सबल साहस धीर।

इसमें कवि ने अपना नाम विप्रवसु लिखा है, यथा—

कवि विप्र वसु अेम भणि, करजोड़ी लागूँ पाय,

दूसरी जगह अपना नाम वस्तो भी लिखा है—

कवि वस्तो कहि करजोड़ी, विक्रम नामि संपद कोडि।

सगालशा शेठ के अन्त में लिखा है—

धर्मकथा जे श्रवणे सुणि, जाइ पाप तस वैष्णव भणि।
सांभलतां सुख पामी सोय, बंधव पुत्र वियोग न होय।
सुणी कथा जे दीई दान, नरनारी ने गंगसनान,
जाइ तीर्थ जाय फल हरि, कर्ण कथा कवि वासु कहि।[1]

इस प्रकार वह विप्रवसु, वस्तो, कवि वासु आदि कई नाम लिखता है। विक्रम चरित्र का लेखक तो निश्चय विप्र वस्तु या कवि वस्तो जैनेतर हैं। सगालशा शेठ चौपई का लेखक अपने को विप्र के स्थान पर वैष्णव कहता है इसलिए यह भी जैनेतर ही है और संभव है कि दोनों एक ही व्यक्ति हों। सगालशा चौपई में दानी कर्ण की कथा के उदाहरण से दान का माहात्म्य बताया गया है और विक्रमचरित्र में विक्रमादित्य के परकाया प्रवेश की कथा दी गई है। इनके रचयिता भले जैनेतर हों पर इनका प्रतिलिपि लेखन और संरक्षण जैनभंडारों में हुआ है और मरुगुर्जर भाषा में होने के कारण ये मरुगुर्जर की रचनायें हैं।

वादिचन्द—ये दिगम्बर सम्प्रदाय में मूलसंघ के थे। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—भट्टारक विद्यानंदी > मल्लिभूषण > लक्ष्मीचंद्र > वीरचंद्र > ज्ञानभूषण > प्रभाचन्द्र। आप प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। आपने संस्कृत में पार्श्वपुराण लिखा जिसकी श्लोक संख्या १५०० है। यह कृति कार्तिक शुक्ल ५ सं० १६४० में वाल्हीकनगर में रची गई। आपका 'ज्ञान सूर्योदय' नामक नाटक बड़ा लोकप्रिय था। कालिदास

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० २१४२-४५ (प्रथम संस्करण) और भाग १ पृ० ४६१ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृत मेघदूत की तरह आपने 'पवनदूत' नामक एक सरस खंडकाव्य लिखा है। यशोधर चरित्र सं० १६५७ में लिखा गया। मरुगुर्जर में आपने श्रीपाल आख्यान, भरतबाहुबलिछंद, आराधना गीत, अम्बिका कथा और पाण्डव पुराण नामक रचनायें की हैं, इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीपाल आख्यान—नाथूराम प्रेमी इसे गीतिकाव्य बताते हैं। इसकी रचना संघपति धनजी के कहने पर सं० १६५१ में हुई। इसमें नौ रसों का समावेश है और अधिकतर दोहे तथा चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है। इसका मंगलाचरण प्रस्तुत है—

आदिदेव प्रथमि नमि, अंति श्री महावीर,
वाग्वादिनी वदनेनमि, गरुउ गुणगंभीर।

सरसति सुभमति पाये अणुंसरि, गोर गरुआ गोयम मन धरि।
बोलुं एक हुं सरस आख्यान, सुणजे सज्जन सहु सावधान।'

गुरु परम्परान्तर्गत कवि ने विद्यानंदी से प्रभाचंद तक के गुरुओं को नमन किया है और लिखा है—

जगमोहण तसुपाट उदयु, वादिचंद्र गुणालय जी,
नवरस गीति जिणि गाऊं चक्रवर्ति श्रीपालजी।[1]

रचनाकाल —संवत सोल अेकावना से, कीधुं अेय संबंध जी,
भवियण थीर मन करि निसुणयो,
नितनित अे संबंध जी।

रचना का उद्देश्य —

दान दीजिजिनपूजा कीजि, समकित मन राखिजे जी,
नवकार गणीइ सूत्र ज भणीअे,
असत्य वचन नव भाखीजि जी।

जगह-जगह पर कवि ने इसे गीत कहा है, संभवतः इसीलिए प्रेमी जी भी इसे गीत कहते हैं पर वस्तुतः इसमें गीतकाव्य की गेयता छोड़कर अन्य तत्व नहीं हैं।

भरतबाहुबलिछंद-(५८ कड़ी) की अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

कोशल देश अयोध्या सोहीइ, राजा ऋषभ सहुमन मोहीयइ,
घरि दो सोहीइ अनोपम राणी, रूपकला जीपइं इन्द्राणी।

---

१. डा० प्रेम सागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आराधना गीत (२८ कड़ी) एक मुक्तक भक्तिकाव्य है। इसका प्रारम्भ देखिये—

श्री सरसती नमी वर पाय, गोरुआ गणधर राय,
कहुं आराधना सुविशेष, सुणे पाप न रहे लवलेस।

अन्त— वादिचंद्रसूरि प्रतिबोध, सुणी करज्यो म निरोध,
आराधना कह्यो विचार, सुणि सांय जे सुखभंडार।[1]

अम्बिका कथा—इसमें देवी अम्बिका के प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित किया गया है। यह रचना श्री अगरचंद नाहटा द्वारा अनेकान्त वर्ष १३ किरण ३-४ में प्रकाशित है।[2]

पाण्डवपुराण—यह रचना सं० १६५४ में नौधक में की गई। इसकी प्रति तेरह पंथी मंदिर, जयपुर में सुरक्षित है।

पवनदूत (पद्य संख्या १०१) मेघदूत के ढंग की रचना है। यशोधर चरित (सं० १६५७) और सुलोचना चरित सं० १६६१ में लिखित रचनायें हैं। श्री नाथूराम प्रेमी ने जैन साहित्य और इतिहास में इनकी एक अन्य रचना पार्श्वपुराण का भी उल्लेख किया है। ये रचनायें संस्कृत में लिखी गई हैं इसलिए इनका विवरण-उद्धरण नहीं दिया है। वादिचंद ने संस्कृत और हिन्दी (मरुगुर्जर) में पर्याप्त साहित्य लिखा है और वे अपने समय के अच्छे विद्वान् तथा संत थे।

विक्रम—मेघदूत के ही ढंग का एक काव्य 'नेमिचरित' इन्होंने लिखा है लेकिन इसका विवरण इतना ही ज्ञात है कि इसमें राजीमती का विरह विलाप कालिदासकृत मेघदूत के प्रत्येक श्लोक के चौथे चरण को अपने श्लोक का चौथा चरण मानता हुआ काव्यबद्ध किया गया है। काव्य अवश्य भावपूर्ण, सरस और विद्वत्तापूर्ण होगा किन्तु यह संस्कृत में रचा गया है, इसलिए हमारी सीमा में नहीं आता। विक्रम अच्छे कवि थे, परन्तु इन्होंने मरुगुर्जर में भी कुछ रचा है या नहीं, यह ज्ञात नहीं है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७०-२७१ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ८०३-८०५ (प्रथम संस्करण)

२. डा० प्रेम सागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० १३७-१४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजय कुशल शिष्य —तपागच्छ के विजयदेवसूरि के शिष्य विजय कुशल के किसी अज्ञात शिष्य ने सं० १६६१ में 'शीलरत्न रास' का सामेर (जि० उज्जैन) में प्रारम्भ करके उसे मदनजी तीर्थ में पूरा किया। कवि रास में लिखता है—

श्री मगसी पास पसाउलि, कीधउ रास रतन्न,
भविक जीव तमे सांभलो, करयोशील जतन्न।
सामेर नगर सोहामणो, नयर उजाणी पास,
बाडी बनसर सोभतुं, जिहां छि देवनी वास।

रचनाकाल —संवत सोलअेकसठि कीधउ रास रसाल,
शीलतणा गुण मीं कही मुकी आल पंपाल।

गुरुपरंपरा —विजयकुशल वैराग्य थी, जाणी अथिर संसार,
छती ऋद्धि छाड़ी करी, लीधउ संयम भार।[1]

कवि अन्त तक अपना नाम नहीं लिखता, यथा—

तप तेजि करी दीपतउ महामुनिसर राय,
कर्यु रास रलीयामणउ, प्रणमी तेहना पाय।

किसने रास किया, यह कवि नहीं बताता किन्तु यह रचना १७वीं शताब्दी की है और शील का माहात्म्य सरल मरुगुर्जर में उपस्थित करती है।

विजयमेरु —खरतरगच्छीय राजसार के शिष्य मणिरत्न थे इनके शिष्य हेम धर्म के आप शिष्य थे। इन्होंने सं० १६६९ में 'हंसराज वछराज प्रबंध' लाहोर में लिखा। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

वीर जिणेसर चरम जिण प्रणमुं,
पय अरविंद सद्गुरु पय प्रणमुं।
बलि मनि धरि परमाणंद।
जिनवरवदन निवासिनी, प्रणमुं सरसति हेव,
पुण्य तणां फल गाइसु सांनिधिकरि श्रुतिदेव।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३९४-९५ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ८८३-८४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

यह प्रबन्ध चार खण्डों में है, यथा—

सरस प्रबन्ध छे अेह्नो, वलि अधिक ढाल रसाल,
कवियण सुणतां गहगही, च्यार खंड सुविशाल।
अे चरित्र जलधर समो, वचन अमृत जलविन्दु,
मधुर स्वरे ते गाइ ज्युं भविक मोर सुखकंद।

गुरुपरंपरा और रचनाकाल—

खरतरगच्छ अति दीपतो, श्री जिनचंदसूरिंद,
तास सीस अति दीपतो, श्री जिनसिंह मुणिंद।
सोल सइ उगणहुत्तरइ लाहोर नयर मझारि,
सांतिनाथ सुपसाउलइ, कीधो प्रबंध अपार।
हेमधर्म गुण सांनिधइ मुझ सदा सुख आनंद,
विजयमेरु मुनिवर कहइ सुणतां श्रावक वृन्द।

कथा का उद्देश्य —

पुण्य तणा फल छे बहु, पुण्ये जसवर चित्त;
हंसराज वछराज वर, हंसावली ढाल चरित्त।

हंसराज वछराज की कथा को दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत करके कवि ने पुण्य के माहात्म्य पर प्रकाश डाला है।[1]

विजयशील— आंचलगच्छीय गुणनिधान के शिष्य धर्ममूर्ति थे। इनके शिष्य हेमशील आपके गुरु थे। आपने 'उत्तमचरित-ऋषिराज चरित चौपाई' सं० १६४१ भाद्र कृष्ण ११ शुक्रवार को खलावलि में लिख कर पूर्ण किया। कवि ने गुरुपरम्परा इस प्रकार बताई है—

श्री अंचलगछ श्रृङ्गार रे, श्री गुणनिधान सूरि सार,
तस पाटि सदा उदयवंता रे, सूरि श्री धर्ममूर्ति जयवंता।
तस गछ विभूषण भाण रे, जगि महिमावंत सुजांण,
श्री हेमशील मुनिराया रे, वरवाचक वंश सुहाया।
तस सीसभणइ विजयशील रे, रास सुणता लहीइ लील।

रचनाकाल - संवछर सोल अेकतालइ रे, भाद्रवा वदि वरसालि,
इग्यारस सुकरवार रे, श्री शीतलजिन आधारइ,
षलावलिपुर चउमासि रे, रास रचिउमनि उल्हासि।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४७८-४७९ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ७७४-७७५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयशेखर--अंचलगच्छ के सत्यशेखर<विनयशेखर> विवेकशेखर आपके गुरु थे, आपने सं० १६८१ में १६ ढाल और ३६२ कड़ी की एक रचना 'कयवन्ना रास' वैराटपुर में लिखी। यह दान के माहात्म्य पर लिखी गई है। इसका आदि देखिये —

श्री आदीसर सुखकरण, शान्तिनाथ गुणगेह,
नेमि पास व्रधमान जिन प्रणमुपंच सुनेह।
श्री सारद सुपसाउले मुझ मुखि वचन विलास,
साधुकथा कहिवा भणी, तिणिवली अंग उल्हास।

× × ×

कयवन्ना दानें तिस्यो काढ़ी देतां लीह,
तिणि सुख पाम्यां हारीयां वली लह्या सुदीह।[1]

रचनाकाल--सोलह सें अेकासीइं, ज्येष्ठ मास रविवार वे,
श्री वेंराटपुरे रची ज्योडि दान अधिकार वे।

आपकी दूसरी रचना 'सुदर्शनरास' (३०५ कड़ी) सं० १६८१ आसोज शुक्ल पक्ष में रचित है। इसके आदि में कवि ने संगीत का जैसा सविवरण उल्लेख किया है उससे वह संगीत का जानकार मालूम होता है, यथा —

राग केदारु मिश्र, अेकताली ताल,
आदि धरमनी करवा 'अे देशी।'

अब प्रारम्भिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं---

प्रणमु रिषभ जिणंद अे, टालइ,
टालइ भवदुह फंद अे कंद अे,
सिब सुषनु साचउ मही अे।
सेवइ सुरासुर इंद अे, मरुदेव्यानउ नंद अे,
चंद अे नाभि कुलोदधइ सही अे।

इस रचना में शील का गुणगान करता हुआ कवि लिखता है---

तसु गुण प्रेरिउ मुझनइ फिरी फिरी तिणइ कहुं शील प्रबंध,
चित्त कसोटी भांडी जोयुं क्षीलबिना सवि धंध।
दान शील तप भावना ग्यारइ धरम त्रिहुं विधि भाख्यउं,
शील तिहांकिणि अधिकु वोल्यउ श्री व्रधमानइ आखिडं।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २३५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रामचन्द्र सीता सलही जि द्रूपदी राजीमती,
शील प्रभावि हुइ प्रसिद्धनलराणी दवदंती ।

रचनाकाल— संवत सोल अेकासीइ, ऊजल आसो मासइ रे,
विजयशेखर कहइ संघनइ, होज्यो लीलविलासो रे ।[1]

चंद्रलेखा चौपई (३७५ कड़ी) सं० १६८९ पौष शुक्ल १३ शुक्रवार, नवानगर में रची गई ।

त्रणमित्र कथा चौपई (आत्म प्रतिबोध ऊपर) सं० १६९२ भाद्र कृष्ण ७ रविवार, राजनगर; इसमें भी कवि ने राग, ढाल आदि का निर्देश किया है । राग केदार ३ ताल, ढाल पहिली 'आदि धरमनी करवा' । इसके पश्चात् चौपई प्रारम्भ की गई है, यथा—

श्री जिनशासन सुन्दरु, मानसरोवर मनहरु
सुखकरु त्रिजगपती जिनहंसलउ अे ।
श्री आदीसर सुरतरु मरुदेवी सुतबंधउ
गुणचारु वंदी जि हरषइं भलइ अे ।

त्रोटक —हरषि भलउ जिणि श्रीमुखि दाखिउ, धरम अपूरब रीतइं,
करुणासागर महिमाआगर, सोइ सरगु चिति प्रीतइ ।

गुरुपरंपरा सभी रचनाओं में एक ही दी गई है जो निम्नवत् हैं—

अंचलगछ गिरुउ गुणसागर रतनकरंड समानजी,
भट्टारक श्री कल्याण सागरसूरि, जंगम जुगपरधानजी ।
तस पखि दीपकवाचकपद घर विवेक शेखर मुणिंदजी,
तस सीस पंडित विजयशेखर कहि धरम महिम आणंद जी ।

रचना स्थान और रचनाकाल—

राजनगर मांहि अे कीधउं, आतमानइ प्रतिबोधजी,
सीख दीधी सारी जे जाणी, ते जोपी क्रमपोध्र जी ।
वरस सोल सइ वाणूं ऊपरि, भाद्रवा वदि रविवार जी,
सातमितिथि मृगसिरनक्षत्रइं रचिउ प्रबंध उदारजी,

चन्दराजा चौपई (९ खंड सं० १६९४ कार्तिक वदी ११ गुरुवार) यह तप के महत्व पर लिखित है, यथा—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २३८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानसीयल तप भावना च्यारे धर्म प्रधान,
तेह मांहि तप सलहीयइ, तपथी मोक्ष निदान।

रचनाकाल– सोलह सइ चुराणुइ काती, वदि गुरुवारि री माई,
हस्त नक्षत्र अेकादशी, प्रीतियोग सुविचार दी माई।[1]

यह रचना इन्होंने अपने गुरुभाई भावशेखर के आग्रह पर रची थी।

ऋषिदत्तारास (३ खंड ७७५ कड़ी) सं० १७०७ (१६७७?) वसंत वदी ९ को भिन्नमाल में लिखी गई। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है कि उससे १६७७ और १७०७ दोनों तिथियां मिलती हैं यथा – ससधर (चन्द्र = १), सागर (७), मुनि १६; इस प्रकार सं० १६७१ या सीधे तरफ से पढ़ने पर (जैसी पद्धति प्राय: नहीं है) ससधर (चंदमा = १), सागर = ७, तीसरा अंक खाली = शून्य और मुनि = ७, तो १७०७ संवत् भी निकलता है। इनकी सं० १६९४ तक की रची हुई रचनायें तो प्राप्त ही हैं, इसलिए दोनों तिथियां सम्भाव्य हैं। यह रचना भी ऋषिदत्ता के शीलपालन पर ही प्रकाश डालती है। कवि कहता है—सीलइ सोहिरी रिषि सीलइ सोहि अर्थात् ऋषि शील के बिना शोभा नहीं देते। रचनाकाल इस प्रकार लिखा गया है—

संवत मुनिसागर ससिधर, मनहर मास वसंत,
मेचक पक्षइ नवमी दिनइं अे, ज्येष्टाभ कहिउ तंतरी।
श्री भीनमाल पास परसादिइं रास चडिउ परिमाणइं,
ढाल इग्यारमीं खंड अे त्रीजइ, विजयशेखरवखाणइ री।[2]

आप गद्य लेखक भी थे। आपने 'ज्ञातासूत्रबालावबोध' की रचना की है। इसका नमूना उपलब्ध नहीं हो सका, परन्तु यह स्पष्ट है कि आप कुशल कवि और गद्य लेखक थे। आप न केवल सिद्धहस्त कवि, तपस्वी एवं विद्वान् थे अपितु संगीतज्ञ और कलामर्मज्ञ भी थे। इस प्रकार १७वीं शताब्दी के साहित्यकारों में आपका स्थान महत्वपूर्ण है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २३८ (द्वितीय संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २३५-२४१ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० १००३-०९ तथा भाग ३ खण्ड २ पृ० १६०० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयसागर--आप तपागच्छीय विद्यासागर के प्रशिष्य एवं सहजसागर के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६६९ के आसपास सम्मेत-शिखर तीर्थमाला' की रचना की। इसमें पालगंज (सम्मेतशिखर) के रक्षक राजा का नाम पृथ्वीमल्ल लिखा है। जयविजयकृत 'सम्मेत शिखर तीर्थमाला' सं० १६६१ में भी राजा का नाम पृथ्वीचंद (पृथ्वी-मल्ल) है। अतः ये दोनों तीर्थमालायें पृथ्वीमल्ल के समय प्रायः आस-पास की लिखी गई होंगी। सहजसागर के एक अज्ञात नाम शिष्य की एक रचना '३ बुकार अध्ययन संज्झाय' का भी रचनाकाल सं० १६६९ बताया गया है संभव है कि यह अज्ञातनाम शिष्य भी विजयसागर ही हों और यह संज्झाय भी इन्हीं की रचना हो। इसलिए तीर्थ माला और संज्झाय का परिचय एकत्र ही दिया जा रहा है।

सम्मेत शिखरतीर्थ माला--

आदि-- प्रणमीय प्रथम परमेसरुजी,
आगरा नयरसिणगार कइ, पास चिंतामणि।
परतिख परता अे पूरवइ जी, सुगति मुगति दातार कई।

आगरा में देहरा की स्थापना हीरविजय ने अपने हाथों की थी। यथा--सइं हथ हीरगुरु थापीयाजी, संवत सोल अडयाल कइं,[1]
रचना में अनुप्रास का प्रयोग देखिये--

राजरागिम ऋद्धि रंगरली जी, रागरमणि रंगरेलि,
गिरुअडे गयवर गोरडी जी, गरजता गज गुरुगेलि।

भाषा में लय और प्रवाह है, यथा--

इति तीरथमाला अति रसाला पूरब उत्तर वर्णवी,
समकित बेली सुणी सहेली सफल फली नव पल्लवी।

गुरुपरंपरा--तपगच्छराजा बहुदिवाजा विजयसेन सूरीसरो,
तस पट्टि पूरो जिसो सूरो विजयदेव यतसरो।[2]

यह रचना प्रकाशित है।

इषुकार अध्ययन संज्झाय--यह रचना सहजसागर शिष्य संभवतः विजयसागर की ही है। यह सं० १६६९ बगडी में लिखी गई। रचना-

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४३-१४४ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० १४३-१४४ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ४६४-६५ तथा भाग ३ पृ० ९३८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल इस प्रकार बताया है—

थुणीय मइं अे अणगारा, जपता जगि जय जय कारा,
सोलह उगणोत्तरे आदि श्री सुवधिनाथ प्रसादि।
श्री वगडी नगर मझारि, श्री संघ तणइ आधारि।...आदि

यह रचना उत्तराध्ययन के आधार पर की गई है। इसका प्रारम्भ देखिए—

सहज सलूणा हो साध जी सेवीयइं,
वसीयइं गुरुकुल वासोजी।
सुणीयइं सखरी हो सीख सुहामणी,
छूटी जाइं भ्रमवासो जी।

इसमें भी वही गुरुपरंपरा दी गई है जो सम्मेतशिखर तीर्थमाला में दी हुई है। केवल कवि ने अपना नाम उस क्रम में नहीं दिया परन्तु पूर्ण संभावना है कि यह उन्हीं की रचना होगी।

विजयसेन सूरि—आपका जन्म सं० १६०४ फाल्गुन शुक्ल ५ को मारवाड़ के नाडलाई ग्राम में ओसवाल वंशीय कम्माशाह की पत्नी कोडिमदे की कुक्षि से हुआ था। मूलनाम जयसिंह था; ११ वर्ष की अवस्था में विजयदानसूरि ने सूरत में दीक्षा दी और नाम नयविमल रखा। सं० १६३० में ये पट्टधर बने और नाम विजयसेन पड़ा। सम्राट अकबर ने इन्हें 'सवाई' विरुद प्रदान किया था। सं० १६७२ ज्येष्ठ कृष्ण ११ को खंभात में स्वर्गवास हुआ।[1] इनकी एक रचना सुमित्ररास का उल्लेख जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३०० पर श्री देसाई ने किया था किन्तु बाद में भाग ३ पृ० ८०१ पर उसे सुधार कर रचना का कर्त्ता ऋषभदास को बताया है। इसलिए इनकी किसी रचना का पता नहीं है। इनके व्यक्तित्व पर आधारित कई रचनायें हैं जिनसे इनके जीवन विवरण का पता लगता है जैसे विद्याचंदकृत विजयसेनसूरि निर्वाण रास आदि। इस रास का विवरण यथास्थान दिया जायेगा।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३०० (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ८०१ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याकमल--आपकी एक रचना 'भगवती गीता' का उल्लेख मिलता है जिसकी रचना सं० १६६९ से पूर्व हुई है।[1] इसका विस्तृत विवरण हमें उपलब्ध नहीं हो सका है।

विद्याकीर्ति--खरतरगच्छीय क्षेमशाखा के प्रमोदमाणिक्य के शिष्य क्षेमसोम थे। इनके शिष्य पुण्यतिलक के आप शिष्य थे। इन्होंने नरवर्म चरित्र सं० १६६९, धर्म बुद्धि मंत्री चौपइ सं० १६७२, सुभद्रासती चौपइ सं० १६७५ में लिखी। धर्मबुद्धि मंत्री चौपइ के दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में २०३ गाथा है और द्वितीय खण्ड अपूर्ण है। इसके अलावा मतिसागर रसिक मनोहर चौपइ सं० १६७३ सरसा और नरवर्मचरित्र चौपइ भी प्राप्त हैं।[2] धर्मबुद्धि चौपइ का आदि—

मंगलकरण जगत्रमइ, महामंत्र नवकार,
समरीसि मन निश्चय करी, महिमा जासु अपार।

मंगलाचरण में सरस्वती, गुरु और गणपति की वंदना की गई है। कवि प्रथम खंड के अंत में कहता है—

दोइ खंड अेक चउपइ सुणितां तृपति न होइ,
प्रथम खंड इणि परि कहइ, सांभलिज्यो सहुकोइ।
प्रथम खंड पूरण कियउ अे, देव सुगुर आधार भल,
बीजउ कहिवा मन रलीअे, ते सुणिज्यो सुविचार।

गुरु स्मरण इन पंक्तियों में हैं—

पुण्यतिलक गुरु सानिधइ अे, कीधउ अे अधिकार,
विद्याकीर्ति इणिपरि कहइ अे, भव्य जीव सुखकार।

सुभद्रासती चौपई तथा नरवर्मचरित्र का रचनाकाल ही प्राप्त है। उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४२ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ ४७० (प्रथम संस्करण)
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८५
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४७-१४८ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ९५६-५८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याचंद—आप तपागच्छीय वीपा के शिष्य थे। इन्होंने विजयसेन सूरि निर्वाण रास सं० १६७१ के बाद लिखा। यह ऐतिहासिक जैन गुर्जर काव्य संचय के पृ० १५९ से १६५ पर विजयसेन सूरि निर्वाण संज्झाय के नाम से प्रकाशित है। इसके साथ ही गुणविजय कृत 'विजयसेन सूरि स्वाध्याय' भी छपा है जो पृ० १६६ से १७० पर छपा है। विद्याचंद कृत 'विजयसेन सूरि निर्वाण रास' का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरसति मति द्यउ निरमली, मुखिद्यो वचनविलास,
गाऊँ तपगच्छ राजवी, विजयसेन गुणरासि।
जगमाँ जगगुरु हीरजी, हुओ अधिक सोभाग,
महिमा महि मांहि घणउ, जिम राममुनि महाभाग।
तास पाटि उदयाचलिउं, उग्यु अभिनव भाण,
श्री विजयसेन सूरीसरु, जेहथी नितस्यु विहांण।

इस रास के अनुसार विजयसेन सूरि के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है—

नडोलाइ नगरी सोलचिडोतरी फागुण पूनिमजया,
तात कमा कुलि मात कोडिगदे, सुत कुलमंडन आया।[1]

सम्राट् अकबर से विजयसेन की भेंट का उल्लेख इन पंक्तियों में किया गया है—

युगति जैन धर्म मत थापी, दिल्लीपति दिलवाल्यु,
हीर सवाई विरुद धरावी, जिन शासन अजुआल्यु।[2]

रचना के अन्त में गुरुपरंपरा इस प्रकार दी गई है—

जय मांहि महिमा गुरुतणउ जे, अति घणउ छइ मइ सुण्यउं,
दोइ हाथ जोड़ी बुद्धि थोड़ी, ठामि कोडी सउ गुण्यउ।
श्री विजयदेव सूरिंद नंदउ भाविवंदउ वलीवली,
वर विबुध वीपा सीस विद्याचंद आशा सवि फली।[3]

आपकी दूसरी रचना 'रावण ने मंदोदरी अे आपेल उपदेश' का मात्र नामोल्लेख जैन गुर्जर कविओ में देसाई ने किया है। इसमें गुरु

१. ऐतिहासिक जैन गुर्जर काव्य संचय पृ० १५९
२. वही, पृ० १६०
३ जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १७३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का नाम नहीं है अतः जैन गुर्जर कविओ के द्वितीय संस्करण के संपादक श्री जयन्त कोठारी को शंका है कि शायद यह किसी अन्य विद्याचन्द की रचना हो।[1]

विद्यासागर—नामक तीन कवियों की चर्चा मिली है। इसमें एक तो १८वीं शती के हैं और १७वीं शती के दो विद्यासागर हैं। इनमें से प्रथम विद्यासागर तपागच्छीय विजयदान सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६०२ आसो में सुकोशलगीत (गाथा ५१) की रचना की जिसका प्रारम्भ 'जम्बूद्वीप मझारि क्षेत्र भरत मांहे, नयर अयोध्या जाणिये अे' पंक्ति से हुआ है। रचनाकाल इस पंक्ति में बताया गया है—

संवत सोलसइ दोई, आस मासवाडइथूणिया,
होइ मुनि पुंगवा अे।

गुरु का उल्लेख इस पंक्ति में है—

श्री विजयदान सूरींद, श्री विद्यासागर सेवक देव अनुवीनइ अे।[2]

विद्यासागर II—खरतरगच्छ के आचार्य जिनचंदसूरि के शिष्य सुमतिकल्लोल के शिष्य थे। आपकी तीन रचनाओं का पता लगा है—कलावती चौपई, भीमसेन चौपई और वंदीतु सूत्रटब्बा (गद्य)। इनमें से कलावती चौपई का उद्धरण-विवरण प्राप्त है किन्तु भीमसेन चौपई और टब्बे का कोई विवरण नहीं मिल पाया। इसलिए कलावती चौपई का उद्धरण ही इनकी काव्यशैली के नमूने के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसकी रचना सं० १६७३ आसो शुक्ल १०, नागोर में हुई। इसका आदि इस प्रकार है—

प्रणमी आदि जिणिंद पहु, संतिकरण श्री संति,
ब्रह्मचारि शिरोमणि, नेमीसर नमिसंति।

गुरुपरंपरा—जिनमाणिक पाटइ प्रगट, युगप्रधान जिनचंद,
वाचक सुमतिकल्लोल गुरु, प्रणमु परमानंद।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४८२-४८३ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ६४७, ७३२, १५०२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें शील का महत्व दर्शाया गया है, कवि लिखता है—

शील तणा गुण अति घणा, भाष्या श्री भगवंत।
कलिकापिण कलियुगइं नारद मुगति लहंति।
कलावती गुण कलिजुगइ जाणइ बालगोपाल,
छेदी बाहु नवपल्लवो सील प्रभावि विशाल।

रचनाकाल – संवत सोल त्रिहुत्तरइ, वर विजयदसमी सार,
संबंध अेह सोहामणउ, ग्रंथ तणइ अनुसार।
प्रथम अभ्यास थकी रच्यउ नागउरि नयर मझारि,
अति चतुर श्रावक श्राविका सांभलइ हरष अपार।

अकबर और जहाँगीर द्वारा जिनचंद्र सूरि की प्रतिष्ठा का भी उल्लेख कवि ने किया है, यथा—

परवादि पाटणि जीपिया, गज थाट केसरि जेम,
पतिसाहि दोउ प्रतिबूझिया, अकबर साहि सलेम।[1]

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

ओगणीस ढालइ गाइयउ अेह बीजउखंड,
विद्यासागर मुनिवरइं, नव नव रागसुरंग
आदेस जिनसिंह सूरिनइ परबंध अेह रसाल,
श्री संघनइ सुणता थका, होवइ मंगलमाल।[2]

विद्यासिद्धि—आपका एक गीत 'गुरुणी गीतम्' सं० १६९९ ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में प्रकाशित है। इसकी प्रथम दो पंक्तियाँ खंडित हैं। अन्तिम दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सोलह सइ नियाणू वरस मइं भाद्रव बीज अपार,
इम बोलइ विद्यासिद्धि साध्वी संपति हुवइ सुखकार।

यह सात कड़ी का गीत है। इसमें साध्वी विद्यासिद्धि ने अपनी गुरुणी का यशगान किया है। इसके अतिरिक्त आपकी किसी अन्य रचना का और आपके सम्बन्ध में किसी अन्य विवरण का पता नहीं चल सका है।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १७८-१८० (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ९६६-६८ (प्रथम संस्करण)

२. वही

३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—'गुरुणी गीतम्'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनयकुशल—तपागच्छीय लक्ष्मीरुचि > विमलकुशल के आप शिष्य थे। आपने विजयसेन सूरि के समय सं० १६३८ में 'जीवदया रास' की रचना की। इस रचना का नामोल्लेख करने के अलावा इससे सम्बन्धित अन्य विवरण प्राप्त न हो पाने के कारण यहाँ देना संभव नहीं है।[1]

विनयचंद—आप तपागच्छीय मुनिचंद्र के शिष्य थे। आपने सं० १६६० चैत्र शुक्ल ६ सोमवार को ६८ कड़ी की एक कृति 'बारव्रत संज्झाय' नाम से पूर्ण की। उसी दिन काका की पुत्री मेलाई ने जैन-धर्म स्वीकार किया था। प्रति उसी के लिए लिखी गई थी। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

प्रणमु जिनवर प्रणमु जिनवर पास अबार,
पासे दीव वंदिर अछइ, सुविधिनाथ दीपतो दीसइ,
घण कण कञ्चन बहु परे, धर्म ठाम छइ वसा वीसइ।
अमर मिथुन परिशोभता, नरनारीना वृन्द,
भाव भगति भली परे, पूजइ सुविधि जिणंद।

गुरुपरंपरा—पंडित श्री मुनिचंद्र गणि वंदी तेहना पाय,
विनइचंद भावे करी, करस्यु व्रत संझाय।

रचनाकाल—सोल संवत सोलसम्वत साठि संवच्छरे,
चैत्र सुदि छठीय दिने, सोमवार सुखकार कही अे।

मेलाई की जैन दीक्षा का सन्दर्भ इन पंक्तियों में देखिये—

कपोलवंश कीका सुता मेलाई सुविचार,
जिनवर धर्म रीदइ धरी, उचरीआं व्रत बार।

अन्त तपगच्छना अेक विजइसेन सूरि विजइदेवसूरीस्वरो,
तसनाम जपीअे कर्मखपीअे वंछित पूरण सुरतरु।
अे व्रत वइरागर सुखसागर जे नरनारी सूधा धरइ,
पंडित मुनिचंद सीस जंपइ सिवपद ते अणुसरइ।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७५ (द्वितीय संस्करण और भाग ३ पृ० ७४८ (प्रथम संस्करण)

२. वही भाग २ पृ० ३८९-९० (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ८७९-८० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनयमेरु—आप खरतरगच्छीय हेमधर्म के शिष्य और अच्छे कवि थे। आपकी प्राप्त पुस्तकों की सूची आगे प्रस्तुत है— हंसराज वच्छराज प्रबन्ध सं० १६६९ लाहौर, शत्रुञ्जयरास सं० १६७९ जैसलमेर, सुदर्शन चौपइ सम्वत १६७८ सिद्धपुर, गुणसुन्दरी चौपई सं० १६६७ फतेहपुर, देवराज वच्छराज प्रबन्ध १६८४ रीणी, कयवन्ना चौपइ सम्वत् १६८९ बुरहानपुर, पन्नवणा विचार स्तवन सम्वत् १६९२ सांचोर और द्रौपदी चौपाई सम्वत् १६९८।[1] इनकी प्रथम रचना हंसराज वच्छराज प्रबन्ध चार खण्डों में है, इसका आदि देखिये—

वीर जिणेसर चरम जिण प्रणमुं पय अरविंद,
सद्गुरु पय प्रणमु वलि, मनि धरि परमाणंद।
जिनवर वदन निवासिनी प्रणमुं सरसति हेव,
पुण्य तणा फल गाइसूं सांनिधि करि श्रुतदेव।

इसमें पुण्य का फल हंसराज वच्छराज के जीवन दृष्टान्त द्वारा दर्शाया गया है। इसके अन्त में गुरु परम्परा इस प्रकार कही गई है--
गुरुपरम्परा और रचनाकाल--

खरतरगच्छ अती दीपतो, श्री जिनचंदसूरिंद,
तास सीस अति दीपता श्रीजिनसिंह मुणिंद।
सोलसइ उगणहुत्तरइं लाहोरनयरमंझार,
सांतिनाथ सुपसाउलइं कीधो प्रबन्ध अपार।
वचनाचारज दीपतो राजसार गुणजाण,
मणिरयण कलानिलो शिष्य मुख्य सुजाण।
हेमधर्म गुरु सांनिधइ मुझ सदा सुख आनन्द,
विजयमेरु मुनिवर कहइ सुणतां श्रावक वृन्द।
च्यारि खण्ड ए चउपइ, सरस प्रबन्ध उल्हास,
कवियण जनमन गहगहइ गावतां लीलविलास।[2]

इससे मालूम होता है कि आप जिनचंदसूरि की परम्परा में जिनसिंह>राजसार>मणिरत्न>हेमधर्म के शिष्य थे।

आपकी दूसरी रचना कयवन्ना चौपई (२० ढाल २९० गाथा) सम्वत् १६८९ बुरहानपुर में लिखी गई। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियां

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८१
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४५ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ४७८-७९ तथा भाग ३ पृ० ९५४-५५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार हैं--

प्रणमु कमल निवासिनी, श्री सारद इण नाम,
जास पसायइ संपजइ, सरस वचन अभिराम ।

इसमें दान का माहात्म्य बताया गया है, कवि लिखता है-

दान धरम कहीउ केवली चितवित पात्र विचार,
लेतां देतां बड़े जणा हेले तरइं संसार ।

× × ×

दानधरम थी सुख लहइ कयवन्नउ मुनिराय,
जिणि करणी उत्तम करी, प्रणमइ सुरनरपांय ।

रचना स्थान और रचनाकाल इन पंक्तियों में देखिये--

बुराहीणपुर श्री नगर विराजइ सवि नयरीमइ गाजइरे,
जिहां प्रह समव तिहां नोबत बाजइ,
जिण दीठा सुख भागइ रे ।
सोलह सइ निवासी वरसइ, भवियण मननइ हरसइबे,
भीड भंजणा श्री पार्श्व जिणंदा, प्रणमइ सुरअसुर नरंदा बे ।

अन्त हेमधर्म गणि गुरु वइरागी, करीयावंत सोभागी बे,
तास पसायइ मनसुख भावइं, विनयमेरु गुण गावइबे ।[1]

दो रचनाओं के नमूने देकर कवि की रचना शैली का आदर्श रूप प्रस्तुत कर दिया गया है। स्थानाभाव के कारण सभी रचनाओं का विवरण-उद्धरण दे पाना सम्भव नहीं है ।

विनयविजय—आप तपागच्छीय आचार्य हीरविजय सूरि की परंपरा में विजयदेव के प्र-प्रशिष्य विजयसिंह के प्रशिष्य, कीर्तिविजय के शिष्य थे। कीर्तिविजय वीरमगाम के थे और अपने समय के अच्छे विद्वानों में गिने जाते थे। इनके शिष्य विनयविजय जी यशोविजय के समकालीन और सहपाठी थे। दोनों ने एक साथ ही काशी में विद्याध्ययन किया था। विनयविजयजी की न्याय और साहित्य में समान गति थी। इनका 'नयकर्णिका' नामक ग्रंथ अंग्रेजी टीका के साथ छप चुका है। पुण्यप्रकाश स्तवनम् और पंच समवाय स्तवनम् चिन्तन परक रचनायें हैं।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरुगुर्जर में आपने नेमिनाथ भ्रमर गीता, नेमिनाथ बारमास, आदिनाथविनती, चौबीसी, बीसी, नेमिजिनभाव आदि रचनाओं का प्रणयन किया है। काशी में रहने के कारण इनकी काव्य भाषा पर हिन्दी का प्रभाव स्वाभाविक रूप से पड़ा है। इनके प्रकाशित ग्रन्थ विनयविलास में ३७ पद हिन्दी के हैं। पहले उसी का परिचय प्रस्तुत है। विनयविलास– इसमें लेखक ने बताया है 'आत्मा कभी नहीं मरता। उसे मिथ्या शरीर से प्रेम नहीं करना चाहिए। जीव– सवार और शरीर– घोड़ा के रूपक से इसी भाव को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया है—

घोरा झूठा है रे तू मत भूले असवारा।
तोहि मुधा ये लागत प्यारा, अंत हो जायगा न्यारा।
चरै चीज और डरै कैद सों, ऊबट चलै अटारा,
जीन कसै तब सोया चाहे, खाने को होशियारा।
× × ×
करहु चौकड़ा चातुर चौकस, यौ चाबुक दो चारा,
इस घोरे को विनय सिखावो, ज्यों पावो भवपारा।'[1]

इस बिगड़ैल घोड़े को समय-समय पर शिक्षा देने के लिए दो चार चाबुक जरूरी हैं। शाश्वत सुख को छोड़ क्षणिक सांसारिक सुखों के लिए ललचने वाले जीव को चेतावनी देता हुआ कवि कहता है--

किया दौर चहुं ओर जोर से, मृग तृष्णा चितलाय,
प्यास बुझावन बूंद न पाई, यों ही जनम गमाया।
प्यारे काहे कुं तू ललचाया।
सुधा सरोवर है या घट में, जिसतें सब दुख जाय,
विनय कहे गुरुदेव सिखावे, जो लाऊँ दिल ठाय।
प्यारे काहे कूं ... ...
मेरी मेरी करत बाउरे, फिरे जीव अकुलाय,
पलक एक में बहुरि न देखे, जल-बूंद की न्याय।
प्यारे काहे कूं ललचाय।
कोटि विकल्प व्याधि की वेदन, लही शुद्ध लपटाय,
ज्ञानकुसुम की सेज न पाई, रहे अधाय अधाय।
प्यारे काहे कूं ललचाय।[2]

१. डॉ. प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य पृ० २९४ से उद्धृत
२. वही पृ० २९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी सहज भाषा में व्यक्त भाव भी बड़े मार्मिक और मुग्धकारी हैं।

आपने कई रचनायें नेमिनाथ और राजीमती के मधुर आख्यान पर आधारित करके रची हैं। इस प्रकार की प्रसिद्ध रचना नेमिनाथ भ्रमर गीता है। यह रचना प्राचीन फागु संग्रह में प्रकाशित है। इसमें विप्रलंभ और करुण रस की उत्तम निष्पत्ति हुई है। कवि ने कहा है—

तीर्थङ्कर बावीसमो यादव कुल सिणगार,
राजीमती मन बालहु करुणा रस शृङ्गार।

राजुल के शृङ्गार से सम्बन्धित दो पंक्तियाँ देखिये—

रतन जडित कंचुक कस खेचित कुच दोइ सार,
एकाउलि मुगताउलि टंकाउलि गलिहार।

नेमिनाथ के चले जाने पर राजीमती के विलाप में करुण रस प्रवाहित हुआ है—

निठुर नाह न कीजिइ एम विसासीघात,
को न करी तिम कीधु ते, जग लागि रहस्यइं बात।

रचनाकाल—भेद-संयम तणा चित्त आणो मान संवत (तयु) एह जाणू,
बरस छत्रीसन वर्गमूल भाद्रवि प्रभु थुण्या सानुकूल।

गुरुपरंपरा श्री विजयदेव सूरितपगछनु सिणगार,
श्री विजयसिंहसूरि जयवंता तास पटोधार।
कीर्तिविजय उवझायनु पामी चरण पसाय,
यदुपति ना इम वाचक विनयविजय गुणगाय।[1]

नेमिनाथ से सम्बन्धित इनकी एक रचना नेमिनाथ बारमास भी है। यह २७ कड़ी की रचना सं० १७२८, रानेर में रची गई। इसके आदि में कवि कहता है—

पन्थी अडोरे संदेसडो, कह्यो नेम ने अेम,
छटकी छेह न दीजीइ, नव भव नो प्रेम।
मागसिर मासइ मोहिउ, मोहनी अे मन्त्र,
चित मोही लागी चटपटी, भावइ उदक न अन्न।[2]

---

१. प्राचीन फागु संग्रह पृ० २११-२१३

२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त आपने सं० १६८९ से लेकर सम्वत् १७३८ के बीच बीसों रचनायें की हैं जिनमें सूर्यपुर चैत्य परिपाटी, पट्टावलि संज्झाय, धर्मनाथस्तवन आदि उल्लेखनीय हैं। 'पट्टावली संज्झाय' में महावीर भगवान और गौतमगणधर, इन्द्रभूति, सुधर्मा, जंबू आदि से लेकर हीरविजयसूरि तक का उल्लेख करके अन्त में अपने गुरु कीर्तिविजय के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है—

> अे वीर जिणवर पट्टदीपक मोह जीपक गणधरा,
> कल्याणकारण दुखनिवारण वरणव्या जगि जयकरा।
> हीरविजयसूरि सीस सुन्दर कीर्तिविजय उवझायअे,
> तास सीस इमि निसदीस भावइ विनय गुरुगुण गाय अे।

उपधान स्तवन, धर्मनाथ स्तवन आदि भक्तिपरक स्तुतियाँ हैं। आदिनाथ वीनती आंबिल संज्झाय, भगवती सूत्र संज्झाय, अध्यात्म-गीता आदि लघुकृतियाँ भी स्तुति या अध्यात्म परक रचनायें हैं। इनके प्रतिनिधि रूप में पुण्य प्रकाश नु० स्तवन की दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

> सम्वत सत्तरे उगणत्रीस मे रहि रानेरचोमास अे
> विजयदसमि विजयकारण कीयो गुण अभ्यास अे।

१४ गुणस्थानक वीरस्तवन, ६ आवश्यक स्तवन, पंचकारण स्तवन आदि स्तवन भी प्राप्त हैं। उपधान स्तवन में कवि ने बताया है कि गुरु के समीप बैठकर नवकार आदि सूत्रों का शास्त्रोक्त विधि से गुरुमुख द्वारा ग्रहण करना उपधान है। इनकी अधिकांश रचनायें प्रकाशित हैं। धर्मनाथ स्तवन को लघु उपमिति भवप्रपंच स्तवन भी कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि यह रचना उपमिति भवप्रपंच का संक्षेप है।

विनयविजय और यशोविजय ने सम्मिलित रूप से 'श्रीपालरास' की रचना (सं० १७३८) में की थी। यह महत्वपूर्ण रचना है। इस रास में दिखाया गया है कि सिद्धचक्र अर्थात् अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, और तप इन नव पदों के सेवन से श्रीपाल राजा ने महान सफलता प्राप्त की थी। इसकी ७५० गाथा तक विनयविजय ने रानेर में रचना की थी। सं० १७३८ में उनके स्वर्गवासी हो जाने पर बाकी भाग को उनके प्रिय सहाध्यायी श्रीयशो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयजी ने पूरा किया।[1] यह रचना चार खंडों में विभक्त है। इसमें प्राय: १९०० चौपाइयाँ हैं। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

कल्पवेलि कवियण तणी, सरसति करी सुपसाय,
सिद्धचक्र गुणगावतां, पूरमनोरथ माय।
अलिय विघन सवि उपशमे, जपतां जिन चोबीश,
नमतां जिन गुरु पयकमल जगमां बधे जगीश।

रचनाकाल— संवत सत्तर अड़त्रीसा वरषें, रही रानेर चोमासुजी,
संघतणा आग्रहथी मांडयो, तस अधिक उलासेजी।
सार्ध सप्तशत (गाथा ७५०) विरची पूहतां ते सुरलोकेजी,
तेहना गुण गावे छे गोरी मली मली थोके थोके जी।[2]

आप संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान् और साहित्यकार थे। आपका 'लोक प्रकाश' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ जैन विश्वविधा (cosmology) से सम्बन्धित २० हजार श्लोकों का है। कल्पसूत्र पर आपने सुबोधिका संस्कृत टीका (सं० १६९६) और 'हैमलघु प्रक्रिया' नामक व्याकरण ग्रंथ भी संस्कृत में लिखा है। मेघदूत की तरह 'इन्दुदूत' नामक काव्य ग्रन्थ में आपने अनेक स्थानों का मनोरम वर्णन किया है। इस प्रकार आप १७वीं के अन्तिम चरण के प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ-विज्ञान, साधक संत और उत्तम साहित्यकार थे।

विनयसागर—खरतरगच्छीय पिप्पलक शाखान्तर्गत श्रीजिनहर्ष सूरि की परंपरा में आप सुमतिकलश के शिष्य थे। आपने कई संस्कृत

---

१. ७५० गाथा सुधी विनयविजयजी अे रास रानेर मां रच्यो, पछी तेओ सं० १७३८ मां स्वर्गस्था थया ने रास अपूर्ण रह्यो। अेटले तेमना प्रीति-पात्र अेवा यशोविजय जी महोपाध्याय ने बाकी नो भाग पूरा कर्यो। जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १९ (प्रथम संस्करण)। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये—

तस विश्वासभाजन तस पूरण, प्रेम पवित्र कहाया जी,
श्री नयविजय विबुध पद सेवक सुजसविजस उवझाया जी।
भाग थाकतो पूरण कीओ, तास वचन संकेते जी,
तिणें बली समकित दृष्टि जे नर, तेहतणइं हित हेतें जी।

२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १८-१९ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य लिखे और आपकी लिखी कई टीकायें भी प्राप्त हैं। मरु-गुर्जर में आपने 'सोमचन्द्र राजा चौपई' की रचना सं० १६७०, जौनपुर में की। इसके अतिरिक्त चित्रसेन पद्मावती रास और राजगृहयात्रा स्तवन तथा समेत शिखर यात्रास्तवन[1] का भी उल्लेख मिलता है। इनमें से चित्रसेन पद्मावती रास की रचना विनयसागर ने की या विनयसमुद्र ने, यह निश्चित न हो पाने के कारण इसका विवरण नहीं दिया जा रहा है। सोमचन्द्र राजा चौपई ३२१ कड़ी की रचना है। यह सं० १६१७ श्रावण शुक्ल १५ बुधवार को सम्पूर्ण हुई। रचना का विवरण कवि ने इन पंक्तियों में दिया है—

संवत सोलह सत्तरइ रे, संवच्छर सुविचार,
सावण मास सुहावनउ रे, पूनिम तिथि बुधवार।
नगर जौणपुर जाणीय रे नदी गोमती तीर,
सकल संघनइ आग्रहइ रे रची कथा सुगंभीर।

गुरुपरंपरा—बड़ खरतरगच्छ भलउ रे, श्री जिनहर्ष संतान,
श्रीमानकीत्ति पाठक भलारे विद्यारयण निधान।
तास शिष्य सोहइ भला रे देवकलश मुनिराय,
श्री सुमतिकलश मुनि जाणीयइ रे नरवर वंदइं पाय।
तास शिष्य मुनिरंग सु रे, विनयसागर मुनिनाम,
सोमचंद भूपाल की रे करी कथा अभिराम।[2]

इससे इनकी पूरी गुरुपरंपरा इस प्रकार स्पष्ट होती है कि आप श्री जिनहर्ष संतानीय मानकीर्ति, देवकलश, सुमतिकलश की शिष्य परंपरा में थे। विनयसमुद्र (१६वीं सती) हर्षसमुद्र के शिष्य थे। दोनों गुरुओं में हर्ष और शिष्यों में विनय उभयनिष्ट होने के कारण उनको एक मानने का भ्रम नहीं होना चाहिये।

विनयसुन्दर—आपकी एक रचना 'सुरसुन्दरी चौपई' का उल्लेख मिलता है। इसका रचनाकाल श्री देसाई ने ज्येष्ठ शुक्ल १३ सं० १६४४ बताया है।[3] अन्य कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८७
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ९१-९२ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० २१८ (प्रथम संस्करण)
३. वही भाग २ पृ० २३० (द्वितीय संस्करण) भाग ३ पृ० ७७८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनयसोम—आपके सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञात नहीं हो सका। आपकी एक रचना 'पोसीना पार्श्वनाथ स्तवन' (५ कड़ी) सं० १७१२ से पूर्व की लिखी प्राप्त है अतः यह १७वीं शताब्दी में रची गई है। इसका आदि और अन्त दिया जा रहा है—

आदि—पोसीना मंडन दुरित खंडण वंदन त्रिभुवनपास,
आसा पूरइ सेवक तणी, नामिं लीलविलास।
मनमोहनपासजी पूजीइह हो।

अन्त—तुझ नामिं संपति लहीइ, दुरि जाई दंद,
कर जोड़ी विनयसोम उच्चरइ, आपु परमाणंद।
मनमोहन पासजी पूजाइ हो, पूजइ परमानंद मन।[1]

रचना में लेखक का नाम है किन्तु अन्य विवरण नहीं है।

विमल—ये श्रावक थे या साधु, श्वेताम्बर थे या दिगम्बर, यह तो निश्चित नहीं हो पाया है किन्तु ये जैन थे क्योंकि इनकी रचना 'मित्रचाडरास' (३४४ कड़ी सं० १६१०, आसो शुक्ल १०, शुक्रवार) के अन्तिम पद्य में अरिहंत शब्द आया है, यथा—

अन्त—अरिहंत देव नू ध्यान ज धरूं,
सद्गुरु चरण सदा अणसरु,
ध्यातां धर्म्म बहुधन झाझूं मिलिइ,
कहि विमल ते घरि सिद्धि मिलइ।

रचनाकाल—त्रणसइ च्यालीस अे चुप्पइ, भणता सुखीइं हुइ सही।
संवत् १६१० तस, आसो शुद आसीइं विस्तरां,
तिथि दसमी नइं शुक्रवार, विमल होयो जयजयकार।

इसमें गुरुपरंपरा नहीं दी गई है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

मात सरसति मात सरसति प्रणमूं अेह देवि,
कौमारी करुं वंदना वागवांणि दिइ सरस वाणीय।
तास जिम लि देवी को नही निपुण बुद्धिमइं तूअ जाणीय,

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३८४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगदंबा जगदीश्वरी, करयो रसना वास।
आवरु न मांगू अेकहूं पूरे मन नी आस।

दूहा —देवगुरु सांनिधि करी, पनणुं मित्रह रास,
माणिका किम खेप करी, स्त्री किम खेली सास।[1]

अतः इन्हें सुविधापूर्वक जैन माना जा सकता है और इनकी रचना जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास की सीमा में आ जाती है।

विमलकीर्ति—आप खरतरगच्छीय साधुकीर्ति उपाध्याय के शिष्य विमलतिलक के शिष्य थे। मरु-गुर्जर गद्य और पद्य में इनकी लिखित अनेक रचनायें उपलब्ध हैं, यथा— यशोधर रास सं० १६६५ अमरसर, जोधपुरमंडल पार्श्व स्तवन, बाहुबलि संज्झाय, प्रतिक्रमण विधि स्तवन सं० १६९०, मुलतान। आप गद्यलेखक भी थे। आपने आवश्यक बालावबोध १६७१, डण्डक बालावबोध, नवतत्त्व बालावबोध जीवविचार बालावबोध, जयतिहुयण बालावबोध, पक्खिसूत्र बालावबोध और दशवैकालिक टब्बा, प्रतिक्रमण समाचारी टब्बा, गणधर सारशतक टब्बा सं० १६८०, उपदेश भाषा टब्बा और इक्कीस ठाणा टब्बा आदि अनेक गद्यरचनायें की हैं। इनमें आवश्यक बालावबोध सबसे विस्तृत पुस्तक है।[2] आपके शिष्य विमलरत्न भी अच्छे साहित्यकार थे।

यशोधररास (२१ ढाल सं० १६६५ आसो शुक्ल १०, अमरसर) का आदि —

पणमिय पास जिणेसरु, तिकरणा शुद्ध तिकाल,
जास पसायइ संपजइ, शिवासुख लीलविलास।

यह रचना जीवदया का महत्व समझाने के लिए रची गई है, यथा—

जीवदया विणुतप कीयउ, फलदाइ नविथाइ,
अज्ञानी जपतप करइ तऊ पिणि सिद्धि न जाइ।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४६-४७ (द्वितीय संस्करण)
भाग ३ पृ० ६६५ (प्रथम संस्करण)

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७३-७४

३ जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ११४-११६ (द्वितीय संस्करण) और भाग
भाग ३ पृ० ३७६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने युगप्रधान जिनचंद सूरि का इसी क्रम में सादर स्मरण किया है जिन्होंने सम्राट् अकबर को जीवदया का सन्देश दिया था, यथा —

जसु मुखि जीवदया सुणी, अकबर साह सुजाण,
ठाम ठाम लिखि मूकिया, जीवदया फरमाण।

रचनाकाल — संवत सोलह पइंसठइ, नीको आसू मास,
विजयदसमी दिन पूरीयो, नवरस वचन विलास।

पडिकमणा स्तवन के अन्त में इन्होंने साधुसुन्दर को अपना गुरु बताया है, यथा—

श्री विमल तिलक सुसाधुसुन्दर पवर पाठक सीस ए,
वाचक विमल कीरति तवन कीधउ हरिषभर सुजगीस रे।

श्री नाहटा ने इन्हें विमलतिलक का शिष्य कहा है। यशोधर रास में इन्होंने जिनसिंह, जिनभद्र, अमरमाणिक्य, साधुकीर्ति, विमलतिलक और साधुसुन्दर तक की गुरु परंपरा गिनाई है। इससे ये साधुसुंदर के ही शिष्य प्रतीत होते हैं। पडिकमणा स्तवन का रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है (सं० १६९०, दीवाली, मुलतान)

संवत सोलह सयनिऊयइ दिवस दीवाली भणऊ,
मुलतांण मंडन सुमति जिनवर सामनइ सुपसाउलउ।[1]

आपकी अनेक गद्यरचनाओं की सूची तो प्राप्त हो पाई किन्तु खेद है कि इनकी गद्यरचनाओं के उद्धरण न मिल पाने के कारण इनकी गद्यशैली का उदाहरण नहीं प्रस्तुत किया जा सका।

विमलचरित्र—ये पार्श्वचन्द्र सूरि के अनुयायी रत्नचरित्र के शिष्य थे। इस गच्छ को नागौरी बड़तपगच्छ कहा जाता है। पार्श्वचन्द्र सूरि के शिष्य समरचन्द्र, उनके राजचन्द्र और उनके शिष्य रत्नचरित्र थे। इनके शिष्य विमलचरित्र ने नागौर में 'अंजनासुंदरीरास' (३९७ कड़ी) सं० १६६३ मागसर शुक्ल २ गुरुवार को लिखा। इनकी अन्य रचनाओं में 'रायचन्द्र सूरि रास' और कुछ अन्य पद्यरचनायें

---

१ जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३७६ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ९०८-१० तथा भाग ३ खण्ड २ पृ० १६०२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री अगरचन्दजी नाहटा के संग्रह में थी।[1] अंजनासुंदरी रास जैन रास संग्रह प्रथम भाग में प्रकाशित है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ ये हैं—

शान्तिकरण जगि जाणिये, विश्वसेन कुलचंद,
भाद्रपद वदि सातमिइं चवीया जगदानंद।

मंगलाचरण के पश्चात् कवि ने दान-शील, तप भावना का महत्व बताया है, यथा—

चहुं प्रकार धर्म वर्णव्यो तिहुयण जन आधार,
दान शील तप भावना करि तरिय संसार।
धर्मे धणकण संपजे धर्मे मोटिमराज,
धर्मे जस महिमा धणी धर्मे सीझे काज।[2]

इस सन्दर्भ में धन्ना, शालिभद्र, कयवन्ना, श्रेयांस और सुदर्शन आदि की धर्मवीरता का वर्णन किया गया है। अन्त में लेखक ने अंजनासुंदरी के शीलपालन की प्रशंसा की है, यथा—

अंजनासुन्दरी भली पाम्यो शील उदार,
शील बलें सुखसम्पदा पामी निज परिवार।
× × ×
अंजनासुन्दरी अे खरो अे पाल्यो शील आचार,
भवियण जण तिम पाल्योभाव सुं रे,
जिमलहो कीरतिसार, शील समाचारो रे।

गुरुपरंपरा—श्री राजचंद्रसूरि गणधर गाइइरे, सेवक विमलचारित्र,
तास पसाइं चोपइ अेह रची रे, सेवक विमल चारित्र।

रचनाकाल—संवत सोलह वरसे त्रेसठई रे, मागसिर मास विकास,
चउपइ जोड़ी बीजे गुरु दिने रे, भणतां ग्यान प्रकाश।[3]

विमलचरित्र सूरि—आप तपागच्छीय हेमविमलसूरि<सौभाग्य-हर्ष सूरि>सोमविमलसूरि>संघचारित्र के शिष्य थे। आपकी रचना

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ९०
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८१-८२ (द्वितीय संस्करण)
३. वही भाग १ पृ० ३९८-४०० और भाग ३ पृ० ८९६ (प्रथम संस्करण), भाग ३ पृ० ८१-८२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवकाररास अथवा राजसिंह रास सं० १६०५ श्रावण शुक्ल १, गुरुवार को नडियाड में लिखी गई थी। इस रचना में राजसिंह के चरित्र के माध्यम से नवकार मन्त्र का महत्व प्रतिपादित किया गया है, यथा—

रास रचउं नवकारनुं त्रिभुवन मांहि उदार,
सांभलता सुख सम्पदा सुणतां जयजयकार।

आदि आणंदइ आदीश्वरी वंदी वसुधामाय,
नामिइं सरसति सामिणी सिरसा निजगुरुपाय।

गुरुपरंपरा—संघचारित्र नामइ भला रे मा० मूरति मोहन वेलि,
पीहर ते पीडचा तणा रे मा० साधु गुण केरइ वेलि।
तास तणइ सुपसाउलइ रे मा० नट्टप्रद रहीचुमासी सु०
रास रचीयो नुंकारनो रे मा०,
सीषिइ हियडा उल्लासी सु०।

रचनाकाल—संवत सोल पंचोतरे सार, सुदि पडवइ सोहइ गुरुवार,
सरवडि वरसइ श्रावण मास,
जग सघला नी पहुतइ आस।
राजसिंह रासउ जे भणइ, रत्नवती कथा सुं गणइ।
नवनिधि मंगलमाला मिलइ,
विमलचरित्रइ वांछित फलइ।[1]

विमलरंगशिष्य (लब्धिकल्लोल ?) विमलरङ्ग के इस अज्ञात शिष्य की रचना 'श्री जिनचंदसूरि अकबर प्रतिबोधरास' (सं० १६४८, ५८?) ज्येष्ठ कृष्णा १३, अहमदाबाद) ऐतिहासिक महत्व की है और इसका उल्लेख 'कवियण' के साथ किया जा चुका है क्योंकि ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में यह कृति कवियण के नाम से क्रम संख्या २२ पर छपी है। इस रास में युगप्रधान जिनचन्दसूरि और सम्राट अकबर के मिलन का प्रसङ्ग वर्णित है। इसका आदि देखिये—

श्री जिनवर जगगुरु मनधरि, गोयम गुरु पभणेसु;
सरस्वती सद्गुरु सानिधइ, श्री गुरु रास रचेसु।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २१-२२ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० १८८-१८९ तथा भाग ३ पृ० ६५८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बात सुणी जिन जन मुखइ, ते तिम कहिस जगीस,
अधिको आछो जो हुवइ, कोय करो मत रीस।[1]

इस रास में स्पष्ट रूप से इसे विमलरंग के शिष्य कवियण की रचना बताया गया है, यथा—

आग्रह अति श्री संघनइ ए, अहमदाबाद मझारि,
रास रच्यो रलियामणउ ए, भवियण जण सुखकार।
पढ़इ सुणइ गुरु गुण रसीए पूजइ तास जगीस;
कर जोड़ी कवियण कहइ विमलरङ्ग मुनि सीस।

इससे स्पष्ट लगता है कि यह रचना विमलरंग मुनि के शिष्य की है जो अपने नाम के स्थान पर 'कवियण' शब्द का प्रयोग करता है किन्तु श्री देसाई उस शिष्य का नाम लब्धिकल्लोल बताते हैं।[2] उन्होंने इस जानकारी का कोई आधार या प्रमाण नहीं दिया है। भेंट होने पर सूरिजी ने अकबर को जीवदया का संदेश दिया—

गच्छपति द्यौ उपदेश अकबर आगलि,
मधुर स्वरवाणी करी ए।
जे नर मारइ जीव ते दुख
दुरगति पामइ पातक आचरी ए।

उसने सूरिजी को युगप्रधान की पदवी दी—

जुग प्रधान पदवी दिद्ध गुरु कूं विविध बाजा बाजिया,
बहु दान मानइ गुणह गानइ, संघ सवि मन गाजिया।

उनके शिष्य महिमसिंह को पट्टधर बनाकर उनका नाम जिनसिंह सूरि रखा और जीव हत्या रोकने का फरमान जारी किया। रास का रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया गया है—

वसु युग रस शशि वच्छरइए, जेठवदितेरस जांणि,
शांति जिणेसर सानिधिइ ए, रास चडिउ परमाणि।[3]

इसकी कुल पद्य संख्या १३६ है जिसमें कुछ दो-दो और कुछ चार-चार पंक्तियों के छंद हैं जो अलग-अलग रागों और ढालों में ढले हैं। इसकी भाषा गुर्जर प्रधान मरुगुर्जर है।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ५९-७८
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७८४ (प्रथम संस्करण)
३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ५९-७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमलरत्न ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में 'विमलकीर्ति गुरु गीतम्' नामक रचना आपकी छपी है। इससे पता चलता है कि विमलकीर्ति हुंबड गोत्रीय श्री चंदाशाह की पत्नी जवरा देवी की कुक्षि से सं० १६५४ में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने साधुसुन्दर उपाध्याय से दीक्षा ली और जिनराजसूरि ने उन्हें वाचक पद प्रदान किया था। सं० १६९२ में वे किरहोट (सिन्ध) में स्वर्गवासी हुए। इसकी प्रारम्भिक और अन्तिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

आदि प्रात उठी नित प्रणमियइ हो विमल कीर्ति गणिचंद,
तेज प्रतापे दीपता हो, प्रणमै सहुवर वृन्द।

अन्त विमलकीर्ति गुरु नाम थी हो जाइई पातक दूरि,
विमलरत्न गुरु सेवतां हो प्रतपे पुण्य पडूर।

इसमें कुल आठ कड़ियाँ हैं।

विमल विनय —खरतरगच्छीय गुणशेखर के शिष्य नयरंग आपके गुरु थे। आपने अनाथी साधु सन्धि और अर्हन्नक रास नामक दो रचनायें की हैं। अनाथी साधु सन्धि (गाथा ७१) सं० १६४७ फाल्गुन शुक्ल ३ को कुसुमपुर में लिखी गई। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

श्री जिनशासन नाइक नीकउ, सिद्ध बधूसिरि सुंदर टीकउ,
वर्द्धमान जिनवर मनि ध्याइ, साधु सवे समरुं सुखदाइ।
बीसमउ उत्तराध्ययन विचार,
नाथ अनाथी तणउ अधिकार।
सूत्र साखि गुरुमुख जिम सुणीयइ,
तिम संबंध सयल अे भणीइ।

इसमें अनाथी ऋषि की कथा उत्तराध्ययन के आधार पर लिखी गई है। इसका अन्त इस प्रकार है—

संवत सोल सइं सत ताले, फागुणत्रीज दिवस अजुआलइ।
श्री कुसुमपुर वर मन मोहे, सोलम शांति जिणेसर सोहे।

गुरुपरंपरा-श्री जिनशासन अेह महंत, श्री जिनचंद्रसूरि जयवंत।
सहगुरु श्री गुणसेखर सीस, वाचक श्री नयरंग जगीस।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तास पसाय लही चितचंगइ,
विमल विनइं पभणइ मनरंगइ।[1]

अर्हन्नक रास (गाथा ६६, ४ ढाल)

आदि वर्द्धमान चउवीसमउ, जिनवंदी जगदीस,
अरहन्नक मुनिवर चरित्र, भणिसुं धरीय जगीस।

अन्त श्री गुणशेखर गुण निलउ जी, वाचक श्री नयरङ्ग,
तासु सीस भावइ भणइ जी विमलविनय मनिरङ्गि।

इन दोनों रचनाओं में कवि ने दो मुनियों का सात्त्विक चरित्र चित्रित किया है।[2]

विवेकचन्द I—आप देवचन्द्र के गुरुभाई थे। आपने सं० १६९६ वैशाख शुक्ल ८ के पश्चात् 'देवचन्द रास' की रचना की। इसमें विवेकचन्द ने देवचन्द को गुरुभाई तो बताया है किन्तु अपने गुरु और उनकी परम्परा का उल्लेख नहीं किया है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

सरस वचन रस बरसती, सरसति कवियण माय,
समरिय श्री गुरु गायस्युं निजगुरु पणमिय पाय।
श्री देवचन्द पंडित तिलक सुविहित साधु सिंगार,
तास रास रलियामणो भणतां जयजयकार।

अन्त गुरुजी गुण संभारतो संघ आवइ निजठाम,
अप्पाणां भुक्यां घणां, कीधो देव प्रणाम।
सरोतरा नगरि घणु तुठइ श्री जिनवीर,
देवचन्द्रवरवंधुनो विवेककहइइमरासोरे।[3]

ठीक इसी समय एक और विवेकचंद नामक कवि का विवरण मिलता है जिसे आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४४ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० ७८३-८४ (प्रथम संस्करण)
३. वही, भाग ३ पृ० ३१३ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० १०७९-८० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेकचंद II--आंचलगच्छीय कल्याणसागरसूरि आपके दादा गुरु और गुणचन्द्र आपके गुरु थे। आपने 'सुरपाल रास' (४४६ कड़ी, १९ ढाल) की रचना सं० १६९७ पौष शुक्ल १५ को राधनपुर में की इसका आदि इन पंक्तियों से हुआ है—

सरसती सुमति सदा दीओ, मन आणी अति कोडि,
गुण गाऊं गिरुआ तणां, पातिक नाखइ मोडि।

रचनाकाल --संवत सोल संताणुइ पोस पुनिम दिनसार रे,
चरित्र अेह रचिउ मनरंगे रायधनपुर मझारि रे।

गुरुपरम्परा --पण्डित गुणचंद्र वंदता पामीजे उछाह रे,
सुगुरु अेह तणे सुपसाये, भाख्यो जे अधिकार रे।
विवेकचंद्र कहे भावे सुणता लहइ लाभ अपार रे।
सुणी चरित्र दीजे दान जे कीजे अतिथिसंविभाग रे।[1]

इसमें सूरपाल राजा के दान की प्रशंसा की गई है जिसके बल पर उसने निर्वाण लाभ किया। रचना का छंद-बंध शिथिल, भाषा सरल, शैली सामान्य है।

यदि प्रथम विवेकचन्द की गुरुपरंपरा का ठीक पता लग जाता तो यह निश्चय करने में सुविधा होती कि ये दोनों दो कवि हैं या एक ही तो नहीं हैं।

विवेकविजय--तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य हीरविजयसूरि की परंपरा में आप शुभविजय > भावविजय > ऋद्धिविजय > चतुरविजय के शिष्य थे। आपने सं० १६७५ में बड़ावली में 'रिपुमर्दनरास' की रचना की। रचनाकाल कवि ने इस प्रकार बताया है --

संवत चैक सैलादिक रागा, ज्ञानी नाम धरीजे रे,
मास व्यंक अजुआली तिथि सीवा बारभलो भृगु लीजे रे।

इसका अर्थ बूझना सचमुच ज्ञानी का काम है। श्री देसाई ने सं० १६७५ के आगे प्रश्नवाचक चिह्न लगाकर अपनी शंका प्रकट कर दी

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५७७ और भाग ३ पृ० १०६६-६८ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० ३२०-२१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इसमें गुरुपरंपरा के साथ हीरविजय और अकबर की भेंट की भी चर्चा की गई है, यथा—

सकल भटारक अनोपम सोहे श्री हीरविजयसूरीराया रे,
अकबर ने बोधदइ ने, श्री जिनधर्म पताया रे।
तास रे सीस पंडित गुणभरीया चतुरविजय शिष्य सार रे,
तास रे सीस अति घणु रुडा, ऋद्धि विजय सुखकार रे।
राग धनासी ढाल सतावीस, रिपुमर्दन गुण गाया रे,
विवेक विजय कहे सुणतां सहुने आणंद ऋद्धि सवाया रे।[1]

इस गुरुपरम्परा की दो कड़ियाँ जो प्रथम भाग में छूट गई थीं उन्हें ही श्री देसाई ने भाग ३ में उद्धृत किया है जो दसवीं और बारहवीं के बीच की ११वीं कड़ी है, वह निम्नाङ्कित है—

तस तणा शिष्य अछि घणा वारु, शुभविजय कविराया रे,
तस तणा गुणवंत गिरुआ, भावविजय गुरुराया रे।

मृगाङ्कलेखारास के लेखक एक दूसरे विवेकविजय १८वीं शती में हुए हैं। उनका विवरण आगे के खण्ड में दिया जायगा।

विवेकहर्ष—तपागच्छीय हर्षाणंद आपके गुरु थे। आपने सं० १६५२ में १०१ कड़ी की एक रचना 'हीरविजय सूरि (निर्वाण) रास' नाम से बीजापुर में लिखी। हीरविजयसूरि इस शताब्दी के एक महान धर्मप्रभावक आचार्य और साहित्यकार थे। उनके कई भक्तों और शिष्यों ने उनको लक्ष्य करके अनेक रचनायें की हैं जैसे परमानंद कृत हीरविजयसूरि निर्वाण सं० १६५२, कुंअरविजय कृत श्री हीरविजय सूरि सलोको सं० १६५२ के बाद, जयविजय कृत हीरविजय सूरि पुण्यखानि आदि, जिनकी चर्चा यथास्थान की गई है। इन सब कृतियों में हीरविजय सूरि का जीवनवृत्त एवं उनकी सुकृति का यशोगान किया गया है। प्रस्तुत कवि विवेकहर्ष ने सं० १६५२ के कुछ ही बाद 'हीरविजयसूरि निर्वाण स्वाध्याय' लिखा। सं० १६५२ भाद्र ११ को हीरविजय सूरिजी ने ऊन्हा ग्राम में शरीर छोड़ा था। अतः ये सभी रचनायें उसी वर्ष या उसके थोड़े बाद की होंगी। हीरविजय सूरि (निर्वाण) रास जैनयुग पु० ५ पृ० ४६० से ४६४ पर प्रकाशित है और

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४९२–९३ और भाग ३ पृ० ९७२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी द्वितीय रचना 'हीरविजयसूरि निर्वाण स्वाध्याय' जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। यह रचना २१ वें क्रम पर और कुंवरविजय कृत सलोको २० वें क्रम पर तथा जयविजय कृत पुण्यखानि २२ वें क्रम पर एकत्र ही प्रकाशित हैं। हीरविजयसूरि के सम्बन्ध में प्राप्त समस्त विवरण उनके इतिवृत्त के साथ दिए जायेंगे। यहाँ केवल दोनों रचनाओं के उद्धरण उनकी भाषाशैली के नमूने के रूप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

हीरविजय सूरि (निर्वाण) रास की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं --

इम चिन्ती मनह मझारि अे, पाटण थी करइ विहार अे
गणधार अे राजनगरि पधारियाअे।
शाहजादउ शाह मुराद अे, हीरनइ वंदइ अति आल्हाद अे,
प्रसाद अे, मांगइ हीरजी नी दुआं घणी।

अन्त --जयउ जयउ जगगुरु पटधरो श्री हीरविजय गणधारजी,
शाह अकबर दरबार मां जिणि पाम्यो जयजयकार जी।

रचनाकाल --बीजापुर वरनयर मां, पाण्डव नयन वरीस जी रे,
हर्ष आनंद विबुध तणो दीसदीइ आसीस,
विवेक हर्ष कहइ सीसजी।[1]

हीरविजय सूरि निर्वाण स्वाध्याय की प्रति सं० १६५६ की प्राप्त है। सं० १६५२ में सूरिजी का निर्वाण हुआ था। इसलिए इन्हीं दो-तीन वर्षों के भीतर किसी समय यह रचना हुई होगी।

आदि --सरस वचन द्यउ सरसती, प्रणमी श्री गुरुपाय,
थुणस्युं जिनशासनधणी, श्री हीरविजय सूरिराय रे।
जगगुरु गाइई मान्यउ अकबर शाहि रे,
जस पाटि दीपतउ श्री विजयसेन गछनाह रे।

अन्त --इम श्री वीरशासन जग त्रिभासन श्री हीरविजय सूरीसरो,
जस शाहि अकबरदत्त छाजइ विरुद सुन्दर जगगुरो।

---

१. जैन युग, पुस्तक ५ पृ० ४६०--४६४ और जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७९-८० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस पट्ट प्रगट प्रतापी ऊग्यउ श्रीविजयसेन दिवाकरो,
कविराज हरषाणंद पंडित विवेकहर्ष सुहंकरो[1]

विवेकहंस—आपकी एक कृति 'उपासकदशांग बालावबोध' की रचना सं० १६१० से पूर्व हुई थी ऐसी सूचना श्री देसाई ने दी है परन्तु परिचय, उद्धरण आदि नहीं दिया है।[2]

वीरविजय—आपकी कई रचनाओं का नामोल्लेख श्री अगरचन्द नाहटा ने किया है किन्तु कृतियों और कर्त्ता का कुछ परिचय नहीं दिया है। कृतियों का नाम इस प्रकार है—'चौबीस जिन सात बोल विचार गर्भित स्तवन' (गाथा २५) सं० १६४ ? जैसलमेर; शत्रुंजय यात्रास्तवन सं० १६५२, सत्तरभेदी पूजा सं० १६५३ राजधन्यपुर और दस दृष्टान्त चौपइ।[3]

आप खरतरगच्छीय लेखक थे किन्तु आपकी गुरुपरंपरा नहीं ज्ञात हो सकी।

वेलामुनि—आप तपागच्छ के आचार्य विजयदान के शिष्य थे। आपने सं० १६२२ से पूर्व 'नवतत्व जोडि' की रचना की। इसकी किसी-किसी प्रति में लेखक का नाम मनसत या मन मिलता है, जैसे—

तपगच्छ नायक श्री गुरुनो श्री विजयदान गणधार रे,
चेलू मनसन आण धरइ तुं कहसूँ पर उपगार रे।

रचना का नाम 'जोडि' अथवा चौपाई या रास भी मिलता है। विजयदान सूरि का पद-स्थापन सं० १५८७ और स्वर्गवास सं० १६२२

१. ऐतिहासिक जैन गुर्जर काव्य संचय क्रम सं० २१ और जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७९-२८० (द्वितीय संस्करण) तथा भाग ३ पृ० ८२२ (प्रथम संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४५ (द्वितीय संस्करण) भाग ३ पृ० १५९५ (प्रथम संस्करण)
३. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७६ और जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २९८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में हुआ था इसलिए यह रचना सं० सोलह सौ बाईस से पूर्व की ही होगी। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

आदि—जिणंद नमेवि अे नवतत्व कहउं संखेवि अे,
जीव तणा दस पाण अे, पंच इन्द्री पंच प्राण अे।

अन्त—इय नवतत्व विचारतां, अधिकी ऊछी भाखि रे,
बोली हुइ अजाणवइ, ते षामउ संघ साषि रे।
तपगच्छ नायक सिद्धगुरु विजयदान गणधार रे,
वेलउ मुनि तसु आणधरी कहइ स्वपर उपगार रे।[1]

'वेलउमुनि तसु आणधरी' का पाठान्तर 'चेलू मनसत आण धरइ' भी कहीं-कहीं मिलता है इसके कारण श्री देसाई ने रचनाकर्त्ता का अपरनाम 'मनसत्य' भी लिखा है किन्तु बाद में शंकाग्रस्त विचार को त्याग दिया। इसलिए बेलामुनि की इस रचना को लेकर किसी शंका की गुंजाइश नहीं है और न मनसत्य नामक अपरनाम की आवश्यकता है।

शान्तिकुशल—तपागच्छ के आचार्य विजयदेव सूरि के शिष्य विनयकुशल आपके गुरु थे। इन्होंने सं० १६६७ में अपनी रचना 'अंजनासतीरास' का लेखन जालीर में प्रारम्भ किया। ६०६ कड़ी की यह कृति जासोला में पूर्ण हुई। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सरस वयन वर सरसती, तुं जगदम्बा माय,
कास्मीरी समरुं सदा, षजूरणउं वरदाय।
वीणा पुस्तक धारणी कमंडलु करि भरिभारि,
हंसगमनि हंसासनि, तुभलइं सिरजी किरतार।

रचनाकाल—संवत सोल सतसठइ, माहासुदिनी बीजा बखांणू रे,
सोवनगिरि भांडिउ, जासोलइ पूरु जाणूं रे।

गुरुपरम्परा—तपगछनायक गुणनिलउ विजयसेन सूरीसर गाजइ रे,
आचारिज महिमा घणु विजयदेव सूरीपद छाजइ रे।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२४ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० २२५-२६ तथा भाग ३ पृ० ७०३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तातप चांद्रणि परगडउ, जास महिमाकीरति भरिउ रे,
मान प्रेमलदे ऊरिधर्यु, देवकि पाटणिअवतरिउ रे।
विनयकुशल पंडितवरु, परउपगारी गुणछरिउ रे,
चरण कमल सेवा लही शांति कुशलइ अे रास करिउ रे।

गोड़ी पार्श्वनाथ स्तवन सं० १६६७, यह प्राचीन तीर्थ संज्झाय और गोड़ी पार्श्वनाथ सार्ध शताब्दी स्मारक ग्रन्थ में प्रकाशित है।

तपगछतिलक तडोवडि पाय प्रणमी हो विजयसेन सूरीस,
संवत सोल सतसठें बीनवीओ हो गोडी जगदीस।

झांझरिया मुनि संज्झाय (१०२ कड़ी सं० १६७७ वैशाख कृष्ण ११ बुध, स्याणा)

आदि— सरसति कोमल सारदा, वाणी वर द्यो माय,
पायठाणपुर पाटण धणी सबल मकरध्वजराय।

रचनाकाल—संवत सोल सतोत्तरे, श्याणा नगर मझारि हो,
वइशाखवदि अेकादशी, थुभिउ मि बुधवार हो।

भारती स्तोत्र अथवा अजारी सरस्वती या शारदा छंद ३३ कड़ी-यह रचना प्राचीन छंद संग्रह में प्रकाशित है।[1]

आदि— सरस वचन समता मन आणी ऊंकार पहिलो धुरि जांणी,

अन्त— तव बोली शारदा जो छंद कीधो, भली भगतें वाचा माहरी,
हुं तूही में वर दीधो तूं लीला करिस, आस फलसी ताहरी।

यह रचना 'मणिभद्रादिको नाछंदनुं' नामक पुस्तक में भी प्रकाशित है। सनतकुमार संज्झाय की आदि पंक्ति—

सरसति सामिणि पाअे लागूं

यह संज्झाय 'जैन संज्झाय संग्रह' में प्रकाशित है।

इस प्रकार इनकी प्रायः सभी रचनायें प्रकाशित हैं। अधिकतर रचनायें स्तोत्र, स्तवन, संज्झाय हैं। अन्जनासती रास विस्तृत और महत्वपूर्ण रचना है। भाषा सरल मरुगुर्जर है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १३४–१३७ (द्वितीय संस्करण) तथा भाग १ पृ० ४७१–७२ और भाग ३ पृ० ९४८–४६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शाह ठाकुर ये लुहाडया गोत्रीय खण्डेलवाल वैश्य थे। इनके जन्म स्थान लुवाइणिपुर में चन्द्रप्रभ का सुन्दर जिनमन्दिर था। इनके गुरु अजमेर शाखा के विद्वान् भट्टारक विशालकीर्ति थे। इनके पितामह का नाम साहु सील्हा और पिता का नाम खेता था। ये काव्य, संगीत और छन्द-अलंकार आदि में निपुण थे तथा निरन्तर विद्वानों, सन्तों और साहित्यकारों का सत्संग करते थे।[1]

इनकी अबतक दो कृतियाँ उपलब्ध हैं एक अपभ्रंश शैली में रचित 'संतिणाहचरिउ' (शान्तिनाथ चरित) और दूसरी प्राचीन हिन्दी शैली में लिखित 'महापुराणकलिका'। प्रथम रचना में १६वें तीर्थङ्कर शान्तिनाथ का जीवन चरित्र है। यह रचना सं० १६५२ भाद्रपद शुक्ल पंचमी को अकबर के शासनकाल में ढूढाड़ प्रदेश के कच्छपवंशी राजा मानसिंह के राज्य में लिखी गई। इसकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

जिण धम्मचक्क सासणि संरति,
गयणय लहुजिम ससि सोह दिति।
जिण धम्मणाण केवल रवीय,
तह अड्ढकम्ममल विलयकीय।
एत्तउ मांगउ जिणसंतिणाह महु,
किज्जहु दिज्जहु जइ बोहिलाहु।[2]

दिल्ली से लेकर अजमेर तक प्रतिष्ठित भट्टारक परम्परा का एक ऐतिहासिक दस्तावेज इस रचना की अन्तिम प्रशस्ति में उपलब्ध है। इसकी भाषा अपभ्रंश मिश्रित प्राचीन शैली की है फिर भी तत्कालीन लोक प्रचलित ब्रजभाषा से प्रभावित है क्योंकि ढूढाड़ प्रदेश तक ब्रजभाषा का पर्याप्त प्रचार हो गया था।

खेद है कि इनकी हिन्दी शैली में लिखित दूसरी रचना महापुराणकलिका का उद्धरण नहीं उपलब्ध हो सका, इसलिए इनकी प्रकृत हिन्दी काव्य भाषा-शैली का ठीक नमूना नहीं दिया जा सका।

---

१. पं० परमानंद शास्त्री—जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह (प्रस्तावना) पृ० १३०
२. डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री का अपभ्रंश के साहित्यकार नामक लेख राजस्थान का जैन साहित्य पृ० १४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शालिवाहन--सं० १६९५ में भायावर प्रान्त निवासी कवि शालिवाहन या सालिवाहन ने जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण का आगरा में हरिवंशपुराण नाम से अनुवाद किया। इस कृति में कवि ने हिन्दी को देवगिरा कहकर उसके प्रति अपना आदरभाव व्यक्त किया है इनके पिता का नाम रावत षरगसेन था। ये भट्टारक जगभूषण के शिष्य थे। हरिवंश पुराण की भाषा हिन्दी, विषय पुराण है। इसकी प्रतिलिपि सं० १७९० की लिखी हुई दिगम्बर जैन मन्दिर, बयाना से प्राप्त हुई है। इन्होंने लिखा है--

जिनसेन पुरानु सुनौ मै नाम, ताकी छाया लै चौपई करी।[1]

अर्थात् यह रचना जिनसेन के हरिवंश पुराण का छायानुवाद है। भाषा अन्य दिगम्बर लेखकों की तरह पुरानी हिन्दी है।

शिवनिधान उपाध्याय—ये खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य जिनचन्द्र सूरि की परंपरा में हर्षसारगणि के शिष्य थे। ये इस शताब्दी के श्रेष्ठ गद्यकारों में थे। इन्होंने भाषा-टीकाओं के साथ ही मौलिक गद्य रचनायें भी की हैं। इनकी कुछ प्रसिद्ध गद्य रचनाओं की सूची प्रस्तुत है। कल्पसूत्र बालावबोध सं० १६८० अमरसर, संग्रहणी बालावबोध १६८० अमरसर; कृष्णरुक्मिणी बेलिटब्बा, योगशास्त्र टब्बा, उपदेशमाला टब्बा, शाश्वत स्तवन बालावबोध सं० १६५२ सांभर, गुणस्थान स्तवन बालावबोध सं० १६९२ सांगानेर, लघुविधिप्रपा, कालिकाचार्य कथा और चौमासी व्याख्यान।[2] इनमें से कुछ रचनाओं का विवरण-उद्धरण दिया जा रहा है।

शाश्वतस्तवन बालावबोध सं० १६५२ श्रावण कृष्ण ४, सांभर का आदि --

प्रसादं गुरुराजस्य हर्षसाराभिधस्य सत्
प्राप्तं कुर्व्वे शास्वतार्हच्चैत्यं संख्या सुवार्तिकं।

अन्त ते दिणि देवेन्द्र मुणीन्द्रइ स्तवी हुती,
भाविक जीवनइ सिद्धि सुष आपउ।

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल--राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची ५ वां भाग पृ० ३०३

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८३-८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईतलइ शास्वती अशास्वती जे जिन प्रतिमा,
नाम ते सर्वदा वांदिवा पूजिवा योग्य जाणिवा ।

इसके अन्त में दिए गये श्लोक से इनकी गुरु परम्परा पर पूरा प्रकाश पड़ता है, यथा—

श्रीमत् खरतरगच्छे श्री जिनमाणिक्य सूरि गुरु पट्टे,
विजयिनि युगप्रधान श्री जिनचन्द्राभिध सुगुरौ,
श्री जिनसिंह मुनीश्वर युवराज्ये हर्षसारगणि शिष्यः
अलिखत स्वस्मृति हेतो, स्तववार्ता शिवनिधान गणि ।[1]

अर्थात् आप खरतरगच्छीय जिनमाणिक्य के शिष्य युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि के शिष्य हर्षसार के शिष्य थे । उस समय जिनसिंह पट्टासीन नहीं हुए थे । इसकी गद्य भाषा में वांछिवा, पूजिबा, जाणिवा आदि क्रिया प्रयोग इसकी प्राचीनता के द्योतक हैं । आप संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे । इन्होंने राजस्थानी की प्रसिद्ध कृति 'कृष्ण-रुक्मिणी बेलि' पर बालावबोध लिखा है । इसका प्रारम्भ देखिये—

श्री हर्षसार सद्गुरु चरण जुगोयास्ति लच्छ विज्ञान,
विदधाति शिवनिधानोऽर्थ वलया बालाबोध कृते ।
राउ श्री कल्याणमल्ल पुत्र श्री पृथ्वीराज राठडउ,
वंशी ग्रंथनी आदइ मंगल निमित्त,
ईष्ट देवतानइ नमस्कार करइ ।
पहिलउ परमेसरनइ नमस्कार करइ,
वली सरसती वाग्वादिनी नइ विद्या मणी नमस्कार करइ ।
सद्गुरु विद्यागुरु नइ नमस्कार करइ,
अे तीनों तपसार तिहुं लोक सुखदायी ।[2]

'लघुसंग्रहणी बालावबोध' १६८० कार्तिक शुक्ल १३, अमरसर । यह रचना जिनराज सूरि के समय लिखी गई । 'जिनराजसूरि धर्म-साम्राज्ये' लघु विधि प्रपा, विधिप्रकाश अथवा बड़ीदीक्षा विधि में २८ विधि-विधानों का विवरण है । कल्पसूत्र बालावबोध (सं० १६८० अमरसर) के अन्त में संस्कृत में रचनाकाल और विस्तृत गुरुपरम्परा दी गई है जिसमें लिखा है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २८३-२८४ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ३६७-६८ और भाग ३ खण्ड २ पृ० १५९८-१६०० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जिहंगीर साहि राज्ये खरतर जिनराज धर्म साम्राज्ये' इन्हीं जिनराज की परम्परा के शीलचंद्र, जिनप्रभ और रत्नमूर्ति, तत्पश्चात् मेरुसुन्दर > शांतिमंदिर, हर्षप्रिय, हर्षोदय और हर्षसार का सादर स्मरण किया गया है।

गुणस्थान गर्भित जिनस्तव बालावबोध(सं० १६९२ आषाढ़ शुक्ल ३, सांगानेर, संभवतः यह इनकी अन्तिम गद्य रचना है। यह कृति जिनराजसूरि (शिष्य जिनसिंह सूरि) कृत गुणस्थान गर्भित जिनस्तव (सं० १६६५ मागसर कृष्ण १० जैसलमेर) पर रचित बालावबोध है।[1] मूल स्तवन केवल १९ कड़ी का है। उस पर रचित यह पांडित्य-पूर्ण बालावबोध विस्तृत है।

शिवदास (जैनेतर)—आपकी रचना 'कामावतीवार्ता' सं० १६७३ में लिखी गई। इसे भजनलाल दलपतराम जोशी ने सं० १९५९ में प्रकाशित किया है। इसमें कनक देश के राजा कामसेन की कन्या कामावती का चरित्र चित्रित है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

गणपति चरणकमलनमी, प्रणमी सरसति पाय,
कहूं चरित कामावती अक्षर आपे माय।
कनकदेश कुंकुमनगर कामसेन राजान,
सेनानी संख्या नहीं सात सहस परधान।
कनकवती घरि भारजी कामावती कन्याय,
रूपविचक्षण चातुरी सकलकला गुणराय।

अन्त सेव करे बहुकामावती, प्रेम सबल मन आणी सती,
सासु ससुराना पाय नमे, राय राणी नित पूजी जमे।
पनरे वरसे टल्यो वियोग, सर्व अेकण थर्या संयोग,
दुख भागी सखेनु जाय, कृपा करी श्री वैकुण्ठराय,
अे कामावती चरित जे गाय, सांभलता सुख पामे काय।

× × ×

एक मने जा सांभले, पोहचे तेहनी आस,
बे करजोड़ी वीनवे सिवो हरी नो दास।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २८३-२८५ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ खण्ड २ पृ० २१५२-५३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभचन्द्र— भट्टारक सम्प्रदाय के चार शुभचन्द्रों में एक पद्मनन्दि, दूसरे कमलकीर्ति, तीसरे विजयकीर्ति और चौथे हर्षचन्द्र के शिष्य थे। पहले का समय १५वीं, दूसरे का सोलहवीं, चौथे का १८वीं शती है। तीसरे भट्टारक शुभचन्द्र का अधिक समय १६वीं और थोड़ा समय १७वीं शताब्दी में बीता था। आप सं० १५७३ में भट्टारक बने और सं० १६१३ तक इस पर रहे। इसलिए इनका विवरण १६वीं शती में दे दिया गया है।[1]

शुभविजय—इनकी गुरुपरंपरा और रचनाओं को लेकर कई शंकायें हैं। श्री मो० द० देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९३ और भाग ३ पृ० १०८६ ८७ (प्रथम संस्करण) में इन्हें तपागच्छीय कल्याणविजय का शिष्य बताया था। इनकी रचना महावीर २७ भव स्तवन में गुरुपरंपरा इस प्रकार दी गई है—

श्री वीरपाट परंपरागत आणंदविमल सूरीसरो,
श्रीविजयदान सूरि तास पाटि श्री हीरविजयसूरि गणधरो।
श्रीविजयसेन सूरि तास पाटि विजयदेव सूरि हितकरो,
श्रीकल्याणविजय उवझाय पंडित श्रीशुभविजय शिष्य जयकरो।

यहीं पर देसाई ने लिखा है कि एक शुभविजय हीरविजय सूरि के शिष्य थे जिन्होंने तर्कभाषा वार्तिक, काव्यकल्पलता मकरंद, स्याद्वाद-भाषासूत्र आदि ग्रंथ लिखे हैं। ये दोनों एक ही सकते हैं।[2] इनकी दूसरी रचना शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तव (६४ कड़ी) सं० १६८७ से स्पष्ट ये हीरविजय सूरि के शिष्य मालूम पड़ते हैं, यथा—

अकबर साह प्रतिबोधीउ रे, तपगछ पूनिम चंद,
श्री हीरविजय सूरीसरु रे, सेवइ सुरनर इन्द।
तस पदपंकज मधुकर रे, शुभविजय सुखकंद,
संकट विकट निवारतो रे, करतो भविकानंद।
श्रीविजयसेन सूरि पटधणी रे, श्रीविजयदेव सूरिंद,
तस राज्ये स्तवन करूं रे, प्रतिपो जिहां रविचंद।[3]

---

१. हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास खंड १ पृ० ५०१
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५९४ (प्रथम संस्करण)
३. वही भाग ३ पृ० २७५-७६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन गुर्जर कविओ के द्वितीय संस्करण के सम्पादक ने इसी आधार से इनकी गुरुपरंपरा पर शंका उठाई है और बताया है कि इनके गुरु कल्याणविजय नहीं हीरविजय सूरि थे। श्री देसाई ने 'पाँच बोलनो मिच्छामी दोकडो बालावबोध' (सं० १६५६ के पश्चात्) नामक गद्य रचना को किसी अज्ञात लेखक की कृति बताया था।[१] किन्तु द्वितीय संस्करण के सम्पादक ने इसे इन्हीं शुभविजय की रचना माना है क्योंकि इसके अन्त में स्पष्ट लिखा है—'इति भट्टारक श्री हीरविजय सूरीश्वर दायितोपाध्याय श्री धर्मसागर गणि दत्त पंचजल्प मिथ्या-दुष्कृतपट्टकस्यायं बालावबोधः भट्टारक श्री विजयदेवसूरींद्र निर्देशात् भट्टारक श्री हीरविजयसूरि शिष्य पंडित श्री शुभविजयगणिना विहितः…' इससे स्पष्ट इस रचना के कर्त्ता हीरविजयसूरि शिष्य शुभविजय प्रमाणित होते हैं। अतः वे न केवल अच्छे पद्यकार अपितु गद्यलेखक भी थे। उनकी गद्यशैली के नमूने के रूप में दो चार पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—'पातसाहि श्री अकब्बर प्रतिबोधदायक भट्टारक सहस्रनेत्र भट्टारक श्री हीरविजय सूरीन्द्र पट्टविभूषण भट्टारक श्री विजयसेन सूरीश्वर पट्टोदय शिखरि शिखर सहस्र वसु समान सम्प्रति विजयमान भट्टारक श्री विजयदेव सूरीश गुरुभ्यो नमः'। उद्धरणों से ऐसा लगता है कि कवि ने विजयदेव सूरि के समय रचना की। वह हीरविजय को और विजयदेव सूरि को भी गुरु रूप में स्मरण करता है।[२]

श्रवण—(सरवण) आप पार्श्वचन्द्र के शिष्य थे। आपने सं० १६५७ पौष शुक्ल ५ को पाटण में 'ऋषिदत्ता रास' लिखा।[३]

श्रीधर—(जैनेतर) आपने सं० १६६५ में '**रावण-मंदोदरी संवाद**' की रचना की।[४]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १६१६-१७ (प्रथम संस्करण)
२. वही, भाग ३ पृ० २३२ (द्वितीय संस्करण)
३. वही, भाग ३ पृ० ८७८ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ३०३ (द्वितीय संस्करण)
४. वही, भाग १, पृ० ४६६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपालऋषि—आपने सं० १६६४ में दशवैकालिक सूत्र बालावबोध की रचना की।[1] श्रीपाल स्थानकवासी सम्प्रदाय के ऋषि थे किन्तु इनके सम्बन्ध में और कुछ नहीं ज्ञात हो सका।

श्रीसार (पाठक)—आप खरतरगच्छ की क्षेमशाखा के साधु रत्नहर्ष के शिष्य और प्रसिद्ध लेखक सहजकीर्ति के गुरुभाई थे। आपके गुरुभाई और स्वयं आप भी अच्छे लेखक थे। आपकी निम्नलिखित रचनायें उपलब्ध हैं—गुणस्थान क्रमारोह बालावबोध सं० १६७८, जिनराजसूरि रास सं० १६८१, आनन्द श्रावक संधि सं० १६८४ पुष्करणी; पार्श्वनाथ रास १६८३ जैसलमेर, सतरभेदी पूजा स्तवन १६८२ फलौदी, मोतीकयासिया छंद १६८९ फलौदी, सारबावनी १६८२, जयविजय चौपई १६८३, लोकनालगर्भित स्तवन १६८७, मृगापुत्र चौपई १६७७ बीकानेर, दसश्रावकगीत, गौतमपृच्छा स्तवन उपदेशसत्तरी आदि। आपने प्रसिद्ध बेलि 'कृष्ण-रुक्मिणी री बेलि' पर संस्कृत में टीका लिखी है। आप गद्य और पद्य तथा मरु-गुर्जर और संस्कृत दोनों विधाओं और भाषाशैलियों के कुशल लेखक थे। आनन्दश्रावकसंधि बहुप्रचारित रचना है। जिनराज सूरि रास ऐतिहासिक महत्व की कृति है। यह रचना ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह में (पृ० १५० से १७१ तक) प्रकाशित है। आणंदसन्धि और उपदेशसत्तरी भी प्रकाशित रचनायें हैं।[2]

इनमें से कुछ उल्लेखनीय कृतियों का विवरण और उद्धरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। 'जिनराजसूरि रास' के अनुसार जिनराजसूरि का जन्म बीकानेर में सं० १६४७ वैशाखशुक्ल ७, बुधवार को बोथरावंश के धर्मसी साह की पत्नी धारल दे की कुक्षि से हुआ था। आपका बचपन का नाम खेतसी था। जिनसिंह सूरि की देसना से वैराग्य और सं० १६७० में दीक्षा हुई, नाम राजसिंह रखा गया। बाद में आचार्य जिनचंद सूरि ने बड़ी दीक्षा देकर नाम राजसमुद्र रखा और वाचनाचार्य की पदवी दी। सम्राट् जहाँगीर के आमन्त्रण पर आगरा जाते समय जिनसिंह सूरि का रास्ते में मेड़ता में सं० १६७४ में निधन हो

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ६०२, भाग ३ पृ० १६०१ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ८३ (द्वितीय संस्करण)

२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८०-८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया। राजसमुद्र को तब गच्छनायक पद देकर उनका नाम जिनराज-सूरि रखा गया। आपने राजसमुद्र और जिनराजसूरि नाम से पर्याप्त साहित्य लिखा है जिसका परिचय यथा स्थान दिया गया है। शाहजहाँ, राजागजसिंह और अशरफ खां आदि आपके प्रशंसक थे। आपकी प्रमुख रचनाओं में शालिभद्र चौपइ, गजसुकुमाल चौपइ, कर्मबत्तीसी, शीलछत्तीसी, बीसी-चौबीसी आदि का उल्लेख किया गया है।

जिनराजसूरिरास—प्रस्तुत रास की ९ कड़ियां खंडित हैं, दसवीं इस प्रकार है—

अति सरवर सुन्दर अति भली सोहइं घणी धम्रसाल,
जिह आवी व्यवहारिया, धरम करइं सुविशाल।

इसमें ३२४ छन्द और ११ ढाल हैं। श्रीसार ने जिनराजसूरि की शोभा का वर्णन करते हुए लिखा है—

नयन कमलनी परि अणियाली,
सोहइ अधर जाणइ परवाली।
करइ हाथ सुं लटका मटका,
बोलइ वचन अमी रा गटका।[1]

रचनाकाल—सोहइ शहर सदा सेत्रावउ, मरुधर मांहि मल्हायउ,
संवत सोल इक्यासी वरसइ, अेह प्रबन्ध बणायउ री।
आषाढ़ा बदि तेरसि दिवसइ, सुरगुरु वार कहायउ,
श्री गच्छनायक गुण गावतां, मेहपिण सबलउ आपउ री।

आनन्द श्रावक संधि—(१५ ढाल, २५२ कड़ी सं० १६८४, पुष्करणी)

आदि— वर्द्धमान जिनवर चरण, नमतां नवनिधि होइ,
सन्धि करुं आनन्दनी, सांभलिज्यो सहु कोइ।

रचनाकाल—संवत दिशी सिद्धि रस ससि तिण पुरीमइ कीधी चउमासि
अे संबंध कीधौ रलियामणउ, सुणतां थाइ उल्लास।[2]

'मोतीकपासिया संवाद'—(सं० १६८९ फलौदी) यह रचना संवाद रूप में है। इसका आदि—

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १५०-१७१

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २१३-२१४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन्दर रूप सोहामणो आदीसर अरिहंत,
परता पूरण प्रणमीयै त्रयभंजण भगवंत ।

अन्त— कपासीओ मोती इणि परि मल्या सयण तणे संबंध,
संवत सोल निव्यासीइ, कीधो अेह प्रबंध ।

'सारबावनी' (कवित्त बावनी ५७ कड़ी, सं० १६८९ आशो सुदी १०, पाली) ककहरा क्रम में ५२ अक्षरों से प्रारम्भ करके ५२ छन्द लिखे गये हैं। इसमें भगवान और उनकी भक्ति का गुणानुवाद है। इसकी अन्तिम चार पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

क्षितिमंडल क्षितितिलक सहर पालीपुर सोहइ,
गढ़मढ़ मन्दिर पडल बागवाडी मनमोहइ।
राज करै जगनाथ सूर सामंत सवायो,
सोनिगिरइ सुसमत्थ सुजस वसुधा बर्त्तायो।
संवत सोल निव्यासीयइ आसू सुदि दशमी दिनइ,
श्री सार कवित्त बावन कह्या, सांभलिज्यो सांचइ मनइ ।[1]

उपदेश सत्तरी अथवा जीव उत्पत्तिनी संज्झाय अथवा तंदुल-वेयालीसूत्र संज्झाय, अथवा गर्भावास संज्झाय अथवा वैराग्य संज्झाय। यह रचना अभयरत्नसार संग्रह और अन्य कई संकलनों में उपरोक्त नामों से छपी है।

आदि— उत्पत्ति जोगो आपणीमन मांहि विमास,
गर्भावसि जीवडो वसियो नव मास।

दश श्रावक गीत या संज्झाय १४ कड़ी की लघु रचना है--

फलोधी पार्श्वनाथस्तवन – जैन सत्य प्रकाश में प्रकाशित है।

आदिनाथस्त०, वासुपूज्य रोहिणीस्त०, गौतमपृच्छानुस्त०, जिन-प्रतिमा स्थापनस्तव आदि भक्तिपरक पूजा पाठ सम्बन्धी लघु-कृतियाँ हैं।

आत्मबोध गीत—७ कड़ी की चेतावनी है। इसकी अन्तिम दो पंक्तियाँ देखिये—

पासि रतन के जतन न कीने, पर्यओ पतन मइ प्रांणी हो,
सुकृत संयोग सुगुरु की वाणी अब श्रीसार पिछांणी हो ।[2]

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २१७-२१८ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ३७९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप पद्य के अलावा गद्य में भी रचना करते थे। 'गुणस्थान क्रमारोह बालावबोध सं० १६७८ का उल्लेख श्री देसाई ने 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' में किया है, लेकिन इसके गद्य का नमूना नहीं दिया है।

इस प्रकार श्रीसार १७वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय लेखकों में श्रेष्ठ कवि और गद्यकार हो गये हैं।

श्रीसुन्दर—आप खरतरगच्छीय आचार्य जिनचन्द्र सूरि की परंपरा में हर्षविमल के शिष्य थे। आपने सं० १६६६ में अगड़दत्त रास लिखा।[1] इसके अतिरिक्त आपका लिखा 'क्षुल्लककुमार रास' तथा कुछ स्फुट गीत भी उपलब्ध हैं। अगड़दत्तरास (२८४ कड़ी, सं० १६६६ कार्तिक एकादशी, शनिवार) का आदि—

परमपुरुष परमेष्ठि जिन प्रणमु गउड़ी पास,
सुरतरु सुरमणि जिम सदा, सफल करइं सवि आस।

गुरुपरंपरा—श्री जिनदत्त जिनकुशल गुरु खरतरगच्छ नरेस,
सेवकजन सानिधिकरण, आवइ पुरत विशेष।
श्री अकबर प्रति बोधतां प्रगडिउपुण्यं पडूर,
विजयमान विद्या अधिक, जुगवर जिनचंदसूरींद।

इसके पश्चात् जिनसिंह सूरि की स्तुति के बाद अपने गुरु हर्षविमल का कवि ने सादर स्मरण किया है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

स्वामिवदन गुण रस रसा अे संवत काति मासि,
शनि अेकादसि अे, तो पण वड सुख वासि।[2]

यह रचना उत्तराध्ययन पर आधारित है।

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में 'जिनचंदसूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत श्रीसुन्दर के दो गीत भी संकलित हैं। एक राग मल्हार में आबद्ध ५ कड़ी और दूसरा ११ कड़ी का है। गीतों की क्रम संख्या २

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८२
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ११९-१२० (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ९१५-१६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और ५ पर ये दोनों गीत संग्रहीत हैं। ५वें गीत की एक पंक्ति देखिये–

श्री सुन्दर प्रभु चिरजयउ दिन-दिन चढ़तइ वान।[1]

क्षुल्लककुमाररास का उद्धरण एवं विवरण नहीं उपलब्ध हो सका।

श्रीहर्ष—आप ज्ञानपद्म के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७०० में 'कर्मग्रन्थ बालावबोध'[2] नामक गद्य रचना श्री ज्ञानरत्न के समय में की आपकी गद्य रचना का नमूना नहीं प्राप्त हुआ।

श्रुतसागर--आप धर्मसागर उपाध्याय के शिष्य थे। आपने सं० १६७० में 'ऋषि मंडल बालावबोध की रचना की। आपने रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

व्योमर्षि रस शीतांशु वत्सरे।[3] गद्यशैली का नमूना उपलब्ध नहीं है।

सकलचन्द—आप तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य हीरविजयसूरि के शिष्य थे। कहीं कहीं इन्हें विजयदानसूरि का शिष्य भी बताया गया है। लगता है कि एक दीक्षा-गुरु और दूसरे विद्या-गुरु रहे होंगे। इनके कई शिष्य-प्रशिष्य भी अच्छे लेखक और सन्त हो गये हैं। इनकी मृगावती आख्यान, वासुपूज्यजिन पुण्यप्रकाश रास, सत्तरभेदी-पूजा, अेक बीस प्रकारी पूजा, बारभावना संज्झाय, गौतमपृच्छा, नेमिस्तवन, सीमंधरेर स्तवन, वैरस्वामी संज्झाय, मेघकुमार संज्झाय आदि अनेक रचनायें उपलब्ध हैं। आप मरुगुर्जर के साथ संस्कृत, प्राकृत के प्रगाढ़ पण्डित थे। आपने मरुगुर्जर रचनाओं के बीच-बीच में सन्त तुलसीदास की तरह संस्कृत में बड़े सुन्दर श्लोक मंगलाचरण

१. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह 'जिनचंद सूरि गीतानि' २रा और ५वाँ गीत
२ जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० ३४१ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ खंड २ पृ० १६१३ (प्रथम संस्करण)
३ वही भाग ३ पृ० १५९ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ खंड २ पृ० १६०३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि के रूप में लिखा है आपने संस्कृत में प्रतिष्ठाकल्प की रचना की है। आपकी कुछ प्रसिद्ध रचनाओं का विवरण-उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

मृगावती आख्यान अथवा रास (४२१ कड़ी) आदि—

सिधारथ नरपति कुलि अषाढ़ि सुदि छठि,
आयु सुपिनां देषाइतु, तब तिसला हुइ तूठि।

अन्त चेडक महारायनी पुत्री शांतिशील-पवित्री जी,
सकलचंद मुनि भासइ समरु मृगावती सपवित्रीजी।
मृगावती सुसती आख्यानं, शील रखोपा कीजे जी,
सती सवे नितु सुणयो भणयो हीरविजइ गुरुराजइजी।[1]

वासुपूज्यजिन पुण्यप्रकाशरास (अथवा स्तवन) ६१ ढाल ४७६ कड़ी, खंभात

आदि—ऋषभ अजित संभव जिनो, अभिनन्दन सुमतीसो,
पद्मप्रभ सुपासो बीहा, चन्दप्रभ सुविधीशो।

अन्त में गुरुपरम्परान्तर्गत कवि ने लिखा है—

श्री मदानन्दविमलेन्दु गुरुवंदीइ, पटितस श्री विजयदानसूरो,
तास पति प्रशोनौ कूपलोवंदीइ, हीरविजयगुरु सुगुणिपूरो।

सत्तरभेदी पूजा—यह विविध पूजा संग्रह तथा अन्य पूजा संग्रहों में प्रकाशित है। इसमें कवि ने विजयदान को गुरु बताया है, यथा—

श्री तपगच्छ अम्बरि दिनकर सरिखो,
विजयदान गुरु मुणियो,
जिन गुरु संघ भगति करी पसरी,
कुमतितिमिरसब हणियो।
इणीपरि सत्तरिभेद पूजाविधि, श्रावक कुं जिन भणियो,
सकल मुनीसर काउसग्ग ध्याने चिंतवि सबफल चुणियो रे।

एक बीस प्रकारी पूजा - विविध पूजा संग्रह में प्रकाशित है—

श्री तपगच्छे दिनकर शोभे, विजयदान गुरु गुणियो,
श्री हीरविजय प्रभुध्याने ध्यातां,
हेमहीरो जेम जडियोरे, प्रभु।

---

१ जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १३८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बार भावना संज्झाय--यह 'शलोका संग्रह' और संज्झाय पद संग्रह तथा जैनसंज्झाय संग्रह में प्रकाशित है। 'वीर वर्द्धमान जिनदेशी अथवा हमचडी अथवा सुरलता अथवा जन्मादि अभिषेक कल्याणक पाँच वर्णन रूपी स्तव (६६ कड़ी) यह जैनसत्यप्रकाश, पुस्तक ९ अङ्क १० पृ० ४४१-४५ पर प्रकाशित है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

नंदनकु तिसला हुलरावइं, पूतइ मोह्या इन्दा रे,
तुझ गुण लाडेकडाना गावति, सुरनरनारिना वृन्दा रे।[1]

गणधरवास स्तवन ४८ कड़ी, साधु कल्श अथवा साधु वंदना मुनिवर सुरवेली (१४४ कड़ी) और हीरविजय देशना सुरवेलि (११५ कड़ी) आदि नवीन काव्य विधाओं में प्रस्तुत रचनायें हैं। इसी प्रकार अनेक स्तवन, स्वाध्याय आदि भी आपने लिखा है। महावीर हींच (हींडी) स्तवन (४६ कड़ी) का मंगलाचरण संस्कृत भाषा में लिखा है, यथा--

आसीन्मथो यस्य रसे प्रशांते यस्यानुलक्षा क्षांतिरभूदुपांते,
सुवर्णकांते कृतसंगवांते, नमोऽस्तु ते वीरविभो निशांते।

'ऋषभ समता सरलता स्तवन' ३१ कड़ी, विरजिनस्तवन अथवा गौतमदीपालिका स्तव (७६ कड़ी), कुमतदोषविज्ञप्तिका श्रीसीमंधर स्तव, नेमिस्तवन और अन्य बीसों स्तवन आपने लिखे हैं। इनमें से कई स्तवन 'स्तवन संज्झायसंग्रहों' में प्रकाशित हैं। वैरस्वामीसंज्झाय, हीरविजय सूरि संज्झाय, मेघकुमार संज्झाय आदि अनेक संज्झाय भी आपने लिखे। इन सभी छोटी-बड़ी रचनाओं का विवरण एव उद्धरण देना सम्भव नहीं है। नमूने के रूप में गौतम पृच्छा के आदि और अन्त की पंक्तियाँ देकर यह विवरण समाप्त किया जा रहा है।

आदि--जिनवर रूप देखी मन हरखी, स्तनमें दूध कराया,
तब मन गौतम हुआ अचम्भा, प्रश्न करणकुं आया।
गणधर अे तो मेरी अम्मा।

अंत—श्री तपगच्छनायक हीरविजय सूरीश्वरदीइ मनोहरवाणी,
सकलचंद प्रभु गौतम पूछइं, ऊलट मनमां आणी–गणधर।[2]

१. जैन गुर्जर कविओ पृ० १९७-२०९ तक

२. वहीं, भाग १ पृ० २७५ और भाग ३ पृ० ७६८ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २७७ पर 'साधु-वंदना' और 'साधु कल्पलता' नामक दो कृतियों का अलग-अलग उल्लेख किया था किन्तु भाग ३ पृष्ठ ७७१ पर इन दोनों को एक ही कृति के दो नाम बताकर परिमार्जन कर दिया। इस प्रकार आपने भिन्न-भिन्न ढालों, रागरागनियों और काव्य विधाओं जैसे रास, पूजा, संज्झाय, स्तवन, हमचडी, सुरबेली, स्वाध्याय आदि में अनेक रचनायें मरुगुर्जर और संस्कृत में लिखकर साहित्य की बड़ी सेवा की है। ये उच्चकोटि के सन्त, कवि, विद्वान, आचार्य और गायक थे।

भट्टारक सकल भूषण--आप दि० भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य और सुमतिकीर्ति के गुरुभाई थे। आपने सं० १६२७ में 'उपदेशरत्न-माला' नामक ग्रन्थ की रचना संस्कृत में की। पाण्डवपुराण एवं करकंडुचरिय की रचना में इन्होंने भ० शुभचन्द्र को पूर्ण सहयोग दिया था। भ० शुभचन्द्र ने उक्त ग्रंथों में इस तथ्य का स्वयं उल्लेख किया है। आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर से प्राप्त एक गुटके में इनकी दो लघु रचनायें 'सुदर्शन गीत' और 'नारी गीत' उपलब्ध हुई हैं। सुदर्शन गीत में सेठ सुदर्शन के आदर्श शीलचरित्र का चित्रण किया गया है। 'नारी गीत' में चेतन को यह परामर्श दिया गया है कि संसार में जीव को नारी मोह में नहीं फँसना चाहिए। इनकी भाषा पर गुजराती का प्रभाव अधिक है। रचनायें सामान्य स्तर की हैं। डा० कस्तूरचंद कासलीवाल ने इनका परिचय देते हुए लिखा है कि ये रचनायें पहली बार हिन्दी जगत् के सामने आ रही हैं किन्तु किसी रचना से एक भी पंक्ति का उद्धरण नहीं दिया। इसलिए मैं भी डा० हरीश की तरह केवल उनके कथन को ही उद्धृत करके विराम ले रहा हूँ।[1]

समयध्वज—आप खरतरगच्छ की श्री जिनप्रभसूरि शाखान्तर्गत सागरतिलक के शिष्य थे। इन्होंने सीतासती चौपइ सं० १६११ में

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल---राजस्थान के जैन संत पृ० २०६ और डा० हरिप्रसाद गजानन शुक्ल हरीश---जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पृ० १०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखी। इनकी एक अन्य रचना 'पार्श्वनाथ फाग' भी उपलब्ध है।[1] श्री देसाई ने इनकी एक ही कृति 'सीतासती' का उल्लेख किया है किन्तु इसका अन्य विवरण या उद्धरण नहीं दिया है।

समयविधान—आप खरतरगच्छीय जयकीर्ति के प्रशिष्य एवं राजसोम के शिष्य थे। इनकी 'वीशी' और अन्य स्फुट रचनाओं का नामोल्लेख मात्र श्री अगरचन्द नाहटा ने किया है।[2]

समयप्रमोद—खरतरगच्छीय आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य ज्ञानविलास आपके गुरु थे, आप गद्य और पद्य दोनों विधाओं के अच्छे लेखक थे। सं० १६४९ से सं० १६७३ तक आपका रचनाकाल माना जाता है। इस अवधि में आपने निम्नलिखित रचनायें मरुगुर्जर पद्य और गद्य में की हैं। आरामशोभा चौपइ सं० १६५१, बीकानेर, गाथा २७०; अधनकरास सं० १६५७ विसाला; दशार्णभद्र नवढालिया, गाथा ९३, सं० १६६० नयानगर; कइवन्ना चौपइ १६६२ सेत्रावा, नेमिराजीमतीरास १६६३ सेत्रावा गाथा ९७, जिनचन्द्रसूरि निर्वाणरास सं० १६७० (प्रकाशित ऐ० जै० का० संग्रह), चौपरवी चौपइ, गाथा ५२९ सं० १६७३ झूठागाँव और गद्य में 'साधरमीकुलकटब्बा सं० १६६१ वीरमपुर।[3]

इनकी कुछ रचनाओं का विवरण-उद्धरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। आरामशोभा चौपई २७० कड़ी, सं० १६५१ का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

> सयल सुखाकर पास जिणंद, पणमीय तासु चरण अरविंद,
> जसु सुमिरणि धरि नवय निहाण,
> मोह तिमिर भरभाण समाण।

---

१. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८७ और जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६६५ (प्रथम संस्करण) तथा भाग २ पृ० ४८ (द्वितीय संस्करण)
२. अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७९
३. वही, पृ० ८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुपरम्परा का वर्णन करते हुए कवि ने, जिनचंदसूरि और अकबर की भेंट का भी उल्लेख किया है—

अे गुरु चउसठमइ पाटइ वीर थी रे, गच्छनायक जिणचन्द्र,
इण कलिकालइ गोयम सामी सारिखा, दीपइ तेज दिणंद।
बबरवंश नभोमणि श्री श्री अकबरु रे, दीन दुनी पतिसाह,
जसु गुण संतति संतनमुख थकी रे, तेडया अधिक उछाह।[1]

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है —

संवत फडवी (पृथ्वी) बाण ऋतु रस वछरइ रे,
बीकानेर मझारि,
रायसिंघ राजेसर राजइ अे रच्यउ रे, सांभलता सुखभार।

आपकी प्रसिद्ध रचना जिनचन्द्रसूरि निर्वाणरास (७० कड़ी सं० १६७० के पश्चात्) जैन युग पु० ४ अंक १ पृ० ६३-६६ और ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ७९-८७ में प्रकाशित है। इसका आदि देखिये —

गुणनिधान गुणपाय नमी, वागवांणि आधारि,
युगप्रधान निरवाणनी, महिमा कहिसि विचारि।
युग प्रधान जंगमजति, गिरुआ गुणे गंभीर,
श्री जिनचंद्र सुरिंदवर धुरि धोरी धर्मवीर।
संवत पनर पचानूये रीहडकुल अवतार,
श्रीवंत सिरियादे धर्मो सुत सुरताण कुमार।[2]

इसे युगप्रधान निर्वाणरास भी कहा जाता है। इस रास में 'जिनचंद्र सूरि के जन्म से लेकर उनके शरीरान्त पर्यन्त की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है। अकबर को प्रतिबोध, तीर्थ यात्रियों को दरशणियां दण्ड से मुक्ति दिलाना और अन्त में सं० १६७० के आसू-मास में 'अणसन' द्वारा शरीर त्याग करने का वर्णन किया गया है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

युगवरना गुण गावता हो नवनवरंग विनोद,
अेहनी आसा फले हो जये समयप्रमोद।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८९७-९९ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० २७८ (द्वितीय संस्करण)
२. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह पृ० ७९-८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में 'श्री जिनचंद्रसूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत ७वीं रचना समयप्रमोद कृत एक प्रवाहमय गीत रचना है। इसकी दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

> इम विमल चित्तइ भणइ भत्तइ, समयप्रमोद समुल्लसी;
> युगप्रवर जिनचंदसूरि वंदी, जाम अम्बर रवि शशी।[1]

चउपर्वी चौपइ (५२९ गाथा) सं० १६७३ आसु सुदी २ गुरुवार, झूठागाँव में लिखी गई। आपने गद्य में साधरमी या साहमी कुलक पर टब्बा सं० १६६१ फाल्गुन कृष्ण ७ वीरमपुर में लिखा। मूल कृति के लेखक अभयदेवसूरि थे। इस गद्य रचना का उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका।

समयराज (उपाध्याय)—आप जिनचंद्रसूरि के शिष्य थे। धर्ममंजरी चौपइ सं० १६६३ बीकानेर, श्रावक गुण चतुष्पदिका (४८ गाथा), अष्टोत्तरसतपार्श्वस्तवन (गाथा १६) सं० १६३३, इच्छा परिणाम टिप्पण (गाथा ३/६) सं० १६६० आपकी प्राप्त पद्य पुस्तकें हैं। आपने गद्य में कल्पसूत्र बालावबोध, चतुर्दश स्वप्न और साधुसमाचारी आदि की रचना की है। इनके शिष्य अभयसुन्दर और प्रशिष्य राजहंस भी अच्छे लेखक थे।[2] धर्ममन्जरी चतुष्पदिका (२७८ कड़ी) सं० १६६३ महा शुक्ल १० वीकानेर की रचना है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> भुजरस विजा देवी वच्छरइ, मधु सुदि दशमी पुष्पारक्वरु
> इम वरइ विक्रमनयर मंडण, रिषभदेव जिणेसरु।
> जुगपवर श्री जिणचंदसूरी सुसीस पयंपअे,
> श्री समयराज उवझाय अविचल सुकब सोहग संपअे।[3]

समयसुन्दर (कवियण-कवियण नामक एक कवि की 'चौबीसी' पांच पांडव संज्झाय, तेतलीपुत्र रास आदि रचनाओं का परिचय

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ८६

२. अगरचन्द नाहटा - परंपरा, पृ० ८२

३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १७ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ३९६-९७ तथा भाग ३ पृ० ८८४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६वीं शताब्दी (विक्रम) के अन्तर्गत दिया जा चुका है। प्रस्तुत कवियण का नाम समयसुन्दर था जो प्रसिद्ध समयसुन्दर उपाध्याय से भिन्न थे। समयसुंदर उपाध्याय और प्रस्तुत समयसुन्दर उपनाम कवियण की कई रचनाओं में हेरफेर भी हो गया है जैसे स्थूलिभद्ररास को कहीं उपाध्याय के नाम और उपाध्याय की चौबीसी को कहीं कवियण के नाम दिखाया गया है। किन्तु स्थूलिभद्ररास को अधिकतर विद्वान् समयसुन्दर (उपनाम कवियण) की रचना मानते हैं, इसलिए उसका परिचय यहाँ दिया जा रहा है। यह ४११ कड़ी की रचना है, जो सं० १६२२ हेमंत, ५ (स्थूलिभद्र दीक्षामास) बुधवार, को लिखी गई थी। स्थूलिभद्र कोशा की प्रेमकथा जैन साहित्य में बड़ी लोकप्रिय एवं सरस है तथा राजुल एवं नेमि की कथा के बाद सर्वाधिक लोकप्रिय भी है। इस कथा को आधार मानकर अनेक कवियों ने कई अच्छी रचनायें प्रस्तुत की हैं। प्रस्तुत रचना का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सिरि सरसती सामिणि केरा प्रणमूं पाय,
वरमति बुद्धि आपो मुझनइ करी सुपसाय।
विद्यादायक निजगुरु पद पंकज प्रणमेवि,
सिरि थूलिभद्र रिषि गुणगायसुं भक्तिधरेवि।
जिणि मुणिवरि कोशा सु घरि कीधो सुखवास,
तसु साथइं रमीऊ बारवरस घरवास।
जिणि कोशा छाड़ी पालिऊ अखंडित शील,
गुरु पदवी भोगवी नइं पाम्या स्वर्गसुख लील।[1]

इसमें कवि ने अपना नाम समयसुन्दर और कवियण दोनों लिखा है, यथा—

भविक नर नइ प्रतबोधदायक मिथ्यात्मन्तमहर दिणयरो,
ते थूलिभद्र सयल संघनइ समयसुन्दर मंगलकरो।

इसमें समयसुन्दर नाम दिया गया है। आगे की पंक्तियों में कवि ने अपना नाम कवियण दिया है, यथा—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२४-१२६ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ८४४-४६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हवइ श्री गुरु संघ आगलि कवियण करइ अरदास,
ते सुणज्यो तम्हें सज्जन उत्तम मति सविलास।
या तां चिर जयउ चतुरविध श्रीसंघ सु अेह रास,
इम जंपइ 'कवियण' आणी बुद्धि प्रकाश।[1]

समयसुन्दर महोपाध्याय—विक्रम की १७वीं शताब्दी में दो महान धर्मप्रभावक आचार्य हुए। एक खरतरगच्छ के युगप्रधान आचार्य जिनचन्द्रसूरि और दूसरे तपागच्छ के जगद्गुरु हीरविजयसूरि। ये दोनों आचार्य सम्राट अकबर से मिले थे और अपने व्यक्तित्व से उसे प्रभावित करके धर्म की प्रभावना में बड़ा योगदान दिया था। निःसन्देह वे लोग महान सन्त थे किन्तु जहाँ तक साहित्य लेखन का प्रश्न है इस शताब्दी में इतनी बड़ी संख्या में इतने सुन्दर ग्रंथों की रचना करने वाला विद्वान् संभवतः समयसुन्दर महोपाध्याय से बढ़कर कोई दूसरा नहीं हुआ है। आपके साहित्य का अध्ययन करने वालों में मो० द० देसाई, अगरचन्द नाहटा, भँवरचन्द नाहटा, महोपाध्याय विनयसागर और सत्यनारायण स्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मुनि चन्द्रसागर ने समयसुन्दर महोपाध्याय पर शोध-प्रबन्ध लिखा है।[2] इन सब लोगों ने महोपाध्याय के कृतित्व की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

समयसुन्दर के काव्य प्रतिभा की प्रशंसा परवर्ती अनेक कवियों—ऋषभदास, वादी हर्षनन्दन, कवि राजसोम, कवि देवीदास, पं० विनयचन्द एवं उपाध्याय लब्धिमुनि आदि ने भी की है। राजसोम ने नलदमयन्ती रास में लिखा है—

साधु बड़ो ए महन्त अकबर शाह हो वखाणीओ,
समयसुन्दर भाग्यवंत पातिसाह तूठेहो थापलि इम कह्यो।

श्री नाहटा द्वारा सम्पादित समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि की भूमिका में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उनकी रचनाओं पर

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १२४-२६ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ८४४-४६ (प्रथम संस्करण)

२. मुनि चन्द्रप्रभ सागर—महोपाध्याय समयसुन्दर व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रकाशक–केशरिया कम्पनी, कलकत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश डाला है। इन्हें वाचनाचार्य, उपाध्याय, महोपाध्याय आदि उपाधियाँ इनकी विद्वत्ता और सृजशीलता के कारण ही प्राप्त हुई थीं।

आपका जन्म राजस्थान के सांचौर नामक स्थान में सं० १६१० में हुआ था। पोरवालवंशीय रूपसिंह (रूपसी) इनके पिता तथा लीला देवी इनकी माता थीं। प्रायः १८-२० वर्ष की अवस्था में इन्होंने जिनचन्द्र सूरि से दीक्षा ली थी। इनके विद्यागुरु सकलचन्द्र गणि का इनकी दीक्षा के कुछ वर्ष बाद ही देहावसान हो गया था। इन्होंने खरतरगच्छ पट्टावली और अष्टलक्षी नामक ग्रन्थों में अपनी गुरुपरंपरा बताई है। इनकी शिक्षा अधिकतर मानसिंह या महिमराज अथवा जिनसिंह सूरि और समयराज के सान्निध्य में हुई। मम्मट के काव्य-प्रकाश पर आधारित प्रसिद्ध साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थ भावशतक की रचना इन्होंने सं० १६४१ में ३०-३१ वर्ष की अवस्था में ही की थी। इस समय तक इन्हें गणि की उपाधि भी मिल चुकी थी। इनकी दीक्षा सं० १६२८ के लगभग, गणि पद सं० १६४०, वाचनाचार्य पद सं० १६४९, उपाध्याय पद सं० १६७१ और महोपाध्याय पद सं० १६८० में प्राप्त हुआ था।

आप मानसिंह (दीक्षानाम महिमराज) की अगुवाई में अन्य छह साधुओं के साथ भयंकर गर्मी में पदयात्रा करके लाहौर गये थे। सं० १६४९ में अकबर काश्मीरविजय के लिए प्रयाण करके राजा रामदास की वाटिका में (लाहौर) रुका था। वहाँ 'राजा नो ददते सौख्यम्' पंक्ति की हजारों प्रकार से व्याख्या करने वाली अष्टलक्षी रचना तत्काल बनाकर आपने अकबर और उसके पार्षदों को अपनी अलौकिक प्रतिभा से चकित कर दिया था। वहीं आपको वाचनाचार्य और महिमराज को आचार्य-पद प्राप्त हुआ था। इस घटना का विवरण इनकी 'जिनसिंह सूरि सपादाष्टक' नामक रचना में मिलता है। आपने सिन्ध, पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान और गुजरात आदि प्रान्तों में खूब विहार किया था, अनेक लोगों को जैनधर्म का मर्म समझाया, अनेक शिष्य बनाये किन्तु वृद्धावस्था में शिष्यों ने साथ नहीं दिया। कवि ने लिखा है—संतान करमि हुआ शिष्य बहुला, पणि समयसुन्दर न पायेउ सुक्ख। सं० १६८७ में भयंकर दुष्काल पड़ा था। इस पर आधारित 'सत्यासिया दुष्काल वर्णन छत्तीसी' आपकी रचना बड़ी तथ्यपूर्ण एवं मार्मिक है। उस दुष्काल में बाप ने बेटी छोड़ दी, बेटे ने वृद्ध बाप को त्याग दिया लेकिन जिन मुनियों को चेले नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलते थे उनका इस दुष्काल ने भला किया। बारह वर्षीय इस दुष्काल की भयंकरता का हृदयद्रावक वर्णन इसमें है, यथा—

बेटे मुक्या बाप, चतुर देता जे चांटी,
भाई थुकी भइण, भइणि पुनि मुक्यां भाई।
अधिको ह्वालो अन्न, गई सहु कुटुम्ब सगाई,
घरबार मुकी माणस घणा, परदेसई गया पाधरा।
समयसुन्दर कहइ सत्यासीया, तोही न राख्या आधरा।

गृहस्थों, साधुओं को भोजन मिलना कठिन हो गया, किन्तु शिष्यों की सुविधा हो गई।

लाघउ जतीए लाग, मूंडीनइ माहइ लीधा,
हुती जितरी हुंस, तीए तितराहिज कीधा।

आपका व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभाशाली, विद्वत्तापूर्ण और आध्यात्मिक था। इन्हें व्याकरण, कोष, काव्यशास्त्र, अलंकार आदि का गहन ज्ञान था। आपने संस्कृत, प्राकृत, प्राचीन हिन्दी (राजस्थानी-गुजराती) और सिन्धी का अच्छा अध्ययन किया था। भाषाशास्त्र सम्बन्धी आपका ग्रन्थ 'रूपकमाला की व्याख्या' इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है। आप उच्चकोटि के भक्त थे। आपने आदर्श पुरुषों, तीर्थंकरों के प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति व्यक्त की है। शत्रुंजयतीर्थ के प्रति वे लिखते हैं—'क्यों न भये हम मोर विमलगिरि' रसखान की तरह वे उस गिरि का पक्षी, झरना, वृक्ष कुछ होकर वहीं रहना चाहते हैं। इनकी भक्ति में आलम्बन कृष्ण के स्थान पर जिन भगवान हैं किन्तु शेष बातें वैसी ही हैं। सूरदास की तरह ऋषभ के बाल रूप के प्रति वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति करते हुए लिखते हैं—

आवो मेरे बेटा दूध पिलावां,
वही बेड़ा गोदी में सुख पावा।

तुलसीदास की तरह 'नवकंजलोचन' के तर्ज पर वे लिखते हैं—

ललित वयन गुरु ललितनयण गुरु,
ललितरयण गुरु ललित मती रे।

साम्प्रदायिक उदारता, सर्वभूतेषु आत्मवत् दृष्टि, अहिंसा परमधर्म के प्रति प्रगाढ़ निष्ठी आपकी विशेषतायें हैं। आपने सं० १७०३ में ९० वर्ष की आयु भोग कर संलेखना द्वारा शरीर त्याग किया।

३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्षनन्दन, सहजविमल, मेघ विजय, मेघकीर्ति, महिमा समुद्र आदि आपके विद्वान् एवं प्रभावशाली शिष्य थे। इतने शिष्यों-प्रशिष्यों के रहते इन्हें वृद्धावस्था में कष्ट हुआ था, यह दुर्भाग्य की बात है।

रचनायें— आपकी रचनाओं की संख्या काफी है। सुविधा के लिए उन्हें छह वर्गों में बाँटा जा सकता है १ मौलिक संस्कृत रचनायें, २ संस्कृत टीकायें, ३. संग्रह ग्रन्थ, ४. भाषा या हिन्दी (मरुगुर्जर) की कृतियाँ, ५ बालावबोध या भाषा टीका, और (६) प्रकीर्णक रचनायें, इनमें से चौथे वर्ग अर्थात् हिन्दी या मरुगुर्जर की रचनाओं का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। मरुगुर्जर में प्राप्त इनकी प्रभूत रचनाओं को भी तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है, (१) रास या चौपाई, (२) छत्तीसी (३) अन्य या विविध। रास और चौपाई के अन्तर्गत मुख्य रूप से शाम्ब प्रद्युम्न चौपई, चार प्रत्येक बुद्ध चौपई, मृगावती चरित्र चौपई, सिंहलसुत प्रियमेलक तीर्थ चौपई, पुण्यसार चरित्र चौपई, नल दमयन्ती चौपई, वल्कल चीरी चौपई, शत्रुञ्जय रास, वस्तुपाल तेजपाल रास, थावच्चासुत ऋषि चौपई, क्षुल्लक ऋषि चौपई या रास, चम्पक श्रेष्ठि चौपई, गौतम पृच्छा चौपई, धनदत्त चौपई, पुन्ज ऋषि रास, द्रौपदी चौपई आदि। पहले इनमें से कुछ प्रमुख रचनाओं का विवरण-उद्धरण दिया जा रहा है।

शाम्ब-प्रद्युम्न चौपई (सं० १६५९ विजयादशमी) खम्भात के स्तम्भन पार्श्वनाथ की कृपा से पूर्ण यह रचना एक साहित्य प्रेमी साह शिवराज के आग्रह पर लिखी गई। इसमें कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न की कथा जैन पुराणों के अनुसार वर्णित है। इसमें २२ ढाल हैं।

चार प्रत्येक बुद्ध चौपई या रास (चार खण्ड, ४५ ढाल ८६२ कड़ी) सं० १६६५ ज्येष्ठ शुक्ल १५, आगरा में लिखी गई। बुद्ध तीन प्रकार के होते हैं स्वयं बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और बुद्ध बोधित। जो किसी घटना के कारण बुद्ध होता है वह प्रत्येक बुद्ध कहा जाता है। इसमें चार प्रत्येक बुद्धों की कथा है। इसको 'आनन्दकाव्य महोदधि भाग ७ में प्रकाशित किया गया है।

सीताराम चौपई— यह अति वृहद् रचना है। इसमें ९ खण्ड २४१२ कड़ी हैं। यह सं० १६८७, मेड़ता में लिखी गई। इसमें जैन परम्परा में प्रचलित रामकथा विशेषतया 'पउम चरिउ' के आधार पर वर्णित है। यह जैन रामायण समस्त जैनरास साहित्य में विशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महत्व की रचना है। श्री मो० द० देसाई ने इसे गुर्जर कवि-शिरोमणि प्रेमानन्द की रचना से भी अनेक बातों में बढ़कर बताया है। यह रचना शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीटूयूट, बीकानेर द्वारा प्रकाशित है।

वल्कलचीरी चौपई अथवा रास सं० १६८१ में मुलतान निवासी साह कर्मचंद्र के आग्रह पर जैसलमेर में लिखी गई। यह कथा बौद्ध जातक एवं महाभारत में ऋषि श्रृङ्ग के नाम से मिलती है। यह लघुकृति काव्यतत्त्वों से युक्त है और समयसुन्दर रास पंचक ग्रंथ में सङ्कलित है।

शत्रुञ्जयरास—यह इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। इसमें शत्रुञ्जय (पालिताणा) की महिमा का वर्णन किया गया है। यह धनेश्वरसूरि के शत्रुञ्जय माहात्म्य पर आधारित है। यह रास १६८२, नागौर में लिखा गया है, यथा—

संवत सोलसइ व्यासीयइ ए श्रावण वदि सुखकार,
रास भण्यउ सेत्रुंज तणउ, नगर नागोर मझार।

वस्तुपाल तेजपाल रास—ऐतिहासिक महत्व की कृति है। इसमें प्रसिद्ध धर्मनिष्ठ, सूरवीर जैन मंत्री बन्धुओं का चरित्र चित्रित है। इसकी रचना सं० १६८२ तिमिरीपुर में हुई। हीरानन्द सूरि मेरुविजय आदि कई अन्य कवियों ने भी वस्तुपाल-तेजपाल पर रास रचना की है। यह समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि और जैन युग पु० १ पृ० १७ १९ पर प्रकाशित है।

थावच्चासुत ऋषि चौपई और क्षुल्लक ऋषिरास में क्रमशः थावच्चा और क्षुल्लक ऋषि की कथा दी गई है। प्रथम रचना कार्तिक कृष्ण ३, सं० १६९१ खंभात में और द्वितीय सं० १६९४ जालौर में रची गई।

थावच्चासुत ऋषि चौपई में दो खंड, ३० ढाल, ४३७ कड़ी है।

चम्पक श्रेष्ठि चौपई (२ खंड २१ ढाल ५०७ कड़ी, सं० १६९५ जालौर) में चंपक श्रेष्ठि की कथा है। यह शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर से प्रकाशित है। प्रियमेलक चौपई संम्वत् १६७२ का मङ्गलाचरण देखिये—

प्रणमूं सद्गुरुपांय समरूं सरसती सांमणी,
दान धरम दीपाय कहिसिकथा कौतक मणी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवी मांहि प्रसिद्ध सुणियइ दान कथा सदा,
प्रियमेलक अप्रसिद्ध सरस घणु सम्बन्ध छइ ॥[1]

गौतम पृच्छा चौपई (५ ढाल, ७४ कड़ी, सं० १६९५ चांदेउ) यह प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई है। इसमें गौतम के ४८ प्रश्नों का महावीर ने उत्तर दिया है। यह किसी प्राचीन रचना का भावानुवाद है। गौतम पृच्छा की निम्नलिखित चौपई का प्राकृत की मूलगाथा से मिलान करने पर यह कथन प्रमाणित हो जायेगा, पहले मूल गाथा देखिये—

महुघाय अग्गिदाहं अंकवा जो करेइ पाणीयां।
बालाराम विणासी कुट्टी सो जायइ पुरिसो।

चौपाई मधु पाडइ वनि आगि द्यइ त्रोडइ वनस्पति बाल,
डांभइ आंकइ जे जीवनइ, कोढ़ी हुवइ तत्काल।

यह रचना जसवंत श्रावक के आग्रह पर की गई थी।

धनदत्त चौपई – यह समयसुन्दर रास पंचक में प्रकाशित है। यह सं० १६९६, अहमदाबाद में लिखी गई। इसमें ९ ढाल और १६१ गाथा हैं। इसे व्यवहार शुद्धि चौपई भी कहा जाता है। इसमें धनदत्त की कथा के माध्यम से श्रावकों के आचार व्यवहार की शुद्धि का विधि विधान बताया गया है। पुंजाऋषि रास (सं० १६९८ श्रावण शुक्ल ५) में असाधारण तपस्या का महत्व व्यक्त किया गया है। पुंजाऋषि ने २८ वर्ष तक उग्र तप किया था। कवि ने कहा है—

आज तो तपसी एहवो, पुंजाऋषि सरीखो न दीखई रे,
तेहने वंदता विहरावंता, हरखे कवि हियडो हीसइ रे।[2]

पुंजाऋषि पार्श्वचन्द्रगच्छीय विमलचन्द्र सूरि के शिष्य थे।

द्रौपदी चौपई—यह वृद्धावस्था में लिखित प्रौढ़ रचना है। यह सं० १७०० में अहमदाबाद में लिखी गई। इसमें ३४ ढाल ६०६ कड़ियाँ और ३ खंड हैं। इसके लेखन में कवि के दो शिष्यों – हर्षनन्दन एवं हर्षकुशल ने सहायता की थी। यह ज्ञाताधर्म कथांग के द्रौपदी नामक अध्ययन पर आधारित है। इसमें १००१ गाथा या श्लोक हैं। इसके द्वारा कर्मविपाक का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है।

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भंडार की ग्रन्थसूची ५वाँ भाग पृ० ४५०
सं० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

२. मुनि चन्द्रप्रभसागर—समयसुन्दर व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० ११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छत्तीसी साहित्य—इसके अन्तर्गत कर्मछत्तीसी, क्षमाछत्तीसी, संतोषछत्तीसी, पुण्यछत्तीसी, सत्यासिया दुष्कालवर्णन छत्तीसी, आलोयणा छत्तीसी और प्रस्ताव सवैया छत्तीसी आदि उल्लेखनीय रचनायें हैं। इनमें कुल ३६ पद या छंद होते हैं। कर्मछत्तीसी (सं० १६८८ मुल्तान) में कर्मविपाक का दृष्टान्त २७ प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन से दिया गया है। पुण्यछत्तीसी (सं० १६६९) में पुण्य कर्मों के उदय के फलस्वरूप प्रशस्त जीवन का उदाहरण पुण्यवान पुरुषों के जीवन से दिया गया है। क्षमाछत्तीसी (सं० १६८२) में २६ महापुरुषों के जीवनदृष्टान्तों द्वारा क्षमा नामक महान मानवगुण का गुणानुवाद किया गया है। संतोषछत्तीसी (सं० १६८४ लूणकरणसर) में २८ विशिष्ट पुरुषों के जीवनचरित्र से दृष्टान्त देकर श्रावकों को पारस्परिक विग्रह एवं अशान्ति को दूर करके सन्तोषपूर्वक जीवनयापन का सन्देश दिया गया है।

सत्यासिया दुष्कालवर्णन छत्तीसी— इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। इसका महत्व न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से अपितु वर्णनात्मक दृष्टि से भी है। इसमें इतिहास और काव्य का उत्तम सम्मिश्रण हुआ है। सं० १६८७ में गुजरात में जो भयंकर अकाल पड़ा था उसका यथार्थ, रोमांचक एवं मार्मिक वर्णन किया गया है। यह रचना सं० १६८७ में पाटण में लिखी गई होगी। यह संकेत जयतिहुयण वृत्ति और भक्तामरस्तोत्र की सुबोधिका वृत्ति से प्राप्त होता है। प्रस्ताव सवैयाछत्तीसी में देव, गुरु और धर्म का सम्यक् स्वरूप व्यञ्जित है। यह समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि में प्रकाशित है। आलोयणाछत्तीसी (सं० १६९८ अहमदपुर) अपने कृत पापों की स्वीकृति, प्रकाशन और आलोचना को आलोयणा कहते हैं। उसी का महत्व इसमें दर्शाया गया है। इसका कई जगहों से प्रकाशन हो चुका है। इनके अतिरिक्त दयाछत्तीसी, शीलछत्तीसी, तीर्थमास छत्तीसी नामक कई छत्तीसी रचनायें आपने की हैं। यतिआराधना, साधुवंदना, दानशीलतपभाव संवाद, केशीप्रदेशी प्रबन्ध भी आपकी उल्लेखनीय लघु किन्तु प्रभावशाली रचनायें हैं। इनसे बड़ी रचनाओं में मृगावती चरित्र चौपई (सं० १६६८ सिन्ध) या मोहनवेल (३ खण्ड ३८ ढाल, ७४४ कड़ी, मुलतान) है जो अगरचन्द नाहटा और रमणलाल शाह द्वारा प्रकाशित है। दूसरी बड़ी रचना सिंहलसुत प्रियमेलक तीर्थ चौपई प्रबन्ध ११ ढाल २३० कड़ी सं० १६७२ मेड़ता में लिखी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह समयसुन्दर रास पंचक में प्रकाशित है। इस पंचक में पुण्यसार चरित चौपई (सं० १६७३) भी प्रकाशित है। यह शान्तिनाथ चरित्र पर आधारित है। एक उद्धरण देखिये—

शान्तिनाथ जिन सोलमउ, तसु चरित चउसाल,
ए मइं तिहां थी ऊधर्यउ, सम्बन्ध विशाल।
संवतसोल तिहुत्तरइ भर भादव मास;
ए अधिकार पुरउ कर्यउ समयसुन्दर सुखवास।

नलदमयंती सम्बोध या नलदमयन्ती रास (सं० १६७३) में रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

उवझाय इम कहइ समयसुन्दर, कीयऊं आग्रह नेतसी,
चउपइ नलदमयन्ती केरी, चतुर माणस चितबसी।
संवत सोल तिहुत्तरइ मास बसन्त आणंद,
नगर मनोहर मेडतउ तिहां वासुपूज्य जिणंद।[1]

यह रचना ६ खंड, ३९ ढाल, ९३१ गाथा की है। इसे श्री रमणलाल शाह ने सम्पादित-प्रकाशित किया है। इस कथानक पर रचित कवि प्रभानन्द कृत नलाख्यान नामक रचना इसके जोड़ की मानी जाती है। यह भी समयसुन्दर कृत मरुगुर्जर रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें प्रसिद्ध राजा नल और उनकी पत्नी दमयन्ती की कथा जैनमतानुसार वर्णित है। इसमें लिखा है—

'ए अधिकार तिहां थी ऊधर्यो चंचल कवियण चित्त हो'
या 'कवियण केरी किहां कणि चातुरी, अधिकुं ओछूं एथिहो'

से लगता है कि यह रचना शायद समयसुन्दर उपनाम कवियण की हो या कवियण सभी कवियों के लिए सामान्यबोधक शब्द हो। गद्यरचनाओं में षडावश्यक बालावबोध सं० १६८३ में जैसलमेर में लिखी गई प्रसिद्ध रचना है। प्रकीर्णक रचनाओं में 'गुरु दूषित वचनम्' इनकी आत्मव्यथा की व्यञ्जना करने वाली रचना है। इनके शिष्यों ने वृद्धावस्था में इन्हें छोड़ दिया। कवि का भावुक हृदय व्यथित हो गया, वही आन्तरिक व्यथा, पीड़ा इस लघुकृति में मार्मिक ढंग से व्यञ्जित हुई है। संघपति सोमजी वेलि, मनोरथ गीतम् आदि अन्य

---

१. मुनिचन्द्रप्रभसागर—समयसुन्दर व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० १६४ और राजस्थान के जैन शास्त्रभंडार की ग्रन्थसूची ५ भाग पृ० ५४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत सी रचनायें आपने लिखी हैं, इनके रचना समुद्र का विस्तार अपार है, अतः नमूने के तौर पर थोड़ी सी प्रकीर्णक रचनाओं का परिचय-उद्धरण देकर सन्तोष किया जा रहा है। आपकी 'चौबीसी' जैन स्तुति परक साहित्य की अमूल्य थाती है। यह अहमदाबाद में सं० १६५८ में लिखी गई। सं० १६९७ में हाथीसाह के आग्रह पर आपने २० विहरमान जिनस्तवन या बीसी स्तवन लिखा है। अनागत चौबीसी स्तवन, श्री आदि जिनस्तवन आदि अनेक स्तवन तीर्थंकरों एवं तीर्थों से सम्बन्धित हैं। शालिभद्रगीतम्, श्री धन्नाअनगार गीतम्, श्री बाहुबलि गीतम्, जम्बूस्वामी गीतम् और अरहन्नक, इलापुत्र, अनाथी मुनि आदि पर अनेक गीत लिखे हैं। इसी प्रकार सतियों से सम्बन्धित ऋषिदत्ता, नर्मदासुन्दरी, चेलनासती, दवदन्ती सती, अंजना सुन्दरी, मरुदेवी, राजुल आदि पर आधारित दर्जनों गीत भी आपने लिखे हैं। गुरुगीतम् के अन्तर्गत आपने जिनसिंह सूरि, जिनचन्द सूरि, जिनकुशल सूरि आदि पर कई गीत लिखे हैं। उपदेशपरक रचनाओं में जीवप्रतिबोध गीतम्, जीवकाया गीतम्, बारहभावना गीतम्, बारहव्रत कुलकम्, अध्यात्म सज्झाय, हितशिक्षागीतम् आदि इस प्रकार पचासों गीत आपके पाये जाते हैं। आपने नेमि-राजुल और कोशा-शूलिभद्र से सम्बन्धित कई सरस, मार्मिक विरह गीत भी लिखे हैं। इनमें प्रकृति की विविधता, शोभा, नारी अंगों की सुषमा और विरह भावना की मार्मिकता के वर्णन में कवि हृदय की मनोरम झाँकी दिखाई पड़ती है।

भाषा—आपने यह विशाल साहित्य संस्कृत, प्राकृत, मरुगुर्जर (प्राचीन हिन्दी) और सिन्धी भाषा में लिखा है। समयसुन्दर की भाषा शौरसेनी प्राकृत > अपभ्रंश से विकसित वह भाषा है जो उस समय जनसाधारण में व्यवहृत हो रही थी। इनकी भाषा को गुजराती विद्वान् मो० द० देसाई, रमणलाल शाह आदि गुजराती तथा अगरचन्द नाहटा, डा० सत्यनारायण स्वामी आदि राजस्थानी विद्वान् राजस्थानी बताते हैं। वस्तुतः वह मरुगुर्जर या पुरानी हिन्दी ही है। समयसुन्दर का जन्मस्थान सांचौर राजस्थान और गुजरात की संधिसीमा पर है, जहाँ दोनों भाषायें बोली जाती हैं। इनकी पद्य भाषा में तत्सम संस्कृत शब्दों का बाहुल्य होने के कारण वह हिन्दी के अधिक निकट दिखाई देती है। सन्तों की भाषा में कई प्रान्तों के शब्द अनायास मिलजुल जाते हैं। समयसुन्दर की भाषा में भी पंजाबी, सिन्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अलावा अरबी-फारसी के चलते शब्द भी मिलजुल गये हैं जैसे जोरु, हजूरी, काजी, मुल्ला, खलक, फकीर, हुक्म, पातशाह, मर्द, खूब आदि। तत्सम शब्दों में वृषभ, सुरतरु, पुरुष, श्रावक, शिष्य, औषधि, वैद्य, विमान, यौवन, पुण्य, महिषी, क्षमा आदि और तद्भवों में सोनार, साईं, भाखण, नयरी, आगि, हाथ आदि खूब प्रयुक्त हुए हैं। इनकी तुलना में चेला, हाली, उदरि आदि देशज शब्द कम प्रयुक्त हुए हैं। स्वरागम, स्वरलोप आदि के कारण परमाद, मारग और दुख, माल आदि शब्द भी मिलते हैं तो कहीं व्यञ्जन परिवर्तन या लोप के कारण सयल, न्यान, पिउ आदि शब्द भी प्रयुक्त हैं। पिउ शब्द पिता और प्रिय दोनों का बोधक होने से भ्रम उत्पन्न करता है। मरुगुर्जर में ऐसे शब्दों के बढ़ते प्रयोग के कारण अर्थभ्रम की गुञ्जायस काफी बढ़ गई थी। अकेले 'एक' के विभिन्न रूप पढम, प्रथम, पहिलउ, पहिला, इक, पहिलइ, एकल, पहली आदि मिलते हैं। समयसुन्दर के विशाल काव्यसाहित्य में ऐसे भ्रमोत्पादक शब्द हैं तो अवश्य पर अत्यल्प। सामान्य पाठक को अर्थग्रहण में सन्दर्भ का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। उनकी गद्यभाषा सरल और नित्य के बोलचाल की जनभाषा है।

शैली—महोपाध्याय समयसुन्दर के विशालसाहित्य में अनेक शैलियाँ हैं। संवाद, दृष्टान्त, व्याख्या शैलियों के अलावा सादृश्य विधान, चित्रात्मकता और लाक्षणिकता इनकी भाषा शैली की प्रमुख विशेषतायें हैं। इनका वर्णन-कौशल मनोहारी है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत वसंत और वर्षा वर्णन के उदाहरण देखिये। वसंत वर्णन—

आंबा मउर्या अतिभला, मांजरि लागासार,
कोयलकरे टुहकड़ा, चिहुंदिस भमरगुञ्जार।

वर्षा वर्णन—आयो वर्षाकाल, त्रिहुं दिसि घटा उमरी ततकाल।
गडगडाट गहे गाजइ, जाणे नालि गोलाबाजइ।
कालइ आभइ, बीजलि झबकइ,
विरहिणी नाहीया द्रबकइ।
पपीहा बोलइ, वाणिया धान बखार खोलइ।

इस गद्य कथा में पद्य जैसी तुकान्तता और यथार्थ वर्णन की मार्मिकता द्रष्टव्य है। आगे की पंक्तियों में प्रकृति का मानवीकरण

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

देखिये। राजा शतानीक मृगावती की खोज में मलयाचल प्रदेश के तापस आश्रम में पहुँचता है तो प्रकृति भी मानों उसका भव्य स्वागत करती है, यथा—

पवन कंपाव्या ब्रछनम्या, ते तुझ करइ प्रणाम,
अभ्यागत आव्या भणी, विजय घणउ इण ठाम।
कोयल करइ टहुकड़ा, मोर करइ किंगार,
स्वागत बूझइ तुझनइ, तरुवर पणि सुविचार।[1]

इसी प्रकार नगर वर्णन, वैभव वर्णन, नखशिख वर्णन, नर्तकी वर्णन, स्वयम्बर विवाह वर्णन, युद्ध वर्णन, तपस्वी एवं समवसरण आदि के प्रभावशाली वर्णन किए हैं। नृत्य और नर्तकी का एक चित्रात्मक वर्णन देखिये—

राजा हुकम कीयो नाटक कइ नटई बाल कुमारि,
चन्द्रवदन मृगलोयणि कामिणी पगि झांझर झणकार।
गीत गान मधुर ध्वनि गावति, संगीत के अनुहारि,
हावभाव हस्तक देखावति उरमोतिण कउ हार।
सीस फूल काने दो कुण्डल तिलक कियो अतिसार,
नकवेसर नाचति नक ऊपर, हुं सब मई सिरदार।

महोपाध्याय समयसुन्दर जी काव्य में रस की उपस्थिति आवश्यक मानते थे इसलिए उन्होंने सरस काव्य लिखा है। वैसे तो शृङ्गार के संयोग और विप्रलम्भ के अलावा प्रसंगानुसार, वीर, रौद्र, हास्य आदि का भी वर्णन उन्होंने किया है किन्तु सबका समापन अन्त में शान्त रस में किया गया है। विप्रलम्भ की निम्न पंक्तियाँ देखिये—

प्रीतडिया न कीजइ हो नारि परदेसियाँ रे,
खिण खिण दाझइ देह,
बीछड़िया वाल्हेसर मिलवो दोहिलउ रे,
सालइ अधिक सनेह।

साधु, साध्वी और सतियों से सम्बन्धित रचनाओं के अलावा उपदेश परक नाना रचनाओं में यदि रस है तो वह शान्त रस ही है।

इन्होंने छन्दों के अन्तर्गत मधुमती, चम्पकमाला, दोधक, भद्रिका, हंसमाला, चूड़ामणि, स्रग्विणि, त्रोटक, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित,

1. मुनि चन्द्रप्रभसागर—समयसुन्दर व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० ३१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंशस्थ, गाथा, चौपाई, दोहा, सोरठा, सवैया, गीत आदि नाना प्रकार के मात्रिक एवं वर्णिक छंदों का कुशलता पूर्वक प्रयोग किया है। शास्त्रीय राग रागिनियों के अलावा इन्होंने देशी ढालों का सुन्दर प्रयोग किया है। स्थानीय विशेषताओं को आत्मसात् करने के कारण ही इन रागों को देशी कहा जाता है। मारवाड़, गुजरात, सिन्ध आदि प्रान्तों के लगभग ३०० देसियों का इन्होंने प्रयोग किया है। समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि में श्री नाहटा ने इनकी ५६३ रचनाओं का संग्रह किया है। ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिनचंदसूरि गीतानि के अन्तर्गत समयसुन्दर के गीत क्रम सं० १६, १७, १८, १९, २० और २१वें क्रम पर संकलित हैं। ये भिन्न-भिन्न राग रागनियों में आबद्ध हैं। १६वें गीत की चार पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

धन्यासरी रागमाला रची उदार,
छः राग छत्रीसे भाषा भेद विचार,
सोलसई बावन विजयदसमीदिने शुभ गुरुवार,
थंभणपास पसायइत्रंबावती मझार।
जुगप्रधान जिनचन्द्रसूरींदसारा चिरजियउ,
जिनसिंघसूरि सपरिवार,
सकलचन्द मुणीसर सीस उन्नतिकार,
समयसुन्दर सदा सुख अपार।[1]

२०वीं रचना 'चंद्राउला' कुछ बड़ी है। जिनसिंहसूरि गीतानि शीर्षक के अन्तर्गत ऐ० जै० रास संग्रह में भी समयसुन्दरकृत गीत क्रमांक, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ पर संकलित हैं जिनमें जिनसिंह सूरि की स्तुति है। इनमें हिंडोलणा, गहूँली, वधावा, पद, चौमासा आदि काव्य रूपों का प्रयोग हुआ है। ९वें गीत गहुंली की चार पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं —

आचारिज तुम मन मोहियो, तुमे जगि मोहनवेलि,
सुन्दर रूप सुहामणो, वचन सुधारस केलि।
रायराणा सब मोहिया मोह्यो अकबर साह रे,
नरनारी रामन मोहिया महिमा महि यल मांहरे[2]

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह—सं० अगरचन्द नाहटा, जिनचन्द्रसूरिगीतानि।
२. ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह पृ० १३१ और जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३३१-९१, भाग ३ पृ० ८४६-७५, १५९४-९५ तथा १६०७ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ३०६ से ३८१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके संस्कृत ग्रन्थों की सूची भी काफी बड़ी है। इन्होंने 'अष्टलक्षी' का प्रारम्भ सं० १६४९ में किया और उसे लाहौर में सं० १६७६ में पूर्ण किया। सं० १६४१ में भावशतक की रचना से लेकर सं० १७०० में लिखित द्रुपदी संबंध तक के ५९ वर्षों की लम्बी अवधि इन्होंने साहित्य सेवा में लगाई थी। सं० १७०३ में अहमदाबाद में इन्होंने शरीर त्याग किया।

इनके नाम से जो सैकड़ों-सैकड़ों छोटी-बड़ी रचनायें गिनाई जाती हैं उनमें कुछ अन्य कवियों की रचनाओं का हेर फेर भी हो गया लगता है किन्तु अभी तक इस दिशा में वैज्ञानिक दृष्टि से कार्य नहीं हो सका है। पहले गुण रत्नाकर छंद, सुसढ़ रास को इनकी कृति माना जाता था किन्तु अब पहली रचना सहजसुन्दर और दूसरी समयनिधान की मानी जाती है। इसी प्रकार बारव्रत रास, नलदमयन्ती संबोध आदि भी शंकास्पद रचनायें हैं। जो हो यदि दो चार रचनायें निकाल भी दी जाँय तो समय सुन्दर के रचना समुद्र में उसी प्रकार कोई कमी न आयेगी जैसे– समुद्र से चार चुल्लू पानी ऊलीचने पर कोई कमी नहीं आती। आप सत्रहवीं शताब्दी के महान विद्वान् टीकाकार, संग्रहकार, शब्द शास्त्री, छंदशास्त्री और श्रेष्ठ साहित्यकार थे। इनके सम्पूर्ण रचना संसार का विवरण देने के लिए एक सम्पूर्ण ग्रन्थ भी छोटा होगा। अतः लोभ का संवरण करते हुए विवरण यहीं समाप्त किया जा रहा है। अधिक जानकारी हेतु पाठक मुनि चन्द्रप्रभसागर कृत 'समय सुन्दर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' नामक पुस्तक देखें।

महोपाध्याय सहजकीर्ति—खरतरगच्छ की क्षेम कीर्ति शाखा के वाचक हेमनन्दन आपके गुरु थे। आप संस्कृत और मरुगुर्जर भाषाओं के ज्ञाता तथा लेखक थे। आपने संस्कृत में कई टीकाग्रंथ और कोषादि लिखे हैं। मरुगुर्जर में आपके सुदर्शन चौपई या रास सं० १६६१ बगड़ीपुर, कलावती चौपई १६६७, देवराज– वच्छराज चौपई सं० १६७२ खींवसर, सागरसेठ चौपई सं० १६७५ बीकानेर, रायपसेणी चौपई सं० १६७६ श्री करण, नरदेव चौपई सं० १६८२ पाली, शान्ति-विवाहलो सं० १६७८ बालसीसर, शत्रुञ्जय माहात्म्य रास, १६८४ असनीकोट, हरिश्चन्द्ररास सं० १६९७ और शीलरास सं० १६८६ कृष्णाकोट नामक ग्रंथ प्राप्त हैं। इनमें शत्रुंजय माहात्म्यरास सबसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़ा है। इसके सम्बन्ध में श्री अगर चन्द नाहटा का एक लेख जैन-सिद्धान्त भास्कर में प्रकाशित है।[1] इस रास से आचार्य जिनसिंहसूरि और सम्राट अकबर की मुलाकात पर भी प्रकाश पड़ता है।[2]

शत्रुञ्जय माहात्म्य रास (६ खंड, सं० १६८४ आसणीकोट) के अन्त में रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है—

संवत सोल चउरासी वरसइ, श्री नेमिनाथ प्रभावइं,
आसणिकोट श्रावक बहुसुषिया, धरमइ चित्त लगावइं रे।

इसमें खरतगच्छ के युग प्रधान जिनचंद्रसूरि से लेकर जिनसिंह जिनराज, जिनसागर, रतनसार, रतनहर्ष और उनके शिष्य तथा कवि के गुरु हेमनन्दन तक का अभिवादन किया गया है, यथा—

रतनहरष वाचक हेमनन्दन सीस भगति चित ठावइ,
सहजकीरति वाचक विमलाचल गिरिवर अेम मल्हावइ रे।

शीलरास (८१ कड़ी सं० १६८६ श्रावण शुक्ल १५ कृष्णकोट) में शील का माहात्म्य बताया गया है। 'प्रीति छत्तीसी' षट्द्रव्यविचारादि प्रकरण संग्रह में प्रकाशित है। इसका रचनाकाल देखिये—

संवत सोल वरस अण्यासी, जिहां हुउ सबल सुकालजी,
विजयदसमि सांगानेर पुरवरि, अेह विचार रसालजी।
प्रीति छत्तीसी अे वयरागी, भविक भणि हितकार जी,
वाचक सहज कीरति कहइ भावइ, श्रीसंघ जयजयकारजी।[3]

हरिश्चंद चौपइ (१७ ढाल सं० १६९७) का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

प्रणमु फलवधि पास जिन, प्रणमु जिणवरि वाणि,
प्रणमुं सद्गुरु आपणो, निरमल भाव प्रमाण।

हरिश्चन्द्र चौपई का रचनाकाल देखिये—

संवत सोल सत्ताणुयइ, परिधल जिहां हुआ धान राजा,
सगलइ देस विदेस कइ, उच्छव रंग प्रधान राजा।

---

१ अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८०

२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १७४-१७६

३. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४०२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें कवि ने कलावती, चौपई सुदर्शन चौपई, रायपसेणी चौपई सेत्रुञ्जमाहात्म्य आदि पूर्ववर्ती रचनाओं का उल्लेख किया है।

सुदर्शन श्रेष्ठीरास (४३१ कड़ी सं० १६६१ बगड़ीपुर)

आदि केवल कमलाकर सुर कोमल वचनविलास,
कवियण कमल दिवाकरु, पणमिय फलवधि पास।
सुरनर किन्नर वर भमर सुणत चरणकंज जास,
सरस वचन कर सरसती, नमीयइ सोहगवास।

इसमें भी जिनचन्द्रसूरि से हेमनन्दन तक का गुणानुवाद किया गया है, यथा—

श्री खरतरगच्छ कमलविकासण दिनमणी रे,
जुगप्रधान पद धार,
गुणनिधि रे श्री जिनचंद मुनीसरु रे।
पातिसाह अकबर भूमिपति मानीये रे,
देखी जसु अनुभाव,
अभिनवि रे सकल जीव आनंदकरु रे।[1]

देवराजवच्छराज चौपई अथवा प्रबन्ध (सं० १६७२ खामभरनगर) का रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया गया है—

श्री खामभर नगरइ भलइ, श्री संतिजिन सुप्रासादि,
नयन वारिधि रस शशि, शुभ वरसइ हो बड़ी परमाद।

इसमें भी वही गुरुपरंपरा गिनाई गई है। यह रचना भी शील का महत्व उजागर करती है।

सागर श्रेष्ठी कथा (२३२ कड़ी सं० १६७५ बीकानेर) सुपात्रदान विषय पर आधारित कथा है, यथा—

इम फल आणी आगमइ अे, दान दीयउ दातार,
दीयउ दुरमति दलइ अे, सहु जाणइ संसार।

रचनाकाल— समति जलधि रस ससि समयइ सायरनउ संबंध,
रसीक रलीयामणउ अे, सकृत सुकूल सुगंध।

इनके अतिरिक्त कलावती रास (गाथा १२२ सं० १६६७ रसाचल), और व्यसनसत्तरी (गाथा ७१ सं० १६६८ नागौर) का विवरण जैन गुर्जर कविओ में संक्षिप्त रूप से दिया गया है किन्तु इनके उद्धरण नहीं

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३९६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिए गये हैं। सागरश्रेष्ठि कथा को श्री देसाई ने भाग १ पृ० २८७ पर रत्नसार की रचना बताया था पर यह स्पष्ट हो चुका है कि यह रचना सहजकीर्ति की ही है।

जैसलमेर चैत्य प्रबाडी (७ गीत सं० १६७९) का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है —

साधु साधवी श्रावक श्रावी, श्री संघनइ परिवार रे माई,
श्री जिनराज सूरीसर हरषइ, जैसलमेरु मझारि रे माई।
चैत्र प्रवाहि करइ विधि सेती, वाजइ वाजित्र सार रे,
गावइं गीत मधुरसर गोरी, खरतरगछ जयकार रे माई।[1]

ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में जिनराज सूरि सवैया के पश्चात् जिनराजसूरि गीतम् (श्री गच्छाधीश जिनराज सूरि गुरुगीतम्) नामक चौथी रचना सहजकीर्ति की है। इसमें ९ कड़ी है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

श्री संघ सोभ बधारतउ रे लाल, श्री जिनराज मुनीश,
प्रतिपउ गुरु महिमंडलइ रे लाल, सहजकीरति आशीष।[2]

इसमें कुल १२ छंद हैं। जिनसिंह सूरि की वंदना करता हुआ कवि इस गीत में लिखता है—

राउल भीम सभा भली रे लाल, जैसलमेर मझार,
परवादी जीता जियइ रे लाल, पाम्यउ जयजयकार।[3]

सहजकुशल(गद्यकार) — आप कुशलमाणिक्य के शिष्य थे। आपने स्थानकवासीमत (ढूढ़ियामत) के खंडनार्थ जैन अंग-उपांग आदि प्रमाणों पर आधारित एक रचना 'सिद्धान्तश्रुत हुंडी' नाम से हिन्दी गद्य में लिखी। इसके गद्य का नमूना देखने के लिए इसका आदि और अन्त उद्धृत किया जा रहा है—

आदि नमिऊण जिणवराइ, सुयवियारेण किंचि बुछामि,
जे संसयंमि पडिया भवियजीया तंपि वुच्छेउं।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २, पृ० ४०३-०४ (प्रथम संस्करण) और भाग १ पृ० २८७, तथा ५२५-३६ और भाग ३ पृ० १०१६-२४
२. श्री जिनराज सूरि गीतम्—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १७४-१७६
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जिनादिक प्रतिमा नमस्कार करी,
सिद्धान्तनुं श्रुतविचार काइंअेक, बोलीउ लिखूं,
भविक जीव जे संसइ पडया छइ,
तेहना सन्देह छेदवानइ काजइं,
जे श्रुति सिद्धान्त स्युं कहीइं,
अरिहंतना कह्या अर्थ, गणधारनां गूथ्यां सूत्र,
तेहना भेद, श्री नंदीसूत्र थकी जांणीइं,
ते आलावऊं संषेपइ लिखीइं छइ, विचारी जोयो ।

अन्त इम अनंता जीव द्वादशांगी आराधी मोक्ष पहुंता,
अनेक पुहंचे छइ, अनन्ता मुक्ति जास्यइं, इम जाणी,
सिद्धान्त नी आशातना टाली सूत्र सर्व सद्दहीइ,
सज्झायनु उद्यम करिवउ, अेतलइं तपनी आराधना,
संषेपमात्र लिषी वली विशेष सूत्र अर्थना भाव प्रीछयो,
अनइं सूत्रना अर्थ, निर्युक्ति वृत्ति चूर्णि भाष्य पइन्ना प्रकरण
जे बहुश्रुत परंपराइं मानइ छइ, ते पुण मानवा ।[1]

गुरु कुशलमाणिक गुरुणं, तस्स सीसस्स सहजकुशलेणं,
भवियण बोहणत्थं, उद्धरियं सुअसमुदाऊ ।
जं जिणवयण विरुद्धं, सच्छंद बुद्धेण जं मअे रईयं,
तं खमह संघ सव्वं, मिच्छामि दुक्कडं तस्स ।

सहजरत्नवाचक—अंचलगच्छीय धर्ममूर्ति के आप शिष्य थे। धर्ममूर्ति का प्रतिमालेख सं० १६२९, ४४ और ५४ का प्राप्त है। धर्ममूर्ति का जन्म सं० १५८२ में खंभात निवासी श्री हंसराज की पत्नी हांसल दे की कुक्षि से हुआ था। इन्हें सं० १६०२ अहमदाबाद में आचार्य और गच्छनायक पद मिला था। सं० १६७० में इनका देहावसान हुआ। इनके शिष्य सहजरत्न ने १६०५ कार्तिक शुक्ल १३ रविवार निधरारी ग्राम में 'वैराग्य विनति' की रचना की। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

आज सकल मनोरथ मनतणा, भगतिइं गुण गाऊं जिण तणां।
श्रीय कुंथनाथ देव अतिहि चंग, नींधरारि नयर छइ बहुअरंग।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १६६-१६७ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ५९९-६०१, भाग ३ खण्ड २ पृ० १६०३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त—तू स्वामीय दुखभयभंजण, तूंअ स्वामी शिवपुर मंडणु,
संवत्सर सोल पंचोत्तरइ कार्तिक शुदि तेरसि रवि दिनइ ।[1]

आपने दो स्तव भी लिखे हैं (१) २० विहरमान स्तव सं० १६१४ आसो सुदी १० कार्विण और (२) १४ गुणस्थानक गर्भित वीर स्तवन (२३ कड़ी) यह संज्झायमाला (लल्लूभाई) और मोटु संज्झायमाला संग्रह में प्रकाशित है। इन दोनों का आदि और अन्त नमूने के तौर पर प्रस्तुत हैं—

२० विहरमान स्तवन का आदि—

सरसति देवीय नमीय पाय, ऊलट अंगिआणीय,
महीयलि महाविदेह खेत्रसार, जिनवर गुण जाणीय ।

अन्त संवत सोल चोदोत्तरइ अे आसो मासि उदार,
शुदि दसमी विजयादिनिहि, श्री धर्ममूरति गणधार ।

१४ गुणस्थानक का आदि—

महावीर जिनरायना पय प्रणमी सहकार,
चउदह गुण थानक तणउ कहीइं किंपि विचार ।

अन्त इय वीर जिणवर जगतहितकर सिंह लक्षण सुरतरु,
भवभीउ भंजन भवियरंजन, दुरियगंजण सुहकरु ।
गुणठाण इणि परि सुपरिजाणउ, जिमलहउ सिवसुखमुदा,
गणि सहजरत्न मुणिंद जंपइ, वीर जिण सेवउ सदा ।[2]

सहजरत्न—आपकी एकमात्र गद्य रचना 'लोकनाल' (द्वात्रिंशिका) बालावबोध अथवा स्तवक का नामोल्लेख प्राप्त होता है, हो सकता है कि इससे पूर्व वर्णित सहजरत्न कवि और ये दोनों एक ही व्यक्ति हों।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २३-२४ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० १९९-२०० तथा भाग ३ पृ० ६७२-७३ (प्रथम संस्करण)
२. वही भाग २ पृ० २३-२४ (द्वितीय संस्करण)
३. वही भाग ३ पृ० २००(द्वितीय संस्करण) और भाग ३ खण्ड २ पृ० १६०५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहजसागर शिष्य—इस अज्ञात शिष्य के सम्बन्ध में श्री मो० द० देसाई ने अनुमान किया है कि संभवतः ये विजयसागर हों। इन्होंने इषुकार अध्ययन संज्झाय (ढाल ३ सं० १६६९ वगडी) नामक रचना की है। इसका आदि देखिये—

सहज सलूणा हो साधजी सेवीयइं,
वसीयइं गुरुकुलवासोजी।
सुणीयइं सखरी हो सीख सुहामणी,
छूटी जाईं ग्रभवासो जी।
पूत न करीयइं हो साधु बिसासडो नगर धूताराय हो जी,
बालहत्या करइं अे बीहइं नही,
विरुआ विषनामे होजी पूत।

अंत थुणीय मइं अे अणगारा, जपतां जगि जय जयकारा,
सोलह उगणोत्तर आदि, श्री सुवधिनाथ प्रासादि।
श्री वगडी नयर मझारि, श्री संघ तणइं आधारि,
जपता श्री ऋषिरास, मुझ सफल फली मनआस।[1]

सहजसागर के शिष्य विजयसागर की सम्मेतशिखर तीर्थमाला स्तवन आदि अन्य कई रचनायें प्राप्त हैं। शायद यह भी उन्हीं की रचना हो।

साधुकीर्ति (उपाध्याय)—आप खरतरगच्छीय जिनभद्र सूरि की परंपरा में अमरमाणिक्य के शिष्य थे। आपने सं० १६२५ में तपागच्छीय आचार्य बुद्धिसागर को अकबर की सभा में शास्त्रार्थ में पराजित किया था। आप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देश्यभाषाओं के ज्ञाता तथा कुशल प्रयोक्ता थे। संस्कृत में आपने विशेषनाम माला, संघपट्टकवृत्ति, भक्तामर अवचूरी आदि कई रचनायें की हैं। मरुगुर्जर गद्य और पद्य में आपकी अनेक रचनायें उपलब्ध हैं। इनमें सप्तस्मरण बालावबोध (दीपावली सं० १६११) की रचना आपने बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध मंत्री कर्मचंद के पिता श्री संग्रामसिंह बच्छावत के आग्रह पर की थी। आपकी सत्तरभेदी पूजा (सं० १६१८, पाटण) का खरतरगच्छ

1. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १४२-१४३ (द्वितीय संस्करण, और भाग ३ पृ० ९३८-३९ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में खूब प्रचार रहा है। आषाढ़भूति प्रबन्ध सं० १६२४ दिल्ली, मौन-एकादशी स्तव सं० १६३५ अलवर, नेमिराजर्षि चौपइ १६३६ नागौर, शीतलजिन स्तव १६३८ अमरसर, सवत्थवेलि, गुणस्थानविचार चौपइ, स्थूलिभद्ररास और कई स्तवन आदि आपकी अन्य प्राप्त रचनाओं में उल्लेखनीय हैं। गद्य रचनाओं में सप्तस्मरण बालावबोध के अलावा कर्मग्रंथ टब्बा, कायस्थिति बालावबोध १६२३ महिमनगर और दोषापहार बालावबोध आदि उपलब्ध हैं।[1]

१५वीं शताब्दी में भी एक अन्य साधुकीर्ति प्रसिद्ध लेखक हो गये हैं जिन्होंने मत्स्योदर कुमार रास और विक्रमचरित्ररास आदि लिखा था। प्रस्तुत साधुकीर्ति खरतरगच्छीय मतिवर्धन>मेरुतिलक>दयाकलश>अमरमाणिक्य के शिष्य थे। इनकी कुछ रचनाओं का विवरण-उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

सत्तर भेदी पूजा (सं० १६१८ श्रावण शुक्ल ५, अणहिलपुर) का आदि—

ज्योति सकल जग जागती है सरसति सुमरसुमंद,
सत्तर सुविधि पूजा तणी, पभणिसु परमाणंद।

गाहा नवण विलेवण वथ जुग, गंधारोहण च पुष्परोहण्यं,
मालारुहण वन्नयं वन्नय, चुन्नं पडागाय आभरणे।

अन्त अणहलपुर शान्ति शान्ति सब सुखदाई,
सो प्रभु नवनिधि सिधि बाजे।
श्री जिनचंद सूरि गुरु षरतरपति, धरि मनवचन तसु राजै।
दयाकलस गुरु अमरिमाणिक्य गुरु,
तास पसाइं सुविधिइ हुं गाजै,
कहै साधुकीरति करत जिन संस्तव,
सविलीला सवि सुख साजै।[2]

'आषाढ़ भूति प्रबन्ध'—१८७ कड़ी सं० १६२४, विजयदसमी योगिनीपुर, दिल्ली।

अंत खरतरगछ वाचक थयउ मतिवर्धन नाम,
मेरुतिलक तसुसीसजे गुणगण अभिराम।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७३
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ४९-५० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तासु विनय गुणी अछइ दयाकलश मुणीस;
तासु सीस रंगइ कहइ साधुकीरति जगीस।

नेमिराजर्षि चौपई सं० १६३६ भाद्र शुक्ल ५ नागौर में लिखी गई थी। गुणस्थानक विचार चौपई (४६ कड़ी) का आदि देखिये—

पणमिय जिणवर चउभिय भेय, समरि गोयम लब्धि समेय,
चउद गुणठांणा तणइ विचार, संखेपइ हूं बोलिस सार।[1]

अन्त गुणठाणा नो अेह विचार, जे जाणइ ते तरइ संसार,
वाचक साधुकीरति इम कहैं, ते निश्चइ सासय सुख लहइ।

शत्रुञ्जय अथवा पुण्डरीक स्तवन (१६ कड़ी) आदि—

पय प्रणमी रे जिणवरना शुभ भाव लइ,
पुण्डरगिरि रे, गाइसुगुरुसुपसाउलइ।

अन्त इम करीय पूजय थाजे गहि संघ पूजा आदरइ,
साहम्मिवच्छल करइ भवियां भवसमुद्र लीला तरइं।

प्रभाती (४ कड़ी) का आदि—

आज ऋषभ धरि आवे, देखो माई।

अन्त उत्तमदान अमृतरस ऊपम साधुकीर्ति गुण गावे।[2]

स्फुट रचनाओं में मौनएकादशी स्तोत्र १६ कड़ी १६२४ अलवर, विमलगिरि स्तवन १३ कड़ी, आदिनाथ स्तवन ११ कड़ी, सुमतिनाथ स्तवन १८ कड़ी, पुण्डरीक स्तवन १३ कड़ी, नेमि स्तवन, तिमरी पार्श्व स्तवन आदि भक्तिपरक रचनायें प्राप्त हैं। स्थूलिभद्र रास ३१ गाथा और नेमिगीत सरस लघुकाव्य कृतियाँ हैं। ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिनचन्द्रसूरि गीतानि शीर्षक के अन्तर्गत कुल २१ गीत हैं जिनमें से तीसरा गीत साधुकीर्ति का रचा हुआ है इसकी अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है—

चिरनंदउ जिणचंद मुनीश्वर साधुकीर्तिइमबोलइ।

---

१. श्री हरीश पृ० ९९-९६, और डॉ० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति-काव्य १२१

२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २१९, भाग ३ पृ० ६९९, भाग ३ खण्ड २ पृ० १५९५ (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० ४९-५८ (द्वितीय संस्करण) तथा राजस्थान का जैन साहित्य पृ० १७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिस्तव की प्रारम्भिक पंक्ति देखिये—

श्रृंगार हार सुहामणा मंडण कंकण सार,

दूसरे नेमिस्तव का प्रारम्भ इस प्रकार है—

तोरण पशु देखिकरि चडियो जब गिरनार।

नेमि गीत की प्रथम पंक्ति यह है—

राजल राणी प्रिय प्रति इम भणइ।

नेमि के लोकप्रिय चरित्र पर आधारित कई स्तवन एवं गीत आपने सरस और प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा में लिखा है। इस प्रकार १७वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय जैन लेखकों में आपका स्थान महत्वपूर्ण है। गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से आपका साहित्य-सर्जन उल्लेखनीय है। अतः आपकी चर्चा प्रायः सभी आलोचकों ने अपनी इतिहास कृतियों में किया है।

साधुरंग—खरतरगच्छीय जिनचंद्रसूरि, पुण्यप्रधान>सुमतिसागर के आप शिष्य थे। आपने सं० १६८५, अहमदाबाद में दयाछत्रीसी की रचना की, इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

दया धरम मोटउ जिनशासण भाख्यउ श्री भगवंत जी,
इम भव परभव सुखीय थायइं पालइ जे पुण्यवंत जी।

अन्त दया छत्रीसी इणि परिदाखी साखी राखी ग्रंथ जी,
सद्दहज्यो भवियण! मन मांहे; सांचू अे सिवपंथ जी।
श्री जिनचंदसूरि सीस गरुआ, पुण्यप्रधान उवझाय जी,
सुमतिसागर तसु सीस सिरोमणि, पामी तासु पसायजी,
साधुरंग मनरंगइ बोलइ, आतम पर उपगार जी,
संवत् सोल पच्चासी वरसइ अहमदाबाद मझार जी।[1]

सारंग—श्री अगरचंद्र नाहटा इन्हें मडाहडगच्छीय पद्मसुन्दर का शिष्य बताते हैं।[2] जबकि श्री मो० द० देसाई इन्हें मडाहरगच्छ के

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०२६ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २६०-२६१ (द्वितीय संस्करण)

२ श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानसुन्दर>पद्मसुन्दर के गुरुभाई गोविन्द का शिष्य कहते हैं।[1] इन्होंने सं० १६७८ में कृष्ण रुक्मिणी री बेलि की संस्कृत टीका 'सुबोध मंजरी' नाम से लिखी है। यह टीका मूलबेलि के साथ हिन्दुस्तानी अकादमी से प्रकाशित हो चुकी है। मरुगुर्जर में भी आपने कई रचनायें की हैं उनमें विल्हण पंचासिका चौपइ गाथा ४१२ सं० १६३९ जालोर, भोजप्रबन्ध चौपइ सं० १६५१ जालोर, वीरांगद चौपइ सं० १६४५ और भावशतत्रिशिका सं० १६७५ जालोर (संस्कृत टीका सहित) मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त जगदम्बा स्तुति और अन्य कई लघु रचनायें भी आपकी उपलब्ध हैं। भोजप्रबन्ध चउपइ सं० १६५१ श्रावण वदी ९ जालोर की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

भोजप्रबन्ध तणी चउपइ, सोलइकावन वच्छरि हुई।
बड़गच्छ शाखा चंद्रविचार, मडाहुडगच्छ गच्छ सिणगार।

× × ×

पद्मसुन्दर नामइ परगडु धुर लगि जासु अनोपम घडु,
गुरुभाई तसु छइ गोविन्द, पुरि जालोरि प्रगट आणंद।
तासु सीस सारंग सुवाणि, विमल किउ नृप भोज बषाण,
श्रावण वदि नवमी कुजवार, प्रकट कीउ कृपा प्रचार।[2]

इससे श्री देसाई के कथन का समर्थन होता है और कवि सारंग गोविन्द के शिष्य सिद्ध होते हैं।

विल्हण पंचासिका चौपइ (४१२ गाथा सं० १६३९ जालोर या जाबालिपुर) में कवि ने ज्ञानसागर का स्मरण किया है, यथा—

श्री मन्नाहड गछवर विद्यमान जयवंत,
ज्ञानसागर सूरी अछइ गुहिर महागुणवंत।

रचनाकाल—ए गुणच्यालइ वछरि उपरि सइल सोल,
सुदी आषाढ़ी प्रतिपदा कीउं कवित कल्लोल।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

प्रणमु सामिणि सारदा, सकलकला सुपसिद्ध,
ब्रह्मा केरी बेटडी, आवे अविकल बुद्धि।
नारी नामु ससिकला तेह तणु भरतार,
कवि विल्हण गुण वर्णवुं सील तणइ अधिकार।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३०३ (प्रथम संस्करण)
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सील सवइ सुख संपजइ, सीलै संपत्ति होइ,
इह भवि परभवि सुखलहइ सील तणइ फल जोइं।[1]

कथा सुनने का फल बताते हुए इस प्रकार कवि ने लिखा है—

बिरही तणा विरह दुख टलइ, मनमगती रस रमणी मिलइ।
समझइ श्रोता चतुर सुजाण, मूरिख म लहइ भाग अजाण।[2]

साहिब—आप विजयगच्छ के आचार्य गुणसागर सूरि के प्रशिष्य एवं देवचन्द के शिष्य थे। आपने सं० १६७८ वदी ६ सोमवार को 'संग्रहणी विचार चौपई' नामक रचना की, जिसका आदि निम्नाङ्कित है—

सकल जिणेसर पाइ नमुं ऋषभ अन्त वर्धमान,
चौदह सइ बावन सवइ गणहर नमुं सुग्यान।

× × ×

संघयणि सूत्र थी उद्धरुं करुं चउपही छंद,
संतिनाथ सानिधि करो चंपावती आनंद।

अंत श्री विजइगछ गुणसागरसूरिज्ञानकिरिपा करि छइ भरिपूरि,
तास थिवर मुनिवर देवचंद, तास सिष्य साहिब आणंद।
कला उदधि बान अन वित्त, संवत उत्तम अेह पवित्त,
कृष्ण पक्ष छठि नंदा तिथइ, सोमवार जोग रवि छतइ।
संघयणि सूत्र विचार अे चरी गुरु परसादइ में उद्धरी।
स्वापर समझ न काज अपार, रचा अेह चाटसू मझार।
भणइ सुणइ अनुभवइ विचारि, सदहइ ते नर समकित धार।
साहिब कउ साहिब नर तेह, रत्नत्रय आराधइ जेह।[3]

आपकी भाषा सरल एवं प्रसाद गुण युक्त मरुगुर्जर है। काव्यत्व सामान्य कोटि का है।

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ४८५

२. वही

३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९४६ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २१२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानसागर—आंचलगच्छीय पुण्यचन्द> कनकचन्द्र> वीरचन्द्र के आप शिष्य थे। आपने सं० १६८५ आसो कृष्ण ५, मंगलवार को खंभात में अपनी रचना 'अगडदत्तरास' (७७२ कड़ी) ३९ ढालों में आबद्ध की; इसके प्रारम्भ में कवि ने जिनेन्द्र एवं सरस्वती की वंदना की है, यथा—

श्री जिनपद पंकज नमी, समरी सरसति माय,
वीणा पुस्तक धारिणी, प्रणमइ सुरनर पाय।
हंसगामिनी हंसवाहिनी आपो बुद्धि विशाल,
जे नर सरसति परिहर्या ते नर कहीइ बाल।
× × ×
मूल ग्रन्थ मांहि करिउ अध्ययन चउथइ जेह,
अगडदत्तनृप केरडो चरित सुणो धरिनेह।

रचनास्थान खंभात की प्रशंसा करता हुआ कवि लिखता है—

नयरी त्रंबावती जाणीइ अलकापुरीय समान,
देवभुवन सोभइभलां जण होइ इन्द्र विमान।

यह रचना खंभात के श्रेष्ठि सावत्थासुत नामजी के आग्रह पर लिखी गई थी।

रचनाकाल—तास तण सुपसाय लहीनइ चरित रचिउ मनभाय,
थानसागर मुनिवर इम जंपइ, भविजन सुणउ चित्तलाय।
संवत शशि रस जाणीइ, सिद्धितणी वली संख,
महाव्रत पद आगलि धरउ समकरी गुणो सवि अंक।
आश्वनि मासि मनमोहक पूर्ण तिथि वली जाणि,
असित पंचमी अे सही, भूसुत वार वषाणि।

अंत अेह चरित जे सांभलइ, तेह घरि लीलविलास,
साधु तणा गुण गाइतां पूरइ हो तणी आस।[1]

इस रचना को श्री देसाई ने कल्याणसागर की कृति बताया था, किन्तु नवीन संस्करण में सुधारकर परिमार्जित कर दिया गया क्योंकि कवि की स्वयं की हस्तलिखित प्रति में रचनाकार का नाम और प्रति का रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५२८-३० (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २६४-२६६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"संवत् १६८५ वर्षे ज्येष्ठमासे सितपक्षे त्रयोदश्यां, रविवासरे लिखितं रायधनपुरे मुनि स्थानसागरेण प्रवाचनाय" यह कवि की स्वयं लिखित प्रति है। इस प्रामाणिक प्रति में कवि ने रचनाकाल सं० १६८५ ही बताया है, अर्थात् यह प्रति भी उसी वर्ष की है।

सिद्धि सूरि—आप बिवंदणीक (द्विवन्दनिक) गच्छ के देवगुप्त सूरि के प्रशिष्य एवं जयसागर के शिष्य थे। देवगुप्त सूरि के प्रतिमा-लेख सं० १५६७, ७०, ७२, ९३ और ९९ तक के प्राप्त हैं जिनमें उन्हें [सिद्धाचार्य संतानीय कहा गया है।

सिद्धिसूरि ने सं० १६०६ वैशाख कृष्ण ४ रविवार को अपनी कृति 'अमरदत्त मित्रानंद रास' (५२३ कड़ी) को ऊंझा में पूर्ण किया था। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सकल गुणनिधि सकल गुणनिधि सकल जिनराय।
पयपंकज प्रणमी करी, भले भावे भारती नमेवीय,
सहि गुरु चरणे शिर नमी, अेकचित्ते कविराय सेवीय।
कर्मकला फल जाणवा मित्रानंदचरित्र,
बोलिसि बहु बुद्धिकरी सुणया सहु इकचित्त।

यह रचना कर्म सिद्धान्त का महत्व मित्रानन्द के चरित्र के माध्यम से उजागर करने के लिए लिखी गई है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

कुण संवत्सर केहे मास रच्यो रास ते कहुं विमास,
संवत सोला छिओत्तरा जाण, शाके चौद बहुत्तरि बखाण।
बदि वैशाख चोथि तिथिसार, मूल नक्षत्र निर्मल रविवार,
तेणे दिने निपायो रास, सांभलता सवि पुहचे आस।

इसमें दोहा, चौपाई मिलाकर कुल 'शतपंचक बीवासा' छंद कवि ने बताया है।

गुरुपरंपरा—बेवंदणीक गच्छे सहिगुरु सार, सकल कला केरो भंडार;
श्री देवगुप्त वंदू सूरीस, करजोड़ी कहे तेहनो सीस।
संघ कथन थया ऊलट घणो, रच्योरास मित्रानंद तणो,
कुथुं जिणेसर तणे पसाय, रची चोपइ ऊंझा मांहि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रास पहले देवगुप्त सूरि शिष्य के नाम से दर्शाया गया था, बाद में इसका कर्त्ता सिद्धिसूरि को माना है।[1]

सिद्धिसूरि ने अपनी अन्य दो रचनाओं—सिंहासन बत्तीसी और कुलध्वज कुमार रास में अपने को जयसागर का शिष्य बताया है। यह सम्भव है कि देवगुप्त सूरि शिष्य और सिद्धि सूरि एक ही व्यक्ति हों, किन्तु इसकी अधिक संभावना है कि मित्रानंदरास के कर्त्ता देवगुप्तसूरि शिष्य कोई अन्य व्यक्ति रहे हों। अस्तु, आगे सिद्धिसूरि की अन्य दो रचनाओं का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

सिंहासन बत्तीसी—(कथा अथवा रास अथवा चौपाई) सं० १६१६ वैशाख कृष्ण ३ रविवार को अहमदाबाद के निकट बारेज नामक स्थान में लिखी गई थी। इसका आदि देखिए—

विश्व जननी विश्वजननी पाय पणमेवी,
सकल विश्व सुख करणी, मुग्धजन बुद्धिदाता,
कवियण मन आनंदनी जगत्र माहि तूं ही विख्याता,
करजोड़ी तुम्ह वीनवं दीयो मुझ निरमल भत्ति,
कहुं कथा विक्रम तणी ते सुणजो एकचित्त।[2]

अंत जे छे संस्कृत कथा प्रबंध, ते कह्यो भोज तणो सम्बंध,
प्राप्त रस अधिको जाणीइ, तेह कारणि अेह बखाणीइ।

× × ×

गुज्जरदेश देश मांहि सार, श्री अहम्मदपुरवर सुविचारि,
तास पास बारेज भलुं, तेह बखांण करुं केतलुं।

तिहां श्री संघ तणे उपदेश, रची चौपै धरमविशेष,
कवि करजोड़ी कहें अेणी परे, कहुं दिवस तेवटि न विस्तरे।[3]

रचनाकाल–संवत सोल सोलोतर जाणि, शाक चौद व्यासीओ बखाणि।
वदि वैशाख त्रीज तिथिसार, मूल नक्षत्र निर्मल रविवार।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २०० (प्रथम संस्करण) और पृ० २०५-०७ वही तथा भाग ३ पृ० ६७३-७४ और ६७७-८० (प्रथम संस्करण)

२. वही भाग २ पृ० २७-३२ (द्वितीय संस्करण)

३. वही भाग २ पृ० २७-३२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें कवि ने देवगुप्त के बाद जयसागर का अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है, यथा—

विवंदणीक गच्छे सहि गुरुसार, श्री देवगुप्त सूरिवंदू गणहार
तास सीस पंडित गुणनिलो, श्री जयसागर नामे भलो,
तास सीस करजोड़ी करी, सिद्धि सूरि पभणे एहचरी।

इन्होंने कुलध्वज कुमार रास, शिवदत्त रास आदि अन्य कई रचनायें भी मरुगुर्जर में रची हैं। कुलध्वज कुमार रास सं० १६१८ श्रावण वदी ८ रविवार को पूर्ण हुआ था। इसके प्रारम्भ में सर्वप्रथम वस्तु, चौपइ और उसके बाद यह दूहा है—

पहिलुं सरसति पय नमी लेइगिरुया गुरु नाम,
कुलध्वज रास तणां सही बोलेस गुणग्राम।
सीलवंत मांहि धुरी, गुणनिधि जे गंभीर,
कुलमंडन कुलतिलक जे बसुहां ते बड़बीर।
तेह तणां गुण बोलसुं, आणी मनि उल्हास,
सजन सहूज सांभलु जिम पुहुची सवि आस।

रचनाकाल–संवत् १६१८ रोतरइ अे मा० श्रावण मास रसाल,
वदि आठम तिथि जाणीइ अे मा० रविवासर सुविशाल।[1]

शिवदत्त रास (अथवा प्राप्रत्यक नो रास २९५ कड़ी सं० १६२३ चैत्र ६, रविवार)

आदि सरस सुवचन सरस दीउं सरसति,
शुभमति दिउ मुझ सारदा, धरीय ध्यान जिनराय केरुं,
सुगुरु आंण अहनिशि बहु करु कवित्त ऊलटि नवेरस।

इसमें भी कवि ने जयसागर को अपना गुरु स्वीकार किया है। रचना का नाम इस प्रकार बताया है—

प्रापति यानो रास उदार, गुणतां भणतां हुइ सार,
जे भावइ भवियणि नितुभणइ, नितुसुखसंपति हुइ तेहतणइ।
संकट सयल तेह घरि टलइ, सही मनवांछित अफला फलइ।

अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार है, इसमें रचनाकाल भी है।

कुण संवत नइं कीहइ मासि, कही कथा मननइं उल्हासि,
संवत सोल त्रेवीसे जांणि, चौद अढचासी शके बखाणि,

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७-३२ (द्वितीय संस्करण)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्तहरण वारु चैत्र मास, सेवक कहइ जनकी पूरइ आस।
निबु वसंत वणराजी कंथ, अेणइ मासि रचिउ अे ग्रन्थ।'

रचनाओं की संख्या और उनके आकार विस्तार से ये एक सक्षम कवि प्रतीत होते हैं।

सिंहप्रमोद—आप तपागच्छीय सोमविमलसूरि की परंपरा में उदयचरण प्रमोद > कुशल प्रमोद > विवेक प्रमोद के शिष्य और लक्ष्मीप्रमोद के गुरुभाई थे। आपने सं० १६७२ (१६०२?) पौष शुक्ल द्वितीया रविवार को 'वेतालपचीसी' नामक कथाकाव्य की रचना की। इसका रचनाकाल शंकास्पद है। कवि ने रचनाकाल इस प्रकार बताया है--

संवत सोल विडोत्तरइ, पोष मास सुध बीज रवि दिनि।

श्री मो० द० देसाई ने 'सोल वीडोत्तर' का अर्थ सं० १६०२ लगाया है[2] किन्तु सोमविमलसूरि की शिष्य परंपरा में चौथे स्थान पर आने वाले कवि की रचना सं० १६०२ की नहीं हो सकती अतः बहुत सम्भव है कि यह रचना सं० १६७२ की हो। वेतालपचीसी की कथायें पर्याप्त लोकप्रसिद्ध हैं। यह रचना उसी पर आधारित है।

संघ या सिंहविजय—लोंका मत का त्याग कर मेघजी ऋषि ने सं० १६२८ में हीरविजयसूरि से दीक्षा ली थी। उनके साथ २८ अन्य लोगों ने भी दीक्षा ली थी। उनमें मुख्य शिष्य का नाम गुणविजय रखा गया था। इन्हीं गुणविजय के शिष्य सिंहविजय या संघ थे। एक संघविजय हीरविजय के शिष्य भी थे। इनका गृहस्थ नाम संघजी था, दीक्षित होने पर उनका नाम संघविजय पड़ा था। ये दोनों संघविजय एक ही व्यक्ति थे या दो यह कहना कठिन है। प्रस्तुत कवि का नाम सिंहविजय या सिंघविजय होना सम्भव है। ये संघविजय से भिन्न व्यक्ति प्रतीत होते हैं। आपने सं० १६६९ आसो सुदी ३ को श्री ऋषभ देवाधिदेव जिनराज स्तव (७१ कड़ी) लिखा है। इसका मंगलाचरण

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २७-३२ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ९६५ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १७४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निम्नवत् है--

सरसति भगवति भारती, कविजन केरी माय,
अमृत वचन निज भगतनइ, आपो करी पसाय,
शासनदेवी चिति धरूं प्रणमुं निज गुरु पांय,
प्रथम तीर्थंकर वर्णवुं, श्री रिसहेसर राय।

अन्त　संवत् ससि रसकाय निधान, अे संवत्सर कह्यो परधान,
आसो मासि तृतीय उजली, कर्युं तवन पूरण मनरुली।[1]

इनकी दूसरी कृति 'अमरसेन वैरसेन राजर्षि आख्यानक' सं० १६७९ मार्गशीर्ष शुक्ल ५ को लिखी गई। इसमें गुरुपरंपरा बताते हुए कवि ने हीरविजय सूरि की सम्राट् अकबर से मुलाकात का भी उल्लेख किया है—

पट्ट परंपर वीर ;नो, क्रमइ हुवो युगहप्रधान,
श्री हीरविजय सूरीश्वर अकबर नृप दीइं मान।

मेघजी ऋषि द्वारा लुंकामत त्याग कर हीरजी के पास आने का वर्णन निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

सोल अठावीसइं आवीया मेघजी ऋषि उदार,
लुंकामत मूँकी करी, कुमति कीउ परित्याग।

गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई गई है। मेघजी का नाम उद्योतविजय पड़ा। इनके शिष्य गुणविजय के शिष्य संघविजय थे, यथा—

गिरुओ गुणविजय गणि गुरुआण वहइं निज सीस,
तस विनती वगता विबुध संघविजय पभणंति।[2]

रचनाकाल—चन्द्रकला उदधि निधि वरसे मृगसिर मास,
सुदि पंचमी उत्तरांरवि पूरण रचीउ रास।

आप भी अच्छे कवि थे और सिंहासनबत्तीसी तथा विक्रमसेन शनिश्चर रास आदि लोकप्रिय ग्रन्थों की रचना की है जिनका संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

सिंहासनबत्तीसी—(१५४७ कड़ी सं० १६७८ दूसरा मागसर सुदी २) मेघजी द्वारा इसमें भी लुंकामत त्यागकर तपागच्छ में आने

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४७४-४७७, भाग ३ पृ० ९५१-९५४ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १५२-१५८ (द्वितीय संस्करण)।
२. वही भाग ३ पृ० १५२-१५८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

का उल्लेख है, यथा—

कुमति तजी सुमति भजी सार्याआतमकाज,
उद्योतविजय विबुध पद दीउ धनधन हीरगुरुराज।

रचनाकाल–संवत् १६ अठोतरे, द्वितिया मागसिर मास,
शुक्लाक्ष मूलारके पूरण रचियो रास।
संघविजय कवियण भणे, सरसति सानिधि कीध,
सद्गुरु पाय पसाउलें तणें पामि सद्बुद्धि।

विक्रमसेन शनिश्चर रास (सं० १६८८ कार्तिक वदी ७ गुरुवार)

आदि सिद्धनामा उदार धूरि, ज्ञान तेज अनन्त।
सुखमय परमाणंद पद, पाम्या श्री भगवन्त।

रचनाकाल–शशिकला संवत हरिराम,
कार्तिक बहुला गुरुपुण्य अभिराम,
सातमि अमृत सिद्धि सवियोग,
वीस बसाधिक मिल्यो संयोग।

सिंहासनबत्तीसी और विक्रमसेन शनिश्चर रास में अवंति के राजा विक्रमादित्य की परंपराप्राप्त कथाप्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत की गई है। मीन राशि के शनि ने राजा विक्रम को भयाक्रान्त किया किन्तु वह अपने चरित्रबल से अन्ततः सुखी हुआ। इसकी अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

इय सुणी विक्कम चरियं बहु भक्ति सिंह विबुहेण,
जे पढ़इ गुणइ निसुणइ, ग्रह पीड़ा न कुणइतास।[1]

इस प्राकृताभास छंद में कवि ने बताया है कि इस कथा के पढ़ने से शनि ग्रह की पीड़ा से मुक्ति मिलेगी। इसकी कथा कौतूहल वर्द्धक, भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न और शैली काव्यत्वपूर्ण है।

सुधन हर्ष—आप तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य हीरविजयसूरि की परंपरा में धर्म विजय के शिष्य थे। आपने सं० १६७७ मकरसंक्रान्ति पोस सुदी १३ को 'जंबूद्वीपविचार स्तव' लिखा। इसका आदि इस प्रकार है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५२-१५८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जिन चौबीसइ प्रणमीनइ, वलि प्रणमी गुरु पाई रे,
ब्रह्माणीनइ करीअ वीनती, मुझनइ तूसो माई रे।
जंबूद्वीप विचार लिखेस्युं किंपि जाणवा कामिरे,
यथा प्रकास्यो वीर जिणिंद, पूछइ गौतम स्वामि रे।

रचनाकाल— संवत सोल सत्योतरइ अे, संक्रान्ति मकर रवि संचरइ अे,
पोस बहुल रवि तिरसिअे, वलि दश बाजी मूलि वसिअे।[1]

हीरविजय सूरि और अकबर की मुलाकात का उल्लेख इन पंक्तियों में किया गया है—

श्री हुमाऊ सुत नृपोकब्बरो,
तेणि जस कीर्ति जिन श्रवणि निसुणी,
दर्शनार्थं समाकारितो यो गुरु निज समीपे भवांभोधितरणी।
धर्म उपदेश गुरुमुख थीं सांभली,
पाप की वासना बहुत टारी।
पर्व पजूसणिं सकल निजदेस मां,
तिणिनृप जीव हिंसा निवारी।
तेह गुरु हीरना शिष्य सोहाकरा,
धर्म विजयाभिधा विबुधचंदा।
तासु शिशु इम कहइ क्षेत्र सुविचार अे,
भावि भणतां सुधन हर्षवृन्दा।
भणतलां सुणतला पुण्यवृन्दा-हीरजी।[2]

देवकुरुक्षेत्र विचार स्तवन की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

आगम सवि तुझ थी हुआ, वली अे वेदपुराण,
देखावइ सवि अर्थ तुं सहसकिरण जिम भाण।
जिनवर विमल मुखांबुजिं दीसइ ताहरो वास,
विष्णु ब्रह्म शंकर नमइ, सुरनर ताहरा दास।

'मंदोदरी रावण संवाद'—इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५०४-५०५ और भाग ३ पृ० ९९० (प्रथम संस्करण)
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासेन वदना हिमकर हरि विक्रम नृप संवत्सर,
जेम मधु (चैत्र) नामिं मास कही जइ,
तेथी गुहमुह मास लहीजइ ॥

तिथि संख्याश्रिक वर्गिजाणे, यमीजनक बलिवार बखाणे
शिति पक्षि उडु यामक लहये, सिद्धिये गते माटइ कहये।

गुरु परंपरा--हीरविजय सूरीसर केरो, धर्म विजय बुध शिष्य भलेरो,
तस शिशु सुधनहर्ष इमि कहवइ,
धर्मथकी सुखसम्पद लहवइ।

धनहर्ष या सुधन हर्ष ने सं० १६८१ ? में तीर्थमाला नामक एक रचना ऊना में की जिसके प्रथम छंद में गुरु वंदना, द्वितीय में सरस्वती वंदना और तृतीय में ऊना या उन्नतपुर का उल्लेख संस्कृत भाषा छंदों में हुआ है, यथा--

नत्वा श्री विद्या गुरु रम्य श्री विजयसेन सूरींदान,
श्री धर्मविजय बुधान गुरून गुरु निवधियास्माकान।

रचनाकाल—इशां बक वसु वलि कहुरे, दर्शन माहव नारि रे,
अे संवत्सर मइ कह्यो रे, पंडित तुं मनिधारि रे।

इसमें भी सम्राट् अकबर और हीरविजयसूरि की भेंट का उल्लेख है, यथा—

श्री विजयदान सूरिंद पट्टोधर सूरि गुरु हीरविजयाभिधाना,
नगर गंधार थी जेह तडाविआ साहि श्री अकबरदत्त माना।

कवि ने अपने गुरु धर्म विजय की अभ्यर्थना के पश्चात् अन्त में लिखा है—

तास पद युग्म अंभोज मधुकर समो,
तास शिशु विबुध धनहर्ष भाषइ,
पंच अे श्री जिनाधीश संस्कृति थकी,
प्रगट हुअं पुण्य रस सुधा चाखइ।[1]

कवि अपने को कहीं सुधनहर्ष, कही धन हर्ष लिखता है किन्तु इसके कारण कोई भ्रम नहीं होना चाहिये। ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं। इनकी उपरोक्त चार रचनाओं के विवरण-उद्धरण

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५०५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध हैं। ये कृतियाँ सामान्यतया अच्छी हैं। इनमें से तीन तो स्तवन ही हैं। 'मंदोदरी रावण संवाद' संवाद शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से लिखी गई विशिष्ट रचना है।

सुधर्मरुचि—शुभवर्द्धन के आप शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का विवरण प्राप्त हो सका है (१) आषाढ़भूतिमुनि रास और (२) गजसुकुमाल ऋषि रास। दोनों दो ऋषियों के आदर्श तपः पूतचरित्र पर आधारित रचनायें हैं। प्रथम रचना का प्रारम्भ देखिये—

श्री शांति जिणेसर भवणदिणेसर पाय प्रणमी,
बहुभगतिइं गायसउ रिषिराय।
आषाढ़ मुनीश्वर जसो जुगह प्रधान,
नाचत नाचतां पायउ केवलनाण।

अन्त भुवनसुन्दर जयसुन्दरा रूपइ मोहनकंद रे,
कोई केतलादान तिहा रहउ आषाढ़भूतमुणेंदुरे।
श्री शुभवर्द्धन गुरु तम्ह तणा रे चलणे अविचल वास रे,
नामइ नवनिधि पामीइ, फलइ मन थी आसरे।

'गजसुकुमाल ऋषि रास' (१७ ढाल सं० १६६९ से पूर्व) इन दोनों रचनाओं में कवि ने रचनाकाल नहीं दिया है किन्तु प्रस्तुत कृति की प्रति पोस सुदी ३, सं० १६६९ की प्राप्त है इसलिये यह रचना कुछ उससे पूर्व की होगी। आदि—

देससोरठ द्वारापुरी नवमो तिहां वासुदेवो रे,
दसेंर्ध दसारसउराजिउ बंधव थी बलदेवो अे।
जीरे जीरे स्वामी समोसर्या हरषिइ गोपीनो नाथ अे,
नेमिवंदण अलज्यो अलजउ यादव साथ अे।

अंत श्री शुभवर्द्धन गुरुराय मइ प्रणमी तेहना पाय,
गायु गजसुकुमाल मुणिंद, जस भणतां हुई आणंद।
श्री गजसुकुमाल जे गाई, ते सर्वं वंछित फल पाई।
अनइ दूरिदुःकृत सवि जाइ, वली अविचल पद थाई।[1]

आषाढ़ भूति रास में यह पंक्ति थोड़ी शंका उत्पन्न करती है कि रचना सुधर्मरुचि की है या उनके शिष्य की ? वह पंक्ति इस प्रकार है—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४०७ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल लहि मुगती गयुं, श्री सुधर्मरुचि गुरु सीस रे,
पांचसइ परीवारइ परीवरउ, तेहना संघ आसीस रे।

इससे लगता है कि यह रचना सुधर्मरुचि गुरु के किसी शिष्य की है। यह विचारणीय है।

सुन्दरदास—हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में सन्त दादू के दो शिष्यों का नाम सुन्दरदास मिलता है। एक बड़े, दूसरे छोटे सुन्दर दास कहे जाते हैं। छोटे सुन्दरदास ही अधिक प्रसिद्ध हैं। ये जहाँगीर और शाहजहाँ के समकालीन थे। इनका जन्म जयपुर राज्य के द्यौसा नामक स्थान में सं० १६५३ में हुआ था। इनके पिता परमा या परमानंद खंडेलवाल वैश्य थे। सुन्दरदास की माँ का नाम सती बताया जाता है।[1] इन्होंने सुन्दर विलास नामक ग्रन्थ लिखा है। यह आध्यात्मिक पदों का संग्रह है।

डा० प्रेमसागर जैन ने जैन कवि सुन्दरदास को संतसुन्दरदास से पृथक् कवि बताया है और दिल्ली के पड़ोसी प्रदेश बागड़ को इनका जन्म स्थान बताया है, तथा सुन्दरसतसई, सुन्दरविलास, सुन्दर शृङ्गार और पाखंड पंचासिका नामक चार ग्रन्थों का उन्हें कर्त्ता बताया है, पर यह कथन ठीक नहीं लगता क्योंकि वहीं वे सुन्दरविलास को संतसुन्दरदास की रचना भी बता चुके हैं।[2] अब देखना है कि क्या सुन्दर शृङ्गार के लेखक जैन कवि हो सकते हैं। ना० प्र० पत्रिका १९०१ संख्या ३ में लिखा है कि इस ग्रंथ के प्रारम्भ में श्री जिनाय नमः लिखा है। साथ ही श्री गणेशाय नमः और सरस्वती आदि की भी वंदना है। यह सम्भव है कि इस ग्रन्थ की हस्तप्रति के लेखक जैन रहे हों और उन्होंने प्रारम्भ में श्री जिनाय नमः लिख दिया हो, पर मूल लेखक जैन न हों क्योंकि श्री मो० द० देसाई ने सुन्दर शृङ्गार के लेखक सुन्दरदास को 'जैनेतर विप्र' बताया है।[3] यह तथ्य ग्रंथ के पाठ से भी प्रमाणित होता है, यथा—

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ४ पृ० १९८-२०१, प्रकाशक-नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

२. डा० प्रेम सागर जैन—हिन्दी जैनभक्ति काव्य और कवि पृ० १६१-१६४ तक

३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २१५४-५५ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विप्र ग्वालियर नगर को, वासी है कविराज,
जासौं साहि मया करै सदा गरीब निवाज।

इस रचना का नाम सुन्दर शृंगार बताया गया है—

सुन्दर कृत शृङ्गार है, सकलरसनिको सारु,
नाऊं धर्यो या ग्रन्थ को यह सुन्दर शृंगार।

यह शृंगार रस की रचना है इसलिए इसका रचयिता कोई जैन कवि शायद ही हो, अधिक सम्भावना है कि वह जैनेतर ही होगा। यही श्री देसाई ने लिखा भी है। इसका रचनाकाल सं० १६८८ बताया गया है, यथा—

संवत सोलह वरस बीते अठयासीति,
कातिक सुदी षष्ठी गुरो रच्यौ ग्रन्थ करि प्रीति।

पता नहीं डॉ० प्रेमसागर जैन ने इन्हें कैसे बागड़ निवासी लिख दिया है जबकि ग्रन्थ में स्वयं कवि अपने को ग्वालियर निवासी बताता है। डा० प्रेमसागर ने अपने कथन के पक्ष में कोई प्रमाण भी नहीं दिया है। वे ये सब बातें केवल कामता प्रसाद जैन के प्रमाण पर लिखते हैं। इस रचना में कवि ने सम्राट शाहजहां की प्रशंसा की है और लिखा है—

प्रथम दियो कविराय पद बहुरि महाकविराय

अर्थात् पहले कविराय, बाद में महाकविराय पद शाहजहाँ ने इन्हें प्रदान किया और बहुत दान-सम्मान किया—

साहिजहाँ तिन गुनि को दीने अगनित दान,
तिन मैं सुन्दर सुकवि को कियो बहू सनमान।

इससे स्पष्ट है कि सुन्दर कवि शाहजहाँ द्वारा सम्मानित सुन्दर शृंगार के लेखक विप्र थे और ग्वालियर के थे अतः जैन कवि सुन्दर की रचना सुन्दर शृंगार नहीं प्रमाणित होती है। सुन्दरसतसई भी इन्हीं की रचना हो सकती है। सुन्दर शृङ्गार की दो प्रतियों का उल्लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका में किया गया है। डा० प्रेमसागर ने एक तीसरी प्रति (सं १८११) को मेवाड़ राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित बताया है और उससे दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

नगर आगरो बसत है जमुनातट सुभथान,
तहाँ पातिसाही करै बैठो साहिजिहान।[1]

---

१. डा० प्रेम सागर जैन—भक्ति काव्य और कवि पृ० १६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्हीं पंक्तियों को श्री देसाई ने भी उद्धृत किया है—

देवी पूज्यौ सरसुती पूज्यौ हरि के पाय,
नमस्कार कर जोड़ि कै कहै महाकविराय।
नगर आगरो बसत है जमुनातट सुभथान…आदि।

स्पष्ट ही दोनों विद्वान् एक ही सुंदर शृंगार का विवरण दे रहे हैं जिसके लेखक सुंदर को एक बागड़ का जैन, दूसरा ग्वालियर का विप्र बताता है। अन्तर्साक्ष्य श्री देसाई के पक्ष में है और वही मान्य है। लगता है बिना पर्याप्त छानबीन के डा० प्रेमसागर जैन ने कामता प्रसाद जैन की साक्षी पर सुन्दर कवि और सन्त सुदरदास को मिला-जुला दिया है। डा० मोतीलाल मेनारिया संत सुंदरदास के पिता का नाम चोखा बताते हैं जब कि नागरी प्रचारणी सभा से प्रकाशित हिन्दी साहित्य के वृहद् इतिहास में उनके पिता का नाम परमा दिया गया है।

डा० प्रेमसागर जैन द्वारा उल्लिखित जैन कवि सुंदरदास के चार ग्रंथों में से तीन तो सन्त सुन्दरदास और महाकविराय सुन्दर के लगते हैं। एक रचना 'पाखण्ड-पंचासिका' का लेखक कोई जैन कवि सुन्दर-दास हो सकता है जो बागड प्रदेश का रहा हो। यह रचना जयपुर के बड़े मंदिर में गुटका नं० १२० में निबद्ध है। इसमें बाह्य कर्म और धर्म के नाम पर प्रचलित ढोंग पाखंड की निन्दा की गई है। डा० जैन ने इन्हें योगीन्दु और रामसिंह की परम्परा का कवि बताया है। जो हो, मैंने मूल रचना नहीं देखी, इसलिए इसे किसी जैन कवि सुन्दरदास की कृति मान लेता हूँ। 'धर्म सहेली' नामक एक रचना भी इन्हीं जैन कवि सुन्दरदास की हो सकती है जो दीवान बधीचंद के मन्दिर जयपुर के गुटका नं० ५१ में निबद्ध है। इसमें केवल ७ पद्य हैं। इस प्रकार सुन्दरदास नामक तीन कवियों का घालमेल डा० प्रेमसागर जैन के विवरण में हो गया लगता है। एक सन्त सुन्दरदास छोटे, दूसरे महाकविराय सुन्दर जो दरबारी कवि थे, तीसरे जैन कवि सुन्दरदास। किन्तु इस विषय पर जब तक पूर्ण छानबीन न हो जाय, अंतिम रूप से कुछ कह पाना कठिन है। दो का विवरण तो डा० जैन ने दिया ही है, संत सुन्दरदास और जैन कवि सुन्दरदास का, लेकिन वह भी अस्पष्ट है।

श्री कामता प्रसाद जैन ने लिखा है कि सुन्दर विलास और सुन्दर सतसई की प्रतियाँ जसवंतनगर के दिगम्बर जैन मंदिर के एक गुटके में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निबद्ध हैं जिस गुटके को स्वयं सुन्दरदासजी ने मल्लपुर में वि० सं० १६७८ में लिखा था।[1] लगता है कि डा० प्रेम सागर जैन ने स्वयं उक्त गुटके को देखे बिना ही का० प्र० जैन की बात यथावत् स्वीकार कर ली है इसलिए काफी घपला हो गया है। सुन्दर शृंगार नायक-नायिका वर्णन का ग्रन्थ है। यह कवि दरबारी है। शाहजहाँ द्वारा महाकविराय पदवी प्राप्त और सम्मानित है, यह सन्त कवि सुन्दरदास और जैन कवि सुन्दरदास से अवश्य भिन्न होगा। का० प्र० जैन को भी सुन्दरदास जी बागड़ प्रदेश के निवासी विदित होते हैं। पर कैसे? यह नहीं बताया है। उन्होंने जो पद्य उद्धृत किए हैं उनके सम्बन्ध में भी वे निश्चित नहीं हैं बल्कि लिखते हैं कि वह सुन्दर विलास के हो सकते हैं। मुझे लगता है कि ये पद्य सुन्दरविलास के नहीं वरन् जैन कवि सुन्दरदास के स्फुट पद्य हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां देखिये—

जीवदया पालै नहीं चाहै सुसुख अपार,
बोवैं बीज बबूल कौं पणिसो क्यों फलति अनार।
नितप्रति चितवै आत्मा करे न जड़ की आस,
तिनको कवि सुन्दर कहै मुकतिपुरी होइ बास।[2]

इनके एक पद की दो पंक्तियां और प्रस्तुत हैं--

जीयामेरे छांड़ि विषय रस ज्यौं सुख पावै,
सब ही विकार तजि जिण गुण गावै।

यह पंक्ति स्पष्ट ही जिण या जिन का गुण गान करने की ओर निर्देश करती है और किसी जैन कवि की रची लगती है। आगे लिखता है--

घरी घरी पल-पल जिण गुण गावै,
तातैं चतुरगति बहुरि न आवै।
जो नर निज आतमु चित लावै,
सुन्दर कहत अचल पद पावै।

इसलिए कवि सुन्दर अवश्य कोई जैन कवि थे जिनकी रचनायें और स्फुट पद, पद्यादि प्राप्त हैं, और वे संभवत: बांगड़ निवासी रहे

---

१. श्री कामता प्रसाद जैन—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १२७-१२८
२ वही पृ० १२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हों पर वे सुन्दर विलास, सुन्दर श्रृंगार, सुन्दर सतसई के रचयिता नहीं थे।

सुभद्र--आपकी एक रचना 'राजसिंह चौपाई' का उल्लेख श्री देसाई ने किया है जो सं० १६८३ ज्येष्ठ शुक्ल ११ को रची गई। इस रचना तथा रचनाकार का अन्य कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।[1]

सुमतिकल्लोल—आप खरतरगच्छीय आचार्य जिनचंद्रसूरि के शिष्य थे। आपने मृगापुत्र सन्धि सं० १६६१ महिमनगर, शुकराज चौपई १६६२ बीकानेर, रत्नसारकुमार रास चतुष्पदिका १६७९ मुलतान, बीकानेर ऋषभस्तवन, शंखेश्वर स्तवन और गीता आदि ग्रन्थ रचे हैं।[2]

आपने हर्षनंदन के साथ मिलकर 'स्थानांग सूत्र' पर संस्कृत वृत्ति १७०५ में लिखा था।

कवि ने शुकराज चौपइ का समय 'दोय रस काय शशि' लिखकर सं० १६६२ बताया है। मृगा पुत्र संधिमी (१०९ गाथा) सं० १६६२ के आषाढ़ कृष्ण ११ को महिमानगर में पूर्ण हुई।[3] श्री देसाई ने इन रचनाओं का कोई उद्धरण नहीं दिया है। 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में जिनचंद्र सूरि गीतानि' के अन्तर्गत छठां गीत सुमतिकल्लोल कृत है। इसकी अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है--

श्रीवंत साह मल्हार सुमति कल्लोल सुखकार।

सुमतिकीर्ति—सरस्वतीगच्छ के ज्ञानभूषणसूरि आपके प्रगुरु और प्रभाचंद गुरु थे। आपने सं० १६२५ में धर्म परीक्षा चौपइ, त्रैलोक्यसार

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १००९-१० (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २५३ (द्वितीय संस्करण)
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परम्परा पृ० ८२
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८९१ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपइ अथवा धर्मध्यान रास सं० १६२७ में और लोकामत निराकरण चौपइ की रचना की।[1]

श्री मो० द० देसाई ने इन्हें ज्ञानभूषण के शिष्य प्रभाचन्द्र का शिष्य बताया है। डा० कासलीवाल तथा डा० हरीश इन्हें ज्ञानभूषण का ही शिष्य सिद्ध करते हैं अतः दो विद्वानों की राय स्वीकारते हुए इन्हें ज्ञान भूषण का शिष्य मान लेना चाहिये किन्तु यह गुरु परंपरा पाठ के अनुसार उचित नहीं लगती है। कवि ने ज्ञान भूषण के पश्चात् प्रभाचन्द्र को बराबर सादर स्मरण किया है। जो पुस्तकों के विवरणों को देखने से स्पष्ट हो जायेगा, अतः प्रभाचंद को ही इनका गुरु मानना युक्ति युक्त लगता है। धर्म परीक्षा रास सं० १६२५ मागसर शुदी २ हांसोट का प्रारम्भ देखिये--

चंद्रप्रभस्वामी नमीइ, भारती भुवनाधार तु।
मूलसंघ महीयलि महीत, बलात्कारगणसार तु।

इसमें गुरु परंपरान्तर्गत विद्यानंदी, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचंद, वीरचंद और ज्ञानभूषण की वंदना है और इन पांचों के पश्चात् प्रभाचन्द्र का स्मरण-वंदन किया गया है, यथा—

लक्ष्मीचन्द श्री गुरु नमूं दीक्षादायक अेह,
वीरचन्द वादूं सदा सीषांदायक तेह।
तेह पाटि पट्टोधरु ज्ञानभूषण गुरुराय,
आचारिज पद आपीयूं तेहना प्रणमू पाय।
तेह कुलकमल दिवसपति प्रभाचन्द यतिराय,
गुरु गछपति प्रतपो घणूं मेरुमहीधर जांव।
सुमतिकीरति सूरी रच्यो धर्म परीक्षा रास,
शास्त्र घणो जोईकरीकीधु बहु प्रकाश।

रचनाकाल तथा स्थान--

पंडित हे प्रेर्यो घणुं वणायग निवारदास,
हांसोट नयरि पूरो कर्यो धर्म्मपरीक्षा रास।
संवतसोल पंचवीस बि मार्गसिर सुदि बीजा वार,
रास रुडो रलियामणो पूर्णहवोछी सार।[2]

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ९२
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २२७-२८, भाग ३ पृ० ७१०-११ तथा भाग ३ खंड २ पृ० १५०९-१० (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १४४-१४७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रैलोक्यसार चौपइ अथवा धर्मध्यान रास सं० १६२७, इसमें कवि ने रचनाकाल नहीं दिया है। इसमें भी गुरुपरंपरा दिखाते समय ज्ञान भूषण के पश्चात् प्रभाचन्द का उल्लेख है--

ज्ञानभूषण तस पाटि चंग, प्रभाचन्द वादो मनरंगि।

त्रैलोक्यसार चौपई और धर्मध्यानरास एक ही रचना के दो नाम हैं न कि दो रचनायें हैं जैसा कि श्री नाहटा जी ने दर्शाया है, यथा--

सुमतिकीरति यतिवर कहि सार, त्रैलोक्यसार धर्मध्यान विचार।

इसके प्रारम्भ में कवि ने लोक-अलोक का वर्णन इस प्रकार किया है--

सरसति सद्गुरु सेवु पाय, सुमतिनाथ पंचमो जिनराय,
त्रैलोक्यसार ग्रंथ जोई कहुं तेह विचार सुणो तमे सहु।
अलोकाकास मांहि छि लोक, अधो मध्य ऊर्ध्वइ छि थोक,
द्रव्य छओ भर्यो लोकाकास, अलोक मांहि केवल आकास।

लोंकामत निराकरण चौपई सं० १६२७ चैत्र शुक्ल ५ रविवार को दादानगर में लिखी गई एक साम्प्रदायिक रचना है। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया है—

संवत सोल सतावीस कि चैत्र मास वसन्त,
सुदिपक्षे पांचमी रचो रच्यो रास महंत।

इसमें लोकामत का खंडन है, यथा--

अणहिल्लपुर पाटण गुजरात, महाजन वसइ चउरासी न्यात,
लघुशाखी ज्ञाते पोरवाड़, लोको सोठि लिहा छि धाल।
ग्रंथ संख्यानइ कारणो बढ़चो, जैनमति सुं बहु चिउभिड्यो।
लोके लीन्हे कीधा भेद, धर्म तणा उपजाया छेद।[1]

इसमें भी गुरु परंपरा वही दी गई है, यथा--

ज्ञानभूषण पट्टितिलो प्रभाचन्दयतिराय,
सुमति कीरति मुनिवर कहिरयणभूषणसविपाय।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल का कथन है कि सुमतिकीर्ति नामक दो सन्त एक ही समय हुए, एक ज्ञान भूषण और दूसरे शुभचन्द्र के शिष्य थे। दूसरे सुमति कीर्ति को सकलभूषण ने उपदेश रत्नमाला

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १४४-१४७ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(संवत् १६२७) में अपना गुरुभाई और शुभचन्द्र का शिष्य बताया है। प्रस्तुत सुमतिकीर्ति ज्ञान भूषण के शिष्य थे ये भट्टारक नहीं बल्कि ब्रह्मचारी या अन्य पद धारी रहे होंगे। इसीलिए इन्होंने ज्ञान-भूषण के पश्चात् प्रभाचन्द का नाम गिनाया है। डा० कासलीवाल ने जिस प्रकार सकल भूषण, देवेन्द्रकीर्ति और ब्रह्म कामराज की साक्षी देकर दूसरे सुमतिकीर्ति को शुभचन्द्र का शिष्य प्रमाणित किया है वैसे प्रस्तुत सुमतिकीर्ति के लिए ज्ञान भूषण का शिष्य सिद्ध करने का कोई प्रमाण नहीं दिया है। इसलिए अन्तर्साक्ष्य के आधार पर हम इन्हें ज्ञान भूषण के शिष्य प्रभाचन्द का शिष्य ही मानने को विवश हैं।

प्रस्तुत सुमतिकीर्ति ने प्राकृत पंचसंग्रह टीका में भी लिखा है—

भट्टारको सुविख्यातो जीयाछ्री ज्ञान भूषणः।
तस्य महोदये भानुः प्रभाचंद्रो वचोनिधिः।

संस्कृत में आपने कर्मकांड टीका भी लिखी है। हिन्दी (मरुगुर्जर) में उपरोक्त तीन पुस्तकों के अलावा जिनवर स्वामी वीनती, जिह्वादंत संवाद, वसंतविद्या विलास आदि अन्य छोटी रचनाओं के अलावा अनेक स्फुट पद और गीत आदि भी प्राप्त हैं।

आपकी प्रसिद्ध रचना धर्मपरीक्षा रास का विवरण राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रन्थसूची भाग ५ पृ० १२१ और भाग २ पृ० ७० पर भी उपलब्ध है। इस रचना का विवरण पं० परमानन्द ने अपने प्रशस्ति संग्रह पृ० ७४ पर भी दिया है। इससे प्रमाणित होता है कि उक्त रचना विशेष महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय रही है। लोगों का ध्यान वास्तविक धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए और लोगों को मूढ़ता के चक्कर से बचाने के लिए इन्होंने अपनी महत्वपूर्ण कृति धर्मपरीक्षा रास की रचना की थी। इसमें अमित गति द्वारा वर्णित धर्मपरीक्षा का सारांश सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस रास का विवरण डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने दिगम्बर जैन अग्रवाल मन्दिर, उदयपुर में सुरक्षित प्रति के आधार पर दिया है।

जिनवर स्वामी वीनती में २३ छन्द हैं। एक पंक्ति देखिये—

धन्य हाथ ते नर तणा जे जिन पूजन्त,
नेत्र सफल स्वामी हवां जे तुम निरषंत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिह्वादंत संवाद ११ छंदों की लघुकृति है। यह सरल भाषा में संवादशैली में रचित है, दो पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

> कठिन क बचन न बोलीयि रह्यां एकठा दोय रे,
> पंचलोका मांहि इम भणी, जिह्वा करे यने होयरे।[1]

वसंतविलास गीत में २२ छंद हैं जिनमें नेमिनाथ के विवाह का प्रसंग वर्णित है। यह एक सरस रचना है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने सुमतिकीर्ति का जो विवरण दिया है उसी के आधार पर डा० हरीश शुक्ल ने भी संक्षेप में इनका विवरण अपनी थीसिस में दे दिया है। वे भी इन्हें मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वती गच्छ के ज्ञानभूषण का शिष्य बताते हैं अन्य कोई नवीन सूचना नहीं देते।

सुमतिमुनि—ये तपागच्छीय हर्षदत्त के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६०१ कार्तिक शुक्ल ११ रविवार को अपनी रचना 'अगडदत्त रास' (१३७ कड़ी) पूर्ण की। आपने अपनी गुरुपरंपरा बताते हुए चन्द्रगच्छ के सोमविमलसूरि को नमन किया है और लिखा है—

> अगडदत्त मुनि तणइ चरित्र, भणतां गणतां हुइ पवित्र,
> पंडित हर्षदत्त सीस इम कहइ, भणइ गणइ ते सब सुख लहइ।

इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

> संवत सोल अेक काती मासी,
> सुमति भणइं मइ करिउ उल्हासी,
> शुक्ल इग्यारसि आदित्यवार,
> अे भणतां हुइ हरष अपार।

रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

> आदि जिणेसर प्रणमी पाय, समरुं सरसति सामिणि माय,
> करजोड़ी जइ मांगु मान, सेवकनइ देजे वरदान।

---

1. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० ११३-११७ और डा० हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कविओं की हिन्दी कविता को देन पृ० ९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुझ नामइं हुइ निरमल ज्ञान, तुझ नामइं वाधइ सविवान,
तुझ मुख सोहइ पूनिम चंद, जाणे जीह अमीनउ कंद।
× × ×
तुम्ह गुण कहइता न लहुं पार, सेवकनइ देजे आधार,
सारद नामिइ रचउ प्रबंध, सुणिज्यो अगडदत्त संबंध।[1]

काव्य की दृष्टि से रचना सामान्य कोटि की है और भाषा मरु-गुर्जर है।

सुमतिसागर—आप दिगम्बर परम्परा के भट्टारक अभयनन्दि के शिष्य थे और उन्हीं के साथ रहते थे। उनके स्वर्गवास के पश्चात् ये भट्टारक रत्नकीर्ति के साथ रहने लगे, अतः इन्होंने दोनों भट्टारकों के स्तवन में गीत लिखे हैं। इनके एक गीत के अनुसार भट्टारक अभयनन्दि सं० १६३० में भट्टारक गद्दी पर बैठे थे। वे आगम, काव्य, छन्द-शास्त्र और पुराण आदि के मर्मज्ञ थे, यथा—

संवत सोलसा त्रिस संवच्छर, वैशाख सुदी त्रीज सार जी,
अभयनन्दि गोरु पाट थाप्या, रोहिणी नक्षत्र शनिवार जी।
आगम, काव्य, पुराण, सुलक्षण, तर्क न्याय गुरु जाणे जी,
छंद नाटक पिंगल सिद्धान्त, पृथक पृथक बखाणे जी।[2]

सुमतिसागर की प्रायः दस रचनाओं का विवरण प्राप्त है, उनके नाम हैं: साधरमी गीत, हरियाल बेलि १ और २, रत्नकीर्ति गीति १ और २, अभयनन्दि गीत १ और २, गणधर वीनती, अझारा पार्श्वनाथ गीत और नेमिवंदना। नेमिवंदना की कुछ पंक्तियाँ नमूने के रूप में प्रस्तुत की जा रही हैं—

ऊजल पूनिम चन्द्र सम, जस राजीमती जगि होई,
ऊजल सोहइ अबला, रूप रामा जोई।
ऊजल मुखवर भामिनी, खाये मुख तम्बोल,
ऊजल केवलन्यान जानू, जीव भव कल्लोल।
ऊजल रूपानु भल्लु करि सूत्र राजुलधार,
ऊजल दर्शन पालती, दुखनास जय सुखकार।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० १८१-८२ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १०-११ (द्वितीय संस्करण)

२. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल---राजस्थान के जैन संत पृ० १९१

३. वही पृ० १९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूंकि इन्होंने अभयनन्दि और रत्नकीर्ति दोनों का शासनकाल देखा था। अतः इनका समय लगभग सं० १६०० से १६६५ तक के आसपास होना चाहिए। डा० हरीश शुक्ल ने भी इसी के आधार पर सुमतिसागर का संक्षिप्त परिचय अपनी रचना जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता के पृ० ८३-८४ पर दिया है।

सुमतिविजय—ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में श्री जिनराज सूरि सवैया एवं 'जिनराजसूरि गीतम्' शीर्षक से कुछ रचनायें जिनराजसूरि की स्तुति में संकलित हैं जिनके लेखक कविदास, सहजकीर्ति और सुमतिविजय हैं। सुमतिविजय का गीत इसमें छठां है। इसकी दो पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

श्री जिनराज सूरीसर गच्छ धणी रे,
मानी मझनी अे अरदास रे,
सुमतिविजय कहि चतुर्विध संघनी रे,
पूजजी सफल करउ हिव आस रे।[1]

रचना का काव्यगुण सामान्य है और भाषा सरल मरुगुर्जर है।

सुमतिसिन्धु (सिन्धुर)—आप मतिकीर्ति के शिष्य थे। आपने सं० १६९६ महासुद ८ को 'गोडी पार्श्वनाथ स्तवन' (२० कड़ी) की रचना की, जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

पुरुषादेय उदयकरु श्री गोडी प्रभुपास।

और अन्तिम पंक्तियाँ ये हैं—

संवत सोल छयाणवइ, माहा हे आठमि दीह उदार कि
भेटवा हे गोडीपास जी दुख भेटवा हे भवनासच्चा हे पारकि।
सेरीसइ संखेसरइ खंभनयरइ हे जगहथंभण पास कि,
ग्राम नगर पट्टण पुरइ रहेवा पूरइ हे निज भगतानी हे आसकि।[2]

इस रचना में कवि अपनी गुरुपरंपरा में केवल मतिकीर्ति का नामोल्लेख किया है, यथा—

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १७३

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३१३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इम आस पूरइ पास गउडी समरिउ सानिधि करइ,
शुभ वास खास निवास आपइ दुख दूरइ परिहरइ।
पाठक मतिकीरति प्रसादइ, सीस सुमतिसिंधुर कहइ,
जे करइ जात्रा भलइ भावइ मनवंछित फल ते लहइ।[1]

उपरोक्त उद्धृत अंश में कवि का नाम सुमतिसिंधुर दिया गया है। श्री अगरचन्द नाहटा भी यही नाम लिखते हैं किन्तु श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई इनका नाम सुमतिसिंधु या सुमतिसिंधुर दोनों लिखते हैं।

सुमतिहंस—आप खरतरगच्छ की आद्यपक्षीय शाखा के आचार्य जिनहर्ष सूरि के शिष्य थे। आपने गद्य और पद्य में पर्याप्त साहित्य लिखा है। गद्य में कल्पसूत्र बालावबोध और कालकाचार्य कथा की रचना की है। पद्य में मेघकुमार चौपाई सं० १६८६ पीपाड़, चौबीसी सं० १६९७ जयसेन लीलावती रास--विनोदरस सं० १६९१ जोधपुर, चंदनमलयागिरि चौपाई सं० १६११ ? बुरहानपुर, वैदरभी चौपइ सं० १७१३ जयतारण, रात्रिभोजन चौपइ सं० १७२३, जयतारण आदि की रचना आपने की है।[2] श्री मो० द० देसाई ने इन्हें खरतरगच्छीय जिनचन्दसूरि > हर्षकुशल का शिष्य बताया है। मेघकुमार चौपइ की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

संवत सोलइ सय छयासीयइ रे विजयदशमि सुप्रकाश,
राजइ श्री जिनचन्द सूरि राजवी रे षरतरगच्छ सिणगार।
वाणी सरस सुधारस उपदिसइ रे; इम गोयम अवतार,
तास सीस सदा गुणगणनिधि रे श्री हरष्यकुशल सुषकार।
वादीगन पंचानन सारि सारे रुपइ मदनकुमार
तास सीस लवलेस करी कहइ रे सुमतहंस मतिसार।
वामानंदन पास पसाहुलइ ने श्री पीपाडि मझारि,
सद्गुरु श्री जिनकुशल सूरीसनी रे सांनिधि संघ मझार,
परम प्रमोद उदय आणंद सुरे, नंदउ सहि परिवार।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ५७४-७५ (प्रथम संस्करण)
२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८८
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० २७५ (द्वितीय संस्करण) और भाग १ पृ० ५४६ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूजी—आप लोंकागच्छीय ऋषि रतनसी के शिष्य थे। आपने सं० १६४८ वैशाख कृष्ण १३ को तालनगर (मेवाड़) में 'श्री पूज्य रत्नसिंह रास' की रचना की जिसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

सरसति सामणि द्यउ मति माय,
हंसगमणि गति आपयो भाय।
गूण गीरुयां तणां गायस्यूं गुपति अक्षर आठायो ठाय तु,
गुणरतनागर गायसुं।

× × ×

संवत सोल अड़तालि जी जाणि,
मास विसाख ते सगूण वखाणि।
तिहां वदि तेरस जांणयो,
रतनसी ऋषि धर्यो संयमभार तु।

संभवतः यह तिथि रतनसी के दीक्षा के समय की है। यदि इसी अवसर पर यह रास रचा गया हो तो इसका यही रचनाकाल भी होगा। श्री मोहनलाल देसाई ने यही इसका रचनाकाल माना है। रचना स्थान आगे इन पंक्तियों में बताया गया है—

तालनगर मेवाड़ मझारि प्रतपि जी संघलराव खेंगार,
सेवक सूजी वीनवइ, रच्यउ रास अतिहि सुखकार।

इसकी अन्तिम (४४वीं) कड़ी इस प्रकार है—

संघ चतुविध दीय छी असीस,
रतनसी जीवज्यो कोडि वरीस।
कोड्या तो ऊपरि जाणयो,
अनुक्रमि वसयो मुगति मझारि।[1]

सूरचन्द गणि—आप खरतरगच्छीय जिनसिंह सूरि>चारित्रोदय >वीरकलश के शिष्य थे। श्री अगरचन्द नाहटा ने इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक परिचयात्मक लेख जैनसिद्धान्त भास्कर में प्रकाशित किया है। उससे पता चलता है कि आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एवं राजस्थानी के अच्छे विद्वान् थे। आपने संस्कृत में स्थूलिभद्र

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४६ (द्वितीय संस्करण) और भाग ३ पृ० ७८९-९० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणमाला चरित्र नामक महाकाव्य सं० १६८० सांगानेर में लिखा। पंचतीर्थी श्लेषालंकार चित्रकाव्य और शान्तिलहरी आदि काव्यकृतियों से इनकी विद्वत्ता एवं कवित्वशक्ति का परिचय मिलता है। जैनतत्व-सार की स्वोपज्ञ टीका आपकी प्रकाशित संस्कृत रचना है। गद्य में आपने चौमासी व्याख्यान या चातुर्मासिक व्याख्यान बालावबोध सं० १६९४ में लिखा था। पदैकविंशति नामक संस्कृत रचना में प्रसंगानुसार मरु-गुर्जर में लिखे कई सुन्दर वर्णनात्मक स्थल मिलते हैं।

मरुगुर्जर पद्य में आपने शृङ्गार रसमाला सं० १६५९ नागौर, जिनसिंहसूरि रास सं० १६६८, जिनदत्तसूरि गीत और वर्ष फलाफल संज्झाय आदि लिखे हैं।[1] रचनाओं की सूची से स्पष्ट हो गया होगा कि आप संस्कृत और मरुगुर्जर के गद्य और पद्य में रचना करने में प्रवीण थे। आगे आपकी कुछ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय एवं उद्धरण दिया जा रहा है। शृङ्गार रस माला (४१ गाथा) सं० १६५९ वैशाख शुक्ल ३, बुधवार को नागौर में लिखी गई। इसका रचनाकाल कवि ने इस प्रकार सूचित किया है—

नव सर रस ससि वछरइ, आखतीज बुधवार,
नागपुरइ सिंगार रस माला गूंथी सार।
हीरकलस आग्रहकरी, चतुरारंजण चाह,
सूरचंद इणपरिकहइ, आणी अधिक उछाह।[2]

जिनसिंहसूरि रास— (६५ कड़ी) सं० १६६८ से पूर्व रचित रचना का आदि—

श्री शांतिसर सेवयइ, सोलमजिनवरसार,
चक्कीसरपंचमप्रगट सयलसंघ सुखकार।
वाग्वाणी वर सरसती समरी सद्गुरु पाय,
श्री बड़खरतरगच्छ धणी युगवर जिणचंदराय।
तास सीस सोभागनिधि सुगुणसिरोमणिसार,
श्री जिनसिंहसूरीस गुरु सेवक सुखदातार।
तास गुरु गुण गाइसुं करिस्युं कवित कल्लोल,
अेकमनां थइ सांभलउभगतिइं भवियण रोल।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८१

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८९०-९१ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तिम—तां लगि श्री जिनसिंह गुरु अे, चिरजीवउ जयवंत,
चारित्र उदय वाचकवरु अे, तास सीस गुणवंत,
वीर कलस गणि सुन्दरु अे, पदकंज मधुकर तास,
सूरचंद गणि इम भणइअे श्रीसंघ पूरइ आस।[1]

श्री जिनसिंहसूरि पर अनेक प्रशस्तिगीत समयसुन्दर, राजसमुद्र, हर्षनन्दन आदि ने लिखे हैं, जिनमें से कुछ ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित हैं। आपके जिनसिंह रास और जिनदत्त गीत में इन सूरियों से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक महत्व की सूचनायें उपलब्ध हैं। इस प्रकार आपने साहित्यिक एवं साम्प्रदायिक दृष्टियों से उत्तम रचनायें संस्कृत और मरुगुर्जर भाषाओं में गद्य तथा पद्य में लिखकर साहित्य तथा सम्प्रदाय की उत्तम सेवा की है।

सोमविमलसूरि—आप तपागच्छीय हेमविमलसूरि के प्रशिष्य एवं सौभाग्यहर्ष सूरि के शिष्य थे। आप तपागच्छ के ५८वें पट्टधर थे। आपका जन्म खंभात निवासी समधर मंत्री के वंशधर रूपवंत की पत्नी अमरादे की कुक्षि से हुआ था। आपका जन्म नाम जसवंत था। सं० १५७४ वैशाख शुक्ल ३ को आपने हेमविमलसूरि से दीक्षा ली थी। सौभाग्यहर्षसूरि ने इन्हें सिरोही में पंडित और बीजापुर में उपाध्याय की पदवी प्रदान की। सं० १५९७ में आचार्य एवं सं० १६०५ में आपको खंभात में गच्छनायक का पद प्रदान किया गया। इसी अवसर पर इनके शिष्य आनन्द सोम ने 'सोमविमलसूरि रास' लिखा जो ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है। उसी के आधार पर यह विवरण दिया गया है।

आपने मरुगुर्जर में पर्याप्त साहित्य लिखा जिनमें से कुछ प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त परिचय एवं उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है। आपका जन्म और कुछ कृतियों की रचना १६वीं शताब्दी में ही हो चुकी थी। इसलिए आपका संक्षिप्त विवरण १६वीं शताब्दी में ही दिया जा चुका है।

श्रेणिकरास, धम्मिलरास, चंपकश्रेष्ठिरास और छुल्लककुमाररास के उद्धरण-विवरण दिए जा चुके हैं। यहाँ केवल उन कृतियों के विवरण दिए जा रहे हैं जिन्हें प्रथम खण्ड में छोड़ दिया गया था।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८९०-९१ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमरगिरि मंडण श्री शांतिनाथ स्तवन (३८ कड़ी)

आदि　　सरस वचन दिउ सरसती, सन्ति जिणेसर राय,
　　　भगतिइं भाखुं वीनती, पामी श्री गुरुपाय।[1]

अंत　　सा(ड)त्रीसे दूहे करी, वीनविऊ अंति जिणंद,
　　　श्री सोमविमलसूरि इम भणइ, कुमरगिरिइं आणंद।

पट्टावली संज्झाय सं० १६०२ में लिखी गई जो पट्टावली समुच्चय भाग २ में प्रकाशित है। जैन साहित्य में नेमिचरित इतना आकर्षक है कि इस विषय पर प्रत्येक कवि कुछ न कुछ लिखे बिना नहीं रह पाता। आपने भी ९ कड़ी की एक छोटी रचना 'नेमगीत' नाम से लिखी है। उसकी कुछ पंक्तियाँ देखिये—

कपूर हुइ अति निरमलु रे, वलीय अनोपम गंध,
तुहि मन भणी रे मिरीयां सरीखु वंध रे।
जेहनइ जेह सुरंग ते ते शुं करइसंग,
तेहनइ गमइ बीजु चंगरे।

अंत　　राजीमती सखी प्रति कहइ रे जुकालु नेमिनाथ,
　　　तुहिमओ आदयुं रे भविभवि अेहनु साथ रे।
　　　राजुल उजलिगिरिमिली रे पुहुतां मननां कोड,
　　　सोमविमळ सूरि इमभणइ अेनु अविहड जोडिरे।[2]

श्रेणिकरास की अनेक प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। दिगम्बर जैनमन्दिर बड़ा बीसपंथी, दौसा की प्रति में रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

भुवन अकाश हिमकिरण मा, सं० १६०३ इणि अहिनाणि सु,
भादव मास सोहामणइ ए मा पड़े विच चडिउ प्रमाणि।[3]

---

१. डा० शिति कण्ठ मिश्र—आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य का वृहद इतिहास खंड १ पृ० ५२७
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३५९-६० (द्वितीय संस्करण) एवं भाग २ पृ० २ से ९ (द्वितीय संस्करण) भाग १ पृ० १८३-१८८ तथा ६०२, भाग २ पृ० ५९३ और भाग ३ पृ० ६४८-५२, भाग ३ खंड २ पृ० १५९६ (प्रथम संस्करण)
३. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ६४३-४४

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सोमविमलसूरि शिष्य— सोमविमलसूरि के इस अज्ञात-नाम शिष्य ने सं० १६३७ से पूर्व सम्भवतः सं० १६१८? माह शुक्ल ५ पाटण में अमरदत्त मित्रानन्द रास (४०२ कड़ी) की रचना चौपइ और दूहा में की है। सोमविमलसूरि का स्वर्गवास सं० १६३७ में हुआ था, अतः यह रचना उससे पूर्व की ही होगी। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

शांति जिनवर शांति, जिनवर पाय प्रणमेव
पंचम चक्रवर्ति जांणीइ, सोलसमो कहि जिणेसर,
सहि गुरुसेव निति करू', धरू' रीदय सरसतिनिरंतर।
कर जोड़ीनी वीनवुं दीउ मुझ वचन विलास,
अमरदत्त मित्रानंदनो, सुण्यो भवियण रास।

अन्त श्रावक व्रत पालि खंरा पांमि सरगनी वास,
शांतिनाथ नाचरित थकी, कीधो छि ए रास।

रचनाकाल-संवत इंदुरस जाणीयइ, दिन वसुबे सार,
माघ सुकल पंचमी, भरतदीप जाणो उदार।

गुरुपरंपरा–तपगछ नायक दीपतो, श्री सोमविमल सूरिंद,
रूपिजीतो रतिपति, मुख जासो पूनिमचंद।[1]

सौभाग्यहर्ष सूरि शिष्य—सौभाग्यहर्ष सूरि के इस अज्ञात-नाम शिष्य ने श्रीगच्छ नायक पट्टावली संज्झाय अथवा सोमविमलसूरि गीत (५१ गाथा) सं० १६०२ ज्येष्ठ शुक्ल १३ को लिखा। सौभाग्यहर्ष सूरि के शिष्य सोमविमलसूरि ने भी सं० १६०२ में पट्टावली संज्झाय लिखा है। रचनाओं के नाम और रचनाकाल की एकता को देखते हुए यह शंका निराधार नहीं है कि संभवतः ये दोनों एक ही रचना हों। आवश्यकता थी कि दोनों का मूल पाठ मिलाया जाता किन्तु सोमविमलसूरि कृत पट्टावली संज्झाय से कोई उद्धरण भी उपलब्ध नहीं हो पाया, अतः प्रस्तुत रचना का प्राप्त उद्धरण देकर ही सन्तोष करना पड़ रहा है। इसका आदि इस प्रकार है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७१८-१९ (प्रथम संस्करण) एवं भाग २ पृ० १११-११२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरसति दुमति मुझ अति घणी, हुं छउं सेवक निज तेह भणी,
गाइसु वीर जिणेसर पाट, जासु नाम हुई गहगाट।

अन्त- संवत सोल वीडोत्तरि अे रची पट्टपरंपरा,
वर जेठ मासि मन उल्लासि, तेरसि ससि सुखकरा।[1]

सौभाग्यमंडन—आप तपागच्छीय विनयमंडन के शिष्य थे। विनयमंडन के एक अन्य शिष्य जयवंत सूरि या गुणसौभाग्यसूरि हुए जिनके सम्बन्ध में श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ के भाग १ पृ० १९३-९८ और भाग ३ पृ० ६६६ से ६७२ पर विवरण दिया है। आपकी गुरुपरंपरा इस प्रकार है—विद्यामंडन > जयमंडन > विवेकमंडन > रत्नसागर > सौभाग्यमंडन। विनयमंडन पाठक या उपाध्याय थे न कि पट्टनायक। सं० १५८७ वैशाख वदी ६ रविवार को कर्माशा ने शत्रुंजय पर ऋषभनाथ और पुंडरीक की मूर्तिप्रतिष्ठा कराई थी उस प्रतिष्ठा महोत्सव में विनयमंडन पाठक भी उपस्थित थे। इनके शिष्य विवेकधीर गणि और जयवन्तसूरि प्रसिद्ध थे। जयवन्त सूरि ने गुर्जर में श्रृंगारमंजरी की रचना सं० १६१४ में की थी। इसका विवरण यथास्थान दिया जा चुका है।

सौभाग्यमंडन ने सं० १६१२ में 'प्रभाकररास' लिखा जिसकी निम्न पंक्ति से प्रकट होता है इसके रचयिता महिराज हैं, यथा—

तेह तणइ सानिधि करी कहइ पंडित महिराज।

ऐसी स्थिति में श्री मो० द० देसाई ने इसे सौभाग्यमंडन की रचना क्यों बताया ? जैन गुर्जर कविओ (द्वितीय संस्करण) के सम्पादक ने भी इस शंका का समाधान करने का प्रयत्न नहीं किया है।[2]

संयममूर्ति—आप विनयमूर्ति के शिष्य थे। आपने सं० १६६२ से पूर्व 'उदाई राजर्षि सन्धि' की रचना की जिसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६४७ प्रथम संस्करण) एवं भाग २ पृ० २-११ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग ३ पृ० ६७५ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ६६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदाय मुनिवर गुण निति मतिधरइ,
साधु सुश्रावक सुषते अणुसरइ।
अणसरइ बहु सुष तेह अहनिसि जे रिषि गुण गावइ,
श्री वीर वाणी खरी जाणी ध्यायइ ते सुष पावइ।
उवझाय श्री विनयमूरति सीस संजिम इम कहइ,
जे भणइ भावइ रिदय पावइ सयल सुख सम्पति लहइ।[1]

आपकी एक अन्य रचना २४ जिन वृहत्तस्व (चौबीसी) का भी उल्लेख मिलता है। आप सोमसुन्दर > विशालराज > मेघरत्न के शिष्य और 'उपदेशमाला विवरण' के कर्त्ता संयममूर्ति से भिन्न हैं जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है।

संयमसागर—आप भट्टारक कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। आपका निश्चित समय ज्ञात नहीं है। आप ब्रह्मचारी और कवि थे। काव्य-रचना में अपने गुरु की सहायता भी करते थे। इनके कई पद और गीत उपलब्ध हैं जो साम्प्रदायिक इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। आपने भट्टारक कुमुदचन्द्र गीत, पद (आवो साहेलडी रे सहूमिलिसंगे), पद (सकल जिन प्रणमी भारती समरी), नेमिगीत, शीतलनाथ गीत और गुरावली गीत आदि की रचना की है। इन रचनाओं का विवरण और उद्धरण नहीं प्राप्त हो सका है परन्तु यह निश्चित है कि आप १७वीं शताब्दी (विक्रमी) के कवि और जैन साधु थे।[2]

हरजी—बिवदणिक गच्छ के सिद्धसूरि >क्षमारत्न > लक्ष्मीरत्न आपके गुरु थे। आपने सं० १६२४ (४४) आसो शुक्ल १५ को उर्णाक नगर में 'भरडक बत्तीसी रास' लिखा। कवि ने इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया है जिससे सं० १६२४ और १६४४ दोनों अर्थ घटित हो सकते हैं, यथा—

वेद युग रस चंद्र स्युं अे संवत्सर जोइ,
वाम गति गणयो सहू अंकतणीपरि सोइ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४६२ और भाग ३ पृ० ९३८ (प्रथम संस्करण) तथा भाग ३ पृ० ३-४ (द्वितीय संस्करण)

२. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत पृ० १९२-१९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें युग का अर्थ 'दो' और चार दोनों लग सकता है क्योंकि सतयुग आदि चार युग माने जाते हैं। अतः २४ और ४४ दोनों वर्ष हो सकते हैं। स्थान और गुरुपरंपरा से सम्बन्धित पंक्तियाँ देखिये—

> नयर उणाक मांहि उल्हासि, मोडिभंजण जिणेश्वर पास,
> विवदणीक गछ गिरुओ सार, श्री सिद्धसूरि गुरु गुणभंडार।
> तास सीस सूर समान, वाचक लक्ष्मीरत्न अभिधान।
> कर जोड़ी कहे तेहनो सीस, सुणयो अेह कथा निसदीस।

कवि की संस्कृत भाषा में भी गति मालूम पड़ती है। ८३वीं कड़ी के पश्चात् एक परंपरित श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ रखा गया है—

> यदक्षर पदभ्रष्टं स्वरव्यंजन वर्जितं,
> तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर।
> तं माता तं पिता चैव तं गुरुं तं च देवता,
> विद्यादान प्रदानाय पंडिताय नमोनमः।

इसके प्रारम्भ की कड़ियाँ इस प्रकार हैं—

> प्रणम्य देव देवस्य श्री गुरुश्च तथा श्रुतं,
> द्वात्रिंशत भरटकानां कर्तव्यं कौतुकान मया।

इसके बाद यह दूहा है—

> कमलनंदन तस सुता, प्रणमूं तेहना पाय,
> जिम मुझ मनवंछित फलो, आपे अचल पसाय।

अन्त की चौपाई इस प्रकार है—

> भरडक बत्तीसी कथा अे जाणि, अेतले पूर्णबत्रीस वखाणि।
> मुनिवर हरजी कहे मनरंगे, भणतां सुणतां आणंद अंगे।[1]

'विनोद चौत्रीसी कथा अथवा रास' २४ कथा (१९०० कड़ी) सं० १६४१ आश्विन शुक्ल १५ गुरुवार को लिखी गई। इसका आदि इस प्रकार है—

> पास जिणवर पास जिणवर पाय प्रणमेव,
> आस पूरि सहुको तणी; बुद्धि सिद्धि नव निधि आपि,
> त्रिभोवनतारण अे सदा कृपाकरी सेवक निज थापि।

---

१ जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७११-१६ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १३९-१४४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि विश्वासपूर्वक कहता है कि वैसे सिंहासन बत्तीसी आदि अनेक कथायें हैं, किन्तु इस विनोद कथा ऐसी सरस अन्य कोई कथा नहीं है, यथा—

शुक बहुत्तरी कथा अछी, नीतिशास्त्र वली जाणि,
कथा वली वेतालनी, भारथकथाबखाणि।
सिंहासन बत्रीसी जोइ, अनेक अवर कथा वली होइ।
विनोद कथा सरखी को नहीं, जे सुणतां सुख उपजी सही।

रचनाकाल—सुणयो कथा रची छी जेह, मास संवच्छर कहुं सवि तेह,
चन्द्र वेद रस अेक होय, अश्वन मास मनोहर जोय।
तिथि पूनम अनि गुरुवार, नक्षत्र अश्विनी आव्यु सार।
तिणि दिन रची चुपइ अेह, सुणतां दुर्मति नाठी छेह।[1]

गुरुपरंपरान्तर्गत कवि ने सिद्धसूरि और लक्ष्मीरत्न के बीच क्षिमारत्न का भी उल्लेख किया है, यथा—

छिमारत्न ते पंडित जाणि, दिन प्रति हुं करुं प्रणाम,
जयवंत विचरे तस सीस, वाचक लक्ष्मीरत्न जगीस।

इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

दूहा गाथा श्लोक चुंपइ, शत ओगणीशनि भाजनि थइ।
सुणतां श्रवणे संकट टली, भणतां नवनिधि आवी मली।
विनोद चुत्रीसी अेह जे कथा, कहि कविता अछें जे यथा,
मुनिवर हरजी कहि मनशुद्धि, भणतां सुणतां लहीइं बुद्धि।[2]

हरषजी—आपने सं० १६३९ से पूर्व 'पुण्यपापरास'[3] नामक काव्य ग्रन्थ रचा। इस रचना का विवरण-उद्धरण प्राप्त नहीं है।

हरिफूला—आपकी एक रचना 'सिंहासन बत्तीसी' दिगम्बर जैन खंडेलवाल तेरह पंथी मंदिर दौसा से प्राप्त हुई है। यह रचना सं० १६३६ में की गई। इसका मंगलाचरण देखिये—

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १३९-१४४ (द्वितीय संस्करण)
२. वही
३. वही भाग १ पृ० २४० (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १७५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आराही श्री रिषभप्रभु जुगलाधर्म निवारि,
कथा कहों विक्रमतणी जास साकउ विस्तार।
सावयो वरत्यौ दानथीद्यन बड़ौ संसारि,
वलि विशेष जिण सासणो बोल्या पंच प्रकार।

प्रशस्ति श्री खरतर रे गुणहर गुरु गोयम समो,
नित उठि रे श्री जिनचंद्र सूरि पय नमौ।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि खरतरगच्छीय जिनचन्द्र का भक्त है किन्तु यह स्पष्ट नहीं कि उनका ही शिष्य है या किसी अन्य का। इसमें रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है--

संवत सोलह सौ छत्तीस से बीस आसू वदि कथा,
तिहि कहिय सिंघासन बत्रीसी कही हरि सुणी जथा।[1]

हर्षकीर्ति--आप राजस्थान के जैनसन्त और आध्यात्मिक कवि थे। आपने राजस्थान में अधिकतर विहार किया और वहाँ की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागृति में योगदान किया। आपने मरुगुर्जर में कई रचनायें की हैं जिनमें 'चतुर्गति बेलि' अत्यधिक लोकप्रिय रचना है। यह रचना सं० १६८३ में की गई। इसके अतिरिक्त आपने नेमिराजुल गीत, नेमिश्वर गीत, मोरडा, कर्महिण्डोलना, पंचगति वेलि आदि कई अन्य आध्यात्मिक एवं सरस रचनायें भी की हैं। इनके लिखे कुछ स्फुट पद भी प्राप्त हैं जो अभी तक अप्रकाशित हैं। आपने सं० १६८४ में 'त्रेपनक्रिया रास'[2] लिखा। 'छह लेश्या कवित्त'[3] नामक इनकी अन्य प्राप्त रचना के सम्बन्ध में डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने लिखा है कि यह काव्यगुण सम्पन्न है और प्रस्तुत हर्षकीर्ति कवि बनारसीदास के समकालीन थे। राजस्थान के शास्त्र भंडारों में इनकी कृतियाँ अच्छी संख्या में मिलती हैं जिनसे इनकी लोकप्रियता का अनुमान होता है। इनकी गुरुपरंपरा और इनकी कृतियों का उद्धरण उपलब्ध नहीं हो पाया, फिर भी जो थोड़ा विवरण प्राप्त है, वह आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल--राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची भाग ५ पृ० ५०३

२. वही 'राजस्थानी पद्य साहित्यकार' राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २०९

३. वही राजस्थान के जैन सन्त पृ० २०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचगति बेलि (सं० १६८३) इसमें पाँच इन्द्रियों से सम्बन्धित विषयों का वर्णन किया गया है जिनमें फँसकर जीव निगोद में जाता है, अतः उसका कर्त्तव्य है कि वह इन्द्रियों का दास न बनकर भगवान में ध्यान लगाये, इसकी प्रति पंचायती मन्दिर दिल्ली और दिगम्बर जैन मन्दिर जयपुर में उपलब्ध है। 'नेमिराजुल गीत' में कुल ६८ पद हैं। 'मोरडा' में भी नेमिराजुल को आधार बनाकर भगवत् विषयक रति का वर्णन किया गया है। इसका आदि देखिये—

म्हारो रे मन मोरडा तू तो गिरनार या उठि आय रे,
नेमिजी स्यों यूं कहिज्यो राजमती दुक्ख ये सौ से।

अन्त मोक्ष गया जिण राजइ प्रभुगढ़ गिरनारि मझार रे,
राजल तौ सुरपति हुवौ स्वामी हर्षकीर्ति सुकारौ रे।[1]

नेमिश्वर गीत में ६९ पद्य हैं। यह भी नेमि की भक्ति में रचित गीतकाव्य है। बीस तीर्थंकर जखड़ी और चतुर्गति बेलि की प्रतियाँ वधीचन्द दिगम्बर जैन मन्दिर जयपुर में उपलब्ध है। 'कर्म हिंडोलना' में १८१ पद्य हैं। इसकी प्रति भी दिगम्बर जैन मन्दिर जयपुर में है। छह लेश्या कवित्त और भजन व पदसंग्रह की प्रति लूणकरजी मन्दिर जयपुर में गुटका नं० १८ में निबद्ध है। इनकी रचनाओं की संख्या पर्याप्त है और वे लोकप्रिय भी हैं अतः आप अच्छे सन्तकवि रहे होंगे पर आपकी रचनाओं के विस्तृत उद्धरण नहीं उपलब्ध हो सके।

हर्षकीर्ति सूरि—नागौरी तपागच्छीय रत्नशेखर की परंपरा में जयशेखर > सोमरत्न > राजरत्न > चन्द्रकीर्ति के आप शिष्य थे। ये चन्द्रकीर्ति बागड की भट्टारक गादी से सम्बन्धित भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य चन्द्रकीर्ति से भिन्न हैं। इन्हीं चन्द्रकीर्ति सूरि के शिष्य हर्षकीर्ति सूरि हैं जो इससे पूर्व वर्णित स्वामी हर्षकीर्ति से भिन्न हैं। आपने अपने गुरु के नाम पर सारस्वत व्याकरण की टीका, नवस्मरण की टीका, सिन्दूर प्रकर टीका, शारदीय नाममाला कोश, धातुतरंगिणी, योगचिन्तामणि,[2] वैद्यकसारोद्धार, वैद्यकसार संग्रह, श्रुतबोध वृत्ति और बृहत् शांतिवृत्ति आदि अनेक ग्रन्थ संस्कृत में लिखे हैं जिनसे

१. डॉ० प्रेम सागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १७४-१७६
२. डॉ० अगरचन्द नाहटा—राजस्थान का जैन साहित्य पृ० ५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपका संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी (मरुगुर्जर) भाषाओं का ज्ञान तथा काव्य, शास्त्र, वैद्यक आदि विषयों के गम्भीर अध्ययन का अनुमान होता है।

मरुगुर्जर में आपने 'विजयशेठ विजया शेठाणी स्वल्प प्रबन्ध' नामक २४ कड़ी की एक रचना की है जो संज्झायमाला (लल्लूभाई) और 'प्राचीन स्तवन संज्झाय संग्रह' में प्रकाशित है। इसमें कवि ने गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई है—

नागोरि तपगछ आचारज सूरिराय,
श्रीचन्द्रकीरति सूरि प्रणमुं तेहना पाय,
श्री हर्षकीर्ति सूरि पभणे तास पसाय।[1]

इसका प्रारम्भिक पद्य निम्नांकित है—

प्रह उठी रे पंच परमेष्ठि नमउ,
मन सुध्ये रे तेहने चरणे हुं नमुं।
धुरि तेहने रे अरिहंत सीद्ध बखाणीई,
आचारज रे उपाध्याय मन आणीई।

अन्त—(कलश)

इम कृष्णपक्षे शुक्लपक्षे जेणि शियल पाल्यो निरमलो,
ते दंपतिना भाव शुद्धे सदा शुभगुण सांभलो।
जेम दुरित दोहग दूरि जाय सुख थाये बहुपरे,
सकल मंगल मनह वंछित कुशल नित्य घरे अवतरे।[2]

आप कवि से अधिक टीकाकार और विविध शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् सूरि थे। मरुगुर्जर में आपकी किसी अन्य रचना का उल्लेख नहीं मिलता।

हर्षकुशल—आप खरतरगच्छीय समयसुंदर के प्रशिष्य एवं मेघविजय के शिष्य थे। आपने सं० १६६० से 'बीशी' की रचना

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४६९-७०, भाग ३ पृ० ९४४ (प्रथम संस्करण) भाग ३ पृ० ११६-१८ (द्वितीय संस्करण)

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की।[1] आपकी दूसरी प्राप्त रचना सीमंधर स्तवन की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

चंदलिया जिण जी सुं कहे मोरी वंदणा रे
जिणवर, जंगम सीमंधर सामी रे,
चित थी तउ एक घड़ी नवि वीसरे रे,
मुझ राति दिवसि जासु नाम रे। चंदलिया

अंत विहरमाण जिण वीसमउ रे,
श्री देवरिध्धि इण नामि तूं जप जप जिणवर अे,
हरषकुशल गणि वीनवइ अे तूहि ज देव प्रमाण।[2]

इसके अन्त में तर्ज के लिए कवि ने बताया है—

२०मा देवर्द्धि जिन स्तव। कुमर भलइं आवीयउ अे ढाल।

हर्षनंदन –आप खरतरगच्छीय महोपाध्याय समयसुन्दर के शिष्य सकलचन्द के शिष्य थे। आप अपने समय के विशिष्ट विद्वान्, कवि और साहित्यकार थे। आप शास्त्रार्थ में परमनिष्णात् थे अतः 'वादी' उपाधि से विभूषित थे। आपने संस्कृत उत्तराध्ययन ऋषिमंडल आदि ग्रन्थों की बृहत्-टीकायें लिखी हैं और मध्यान्य व्याख्यान पद्धति आदि मौलिक ग्रन्थ भी रचे हैं। मरुगुर्जर में आपके अनेक स्तवन एवं गीतादि प्राप्त हैं जिनमें से कुछ 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में संकलित-प्रकाशित हैं, आपके अनेक शिष्य विद्वान् और साहित्यकार थे जैसे जयकीर्ति और प्रशिष्य राजसोम, समयनिधान आदि।

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के २५ वें क्रमांक पर 'श्री जिनचंदसूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत ३१ वीं रचना धन्याश्री राग में निबद्ध हर्षनन्दन कृत एक गीत है जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७९
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०३९ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २८० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो सूरि जिणचंद दादा सदा दीपतउ,
दीप तउ दुरजण जण विशेष,
रिद्धि नवनिद्धि सुखसिद्धि दायक सही,
पादुका प्रह समय उठि देख।

अन्त हर्षनन्दन कहइ चतुःविध श्रीसंघ,
दिनदिन दौलति एम दीजइ,

इसमें कुल ४ कड़ी हैं। गीत गेय और सरल भाषा में निबद्ध है। इसी संकलन में २७ वें क्रम पर 'श्री जिनसिंह सूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत ११ वाँ, १२ वाँ गीत भी आपका ही है। ११ वाँ गीत है गच्छपति पद प्राप्ति गीत। यह जिनसिंह सूरि के गच्छ पद प्राप्ति से सम्बन्धित सूचनायें देता है। १२ वाँ निर्वाण गीत ढाल निलंदरी में १२ कड़ी का है। अपने गुरु समयसुंदर उपाध्याय की वंदना में भी वादी हर्षनन्दन ने कई गीत लिखे हैं जो श्री समयसुंदर उपाध्यानां गीतम् शीर्षक के अन्तर्गत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के पृष्ठ १३७ पर संकलित हैं। उनमें से प्रथम गीत का प्रारम्भ देखिये—

साचा साचो रे सद्गुरु जनमिया रे रुपसी जीरानंद,
नवयौवन भर संयम संग्रह्यौ जी सइं हथ श्री जिनचंद।

महोपाध्याय समयसुन्दर लाहौर में अपने पांडित्य और काव्य कौशल से अकबर को प्रसन्न करके वाचक पदवी प्राप्त किया था उसका उल्लेख निम्न पंक्तियों में है, यथा——

लाहाउर अकबर रंजियो रे आठलाख अरथ दिखाड़
वाचक पदवी पण पामी तिहां रे, परगड वंश पोरवाड़।

यह सात कड़ी की रचना है। इसकी अन्तिम कड़ी इस प्रकार है—

वाल्हो लागे चतुर्विध संघने रे सकलचंद गणि सीस,
वडवरवती वादी सदा रे, हर्ष नंदन सुजगीस।

इसके अलावा इसी संग्रह में जिनसागर सूरि अवदात गीत नाम से पाँच गीत हर्षनंदन कृत संकलित हैं। एक गीत की दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं——

नान्हा मोटा क्युं नहीं गुण अवगुण वंधाण,
जिणसागर सूरि चिरजयउरे, हर्षनंदन गुण जाण।[1]

१. ऐतिहासिक काव्यसंग्रह पृ० २०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार आपने खरतरगच्छीय आचार्य जिनचंद सूरि, जिनसिंह सूरि, समयसुन्दर और जिनसागर आदि के प्रति इन गीतों द्वारा अपनी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति बड़े कुशल ढंग से की है।

हर्षकुल--ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह में संकलित महोपाध्याय पुण्यसागर गुरुगीतम् छह छंदों की छोटी रचना राग सूहब में निबद्ध है। इसकी कुछ पंक्तियाँ भाषा के नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं--

विमलवदन जसु दीपतउ, जिमपूनमनउचंदजी,
मधुर अमृत रस पीवता, थाइ परमाणंदजी।[1]

अन्त श्री जिनहंस सूरि सरइ सइ हथि दीखिय शीस जी,
हरषी हरषकुल इम भणइ गुरु प्रतपउ कोडि वरीस जी।

पुण्यसागर जिनहंस सूरि के शिष्य थे और उन्होंने सं० १६०४ में 'सुबाहु संधि' नामक रचना की थी अर्थात् पुण्यसागर १७वीं शताब्दी के प्रथम चरण के विद्वान् आचार्य थे। अतः उनके शिष्य हर्षकुल भी इसी के आस-पास विद्यमान रहे होंगे। श्री मो० द० देसाई ने हर्षकलश को हर्षकुल बताया है। हर्षकलश हेमविमलसूरि के प्रशिष्य एवं कुलचरण के शिष्य थे और सं० १५५७ में बसुदेव चौपई लिखी थी। प्रस्तुत हर्षकुल ने इस गीत में स्वयं को जिनहंस का प्रशिष्य और पुण्यसागर का शिष्य बताया है अतः ये दोनों (हर्षकलश और हर्षकुल) एक नहीं हो सकते। इनकी कोई अन्य रचना मेरे देखने में नहीं आई।

हर्षरत्न--तपागच्छीय राजविजयसूरि > हीररत्नसूरि > लब्धिरत्नसूरि > सिद्धिरत्न के शिष्य थे। आपने सं० १६९६ विजयादशमी गुरुवार को १८३ कड़ी की रचना 'नेमिजिनरास' अथवा 'वसंतविलास' को पूर्ण किया जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

सकल जिनमन माह धरुं, करुं सद्गुरुनइ हुं प्रणाम रे,
ऋषभाजित संभवाभिनंदन, सुमति पद्मप्रभ गुणधाम रे।
नेमिजी जिन गुण गाइइ पाइइ परमानन्द हो।
नेमजी वसंत विलास रचुं, जिमहोइ हर्ष आणंद हो। नेमजी जिन--

१. ऐतिहासिक काव्य संग्रह पृ० २०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना काल—संवत सोल कला जसा निर्मला तम्ह गुणसार,
ग्रह आगलि वली रस जाणीइं विजयादसमी गुरुवार।
अे संवत्सर रास रच्युं हृदि धरि हर्ष अपार,
श्री राजविजय सूरीश्वर करुं संघनी जयजयकार।

रास के अन्त में गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई गई है—

श्री नेमि जिनवर सकल सुखकर ! भवभावठि दूरि करो,
श्री रत्नविजय सूरींद पाटि, श्री हीररत्न सूरीश्वरो।
तास शिष्य शिरोमणि लबधिरत्न सिद्धिरतन हरषकरो,
तास शिष्य हर्षरतन इम कहि नेमिजिन मंगलकरो।[1]

हर्षराज—पूर्णिमागच्छीय उदयचन्द्रसूरि के शिष्य मुनिचंद्रसूरि हुए हैं, उनके शिष्य विद्याचन्द्र थे। इन्हीं विद्याचंद्रसूरि के शिष्य लब्धिराज के आप शिष्य थे। आपने सं० १६१३ ज्येष्ठ शुक्ल २ शनिवार को मरुगुर्जर भाषा शैली में 'सुरसेनरास' नामक काव्य की रचना अहमदाबाद में की। इसका आदि इस प्रकार है—

पास जिणेसर धुरि प्रणमीने, प्रणमी श्री गुरुपांय रे,
सुविह संघ पसायलहीने, गायसु क्षत्रीयराय रे।
सुरसेन नामे ते जांणु दया विषइ जस भाव रे,
दया थिकी सवि वंछित लहीइ, जाइ भवना पाव रे।

गुरुपरम्परा—पूनिमपक्षि गिरुआ गछनायक श्री उदयचंद सूरींद रे,
तसु पाटि श्री मुनिचंद सूरीश्वर, सोलकला जिमचंद रे।
तास पाटि विद्या गुण भरीआ, श्री विद्याचंद्र सूरीस रे,
संप्रति ते गुरु पाय पसाइ, पभणइ हर्ष मुनीस रे।

रचनाकाल-संवत सोल तेरोतइ अे (१६१३) ज्येष्ठ मास सुविशाल,
सुदि पक्षि दिन बीजानुं शनिवार रचुं रास रसाल।
स्थान अहमदाबाद नगर मांहि अे विजय मुहूरत अभिराम,
हर्षराज पंडित भणइ अे, सीझइ वंछित काज।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०६५-६६ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ३१४ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग १ पृ० २०४, भाग ३ पृ० ६७५-७६ और भाग २ पृ० ६८-६९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस रास में सुरसेन की कथा द्वारा दया का माहात्म्य दर्शाया गया है।

श्री हर्षराज ने सुरसेनरास के अलावा एक अन्य साम्प्रदायिक रचना 'लोंका पर गरबो' भी की है। यह रचना सं० १६१६ में हुई। इसका उद्धरण नहीं उपलब्ध हो सका है।

हर्षलाभ—आप अंचलगच्छीय गजलाभ के शिष्य थे। आपने अंचलमत चर्चा नामक एक साम्प्रदायिक पोथी सं० १६१३ से पूर्व लिखी। यह अञ्चलमत के आचार्य गजलाभ पर आधारित रचना है। इसकी प्रति पर सं० १६१३ फाल्गुन शुक्ल ११ भोमवार लिखा है। पता नहीं यह प्रतिलिपिकाल है या रचना काल। रचना इस तिथि से कुछ पूर्व की हो सकती है।[1]

हर्षवल्लभ—खरतरगच्छीय प्रसिद्ध आचार्य जिनचंद्र सूरि आपके गुरु थे। आपने मरुगुर्जर पद्य में मयणरेहा चौपइ (३७७ गाथा) सं० १६६२, महिमावती में लिखा तथा गद्य में 'उपासकदशांगबालावबोध' की रचना सं० १६९२ में की।[2] मयणरेहा चौपइ (३७७ कड़ी सं० १६६२, महिमावती) का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

> जिणवर चउवीसे नमुं धुरि श्री आदि जिणंद,
> शांतिकरण जिनसोलमो, नमी अे नेमिजिणंद।
> पुरुसादाणी परगडो, थंभण गोडी पास,
> फलवधिवीर जिणेसरु, पूरे मनचीआस।

गुरु परम्परा के अन्तर्गत जिनदत्तसूरि, जिनकुशलसूरि, माणिक्य-सूरि और जिनचन्द्र सूरि का सादर स्मरण किया गया है। इस रास में मयणरेहा सती के आदर्श शील का वर्णन किया गया है। कवि ने लिखा है—

> सर ओपइ पाणी भर्यो वासे ओपइ फूल,
> नगर ओपइ मानवें, मानवसील अमूल।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५३५-९६ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ६६ (द्वितीय संस्करण)

२. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् मानव की शोभा शील से है जैसे सुगन्धि से पुष्प की, पानी से तालाब की है। मयणरेहा ने नाना कष्ट उठाकर भी शील की रक्षा की, यथा—

मनवचने मायाकरी किमहिनखंड्यो सील,
मयणरेहा संकटेपड्या, पाल्युं सील सलील।

रचनाकाल—नयनरस रिपुनु ससिमित वरसइ,
महिमावती नगरी मन हरसे, चंद्र प्रभुसुपसाइ

इसमें जिनचन्द्र सूरि और सम्राट् अकबर की मुलाकात का भी उल्लेख किया गया है, यथा—

प्रतिबोधी अकबर नर नायक, सकल जंतु ने अभयदायक,
जिनचन्द्र सूरि विजयराजे,

कवि ने अपने को जिणचन्द्र का शिष्य कहा है—

युग प्रधान जिनचंद्रसूरीस, हरषवल्लभदाखे तसुसीस।
सुणतां मंगलचार।

यह रचना चार खण्डों में विभक्त है।

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में 'जिनराजसूरि गीतम्' के अन्तर्गत हर्षवल्लभ कृत एक गीत ९ छंदों का संकलित है जिसका आदि इस प्रकार है—

गछपति वंदन मनरली रे, गरुओ गुणह गंभीर,
श्री जिनराजसूरीसरुरे, सविगछ कइ सिरि हीर रे।

इस गीत के अनुसार जिनसिंह सूरि के शिष्य जिनराज सूरि का पट्ट महोत्सव सं० १६७४ में हुआ था।

इसकी अन्तिम कड़ी इस प्रकार है—

धरमसीनंदन दिनदिनइ रे, दीपइ जिम रविचंद
हरष वल्लभ वाचक कहइ रे, आपइ परमाणंद।[१]

इस गीत रचना के समय तक कवि को वाचक पदवी प्राप्त हो चुकी थी।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह 'जिनराज सूरि गीतम्'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी गद्य रचना 'उपासक दशांग बालावबोध (सं० १६९२) की प्रारम्भिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

प्रणम्य श्री महावीर जगदानंददायकं,
उपासकदशांग वक्ष्ये बालावबोधकं।
श्री जिनचन्द्र शिष्येण हर्षवल्लभ वादिना,
सप्तभांगस्यटवार्थो विहितो ज्ञानहेतवे।

इसकी अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है—

दन्नंद चंद्राब्दे श्री राजनगरे कृता,
स्वच्छे खरतरेगच्छे हर्षवल्लभ वाचकैः।[1]

इस बलावबोध की मरुगुर्जर गद्य शैली का नमूना नहीं उपलब्ध हो सका।

हर्षविमल—तपागच्छीय आणंद विमल के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६१० से पूर्व ही 'बारव्रत संज्झाय' नामक काव्य की रचना की थी। इस लघुकृति की अन्तिम चार पंक्तियाँ नमूने के रूप में प्रस्तुत की जा रही हैं—

तपगच्छमंडण जाणीइ अे, मा० आणंद विमल सूरींद,
तसु पाटइ गोयम समा अे, मा विजयदान मुणिंद।
श्री आणंद विमल तणुअे, मा० हर्षविमल गणीस,
सीस कहइ भणतां हुई अे, मा० नवनिधि तसु निसदीस।[2]

इसमें कुल ६५ कड़ियां हैं।

हर्षसागर I—आप तपागच्छीय प्रसिद्ध आचार्य विजयदान सूरि के शिष्य थे। विजयदान सूरि का समय सं० १५८७ से सं० १६३२ तक

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ६०२, भाग ३ पृ० ८९२-९४ तथा भाग ३ खण्ड २, पृ० १६०८-९ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ८-१० (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग १ पृ० १९० (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ४६ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चित है। हर्षसागर का समय भी इसी के आसपास होगा, निश्चित समय ज्ञात नहीं है। आपने सं० १६२२ के लगभग 'नव तत्व नव ढाल' नामक १५३ कड़ी की एक रचना की है जिसका आदि इस प्रकार है—

मंगलकमला कंदु अे ढाल
आदि जिणंद नमेवि अे, नवतत्व कहुं संखेवि अे,
जीव तणां दस प्राण अे, पंच इन्द्री पंच प्राण अे।
त्रिणि बल मण, वच काच अे, सास नीसास संजाइ अे,
आऊरवा सिउ दस हुइ अे, प्राण विजोगिइ पुण मरिइ अे।

अंत इय नवतत्त्व विचारता अधिकी ऊछी भाभ रे,
बोली हुइ अजाण वइ ते खामडं संघ साखि रे।
तपगछ मोह सिरि गुरु, श्रीविजयदानमुणिंद रे,
हरष सागर मुनिवर कहइ, पभणतां आणंद रे।[1]

राजकोट बड़े संघ के शास्त्र भण्डार में विद्या विशाल गणि लिखित इस रचना की एक प्रति संकलित है। साधारण कोटि की रचना है। साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का विवेचन पद्यबद्ध ढंग से किया गया है। इसी समय एक अन्य हर्षसागर भी हो गये हैं जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

हर्षसागर II—पूर्णिमागच्छीय पद्मशेखर सूरि> जिनहर्ष सूरि> रत्नसागरसूरि के आप शिष्य थे। आपने सं० १६३८ आसो सुदी ११, रविवार को लाडोल में ४७१ कड़ी की बृहद् रचना 'धनदकुमार रास' पूर्ण की। इसका आदि देखिये—

सरसति सामिणि करो पसाय, प्रणमुं गच्छपति सहि गुरु राय,
श्री रत्नसागर सूरि चरणे रहुं, सरस कवित्त कथारस कहुं।

गुरुपरम्परा—पूनिम पखि धुरंधर धीर, पय प्रणमे भूपति वीर,
श्री पद्मशेखर सूरि राय, जेहनो जग मोटो जसबाय।

इसके पश्चात् जिनहर्ष और रत्नसागर सूरि का उल्लेख किया गया है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७३८ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १३५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल--श्री रत्नसागर सूरीस, कहे हर्षसागर तस सीस,
संवत चन्द्र-निधान, अग्नि वसु करीय प्रधान।
स्थान--लाडुल नयरी उदार, जिहां वसे श्रावक सुविचार।
धन-धन मन उल्हासि, छ मुनिसिउं रहिया चउमासि,
आसो सुदि आदित्यवार, अेकादशी तिथि उदार,
रचीउ धनदहरास, भणतां सवि पूजइ आस।[1]

श्री मो० द० देसाई ने हर्षसागर को रतिसागर का शिष्य बताया है जो रत्नसागर का अशुद्ध रूप प्रतीत होता है। रचनाकाल सं० १९३८ भी अशुद्ध प्रतीत होती है। यह भ्रम 'निधान' का अर्थ निधि (९) लगाने के कारण हुआ होगा जबकि चन्द्र निधान एक ही शब्द है और वह चन्द्रमा की १६ कलाओं का वाची है। देसाई ने कवि की हस्तलिखित प्रति जो सं० १६३८ की लिखित है, का उल्लेख किया है अतः यह निश्चित है यह रचना १७वीं शताब्दी की है और कवि २०वीं शताब्दी का कदापि नहीं हो सकता। सच तो यह है कि जैन गुर्जर कविओ के क्रमांक ६०५ और क्र० ७२५ वाले हर्षसागर एक ही व्यक्ति हैं और वे १७वीं शताब्दी के लेखक थे।

हीरकलश—कविवर हीरकलश खरतरगच्छीय हर्ष प्रभ के शिष्य थे। आप अधिकतर बीकानेर और नागौर में रहे। सं० १६२१ में आपने नागौर में ज्योतिषसार (जोइस हीर) की रचना प्राकृत भाषा में की। मरुगुर्जर में भी जोइस हीर नामक ९०५ कड़ी का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ आपने सं० १६५७ में लिखा था। यह ग्रन्थ साराभाई नबाब, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित कराया जा चुका है। इनके सम्बन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा का एक लेख शोध पत्रिका भाग ७ अंक ४ में छपा है जिसमें सं० १६१५ से लेकर सं० १६५७ के बीच लिखी इनकी प्रायः (५०) पचास रचनाओं का उल्लेख किया गया है। उनकी एक सूची यहाँ दी जा रही है--कुमति विध्वंसन चौपइ सं० १६१७ करणपुरी, मुनिपति चौपइ सं० १६१८ बीकानेर, अठारहनाता चौपइ (५२ गाथा) सं० १६१६, नोरंगदेसर; सोलह स्वप्न संज्झाय सं० १६२२,

1. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३८५ और ७४२-४३ (प्रथम संस्करण) तथा भाग २ पृ० १७४-१७५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजलदेसर, सम्यक्त्व कौमुदीरास सं० १६२४ डेह, आराधना चौपइ सं० १६२३, नागौर, जम्बू चौपइ, सं० १६३२ डेह, मोती कपासिया संवाद सं० १६३२, रतनचूड़ चौपइ सं० १६३६, सिंघासन बत्तीसी सं० १६३६ मेडता, जीभदांत वाद सं० १६४३, बीकानेर, हीयाली सं० १६४३ बीकानेर, मुखवस्त्रिकाविचार सं० १६१५, पंचाख्यानगत वकनालिकेर कथानक सं० १६४९, पंचसति द्रौपदी चौपइ सं० १६५६, राजसिंह रत्नावली संधि सं० १६१९ झंझेड, गुर्वावली सं० १६१९ झंझेड़ इत्यादि ।[1]

आपकी रचनाओं में गुरुपरंपरा के अन्तर्गत सागरचंद्र> महिमराज> दयासागर> ज्ञानमंदिर> देवतिलक> हर्षप्रभ का उल्लेख मिलता है। आपकी प्रमुख रचनाओं का विवरण-उद्धरण आगे दिया जा रहा है—

कुमति विध्वंसन चौपइ सं० १६१७ ज्येष्ठ शुक्ल १५ बुधवार, कनकपुरी। यह शुद्ध साम्प्रदायिक खंडन-मंडन परक रचना है। इसमें लोंकामत को कुमति मानकर उसका खंडन किया गया है, इसका प्रारम्भ देखिये—

बंदु चौबीसे जिणराय, समरी सरसति सामणि पाय,
आगम वचन कहूं चौपइ, सांभलज्यौ निश्चल मनधरी।
अंग इग्यारह बार उपांग, छेद ग्रंथ षट्ज्ञान सुचंग,
दसे पइन्ना मूल विचार, नंदी ने अनुयोग द्वार।
इण परि आगम पैंतालिस, वर्तमान वरतै सुजगीस,
तास भणण विध कहीय जिनेस, ते तुम्ह सुणौ कहूं लवलेस।[2]

आगे लोकाशाह पर व्यंग करते हुए कहते हैं—

जिनशासन जिन प्रतिमा नमै, सिवशासन हरिमंदिर रमै,
मुसलमाने मानै महिराव, पूछो लूंका तुम्ह कुण जाव।

रचनाकाल—सोलह सै सतरोत्तर बास कर्णपुरी नयरी उल्हास।

श्री अगरचन्द नाहटा इसका रचनाकाल सं०१६१७, श्री मो० द० देसाई सं० १६०७ या १६१७ और प्रेमसागर जैन सं०१६७७ बताते हैं, किन्तु १६०७ और १६७७ दोनों तिथियां कई कारणों से गलत मालूम

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३३-४२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ती हैं। सं० १६१५ के पूर्व और सं० १६५७ के पश्चात् रची उनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है अतः यह रचना सं० १६१७ की होगी। कवि ने लुंकामत के प्रचलन के विषय में लिखा है–

संवत पनरह सइ आठोतरइ जिन प्रतिमा पूजा परहरै,
आगम अरथ अवर परिहरइ, इणपरि मिथ्यामति संग्रहै।
लखमसीह तस मलियो सीस, वक्रमती नै बहुला रीस,
विउ मिली निषेधइ दान, विनय विवेक आणै ध्यान।[1]

अंत में अपने गुरु का उल्लेख करते हुए लिखा है––

गुरु श्री देवतिलक उवझाव, हरख प्रभु तसु सीस कहवाइ
तिण सहगुरुनो आयस लही, हीरकलस अे चोपइ कही।

मुनिपति चरित्र चौपाई (पद संख्या ७३३) सं० १६१८ माह वदि ७, रविवार, बीकानेर। इसमें ऋषि मुनिपति का चरित्र चित्रित किया गया है। रचना मुनिभक्ति से ओत प्रोत है। इसका आदि इस प्रकार है––

जिन चउवीसे पयनमी सरसती (समरी माय),
(वर्णवु ं) मुनिपति चरीयहु ं, सारद मात पसाय।

रचनाकाल––संवतसोल अठरोत्तरे अे मा०, माह वदि सातमिं जाणि,
वार रवि हस्त नक्षत्र सिउअे मा०, चउपइ बड़ी प्रमाण।

अंत इति श्री मुनिपति रिषि चरीयइ अे मा०, श्री बीकानयर मझारि,
रिसह जिणंद पसाउलइ अे मा०, रचियउ चरित्र उदार।७३३।[2]

१८ नातरा (रिश्ता) सम्बंधी संज्झाय ५२ कड़ी सं० १६१६ श्रावण शुक्ल नवरंगदेसर। जैन कथा साहित्य में जिन १८ नातराओं (रिश्तों) का उल्लेख किया है, उन्हीं का इसमें वर्णन है।

आदि वीर जिणेसर पय नमीय, शारदा हियइ धरेवि,
जे कवियण आगे हूया तेह नमउ करखेवि।

रचनाकाल – संवत सोलहसइ सोलोत्तर सुकुल सांवण जाण अे,
श्री जिनचंद्र सूरीसर पसायइ हरिकलस बखाण अे।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३३-४२ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग १ पृ० २३४-४०, भाग ३ पृ० ७२५-२९ और भाग २ पृ० ३३-४२ (द्वितीय संस्करण) तथा भाग ३ पृ० १५१० (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंद्रगुप्त १६ स्वप्न संज्झाय (गाथा २०) सं० १६२२ भाद्र शुक्ल ५, राजलदेसर। गर्भ में आने से पूर्व तीर्थङ्कर की माँ १६ स्वप्न देखती हैं, उन्हीं का इसमें वर्णन है।

रचनाकाल-संवत सोलह सइ बावीस, भाद्रव सुदी पंचमीय जगीस
राजलदेसर संघाग्रहइ अह सिज्झाय हीर कवि कहइ।

आराधना चौपई—इसमें २४ तीर्थंकरों की प्रार्थना है। डॉ० प्रेमसागर जैन इसका रचनाकाल सं० १६१३[1] और श्री देसाई सं० १६२३ माह शु० १३ मु० नागौर बताते हैं, यथा--

संवत भवण नयण, रिति शिशि, जोणे निपुण हियै अे किशी,
माह सुकुल गुरु पुष्य संजोग, तेरस तिथि तेम रवि जोग।

अंत खरतर गच्छ जिणचंद सूरीस, तासु राजि हर्ष प्रभु सीस,
हीरकलस मुनि पास पसाइ, कहि आराधन अहिपुर मांहि।

सम्यक्त्व कौमुदी रास--(६९३ कड़ी) सं० १६२४ माह शुक्ल १५ बुधवार, सवालख। डा० प्रेमसागरजैन इसकी पद्य संख्या १०५० बताते हैं। इस रास में अनेक संतों के चरित्र चित्रित हैं। भाषा में लय और भक्तिभाव की विशेषता है। इसमें आद्यान्त चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है। नमूने के लिए कुछ पंक्तियाँ लीजिए-

संवत सोलह सइ चउवीस, माही पूनम बुध सरीस,
पुष्य नक्षत्रइ लेह, देश सवालख नयरी जेह,
धर्म तणउजिलां वाध्यु नेह, तिहां कीइ चउपइ जेह।
इति श्री समकित कौमदि चरीय,
मइ संषेपइ अे अहरिय, विस्तरि गुरुमुख वाणि,
भणइ गुणइ जे सुणइ अहो निशिधरि बइण तसुथाइ
सवि बसि, रिद्धि वृद्धि कल्याणी।

सिंहासनबत्रीसी सं० १६३६ आसो वदी २, सवालख मेड़ता। इसकी कुल छंद संख्या ३५०० है। इसमें दोहा, चौपाई छन्दों का प्रयोग किया गया है और विक्रमादित्य भोज का चरित्र वर्णित है। इस बत्रीसी में भोज के दृष्टान्त से दान की महिमा बताई गई है। यह रचना सिद्धसेन की सिंघासण कथा पर आधारित है।

१. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० १२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा-- पूरवे श्री सिद्धसेन गुरु, विक्रम गुण संबंध,
कीधी सिंघासणकथा बत्रीसे परबंध।

इसके पश्चात् धारा नगरी के नृपति भोज से कथा प्रारंभ की गई है---
आराहि श्री ऋषभ प्रभु युगला धर्म निवार,
कथा कहि सूं विक्रमतणी जसु साकउ विस्तार।

रचनाकाल---वसुधा तिलउ तस सीस बोलइ संघनइ आग्रह करी,
देसइ सवालष मेंडेह नयरा सदाजय आणंद भरी।
संवत सोले से छत्रीसइ बीजा भादो बदि कथा,
तिह कहियसिंहासणबत्रीसी हीरकलश सुणी यथा।

जीभदांत संवाद—(गाथा ४१) सं० १६४३, बीकानेर।

रचनाकाल—सोल त्रयालइ मगसिरि, बीकानेर मझारि;
हीरकलश रसणदसण, जोडिकरि जसुकारि।

ज्योतिष सार (जोइस हीर) का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—
सद्गुरु सानिधि सरसती, समरी सुवचन सार;
जोइसना दूहा कहिस, बालबोध हितकार।
तिथिवार नक्षत्र ग्रह राशि महूरत योग,
अे साते इति ज्योतिषे कहि संखेपे भोग।

अन्त सहज भुवनें क्रूर सवि, भाई आपे हाण,
हीरकहे सोमासवे, आया करे कल्याण।[1]

आपने विविध विषयों पर संस्कृत, प्राकृत और मरुगुर्जर हिन्दी में अनेक रचनायें करके अपना बहुमुखी पांडित्य प्रकाशित किया है; यद्यपि उद्धरणों के आधार पर काव्यत्व को प्रमाणित करना कठिन है किन्तु आपकी रचनाओं की संख्या आपको महाकवि प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। आपकी रचनाओं के विवरण श्री अगरचन्द नाहटा और डा० प्रेमसागर जैन ने दिए हैं किन्तु उद्धरण प्रायः नहीं दिए हैं। श्री मो० द० देसाई ने उद्धरण अवश्य दिए हैं किन्तु वे प्रायः आदि, अंत, रचनाकाल और गुरुपरंपरा आदि से ही सम्बन्धित हैं। काव्य कला की दृष्टि से उद्धरण उन्होंने भी नहीं दिए, अतः आपके काव्य-क्षमता की तलाश के लिए स्वतन्त्र प्रयास की अपेक्षा है।

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ३३-४२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीरकुशल—तपागच्छीय विमल कुशल के शिष्य थे। आपने सं० १६४० में 'कुमारपाल रास' की रचना अक्कमपुरी में की। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ ये हैं—

पय पंकज जस प्रणमता पांमीजी सुररिद्धि,
त्रिशलानंदन दुख हरइ नाममात्रि बहु सिद्धि।
गजगति सरसति समरता लहीइ वचन रसाल।
कवी कोटि सेवा करी निमिलयातमसाल।
निज गुरुना हृदये धरी विमलकुशल सुपवित्र,
हीरकुशल कहे कवि जि सुणीउ कुमारपाल चरित्र।

अंत— श्री सोमसुन्दर सूरि सीस वाचकवरु,
तेणि करिउं कुमर नृपनउ चरित्र।
तेह ऊपरि रचिउं संवत् सोलोत्तरइ,
वर्ष च्यालीस अक्कमपुरि पवित्र।[1]

गुरु परंपरा के अन्तर्गत आपने हीरविजय, जयविजय, विजयसेन और विमलकुशल का वंदन किया है। इसका अन्तिम छन्द इस प्रकार है—

सकल सीद्ध कमलि रमइ भमर परि,
वीणि मकरंद पीइ मनह रंगि,
हीरकुशल कहि कुमरनृप केरउं,
रास भणतां हुइ आणंद अंगि।

इसमें गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा कुमारपाल का चरित्र चित्रित किया गया है।

हीरचंद—तपागच्छीय भानुचन्द्र उपाध्याय आपके गुरु थे। भानुचंद्र प्रसिद्ध जैन विद्वान् थे जो अकबर के समकालीन थे और उसके पुत्र जहाँगीर के शिक्षक भी थे। हीरचंद ने कर्मविपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) पर बलावबोध लिखा जिसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

श्री भानुचन्द्र वाचक शिशुनोपाध्याय हीरचन्द्रेण,
कर्मग्रंथस्यार्थों लिखितोयं लोकभाषाभिः।[2]

इसकी लोकभाषा का नमूना नहीं प्राप्त हो सका।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २५३ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १८५-८६ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग ३ खण्ड २ पृ० १६०३ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १६४ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीरनंदन—आप खरतरगच्छीय जिनसिंह सूरि के शिष्य थे। आपने सं० १६७० से ७४ के बीच 'हरिश्चन्द्र चौपाई' की रचना की। इसका आदि देखिये—

शुभमति आपो सारदा, सरस बचन सरसति,
ब्रह्माणी सहु विघन हरि, भलौ करै भारति।
चउवीसे जिनवर चतुर नाम हुवउ नत निधि,
श्री गौतम गणधर सधर सदाकरो सांनिधि।
× × ×
खरतर गच्छनायक बरो जंगम जुगपरधान,
श्री जिनसिंह सूरीसरु नमीयइ सुगुण निधान।
विनयवंत विद्या निलो गणि हीरनंदन गाय,
गुरु सुपसायइ गायसुं रंगइ हरचंदराय।[1]

इस प्रति के अंतिम पत्र खंडित हैं, अतः इसके रचनाकाल और रचना सम्बन्धी अन्य विवरण नहीं उपलब्ध हो पाये।

हीरविजय सूरि—जिस प्रकार भगवान महावीर ने मगधराज श्रेणिक (बिंबसार) को, हेमचन्द्राचार्य ने जयसिंह और कुमारपाल को, उसी प्रकार विक्रम की १७वीं शताब्दी में हीरविजयसूरि ने सम्राट् अकबर को प्रभावित कर धर्म की प्रभावना में महान योगदान किया। सूरि जी इस शताब्दी के न केवल महान् प्रभावक धर्माचार्य अपितु श्रेष्ठ कवि, साहित्यकार एवं सन्त थे। श्री मोहनलाल देसाई ने इस शताब्दी को इनके नाम पर हैरक युग कहा है। इस नामकरण पर चाहे सर्वसम्मति भले न हो किन्तु इतना तो निर्विवाद स्पष्ट है कि आप इस अवधि में तपागच्छ के सर्वाधिक महान् पुरुष थे।

आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में अनेक जैन विद्वानों ने अपनी रचनाओं में काफी लिखा है—जिससे इनका तत्कालीन युग पर प्रभाव स्पष्ट प्रकट होता है। ऐसे ग्रंथों में संस्कृत में लिखित पद्मसागर कृत 'जगत् गुरु काव्य' सं० १६४६, धर्मसागर कृत तपागच्छ पट्टावली सं० १६४६-४८, शान्तिचंद्र कृत 'कृपारसकोश', देवविमल कृत हीरसौभाग्य महाकाव्य (इसका उपयोग अपनी

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ४८१-८२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पट्टावली में धर्मसागर ने किया है, अतः यह रचना पट्टावली से कुछ पूर्व ही लिखी गई होगी।) दयाकुशलकृत 'लाभोदयरास' १६४९, विवेकहर्षकृत 'हीरविजय सूरि निर्वाण संज्झाय' १६५२, कुंवरविजयकृत' शलोको, विद्याणंदकृत 'शलोको', जयविजयकृत 'हीरविजयसूरि पुण्यखानि' और ऋषभदास कृत हीरविजयसूरि रास सं० १६८५ आदि उल्लेखनीय हैं। गुजराती भाषा में रचित 'सूरीश्वर अने सम्राट्' इस प्रकार की सर्वाधिक प्रामाणिक कृति है।

जीवनवृत्त – पालणपुर (गुजरात) के कुंरा नामक ओसवाल इनके पिता और नाथी इनकी माता थीं। इनका जन्म सं० १५८३ मागसर शुक्ल (९) नवमी को हुआ था। इनका बचपन का नाम हीरजी था। नाथी को इनसे पूर्व तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं। १३ वर्ष की अवस्था में अपनी बहन बिमला के यहाँ जाते समय रास्ते में पाटण में इन्होंने विजयदान सूरि का प्रवचन सुना और उससे बड़े प्रभावित हुए और सं० १५९६ में उन्हीं से दीक्षित हुए। हीरहर्ष से खूब विद्याभ्यास किया। धर्म सागर के साथ देवगिरि में भी आपने शास्त्राभ्यास किया। सं० १६०७ में पण्डित, सं० १६०८ में वाचक और सं० १६१० में आपको सिरोही में सूरिपद प्राप्त हुआ। आचार्य पद का महोत्सव जैन मंत्री चांगा ने किया। चांगा ने ही राणकपुर के प्रसिद्ध प्रासाद का निर्माण कराया था। सं० १६२१ में विजयदान सूरि के स्वर्गवासी होने पर हीरविजय तपागच्छ के गच्छेश हुए। सं० १६२८ में लोकागच्छ के मेघ जी ऋषि अपने २८-३० साथियों के साथ जाकर इनके अनुगामी हो गये, तबसे इनका प्रभाव खूब फैलने लगा।

तत्कालीन स्थिति--सं० १६२८-२९ में ही अकबर ने गुजराज पर विजय प्राप्त की थी। उस समय गुजरात में सुबेदार और स्थानीय हाकिमों की नबाबी चल रही थी। खंभात के हाकिम सिताब खाँ से हरदास नामक किसी गृहस्थ ने चुगली की कि हीरविजय आठ साल के बच्चे को साधु बना रहे हैं। उसने इन्हें पकड़ने का हुक्म जारी कर दिया। इसके कारण कई दिनों इन्हें गुप्तवास करना पड़ा। इसी प्रकार वोरसद के जगमल वाले प्रकरण में भी इन्हें कई दिनों तक गुप्तवास करना पड़ा था। एक बार किसी ने शिकायत कर दी कि हीरविजय ने बरसात रोक दी है। शिताब खाँ ने इन्हें पकड़ने के लिए सिपाही भेज दिया। राघव और सोमसागर ने किसी प्रकार बीच-बचाव करके छुड़ाया। इसी झंझट में धर्मसागर और श्रुतिसागर पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकारण मार पड़ गई। सारांश यह कि उस जमाने में नियम कानून और सुव्यवस्था नामक कोई वस्तु नहीं थी, जिसके कारण साधु-सन्तों तक को बड़ी यातनायें भोगनी पड़ती थी। धीरे-धीरे गुजरात में सुव्यवस्था स्थापित हुई और जैन साधु अपने कठोर संयम और तप के कारण शासकों की दृष्टि में भी सम्मानित समझे जाने लगे।

सम्राट् अकबर से भेंट--हीरविजयसूरि ने अनेक संघ यात्राओं का नेतृत्व किया। मन्दिरों का निर्माण और मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। दूर-दूर तक विहार करके हजारों लोगों को जैन धर्म के प्रति श्रद्धावान् बनाया। धीरे-धीरे इनकी कीर्ति फैलती गई और चंपा नामक श्राविका--जो थानसिंह की मां थी, के छह महीने के उपवास के पारणा का जुलूस देखकर तथा अपने कर्मचारी कमरू खाँ से यह सुनकर कि चम्पा इतना लम्बा उपवास अपने गुरु हीरजी की कृपा से कर पाई, अकबर को भी इनसे मिलने की इच्छा हुई। निमन्त्रण भेजा गया। सूरिजी अपने ६७ साधुओं के साथ गान्धार से पैदल चलकर सं० १६३९ में सीकरी पहुंचे तो अकबर बड़ा प्रभावित हुआ।[1] आप जगतमल कछवाहा के महल में ठहराये गये। थानसिंह इनकी आगवानी में गये थे। अबुलफजल को इनकी आवभगत में रखा गया था। ज्येष्ठ कृष्ण १३ सं० १६३९ में प्रथम भेंट होने पर बादशाह ने इन्हें बहुत कुछ भेंट में देना चाहा पर इन्होंने कुछ नहीं स्वीकार किया, केवल हिंसा बन्द करने की इच्छा प्रकट की तो बादशाह ने जीव हिंसा की रोक और जजिया की माफी आदि से संबंधित फरमान निकाला। इससे न केवल जैन जगत में बल्कि समग्र भारत में इनकी कीर्ति फैल गई। अकबर की धर्म सभा के १४० सदस्यों में इनका १६वाँ नाम था। सं० १६३९ में सम्राट् इनसे तीन बार मिला और खूब विचार विनिमय किया। इन्हें जगद्गुरु की पदवी दी और विजय सेन को सवाइ विरुद से सम्मानित किया।

रचनायें—इन्होंने सैकड़ों शिष्य बनाये जिनमें मेघजी ऋषि का नाम महत्वपूर्ण है। इनके समकालीन सन्तों में विजयसेनसूरि, विजयदेव सूरि, आनन्दविमलसूरि के अलावा धर्मसागर और विवेकहर्ष

१. सम्राट् अकबर से सूरिजी सं० १६३९ ज्येष्ठ बदी १३ को फतेहपुर में प्रथम बार मिले। श्रावण बदी १० को वहीं दूसरी बार मिले और भाद्र सुदी ६ को वहीं तीसरी बार मिले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि उल्लेखनीय हैं। गृहस्थों में महाराणा प्रताप, मन्त्री भामाशाह, उनके पुत्र जीवाशाह आदि भी इनसे श्रद्धा रखते थे। इससे ये एक प्रभावक आचार्य और युगपुरुष अवश्य प्रमाणित होते हैं। मरुगुर्जर में रचित आपकी तीन कृतियों का उल्लेख मिलता है। उनका विवरण-उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्वादश जल्पविचार अथवा हीरविजयसूरि ना १२ बोल सं० १६४६ पौष शुक्ल १३, शुक्रवार। यह रचना जैन प्रबोध पुस्तक के पृ० ३०० पर प्रकाशित है। इसकी प्रथम पंक्ति है—

'अजब ज्योति मेरे जिन की।'

अन्त हीरविजय प्रभु पास शंखेसर, आशा पूरो मेरे मन की।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ स्तव के अलावा जै० गु० क० भाग १ में इनकी चार कृतियों—

शान्तिनाथरास, द्वादशजल्पविचार, मृगावती और प्रभातिउं का उल्लेख है।

नवीन संस्करण के सम्पादक ने लिखा है कि ये सब रचनायें इनकी नहीं प्रतीत होती। शान्तिनाथरास संभवतः रामविजय मुनि की रचना है। इसी प्रकार मृगावती सकलचंद की कृति मालूम पड़ती है। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ स्तव और द्वादशजल्प विचार इनकी रचनाये हो सकती हैं।[1] प्रभातिउ के कर्त्ता हीरविजय स्पष्ट ही अर्वाचीन हैं और प्रस्तुत हीरविजयसूरि से भिन्न हैं।

जिस प्रकार किसी भाषा साहित्य के इतिहास में इतनी कम रचनाओं के आधार पर उसके नाम पर उस युग का नामकरण अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है उसी प्रकार उनका उल्लेख ही न करना अन्यायपूर्ण लगता है। श्री अगरचंद नाहटा, डा० कस्तूरचंद-कासलीवाल, डा० प्रेमसागर जैन और डा० हरीश शुक्ल आदि विद्वानों ने अपने ग्रंथों में इनकी चर्चा भी नहीं की है। यदि रचनायें संख्या में कम होते हुए भी काव्य दृष्टि से काफी उच्चकोटि की हों तो भी इस प्रकार का नामकरण उचित लग सकता है किन्तु आपकी जो दो-चार रचनायें हैं वे इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं कि उनके आधार पर

---

१. जैन गुर्जर कवियो भाग १ पृ० २४१ और भाग २ पृ० २३९-२४० (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी युग का नामकरण संभव हो। वस्तुतः श्री देसाई ने १७वीं (वि०) शताब्दी का नाम 'हैरकयुग' रखने का प्रस्ताव उसी गुण के आधार पर किया होगा जिस गुण के कारण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् १९०० से १९२० तक की अवधि को द्विवेदी युग कहा गया है। आ० द्विवेदी जी ने जिस प्रकार साहित्य और साहित्यकारों का मार्ग-दर्शन किया उसी प्रकार अपने समय में संघ और समाज का नेतृत्व हीरविजय-सूरि ने अवश्य किया था। इसलिए जैन साहित्य के इतिहास में उनका नाम युग पुरुष, युग प्रधान के रूप में हमेशा याद किया जायेगा। अकबर ने इसी जगद्गुरु की पदवी दी थी।

हीरानन्द मुकीम--आप जगत सेठ के पुत्र ओसवाल श्रावक थे। आप आगरा के सर्वश्रेष्ठ जौहरियों में थे। महाकवि बनारसीदास ने अर्द्ध कथानक में लिखा है कि आपका शाहजादा सलीम से घनिष्ठ सम्बन्ध था और आपके पास अपरिमित सम्पत्ति थी--

साहिब साह सलीम को, हीरानन्द मुकीम।
ओसवाल कुल जौहरी वनिक वित्तकी सीम॥[1]

आगे बनारसीदास ने वहीं लिखा है कि इन्होंने सं० १६६१ चैत्र सुदी २ को प्रयागपुर से सम्मेद शिखर के लिए संघयात्रा निकाली थी। बनारसीदास के पिता खड्गसेन भी इस संघयात्रा में निमंत्रित होकर गये थे। इस यात्रा में कई लोग बीमार पड़े और कुछ मर भी गये थे। खड्गसेन भी बीमार होकर लौटे थे। इस यात्रा का विवरण देने वाला एक हस्तलिखित गुटका श्री अगरचन्द नाहटा को मिला था जिसका नाम है--'वीर विजय सम्मेत शिखर चैत्य परिपाटी'। इसके अनुसार खरतरगच्छीय श्रद्धालुओं का यह संघ आगरा से चला। शाह हीरानन्द का संघ इलाहाबाद से चलकर बनारस में इस संघ से मिला और दर्शन-पूजन के पश्चात् वापस लौटा। श्री नाहटा ने एक लेख 'शाह हीरानन्द तीर्थयात्रा विवरण और सम्मेतशिखर चैत्य परिपाटी'[2] नाम से लिखा था। डॉ० हरीश शुक्ल इनके पिता का नाम कान्ह

१. नाथूराम प्रेमी—अर्द्धकथानक पृ० २५
२. श्री अगरचन्द नाहटा—अनेकान्त वर्ष १४, किरण १० पृ० ३००-३०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और गुरु का नाम विजयसेनसूरि बताते हैं।[1] इसका आधार इनकी रचना 'अध्यात्म बावनी' की निम्नांकित पंक्तियाँ हो सकती हैं---

मुनिराज कहइ मंगल करउ, सपरिवार श्रीकान्ह सुअ,
बावन्न बरन बहु फल करहु, संघपति हीरानन्द तुअ।

अबतक उनकी यही एक रचना उपलब्ध है जो यह प्रमाणित करती है कि वे जैन तीर्थों के प्रति भक्तिभाव रखने वाले मात्र उत्तम श्रावक ही नहीं, एक कवि थे।

अध्यात्म बावनी की रचना सं० १६६८ आषाढ शुक्ल ५ को हुई और उसी वर्ष लाभपुर में मोजिग किसनदास साह वेनीदास के पुत्र के पठनार्थ लिखी गई। इसकी प्रति उपलब्ध है। इस काव्य में ५२ अक्षरों को लेकर ५२ पद्यों की रचना की गई है। सभी पद्य आध्यात्मिक भाव से ओतप्रोत हैं। संतकाव्य की भाँति मोहग्रस्त जीवको संबोधित करके कवि कहता है—

ऊँकार सरुपुरुष इह अलष अगोचर,
अंतरज्ञान विचारि पार पावइ नहि को नर।
ध्यानमूल मनि जागि आणि अंतर ठहरावउ,
आतम तत्तु अनूप रूप तसु ततषिण पावउ।
इम हीरानंद संघवी अमल अटल इहु ध्यान थिरि,
सुह सुरति सहित मनमह धरउ युगति मुगति दायक पवर।[2]

अंत बावन अक्षर सार विविध वरनन करि भाष्या,
चेतन जड़ संबंध समझि निजचितमइ राख्या।
ज्ञान तणउ नरि पार सार अे अक्षर कहियइ,
नव नव भांति बखाण सुतउ पंडितपइ लहियइ।

यह रचना तो हीरानन्द संघवी की लगती है किन्तु जैसा पहले कहा गया कि उसकी अंतिम पंक्ति में आया 'मुनिराज कहइ' पद शंकास्पद है। किन्तु यहाँ मुनिराज कहइ शब्द का अर्थ मुनि ने उन्हे आशीर्वाद दिया है। इनकी एक रचना विक्रमरास[3] को सं० १७०० से पूर्व लिखित श्री मो० द० देसाई ने बताया है। इसका कोई विवरण-उद्धरण नहीं दिया है।

---

१. डा० हरीश शुक्ल —जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता पृ० १२२
२. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ० १५८-१५६
३. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीरो--विजयसेन सूरि के श्रावक शिष्य हीरो भी हीरानन्द संघवी हो सकते हैं।[1] इनकी एक रचना धर्मबुद्धिरास अथवा उपदेश रास उपलब्ध है। १७३ कड़ी की यह कृति सं० १६६४ में नवलखा में लिखी गई। जै० गु० क० भाग १ पृ० ४६७, भाग ३ पृ० ९३९-४० पर भी देसाई ने इस रचना का कर्त्ता हीरानंद को माना था, लेकिन नवीन संस्करण के संपादक श्री जयन्त कोठारी हीरो और हीरानंद को एक मानने में कठिनाई का अनुभव करते हैं और उन्होंने इस रचना को हीरो के नाम से अलग दर्शाया है। यह रचना भीमसिंह माणक द्वारा जिनदास कृत व्यापारी रास के साथ प्रकाशित की गई है। इसमें लेखक और रचना काल का विवरण इन पंक्तियों में दिया गया है--

सोल चोसिठा वर्ष महापर्व तेणि रास संपूरण नीयनो अे,
नवलखा नयरि मझारि सुविधि पसाउलि हरखि हीरो वीनवइ अे।[2]

गुरुपरंपरा-- अवरत जो सविदंद तपगच्छ आदरो
अवधि किसी दीसइ नहि अे,
जगगुरु विरुद सवाइ साहिब सहु
नमि विजयसेनसूरि दीपता अे।

कवि ने इसे 'धर्म बुद्धि रास' कहा है, यथा—

हुं नविजाणुं शास्त्र बुद्धि घणी नहि 'धर्मबुद्धि रास' मिकर्मो अे,
भणतां सुणतां रास संपत्ति बहु मिलइ मनवंछित सघलां फलइ अे।

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है--

सकल सुमति आपो मुझ मात, सरसति सामिणि जग विख्यात,
छती वाचनि मांगइ कोय, ना कहिवानी नीति न होय।

यदि हीरो और संघवी हीरानन्द एक ही व्यक्ति हों तो हीरानन्द मुकीम एक श्रेष्ठ कवि भी सिद्ध होंगे अन्यथा उनकी एक ही रचना शेष बचेगी। इस सम्बन्ध में विशेष शोध की अपेक्षा है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९० (द्वितीय संस्करण)
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेमरत्नसूरि—श्री अगरचन्द नाहटा[1] ने इन्हें पूर्णिमागच्छीय ज्ञानतिलक सूरि का शिष्य बताया है किन्तु श्री मो० द० देसाई ने[2] इन्हें ज्ञानतिलक सूरि के शिष्य पद्मराज गणि का शिष्य बताया है जो अतः साक्ष्य के आधार पर सही लगता है। श्री नाहटा ने इनके सम्बन्ध में एक लेख 'शोधपत्रिका' भाग २ अंक ३ में लिखा है जिसके अनुसार इनकी अप्राङ्कित रचनायें उपलब्ध हैं। अमरकुमार चौपइ शीलावती या लीलावती चौपई, सीताचरित्र, महिपाल चौपई, जगदम्बा बावनी, गोराबादलकथा अथवा पद्मिनी चौपइ आदि। अन्तिम रचना पर्याप्त प्रसिद्ध है। उसका विवरण पहले दिया जा रहा है: गोरा बादल कथा अथवा पद्मणी चौपई सं० १६४७ चैत्र कृष्ण १४ गुरुवार, सादड़ी। इसमें पद्मिनी के पति रतनसिंह की रक्षा करने वाले तथा उन्हें अलाउद्दीन के कैद से छुड़ाने वाले दो प्रसिद्ध राजपूत वीरों—गोरा और बादल की कथा वर्णित है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सकल सुषदायक सदा सिद्धि बुद्धि सहित गुणेश,
विघन विदारण रिधकरण, पहिली तुझ प्रणमेश।
ब्रह्म विष्न शिव से मुषै, नितु सभरै जस नाम,
तिण देवी सरसति तणैं, पदजुग करूं प्रणाम।[3]

इस रचना में कवि ने वीर, शृङ्गार आदि रसों का यथास्थान प्रयोग किया है, यथा –

वीरारस शृङ्गाररस, हासरसहितहेज,
सांभिध्रम विधि सांभलो, ज्युंबाधे तनतेज।

इसमें पद्मिनी के शीलपालन का सुन्दर चित्रण किया गया है, कवि कहता है—

सील साच जगि भाषीइ, जसुप्रसादिशुष होइ,
पदमणिजिणपरिपालियौ, सांभलियौ सहुकोइ।

गुरुपरंपरा—पूनिमपक्ष गिरुआ गणधार, देवतिलकसूरि सुषकार,
ग्यांनतिलक सूरीश्वरतास, प्रतपें पाटें बुद्धिनिवास।

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा—परंपरा पृ० ७७

२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १३-१८ (द्वितीय संस्करण)

३. वही भाग १ पृ० २०७-११, भाग ३ पृ० ६८०-८२ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

पदमराज वाचक परधान, पुहवी प्रगट सकल गुणवान।
तास सीस मनरंगे घणें, हेमरतन वाचक इम भणें।[1]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि आप पूर्णिमागच्छ के देवतिलक की परम्परा में पद्मराज वाचक के शिष्य थे। रचनाकाल 'संवत सोलह से सैताल, श्रावण सुदिपांचिमासुविशाल' कहा गया है। यह रचना भामाशाह के अनुज तारा चंद्र के आग्रह पर की गई।

शीलावती और लीलावती चौपइ संभवतः एक ही रचना के दो नाम हैं। इसका रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है कि उसका अर्थ सं० १६०३ और १६७३ दोनों लग जाता है, यथा—

संवतसोल त्रिरोत्तरे पाली नयर मझारि,
सीलकथा सांची रची प्रवचन वचन विचार।

इसकी गुरुपरम्परा में ज्ञान तिलक का नाम दिया है, यथा—

पूनिमगछपतिगुणनिलो श्री न्यानतिलकसूरीस,
जस पद पंकज सेवतां पूज्ये सकल जगीस।
तस पयपंकज सूर सम श्री हेमरतन सूरींद,
सीलकथा तिणिअकही प्रतयो जां रविचंद।

इसमें ज्ञानतिलक और हेमरत्न के बीच पद्मराज का नाम नहीं है।

महीपाल चौपई—गाथा सं० ६९६, सं० १६३६, इसका उद्धरण उपलब्ध नहीं है। 'अमरकुमार चौपई' की रचना आपने सं० १६३८ में बीकानेर के प्रसिद्ध मंत्री कर्मचन्द बच्छावत के आग्रह पर की थी। इसका भी विवरण-उद्धरण अप्राप्त है।

सीता चरित्र आपकी दूसरी प्रसिद्ध रचना है। इसमें सात सर्ग हैं। इसमें दोहा-चोपाई छंद का प्रयोग किया गया है। इसमें राम और सीता को भी जैन धर्म में दीक्षित कराया गया है। प्रति अपूर्ण होने से इसका रचनाकाल एवं अन्य विवरण नहीं प्राप्त हो सका है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं—

श्री रिसहेसर पढम जिण सोलम संति जिणंद,
पास जिणंद (महावीर ने) नमुं अधिक आणंद।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १३-१८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समरुं सरसति सामिणी राजहंस रथरूढ़,
जास पसाई कवि हुआ मोटाजे (होता) मूढ़।

इसमें भी कवि ने अपने को पद्मराज वाचक का ही शिष्य बताया है।

पदमराज वाचक सुपसाइ, पद्मचरित्र ग्रही मन मांहि,
हेमसूरि इम जंपइ बात, त्रीजा सरग तणो अवदात।[1]

अन्तिम अर्थात् सातवें सर्ग की कुछ पंक्तियाँ नमूने के रूप में उद्धृत हैं--

सीताराम तणउं निरवांण, पुण्ययोगि चडीउ परिमांण,
सीता पुहंती सुष सुं सरग, अवतरइ हुइ सप्तम् सर्ग।
पूनिमगछ गिरुउ गणधार, श्री देवतिलक सूरीसर सार,
तस पटि न्यांनतिलक सूरीस, जपतां, पूजइ सयल जगीस,
तास सीस सूरीसर सार, हेमरत्न इम कहइ विचार,
सील तणइ फल सीताचरित्र, जे सुणतां हुइ पुण्य पवित्र।[2]

सीता चरित्र और गोरा बादल कथा आपकी प्रसिद्धि की दो आधारभूत रचनायें हैं। पद्मिनी के शील और गोरा बादल के स्वामी धर्म से संबंधित तथा चित्तौड़ की एक विख्यात ऐतिहासिक घटना और उससे सम्बन्धित दो महान् वीरों पर आधारित होने के कारण गोरा बादल को पर्याप्त लोक-प्रसिद्धि मिली। सीता चरित्र तो पहले से ही अतिशय प्रचलित और लोकप्रिय था, इसलिए इस पर आधारित रचना को प्रसिद्धि तो स्वयं ही प्राप्त होनी थी। कवि ने इन दोनों चरित्रों का चित्रण भी सुन्दर ढंग से किया है।

हेमराज--वि० १७वीं और १८वीं शताब्दी में पाँच हेमराज मिलते हैं, जिनमें परस्पर कुछ सम्बन्ध हैं और कुछ साहित्यकारों ने इनके भ्रमपूर्ण विवरण दिए हैं। इनमें पांडे हेमराज बहुत प्रसिद्ध हैं अतः सर्वप्रथम उनका विवरण दिया जा रहा है--

पांडे हेमराज I--आप आगरा में रहते थे। इन्होंने महाकवि बनारसी दास के मित्र कौरपाल के निमित्त 'चौरासीबोल विसंवाद' लिखा था; यथा--

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० १७ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग २ पृ० १८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगर आगरे में बसे, कौरपाल सज्ञान,
तस निमित्त कवि हेम ने, किए कवित परिमान।[1]

(विक्रम) १७वीं शताब्दी में दिगम्बरों और श्वेताम्बरों में परस्पर विवाद हुआ। इस सिलसिले में यशोविजय उपाध्याय ने 'चौरासी दिगपट बोल' लिखा था। पांडे हेमराज ने उसी के प्रत्युत्तर में 'चौरासी बोल विसंवाद' की रचना आगरा में की थी। महाकवि दौलतराम जब आगरा गये थे तब उनकी भेंट पाण्डे हेमराज से हुई थी और उन्होंने इनकी प्रशंसा में लिखा--

हेमराज साधर्मी भलें, जिनवच मानि असुभ दलमलै,
अध्यातम चर्चा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै।

गद्य में आपने प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नयचक्र और गोम्मटसार पर बालावबोध लिखे। इनकी गद्य शैली पर आगरे की भाषा-शैली के साथ पंडिताऊपन का प्रभाव भी दिखाई देता है, यथा--

धर्म द्रव्य सदा अविनासी टंकोत्कीर्ण वस्तु है। यद्यपि अपणें अगुर लघु गुणनि करि षटगुणी हानि वृद्धि रूप परिणवै है। परिणाम करि उत्पाद व्यय संयुक्त है तथापि अपने ध्रौव्य स्वरूप सो चलता नांही, द्रव्य तिसही नाम है जो उपजै विनसै थिर रहै।"[2] आप गद्य साहित्य के लोकप्रिय लेखक थे, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय की भाषा-टीकायें स्वाध्याय प्रेमियों में बहुत लोकप्रिय रही हैं।

हेमराज II--वि० १८वीं शताब्दी में एक हेमराज नामक भिन्न कवि हो गये जिन्होंने सं० १७२५ में 'दोहाशतक' की रचना की है। इनका जन्म सांगानेर में हुआ था। ये आगरावासी हेमराज से भिन्न हैं। इन्होंने पांडे हेमराजकृत 'प्रवचनसार' का पद्यानुवाद किया है। इसलिए प्रवचनसार का कर्त्ता समझ कर कई बार इन दोनों को एक मानने का भ्रम भी हो जाता है।[3] इन दोनों में रचनाकाल का अन्तर भी बहुत मामूली है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०९७ ८९ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ३४६ (द्वितीय संस्करण)।

२. डा० हुकुमचन्द भारिल्ल--'राजस्थानी गद्य साहित्यकार' नामक लेख, राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २४८ पर संकलित।

३. राजस्थानी जैन साहित्य पृ० २१६ (गंगाराम गर्ग का लेख)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७वीं शताब्दी में दो अन्य हेमराज नामक कवियों का उल्लेख मिलता है।

हेमराज III—जीवराज के शिष्य थे। इन्होंने सं० १६०९ में दीपावली के दिन 'धन्नारास' को पूर्ण किया जिसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> अे चरम जिनवर संघ जइकर भावसिउ गुरु गाइया,
> कर्मकठिन चूरिन्यान परि अनन्त सुख ते पाइया।
> जीवराज ऋषि शिष्य सुण मुनिवर हीमराज वषाणीइं,
> रचिउ तेह सान्निद्ध धरीय गुण बुद्धि हरष हियडइ आणीइं।
> सुत नेहाली दिन दीवाली संवत सोल नवोतरइ,
> नरनारी समकितधारी गाइ भवसमुद्रलीलातरइ।[1]

आपकी दूसरी रचना 'बुद्धिरास' (गाथा ५५) सं० १६२० श्रावण में रची गई।

हेमराज IV—श्री देसाई ने हेमराज वाचक का उल्लेख किया है जो विजयकीर्ति के शिष्य कहे गये हैं। इन्होंने सं० १६०९ में ही खरतर-गच्छीय जिनमाणिक्य के समय विक्रमनगर में कालिकाचार्य की कथा लिखी। यद्यपि धन्नारास के लेखक और कालिकाचार्य कथा के लेखक हेमराज ही हैं और सं० १६०९ में ही दोनों रचनायें की गईं इसलिए संभावना यह भी है कि ये दोनों एक ही व्यक्ति हों, बस गुरुपरम्परा को लेकर शंका है, यदि इसका समाधान हो जाय, तो ये दोनों लेखक एक हो सकते हैं। जो हो, ये दोनों १७वीं शताब्दी (विक्रमीय) के लेखक हैं।

हेमराज V—एक अन्य हेमराज १८वीं शताब्दी में और हो गये हैं जो क्षेमकीर्ति शाखा के साधु लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य थे। बाद में इन हेमराज का दीक्षोपरान्त नाम लक्ष्मीवल्लभ हो गया था। ये 'राजकवि' उपनाम से कवितायें करते थे। इनकी भी अनेक रचनायें उपलब्ध हैं

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २०२, भाग ३ पृ० ६७४ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ४४-४५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे हेमराज बावनी, दूहा बावनी[1]। पता नहीं १८वीं शताब्दी के दोहा-शतक के लेखक और दूहाबावनी के लेखक भी एक ही व्यक्ति हैं या दो भिन्न कवि हैं ?

इन पाँच हेमराजों में पाण्डे हेमराज सर्वप्रसिद्ध और विख्यात साहित्यकार हैं। शेष चार में से दो १७वीं और दो १८वीं शती के के लेखक हैं। १७वीं शताब्दी के हेमराजों से १८वीं शताब्दी के हेमराजों का पृथकत्व दिखाने के लिए ही उनका नामोल्लेख (१८वीं शताब्दी वाले) कर दिया है, पूर्ण विवरण १८वीं शताब्दी के साथ ही दिया जायेगा।

हेमविजय गणि—आप तपागच्छीय कमल विजय के शिष्य थे। आपने अपने गुरु की स्तुति में 'पं० कमलविजय रास' लिखा है जो ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३ (संशोधक श्री विजयधर्मसूरि) पृ० १३७-१३८ पर छपा है। कमलविजय का सं० १६६१ आषाढ़ कृष्ण १२ को महेसाणा में स्वर्गवास हुआ था अतः यह रचना भी उसी वर्ष और उसी स्थान में की गई होगी। रास के अनुसार कमलविजय का जन्म मारवाड़ स्थित द्रोणाऊ नामक स्थान में गोविन्दशाह की पत्नी गोलम दे की कुक्षि से हुआ था। इनके बचपन का नाम केल्हराज था। १२ वर्ष की अवस्था में पिता का स्वर्गवास हो जाने पर अमरविजय नामक साधु के उपदेश से इन्हें वैराग्य हुआ और दीक्षित हुए, सं० १६१४ में विजयदानसूरि ने इन्हें गान्धार में पण्डित पद प्रदान किया।

यह रास कुल १०८ कड़ी का है। रास के अन्त में कवि ने लिखा है—

जस वैराग्य बर वानगी वासना शरवर,
सुविहित जती रिदय राखी।
जस संवेग रस सरस सवि पाछिला,
साधु गुणरासिनो हुउ साखी।
रूपरेखा धरो असम समरस वरो साह,
गोविंद सुत साधु सीहो।

१. राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहत कवि हेम थिर पेम अे,
श्री गुरो होऊ मह मुहकरो अमिय जी हो।[1]

इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिये—

सरस वचन रस वरसती, सरसति कविअण माय,
समरिय नियगुरु गायस्युं पंडित प्रणमिय पाय।

कवि ने लिखा है कि वह इस रास में 'निअगुरु' अपने गुरु अर्थात् कमलविजय की कीर्ति का गान कर रहा है। आगे लिखा है—

कमलविजय कोविद तिलक सुविहित साधु सिंगार,
तास रास रलिआमणो, भणतां जय जयकार।[2]

नेमिजिन चंद्रावला—(४४ कड़ी) इसमें भी कवि ने अपने को कमल विजय का शिष्य कहा है। आपकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है तपागच्छीय आनन्दविमलसूरि की परम्परा में शुभविमल> कमलविजय के आप शिष्य थे। इन्हें श्री नाथूराम प्रेमी[3] ने हीरविजय का प्रशिष्य और विजयसेनसूरि का शिष्य बताया था। उसी आधार पर डा० प्रेमसागर जैन[4] और डा० हरीश[5] आदि ने भी विजयसेन का शिष्य लिखा है। हेमविजय ने विजयसेन सूरि की प्रशंसा में 'विजयप्रशस्ति' नामक एक रचना संस्कृत में लिखी है। इन्होंने हीरविजयसूरि की स्तुति में भी कई स्तुति, स्तवन संस्कृत में लिखे हैं। इनमें से एक शत्रुञ्जय पहाड़ के शिलालेख में टंकित है। इसमें ६७ श्लोक हैं। इन्हीं सबके आधार पर इन्हें विजयसेन का शिष्य मान लिया गया होगा।

वस्तुत हीरविजयसूरि और विजयसेनसूरि अत्यन्त प्रभावशाली सूरि थे। आणंदविमल की कोई परम्परा नहीं चली। इसलिए इन्हीं दोनों का नाम अधिक प्रचलित हो गया। हीरविजय से सं० १६३९ में

---

१. ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३ पृ० १३७-१३८ और जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० ३९५ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १-२ (द्वितीय संस्करण)

२. वही

३. श्री नाथूराम प्रेमी—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (१९१७) पृ० ४८

४. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १५६-१५७

५. डा० हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी सेवा पृ० १२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो बार सम्राट अकबर मिला और जगद्गुरु की पदवी दी, इसी प्रकार विजयसेन से भी सं० १६५० में मिला और 'सवाई' विरुद प्रदान किया। इसलिए इनका प्रभाव गच्छ में अत्यधिक बढ़ गया था। हेमविजय ने संस्कृत के अतिरिक्त मरुगुर्जर में भी इन दोनों पर कई स्तुति-स्तवन लिखा था। मिश्र बन्धु विनोद में इनके सं० १६६६ के बनाये कुछ ऐसे पदों का उल्लेख मिलता है।[1]

नेमिजिन चंद्रावला का अन्तिम छन्द इस प्रकार है--

तपगछ मंडण हीरलोरे, हीरविजय मुनिराज,
नाम जपतां जेहनुं रे सीझे सगला काज।
सीझे सगला काज, सीझेसगला काज नी कोडी,
तेहने नमे सदा कर जोड़ी।
पंडित कमलविजयनो सीस, हेमविजयमुनि द्यो आसीस।[2]

आप नेत्रहीन थे अतः सूरदास की तरह आपके पदों में मार्मिक स्वानुभूति झलकती है उदाहरणार्थ नेमिनाथ पद की निम्न पंक्तियाँ देखिये—

घनघोर घटा उनयी जुनई, इततै उततै चमकी बिजली,
पियुरे पियुरे पपिहा विललाति,
जु मोर किंगार करंति मिली।
बिच विन्दु परे दृग आंसु झरै,
दुनि धार अपास इसी निकली।
मुनि हेम के साहब देखन कूं,
उग्रसेन लली सु अकेली चली।

इस पर कृष्ण भक्ति की श्रृङ्गारी रीति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है और रीतिकाल के एक प्रसिद्ध सवैये से यह पर्याप्त मेल खा रहा है। प्रसिद्ध कवि ऋषभदास ने अपनी रचनाओं—हीरविजय रास, कुमारपाल रास आदि में इनको सादर स्मरण किया है। अतः आप एक प्रतिष्ठित और स्थापित कवि सिद्ध होते हैं। आप संस्कृत एवं मरुगुर्जर (हिन्दी) के अच्छे कवि-साहित्यकार थे।

एक अन्य हेमविजय (ii) ने, जो कल्याण विजय के शिष्य कहे गये हैं, कथारत्नाकर की रचना दस तरंगों २५० गाथाओं में सं०

---

१. मिश्रबन्धु—मिश्रबन्धु विनोद भाग १ पृ० १६७
२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६५७ में की। इनके गुरु के सम्बन्ध में कहीं विजयसेन, कहीं कल्याणविजय और कहीं-कहीं कमल विजय नाम भी मिलता है। इसलिए यह संभव है कि कथारत्नाकर[१] के लेखक हेमविजय और कमलविजयरास के लेखक हेमविजय एक ही व्यक्ति हों। यदि ऐसा हो तो आप अच्छे कवि और श्रेष्ठ कथाकार भी माने जायेंगे किन्तु इस दिशा में पर्याप्त शोध की अपेक्षा है।

• हेम श्री (साध्वी)—बड़तपगच्छीय धनरत्न के शिष्य अमररत्न और प्रशिष्य भानुमेरु थे। आप इन्हीं भानुमेरु के शिष्य नयसुन्दर की शिष्या थी। आपने सं० १६४४ वैशाख कृष्ण ७ मंगलवार को ३६७ कड़ी की विस्तृत रचना 'कनकावती आख्यान' लिखा, जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं--

सरसति सरससकोमल वाणी रे,
सहि गुरु केरी सेवा पांमीरे।
श्री जीनचरणे सीस ज नामी रे,
सेवक ऊपरि बहु हीत आणी रे।
सेवापांमी सीस नांमी गांऊ मनइ ऊलट घणइ,
कथा सरस प्रबंध भणसु, सूजन मनइ आणंद नी।
कनकावती नी कथा रसीली चतुरनां चतरंजनी,
वैद्यक रस कस गुणी नर जे तेहनां मनमोहणी।

इसमें उपरोक्त गुरुपरंपरा दी गई है। रचनाकाल इस प्रकार कहा गया है--

संवत सोलह चुआलइ संवच्छरि, वैशाष वदि कुजवार,
सातमइ दनि सूभ मुहरतइ योगइ, रचउ आख्यान अे सार।

अन्त भणइ गुणइ सांभलि जे नरि, तेह घरि मंगलच्यार,
हेम श्री हरषइ ते बोलइ, सूख संयोग सूसार।[२]

जीन, (जिन), हीते, (हित) चत (चित), दनि (दिन), सूभ (शुभ) सूजन (सुजन) आदि अशुद्ध प्रयोगों की भाषा में भरमार है। रचना सामान्य कोटि की है। कनकावती की कथा के माध्यम से नारी के शील का माहात्म्य दर्शाया गया है।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ८८२ (प्रथम संस्करण)
२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २८६, भाग ३ पृ० ७७७ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० २३०-२३१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेमसिद्धि--आपने 'लावण्यसिद्धि पुहतणी गीतम्' और 'सोमसिद्धि निर्वाण गीतम्' नामक दो रचनायें की हैं। प्रथम गीत के अनुसार लावण्यसिद्धि वीकराज की पत्नी गूजर दे की कुक्षि से पैदा हुई थी और आप पुहतणी रत्नसिद्धि की पट्टधर थी। द्वितीय गीत के अनुसार सोमसिद्धि नाहर गोत्रीय नरपाल की पत्नी सिंघा दे की कुक्षि से पैदा हुई थी। आपका बचपन का नाम संगारी था और आपका विवाह जेणासाह के पुत्र राजसी के साथ हुआ था। १८ वर्ष की अवस्था में वैराग्य हो गया और दीक्षोपरान्त आपका नाम सोमसिद्धि पड़ा। आपने लावण्यसिद्धि से विद्याभ्यास किया और उनकी पट्टधर थी। दोनों रचनायें ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह में प्रकाशित हैं। उनकी कुछ पंक्तियाँ नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं। लावण्यसिद्धि पुहतणी गीतम् की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिये--

आदि जिणेसर पय नमी, समरी सरसति मात,
गुण गाइसु गुरुणी तणां त्रिभुवन मांहि विख्यात।

इससे लगता है कि हेमसिद्धि लावण्यसिद्धि की शिष्या रही होंगी।

संवत सोरहसइ वासट्ठि पहुती, सरग मझारि,
जय जय रव सुरगण करइं धन गुरुणी अवतार।

दूसरी रचना सोमसिद्धि निर्वाण गीतम् का आदि इस प्रकार है—

सरस वचन मुझ आपिज्यो, सारद करि सुपसायो रे,
सह गुरणी गुण गाइसुं मनधरि अधिक उमाहो रे।

इन पंक्तियों से प्रतीत होता है कि सोमसिद्धि हेमसिद्धि की सहगुरुणी थीं। इस गीत की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

चन्द्र सूरज उपमा दीजइ (अधिक) आणंदो रे,
पहुतीणी हेमसिद्धि इम भणइ, देज्यो परमाणंदो रे।[1]

हेमानन्द—खरतरगच्छीय हर्षप्रभ के शिष्य हीरकलश के आप शिष्य थे। आपने अंग फुरकण चौपाई (सं० १६३९), वैताल पचीसी चौपइ (सं० १६४६) भोजचरित्र चौपई (सं० १६५४ भदाणइ) और

1. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशारणभद्र भास (गा० ५६०) सं० १६५७, रहवडिया नामक रचनायें की हैं।[1] इनका संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है--

अंगफुरकण चौपाई' २२ कड़ी, सं० १६३६, दशरा।

आदि श्री हरषप्रभु गुरुपय बंदि, जोडिस हूँ चौपइ छंद,
नरनारी ना अंग उपंगा फुरै, तासु फलाफल चंग।

अन्त संवत नंद भवण रस चंद, दसरा है दिन हेमानंद,
कही बात फुरकण तणी, आगम बाण जिसी गुरुभणी।[2]
वैतालपचीसी चौपाई सं० १६४६ इन्द्रोत्सव।

आदि प्रणम्य देवदेवं च वीतरागं सुरार्चितं,
लोकानां च विनोदाय, करिष्येऽहं कथामिमां।
नत्वा सरस्वती देवी श्वेताभरणभूषितां,
पद्मपत्रविशालाक्षी नित्यंपद्मासने स्थिता।

इसमें विक्रमादित्य और वैताल से सम्बन्धित २५ कथायें हैं। २५वीं कथा के अन्त में कवि ने लिखा है—

इति वेताल पंचिसीयै विक्रम नै वैताल,
कथा कही पंचवीसमीहेमाणंद रसाल।

इसका रचनाकाल अन्तिम प्रशस्ति में इस प्रकार दिया गया है--

इति श्रीय विक्रय वैताल ही कहि अेह वात पचीस अे,
तिण विघह सोलेसैं छपासैं इन्द्र उत्सव दीस अे।
गुरु हीरकलस पसाय करि नै हेमाणंद मुणि उत्तमपुरी,
तिह रचीय वात विनोद नी ते सयल सज्जन सुषकरी।[3]

'भोजचरित्र रास या चौपाई' (५ खंड १०२१ कड़ी, सं० १६५४ कातिक प्रथम दिवाली, भदांणा)

आदि समरिय सरसति सुगुरुपय, वंदिय जिणचंदसूरि,
कहिसु कथा हुं भोज नृप, आणी आणंद पूरि।

इसमें धर्म पूर्वक दान का माहात्म्य भोजचरित्र के माध्यम से दिखाया गया है।

---

१. अगरचन्द नाहटा परंपरा, पृ० ७५
२. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४३ (द्वितीय संस्करण)
३. वही भाग २ पृ० २४०-२४३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा-- जिनसासण शिवसासणइ, धरमहि दान उदार,
दीधउ जिण परि तिण परइ सफल करइ संसार।

इसमें खरतरगच्छ के आचार्य जिनमाणिक्यसूरि एवं युगप्रधान जिनचंद्रसूरि का तथा उनकी सम्राट अकबर से भेंट का और उस भेंट के मध्यस्थ मंत्री कर्मचन्द आदि का वर्णन किया गया है। इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्व है। अकबर और जिनचंद्रसूरि की मुलाकात का सन्दर्भ निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है--

पाति साहि श्री अकबर राजि, करमचंद्र मंत्री तसु काजि,
लाभ देखि लाहौर बुलाइ, पातिसाह सिउ लियो मिलाइ।
सोलह सइ गुण(प)चासइ वास,
वदि दसमी ने फागुण मास,
युग प्रधान तेह पदवी देइ, फागुण सुदि तिम बीज लहेइ।
मानसिंह श्री जी भाइयउ, आचारिज पदवी ठाइयउ,
श्री जिनसिंह सूरि द्यौनाम, करमचंद तिह खरच्या दाम।
जुग प्रधान आचारिज बिवे, उदयवंत हुइयो संघ सवे।

रचनाकाल, गुरुपरंपरा एवं रचना स्थान से सम्बद्ध पंक्तियाँ निम्नांकित हैं--

हरष प्रभु नामइ मुणिराइ, हीरकलश तसु सीस कहाइ,
सीस तासु मुनि हेमाणंद, तिणि मनि आंणी अधिक आणंद,
संवत सोलह सै चउपनइ, कातिय प्रथम दिवाली दिनइ।
गाम मदांणे वांन वरीस, वसुधा वर धारु मंत्रीस,
× × ×
तास पाटि मंत्री गोपाल, दानपुण्य ते अधिक रसाल,
तिणि वयणे अे भोजप्रबंध, कहिउ संक्षेपे चउपइ बंध।[1]

दशार्णभद्र भास (५६ कड़ी सं० १६५८ फाल्गुन शुक्ल १५ रउवडीआ)

रचनाकाल--सुगुरु आदेसइ विचरता सोल अठावन वास रे,
भवियण तणइ आग्रह करी, रहवडीआ रहिया चउमासरे।
मास कातिग सुदी पूनमइ, हीरकलश सुगुरु सीसरे,
भास हेमाणंदमुनि कही, प्रवचनवचनजगीस रे।[2]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० २४०-२४३ (द्वितीय संस्करण)
२. वही, भाग १ पृ० २८८-२८९ और भाग ३ पृ० ७८०-७८३ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त अेह रिषि श्रावक गुण थुणइ, छ पय आवस्यक साजि रे,
मंगलकारक तिणि भणी, रिद्धि नइ वृद्धिसिद्धि काजि रे,
श्री खरतरगछि राजियउ श्री जिणचंद्रसूरीस रे,
श्री जिनसिंहसूरि तसुपाटइं, विजय राजइ निसिदीस रे।

हंसभुवनसूरि—आपके सम्बन्ध में अधिक विवरण नहीं उपलब्ध हो सका है। आपने सं० १६१०, छवीआर में ४६ कड़ी की एक रचना 'पार्श्वस्तव' नाम से की जिसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

शासनदेवी मनधरी अे, गाऊं पास जिणंद,
शंखेश्वरपुर मंडणो अे, दीठे परमाणंद।

रचनाकाल—संवत् (१६१०) सोलदसोत्तरे अे, तवन रचीयूं सार,
श्री संभवनाथ पसाउले अे छवीआर नयर मझार।

अन्त त्रणेकाल पूजे सदा अे, संखेश्वर श्री पास,
श्री हंसभुवन सूरि अेम भणे अे, पूरे मननी आस।

कलश की दो पंक्तियाँ—

जे जन आराहे श्याम ध्याये पाप जाअे भव तणां,
हंसभुवन सूरि इम जंपे शाश्वता सुख दे घणां।[1]

हंसरत्न—बिबदणीक गच्छ के सिद्धिसूरि आपके प्रगुरु और हंसराज गुरु थे। आपकी कृति का नाम रत्नशेखर रास अथवा पंचपर्वी रास है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

सरसति दिउमुझ वाणी, साकर अमिय समाणी,
हूं अति मूढ़ अइनाण, सहिगुरु करुंअ प्रणाम।

आगे बिबदणीक गच्छ और सिद्धिसूरि की स्तुति की गई है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

गोयम लवधि गणधरु अे मा०, पंडित श्री हंसराज,
मिथ्या ताव निवारिउ अेमा०, सारिउ माहरु काज।

1. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६६२ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ४७-४८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नर नारी नित जे गुणइ अे मा०, रत्नशेषर नृप रास,
नवनिधि तेह धरि संपजइ अे मा०, सरसति पूरअे आस ।
सासनदेविय सानिधि अेमा०, बोलइ हंसरतन,
पूरि मनोरथ मनतणा अे मा० थंभण पास प्रसन्न ।[1]

आपकी किसी अन्य रचना का पता नहीं चल पाया है ।

हंसराज I--आप तपागच्छीय हीर विजयसूरि के शिष्य थे । आपकी दो रचनायें प्रकाशित हैं, १. (महावीर) वर्धमान जिन (पंच-कल्याणक) स्तव (१०० कड़ी सं० १६५२ से पूर्व) आदि--

सरसति भगवति दिउ मति चंगी, सरस सुरंगी वाणि,
तुझ प्रसादे माय चित्तधरूं जिनगुण रयणनी खाणि ।
गिरुआ गुण वीरजी गाइस त्रिभुवनराय,
जस नामें घरि मंगलमाला चित्त धरें बहु सुखथाय ।

अन्त इय वीर जिनवर सयल सुखकर नामें नवनिधि संपजे,
घरें ऋद्धि वृद्धि सिद्धि पामें, अेकमन जिनवर भजे ।
तपगच्छ ठाकुर गुण विरागर हीरविजय सूरीश्वरु,
हंसराज वंदे मन आणंदे, कहे धन मुझ अेह गुरु ।[2]

यह रचना 'चैत्य आदि संज्झाय' और अन्यत्र भी प्रकाशित हैं । आपकी दूसरी रचना 'हीरविजयसूरिलाभ प्रवहण संझाय ७२ कड़ी' की है और खंभात में रची गई थी । यह 'जैनयुग' पुस्तक संख्या ५ ज्येष्ठ-श्रावण सं० १९८७ अङ्क में प्रकाशित है । इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं---

प्रथम जिणेसर मनि धरुं समरुं सरसति माय,
गुण गाऊं तपगछपती, जास नामि सुख थाइ ।

अन्त खंभनगरनुं संघ वइरागर, पंचविधि दानदातार,
कनकचीर सोनहरी गंठोडा, वरसइ जिम जलधार रे,
जिहां जिहां गुरुनी आज्ञा वरतइ, तिहां तिहां उत्सव थावइ,
दिन दिन चढ़तइ रंग सोहावइ, हंसराज गुण गावइ रे ।[3]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १५०६-७ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० १७७ (द्वितीय संस्करण)

२. वही भाग ३ पृ० ८०५-६ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० २७७ (द्वितीय संस्करण)

३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपकी दोनों रचनायें तीर्थङ्कर और गुरु भक्ति की भावना से ओत-प्रोत हैं। यह भक्तिकाल का व्यापक प्रभाव था जिसके फल-स्वरूप उस काल की जैन रचनाओं का भी प्रधान स्वर भक्तिभाव पूर्ण था।

हंसराज II--आप खरतरगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। 'ज्ञान बावनी' आपकी प्रसिद्ध रचना है जिसकी अनेक प्रतियाँ राजस्थान और गुजरात के ज्ञान भाण्डारों में उपलब्ध हैं। भक्ति एवं वैराग्य भाव से परिपूर्ण ५२ पद्यों की यह सुन्दर रचना है। भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है, यथा--

ओंकार रूप ध्येय गेय न कछु जानें,
पर परतत मत मत छहुं मांहि गायो है।
जाको भेद पावै स्यादवादी और कह्यो जानै,
मानै जातै आपा पर उरझायो है।[1]

आपकी इस रचना का समय एवं आपके सम्बन्ध में अधिक विवरण नहीं ज्ञात हो सका है किन्तु श्री मो० द० देसाई ने इन्हें १७वीं शताब्दी का लेखक बताया है और इनकी एक गद्य कृति का उदाहरण भी दिया है जिससे इनका पद्य के साथ गद्य लेखक होना भी प्रमाणित होता है। इनकी गद्य रचना का नाम है 'द्रव्य संग्रह बालावबोध'। यह पुस्तक सं० १७०९ से पूर्व लिखी जा चुकी थी अतः निश्चय ही यह १७वीं शताब्दी की रचना होगी। यह रचना मूलतः दिगम्बर विद्वान् नेमिचन्द्र की कृति 'द्रव्य संग्रह' का बालावबोध (टीका) है। इसके प्रारम्भिक श्लोक से लेखक हंसराज II हिन्दी के साथ संस्कृत के भी ज्ञाता प्रतीत होते हैं, यथा--

द्रव्यसंग्रह शास्त्रस्य बालाबोधो यथामति हंसराजेन
मुनिना परोपकृतये कृतः। पौर्वा पौर्व विरुद्धं यल्लिखितं
मयका भवेत, विशोध्यंधीमता सर्वतदाध्नाय कृपां मयि।
खरतर गच्छन भोगणतरणीनां वर्द्धमान सूरीणां,
राज्ये विजयनिनिष्टा नीतोय सहसि मासेव।[2]

---

१. हरीश शुक्ल—जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पृ० १२६

२. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ खण्ड २ पृ० १६२४ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञात कवियों द्वारा रचित कृतियों का विवरण

'नागिल सुमतिरास'—(१०७ कड़ी सं० १६४०) का प्रारम्भ—

वीर जिणेसर पाअ नमी, पूछइ गोयम स्वामी,
किम सुमति भव मांहि भम्यो, नागिल किमसिवठाणि।
कुगुरु संग सुमति किउ, तु भव भम्यो अनन्त,
नागिल ते पुण परिहरिउ, जुओ पाम्यो भव अन्त।

रचनाकाल—संवत सोलच्यालइ वली रास रच्यु उदारु रे,
भणइ गुणइ जे सांभलइ तेह लही सुखबारु रे।[1]

'धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपाई' (सं० १६०८ से पूर्व)[2]

इसका कोई उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका।

'मालवी ऋषिनी संझाय अथवा गीत' (सं० १६१६ भाद्र ५, देवास)

आदि गोयम गणहर ग्यानवंत,
मुनिवर चउदसहस ऋषि मूल गुअे,
तास तणा पयअ नमी क्रोध लोभ,
उपशमी अे कवित्ति इंद्रभूतिऊलगूअे।

रचना स्थान एवं समय—

मालव देश माध्य देवास गाम,
निधि जेहनी परसिद्धि जणीइ अे,
तेहनउ देसघणी ऋद्धि छइ जांस घणी,
शिल्लादीन राय वखाणीइ अे।
संवत रे सोल वली सोलोत्तरइ रे गायु
भाद्रव मासि, पंचमी दिनइ रे,
भणतां रे सुणतां सुख सवि संपजइ रे,
श्री संघनइ जइकर, अेकइमनिइरे।
अेहवउगिरुउ रे मालवी ऋषिवर राजिउरे।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६५३ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १८ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ६५९ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ४२ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु जेहनइ मलराज मानीइ सवि काजि,
जयवल्लभ गुरु राजीइ ओ।
चौद विद्या निधि भोगवइ राजरिधि,
गुणनिधि गुरुअडि गाजीउ ओ।[1]

'धन्ना शालिभद्र रास' (रंगवी संघवी का पुत्र)

यह रचना कदाचित ऋषभदास की हो।[2]

रचनाकाल--संवत सोल चउवीसासार, आसो सुद ७ आदितवार,
रंगवी संघवी नो सुत ज बोलि,
ओह सरलोक मेरुनितोलि।

जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २४१ पर ऋषभदास के पिता सांगण संघवी का उल्लेख है। संभव है कि यहाँ सांगण के स्थान पर 'सगवी' शब्द पाठ दोष या लिपि दोष से आ गया हो और समय १६२४ न होकर २०×४=८० अर्थात् १६८० होतो यह रचना ऋषभदास की हो सकती है।

सीता प्रबन्ध--(शीलविषयक) ३४९ कड़ी, सं० १६२८ रणथंभौर।

इसका 'आदि' इस प्रकार है—

सकल मनोरथ सिधवर, प्रणमीय श्री वर्धमान,
सील तणां गुण वर्णवउं, पहुवी प्रसिद्ध प्रमाण।

इसमें शील का महत्व दर्शाया गया है, यथा—

सील प्रभावि अग्नि टली, थापइ निरमल नीर;
सीता जिम प्रभावि हुयउ, कहिसुउ ते वर धीर।

सीताराम की जिनदीक्षा के सम्बन्ध में कवि लिखता है--

तव ते राम नि सीता बेय, वैरागि जिन दृख्या लेय,
जप तप संयम पालिउ, खरउ रामि कर्मक्षय कर्यउ।

रचनाकाल--संवत सोल अठवीसा वर्ष,
गढ़ रणथंभर अतिहि जगीसइ।

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ६७६-६७७ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० ४२ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग २ पृ० १३९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साह चोखा कहणथा कीयउ,
सेवक जननि सिवसुख दीयउ।[1]

श्रीदत्त रास (२३० कड़ी सं० १६४१, धनतेरस)

आदि मंगल मंगल करण सिद्धायग अे
वीरह वीर तणी रखवालि, के
सुवचन संपद दायका अे सुन्दर रूपनी आलिके,
मंगलकरण सिद्धायका अे।

रचनाकाल—संवत शांतिमित एक तालइ रचिउ,
मास दीपालिका द्वितीय पक्ष,
दिवसि धनतेरसि पूरण मनरसि,
वार ते वाणीउ जाणि दक्ष।

अन्त श्री दत्त चरितवर भाव स्यूं रचित अे,
खचित वैराग्य रयणे सुसारं,
जे सुणइ नारिनर मन करी ततपर,
अजर अमर लहि पद उदारं।[2]

श्रीदत्त के चरित्र के दृष्टान्त द्वारा इस रचना में वैराग्य का भाव पुष्ट किया गया है।

सदयवच्छवीर चरित्र (सं० १६५२ से पूर्व)

हर्षवर्द्धन गणि ने संस्कृत में 'सदयवत्स' कथा लिखी थी। यह उसी पर आधारित एक मरुगुर्जर रचना है। इसकी हस्त प्रति सं० १६५२ की लिखित उपलब्ध है। अतः उससे पूर्व किसी समय लिखी गई होगी परन्तु रचनाकाल निश्चित नहीं है।[3]

आदित्यवार कथा (१५८ कड़ी)

कवि संभवतः दिगम्बर रहा होगा। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ७२९-३० (प्रथम संस्करण) भाग २ पृ० १५४-५५ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ७६४ (प्रथम संस्करण) और भाग २ पृ० १९१-१९२ (द्वितीय संस्करण)
३. वही भाग १ पृ० ४८१ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० ११८ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिसहनाह प्रणमों जिणंद, प्रसन्न चित्त होइ आणंद,
प्रणमुं अजित पणासइ पाप, दुखदालिद्र भय हरइ ताप ।[1]

ऊदर रासो (गाथा ६५ सं० १६८० के पश्चात्)

यह कवि खरतरगच्छीय प्रतीत होता है। इसने गणेशवंदना भी की है, यथा--

शुंडाला उमयासुतन मुख दन्तूसल मेक
कहै जिमतौ तूठै कहां, उदर रासो अेक ।

रचनाकाल--संवत सोल असी अै समै उंदर हुआ अनेक,
मारण कजिन हुइ मिनी, हुओ न अहरु अेक ।[2]

इसकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव अधिक है।

सरस्वति अथवा 'भारती' अथवा 'शारदा छंद' (४४ कड़ी, सं०१६८४, आशो सुद १५, गुरुवार)

आदि सकल सिद्धि दातारं, पार्श्वं नत्वा स्तवाम्यहं,
वरदां शारदा देवी, सुख सौभाग्य कारिणीं ।

रचनाकाल--संवत चन्दकला अति उज्जल,
सायर सिद्धि आसो सुदि निर्मल,
पूनिम सुरु गुरुवारि उदार,
भगवति छन्द रच्यो जयकार ।

जैसा कि इस कृति के नाम से ही स्पष्ट है, इसमें सरस्वती की वंदना की गई है, जैसे--

सारद नाम जपो जग जाणं, सारद नाम गाउ सुविहाणं,
सारद आयइं बुद्धि विनाणं, सारद नामइं कोडि कल्याणं ।[3]

मनोहर माधव विलास अथवा 'माधवानल' (१९९ कड़ी, सं० १६८९ से पूर्व)

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ९८४-८५ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २१३ (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ९८९-९० (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २३३ (द्वितीय संस्करण)
३. वही भाग ३ पृ० १०१५-१६ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २५९ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माधवा नल कामकंदला की प्रसिद्ध कथा पर यह कृति आधारित है।

अन्त न्याइ भोग संभोगवी, निश्चइनारी रंग,
रतिपति इणि परि पूजीइ, चउविह माहव अंग।[1]

साधुकुल (१९ कड़ी, १७वीं शताब्दी)

आदि वंदी वीरजिनेश्वर पाय, मोह तणु जिणि फेडिउ वाय।
बोलु साधु असाधु गुण केवि, निसुणु भवीआ कान धरेवि।[2]

यह साधु असाधु का लक्षण बताने वाली लघुकृति है।

आदिनाथ स्तवन—कवि संभवतः दिगम्बर होगा।

आदि तुम तरणतारण भवनिवारण भविक मुनियानंदनो,
श्री नाभिनंदन जगतनंदन आदिनाथ··· ॥[3]

हंसाउली (पूर्वभव) रास पांचमो खंड (४५ कड़ी)

चउपट चंपानगरी सार, क्षित्रि त्रिणि वसइ उदार,
माहो मांहि अेवडी प्रीति, अेक अेकनइं चालइ चीति।[4]

जंबूस्वामी बेली (२७ कड़ी)

आदि कर जोड़ी प्रभवउ भणइ जंबुकुमार अवधारि,
विषयसुख भोगवि भला रंगिइं पंच प्रकारि।[5]

चौबीसी (३७ कड़ी तक अपूर्ण प्राप्त है)

३७वीं कड़ी इस प्रकार है—

कंथुनाथ श्री सम गणीस, साठि सहस्र वांदू प्रभ सीस,
गणधर गुरुआ वर पांत्रीस, तस पामे नित नामु सीस।[6]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० १०३८ (प्रथम संस्करण) और भाग ३ पृ० २८० (द्वितीय संस्करण)
२. वही भाग ३ पृ० ३५७ (द्वितीय संस्करण)
३. वही ३५७-५८ (द्वितीय संस्करण)
४. वही
५. वही
६. वही भाग ३ पृ० ३६०-३६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग धन्यासी कानडोनु पार्श्व स्तवन (सं० १६०८)

अंत संवत सोल १६०८ अठोतरि संवत्सरि की त्रिभवन उलास,
नयर बडोदरि राजपुर माहि
सकलमूरति श्री पास भवीयण कुतारि।

इनकी दूसरी रचना 'राग कानडोनुं स्तवन' खंडित रूप में प्राप्त है।[1]

जीव प्रतिबोध संज्झाय (४० कड़ी)

आदि तूं स्याणां तूं स्याणां वे जीयड़े, तूं स्याणां २ वे जीयडे।

अन्त तजि पन्द्रह परमाद विषैसुख निज्जर करहु सयाणा वे,
धर्म्म सकल धरि ध्यान अनूपम, लहि निज केवलनाणा वे।[2]

बारभावना संज्झाय (१२ कड़ी) और **तमाकु संज्झाय** (१५ कड़ी) भी अज्ञात कवि कृत रचनायें हैं जिनका रचनाकाल आदि भी अज्ञात है, बस वे केवल १७वीं शताब्दी की रचनायें हैं।

ऋषभदेव नमस्कार

आदि जगदानंद चन्द चतुर चिहु हंसि तुं चउपट,
परमेसर खरवष लख्यगु कोडि परगट।[3]

आदिनाथस्तवन (३१ कड़ी) और अमरसेन वयरसेन चौपाई आदि प्राप्त रचनायें हैं। इनमें 'श्रेणिक अभयकुमार चरित' (३४२ कड़ी) बड़ी रचना है। इसकी प्रारम्भिक दो पंक्तियां इस प्रकार हैं—

सोहावा श्री वीर जिनपाय पंकज प्रणमेसु,
श्रीणी अभयकुमार मित हुं संक्षेप कहेसि।[4]

आराधना (६५ कड़ी) और नवकाररास भी उल्लेखनीय रचनायें हैं। नवकार रास 'जैन प्राचीन संज्झाय संग्रह' में प्रकाशित है। इसका आदि इस प्रकार है—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३६०-३६१
२. वही
३. वही भाग ३ पृ० ३७९ (द्वितीय संस्करण)
४. वही भाग ३ पृ० ३८३ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहिलउ जी लीजइ श्री अरिहंत नाम,
सिद्ध सविनइ जी करूँ प्रणाम।
किरास भणिसि नवकार

अन्त पुहकवर तेह दीप मझारि, भरतषेत्र तिहा छइ रे विचार,
सिद्धवट परवत ढुंकडो वास,
इन्द्रपुरइ माहि तिहां रिष रहउ चउमास।[1]

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह का ३०वाँ 'भावहर्ष उपाध्याय गीत' अज्ञात कवि की रचना है। इसमें भावहर्ष का इतिवृत्त दिया गया है। वे शाह कोड़ा और उनकी पत्नी कोड़म दे के पुत्र थे। खरतरगच्छीय सागरचंद्रसूरि शाखा के साधु तिलक के आप प्रशिष्य एवं कुलतिलक के शिष्य थे। आपने खरतरगच्छ की सातवीं शाखा 'भावहर्षीयशाखा' का प्रवर्तन किया जिस की गद्दी बालोतरा में है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

श्री सरसति मति दिउ घणी, सुहगुरु काउ पसाय,
हरष करी हूं बीनवूं श्री भावहर्ष उवझाय।
सुरतरु जिम सोहामणा मनवंछित दातार,
हर्ष ऋद्धि सुख सम्पदा तरु श्रावण जल धार।[2]

इन पंक्तियों में रूपक अलंकार की शोभा द्रष्टव्य है। कवि सहृदय एवं काव्यशास्त्र से परिचित प्रतीत होता है। भाषा प्रांजल मरुगुर्जर है। इसमें कुल १५ छंद हैं। राग सोरठी में रचना निबद्ध है।

इसी प्रकार जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय (सं० मुनि जिनविजय) में किसी अज्ञात कवि की रचना 'तेजरत्नसूरि संज्झाय' संकलित है जिसमें तेजरत्नसूरि का विवरण दिया गया है। आप अंचलगच्छीय विधि पक्ष के आचार्य थे। आपका जन्म गुजरात में अहमदाबाद के निकट राजपुर के निवासी श्रीमाली वणिक रूपा की पत्नी कुंवरि की कुक्षि से हुआ था। बचपन का नाम तेजपाल था। भावरत्नसूरि के उपदेश से वैराग्य हुआ और सं० १६२९ आषाढ़ शुक्ल १० को दीक्षित हुए। सं० १६२५ में गच्छ नायक पद पर प्रतिष्ठित हुए और आपका नाम तेजरत्नसूरि पड़ा। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३८५ (द्वितीय संस्करण)
२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयल जिणेसर पयनमेवि सरसति समरेवि,
गणहर गोयम सामिनाथ नित चित्त धरेवि ।
अन्त सोभाग सुन्दर नित पुरंदर सुरगणे जिन अलंकरिउ,
तिम जपु तेजरत्न मुनिपति सयण संघ परिवरिउ ।[1]

गद्यसाहित्य

वि० १७वीं शताब्दी के गद्य लेखकों में एक ओर मरुगुर्जर की प्राचीन भाषा-शैली के प्रयोग और दूसरी ओर खड़ी बोली की नवीन भाषाशैली के प्रयोग के प्रति रुझान समान रूप से दिखाई पड़ती है। इन दोनों शैलियों में ब्रज भाषा के बढ़ते प्रभाव के कारण उसके शब्द-प्रयोग भी मिले-जुले मिलते हैं। यह शताब्दी गद्य लेखन की दृष्टि से भी जैन साहित्य का सम्पन्न काल है। इस युग के प्रसिद्ध कवियों में से कुछ ने गद्य भी लिखा है। उनकी गद्य रचनाओं का विवरण यथा-संभव उनकी पद्य रचनाओं के साथ ही इस खण्ड में देने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी कुछ अज्ञात लेखकों की अच्छी गद्य रचनाओं तथा कुछ ज्ञात लेखकों की भूली-भटकी रचनाओं की चर्चा छूट गई है, उनका विवरण यथाक्रम आगे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रसिद्ध कवि बनारसीदास के गद्य में उक्त दोनों शैलियों का नमूना मिल जाता है। इनकी रचनाओं में खड़ी बोली के विपुल प्रयोग पाये जाते हैं, यथा —

बरस एक जब पूरा भया, तब बनारसी द्वारे गया।

यह तुकबद्ध गद्य भी है और पद्य भी। इस भाषा शैली को समृद्ध बनाने के लिए बीच-बीच में मुहावरों, कहावतों, लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया गया है, यथा —

जैसा कातै तैसा बुनै, जैसा बोवै तैसा लुनै।

अथवा शुद्ध गद्य की यह पंक्ति, 'कहते बनारसी तथापि मैं कहूँगा कुछ, सही समझेंगे जिनका मिथ्यात्व मुआ है।[2] इसमें कर्ता, क्रिया और सर्वनाम आदि खड़ी बोली के प्रयुक्त हैं। इनकी प्राचीन शैली का एक नमूना परमार्थ वचनिका से देखिये — अथ परमार्थवचनिका

---

१. जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय (सं० जिनविजय मुनि) पृ० २११

२. कामता प्रसाद जैन — हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिख्यते', एक जीव द्रव्य वाके अनन्त गुण अनंत पर्याय। एक-एक गुण के असंख्यात प्रदेश, एक-एक प्रदेसनि विषै अनन्त कर्मवर्गणा, एक-एक कर्म वर्गणा विषै अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु, एक एक पुद्गल परमाणु विषै अनन्त गुण अनन्त पर्याय सहित विराजमान।[1] गद्य भाषा में क्रमशः लश्कर या उर्दू की शब्दावली प्रवेश पा रही थी। बनारसीदास की भाषा में गुनाह, खता आदि अनेक ऐसे शब्द प्रयुक्त हैं।

इस युग की एक गद्य रचना 'प्रद्युम्न चरित' की प्रति सं० १६९८ की लिखित जैन मन्दिर सेठ कूंचा, दिल्ली के शास्त्रभंडार में सुरक्षित है। यह गद्य रचना ७२ पत्रों की है। यह प्राचीन गद्य भाषा शैली की रचना है। खड़ी बोली में उर्दू मिश्रित नवीन गद्य शैली की एक पुस्तक कुतुबशतक या 'कुतुबदीन की बात' की सं० १६३३ की लिखित प्रति भी प्राप्त है जिसकी कुछ पंक्तियाँ आगे नमूने के रूप में दी जा रही हैं—

दिल्ली सहर सुरताण पेरोज साहि थाना,
बीबीयाँ लाज लोजइ बँधाना।
बाड़ीयाँ बेलियाँ नयणे दिखावइं,
सहिजादा आगइ सरकणइ न पावई।[2]

इसकी भाषा पर 'दक्खिनी' भाषा शैली का प्रभाव देखा जा सकता है। सहजकुशल कृत 'सिद्धान्त हुण्डी' और मेरुसुन्दर कृत शीलोपदेश भाषा बालावबोध आदि कुछ अन्य रचनाओं में इन शैलियों का नमूना ढूंढ़ा जा सकता है।

इस शताब्दी में बालावबोध और टब्बा आदि गद्यरूपों के अतिरिक्त कुछ मौलिक गद्य रचनायें प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई जैसे जयसोम उपाध्याय कृत दो प्रश्नोत्तर ग्रन्थ और हर्षवल्लभ उपाध्याय कृत अंचलमत चर्चा आदि। साधुकीर्ति कृत सप्तस्मरण सं० १६११, सोमविमलसूरिकृत दशवैकालिक और कल्पसूत्र बालावबोध तथा पद्मसुन्दरकृत प्रवचनसार बालावबोध आदि कुछ ऐसी रचनायें हैं जिनका उल्लेख इनकी पद्य रचनाओं के साथ नहीं हो सका। इस शती में संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों पर बालावबोध व टब्बा बड़ी

१. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १३६
२. श्री अगर चन्द नाहटा—राजस्थान में रचित हिन्दी साहित्य पृ० १११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संख्या में लिखे गये, यथा—कुशलभुवनगणिकृत सप्ततिका बालावबोध १६०१ वि०, सोमविमलकृत कल्पसूत्र और दशवैकालिक बालावबोध, पार्श्वचन्द्र शिष्य समरचंद्रकृत संस्तार प्रकीर्णक पयन्ना बालावबोध, कुशल वर्धन शिष्य नगर्षि गणि कृत संग्रहणी बालावबोध, कनककुशल कृत वरदत्त गुणमंजरी बालावबोध, मेघराजकृत समवायांग, औपपातिक, उत्तराध्ययन, नवतत्वप्रकरण, क्षेत्रसमास पर बालावबोध, श्रुतसागरकृत ऋषि मण्डल बालावबोध, रत्नचंद्रगणिकृत सम्यकत्व रत्नप्रकाश (जो सम्यकत्व सप्तति पर लिखा बालावबोध है), सं० १६९४ में धर्मसिंह ने २७ सूत्र का गुर्जर गद्य में टब्बा लिखा। ये (धर्मसिंह) लोकाशाह से अलग एक शाखा के संस्थापक थे और इन्होंने सूत्रों की स्वतन्त्र व्याख्या की है। इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण कृतियों पर टीप, बालावबोध और टब्बा आदि लिखा है। मतिसागर ने लघु-जातक नामक ज्योतिष ग्रन्थ पर वचनिका लिखी और भानुचन्द के शिष्य सिद्धिचंद ने संक्षिप्त कादम्बरी कथा प्राचीन गद्य शैली में मौलिक ढंग से लिखी। इसकी भाषा सरस है, और अकबरकालीन मरुगुर्जर शैली का शुद्ध नमूना प्रस्तुत करती है। इनके अलावा कुछ प्रसिद्ध लेखकों की गद्य रचनाओं का नामोल्लेख मात्र किया जा रहा है जैसे मेरुसुन्दरकृत शीलोपदेश (सं० १६०८), पुष्पमाला प्रकरण और कर्पूर प्रकरण आदि। विजयतिलककृत विचारस्तव बालावबोध १६११, सोमविमलकृत कल्पसूत्र, दशवैकालिक विपाकसूत्र और गौतमपृच्छा पर लिखित बालावबोध, कनककुशलकृत गुणमंजरी कथा, सौभाग्यपंचमी और ज्ञानपंचमी कथा पर बालावबोध सं० १६५५, श्रीपाल ऋषिकृत दशवैकालिक सूत्र, नन्दीसूत्र पर बालावबोध सं०१६६४, धनविजयकृत कर्मग्रन्थ बालावबोध, पद्मसुन्दरकृत भगवती सूत्र बालावबोध, सूरचंद कृत चतुर्मासी व्याख्यान बालावबोध, श्रीसारकृत गुणस्थानक बालावबोध और गुणविजयकृत अल्पबहुत्व बालावबोध तथा राजहंसकृत दशवैकालिक बालावबोध आदि इस काल की अन्य उल्लेखनीय गद्य रचनायें हैं।

जैन साहित्यकार प्रायः साधक और सन्त रहे हैं। इनके लिए साहित्य विशुद्ध कला की वस्तु कभी नहीं रहा। अतः जैसे पद्य में वैसे ही गद्य में भी चमत्कार या अलंकरण की प्रवृत्ति नहीं मिलती अपितु अभिव्यक्ति की सरलता, सुबोधता और सहजता का सदैव आग्रह दिखाई पड़ता है। ये साधु लेखक अपने नाम, यश के लिए नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरन् लोकोपकार के लिए लिखते थे इसलिए अनेक कृतियों में उनके रचयिताओं में नाम-पते भी नहीं हैं। ऐसी कुछ अज्ञात गद्यकृतियों के गद्यनमूने आगे दिए जा रहे हैं।

'विवेकविलास बालावबोध'—इसके कर्त्ता का नाम अज्ञात है : मूलकृति जिनदत्तसूरि की है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है— अथ टीका भाषा लिख्यते। परमात्मनइ नमस्कार। किस्युं परमात्मा। श्री शास्वत निरंतर आनन्दरूप छइ। जे अन्धकार तेहना स्तोम समूह। तेह नसाडवानइ। अेक सूर्य समान छइ। सर्वज्ञ सर्वभूत भावि जाणइ छइ।[1] यह मरुगुर्जर गद्य का शुद्ध नमूना है।

'षष्टिशतक बालावबोध'—मूलकृति नेमिचंद्र भण्डारी की है जिनका परिचय प्रथम खण्ड में दिया जा चुका है। इस कृति का अपर नाम सिद्धांत पगरण 'या उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला' है। इसका आदि- 'नमो अरिहंताणं'। घुरली गाथाइ च्यारि बोल सारभूत छइ ते कहीइ छइ अरिहंत देव। अरिहंत किहवा छइ। अठार दोष रहित। ते अठार दोष कोण। अनाण, कोह, मय, माण, माय, लोभ, रति, अरति, निद्रा, शोक, अलीकवचन, चोरी, मछर, भयाइं, प्राणवध, प्रेमक्रीड़ा, पसंग, हासाय अे अठार दोष थी रहित।[2] वाक्य छोटे-छोटे और सरल हैं।

एक टबार्थ का नमूना प्रस्तुत है। रचना का नाम है—'ज्ञाताधर्मकथा टबार्थ' लेखक का नाम अज्ञात है। भाषा शैली का नमूना निम्नांकित है—

'वेय। कहतां आगम लोकीक लोकोतर तेहना जाण। नय। कहतां सात नयका भेद ७०० तेहना जाण। नियम। कहतां विचित्र अभिग्रह विशे तेहना कारणहार। सोय। कहतां भावथी अतीचार रहित।' इसी प्रकार ज्ञाताधर्म कथाटबार्थ, उत्तराध्ययन सूत्र टबार्थ, अनुत्तरौपपातिकदश टबार्थ, निरयावली सूत्र टबार्थ और अंतगडसूत्रटबार्थ आदि अनेक टबा प्राप्त हैं जिनके लेखकों का नाम अज्ञात है। प्रज्ञापना सूत्र टबार्थ के मध्य की कुछ पंक्तियाँ नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं—

मेर परबत ऊपरि जे बाइ छइ तिस माहि जेम छहहि ते
मरीनइ नरकि जाहि तिहु लोकनइ करसहि तेण कारणि अहे

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३८६ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, पृ० ३८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोअे तिरि जंबद्वीप समुद्र माहि
पंचिद्री नरक जाहि प्रतर द्वय फरसइ ।[1]

नवतत्व बालावबोध के अन्त की दो पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—तेह जा मलाइ जि बीजा आकाश प्रदेश अनुक्रमिइं लेवा अन्त मुहूर्तइ सम्यक्तनु परिणाम आवइ तु अेह पुद्गल परावर्तना अद्धइं जि मोक्षि जाइ ।[2]

'पवयणा' सारोद्धार अवचूरि' की भाषा सरस और साहित्यिक है यथा—धर्मरूप पृथिवी अधारिवा भणी माहबराह समान इसा जिन-चन्द्रसूरि तेहना शीष्य श्री आम्रदेवसूरिना पगरुपिया कमलनइ पराग सरीषा श्री विजयसेन गणधर कनिष्ठ लहुडउ जसोदेव सूरिनउ येष्ठ वडउ शिष्य श्री नेमचन्द्रसूरि तिणइ विनय सहित शिष्यइ अ शास्त्र कहउ । (१६४६)[3]

क्षेत्र समास बालावबोध के अन्त की दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

अेक चन्द्रमानउ नक्षत्र ग्रह तारानउ मान करइ, अट्ठावीस नक्षत्र अट्ठासी ग्रह, छासठी सहस्स नवसइ पचहत्तरि तारानी कोडाकोडी अेक चन्द्रमानउ परिवार जाणीवउ ।[4]

इस शताब्दी की काव्य रचनाओं के बीच-बीच में भी गद्य प्रयोग उसी प्रकार देखे जाते हैं जैसे हिन्दी की प्रसिद्ध प्रारम्भिक कृतियों—पृथ्वीराजरासो और कीर्तिलता आदि के बीच में यत्रतत्र गद्य के नमूने उपलब्ध होते हैं। विद्याविलास मूलतः संस्कृत में लिखी प्रसिद्ध जैन कृति है इसके बीच-बीच में गद्य के कुछ अंश उपलब्ध हैं जैसे "बार चउसठि धानुकरणा विद्या आवइ । सरस्वती जाणु । बारह लगमात माहि ते तिन्नि लगमात हवले बोलहि ।। ते कवणु । विन्ना कन्ने । पिछुडी२ लहुड३ अे तिन्नि हवले बोलहि ते लघु कहहि । क कि कु । नव लगमात भारी बोलहि । ते कवण । का, की कू के कै को कौ कं कः अे नव लगमात गुरु कहावहि ।[5]

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३९० (द्वितीय संस्करण)
२. वही
३. वही, पृ० ३९३ (द्वितीय संस्करण)
४. वही, पृ० ३९४ (द्वितीय संस्करण)
५. वही पृ० ३९१ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त—पहिली व्रतमादंसण धारहु। बीजाव्रत निम्मलउ। तीजा तिहुं काले समाइक। चउथी पोसह सिवसुखदायक।···एकादसमी पडिमा इह परि रिषि जोउं लेइ लिख्या परधर फिरि।[1]

कुछ अज्ञात लेखकों की गद्यकृतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनकी प्रतियाँ अधिकतर ज्ञानभण्डारों में मिली हैं। इनमें श्रद्धाप्रतिक्रमण बालावबोध, विचारग्रन्थ बालावबोध, कल्पसूत्र बालावबोध, पवयणा सारोद्धार अवचूरि(बाला०), क्षेत्रसमासबालावबोध, दंडकनाबीसबोल (बालावबोध), एकबीस स्थानक टबो, संथारग पइन्ना बालावबोध, सूयगडांग बाला०, पंचांगीविचार आदि का संक्षिप्त परिचय श्री देसाई ने जैन गुर्जर कविओ में दिया है। उनमें दो तीन उद्धरण देकर यह प्रकरण सम्पूर्ण किया जा रहा है।

एक टबा का नमूना देखिये—एक बीस स्थानक टबो की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तीर्थंकर अेकवीस स्थानक लिखीवइ छइ। जे विमान थकी चव्या ते विमान नाम (१) नगरीनाम (२) पितानाम (३) नाम (४)······।[2] इत्यादि—

पंचांगी विचार की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'पंचांगी विचार। अेक इम कहइ : सूत्र, वृत्ति, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, अे पंचांगी कहीयइ। अेक इम कहइ : सूत्र अर्थ ग्रन्थ निर्युक्ति संग्रहणी अे पंचांगी···।''[3]

——

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृ० ३९१ (द्वितीय संस्करण)

२. वही, पृ० ३९४

३. वही, पृ० ३९५ (द्वितीय संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार

किसी साहित्य का इतिहास लिखते समय लेखक को यह देखना आवश्यक होता है कि उस साहित्य का जीवन की स्वाभाविक सरणियों, व्यक्ति की विविध अनुभूतियों और समाज की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं। हिन्दी जैन साहित्य पर विचार करते समय हमें सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और उसे पूर्णतया साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र मान कर शुद्ध साहित्य की कोटि से एक बारगी खारिज नहीं कर देना चाहिए। यद्यपि यह भी कुछ हद तक ठीक है कि हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास लिखते समय इस बात की आशंका अधिक है कि वह कोरा इतिवृत्त संग्रह बन कर रह जाय और 'इतिहास' की संज्ञा का अधिकारी न बन पाये क्योंकि हिन्दी जैन साहित्य का सम्बन्ध निर्विवाद रूप से जैन धर्म के साथ है। वह किसी भी युग में धर्म, दर्शन, अध्यात्म का पल्ला नहीं छोड़ता। सच पूछा जाय तो जैन साहित्य की नींव ही धर्म पर टिकी है। इसने उस समय भी धर्म का पल्ला नहीं छोड़ा जब प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य पर रसराज शृङ्गार का आधिपत्य हो गया था। हिन्दी में देव जैसे कवि निःसंकोच घोषणा कर रहे थे 'जोग हूँ ते कठिन संजोग पर नारी को।' हिन्दी में रीति काल की दो सौ वर्षों की अवधि का साहित्य शृंगार रस, नायक-नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन या राधाकृष्ण के बहाने परकीया प्रेम के प्रसंगों से भरा पड़ा है। शृंगाररस की अमर्यादित धारा भक्ति और मर्यादा के कूलों को तोड़ती हुई समाज को कुत्सित वासना से सराबोर कर रही थी। इसे हम किसी मानदण्ड पर स्वस्थ साहित्य नहीं कह सकते। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल है जिसका धर्म, दर्शन, अध्यात्म से प्रगाढ़ सम्बन्ध है। सच पूछा जाय तो धर्म, दर्शन का साहित्य से अविच्छेद्य सम्बन्ध है, किन्तु केवल धर्म, दर्शन और अध्यात्म ही साहित्य नहीं होता। उसे सरस, लोकरंजक भी होना आवश्यक है। इस दृष्टि से विचार करने पर समग्र हिन्दी जैन साहित्य को शुद्ध साहित्य की सीमा में रखना संभव नहीं लगता, फिर भी इतनी प्रचुर रचनायें उपलब्ध हैं जिनमें साहित्यिक तत्त्व भरपूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्रा में मिलते हैं और जिनके आधार पर उसे कोरा साम्प्रदायिक साहित्य कह कर शुद्ध साहित्य की कोटि से अलग नहीं किया जा सकता। जैन साहित्य का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति और समाज का उन्नयन, उदात्तीकरण और उनमें सुख, शांति और संयम का संचार करना है। १७वीं शताब्दी का हिन्दी जैन कवि रीतिकालीन अश्लीलताओं से बचते हुए सदाचार, संयम और आत्मबल तथा मुक्ति का संदेश जन-जन तक पहुँचाने का प्रयत्न करता हुआ दिखाई पड़ता है।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि जैन साहित्य ने परलोक की चिन्ता के आगे इहलोक की उपेक्षा की और युगीन भावनाओं, आकांक्षाओं और समस्याओं की तरफ से सर्वथा उदासीन रहा। इन जैन संत-कवियों की रचनाओं में धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिकता, अश्लीलता तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई गई, साथ ही शासकों के अत्याचार, निरीह प्रजा के शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ भी सशक्त ढंग से लिखा गया। सारांश यह कि इनका अध्यात्मवाद वैयक्तिक होते हुए भी बहुजनहिताय की भावना से अछूता नहीं है। इसलिए शलाकापुरुषों का श्रेष्ठ चरित, आचरण की पवित्रता और आध्यात्मिक जीवन का संदेश जैन साहित्य का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय रहा है। इन्हीं विषयों की अभिव्यन्जना में जैन कवियों ने अपनी कला का परिचय दिया है। निःसंदेह इनमें अधिकतर उपदेश वृत्ति की प्रधानता दिखाई पड़ती है और जहाँ लेखक कवि न होकर मात्र उपदेशक रह गया है वह रचना साहित्य के मानदण्डों की दृष्टि से चिन्त्य है और इसीलिए प्रायः जैन साहित्य के अधिकतर इतिहास ग्रन्थ इतिवृत्त संग्रह बन कर रह गये हैं क्योंकि उनमें युगानुरूप भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों का परिचय न मिलने से काल विभाजन आदि का कोई ठोस आधार नहीं मिल पाया है, किन्तु भारतीय इतिहास, सामाजिक रीति-रिवाज, विविध वर्गों की आर्थिक स्थिति और राजनीति सत्ता परिवर्तन आदि का प्रामाणिक विवरण इन रचनाओं में उपलब्ध होने के कारण ये इतिहास की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है साथ ही पुरानी हिन्दी, जूनी, गुजराती और मरुभाषा के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से इनका अध्ययन अनिवार्य है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि व्यक्ति और समाज को हितोपदेश की सदैव आवश्यकता रही है और हिन्दी जैन साहित्य ने इस दायित्व का निर्वाह बखूबी किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वयं यह मानते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि मानवता चरित्र और धर्म की मर्यादा पर टिकी है। श्रद्धा और भक्ति नामक अपने प्रसिद्ध निबन्ध में उन्होंने इस तथ्य को पुष्ट किया है। धर्म से लोक और परलोक दोनों को सुधारा जा सकता है इसलिए हिन्दी जैन साहित्य यदि लौकिक जीवन में सदाचार का पालन करते हुए पर लोक सुधारने का संदेश देता है तो उसे त्याज्य कैसे कहा जा सकता है। साम्प्रदायिक साहित्य में धार्मिक कट्टरता, बाह्याडम्बर, रूढ़िग्राहिता, क्रिया काण्ड और अन्य धर्मों-सम्प्रदायों का खंडन आदि प्रधान रूप से होता है किन्तु कर्मवाद, अनेकान्तवाद, अहिंसा, अपरिग्रह आदि अपने सिद्धान्तों के कारण जैन लेखक इन दुराग्रहों से प्रायः मुक्त रहे हैं इसलिए उनका साहित्य कहीं नीरस, शुष्क भले हो सकता है पर एकाध अपवादों को छोड़कर कट्टर साम्प्रदायिक कदापि नहीं कहा जा सकता। विशाल जैन साहित्य जैनदर्शन के प्रमुख चार स्तम्भों—कर्मसिद्धान्त, अनेकान्त या स्याद्वाद, चारित्र्य और अहिंसा पर टिका है। कर्म सिद्धान्त की स्पष्ट घोषणा है कि जीव को सुख-दुख, बन्धन-मुक्ति सब उसके कर्मानुसार ही प्राप्त होता है। वे किसी ऐसे ईश्वर को नहीं मानते जिसके भरोसे हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने और उसकी कृपा की याचना करने मात्र से सभी फल प्राप्त हो जाय। जो जैसा करता है वैसा अच्छा या बुरा फल अवश्य पाता है। यह सिद्धान्त मनुष्य को अजगरी या पंछि वृत्ति से उबारकर पुरुषार्थी, स्वाश्रयी और कर्मवादी बनाता है। परिणामतः प्रत्येक व्यक्ति सत्कर्म और सत्चरित्र के प्रति सचेष्ट होता है। इससे समाजमें श्री, शांति और सुख की वृद्धि होती है। जैन समाज इसका उदाहरण रहा है।

अहिंसा में अटूट विश्वास होने के कारण जैन साधु वाणी से भी किसी की हिंसा नहीं करना चाहते। इसलिए वे एकान्तवादी, दुराग्रही, कट्टरपन्थी नहीं होते। वे दुराग्रहपूर्वक अपनी बात पर अड़े रहकर उसे ही सही और परपक्ष को गलत सिद्ध करने के लिए वाणी का दुरुपयोग करने में विश्वास नहीं करते। इस प्रकार अहिंसा के मूल तत्व पर आधारित वे अनेकान्त, स्याद्वाद और सप्तभंगी आदि सिद्धांतों का अनुगमन करते हैं। सदाचार, दया, त्याग, करुणा, मैत्री, अपरिग्रह आदि का पालन करते हुए निर्जरा और संवर की स्थितियों को पार कर मुक्तावस्था तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। दर्शन के इन सिद्धान्तों को काव्यात्मक रूप देने के लिए जैन साधु-कवियों ने कथा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहानी, आख्यान का सहारा लिया और शालिभद्र, धन्ना, श्रेणिक जैसे उदार चरित वाले श्रेष्ठियों, श्रावकों, श्रीमंतों और सम्राटों की कथाओं को दृष्टान्त रूप में विविध छंदों, अलंकारों, ढालों, राग-रागनियों से सजा कर सरस रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार उन्होंने कोरा सिद्धान्त कथन करने के बजाय साहित्य रचना का सफल प्रयास किया। यह अवश्य है कि उनकी रचनाओं में प्रायः सर्वत्र शान्तरस प्रधान रस है और प्रधान चरित्र आध्यात्मिक या धार्मिक पुरुष ही हैं।

अधिकतर जैन कवि साधु हैं, थोड़े से श्रावक और गृहस्थ भी हैं किन्तु वे भी रीतिकालीन कवियों की तरह दरबारी या आश्रित कवि नहीं हैं। इसलिए वे किसी आश्रयदाता की कुत्सित या विकृत रुचि के आग्रह पर अश्लील साहित्य की रचना में प्रवृत्त नहीं हुए हैं और उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा साहित्य की ऐसी धारा प्रवाहित की जिसने देश के नैतिक स्वास्थ्य को पतित होने से बचाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। संपूर्ण जैनसाहित्य जिन आचार्यों, साधुओं द्वारा निर्मित हैं वे पञ्चपरमेष्ठियों में आते हैं। अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु—ये पञ्चपरमेष्ठी माने गये हैं। इनमें से अर्हत् और सिद्ध तो सकल परमात्मा और मुक्तात्मा ही होते हैं। वे तीर्थंकर या मोक्ष में विराजमान सिद्ध होते हैं। ये दोनों सर्वोच्च परमेष्ठी हैं। शेष तीन परमेष्ठियों—आचार्य, उपाध्याय और सर्व-साधुओं ने ही अपने प्रवचन, बिहार और साहित्य सृजन द्वारा अर्हत् और सिद्धों का सन्देश सर्वत्र फैलाया है। आचार्य ३६ मूल गुणों का पालन करने वाले प्रायः संघ प्रमुख होते हैं, वे स्वयं व्रतों का पालन करते और अन्यों से करवाते हैं। उपाध्यायों का प्रमुख कार्य शास्त्रा-ध्ययन करना-कराना है, वे संघ में शिक्षक का कार्य करते हैं। उपाध्याय वही साधु हो सकता है जो साधु चरित का पूर्ण रूप से पालन करता हो। जिनदीक्षा में प्रवृत्त और २८ मूल गुणों का पालन करने वाले सर्व साधु होते हैं। इस तरह इन आचारवान साधुओं द्वारा ही अधिकतर जैनसाहित्य निर्मित हैं और वे साहित्य के माध्यम से जनसाधारण में आदर्श जीवन चरित्र के निर्माण की प्रेरणा में ही प्रवृत्त दिखाई पड़ते हैं। इन्होंने सदैव लोककल्याणकारी और धर्म प्रवण साहित्य की रचना लोक भाषा और लोक प्रयुक्त ढालों, देशियों या रागरागनियों तथा सरस छंदों और पद्यों में की है। उन्होंने साहित्य को लोक भाषा के बहते नीर में प्रक्षालित कर उसे सदैव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्ध, स्वस्थ और लोकोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। उनकी रचनाओं के माध्यम से भारतीय आर्य भाषाओं के क्रमविकास का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन सुगम और संभव हुआ है। उनके शास्त्र-भण्डारों में सुरक्षित पांडुलिपियाँ भाषायी घालमेल से अछूती रही और लुप्त होने से बची रहीं। हमें इस दृष्टि से जैन साहित्यकारों और शास्त्रभण्डारों का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने देश की प्राचीन भाषा सम्पदा और साहित्य की यत्नपूर्वक रक्षा की है और अब उसे वृहत्तर समाज को अध्ययनार्थ क्रमशः अर्पित भी करने लगे हैं।

यह तो पहले ही विस्तारपूर्वक कहा जा चुका है कि इन लोगों ने प्रायः पुरानी हिन्दी या मरुगुर्जर में रचनायें की हैं। हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी का विकास शौरसेनी के नागर अपभ्रंश से हुआ है।[1] एक ही उद्गम होने के कारण तीनों भाषाओं का विकास १३वीं से १६वीं शताब्दी (विक्रमीय) तक इतना मिला-जुला है कि उन्हें एक दूसरे से अलग करना कठिन है। इसी मिली-जुली भाषा को पुरानी हिन्दी, जूनी गुजराती या मरुगुर्जर आदि नाम दिए गये हैं। प्रथम खण्ड में इस पर विस्तार से लिखा जा चुका है। यहाँ प्रसंगतः इतना ही संकेत करना है कि १७वीं शताब्दी में भी भाषा का वही मिलाजुला रूप जैन साहित्यिक कृतियों में दिखाई पड़ता है यद्यपि इस समय तक हिन्दी, गुजराती का अलग विकास भी होने लगा था। जैन लेखकों ने भाषा-स्तर पर समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है। मेरी तेरी भाषा के आधार पर आज अलग प्रदेशों की मांग करने वालों को इनसे कुछ उदारता की शिक्षा लेनी चाहिए। गुजराती के प्रसिद्ध वैयाकरण श्रीकमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी ने कहा है कि गुजराती हिन्दी का प्रान्तिक रूप है। चालुक्य राजदूत उसे काठियावाड़ ले गये जहाँ वह हिन्दी की दूसरी बोलियों से अलग पड़ जाने से धीरे-धीरे स्वतन्त्र भाषा बन गई।[2] अर्थात् गुजराती का विकास और हिन्दी का विकास एक जैसा है और एक ही मूलस्थान से है। राजनीतिक या अन्य जो भी कारण रहे हों जिनके चलते हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी अलग हो गई पर जैन कवियों ने यह अलगाव आधुनिक काल से पूर्व कभी स्वीकार नहीं किया और वे मरुगुर्जर या

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास

२. श्री क० प्रा० त्रिवेदी—गुजराती भाषानुं बृहद् व्याकरण पृ० २१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरानी हिन्दी में लगातार साहित्य सृजन करते रहे। इनमें से अधिकतर कवि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के अच्छे ज्ञाता थे किन्तु उनके मन में किसी विशेष भाषा के प्रति अतिरिक्त मोह नहीं था। वे अधिकतर पुरानी हिन्दी या मरुगुर्जर अर्थात् लोक भाषा में ही साहित्य रचना करते रहे और प्रान्तवाद के झगड़े में कभी नहीं पड़े। हिन्दी क्षेत्र के महाकवि केशवदास को 'भाखा' में काव्य रचने से झिझक हो रही थी और लिखा 'भाखा बोलि न जानही जिनके कुल के दास' उस कुल में केशवदास मतिमन्द हुआ जिसने भाखा काव्य की रचना की। पर जैन-कवि और सन्त जैसे मुनि रामसिंह आदि ने १०-११वीं शती से ही पुरानी हिन्दी में लिखना शुरू किया और १९वीं शती तक लगातार उसी में रचनायें करते रहे। इन लोगों का हिन्दी प्रेम श्लाघ्य है। दिगम्बर सम्प्रदाय की भाषा तो अधिकतर हिन्दी ही रही है और सकलकीर्ति, ब्रह्मजिनदास, आदि ने पचासों रचनायें हिन्दी में की हैं। जैन साधुओं का बिहार क्षेत्र अधिकतर गुजरात, राजस्थान, पश्चिमोत्तर प्रदेश, बिहार आदि हिन्दी भाषी क्षेत्र ही रहे हैं, इसलिए हिन्दी में लिखना, बोलना इनके लिए सुगम और स्वाभाविक भी था। गुजरात और राजस्थान का व्यापारी वर्ग समस्त भारत में फैला है। इन्हें अन्तर्प्रान्तीय भाषा के रूप में अपना कारोबार अधिकतर हिन्दी में करने की आवश्यकता पड़ती है इसलिए भी श्रेष्ठियों और श्रावकों को लक्ष्य करके लिखा गया साहित्य हिन्दी में ही लिखा जाना ज्यादा उपयोगी था।

जैन साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक रचनाओं के साथ-साथ लोक आख्यानक काव्यों का विशाल भण्डार सम्मिलित है। प्रायः समस्त जैन काव्य लोक गीतों, देशियों और ढालों में आबद्ध होने के कारण अत्यन्त लोकाग्रही है, साथ ही उन्होंने जिन चरित्रों और कथानकों पर आधारित काव्य रचनायें की हैं वे भी लोकप्रसिद्ध और लोक प्रिय हैं जैसे रामायण की विविध कथाओं तथा चरित्रों पर आधारित सीताराम चौपाई, सीता आलोयणा, लवांकुश छप्पय और हनुमन्त कथा, महाभारत पर आधारित पाण्डवपुराण, द्रौपदी चौपाई आदि। जैन तीर्थङ्करों, गणधरों और अन्य महापुरुषों श्रेष्ठी-श्रावकों के उदात्त चरित्रों पर आधारित रचनायें जैसे जगडू चरित्र, वस्तुपाल तेजपालरास, महावीर, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, शांतिनाथ कल्याणक, स्तवन आदि अनेकानेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतियाँ अत्यधिक लोकप्रिय हैं। ये रचनायें पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक आख्यानों पर आधारित हैं। लोकवार्तामूलक कथा-कहानियों पर आधारित काव्य रचनाओं की संख्या भी पर्याप्त है जैसे नलदमयन्ती, विक्रमादित्य, वैताल आदि से सम्बद्ध काव्यकृतियों में पर्याप्त सरस, काव्यात्मक स्थल उपलब्ध हैं इनके अलावा शलाका-पुरुषों की जीवनियाँ, पंचकल्याणक, स्तुति स्तोत्र, देववंदन-स्तवन, गुरु, सरस्वती की स्तुति, पूजासंग्रह आदि, परन्तु गुर्वावली, पट्टावली जैसी अनेक शुष्क रचनायें भी कम नहीं हैं जिनमें छन्द या पद्य को छोड़कर अन्य कोई साहित्यिक लक्षण नहीं मिलता, किन्तु उनका जैन धर्म के इतिहास की दृष्टि से महत्व है। इनके साथ ही अनेक भाव प्रधान गीत, पद, सुललित सुभाषित आदि भी प्रचुर मात्रा में लिखे गये हैं जिन्हें पढ़कर कोई सहृदय रसविभोर हो सकता है। ये विविध विषयक रचनायें शताधिक काव्यरूपों—प्रबन्ध, चरित्र, रास, चौपाई, चौढालिया बेलि, विवाहलो, मंगल, सलोक, पद, बीसी, चौबीसी बावनी, शतक, बारहमासा, फाग आदि में लिखी गई हैं जिन पर प्रथम खण्ड में संक्षिप्त प्रकाश डाला जा चुका है अतः उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं है। कहना इतना ही है कि १७वीं शताब्दी के कवियों ने भी उन काव्य रूपों का बड़ी कुशलता पूर्वक अपनी रचनाओं में उपयोग किया है।

१७वीं शताब्दी में भी जैन साहित्य लेखन की परम्पराओं का पूर्णरूप से पालन होता रहा। इनमें ग्रन्थ लेखन और प्रतिलिपि कराने की परम्परा उल्लेखनीय है। इससे लिपिकारों की आजीविका के साथ ही विभिन्न साहित्य-भण्डारों और संग्रहालयों की भी समृद्धि होती रही। इससे अनुसंधित्सुओं विशेषतया पाठ विज्ञान के शोधार्थियों को काफी सुभीता हुआ। इन कवियों ने अपनी रचनाओं के प्रारम्भ या अन्त में अपनी गुरुपरंपरा, रचनाकाल, स्थान, तत्कालीन शासक आदि के साथ सामाजिक जीवनचर्या, धर्म, परम्परा, रीतिनीति आदि पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है, उदाहरणार्थ प्रसिद्ध कवि समयसुन्दर की रचना 'सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी' को देखा जा सकता है। परम्परित कथाओं और काव्यरूढ़ियों का पालन करते हुए भी इन लेखकों ने यथा शक्ति अपनी मौलिक क्षमता का परिचय दिया है और अपने उद्देश्य की मौलिकता के आधार पर एक ही पात्र या कथानक को अलग-अलग कृतियों में नवीन रूप से प्रस्तुत किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन रचनाकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से केवल धर्म-दर्शन का ही आख्यान नहीं किया अपितु व्याकरण, वैद्यक, गणित, छन्द, अलंकार, ज्योतिष आदि नाना विषयों पर न केवल पद्यबद्ध बल्कि गद्यबद्ध साहित्य भी प्रभूत परिमाण में रचा है। हिन्दी जैन साहित्य में १६वीं १७वीं शती (विक्रमीय) से ही प्रचुर मात्रा में गद्य साहित्य बालावबोध, टब्बा, वृत्ति, टीका आदि नाना रूपों में उपलब्ध है। गद्य साहित्य का विवरण प्रथम खण्ड में तो स्वतन्त्र अध्याय में दे दिया गया है किन्तु इस खण्ड में (१७वीं शती) गद्य की रचनाओं का परिचय पद्य रचनाओं के साथ ही दिए गये हैं। कुछ छूटी रचनायें गद्य-साहित्य के अन्तर्गत तीसरे अध्याय में दे दी गई हैं। हिन्दी गद्य साहित्य के अनेक प्राचीन रूप और विधायें इसमें उपलब्ध हैं जिनके आधार पर हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास काफी प्राचीन सिद्ध होता है और उसके पुनः लेखन की अपेक्षा है।

जैन साहित्यकारों ने यथा राजा तथा प्रजा के प्रचलित विचारों को नकारते हुए अपनी रचनाओं को तत्कालीन मुगल सम्राटों, सामन्तों की विलासी मनोवृत्ति से मुक्त रखा जबकि अन्य भाषाओं के साहित्य तथा सम्बद्ध कलाओं पर तत्कालीन विलासी संस्कृति का गहरा प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है। यद्यपि जैनधर्म इस काल में मुख्यरूप से राजस्थान और गुजरात के वैश्यवर्ग के अलावा अन्य स्थानों में अधिक प्रचलित नहीं था किन्तु इनके श्रावक और साधु अपनी जीवनचर्या तथा रचनाओं में आचार-विचार की पवित्रता और धार्मिक निष्ठा अक्षुण्ण रखने में सक्षम रहे। इस काल का साहित्य प्रायः अध्यात्म, भक्ति, धर्म दर्शन से ओतप्रोत है। यह युग १७-१८वीं शताब्दी (विक्रम) हिन्दी जैन साहित्य का श्रेष्ठ युग है, स्वर्णकाल है। मैंने प्रस्ताव किया है कि इसे हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास का भक्तिकाल कहा जाना चाहिए।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने १०वीं से १८वीं शताब्दी तक की अवधि को भारतीय इतिहास का मध्यकाल माना है। उनका कथन है कि १०वीं शताब्दी के आस-पास आते-आते देश की धर्म-साधना बिलकुल नये रूप में प्रकट होती है तथा यहाँ से भारतीय मनीषा के उत्तरोत्तर संकोचन का आरम्भ होता है। यह अवस्था १८वीं शताब्दी तक चलती रही।[1]

---

१. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—मध्यकालीन धर्मसाधना पृ० ९-१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में १३वीं से १८वीं शताब्दी तक को मध्यकाल माना है और उसका दो उपविभाग-पूर्वमध्यकाल या भक्तिकाल (१३-१६वीं विक्रमीय) और उत्तरमध्यकाल या रीतिकाल (१७-१८ वीं) कर दिया है। चूंकि जैन हिन्दी साहित्य में रीतिकाल नामक कोई काल विभाग नहीं हो सकता इसलिए इस कालावधि को हिन्दी जैन साहित्य का भक्ति काल मानना ही उपयुक्त है। इस मध्यकालीन भक्ति युग में धर्म, अध्यात्म, भक्ति की प्रधानता निर्विवाद रूप से प्राप्त है। डा० शशिभूषण दास गुप्त का कथन विचारणीय है कि 'सभी अद्यतन भारतीय भाषाओं के साहित्य की ऐतिहासिक प्रगति की एकरूपता का कारण यह है कि तत्कालीन सभी भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य का विकास एक जैसी ऐतिहासिक अवस्था में हुआ था।'[1]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी मत है कि यदि भारत में मुसलमान न भी आये होते और राजनैतिक पृष्ठ भूमि भिन्न प्रकार की होती तो भी अध्यात्म प्रधान भक्तिभाव की रचनायें सभी भारतीय आर्य भाषाओं में अवश्य होती और होना प्रारम्भ भी हो चुका था। दक्षिण के आलवारों, वारकरियों का साहित्य इस कथन का प्रमाण है। वहाँ तब तक न मुसलमानों का आक्रमण हुआ था और न उत्तर भारत जैसी राजनीतिक पृष्ठभूमि थी। इसलिए यह युग सभी भारतीय आर्य भाषाओं और द्रविण भाषाओं के साहित्येतिहास में अध्यात्म और भक्तिभाव की साहित्यिक रचनाओं का युग है, फिर जैन साहित्य का तो यह प्रधान स्वर ही रहा है, ऐसी स्थिति में इस युग की जैन हिन्दी साहित्य की रचनाओं में भक्ति का प्राधान्य स्वाभाविक था और इसलिए इस युग को किसी व्यक्ति-विशेष के नाम से जोड़ने के बजाय भक्ति युग कहना ही समीचीन है। साथ ही यह विचार भी शतप्रतिशत सही नहीं है कि समस्त हिन्दी जैन साहित्य कोरा उपदेशात्मक, साम्प्रदायिक और नीरस है। ग्रन्थ में उल्लिखित रचनाओं का अवलोकन करने से यह कथन स्वयं स्पष्ट हो जायेगा कि इनमें से अनेक कृतियां काव्यात्मक तत्वों से भरपूर साहित्यिक रचनायें हैं और उनकी संख्या इतनी विपुल है कि उनके आधार पर जैन भक्ति काल स्वर्ण काल की उपाधि का उचित अधिकारी है।

---

१. डा० शशिभूषण दास गुप्त Obscore Religions Cult, Page 831

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस काल के साहित्य को प्रोत्साहन और संरक्षण देने का कार्य तत्कालीन जैन श्रेष्ठी, श्रावक और सीमन्त लोग करते थे, अतः कुछ जैन साधुओं द्वारा स्वान्तः सुखाय और कुछ श्रावकों और सामान्य जनों द्वारा अन्यों के प्रोत्साहन पर पर्याप्त साहित्य रचा गया, और प्रतिलिपियाँ कराई गई तथा उनके भण्डारण की समुचित सुविधा उपलब्ध कराई गई। इन सब कारणों से तत्कालीन युग में उच्चकोटि का साहित्य रचा गया और आज के पाठकों के लिए सुरक्षित रह सका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

जैन कवियों द्वारा रचित काव्यरचनाओं का परिचय तब तक अधूरा रहेगा जब तक 'ढाल' या देशी का परिचय न दिया जाय क्योंकि प्रायः समस्त जैन काव्य साहित्य ढालों या देसियों में सम्बद्ध है। बलण, चाल, देशी आदि ढाल के ही अलग-अलग नाम हैं। ढाल उन लोकप्रिय लोकगीतों के राग या लय तथा तर्ज पर ढाले गये हैं जो अत्यधिक जनप्रिय रहे हैं। जैन कवि अपनी काव्य रचनाओं को उन्हीं की चाल पर लयबद्ध करके उन्हें गेय, मधुर तथा लोकप्रिय बनाने का यत्न करते हैं।

कनकसुन्दर ने सं० १६९७ में रचित हरिश्चंद्ररास के अन्त में लिखा है—

> राग छत्रीसे जूजुआ, नवि नवि ढाल रसाल,
> कंठ बिना शोभे नहीं, ज्युं नाटक विणताल।
> ढाल चतुर ! म चूकजो, कहे जो सघला भाव,
> राग सहित अलाप जो, प्रबन्ध पुण्य प्रभाव।

जैन कवियों ने कभी-कभी एक ही रचना में बीसों ढालों का प्रयोग किया है: कुछ लोगों ने तो अपनी रचनाओं का नामकरण ही ढालों के आधार चौढालिया, ढालसागर आदि रख छोड़ा है। श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने अपनी रचना जैन गुर्जर कविओ में २३२८ देशी या ढालों की एक अति महत्वपूर्ण अनुक्रमणिका दी है। आवश्यकता है कि इन लोकधुनों की सुरक्षा की जाय अन्यथा फिल्मी धुनों की तेज आंधी में इनके लुप्त हो जाने का खतरा उपस्थित हो गया है।

इन ढालों में कुछ इतनी अधिक लोक प्रसिद्ध हैं कि उनका कई कवियों ने कई रचनाओं में उपयोग किया है जैसे ऋषभदास कृत कुमारपाल रास (सं० १६७०) तथा हीरविजय रास (सं० १६८५) में में प्रयुक्त ढाल 'अति दुख देखी कामिनी' कई स्थानों पर प्रयुक्त हुई है। यह केदारारांग में आबद्ध हैं। इसका प्रयोग कवि नयसुन्दर ने भी अपनी रचना 'सुरसुन्दरी रास' में नवीं ढाल के रूप में किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार ढाल—'अतिरंग भीने हो रंगभीने हो मोहणलाल' जो राग केदारु में आबद्ध हैं, कई समर्थ कवियों द्वारा कई स्थानों पर प्रयुक्त हैं, इसे समयसुन्दर ने अपनी रचना नलदवदंती रास में, ज्ञानमेरु ने कुणकरंडरास में और शांति विजय ने चौबीसी शांतिभास में किया है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

श्री देसाई ने विशेष महत्वपूर्ण ढालों की एकाधिक पंक्तियां या कहीं-कहीं सम्पूर्ण रूप से उद्धृत किया है। ये सम्पूर्ण ढाल उन्हें श्री अगरचन्द नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हुए थे। इस प्रकार इस महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन में दोनों विद्वानों का युगपत सहयोग रहा है। इन सभी ढालों को देखने से लगता है इनमें सर्वत्र अध्यात्म का ही प्राधान्य नहीं है वरन् लोकगीतों, व्यञ्जनाओं और सामान्य भावनाओं की भी अभिव्यन्जना हुई है जैसे--

आज रयणि बसि जाऊं, प्रीतम सांवरे।

या तन का पिंजरा करुं रे, ते मैं राखु तोहि,
जबह पिया! तुम गमन करोगे, मुइं सुणोगे मोहि।
प्रीतम सांवरे।

यह राग सारंग में आबद्ध एक लोकप्रिय गीत है। इसी प्रकार

आज सखी सुपनो लह्यो,
घरी आंगण आवो मोरीयो, मेरी अंखियां फरके हो।
अहो घर अवंणहारा नाह हो, मेरी अंखियां फरके हो।[1]

इस ढाल का प्रयोग आणंदसोम ने अपनी रचना सोमविमल सूरिरास (सं० १६१०) में किया है।

इन ढालों में से कुछ तो हिन्दी प्रदेश में भी अति लोकप्रिय हैं

जैसे 'व्रजमण्डल देश दिखावो रसिया',
व्रज मण्डल को आछो नीको पाणी,
गोरी गोरी नारि सुघडि रसिया।।

या 'वाडी फूली अति भली मन भमरा रे। इत्यादि।

ज्यादातर ढाल लोकाख्यानों, लोकवार्ताओं पर आधारित हैं।

---

१. जैन गुर्जर कविओ (प्रथम संस्करण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे　　मेरे पीऊ की खबर को लावे मेरे बंभना।
　　　　चुगी रे कर को कंगना।

या　　वलद भला सोरठा रे, वाहण बीकानेर रे हठीला वैरी,
　　　　मरद भला छें मेडते रे लाल, कामिणी जैसलमेर रे हठीला

इस ढाल का प्रयोग समयसुन्दर ने चंपक चोपाई (सं० १६९५) और जयरंग ने कयवन्ना चौपई में किया है। कुछ ढाल धार्मिक महापुरुषों या धार्मिक स्थलों पर आधारित हैं जैसे—

　　　　पाणी रमझम वरसे, मोने जांणा गढ़ गिरनार।

कुछ ढाल राजस्थानी वीरों और राजस्थानी जन-जीवन का संकेत करते हैं, जैसे—

　　　　करहा चाल उतावलो, पगड़े छै गण गोरजी,
　　　　बुधसिंह हाड़ाजीरो करहलो।

या　　उदयपुर रा वासी। गढ़ जोधाण मेवासी।
　　　　हो जोरावर जोधा; मुजरो लीजे म्हांरीनाथ।

इस प्रकार इन ढालों में राजस्थान गुजरात के जन-जीवन, लोक-गीत, लोकवार्ता और लोकाख्यानों का मार्मिक स्मरण होता रहता है। इन ढालों के कारण जैन कवियों की रचनाओं में माटी की जो महक आ गई है उससे प्रायः नई उपदेशपरक रचनायें भी ग्राह्य बन गई हैं।

——

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ग्रन्थ-अनुक्रमणिका

अकबर साहि श्रृंगार दर्पण २८३
अकलंकयति रास १५५
अगड़दत्त रास ४३, ७८, ९१, १०७, ८८, १३१, १३५, ५०२, ५३५, ५५३
अगड़दत्त चौपई ११७
अघटकुमार चोपई ३३३, ३३४
अघटित राजर्षि चौपइ ३३०, ३३१
अघनकरास ५०७
अजाकुमाररास ५३, ५६
अजापुत्र चौपई २७६
अजापुत्र रास ४३४, ५०
अझारापार्श्वनाथ गीत ५५४
अठारह (१८) नाता संज्झाय २७१
अठारह नाता चौपई ५७७, ५७९
अतिशयस्तवन ८१
अतीत अनागत वर्तमान जिनगीत ९५, २०४
अर्द्धकथानक २७, ३०७, ३११, २, ४१८
अध्यात्मकमल मार्तण्ड ३९२
अध्यात्म बावनी ९५, ४४३, ५८८
अध्यात्म संज्झाय ५१९
अनादि संवाद शतक ९५
अनथामी कथा ३१९
अनाथी संधि ११९
अनाथी साधु संधि ४८५
अनित्य पंचाशक २०९, २१०
अनिरुद्ध हरण अथवा ऊषाहरण, ३८२-३८४
अनेकार्थ माला ३१८
अर्गलपुर जिनवन्दना ३१९
अंगफुरकण चौपई ५९९
अंचलमत चर्चा ५७३, ६१३
अंचलमत स्वरूप वर्णन चौपई १३१, १३५
अञ्जनासुन्दरी प्रबन्ध १३३
अञ्जनासुन्दरी रास १३१
अञ्जना रास २६८
अञ्जनासुन्दरी रास ३०१, ४८१, २
अञ्जनासती रास ४९१, ३५८, ३४४, ३३०, ३३२
अंजनासुन्दरी संवाद ४५०
अंजनासुन्दरी चौपई ३५३
अन्तरङ्ग फाग ४२२
अन्तरंग रास २७१
अंतरीक्ष पार्श्वनाथ स्तवन ३२५-३२७
अम्बड कथानक चौपई ३६९-३७०
अम्बड कथानक चौपई ३६८
अभयकुमार चौपई २७६, २७७
अभयकुमार रास ५३, ६३
अभिमन्युनु ओझाणु २२५
अमरकुमार चौपई ५९०
अमरकुमार रास ९३
अमरगुप्तचरित्र अथवा अमरतरंग ८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमरबत्तीसी ९७
अमरदत्त मित्रानन्द रास १५५, ४२७, २६१, २२७, ५३६
अमरदत्त मित्रानंद चौपई २७४
अमरसेन रास २०४-०६
अमरसेन वयरसेन रास ८३
अमरसेन वयर संधि ४२८
अमरसेन चौपई २९५, ३५३
अमरसेन राजर्षि आख्यानक ५४०
अम्बिका कथा ४५८, ४५९
अयमत्ताकुमार रास २७१
अयमन्ता मुनि संज्झाय ४२९
अर्जुनमाली सन्धि २५७
अर्हन्नक रास ४८५, ४८६
अरहद्दास सम्बन्ध ३४५
अल्पबहुत्व स्तवन १५०
अल्पविचार गर्भित स्तवन २५१
अल्पविचार बाला० ६१४
अष्टप्रकारी पूजारास २९२
अष्टसिद्धि २०
अष्टलक्षी ५२३, ५१२
अष्टापद स्तवन २२३
अष्टोत्तरशत पार्श्वस्तवन ३४, ५०९
अष्टोत्तरी स्नात्र १७२
आज्ञा संज्झाय गीत ७५
आठकर्म रास ४२९
आठदृष्टि संज्झाय ३७५
आणंदसार संग्रह ४४१
आत्मख्याति टीका ३०९
आत्मप्रतिबोध कुलक २६१, २६६
आत्मबोध गीत ५०१
आत्मशिक्षा ३०३
आत्मानंद प्रकाश १७०
आत्मानुशासन गीत ४४८
आदिनाथ स्तवन ६०९, ६१०
आदिनाथ विवाहलो २७४
आदित्यवार कथा २२६, ३२२, ३१९, ६०७
आदित्यव्रत रास ३१९
आदिनाथ विनती ४७४, ३४९
आदिनाथ विवाहलो १०३
आदिनाथ स्तवन ३१९, ५३१
आदीश्वर आलोयणा विज्ञप्ति स्तवन ५५
आदीश्वर फाग २३
आदीश्वर विवाहला २४
आनन्द काव्य महोदधि (मौक्तिक आठ) ५७, १८१, ३०७, २२१, १०८, २६१, २६३, ६४, ६५, १६४, ५१४, ३६४
आनन्दघन का रहस्यवाद ४३
आनन्दघन पद संग्रह ४१
आनन्दघन बहत्तरी ४०
आनन्दघन अष्टपदी ३७३
आनन्द शंकर ध्रुव स्मारक ग्रंथ ३२१
आनन्द श्रावक सन्धि ४९९
आबूयात्रा स्तवन ४३०
आरामशोभा चौपई ४०१, ४००,
आरामशोभा चौपई २९४, ५०७
आराधना गीत ४५८, ४५९
आराधना गीत ६१०
आराधना चौपई ५७८
आर्द्रकुमार धमाल ७३, ७४

आर्द्रकुमार रास ५३
आलोयणा छत्तीसी ५७
आवश्यक बालावबोध ४८०
आषाढ़भूति प्रबन्ध ५२०
आषाढ़भूति धमाल ७३, ७४
आषाढ़भूति मुनि रास ५४४
इच्छा परिणाम टिप्पड़ ५०९
इन्दुदूत ४७७
इर्यापथिका आलोयण संज्झाय २९२
इलाची केवली रास २४६
इलापुत्र रास १२१
इलाप्रकार चैत्यपरिपाटी ३५
इषुकार अध्ययन संज्झाय ४६५, ५२९
ईसानचंद्र विजया चोपई २७९, २८०
उत्तमकुमार चौपई १७७
उत्तमकुमार रास ४३४, ४३५
उत्तमचरित ऋषिराजचरित चौपई ४६१
उत्पत्तिनामा ३४५
उत्तराध्ययन छत्तीसी गीत ३४५
उत्तराध्ययन ऋषि मण्डन टीका ५६९
उत्तराध्ययन सूत्र बाला० ३६३
उत्तराध्ययन १२३
उत्तराध्ययन बाला० ७८, ३६
उत्तराध्ययन वृत्ति ४३०
उदाई राजर्षि संधि ५६२
उदयपुर गजल १५२
उपदेशमालारास ५३, ५९
उपदेशमाला विवरण ५६३
उपदेश रत्नमाला ५०६
उपधान स्तवन ४७६
उपशम संज्झाय २७८, २८२
उपासक दशांग बाला० ५७३, ५७५, ४९०
उवसर्गहर स्तोत्र बाला० २२३
ऊन्दर रासो ६०८
ऋषभ जन्म ३६६
ऋषभदेव नमस्कार ६१०
ऋषभदेव रास ५३
श्री ऋषभदेवाधिदेव जिनराज स्तवन ५३९
ऋषभ विवाहलो १७५, ?४
ऋषभ समता सरलता स्तवन ५०५
ऋषिदत्ता गीतम् ५१९
ऋषिदत्ता रास ४९८, ४६४, १६७
ऋषिदत्ता चौपई २२४, १३१, १९०, १३३
ऋषिमंडन बाला० ६१४, ५०३
अेकबीस प्रकारी पूजा ५०३, ५०४
एकबीस स्थानक टबो ६१७
ऐतिहासिक जैन-काव्य संग्रह ६११, ५९९, ५५५, ८८, ९०, ९२ ४३, ७६, ५४९, ५७४, ५६९, ४०२, १८५, १९०, १२५, ५२२, १०७, २२६, २३४, २४२, २७६, २९९, ३८२, ४३२, १६२, ११९, ३९९, ४०४; १२२, १३३, १३६, १५५, ४३७, ४७०
ऐतिहासिक जैनगुर्जर काव्य संचय ४६८, १०१, ९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐतिहासिक रास संग्रह १५८, १५९, १३२, १२९, ३३९, ३४०, २२२, २१४
ऐतिहासिक संज्झाय माला १२४
औपपातिक सूत्र बाला० ३६३
औष्ट्रिक मतोत्सूत्र दीपिका २०

क

कइवन्ना चौपई ५०७
कटुकमत पट्टावली ८५,
कथाकोश २८२, २८३
कथाचूड चौपई २७९, २८१
कथारत्नाकर ५९७
कथा सरित्सागर २३२
कन्दर्पचूणामणि २०
कनकरथरास २७९, २८२
कनकश्रेष्ठि रास ३२४
कनकावती आख्यान ५९८
कपिल केवली रास २३२
कर्पूर प्रकरण ६१४
कर्पूरमञ्जरी रास ३३७, ३३८, ६८
कबीरा पर्व २२५
कर्मग्रन्थ टब्बा ५३०
कर्मघंटावली ६६, ६४
कर्मग्रन्थ बाला० ६१४, ५०३,
कर्मचन्द वंशावलीरास १३१
कर्मग्रंथ वंधस्वामित्व बाला० ३३५
कर्मचंद वंशोत्कीर्तन १७२
कमलविजय रास ५९५,
कर्मछत्तीसी ५१७
कर्मप्रकृति विधान ३१०
कर्मबत्तीसी १८३
कर्मकाण्ड टीका ५५२
कर्मविपाक रास ३४४
कर्म हिंडोलना ५६७
कयवन्ना चौपई १२५, ४५२, १३१
कयवन्ना चौढालिया १८६
कयवन्ना रास २५२ ४४१, ४६२, ५३
कयवन्ना ऋषि संज्झाय ४४६
कयवन्ना सन्धि १३१
करकंड़ चरिय ५०६
कल्पदीपिका १६६
कल्पसूत्र बाला० ५५६, ६१७, ६१३, ४९४, ४९५, ५०९, ७३
कल्याणक मन्दिर स्तोत्र ३१
कल्याण विजयमणि नो रास १६४
कलावती चौपई ५२३, ४६९, १३४
कलावती रास ५२५
कविप्रिया ९८
कादम्बरी २१
कानडीतु पार्श्वस्तवन ६१०
कान्हड दे प्रबन्ध २३२
कापड़हेड़ा तीर्थरास ४२९
कापड़हेड़ा रास २१४, २१५
कामलक्ष्मी वेदविचक्षण मातृ पुत्र कथा चौपई १६०
कामावती वार्ता ४९६
कायस्थिति बाला० ५३०
कालकाचार्य कथा १९५, ५५६, ५९४, ४९४,
काव्य कल्पलता वृत्ति मकरंद ४४५
काव्य कल्पलता मकरंद ४९७
काव्यप्रकाश ५१२, १२२

कीर्तिधन सुकोशल प्रबन्ध ३४५, ३५३
कीर्तिधन सुकोशल सम्बन्ध ३५८
कीर्तिरत्नसूरि गीत ४३०
कीर्तिरत्न सूरि विवाहलु ९०
कुकड़ा मार्जारी रास ४५३
कुगुरु छत्तीसी १९५, १९६
कुगुरु संज्झाय ३७५
कुंडरिक पुण्डरिक रास २७१
कुतुबदीन की बात ६१३
कुबेरदत्ता चौपई २५७
कुमति खंडन १० मत स्तवन ३७५
कुमति कन्द कुदाल ६२
कुमति विध्वंसन चौपई ५७७, ५७८
कुमारपाल रास ५७, ५९७, ५८२, ३५३, ५३
कुमार मुनिरास २९५
कुलध्वज रास ११२
कुलध्वज कुमार रास ३७, ५३७
कुसुमाञ्जलि ५११
कूर्मापुत्र चौपई १६१, १६०
केवली स्वरूप स्तवन ३६१
केशी प्रदेशी सन्धि २५७
केशी प्रदेशी प्रबन्ध ५१७
कृतकर्म रास ४३०
कृतकर्म राजर्षि चौपइ ४३३
कृतपुण्य (कयवन्ना) रास १३७, १३८
कृपारस कोश २०, ५८३
कृपण जगावन कथा १४१
कृष्ण रूक्मिणी बेलि टब्बा ४९४, ४९५
कृष्ण रूक्मिणी बेलि टीका ४९९
कृष्ण रूक्मिणी बेलि बाल० १५५
कोककला २६०
कोककला शास्त्र १९८
कोककला मञ्जरी ४०
कोचर व्यवहारी रास १२७, १२८
क्षमा छत्तीसी ५१७
क्षुल्लक ऋषि चौपई ५१४
क्षुल्लक कुमार चौपई ३४५, ३४६, ३६३
क्षुल्लककुमार रास ५०२, ५०३
क्षुल्लककुमार राजर्षि चरित्र या प्रबन्ध २७६, २७७
क्षेत्रपाल गीत १७०
क्षेत्रप्रकाश रास ५९, ५३
क्षेत्रसमास बाला० ५१, ११७, ६१६, ६१४
क्षेत्रविचार तरंगिणी २५६
क्षेत्र बावनी ११६

ख

खटोलना गीत ४१९, ४२२
खण्ड प्रशस्ति सुबोधिनी टीका २०
खंधककुमार सूरि चौपई २२३, २२४
खंधक सूरि संज्झाय २९०
खंभात चैत्य परिपाटी १९९
खरतर गुर्वावली गीत १५०
खरतर गच्छ गुर्वावली १३३
खरतर गच्छ पट्टावली ५१२, ४०१
खापराचोर रास १
खिचड़ी रास ३१९
खेमा हडालियानो रास ४२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षड्शीति (चौथो कर्म ग्रन्थ)
बाला० ३३५

ग

गज भञ्जन चौपई ३६०
गजसिंह कुमार ९९
गजसुकुमाल चौपई ३३४, ३३२,
३८५, ४४८, ५००
गजसुकुमाल ऋषि रास ५५४
गजसुकुमाल रास ३९९,
१८१, १८१
गजसुकुमाल सन्धि अथवा चौपई
३६२
गणधर वास स्तवन ५०५
गणधर वीनती ५५४
गणधर सार शतक लघुवृत्ति २७५
गणधर सार शतक टब्बा ४८०
गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज
१०६
ग्यारह (११) अंगनी संज्झाय ३३५
(ग्यारह इक्यावन), ११५१ स्तवन
मंजूषा ३२६
गिरनार उद्धार रास २६१, २६५
गिरनार चैत्य परिपाटी ४२४
गीत परमार्थी ४१९, ४२१
गुण ठाणा विवरण चौपई ७३
गुणधर्म कनकवती प्रबन्ध ६८, ६९
गुणधर्म रास ३३५, ३३७
गुण बावनी ४९
गुणमंजरी कथा बाला० ६१४
गुणमंजरी वरदत्त चौपई १३० या
सौभाग्य पञ्चमी या ज्ञान
पंचमी
गुणसुन्दरी चौपई १०१, ४७२, १३१
गुणस्थान क्रमारोह बाला० ४९९
गुणस्थानक बाला० ६१४
गुण स्थान विचार चौपई ५३०
गुणस्थानक गर्भित वीर स्तवन ५२८
गुणप्रभ सूरि प्रबन्ध ५२२
गुणसुन्दरी पुण्यपाल चौपई १३५
गुणावली चौपई अथवा गुण करंड
गुणावली रास १९५, १९६
गुर्जर जैन कवियों की हिंदी
साहित्य को देन ३३
गुरुगीत २४७
गुरु गीतम् ५१९
गुरु गुण छत्तीसी संज्झाय १४०
गुरु छंद १६३
गुरु पुत्र छत्तीसी स्तवन या संज्झाय
४३४, ४३७
गुरु (गुरुकुल वास) स्वाध्याय ३५१
गुर्वावली ५७८
गूढ़ विनोद २५४, २५६
गोड़ी पार्श्व स्तवन ९६, २०४
गोड़ी पार्श्वनाथ सार्द्ध शताब्दी
स्मारक ग्रन्थ ४९२
गोमट्ट सार बाला० ५९३
गोमट्ट सार ४१८
गोरा बादल कथा १
गोरा बादल री बात १५४, १५२
गोरा बादल कथा अथवा पद्मिनी
चौपई ५९०
गोड़ी स्तवन १७२, १८४
गौतम कुलक वृत्ति १९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौड़ी पार्श्व स्तवन २९२
गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन ४९२,५५५
गौड़ी पार्श्वनाथ छंद १०६
गौतम प्रश्नोत्तर स्तवन ५३
गौतम पृच्छा स्तवन ४९८
गौतम पृच्छा २५७, २५८
गौतम पृच्छा चौपई ५१४, ५०६
गौतम स्वामी छद २५७, २५८

घ

घी सञ्झाय ४४५, ४४६

च

चतुरप्रिया ९७
चतुर वनजारा ३१८
चतुर्गति बेलि ५६६
चतुर्दश स्वप्न ५०९
चतुर्दश गुणस्थान वचनिका ३१
चतुर्मासी व्याख्यान वाला० ६१४
चतुर्विशंति जिन सकलभव वर्णन स्तवन २५१, २५२
चतुर्विशंति जिन गीत ३९९
चतुर्विशंति जिन स्तवन ९८
चतुर्विशंति जिन गीत स्तवन (चौबीसी) १८१, १८२
चतुःस्मरण प्रकरण संधि १५०
चरित्र चुनड़ी १४६
चंदन बाला बेलि ३३, ३४
चंदन मलयागिरी चौ० ५५६, ३२०, ८८
चंदन मलयागिरी रास १
चंद राजा चौ० ४६३, ३३५
चंद राजा रासा ४३९, चंदन राज रास ८३
चंद्रगुप्त के सोलह स्वप्न ४०७, ४१७
चंद्रगुप्त सोलह स्वप्न सञ्झाय ५७७, ५८०
चंद्रलेखा चौ० ४६३
चंद्रशतक २१०, २११
चंद्रसेन चंद्रद्योत नाटकीया प्रबंध २१६, २१७
चंदा गीत ३५
चंद्राउला ५२२
चंद्रायणो रास २२०
चंपकसेन रास ३५०, ३३५
चंद्रावती शील कल्याणक ३९०
चंपकसेन चौपई अथवा वृद्धदंत सुधदंत रास १८६, १८७
चंपकवती चौ० या शील पताका चौपई २४४
चंपक श्रेष्ठि चौपई ५१४, ५१५
चंपक श्रेष्ठि रास ४४
चार प्रत्येक बुद्ध चौपई ५१४
चारुदत्त प्रबन्ध या रास ८९
चित्त निरोध कथा ३१४, ३१५
चित्त ललितांग रास ३३३
चित्त संभूति रास १९०
चित्त संभूति संधि १२२
चित्तौड़ गजल १५२
चित्रसेन पद्मावती चौपई ४८
चित्रसेन पद्मावती रास ८९, ४७८
चित्रलेखा चौपई २१७
चिंतामणि जयमाल ४०७, ४१७
चिहुंगति चौपई २६
चूनड़ी २४
चूनड़ी गीत १७०, १७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतन गीत १७८, १७९
चेलना सती गीतम् ५१९
चैत्य आदि सज्झाय १३०, ६०३
चैत्य वंदन २६०
चैत्यवंदन भाष्य २४४
चैत्य स्तुति स्तवनादि संग्रह १४०, २३३
(चौदह)१४ गुणस्थान बंधविज्ञप्ति (पार्श्वनाथ स्तवन) १८०, १८२
(चौदह) १४ गुणस्थानक वीर स्तवन ४७६
चौपरवी चौ० ५०७
चौबीस जिन अंतराकार स्तवन १६०
चौबीस जिन आंतरा स्तवन १६२
चौबीस जिन गणधर संख्या स्तवन १७२
चौबीस जिन गीत ३२५, ३२६
चौबीस जिन नमस्कार १०१
चौबीस जिन वहत्तत्व चौबीसी ५६३
चौबीस जिन बोल २४१
चौबीस जिन सात बोल विचार गर्भित स्तवन ४९०
चौबीस जिन स्तवन ४२७, १८७
चौबीसी ४७४, ४२९, ५०९, ५१९, ५५६, २६०, २५७
चौबीस स्तवन (चौबीसी) ४०
चौबीसी ९०, ९३, १७४, ६०९, ३८१, ३७५, १९०
चौरासी दिग्पट बोल ५९३
चौबीसी तथा बीसी संग्रह ३२६
चौरासी बोल विसंवाद ५९३,५९२
चौरासी लाख जीवयोनि विनती १४६

छ

छकर्म ग्रंथ बालावबोध २३७
छह लेश्या कवित्त ५६६
छ आवश्यक स्तवन ४७६

ज

जइतपद बेलि ७६, ७३, १७४
जगडू चरित ६२३,
जगत गुरु काव्य ५८३, २०
जगदम्बा बावनी ५९०
जगदम्बा स्तुति ५३३
जन्म प्रकाशिका ९७
जयकुमाराख्यान १४६, १४७
जयचंद्र रास १२७
जयतिहुअण स्तवन बालावबोध १३५
जयतिहुअण वृत्ति ५१५
जयतिहुअण बालावबोध ४८०
जयविजय चौपई ४९९, २४६
जयसेन लीलावती रास ५५६
जयानंद रास ३०६
जलगालन क्रिया १४१
जसवंत मुनि रास २४३
जसविलास २७३
जसोधर गीत १७०
जंबु कुमार रास ३९१
जंबू चरित २८३
जंबू चौपई ५७८, ४८, ७९
जंबू द्वीप पन्नति वृत्ति ३०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंबूद्वीप विचार स्तवन ५४१,२३८
जंबूद्वीप रास १३१, १३४
जंबू स्वामी गीतम् ५१९
जंबू स्वामी चरित्र १७८, १७९
जंबू स्वामी बेलि ६०९, ३१४
३१५
जंबू स्वामी चौ० ३३०, ३३२,
४०७, ४१७
जंबू स्वामी रास २५९, ३९२,
२०६, २०८
जंबू स्वामी रास (पंचम चरित्र)
३४३
जंबू स्वामी ब्रह्मगीता ३७७
जिन आंतरा ३१४, ३१५
जिन गुणप्रभ सूरि प्रबंध अथवा
धवल १८५
जिनचंद सूरि अकबर प्रतिबोध
रास ४३०, ४८३, ९२
जिनचंद सूरि गीत ७३
जिनचंद सूरि निर्वाण रास ५०७,
५०८
जिनचंद सूरि रास ४३०, ४३३
जिनचैत्य परिपाटी स्तवन ११२
जिन चोबीसी ५०
जिनतिलक सूरि स्तुति १८७
जिनदत्त रास ३८२, ३८३, ३८४
जिन पालित जिनरक्षित चौढा-
लिया ४२४
जिन पालित जिनरक्षित रास ७३,
७४, ३६०, १९०
जिन पालित संज्झाय ७०, ६८
जिन पालित जिनरक्षित संधि
१०७; १०८
जिन प्रतिमा छबीसी २५७
जिन बिंब स्थापना स्तवन १७६
जिनवर स्वामी वीनती ५५२
जिनरंग सूरि गीतानि ७८
जिनराज स्तुति ६४, ६६
जिनराज चौपई १५५
जिनराज सूरि रास ४९९, १८३,
१५५
जिनराज सूरि गीतम् ५७४
जिनलाडू गीत ४०७, ४१६
जिन सहस्र नाम वर्णन ३७५
जिनसागर सूरि अवदात गीत
१८५, ५७०
जिनसागर सूरि निर्वाण रास १८५
जिनसागर सूरि रास १८४, २४१,
२४२
जिनसिंह सूरि सपादाष्टक ५१२
जिनसिंह सूरि रास ५५८
जिनहिंसा टीका २०
जिह्वादंत संवाद ५५२
जीभदांत वाद ५७८, ५८१
जीरावली पार्श्वनाथ स्तवन ८९
जीव उत्पत्ति नी संज्झाय (या)
(तंदुल वेयाली सूत्र संज्झाय
या गर्भावास संज्झाय या
वैराग्य संज्झाय ५०१)
जीवकाया गीतम् ५१९
जीवदया रास ४७१
जीवप्रतिबोध गीतम् ५१९
जीवप्रतिबोध संज्झाय ६१०
जीवत स्वामी रास ५३
जीवंधर चरित्र २०६
जीवंधर रास २०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवंधर चंपू २०६
जीवंधर प्रबन्ध २०६
जीवविचार टब्बा ३४५
जीवविचार बालावबोध ४८०
जीवविचार रास ५३, ५७
जीवस्वरूप चौपइ १३१, १३४
जेसड़ी १७८, १७९
ज्येष्ठ जिनवर कथा ४०७, ४१०
जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसंचय १२४, १३२, १६४, १६५, ४५, २१२, ४८९, ६१२
जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संग्रह ९७, १७३
जैन ऐतिहासिकरासमाला १६४,९४
जैन गुर्जर कविओ १३९, १६०, ११३, ३३, ३४, १८१, ३०२, ३०३, २९९, ३०१, २८८, २६८, १९५, ४०१, ३५८, ३२१, २४३, २२९, २२०, ३६२
जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता को देन २६७, १४८
जैन ज्ञान स्तोत्र अने केवली स्वरूप स्तवन ३६१
जैन प्रकाश ३२९, ३१३
जैन प्रबोध ३६३, ३०३
जैन प्राचीन पूर्वाचार्यों विरचित स्तवन संग्रह २१३
जैन युग १९६
जैन रामायण १८३
जैन रास संग्रह २२०, ४८२
जैन संज्झाय संग्रह ३०५
जैन सत्य प्रकाश २०२
जैन साहित्य और इतिहास ४५९
जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास ३३, २०, ५०२
जैन सिद्धांत भाष्कर ५५७
जोगीरास ३१७, १९९
जोधपुर मंडन पार्श्व स्तवन ४८०
ज्योतिष सार या जोइस हीर ५७७
ज्योतिष सार ३१८
ज्ञाताधर्म ओगणीस अध्ययन संज्झाय ४४५, ४४६
ज्ञाताधर्मकथा टब्बार्थ ६१५
ज्ञाता सूत्र बालावबोध ४६४, ६८
ज्ञाताधर्मकथा बालावबोध ७१
ज्ञाताधर्म सूत्र १९ अध्ययन पर संज्झाय ३६३, ३६५
ज्ञानबावनी ६०४, ३१०
ज्ञानपंचमी २१२
(नेमिजिनस्तव)
ज्ञानसूर्योदय (नाटक) ४५७
झंझरपुर या सम्यक्त्व स्तवन बालावबोध १५७
झांझरिया मुनि संज्झाय ४९२

ट

टंडाणा रास ३१८
ठंढण कुमार चौपई ३८५
डण्डक बालावबोध ४८०
ढालसागर (हरिवंश) १३७
ढोला मारू रा दूहा १०६, १०८, ११०, १

त

तर्कभाषा वार्तिक ४४५, ४९७
तत्व तरंगिणीवृत्ति २०
तत्वसार दूहा २६
तत्वार्थसूत्र भाषा २८९
तपा इकावन बोल चौपइ १३१, १३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप छत्तीसी १४३,१४४
तपागच्छ पट्टावली २८३
तरुण भारत ग्रन्थावली १५४
तिमरी पार्श्व स्तवन ५३१, ३६३
तीर्थंकर चौबीसना छप्पय २६८
तीर्थंकर विनती ८९
तीर्थ चैत्यपरिपाटी ४३०
तीर्थमाला २३८, २७९,३०४, ५४३
तीर्थमाला स्तवन अथवा पूर्वदेश चैत्य परिपाटी स्तवन २१२ २१४
तीर्थमाला त्रैलोक्य भुवन प्रतिमा संख्या स्तवन १५७
तीर्थमाला छत्तीसी ५१७
तेतलीपुत्र रास ५०९, ९३
तेजसार रास १०७
तेजरत्न सूरि संज्झाय ६११
तेरह काठिया संज्झाय २४६, २४७
त्रण प्राचीन गुजराती कृतियों २६६
त्रणमित्र कथा चौपइ ४६३
त्रिलोक सुन्दरी मंगल कलश चौपइ ४२५
त्रिषष्टिशलाका स्तवन २२३, २२४
त्रिशद उत्सूत्र निराकरण कुमति मतखंडन १३५
त्रेषनक्रिया १४१
त्रेषनक्रिया विनती १०४
त्रेशठ शलाका पुरुष विचार गर्भित स्तोत्र २१३
त्रैलोक्य सार चौपइ अथवा धर्म-ध्यान रास ५५०, ५५१

थ

थावच्चा सुकोशल चरित्र ७३, ७५
थावच्चा सुत ऋषि चौपइ ५१४, ५१५

द

दया छत्तीसी ५१७, ५३२
दवदंती सती गीतम् ५१९
दसलक्षण रास ३१९
दशविध यतिधर्मगीत या धर्मगीत ६७ ६८, ७१
दशवैकालिक सूत्र बालावबोध ६१३-६१४, ३९१, ४०३, ४९९
दशवैकालिक टब्बा ४४०
दशश्रावक गीत ४९९
दशारणभद्र मास ६००, ६०१
दशार्णभद्र नवढालिया ५०७
दशाश्रुत स्कन्ध २०
दंडक स्तवन ७९
दंडक ना बीस बोल बालावबोध ६१७
दंडकावचूरि २५१
दानशील तप भावना रास २९२
दानशील तप भावना अे हरेक अधिकार पर
दृष्टांत कथारास ४३४, ४३५
दानशील तप भाव संवाद ५१७
दानशील तप भाव तरंगिणी ९२
दामनक चौपइ १२२
दामनक रास ३८६
दिक्पट चौरासी बोल ३७४
दीपक छत्तीसी ९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुपदी संबंध ५२३
दुर्जनसाल बावनी ९४
दूहा बावनी ५९५
देवकुमार चौपइ ४४३, ४४५
देवकुमार चरित्र ३२३
देवकी छ पुत्र रास ४४८
देव कुरुक्षेत्र विचार स्तवन ५४२, २३८, २३९
देवचन्द रास ४८६
देवतिलकोपाध्याय चौपइ २७५
देवदत्त चौपइ ३५३, ३५५
देवदत्त रास ७०, ७१, ६८
देवराज वच्छराज चौपइ २६, २८४ ५२३, ५२५ (हंसराज वच्छराज चौपइ)
देवराज वच्छराज प्रबंध ४२७
द्रव्यगुण पर्याय रास ३७२, ३७४
द्रव्यसंग्रह भाषा टीका १००
द्रव्यसंग्रह बालावबोध ६०४
द्रौपदी चौपइ ५४, ५६, ४२३, ४७२, १७७
द्रौपदी रास ३०३, ६४, ६५, १७६
दोषापहार बालावबोध ५३०
दोहा शतक ५९३

ध

धंधाणी स्तवन ४४०
धनदकुमार रास ५७६
धनदत्त चौपइ ५१४, ५१६
धनदेव पद्मरथ चौपइ ३५३, ३५५
धनविजय पन्यास रास ३०५
धन्ना चरित्र २९५, २९७
धन्ना शालिभद्र रास ६०६
धन्ना शालिभद्र चौपइ १३१, १३५
धम्मिलकुमार रास ४४
धर्मदत्त चौपइ अथवा रास १६२
धर्मदत्त धनपति रास १६०
धर्मनाथ स्तवन या लघु उपमिति भव प्रपंच स्तवन ४७६
धर्मनीत या यतिधर्म गीत ४२७
धर्मपरीक्षा चौपइ ५४८, या रास ५५२
धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपइ १४५, ६०५
धर्मबुद्धि चौपइ २६
धर्मबुद्धि रास ३३३, ३३४, ३३५, ५८९
धर्मबुद्धि मन्त्री चौपइ ४६७
धर्ममंजरी चौ० ५०९
धर्ममूर्ति गुरु फागु ८१, ८०
धर्म सहेली ३४३, ५४७
धर्मसागर ३० बोल खंडन १३५
धन्यविलास या धन्ना शालिभद्र रास ८५
धातु तरंगिणी ५६७
ध्यान छत्तीसी १४१
ध्यान स्वरूप(निरूपण) चौपइ ३२५
ध्वजभुजंग आख्यान ४८

न

नगरकोट आदिनाथ स्तवन ७३
नयकर्णिका ४७३
नयचक्र बालावबोध ५९३
नयप्रकाश रास ३०२, ३०१
नर्मदासुन्दरी गीतम ५१९
नर्मदासुन्दरी चौपइ ८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नर्मदासुन्दरी रास ३९६, ३९७, ३५९
नर्मदासुन्दरी प्रबंध ८३
नरदेव चोपइ ५२३
नरवर्म चरित्र ४६७
नलदमयंती रास ३६३, ३६४, २७१
नलदमयंती रास अथवा नलायन-रास २६१, २६२, २६५
नलदमयंती चंपू १३१
नलदमयंती संबोध या रास ५१८, ५२३, ५११
नलदमयंती प्रबंध १३१
नलदमयंती चौपइ ५१४, ५१८
नलाख्यान ५१८
नवकार गीत १२२
नवकार छंद १०६, ११०
नवकार रास ४८३
नवग्रह स्तवन ८९
नवतत्व चौपइ ८०, २२८
नवतत्व बालावबोध ६१६, ४८०, ७८
नवतत्व जोडि ४९०
नवतत्व नवढाल ५७६
नवतत्व रास ५३
नवरस ३१०
नववाड गीत १८७
नववाडी गीत ७४
नववाडी २४९
नंदन मणियार रास ४४५
नंदिषेण चौपइ २२३
नंदीसेन फाग १९१
नागलकुमार नागदत्त रास ३२९
नाता संज्झाय १६०
नागिल सुमति रास ६०५
नानादेश देशीभाषा मय स्तवन २८५
नाममाला ३०८, ३०९
नारद चौपइ ४३४
नारीगीत ५०६
नीतिशास्त्र पंचाख्यान चौपइ अथवा रास ४५१
निधि चरित १९९
निर्दोष सप्तमी कथा ४०७
निश्चय व्यवहार विवाद ३७५
नेमिगीत नेमीश्वर गीत २४७
नेमि चंद्रावला १९७
नेमिचरित १३९, ४५९
नेमिचरित फाग १२०
नेमिचरित या नेमिगीत ५६०
नेमिचरित्र माला १३९
नेमिजिन चंद्रावला ५९६
नेमिजिन फाग १२४
नेमिजिन भाव ४७४
नेमिजिन रास अथवा वसंतविलास ५७१
नेमिजिन स्तवन २२०, २२१
नेमिदूत १३१, ६२
नेमिनाथ गहूंली ४२७
नेमिनाथ गीत १७०, १७१
नेमिनाथ द्वादस मास ४४५, ४४७
नेमिनाथ नवभव रास ३५३, ३५७
नेमिनाथ बारमास ४७४
नेमिनाथ बारहमासा १०३, ३७९
नेमिनाथ फाग ३७९, १६०
नेमिनाथ भ्रमर गीता ४७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिनाथ रास २२३, ४१९, ४२१
६४, ३१४, ३१५
नेमिनाथ रेखता १४१
नेमिनाथ विनती ३८०
नेमिनाथ समशरण विधि ३४९
नेमिनाथ स्तवन ८४, २००
नेमिनाथ बृहद् स्तवन ४२४
नेमिनिर्वाण ४०७, ४१७
नेमिफाग ७३, ७५
नेमिराजर्षि गीत ३०७
नेमिराजर्षि चौपइ ५३०, ५३१
नेमिराजीमती रास ५०७
नेमिराजुल गीत ५६७, १०३
नेमिराजुल बारहमासा १६७,
१६८, ४४१
नेमिराजुल धमाल ३५३, ३५७
नेमिराजुल फाग ३४८
नेमिरास २४१, २९४
नेमिरास यादव रास २९९
नेमिवंदना ५५४
नेमिविवाहला ३४८
नेमीश्वर गीत ५६७
नेमीश्वर चंद्रायणा २६९
नेमिस्तवन ३८, ५३१, ५०३, २७१
नेमिसागर रास ९४
नेमीश्वर रास ४०७
नेमीश्वर हमची १०३
नैषधीय टीका १८०

प

पउम चरिउ ५१४
पट्टावली संज्झाय ५६०, ४७४
पक्खि सूत्र बालावबोध ४८०
पडिकमण स्तवन ४८१
पन्नवणा विचार स्तवन ४७२
पद महोत्सव रास २१२, २१३
पद्मावती पद्मश्री रास ३५३
प.महंस चौ० ४०७, ४१५
परमहंस संबोध चरित्र २५७
परमार्थी दोहा शतक २६
परम्परा १०७, ३४
पवनंजय अञ्जनासुन्दरी सुत
हनुमंत चरित्र रास २९७,
३०१
पवनदूत ४५७, ४५९
पवनाभ्यास चौपइ ४३
पवयणा सारोद्धार अवचूरि ६१६
पञ्चकल्याणक २३
पञ्चकल्याणक गीत १७०
पञ्चकल्याणाभिध जिनस्तवन
४३६
पञ्चकारण स्तवन ४७६
पञ्चगति बेलि ५६७
पञ्चगुरु की जयमाल ४०७, ४१६
पञ्चतन्त्र ४५१
पञ्चतीर्थश्लेषालङ्कार ५५८
पञ्चपर्वी रास अथवा रत्नशेखर
रास ६०२
पञ्चपाण्डव संज्झाय ९३
पञ्चमी व्रत कथा ३१३
पञ्चवरण स्तवन २७०
पञ्चसती द्रौपदी चौपई ५७८
पञ्चसमवाय स्तवनम् ४७३
पञ्चाख्यानगति वकनालिकेर
कथानक ५७८
पञ्चाख्यान अथवा पञ्चतन्त्र
चौपइ ३८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चाख्यान चौपइ अथवा कथा-कल्लोल पञ्चकारण रास ३८८
पञ्चाशक वृत्ति ३८०
पञ्चास्तिकाय बालावबोध ५९३
पञ्चोपाख्यान १
पांचबोलनो मिच्छामी दोकड़ो बालावबोध ४९८
पाँच पांडव संज्झाय ५०१
पाखण्ड पच्चासिका ५४७
पाटण चैत्य परिपाटी ४३९
पाण्डव पुराण ५०६, ४१८, ४५९
पापपुण्य चौपइ ३२३
पाश्र्वचन्द्र स्तुति अथवा सलोका ३६३
पार्श्वधवल ३३०
पार्श्वनाथ गुणवेलि ३९९, १८१, १८२
पार्श्वनाथ चरित्र २८३, २०
पार्श्वनाथ दसभव स्तवन १८६
पार्श्वनाथ दसभव बालावबोध २७५
पार्श्व पुराण ४५९
पार्श्वनाथ फाग ५०७
पार्श्वनाथ रास ४९९, ७७, ८९
पार्श्वनाथ संख्या स्तवन ३८०
पार्श्व स्तवन १७७, ६०२
पार्श्वचंद्र सूरिना ४७ दोहा १५९
पार्श्व पुराण २३
पार्श्व लघुस्तवन ३३३
प्रकरणादि विद्या गर्भित स्तवन संग्रह ३२६
प्रज्ञापना सूत्र बालावबोध २४०
प्रतिक्रमण विधि स्तवन ४८०
प्रतिक्रमण हेतु गर्भित स्वाध्याय २७५
प्रतिबोध रास २६१
प्रत्येकबुद्ध चौपइ १३१
प्रद्युम्न कथा २३५
प्रद्युम्न कुमार चौपई ८०
प्रद्युम्न चरित ६१३
प्रद्युम्न रास ४११, ४०७
प्रद्युम्न परदवण रास ४१०
प्रदेशी चौपई अथवा केसी प्रदेशी राजा रास १९०
प्रबन्ध चिंतामणि ३५३
प्रभाकर रास ५६२
प्रभातिउ ५८६
प्रभावती चौपइ २८४
प्रभावती (उदायन) रास २६१, २६४
प्रवचन सारोद्धार बालावबोध २७५ २७८
प्रवचनसार ४०३, ४०४
प्रवचनसार बालावबोध ५९३, ६१३
प्रश्नोत्तर काव्य वृत्ति ३०१, ३३३
प्रश्नोत्तर रूप संवाद ३३५
प्रश्नोत्तर मालिका अथवा पार्श्वचन्द्र मत दलन चौपई १३५
प्रसन्नचंद्र राजर्षि रास ३९७
प्रस्ताव सवैया छत्तीसी ५१७
प्राकृत छन्द कोष २०
प्राकृत पञ्च संग्रह टीका ५५२
प्राचीन छंद संग्रह ४९२
प्राचीन जैन रास संग्रह १९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन तीर्थमाला संग्रह १६४, ३८०
प्राचीन तीर्थ संज्ञाय ४९२
प्राचीन फागु संग्रह ४७५, ३१५, ३५६, ८७, ७१
प्राचीन मध्यकालीन बारमासा संग्रह १३८, १५९
प्राचीन संज्झाय तथा पदसंग्रह २९२
प्राचीन स्तवन संज्झाय संग्रह ५६८
प्राचीस स्तवन रत्नसंग्रह २९२
प्रास्ताविक दोहा २०९
पिंगलसार वृत्ति २०
पिंगल शिरोमणि १०७
पिंड विशुद्धि दीपिका २०
प्रियंकर चौपइ १९४, १९२
प्रियंकर नृप चौपई १२७
प्रीत छत्तीसी ९७
पृथ्वीचंद कुमार रास २२८, २२९
पुञ्ज ऋषि चौपइ ५१४
पुञ्ज मुनि नो रास २२०
पुण्य छत्तीसी ५१७
पुण्य पाप रास ५६५
पुण्य प्रकाश स्तवनम् ४७३
पुण्यपाल नो रास ४०५
पुण्य प्रशसा रास ५३
पूज्यभाष गीत ७५
पुण्यसार चरित्र चौपइ ५१४, ५१८
पुण्यसार रास २०२, २९४, ३५९
पुण्यसार चौपइ ४२७
पुण्यसागर गुरु गीतम् ५७१
पुरन्दर चौपइ ३५३, ३५४
पुरोषोदय धवल ४४८
पुष्पमाला प्रकरण ६१४
पूजाष्टक वार्तिक ७८
पूजाविधिरास ५३, ६१
प्रेमलता चौपइ १५२
प्रेमलालक्षी रास अथवा चन्द चरित २००, २२१
प्रेमविलास १५२
प्रेमविलास प्रेमलता चौपइ १५४
प्रोषध विधि २०, पोषध विधि प्रकरण टीका १७५
पोसीना पार्श्वनाथ स्तवन ४७९

ब

बंकचूल रास ३२२, २०४, २०५, १४३
बडली मंडन बंध हेतु गर्भित वीर-जिन विनति स्तवन २५१, २५३
बड़ा कक्का ३४३
बन्दी नु सूत्र टब्बा ४६९
बन्ध हेतु गर्भित वीर स्तवन ११२
बत्तीशी ३४२
बनारसी विलास ३१८, ३१०, २४
बरदत्त गुणदत्त मञ्जरी कथा ६७
बलिभद्र नी विनती ३८०
बल्कलचीरी चौपइ ५१४
वसुदेव चौपइ ५७१
बारभावना अधिकार १७६
बार व्रत जोडि १२५
बार व्रत रास ८२, १३१, २९०
बार व्रत संज्झाय ३५
बार व्रत ग्रहण रास १७२
बारह भावना सन्धि १७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारह भावना गीतम् ५१९
बारह भावना संज्झाय ५०३, ५०५
बार भावना संज्झाय ६१०
बारह व्रत कुलकम् ५१९
बारह व्रत रास ३८
बार व्रत नो रास १७६
बार व्रत संज्झाय ४७१
बालचंद बत्तीसी ३१३
बावनी १८५, १५२
बावीस परीग्रह चौपई १९२
वासुपूज्य जिन पुण्य प्रकाश रास ५०३, ५०४
बाहुबलि गीतम् ५१९
बाहुबलि वेलि ३१४
बाहुबलि संज्झाय ४८०
बीकानेर ऋषभ स्तवन ५४९
वीरांगद चौपई ५३३
वीर विलास फाग ३१४
वीस विहरमान जिनगीत ३९९
बीस विहरमान जिन स्तवन या बीसी ५१९
बीस विहरमान बोल सयुक्त १७० जिननाम स्तवन २९०
बीस विहरमान जिनगीत (बीसी) १८१, १८२
बीस विहरमान स्तव ५२८
बीसी ९१, ५६८, ३७५, ४४३, ४४५, ४७४. ५०७
बिहरमान जिनगीत अथवा बीसी १८४
ब्रह्म गीता ३७५
बृहच्छान्ति स्तोत्र २१
बुद्धिरास ५९४
बेताल पच्चवीसी रास २३१
बेताल पचीसी ५३९
बैकुण्ठ पंथ ३२९

भ

भक्तामर अवचूरि ५२९
भक्तामर स्तोत्र ३१
भक्तामर स्तोत्र वृत्ति ४०७
भक्तामर स्तोत्र सुबोधिनी वृत्ति ५१७
भगवती गीता ४६७
भगवती साधु वन्दना २८८
भगवती सूत्र बालावबोध ६१४
भगवती महावीर रास ४५२
भजन छत्तीसी ४९
भमरा गीत ३५८
भरडक बत्तीसी रास ५६३
भरत बाहुबलि रास ५३, ५८
भरत बाहुबलि छन्द १०४, १०३, ४५८
भरत बाहुबलि चौपइ ३३०, ३३१
भरत बाहुबलि संज्झाय ४४६
भविष्यदत्त चरित्र २८३, ३०५
भविष्यदत्त चौपइ ४०७, ४१४, ३४
भारती स्तोत्र अथवा अजारी सरस्वती छंद ४९२
भावशतक ५१२, २०, ५२३,
भावशत त्रिशिका ५३३
भावहर्ष सूरि चौपइ ३४
भीमसेन चौपइ ४६९
भूपाल चौबीसी ३१
भोज चरित्र चौपइ ५९९
भोज प्रबन्ध ३५३
भोज प्रबन्ध चौपइ ५३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

म

मत्स्योदर कुमार रास ५३०
मत्स्योदर चौपइ २९४, २९६
मतिसागर रसिक मनोहर चौपइ ४६७
मदछत्तीसी २९५
मदनकुमार राजर्षि रास अथवा चरित्र २१७, २१८
मदन नरिन्द्र चरित्र २१७, २१८
मदन शतक २१८
मधु कुमार मालति कुमारि चरित्र या मधुमालती री वार्ता १४८
मध्याह्न व्याख्यान पद्धति ५६९
मनकरहा रास ३१७
मनराम विलास ३४१
मनोरथ गीतम् ५१८
मनोहर माधव विलास अथवा माधवानल ६०८
मयणरेहा चौपइ ५७३
मरुदेवी गीतम् ५१९
मल्लिनाथ रास ५३
मल्लिनाथ स्तवन २४९
महापुराण कालिका २०१, ४९३
महाबल रास ४४१
महावीर निर्वाणस्तवन (दीप-मालिका महोत्सव १४०
महावीर स्वामी नु २७ भव स्तव ४४४ ४९७
महाभारत २२५
महावीर पारणा ३५३
महावीर पञ्च कल्याणक स्तव ३५३
महावीर लोरी ३५३
महावीर स्तवन ३७५
महावीर गीत ३८०
महावीर सत्ताइस भव ४२२
महावीर सत्ताइस भव स्तवन २२८
महाशतक श्रावक सन्धि २४४
महिपाल चौपइ ५९०, ५११
मंगलकलश रास ७३, १२२, ३७३
मंगलकलश चौपइ या फागु ७५
मंगल गीत प्रबन्ध या पञ्चमंगल ४१९, ४२१
मन्दोदरी रावण संवाद ५४२, ५४४, २३८, २४०
माधवानल कामकंदला १, १०६, १०७
मालशिक्षा चौपइ ३५३
मालवी ऋषिनी सज्झाय ६०४
मालीरास १७९, १८०
मिश्रचाड रास ४७९
मिश्रबन्धु विनोद ४१, ३५१, ५९७
मुक्ति प्रबोध १००
मुखवस्त्रिका विचार ५७८
मुगतिमणी चूनरी ३१६
मुनिपति चौपइ ५७७, ५७९, २५७
मुनिमालिका १४९
मुनीश्वरो की जयमाल १७९
मुल्तान पार्श्व स्तवन ३८६
मूलदेव कुमार चौपइ १३४
मूलदेव चौपइ १३१
मृगांक कुमार चौपइ २९१, २९२
मृगांक पद्मावती रास ३५३
मृगांक पद्मावती चौपइ २४१, २४३
मृगांक लेखा चरित ३१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृगाङ्क लेखा रास ४२५, ४८८
मृगध्वज चौपइ २७५
मृगापुत्र चौपइ ४९९
मृगापुत्र सन्धि ५४९, ४२७
मृगापुत्र ११९ १२०
मृगावती
मृगावती आख्यान ५०३, ५०४
मृगावती चरित्र चौपइ या मोहन बेल ५१७
मृगावती चरित्र चौपइ ५१५
मृगावती चौपइ ८३
मेघकुमार संज्झाय ५०३
मेघकुमार चौपइ ५५५
मेघकुमार गीत ६६
मेतारी ऋषि चौपइ ३४५
मेघदूत ३५, १२२, ४५८
मोह छत्तीसी २९५, २९७
मोहनबेलि चौपइ ७२
मैना सुन्दरी २८७ ४१२
मोती कपासिया संवाद ५७८
मोती कपासिया छन्द ४९९, ५००
मोह विवेक युद्ध ३०८, ३१०
मौन एकादशी स्तोत्र ५३१
मौन एकादशी स्तवन ४३४, ४३५ ४४३, ४४५, ५३०
मोरडा ५६७

य

यति आराधना ५१७
यशोधर चरित २५४, ४५८, ४५९
यशोधर चरित्र अथवा रास १६१
यशोधर चरित्र ३४३, १९०
यशोधर चरित्र रास २३४
यशोधर चरित रास १०१, ४८० ४८१, १६०
यशोधर नृप चौपइ २६१, २६२, २६४
यामिनी भानु मृगावती चौपइ १४५
योग चिंतामणि ५६७
योगदृष्टि समुच्चय ३७५
योग बावनी ३४५
योगी रासा १७८, १७९

र

रंग रत्नाकर रास ७६
रघुवंश टीका १३१
रघुवंश १२२
रतनसी ऋषि नी भास १४३
रत्नकीर्ति गीत ५५४
(भट्टा०) रत्नकीर्ति पूजा गीत १७१, १७१
रत्नगुरुनी जोड या सज्झाय २ ८
रतनचूड चौपइ ५७८
रत्नपाल चौपइ ३८६ ३८७
रत्नमाला रास २७९, २८१
रत्नवती चौपइ ३८८, ३८९
रत्न समुच्य अने रामविलास १५०
रत्नसार कुमार रास ५४९
रविव्रत कथा १५५
रसमञ्जरी ३४५
रसरत्न रास १५८
रसिक प्रिया ९८
राजगृह यात्रा स्तवन ४७८
राजचन्द्र प्रवहण ३६३, ३६४
राजप्रश्नीय उपांग बालावबोध ३६३, ३६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रात्रिभोजन चौपइ ५५६
राजप्रसेनी सूत्र चौपइ १७७
राजमती नेमि सुर ढमाल ३१८
राजसिंह कथा (नवकार रास) ५१
राजसिंह चौपइ ५४९, १७७
राजसिंह रत्नावली सन्धि ५७८
राजस्थान का जैन साहित्य ३१, ५०, ५१
राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व ३३
राजुल गीतम् ५१९
रामकृष्ण चौपइ ४४८
रामचरित्र चौपइ २०४
रामचरित मानस ११५
रामयशोरसायन रास ११४
रामरासो ३५१
रामसीता रास २५१, २५२
रायचन्द सूरि रास ४८१
रायचन्द सूरि गुरु बारमास १५९
रायपसेणी चौपइ ५२३
रायमल्लाभ्युदय २८३
रावण मंदोदरी संवाद ४९८
रावण ने मंदोदरी अे अपेल उपदेश ४६८
रिपुमर्दन भुवनानंद चौ० ४३०, ४३२
रिपुमर्दन रास ४८७
रुक्मिणी हरण ३८२, ३८४
रूपकमाला की व्याख्या ५१३
रूपचंद ऋषिरास २०४
रूपचंद कुंवर रास २६१, २६३
रूपसेन राजर्षि चौपइ १९२
रूपसेन ऋषि रास ३२७
रूपसेन चतुष्पदी ४४३, ४४५
रूपसेन रास २९४, २९६, ७०, ६८ १७२
रूपसेन कुमार रास ११७
रोगापहार स्तोत्र ३४२
रोहणियामुनि रास ५७, ६३
रोहणी व्रत प्रबंध ४५५
रोहिणी व्रत रास ३१९

ल

लघुशांति वृत्ति टीका २४४
लघु सीता सतु ३१६, ३१७
लघु क्षेत्र समास बालावबोध ३६३ ३६५
लघु वृत्ति प्रपा ४९४
लघुबाहुबलि बेलि ८९
लवकुश रास, या रामसीतारास या शीलप्रबंध ३९७
लवकुश छप्पय ३४९
लाटी संहिता ३९२
लाभोदय रास ६, ५८४
लाल पछेबड़ी गीत २४७
लावण्यसिद्धि पुहुतणी गीतम् ५९९
लाहौर गजल १५२
लुंका मत नी स्वाध्याय ३९८
लुंका खण्डन प्रतिमा मण्डन रास ८२
लुम्पक मत तमोदिनकर चौपइ १२५
लुम्पक मतोत्थापक गीत ३३४
लोकनाल बालावबोध ५२८, २६०
लोकनालिका बालावबोध ३७७
लोकनाल गर्भित स्तवन ४९९
लोक प्रकाश ४७७

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

लोका शाह नो सलोको ११५
लोका पर गरबो ५७३
लोंका मत निराकरण चौपई ५५०, ५५१
लोचन काजल संवाद १६७, १६८
लोद्रबा गीत १७७
लौकिक ग्रन्थोक्त धर्माधर्म विचार सूचिका चतुःपदिका ११७

व

वछराज देवराज चौपई ९०, १५०
वणजारा गीत ४१९
वर्धमान जिनस्तव (पंचकल्याणक) ६०३
वर्द्धमान पुराण भाषा २६९
वंभन वाड मंडन महावीर फाग १२६, १२४
वयरस्वामी चउपइ १७२
वरकाणा यात्रा स्त० २४१
वरदत्त गुणमंजरी बालावबोध ६१४
वर्षफलाफल संज्झाय ५५८
वसंत विद्याविलास ५५२
वसुदेव प्रबन्ध १५५
वस्तुपाल तेजपाल रास ६२३, ३०५, ५१४, ५१५
व्रतविचार रास ५३
ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टा० त्रिभुवन कीर्ति : व्यक्तित्व एवं कृतित्व २०८
ब्रह्मविलास २४
व्यसन सत्तरी ५२५
वाग्भट्टालंकार वृत्ति १२१
वार्त्तारास ३२१
वारव्रत संज्झाय ५७५
वासुपूज्य मनोरम फाग ८६
वासुपूज्य की धमाल ३५
व्यापारी रास ५८९
विक्रम खापरा चोर रास ३६८
विक्रम चरित १
विक्रमचरित्र ३३९
विक्रम पंचदण्ड चौपई ३५३, ३५५
विक्रमराय चरित्र ४५७
विक्रमसेन शनिश्चर रास ५४०, ५४१
विक्रमादित्य कुमार चौपई ४४२
विचार ग्रन्थ बालावबोध ६१७
विचार चौसठी २५६
विचार मंजरी १५१
विचार स्तव बालावबोध ६१४
विजयतिलक सूरि रास २१०
विजयप्रशस्ति ५९६, १०१, २०
विजय सेठ विजया सेठानी रास अथवा कृष्णपक्षीय शुक्लपक्षीय रास ३९६
विजय सेठ चौपई ४०४
विजय सेठ विजया सेठानी स्वल्प प्रबन्ध ५६८
विजय सेठ विजया शेठानी रास ४०६
विजय सेठ विजया सेठानी प्रबन्ध १९५
विजयसिंह सूरि रास १२४, २१२
विजयसिंह सूरि रास या विजयप्रकाश रास १२७
विजयसेनसूरि निर्वाण स्वाध्याय १२४, ४६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयसेन सूरि निर्वाण संज्झाय ४६८, ९९
विजयसेन सूरि निर्वाण रास ४६६, ४६८
विजयसेन सूरि रास—लाभोदय रास २११
विद्याविलास चौपई ४५, १८६
विद्याविलास रास ४००
विधि कन्दली २५७
विधि रास २४६
विनयदेवसूरि रास ३३९, ३४०
विनय विलास ४७४
विनोद चौत्रीसी कथा अथवा रास ५६४
बिमलकीर्ति गुरु गीतम् ४३
बिमल प्रबन्ध २३२
विमलाचल स्तवन ११७, ११८
विविधपूजा संग्रह ३६५
विवेक चौपई १४१
विवेक विलास बालावबोध ६१५
विषापहार स्तोत्र ३१
विशेषनाम माला ५२९
विल्हण पञ्चासिका चौपई ५३३
बृहद्गच्छीय गुवबिली ३५३
वृहज्जिन वाणी संग्रह १७९
वृहत्मंजरी २३२
वृहत्शांति वृत्ति ५६७
वृहत् स्तोत्र विधि २७५
वीर जिनिंद गीत ३१८
वीरसेन रास ५३
वीरसेन संज्झाय २९०
वीरागंद चौपई ३५२, ३५३, ३५४
वैताल पच्चीसी १, ३६८
वैताल पच्चीसी चौपई ५९९
वैदरभी चौपई ५५६
वैद्यकसार रत्नप्रकाश चौपई ४३६
वैद्यकसार संग्रह ३६७
वैद्यकसारोद्धार ५६७
वैद्यक महोत्सव २५६
वैद्य विनोद ३१८
वैद्य विरहिणी प्रबन्ध ५०
वैर स्वामी संज्झाय ५०३
वैराग्य गीत ३५८, १८३
वैराग्य बावनी ४४२
वैराग्य विनति ५२७

श

शंकित विचार स्तवन बालावबोध १२०
शकुन दीपिका चौपई १६४
शंखेश्वर स्तवन ५४९
शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तव ४९७
शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन २६२, २६५
शखेश्वर पार्श्व स्तवन ३२५, ३२६
शत्रुञ्जय उद्धार रास या विमलगिरि उद्धार रास २३१, २६४
शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार कल्प ३४८
शत्रुञ्जय चैत्य परिपाटी स्तवन १३५, १३१
शत्रुञ्जय तीर्थ परिपाटी २२८
शत्रुञ्जय अथवा पुण्डरीक स्तवन ५३१
शत्रुञ्जय माहात्म्य रास ५२३, ५२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रुञ्जय यात्रा स्तवन ४९०, १०७
शत्रुञ्जय रास ५१४, ५१५, ४७२, ५३
शत्रुञ्जय स्तवन बालावबोध ३३१
शत्रुञ्जय स्तवन या शत्रुञ्जय तीर्थमाला रास ३०५
शान्तिनाथ चरित्र ३६६
शांतिजिन विनति रूप स्तवन अथवा छन्द १३८
शांतिजिन स्तवन ३२५, ३२६
शांतिनाथ कल्याणक ६२३
शांति विवाहलो ५२३
शांति स्तवन ३४, १३१, २०३, ४२४, १८७
शांतिनाथ पुराण या चरित २०१
शांतिनाथ रास ५८६, ४२४
शांतिनाथ स्तवन २६२, २६५, ३१९, ४२८
शार्दूल रिसर्च इन्स्ट्रीटयूट ९७
शाम्बप्रद्युम्न चौपई ५१४, १७६
शारदीय नाममाला कोश ५६७
शालिभद्र गीतम् ५१९
शालिभद्र चौपई ५००
शालिभद्र मुनि चतुष्पदिका ३९९, ३३५, ३३७
शालिभद्र मुनि चतुष्पदिका या रास या चरित्र अथवा
शालिभद्र धन्ना चौपई १८१
शाश्वत जिन स्तव बालावबोध ७३
शाश्वताशाश्वत जिन अथवा वृद्ध चैत्यवंदन ३६२
शिक्षा छत्तीसी ३४६
शिवजी आचार्य बो सलोको ३८
शिवजी आचार्य रास २४७
शिवदत्त रास ५३८
शीतल जिन स्तव ५३०
शीतलनाथनी विनती १७०
शीतलनाथनी स्तवन १२१
शीलकुमार रास अथवा मोहन बेलि रास २४८
शील छत्तीसी ५१७
शीलतरंगिणी २९७
शील फाग अथवा शील विषये कृष्ण रुक्मिणी चौपई ४३३
शीलवती चौपई २३०
शील बत्तीसी ३५७, १८३, १२४, १२६
शील बावनी ३५७
शील रत्न रास ४६०
शील रास ५२३, ५२४
शील शिक्षा रास २६१
(विजय विजया कथा गर्भित)शील शिक्षा रास २६५
शील सुन्दरी प्रबन्ध १५५
शीलावती या लीलावती चौपई ५९०
शीलोपदेश ६१४
शुक बहोत्तरी अथवा रसमञ्जरी ३८८, ३८९
शुकराज चौपई ५४९
शोभन स्तुति टीका १६६
श्रद्धा प्रतिक्रमण बालावबोध ६१७
श्रावक गुण चतुष्पदिका ५०९
श्राद्ध प्रतिक्रमण वृत्ति २०
श्राद्ध विधि रास ५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक विधि रास अथवा शुक-राज रास ३२५, ३२६
श्रावकाचार चौपई ११७
श्रीगच्छनायक पट्टावली संज्झाय अथवा सोमविमल सूरि गीत ५६१
श्रीदत्त चौपई २७९, २८२, ६०७
श्री धन्ना अनगार गीतम् ५१९
श्रीपाल आख्यान ४५८
श्रीपाल चरित्र २८६, २८७
श्रीपाल चौपाई १२३, ३८५
श्रीपाल रास ४०२, ३७२, ४१२, ४७६
श्रीपाल चौपई रास २७९, २८१
श्रीपाल स्तुति ६४, ६६
श्री पूज्य वाहण गीत १०६, १०७
श्री पूज्य रत्नसिंह रास ५५७
श्री मंधर स्तव ४४१
श्री शांतिजिन स्तवन ३७५
श्री सम्मेत शिखर रास १६४
श्री सार चौपाई या रास २७९ २८०
श्री सुजसबेलि भास ३७१
शृंगार मञ्जरी या शीलवती चरित्र १६६, ५६२
शृङ्गार रसमाला ५५८
श्रुतबोध वृत्ति ५६७
श्रुतपञ्चमी २९३
श्रुतस्कंध २०६
श्रेणिक प्रबन्ध ८९
श्रेणिक रास ५६०, ४४, ५३, ६१ २७१, २७२, २७३, ३२८

ष

षट्द्रव्य वर्णन २०९
षट्साधुनी सज्झाय २४८
षडावश्यक बालावबोध १५५
षट्स्थान प्रकरण संधि
षडारक (६ आरा) महावीरस्तोत्र २३३
षष्टिशतक बालावबोध ६१५

स

सकोशल ऋषि ढाल २३१
सगर प्रबन्ध २६८
सगाल साह चूपई ६९
सगाल शा शेठ चौपई ४५६
सगाल साह रास ६८
सतरभेदी पूजा स्तवन ४९९, १२२
सत्तर भेदी पूजा ५०३, ५०४, ३६५, २५७, ५२९, ५३०, ३८, ४९०
सत्तरी बालावबोध ४४९
सनत्कुमार रास ४७, २९८, २७६
सनत्कुमार राजर्षि रास १००, ११२
सप्तव्यसन गीत १०४
सप्तव्यसन चौपइ ३८८, ३९०
सप्तस्मरण बालावबोध ५२९
सप्तस्मरण ६१३
सप्ततिका बालावबोध ६१४
सत्य की चौपइ या सम्बन्ध ३५३, ३५८
सत्यासिया दुष्काल वर्णन छत्तीसी ५१२, ५१७, ६२४
सदयवच्छ वीर चरित्र ६०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदयवच्छ सावलिंगा चौपइ ९७
समकित बत्तीसी १००
समकित शीलसंवाद रास ३३
समकित सार रास ५९
समयसार २४, २७०, ४१८
समयसार (नाटक) ३०८, ३०९
समयसार की टीका ३९२, ३९३
समयसार पाहुड़ ३०९
समयसुन्दर व्यक्तित्व एवं कृतित्व ५२३
समयसुन्दर रास पञ्चक ५१८, ५१५
समयस्वरूप रास ५३
समकत्व रत्नप्रकाश बालावबोध ६१४
समकित सार रास ५३
समकित नो षष्ट स्यान स्वरूप नी चौपइ ३७५
समवयांग सूत्र बालावबोध ३६३
समवशरण पाठ या केवल ज्ञान कल्याण चर्चा ४१८, ४१९
समवशरण स्तोत्र १४१
समुद्र बहाण संवाद ३७४
समेत शिखर यात्रा स्तवन ४७८
सम्मेत शिखर तीर्थ माला ४६५
सम्मेत शिखर तीर्थ माला स्तवन ५२९, १६०
सम्मेत शिखर रास या पूर्व देश चैत्य परिपाटी १६२, १६५
सम्यकत्व कौमुदी रास ४५०, ५७७, ५८०
सम्यक्त्व कौमुदी रास चौपई १६३
सम्यक्त्व मूल बारव्रत संज्झाय १३९
सम्यक्त्व सप्तति बालावबोध अथवा सम्यक्त्व रत्नप्रकाश ३८१
सरस्वती अथवा शारदा छंद ६०८
सवत्थ बेलि ५३०
संकटहर पार्श्वजिन गीत १७०
संक्षिप्त कादम्बरी कथा ६१४
सखेश्वर स्तवन ४४१
संग्रहणी टब्बार्थ २५२
संग्रहणी बालावबोध १९५, १९२, ६१४
संग्रहणी ढाल बन्ध ३३७
संग्रहणी विचार चौपइ ५३४
संग्रामपुर कथा ३८१
संथारण पइन्ना बालावबोध ६१७
संघपति मल्लिदास नो गीत १७०
संघपट्टक वृत्ति ५२९
सघपति सोमजी बेलि ५१८
संज्झाय पद और स्तवन संग्रह ३७३
संज्झायमाला और मोटू संज्झायमाला ५२८
संतिणाह चरिउ या शांतिनाथ चरित ४९३
सन्तोष छत्तीसी ५१७
संथार पयना बालावबोध ११८
संपति सजय सन्धि १२३
संबोध सत्ताणु ३१४-३१५
संबोध सप्तति टीका १२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्भव स्तवन १७२
संयमरत्न सूरि स्तुति २५०
संयमश्रेणि विचार स्तवन ३७५
संस्तार प्रकीर्णक पयन्ना बालावबोध ६१४
सागर श्रेष्ठि नी कथा ३८७
सागठरसेठ चौपई या सागरश्रेष्ठि कथा ५२३, ५२५
सांचारे मण्डन शीतलनाथ स्तवन १७४
सातसौबीस (७२०) जिननाम स्तवन १२४
साधरमी कुलक टब्बा ५०७
साधरमी गीत ५५४
साधुकीर्ति जयपताका गीतम् १७४
साधुकुल ६०९
साधुगुण स्तवन १५०
साधुगुण वंदना ९९, ११६, ३००, ५१७, ३२९ ३७४ २५९, १७२
साधु समाचारी ३६३, ३६५, ५०९
साधुसमाचारी बालावबोध २४१
साधुसमाधि रास ३१९
सामायक संज्झाय १२४, १२७
सामायिक संज्झाय २४८
साम्यशतक ३७४
सारबावनी ४९९, ५०१
सारलिंगा रास १
सास्वत चैत्य स्तवन १५०
सितपट चौरासी बोल ३७४
सिदूरप्रकर टीका ५६७
सिद्धदत्त रास २३६
सिद्धधुल ३८०
सिद्धपुर जिनचैत्यपरिपाटी स्तवन २५१, २५२
सिद्धांतश्रुत हुंडी ५२६
सिंदूर प्रकर २१
सिंहलसुत प्रियमेलकतीर्थ चौपई ५१४, ५१७
सिंहलसुत प्रियमेलकतीर्थ प्रबन्ध ५१७
सिंहासन बत्तीसी ५३७, १, ५४०, ३५४, ३६८, ५६३, ५७८, ५८०
सिंहासन बत्तीसी कथा ४४३
सीता चरित्र ५९०, ५९१
सीता प्रबन्ध ६०६
सीताराम चौपई ५१४
सीता विरह ३७
सीता शील पताका गुण वेलि १५५, १५६
सीता सती चौपई ५०६
सीता सती संज्झाय ३०५
सीमंधर ना चंद्रउला १६७
सीमंधर जिनस्तोत्र २८९
सीमंधर स्वामी गीत ३१४, ३१५
सीमंधर स्वामी शोभातरंग २०२
सीमंधर विज्ञप्ति रूप स्तवन ७९
सीमंधर स्वामी स्तवन, ३७५, ५६९
सीमंधरेर स्तवन ५०३
सीलबत्तीसी २१६
स्त्री गुण सवैया १५३
स्त्री गजल १५२, १५३
स्त्री चरित्र रास १८९, १९२
सुकोशल गीत ४६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुकोशल संज्झाय २२९
सुख दुख विपाक सन्धि २४५
सुगुरु स्वाध्याय ३७५
सुदर्शन चरित २५४, २५५
सुदर्शन चौपई ९७, ४७२, ५२३
सुदर्शन चरित्र भाषा १८८
सुदर्शन रास ४११, ४६२, ४०७
सुदर्शन संज्झाय ४४६
सुदर्शन श्रेष्ठी रास ५२५
सुदर्शन गीत ५०६
सुदेवच्छ मावलिंगा ११६
सुधर्म स्वामी रास २९९
सुन्दर विलास ५४५
सुन्दर सतसई ५४६
सुन्दर शृंगार ५४६
सुनन्दरास ४७
सुबाहु सन्धि २९९, ५७१
सुबोधमंजरी, कृष्ण रुक्मिणी री
बेलि की सस्कृत टीका ५३३
सुभद्रा सती चौपई ४६७
सुमतिनाथ स्तवन ५३१
सुमित्ररास ४६६
सुमित्र राजर्षिरास ५५, ५३
सुरपतिकुमार चौपई २२९
सुरपाल रास ४८७
सुरप्रिय चरित रास १६२
सुरप्रिय रास १६०, ४२९
सुरसुन्दर चोपई ३५३
सुरसुन्दर सुन्दरी चौपई ४७८
सुरसुन्दरी रास २६१, २६५
सुरसेन रास ५७२
सुलोचाना चरित ४५९
(मुनि) सुव्रत पुराण २०६
सूखड़ी ३५
सूयगडांग सूत्र अध्ययन १६ मानी
संज्झाय अथवा जंबू पृच्छा
संज्झाय १९८
सूयगडांग बालावबोध ६१७
सुर्यपुर चैत्य परिपाटी ४७६
सूर्यसहस्रनाम स्तोत्र २१
सूरीश्वर अमे सम्राट् ४४१, ९५
स्तम्भन पार्श्व स्तवन १०९
स्तवन गीतम आदि ५१९
स्तवनावली ३२५, १८१
स्थानांग दीपिका २५१
स्थानाङ्ग वृत्ति १८०
स्थूलभद्र गीत १३७
स्थूलभद्र बत्तीसी १०६
स्थूलभद्र रास ९३, ५५, ५३,
५३०, ४२२, ५१०
स्थूलभद्र मदन युद्ध १४३
स्थूलभद्र प्रेमविलास फाग १६७,
१६८
स्थूलभद्र मोहनबेलि १६७, १६८
स्थूलभद्र स्वाध्याय ४४, ४५
स्थूलभद्र गुणमाला चरित्र
(संस्कृत) ५५८
स्थूलभद्र धमाल ३५३, ३५५
स्याद्वाद् भाषा सूत्र वृत्ति ४४५
स्याद्वाद भाषा सूत्र ४९७
स्वरोदय ३७०
सेन प्रश्न नो संग्रह ४४५
सोमचंद्र राजा चौपई ४७८
सोमविमल सूरि रास ४४, ५५९
सोमसिद्धि निर्वाण गीत ५९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलसती भाष अथवा संज्झाय ३६३, ३६५
सोल सत्तवार्दी ११९, १२०
सोलहकरण रास १४६
सौभाग्य पञ्चमी चौपइ ७८
सौभाग्य पञ्चमी स्तुति २८८
सौभाग्य पञ्चमी अथवा ज्ञान-पञ्चमी स्तव ४३६

ह

हंसाउली रास ६०९
हंसागीत या हंसभावना हंसा-तिलकरास ३२
हंसराज वच्छराज रास १८६, १८७
हंसराज वच्छराज चौपइ ३४५, ३४७
हंसराज वच्छराज प्रबन्ध ४६०, ४७२
हनुमान चरित १९८
हनुमच्चरित्र ३३, ३२
हनुमन्तरास ४०७, ४०९
हनुमन्त कथा २८
हरिकेशी सन्धि ७३, ७४
हरिकेशी बलचरित्र ४७
हरिनी संवाद २३१
हरिबल चौपई २१४, २१५, ४४८
हरिबली सन्धि ७३
हरियाली ३७५, ३७६
हरिरस ४६
हरिवंश पुराण ४९४
हरिश्चन्द्र रास ५२३, ५२४
हरिश्चन्द्र रास या चौपई ४४३, ४४४
हरिश्चन्द्र राजा नो रास ६७
हरिश्चन्द्र चौपई ५८३
हरिश्चंद्र राजा रास ७२
हरिषेण श्रीषेण रास २३७
हित शिक्षा गीतम् ५१९
हित शिक्षा रास ५३, ६० ६४
हिण्डोलना गीत १०४
हिन्दी जैन साहित्य ९५
हिन्दी पद संग्रह १०४
हिन्दी साहित्य का आदिकाल १०८
हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास २०१
हीयाली ५७८
हीरविजय पुण्यखानि ४८८
हीरविजय सूरि निर्वाणरास ४८८
हीरविजय सूरि निर्वाण सलोको ४८८
हीरविजयसूरि निर्वाण स्वाध्याय ४८९
हीरविजय सूरि निर्वाण २८४
हीरविजय सूरि सूरिनो बारबोल रास ६२, ५३
हीरविजय सूरि पुण्यखाणिसंज्झाय १६४
हीरविजय सूरि ना १२ बोल ५८६
हीरविजय सूरि रास १६५, १६६, ६, ६२, ५३, ५९७, २८५, १०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीरविजय सूरि लाभ प्रवहण संज्झाय ६०३
श्री हीरविजयसूरि सलोको १०१
हीर सौभाग्य महाकाव्य १०१ ५८३
हीर सौभाग्य काव्य १७
हीर सौभाग्य २१
हुंडी स्तवन ३७५
हेमराज बावनी ५९५
हैमव्याकरण वृहद्वृत्ति दीपिका २३७
हैमलघु प्रक्रिया ४७७
होलिका चौपइ १९९, २००
होली की कथा १५०
होली गीत ४२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति-नामानुक्रमणिका

अ

अकबर २, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १५, १६, १७, १८, २०, २१, ५५, ६५, ६६, ९९, १०१, १०२, १३०, १३१, २११, १७५, १७६, १७८, २२१, २२७, २३४, २३९, २४०, २८३, २८६, २९३, ३१२, ३४४, ३९३, ४०२, ४३०, ४३१, ५२८, ५८३, ५८४, ६०१

अक्खा १९, ५३

अखयराज (श्रीमाल) ३१

अगरचंद नाहटा ३१, ३४, ४९, ७३, ८४, ९७, १०४, १२२, १४४, १६०, १७६, १८१, १८४, २०२, २०४, २१४, २२३, २३५, २५३, २९३, २९९, ३००, ३०८, ४०१, ४०३, ४०४, ४२४, ४२८, ४३०, ४८२, ५०७, ५११, ५१७, ५१९, ५३२, ५८८, ५७७

अगस्त ऋषि ७६

अजितदेव २०

अजित सूरि ३३

अजित नाथ १७

अजित ब्रह्म ३२

अनंतकीर्ति ३४, ४०७

अनंतहंस ३४ ३५, ३२४

अनिरुद्ध २८३

अबुलफ़ज़ल ९, ११, १२, १४, १६, १८, १९

अब्दुलसमद १८

अभयचंद ३५, ३६, १२०, १२१

(भट्टा०)अभयचंद ii २४७

अभयदेव ६६

अभयदेव सूरि ५०९, ४०१

अभयधर्म ११२, १०६

भट्टा० अभयनंदि ५५४, ५५५, ३७७

अभयवर्द्धन १९८

अभयसागर २०२

अभयसुन्दर ३६, ५०९, ७८, ४०८

अमरचंद्र ३६

अमरमाणिक्य २०, ७३, ११९, १७४, ४२३, ५२१

अमररत्न २६३, ५९८

अमरसिंह १००

अमरसूमरा १११

अमरादे १९८

अमीपाल ४३५

अमृतचंद ३०९, ३९४

अयोध्याप्रसाद १५४

अर्ककीर्ति १४७

अर्जुनजीवराज ३१४

अर्जुनमुनि २२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हंत (नगरसेठ) २०८
अलाउद्दीन खिलजी १५४
अहमदशाह ७१
आणंद ३८
आणंदवर्द्धन सूरि ४३
आणंदविजय २९०, २९१, ४३
आणंदविमल सूरि २९२, २८४, ५७५
आणदसोम ४४
आदि जिणसर ३२२
अजित ३२२
आदिनाथ १७, २३
आदिलशाह ५
आनंदकीर्ति ३८
आनंदचन्द ३८
आनंदघन (लाभानंद) १, २२, २५, २८, ३९, ४०, ४१, १००; ३७२, ३७३
आनंदमेरु २८३
आनंदरत्न ३६८
आनंदविमल सूरि ५८५, ५९६
आनंदविमल १७४, १७५, १७२, ४२४
आनंदोदय (आनंद उदय) ४५
आर्यरक्षित २९८
आसकरन २०४, २०५, २८६

इ

इब्राहीम लोदी २
ईश्वरबारोट ४६
ईसरदास १

उ

उग्रसेन ४०८
उत्तम ४०५
उत्तमचन्द ४७
उत्तम दे २९९
उदधिमाला ४१०
उदयकर्ण ४७
उदयचरण प्रमोद ५३९
उदयचन्द सूरि ५७२
उदयमंदिर ४८
उदयरत्न ४८, ३३८
उदयराज उदो ४९
उदयशील २३१
उदयसागर ३६८, २१७, ३२३
उदयसागर सूरि ५१
उदयसिंह ५, २०, ४९, २९९
उदयसेन २०६
उद्योतविजय ५४०
उदयभूषण ३९६
उभयलावण्य ३९६
ऊजलकवि ५१

ए

एतयाद खाँ ११
ऐक्वाबीन १३

ऋ

ऋद्धिविजय ४२७
ऋषभदास ५११, ४६६; ३५३, १६६, ५९७, ६०६, ६३, १०१, ६, २४, ५२
ऋषभदेव ६३, १४७
ऋषभनाथ १६८

अं

अंजना ४०९
(डॉ०) अंबाशंकर नागर १९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क

कक्कसूरि २५६, ३३९
कडवा शाह ९
कडुवा १३२
कर्णऋषि ४४१
कनक II २६७
कनककीर्ति ६४, ६७
कनककुशल ७२, ६७, ६१४
कनकचन्द ५३५
कनकप्रभ ७२, ६७, ६८
कनकरंग ११६
कनकलाभ ७८
कनकविजय ११, ७९, १२४, १२६, १२७
(विजयसिंहसूरि) १२८, १२९
कनकसिंह ३४७
कनकसुन्दर(गणि) ६७, ७१
कनकसुन्दर I ६८
कनकसुन्दर II ७२, ७३, कनकसुंदर ४५६
कनकसोम ६७, ७३, ४२२, ४२३ १७४
कनकसौभाग्य ७६
कपूरचन्द(ब्रह्म) ७७
कपूरचन्द चोपड़ा १
कबीर ४२, ३८०
कमलकलश २६७
कमलकीर्ति ७८, २०६, ४९७
कमलदे १५८
कमलप्रभ ४३९
कमलरत्न १९०
कमललाभ २४५, ४०४
कमलविजय ५९५, ५९८, १२९, १२७ १२५
कमलविजय I ७९, १२४, २२३
कमलशेखर(वाचक) ८०
कमलसागर ८१
कमलसोम गणि ८२, ८३
कमलहर्ष ८३
कमलोदय ८३
कम्मा (साहु) २१२, कम्माशाह १२५
करमचंद या कर्मचंद १२, ८३, ९२, १३१, १३२, १७५, २९३, ३३५, ४३१, ५२९
कर्मसागर ३०१
कर्मसिंह ८४
कर्माशा ९
कल्याण या कल्याण साह ८५
कल्याणकमल ८८
कल्याणकलश ८८
कल्याणकीर्ति ८८
कल्याणकुशल २११
कल्याणचंद्र ८९
कल्याणदेव ९०
कल्याणधीर २४४
कल्याणधीर (वाचक) २४६, २४७
कल्याणमल १२, २०७, १३१, १३२
कल्याण मुनि ८४
कल्याणरत्न २०
कल्याणविजय २३७, २३८, ३७१, ३७४, ४४५, ९०, १६४, ४९७; ५९७, ५९८
कल्याणसागर ५३५, ४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याणसागर सूरि ४८७, ४८, २३६, २१७, ३२७
कल्याणसागर II ९२, ९१
कल्याणसिंह या कल्याणमल्ल २९३
कवियण ९३, ९४, ९२, ५१८,४३०
कवियण (लब्धिकल्लोल) ४८४
कस्तूरचंद कासलीवाल ३१, ३३, १०४, २३४, २६८, २८९, २९५, ३४१, ३००, ३०२, ३११, ३१९, ३२१, ३९३, ३९४, ४०७, ४११, ५०६, ५६६
कादिर बदायूनी ९, १५
कानजी ९९
कांतिविजय ३७१
कालसंवर ४१०
कामताप्रसाद जैन ३२०, ३९४, ५४६
(ब्रह्म) कामराज ५५२
कालिदास ३५, ४५७, ३७९
किशनदास अग्रवाल ३१६
कीर्तिरत्नसूरि २०४, ४३७, ९५, ९६, ९७, ११४, १०५
कीर्तिवर्द्धन या केशवमुनि ९७, ९८, ११६
कीर्तिविजय ९९, ३७१, ४७३
कीर्तिविमल ४२९, ९८
कीरतिसिंह १४१
कुतलू खाँ २३४
कुदकुद ३९४, ३०९
कुमारपाल ५८३
(भट्टा०) कुमुदचन्द्र ५६३, १२०, १२१, १०२, २४, ३५, ३६, ३७८
कुलचरण ५७१
कुलतिलक ६११
कुँवरजी २४८, ३१३, ९९
कुँवरजी II १००
कुँवरजी गणि या कुशलसागर ११३
कुँवरपाल २९, ३०८, ३२०, ३२८ ४२१, १००, १०१
कुवर विजय १५८, ४८८, १३० १०१
कुशलकल्लोल ४३०, ४३३
कुशल प्रमोद ५३९
कुशलभुवन गणि ६१४
कुशल माणिक्य ५२६
(वाचक) कुशललाभ १०६, १०८, १, २९
कुशलवर्द्धन २५१, २५२, ११२
कुशलविजय २५९
कुशलसागर ११२
केशव ३८
केशव (ऋषि) ९९
केशवजी २४८ ११५
केशवदास ९८, १, ४१८
केशव मुनि १
केशवविजय ९८, ११६
केसराज ११४, २५६
के. एम झावेरी ३९
कोचर १२९
कोड़मदे ३५, २१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोशा ३५६
कौरपाल ५९२
कृपासागर ९४
कृष्ण ४१०, ३८३
कृष्णदास ९४, ८४
ब्रह्मकृष्णदास २०६
क्षमारंग ३८५
क्षमारत्न ५६३
क्षमासागर सूरि ३४१
क्षमासागर ११४
क्षमासाधु १९९, २००, २०१
क्षमाहंस ११६
क्षितिमोहन सेन ३९, ४०
क्षेम या खेम ११७
क्षेत्रसिंह या खेतसी ११९
क्षेमकलश ११७
क्षेमकीर्ति ३३३, १८८, १८९
(सुखेमकीर्ति)
क्षेमकुशल ११७
क्षेमराज ११८
क्षेमसोम ४६७

ख

खइपति ११९
खड्गसेन ३०७
खीमेशा ३५९
खुर्रम १६
खुसरो १६
खेतल १५२
खेम ११९
खेमाहडालिया ९
ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ५

ग

गणेण ३५
कवि गणेश ३७७, ३७८, १०२
ब्रह्म गणेश या गणेशसागर १२०,
१०५
गजलाभ ५७३
गजसागर ५७३
गजसागर सूरि २९८
गजसागर सूरि शिष्य १२०
(राजा) गजसिंह ५००
गुणकीर्ति १६३, ३६७, ४५५, २३५
गुणचन्द ४२७
(भट्टा०) गुणचन्द्र ३१६
गुणचन्द्र गणि ३२५
गुणनन्दन १२१
गुणनिधान ४६१, ४३१, २०२
गुणप्रभसूरि १२२, १७७, १८५,
१८६
गुणप्रमोद १४५
गुणमाला २०७
गुणमूर्ति १९२
गुणमेरू ३३७, ३३८, ३८८
गुणरंग ४४८
गुणरत्न ३८६
वाचक गुणरत्न १२२
गुणराज ८३
गुणविजय (गणि) १२७, १२८,
१२९, १३०, ११, ९३, ३७, २०
गुण विनय उपा० २०, १३२, १३०
३२०, ३३३, ५३९, १७५,
१७२, २३७, १२४
गुणविमल १५१
गुणशेखर २५७, ४८५
गुणसागर सूरि ५३४, ४०६, १९१
९२, ११४, ११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणसागर सूरि II १३९, १३७
गुणसागर या गुणसार १३९
गुणसिंह ३४०
गुणसूरि ३४३
गुणसेन
गुणहर्ष ४३४, ४३५, १४०
गुणहर्ष शिष्य १४०
गुनिलु साह १९८
गुरुदास ऋषि १४१
(ब्रह्म) गुलाल
गोधो (गोवर्द्धन) १४३
गोविन्द ५३३
गौतम ३८२
गौतम गणधर १०३, २५८
गग ९, १५
गंगदास ३१३
गंगाधर २३४
घनानन्द ४०

च

चतुर्भुज १०१, २८३
चतुर्भुज कायस्थ १४८
चतुर्भुज दास ३०८, ३२०
चतुरविजय ४८७
चंदमहत्तर १
चंदनबाई २५४
चंद्रकीर्ति सूरि २०, २४४, १४५
१४४, १४६, ५६७
चन्द्रप्रभ ३२२
चन्द्ररत्न ३९६
(मुनि) चंद्रसागर ५११
चंपाबाई (श्राविका) ११
चरणधर्म २४५
चरणोदय ९०
चांगा (मंत्री) ५८४
चाँद बीबी ८
चरित्रशील २३१
चरित्र सिंह १४९
चरित्रोदय ५५७
चारुकीर्ति १५०
चारुदत्त (सेठ) ८९
चारुधर्म १३९
चावा ऋषि २७१
चिमनभाई डाह्याभाई दलाल
१६६
चैतन्य १९

छ

छीतर १५०
छोटालाल मगनलाल २९२

ज

जगजीवन ३१०
जगतसिंह २९७
जगच्चन्द्र ४४
(राणा) जगतसिंह ३३२
जगजीवन दयाल मोदी २३२
जगडु साह ९
जगदीशचंद्र ३९४
(महा०) जगभूषण १४१, ४९४
जगतमल्ल कछवाहा ११
जगन्नाथ १८
जगमल ४४१, ४४२
जगाऋषि १५९
जगुसाह ९४
जटमल १५२, १५३
जमशेद १८

जंबूकुमार १३४, २०८
जयकल्याणसूरि ४२९
जयकीर्ति (वाचक) १५५, ५६९, ५०७, ४०२, १८४
जयकुमार १४७
(जिनकुशल) जयकुशल/जयकुल ४२६, १५६
जयचंद १५७
जयचन्द सूरि १५७, १५९
जयतिलक सूरि १८६, १८८, १८७
जयनिधान १६०
जयमल्ल १६३
जयमंडन ५६२
जयंत कोठारी ८३, २३०, २४१, ३३३, ३४४
जयमंदिर ६४
जयरत्न ३९६
जयरंग ३५२
(ब्रह्म) जयराज
जयविजय ४६५
जयविजय II १६४, ४८८, ५८२
जयवंत सूरि या गुणसौभाग्य सूरि ५६२, १६६
जयविमल २९२, १२५, १७२
जयशेखर ५६७
जयसार १७२
जयसागर १७०, १७१, ५३७, ५३६, ५३८, ३७८, १०५,१२१
जयसिंह सूरि १८६, १२५, ५८३, २९८, ७५
जयसोम (उपा०) १७२, १७३, १७५, १३०, ४३१, १३३, ६१३, ३३३
जल्ह १७४, ११९
जशसोम १७४
जसकीर्ति १८९
जसवंत सिंह राठोर ७७
जसवंत ८४
जसवंत कुमार ३७१
जसविजय (यशोविजय) ३७७
जससुन्दर ३३१
जहाँगीर २४२, २५४, ३३४, ५, २, ६५, ६६, १५, १४१, १७६, १८५, २२२, ३९९, ४९९
जावड भावड़ ९
जावड़ सा १५८
जितविजय या जीतविजय ३७१, ३७४
जिनकुशल २९६
जिनकुशल सूरि ५७३
जिनचन्द सूरि १, ९, १२, १३, २०, २१, ३६, ६४, ६५, ६६, ७५, ९०, १२२, १३०, १३१, १३२, १३६, १४४, १५५,१७६
जिनचन्द सूरि II १७७, १७८, १८०, १८४, १८५, १८६, १९०, २१४, २१५, २२६, २४१, २६०, ३३१, ३६०, ३८२, ४०१, ४०४, ४२३, ४३०, ४३१, ४६९, ५०९, ५१२, ५३२, ५७३, ६०१
जिनतिलक सूरि १८६, ४५, ३६३
जिनदत्त सूरि ६५, ६१५ ५७३
जिनदास ५८९
(ब्रह्म,जिनदास ६२३, २०६, ३१९

पांडे जिनदास १७८
जिनदेवसूरि २७६
जिनधर्म १८६
जिनप्रभसूरि ५०६
जिनभद्र सूरि २३०, १९६, २४५, २५७, ५२९, ४२३
जिनमाणिक्यसूरि २४५, २४६, २४७, ३८६, ७६, २०, १७६, ५९४, ६०१
जिनमेरु १८५, १८६
जिनरंग सूरि १९०, ४०४, ३३२, २९७
जिनराज सूरि २४२, २९६, ३२०, ३२१, ३३५, ३३६, या राजसमुद्र १८०, १८१, २, ३, ४, ३९९, ४०५, ३६०, १८५, १९६, २३०, १४५ ४८५, ११५, ४९९, ५००
जिनलाभ सूरि १७६
जिनवल्लभ सूरि ७३, २०, ४०१
(मुनि) जिनविजय १६८, २६२, ३५३, ४२७
जिनशेखर सूरि १२२, १८६
जिनसागर सूरि १२५, ४८, १९० २९६, २४२, २४३, १८४, १८५
जिनसिंह सूरि ५८३, १८५, १८४ ३६०, ३९९, ३६०, ३३४ ३३५ ३३६, ३३१, ४४३, १७५, १२ ३८, १२, ३८, ६५, ४७२ ५५७, १३२, ४९९
जिनसिंह सूरि (मानसिंह अथवा महिमराज) ५१२, २४२
जिनसुन्दर २८४, ३०१
जिनसेन ४९४
जिनहंस सूरि २९९, ३००, २७७
जिनहर्ष सूरि ५५६, ५७६, ४७७ ९८, २१४, २१५, २१६
जिनेश्वर सूरि ४०१, १८५, १७७ १७८, १२२
जिनोदय सूरि (आनंदोदय) १८६ १८८, ३६३
जीवजी ३१३
जीवराज ३५९, २४३, २४८
जीवराज ऋषि २७३, ९९
जीवंधर २०७
जीवसुन्दर २८४
जीवाशाह ५८६
जेतसिंह १५७
जैनंद १८८
जौनशाह ३०७
ज्योतिप्रसाद जैन ११५
ज्ञान १८९
ज्ञानकीर्ति १८९, १४५
ज्ञानकुशल १९०
ज्ञानतिलक २१, १९१, २७८
ज्ञानतिलक सूरि ५९०
ज्ञानधर्म २४३
ज्ञानदास १९१
ज्ञाननंदी ३३०, ३३१
ज्ञानपद्म ५०३
ज्ञानप्रमोद १२१
(महा०) ज्ञानभूषण २३, ३८२, ३८४, ३६७, २३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानभूषण सूरि ५४९, ४५७
ज्ञानमूर्ति १९२, १९५
ज्ञानमेरु ९५
ज्ञानरत्न ३६८, ५०३
ज्ञानरत्न सूरि २४९
ज्ञानविमल २०, ४०
ज्ञानविमलसूरि ३८५
ज्ञानविलास, ज्ञानविशाल ४४८ ५०७
ज्ञानसार ४०
(ब्रह्म) ज्ञानसागर १९८,
ज्ञानसागर ५३३, १९७
ज्ञानसुन्दर ५३३, १९८
ज्ञानसोम १९८
ज्ञानानंद १९९

ट

टोडरमल १०, १७८
टोडाराम सिंह ४१६
(शाह) ठाकुर २०१
ठाकुर ४९३
डुंगर १९९, २००, २०१
ढोला ११०

त

तानसेन १०, १४, १८
तापस कमठ ७७
तुकाराम १
तुरसम खाँ १३२
तुलसीदास १, १९, १०६, ३०८, ३१२, ५१३
तेजचंद २०२
तेजपाल १३२, ८५, ८६, ३५९, २०२
तेजरत्न सूरि ९७, ९५, ९६, २६३ ६११
तेजरत्नसूरि शिष्य २०४
तेजविजय २०३
तेजसिंह २८३
तेजसी ४२५
तेजाबाई १२०
तैमूर ४
त्रिभुवनकीर्ति २०६, १८८, १८९
(भट्टा०) त्रिभुवनकीर्ति २५४, २५६
त्रिभुवन चंद २०९
त्रीकम मुनि २०४
त्रैलोक्यसुन्दरी ७५

द

दयाकमल २३०
दयाकलश ४२३, १७४, २२६ ५३०
दयाकुशल ६, ५८४, २१४, २१५ २१६
दयारत्न ९७, ९८, २१४, २१५, २१६
दयाशील २१६
दयासागर २१७, २१९, २३६ ५७८
दयासागर या दामोदर २१७, २१८ २१९
दलशाह २६७
दल्लभट्ट २२०
दर्शन विजय या दर्शनमुनि २२०, २२२
(संत) दादू ५४५
दानियाल ८, १६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानविजय २२३
दामर्षि २८०
दामोदर ३५, ३६
दारा १९
दीपाशाह १७८
दुर्गादास २२३
दुर्गावती (रानी) ८
दुर्जनसाल ९५
दुर्योधन ४१०
दुरसा आढा १
दुर्लभ राय ४०१
देद २२५
देल्ह २२५ २२६
देव ६१८
देवकमल ११९, २२६
देवकलश ४७८
देवकल्लोल ८४
देवकीर्ति ३३०, ८८
देवगुप्त सूरि शिष्य (सिद्धसूरि) २२६
देवगुप्त सूरि शिष्य ५३७
देवचद २२७, ८९, २२९, ५३४
देवचंदII २२९, २३०
देवतिलक उपा० २७९, २७५, ५७८
(पं०, देवदत्त ३०७
देवदत्त सूरि ५३६, ५३८
देवमुनि २४७
देवरत्न सूरि ६८, २३०, २६३
देवराज २३१, २६८, ३४३
देवविजय १६४
देवविमल गणि १७, २१, ५८३
देवशील २३१
देवसागर २१, ४७, २३२
देवसुन्दर गणि ८४
देवीदास (कवि) ५११, २३४, ३७७
देवीदास द्विज १२, ३३
देवेन्द्रकीर्ति २४४, १७०, २३५
देवेन्द्रकीर्ति २३४
देवेन्द्रकीर्ति शिष्य २२६
देशलहरा १२९
दौलतराम ५९३

ध

धनंजय ३०९
धनजी २३६
धनपाल ३०५
धनरत्न ६९, ७१, ५९८, ४६३ ३२३
धनरत्न सूरि २६१, ३२३
धनराज (मंत्री) ५१
धनवर्द्धन ४३
धन विजय II २३७, ६१४
धनविमल २४०
धनहर्ष या सुधनहर्ष २३८, २३९
धर्मकीर्ति १५५, ३६०, १८४, २४१
धर्मघोष सूरि २९८
धर्मचंद २४४
धर्मदत्त ७५
धरदास या धरमसी १००
धर्मदास ३०८, ३२०, १४१, ११४, १०१, २८३, २४३
धर्मनिधान (उपा०) २४१
धर्मप्रमोद २४४
धर्मभूषण २४४
धर्ममंदिर २४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्ममूर्ति सूरिशिष्य २४६
धर्ममूर्ति १९२, ४६१, ८१, ३८५,
३६५, ३६२, ५२७, २४६
धर्ममेरु ४३४, २४५
धर्मरत्न २४६
धर्मवर्द्धन ११९
धर्मविजय ५४१, ५४३, २३८
धर्मसागर (उपा०) ५०३, १२१,
१०५, २०, ३५, ६२
धर्मसागर सूरि ३९०, ३९१, २२२
(ब्रह्म) धर्मसागर २४७, ५८४,
५८३
धर्मसिंह १७२, २४७, २४८, २९१,
२९२, ६१४
धर्म सी १४२
धर्मसुन्दर २२३
धर्मसुन्दर सूरि ३९१
धर्मसुन्दर गणि ८२
धर्महंस II २५०
धर्महंस २४९
धर्महर्ष १४४

न

नगर्षि गणि (नगा ऋषि) २५१,
२५२, ६१४
नंद ३५६
नंद कवि २५४, २५६
नंद दास १
नन्नसूरि २५६
नर्बुदाचार्य (नर्मदाचार्य) २६७
नयन कमल ६४
नयनसुख २५६
नयनंदि १८८
नयरंग ४००, ४०१, ४८५, २५७
नयरत्न शिष्य २६१
नयविजय गणि ३७०, ३७१, ३७४
नयविजय १०१, २५९
नयविमल ४६६, २५९
नयविलास २६०
नयसागर उपा० २६०
नयसुन्दर ६०, ५९८, २६१, २६२,
२६६
नयनसुन्दर २६६
नरसिंह राव ६९
नरेन्द्रकीर्ति २६८
नल ११०
नवलराम २६९
नाथी १०१
नाथूराम प्रेमी ३९, ९०, ३१०,
३१२, ३९५, ४१८, ४५९,
५९६
नानजी १९१, २७०
नानिग ९१
नागिल दे ९३
नानूगोधा १८९
नाभादास १९
नाभादास १९
नारद ४१०
नारायण भंडारी २१५
नारायण भंडारी I २७१
नारायण भंडारी II २७३
निपुणा दलाल १६७
नीबो २७४
नुसरत शाह ३
नूनो १
नेमि २०८
नेमिकुमार ४०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिचंद्र ३९४
नेमिचंद्र भंडारी ६१५
नेमिदास २०५
(ब्रह्म) नेमिदास २६८, २६९
नेमिनाथ ६५, १७१, २४७, २७४, ३२२, ३५७, ३९६, ३८६
नेमीश्वर २८

प

पकराज ८४
पद्मकुमार २७५
पद्मतिलक सूरि ३९१
पद्मदेवराज या देवराज ३४३
पद्मनंदी ३८२, ३१०, २३५, ४९७
पद्मनिधान ३३०, ३३१
पद्ममदिर २७५
पद्ममेरु २८३
पद्ममेरु (वाचक) ४२३
पद्मरत्न २७६
पद्मराज १९१, २७६, २७८, ३०१, ३४०
पद्मराज गणि ५९०
पद्मविजय २७९
पद्मशेखर सूरि ५७६
पद्मसागर १२७, ११४, ४०६, ५८३
पद्मसिंह ३७१
(पद्मविजय) ३७१
पद्मसुन्दर ६१३, ६१४, ५३२, ५३३
पद्मसुन्दर गणि ८४
पद्मसुन्दर गणि I २७९
पद्मसुन्दर गणि II २७९, २८१
पद्मसुन्दर गणि III २८३
(मुनि) पद्मसूरि २३१
परमा २८३
परमानन्द २८४, ५५२, ४८८
परमानन्द II २८४, २८५
परमानन्द III २८९
परिमल (परिमल्ल) २८६, २८८
पद्माबाई १०२
पाल्हा ३२८
पार्श्वचन्द्र ४७, १५७, ३३९, ३४०, ३६३, ४५०, ४८१, ४९८
पार्श्वनाथ ९, १७, ३४, २१५, ३०७
पिंगल (राजा) ११०
पीधा ३२
पुंजराज २२०
पुंजा ऋषि २९४, १५७
पुंणरीक १६८
पुण्यकीर्ति २९४
पुण्यचंद्र २०२, ५३५
पूर्णचन्द्र २७५
पूर्णचन्द्र सूरि ३८
पुण्यतिलक ४६७
पुण्यदेव ८४
पुण्यप्रधान १९०, ५३२
पुण्यप्रभ ४३९. १८६
पुण्यभुवन ३०१, ३०२, २९७
पुण्यमंदिर ४८
पुण्यरत्न सूरि २९८, २९९
(महो०) पुण्यसागर १९१, २७६, २७७, २७८, २८४, ५७१
उपा० पुण्यसागर २९९, ३०१, ३०२
पुष्पदंत २१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेथड़ ९
(राणा) प्रतापसिंह ५, २०, २९४, ५८६
प्रद्युम्न ४1०
प्रभसेवक २८८
प्रभाचन्द्र २८९, ३८२, ५४९, ४१७
प्रभानंद ५१८
प्रमोदमंडन २८६
प्रमोदमाणिक्य ३३३, ४६७
प्रमोदमाणिक्य गणि १७२
प्रमोदशील २३१
प्रमोदशील शिष्य २८९
प्रीतिविजय २९०
प्रीतिविमल २९१
(पं०, पृथ्वीपाल २९३
पृथ्वीमल्ल ४६५
पृथ्वीराज १, १५६
पृथ्वीराज राठौड़ २९३
प्रेममुनि ३०३
प्रेमविजय ३०५, ३०२
प्रेमसागर जैन २७, ३७९, ४०९, ५४५, ५४६, ५७८, ५९६
प्रेमानंद ५३, ५१४, १९

फ

फैजी ९, १४, १५, १९
फर्रुखवेग १८
फार्वेस १७
फेरु २८४

ब

बच्छराज १, ४५०, १८६
बणवीर २०४, २०५
बदरुद्दीन मु० अकबर ४
बदायूनी ८, ११, १९
बनवारी ३०५
बनारसी दास १, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २९, ३२, १००, १०१, २०९, २७०, ३०७, ३०८, ३४१, ३९५, ४१८, ४२१, ५६६, ५७७, ६१२
बल्लाल ३५३
वल्हपंडित शिष्य ४५३
बसावन १८
बहादुरशाह २६७, ३
बाजबहादुर १९
बार्टोली (पादरी) १०
बाण २१
बानरऋषि २०
बाना श्रावक ३०६
बाबर २, ३
बालचंद्र ३१३
बालविनय २६५
बासुकवि ६९
बाहुबलि १०३
बिंबसार २१, ६१
बिहारी दास ३४१
बिहारी मल ११
बीपा ४६८
बीरचंद ३८२, ३१४, ५५०
बीरबल ६, १०, १४, १५, १०
बीरभद्र २०
बीर विजय ४९०
बीरशा ३५९
बीरसिंह ३२
बुद्धिसागर ३५१, ३५२, ११९, १७४, ५२९, ७६, ४०, ४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुल्ला शाह १९
बूरा २४३
बेचर दास १९९
बेलराज ८०
बेलामुनि ४९०
बैजू बावरा १९
ब्रजराय देसाई ६९
ब्रह्मकुँवर ३४०
ब्रह्म शांति ३६६
ब्रह्मसागर १०१, १२१
बृद्धिचंद्र २०२

भ

भगौतीदास १०१
भगवती दास (भैया) २२, २३, २४, २५, २६
भगवती दास ३०८, ३२०, ३१६, ३१९, ३२०
भगवानदास तिवारी ९०, ९५, ३९३
भजनलाल दलपत राम जोशी ४९६
भद्रबाहु ४१७
भद्रसार ४९
भद्रसेन १, ३२०
भरत १४७, १०३
भँवरचंद नाहटा ५११, ३५३
भवान ३२२
भाग्यचंद्र १३२
भानु २८३
भानुकीर्ति गणि ३२२
भानुचंद ३०८, २१, ९, १३, २२२; २२७, ५८२
भानुभट्ट ३७०
भानुमंदिर २२३
भानुमंदिर शिष्य ३२३
भानुमेरु गणि २६३, २६१, ५९८
भानुलब्धि ३६५
भामाशाह ५, ९, ५८६
भारमल (बिहारीमल) ५, ३९३, ३९४
भाव या (अज्ञात) ३२३
भावदेव सूरि ३५२
भावरत्न सूरि ६११, ३२४
भावविजय २१, ४८७, ३२५
भावशेखर ३२७
भावहर्ष उपा० ३४
भावहर्ष सूरि १८६, १८७, ३२८, ४२४, ४२५, ६११
भीम २२५, ३०१
भीमभावसार ३२८, ३३०
भीममुनि ३२९, ३३०
भीमरत्न २१७
भीमराज ३४३
भीमसिंह माणिक ७२, ६०
भुवनकीर्ति ४४१
भुवनकीर्ति गणि ३३०, ३३३, २३५, ३६७
भुवनप्रभ ४३९
भूधरदास २३
भैरव २०५
भोज ३५४

म

मगनलाल झवेरचंद शाह १३८
मंगलमाणिक्य १, ३६८
मणिरत्न ४७२, ४६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिकीर्ति ३३३, ५५५
मतिचंद ३३५
मतिभद्र १४९
मतिलावण्य २६७
मतिवर्द्धन ५३०, ४२३
मतिसार ८३, १८१, ३३५, ३३६
मतिसागर ३३६, ३३७
मतिसारा। ३३७, ३३८, ६१४
मतिसिंह ३४७
मथुरामल १४१
मंदोदरी ३१७
मधुसूदन व्यास या मदनसूदन ३३९
मनचंद (मान) ३४७
मनजी ऋषि अथवा माणेकचंद्र ३३९, ३४०
मनराम ३४१, ३४२
मनसुखलाल रजनीभाई मेहता ३९
मनोहरदास ३४३
मम्मट ५१२
मालजी ३१३
(श्री) मल्लजी ३१३
मल्लिभूषण ४५७, ५५०, ३८२
मल्लिदास ३४३
मल्लिदेव ३४४
महमूद खिलजी ३
महानंद मणि ३४४, ३४५
महावत खाँ ३७१
महावीर २१, ६१, १७९, २६८, २७०, ३२२, ३९६
महावीर प्रसाद द्विवेदी ५८७
महिमराज १३९, ५७८
महिमसिंह २१ या जिनसिंह सूरि ४८४
महिमसिंह या मानकवि ३४५
महिमसुन्दर ३४८, १९५
महिमामेक ३४८, २९८, २९६
महिमासिंह ३४७
महिमासेन ३४७
(भट्टा०) महीचंदा ३४९
महेन्द्रसिंह २९८
महेन्द्र सेन ३१६, ३२०
महेश उपाध्याय ७२
महेशदास १४
महेश्वर सूरि शिष्य ३५०, ३३
माणिक्य सूरि ५७३, २६५
माणिक्यसुन्दर २७९
माधवदास ३५१, २२५
मानकीर्ति ४७८
मानचंद २०२
मानसागर ३५१
मानसिंह (जिनसिंह सूरि) ९३, ६, १०, १२, १५०, १८९, २०१, २८६, ३४६, ३४७, ४९३
मारवणी ११०
मालदेव १, १०७, २८३, ३५२, ३५३
मालमुनि ३५८
मालवणी ११०
माहमअंगा ८
माहावजी ३५९
मीरा ३८०
मुकुंद १८
मुकुंदराम १९
मुक्तिसागर सूरि १३९, ३६१
मुंज ३५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिकीर्ति ३५९
मुनिचन्द्रसूरि ५७२
मुनिचन्द्र ४७१
मुनिप्रभ ३६०
मुनिरत्न ३६८
मुनिविजय २२०, २२१, २२२
मुनिविनल ३२५, ३२६
मुनिशील ३६०
मुराद १६
मूलदास ३०७
मूलावाचक ३६२
मृगा दे २४२
मेघजी ११७, १०२
मेघजी ऋषि ५३९, ५४०, ५८४
मेघनिदान ३६३
मेघरत्न ५६३
मेघराज (वाचक) ३६३
(ब्रह्म) मेघराज I मेघमंडल ३६६, ३६७
मेघराज II ३६५, ६१४
मेघविजय ७९, ५६८
(महो०) मेघविजय १००
मेरुतिलक ५३०, ४२३
मेरुसुन्दर ६१४
मेहमुनि २११, २१४
मेहर्षि ३८०
मेहरुन्निसा १६
(डा०) मोतीलाल मेनारिया ११० ५४७
मोल्हा २८३
मोहनदास कायस्थ ३७३
मोहनलाल दलीचंद देसाई २०, २३, ८८, ९३, १२०, १३९, १६०, १७०, १८१, १९५, २०२, २१४, २२०, २२९, २३२, २२३, २२४, २०४, २२५, २४१, २६५, २६६, २६८, २७८, २९५, २९९, ३०१, ३०९, ३२५, ३३५, ३४४, ३५४, ३५८, ४०१, ४०३, ४२८, ४२९, ४३४, ५११, ५१९, ५२९, ५३२, ५८३

य

यशःकीर्ति १८८, २०६
यशवन्त १८, ७२
यशोलाभ १४०
यशोविजय उपा० २२, ३९, ३७० ३७१, ३७२, ३७३, ४७३, ५९३

र

रंगकुशल ६७, ७६, ४२२
रंगमंडन ऋषि ३४०
रंगविजय ४०५
रंगविमल ४२३
रंगसार ४२४
रइधू २०६
रतनजी ३१३
रतन ऋषि २४८
रतनसी २७०
रतनसेन १५४
(भट्टा०) रत्नकीर्ति ३७७, ३७९, ३८०, १०२, १७०, ५५४-५५
रत्नकीर्ति १२०, ४०७, ५६७, १४६

रत्नकुशल ३८०
(भट्टा०) रत्नचंद ३८१
रत्नचन्द्र गणि ६१४
रत्नचन्द्र २१
रत्नचन्द्र II २८१
रत्नचरित्र ४८१, ४५०
रत्ननिधान १७५, ३८२, ४३१
रत्नपाल ३५९
रत्नप्रभ ३६२
रत्नप्रभ शिष्य ३८५
रत्नभूषण सूरि ३८२, ३८४, २२४
रत्नलाभ ३८५
रत्नविमल ३८६
रत्नविशाल ३८६
रत्नशेखर ५६७
रत्नशेखर सूरि २०
रत्नसमुद्र ११७
रत्नसार ३८७, ५२६
रत्नसागर ५६२, २६०
रत्नसागर सूरि ५७६
रत्नसिंह सूरि ७१
रत्नसिंह ३२३
रत्नसिंह गणि २७१
रत्नसुन्दर ३८८
रत्नसुन्दर सूरि ३६३
(मुनि) रत्नसूरि ३६९, ३७०
रत्नहर्ष ३०४, ४९९
रत्नाकर ९९
रमणलाल शाह ५१७, ५१९
चिमनभाई १३४
रतिसागर ५७७
रविषेण ४०९
रविसागर १९७
रसखान १, ५१३
रहीम ९, १४
(मुनि) राजचन्द ३९०, ३६३
राजचन्द सूरि ३९१, ४८१
(कवि) राजमल ३९३, ३९४
राजमल्ल पांडे ३९२, ३९४, ३०९
३०८
राजमूर्ति गणि ४५६
राजरत्न ५६७
राजरत्न गणि ३९६
राजविजय सूरि ५७१
रामविजय मुनि ५८६
राजविमल २२०, २२२
राजसमुद्र १८५
राजसागर ३९८, १००, ११२,
११३, ३६१, ३६२, ३९७
राजसार २४२, ४६१, ४७२
राजसिंह ४९९, ४००, २८४, २८३
राजसुन्दर ४०१
राजसोम ५११, ५०७, ५६९,
४०२, २४२
राजहंस ५०९, ३६, ६१४
राजहंस I ४०३
राजहंस II ४०४
राजहंस गणि १९०
राजारामदास ५१२
राजीमती ४०८, २८, ३७८
राजुल १७१
राजुल दे २६८
राणाप्रसाद ४
राघव ३७८
(डा०) राधाकमल मुखर्जी ५, १०
१४, १५, १८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रामकीर्ति २३५
(आचार्य) रामचन्द्र शुक्ल ६१९, ३०७
रामदास १
रामदास ऋषि ४०५
रामदेव ३५
(पं०) रामविजय २२२
(मुनि) रामसिंह ६२३
रामानंद १४
रायचन्द्र गणि १६०
(भाई) रायचन्द्र ७२
रायसिंह या रायमल्ल ९२, ४३१ १२, १३१, १३२, २९३
राजमल्ल या रायमल्ल (रायचंद) १५८
(ब्रह्म) रायमल्ल २२, २८, १५७ १५८, २८३, ३९५, ४०७, ४०६
रिंडोशाह २२७
रुक्मिणी ४१०
रूपचंद १०१, २३, २०५, ११३
रूपचंद पांडे ४१८, २०९, ३०८ ३२०
रूप ऋषि ९९, २४८, २७० २७३, ४०५
रूपसिंह ५१२

ल

लइया ऋषि शिष्य ४४१, ४४२
लखपत ४२५
लखमसी ३३५
लक्ष्मी कीर्ति ५९४
लक्ष्मी कुशल या लक्ष्मी कुल १५६
लक्ष्मी कुशल ४२६, ४२७
लक्ष्मीचंद ५५०, ३५, १३२, ४५७, ३८२
(भट्टा०) लक्ष्मीचंद ३१४
लक्ष्मीप्रभ ४२७, ७६, ६७, २३१
लक्ष्मी प्रमोद ५३९
लक्ष्मीमूर्ति ४२८
लक्ष्मीरत्न ४२९, ५६३, ४२८
लक्ष्मी रुचि ४७१
लक्ष्मी विमल ४२९
लक्ष्मी सागर ३५
लक्ष्मी सागर सूरि ३९६, ३०१
लब्धि सागर ३२३
लब्धि कल्लोल ४३०, ४३१, ४३२, ४३७, १४३, १४४, १४५
उपा० लब्धि मुनि ५११
लब्धिरत्न सूरि ५७१
लब्धि रत्न या लब्धिराज ४३४
लब्धिराज ५७२
लब्धि विजय ४३४
लब्धिशेखर ४३७
लब्धि सागर ३६१
ललितकीर्ति ४३७
ललितप्रभ सूरि ४३९
लाल (जैनेतर) ४४२
लाभविजय गणि ३७१, ३७४
लाभशेखर ८०
लाभोदय ४४१
लालचंद ४४३
पं० लालचंद २९४
लालजी ९८
लालविजय ४४५, ४७७
लावण्यकीर्ति ४४८
लावण्यभद्र गणि शिष्य ४४९

लावण्य समय १४४
लीला देवी ५१२
लूण सागर ४१०
लोंकाशाह ९, ६१४

व

वच्छ १३२
वर्द्धमान सूरि ६०४
वर्द्धमान कवि ४५२
वरसिंह २४३, २४४, ८४, ३२८
वस्तिग १७४
वस्तुपाल २०५, ३६७
वस्तुपाल (वाचक) ४५४
(ब्रह्म) वस्तुपाल ४५५
वसु-वासो या वस्तो ४१६
वादिचंद ४५७, ४५९, ३४३, ३१४
वादिभूषण २६८
(महा०) वादिभूषण १८९, २३५, ४५२
विक्रम २१४, ६२, ४५९, ३५४
विक्रमाजीत ३०७
विक्रमादित्य ३६८
विजयकीर्ति ५९४, ३६७, ४९७
विजयकुशल शिष्य ४६०
विजयचंद्र सूरि ४४४, ४५५, १६६, १०१
विजयतिलक ६१४, २०३
विजयतिलक सूरि ५३, २०१, २२२, २२३
विजयदान सूरि ६२, ८१, १०१, १५१, २२९, २३३, २९०, २९२, ३९८, ४२४, ४३५, ४६६, ४६९, ४९०, ५०३, ५७५, ५८४, ५९५
विजयदेव सूरि १३. ९३. ७७, ९८, १२५, १२६, १२९, १४०, १६५, २०२, २२२, २७४, ३४०, ३७१, ४३४, ४:५, ४६०, ४७३, ४९१
विजयपाल ११६
विजयप्रभ सूरि ३७१
विजयमुनि ५१
विजयमेरु ४६०
विजयराज ३४३, २७९, २७५
विजय ऋषि ११०
विजय विमल ८९
विजय सील २१६, ४६१
विजय शेखर ४६२
विजय सागर ४६५, ५२९
विजयसिंह सूरि २१२, १२५, १२६, ३७४, ४७३
विजयसुन्दर २६३
विजयसेन १२, १३, २०, ५१, ५३, ५५, ५६, ६७, ७६, ७७, ७९, ९०, ९८, १०२, ११२, ११७, १२५, १२६, १२७, १२९, १९७, २०६, २२१, २२७, २३७, २५२, २५९, २८५, २९१, २९२, ३०३, ३४४, ३५१, ३५२, ४३५, ४६६, ५८२, ५८५, ५९८
विजयानंदसूरि ५३, १३०, ३२६
विजयाणंद २०३
विजयाणंद सूरि २२१, २२२, २२३, ३०६, ३०७
विद्याकमल ४६७
विद्याकीर्ति ४६७

विद्याचन्द्रसूरि ५७२
विद्याचन्द ४६६, ४६८
विद्यानंदी ४५७, ५५०, ३८२, ३२
विद्याप्रभ ४३९
विद्यामंडन ५६२
विद्यारत्न ६८, ६९, ७१
विद्याविज २७४, १२४, ९
विद्याशील ३६०
विद्याविशाल गणि ५७६
विद्यासागर २२९, २३०, ४६५,९४
विद्यासागर II ४६९
विद्यासिद्धि ४७०
विद्याहर्ष ३४४
विजयकल्लोल १४५
विनयकीर्ति २३५, ३३९
विनयकुशल ४७१, ४९१
विनयचन्द २४, ४७१, ५११
विनयदेव ३३९, ३४०
विनयदेव ब्रह्ममुनि २०
विनयप्रभ ६०
विनयभूषण ३२४
विनयमंडन ५६२
उपा० विनयमंडन १६६
विनयमूर्ति ५६२
विनयमेरु २५०, ४७२
विनयरंग ४३७
विनयराज ३०१
विनयविजय ३७१, ४७३
विनयविमल २४०
विनयशेखर ४६२
विनयसमुद्र ३८६, १२२, ४७८
(महो, विनयसागर ५११, ४७७
विनयसुन्दर ४७८
विनयसोम ४७९
विनयहर्ष ३०३
विमल ४७९
विमलकीर्ति ४८५, ४८०
विमलकुशल ५८२, ४७१
विमलचन्द्र १५७
विमलचरित्र ४८१
विमलचरित्र सूरि ४८२
विमलतिलक ४८०, ४८१
विमलप्रभसूरि ३९७. ३९१
विमलमंडन ३८६
विमलमूर्ति १९२
विमलरंग १४३, ४३०, ४३३, १४४
१४५, ९२
विमलरंग शिष्य (लब्धिकल्लोल)
४८३
विमलरत्न ४८०
विमलविनय ४००, ४०१, ४८५
विमलसागर सूरि ५१
विमलसोम ४२६
विमलहर्ष ३०३, ३२५, ३२६, ११
विबुध विजय (या) विजय विबुध
२०३
विवेककीर्ति २०
विवेकचंद I ४८६
विवेकचन्द II ४८७, २२७
विवेकधीरगणि ५६२
विवेकप्रमोद ५३९
विवेकमंडन ५६२
विवेकमेरु ३६०
विवेकरत्न ३९६
विवेकविजय ४८७
विवेकशेखर ३२७, ४६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेकहंस ४९०
विवेकहर्ष ४८८, २८५
विष्णुदास १
(कवि) विष्णुदास ३१३
विष्णु शर्मा ४५१
विशालकीर्ति ३४९, ४९३, २०१
विशालराज ५६३
विशालसोम सूरि २४१, २४०, ४ ६
(प०) विश्वनाथप्रसाद मिश्र ११० ४०
वीरकलश ५५७
वीरचन्द ५३५, ४५७
वीरजी २८३
वीरमदे १२९
वीरविजय २१२
वंदोशाह १२९

श

शकडालल ३५६
शक्तिरंग १६३
शहरमार १३
शांतिकुशल ४९१
शांतिचन्द्र गणि २०
शांतिचन्द्र ३६, ५८३, ३८१
शांति जिनेश्वर ६९
शांतिदास शेठ १५७
शांतिदास ८९, १७८
(ब्रह्म) शांतिदास २३४
शांतिदेव ३२३
शांतिनाथ ३९६, २०१, ३४
शांतिसागर २७६
शामलजी २४३
शालिवाहन ४९४
शालीटेकाउजी २६६
शाहजहाँ १६, १७, ७८, ५४६, ५०९
शिवजी ९९
शिवजी गणि ३८
शिवजी ऋषि २४८
शिवनंदन २३०
शिवनिधान ३४७
शिवनिधान उपा० ४९४
शिवदास (जैनेतर)
शिवसुन्दर (पाठक) ३३०
शिहाबुद्दीन मुहम्मद खाँ ११
शीलदेव ३५४
शीलविजय ७८
शुभचन्द्र ५५१, २३५, २०६, ४५५, ३६७, ५०६, ४९७
भट्टा० शुभचन्द्र ३१४
शुभवर्धन ५४४
शुभविजय ४४५, ४४६, ४९७, ४८७
शुभविमल ५९६
शेख अली ४
शेर खाँ, शेरशाह सूरी ३
शोभनमुनि ६७
श्रवण ऋषि ३६३
श्रवण (सरवण) ४९८
श्रीधर (जैनेतर) ४९८
श्रीपत २८३, २८४
श्रीपति ऋषि १५१
श्रीपाल ऋषि ४९९, ६१४
श्रीपाल ३५
श्रीमल्लजी ९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीरत्न ३९६
श्रीवंत १७६
श्रीसार (पाठक) ४९९, ५०२,
६१४, १५५, १८०, १८३
श्रीसुन्दर ५०२
श्रीहर्ष ५०३, १८०
श्रुतिसागर ५८४, ६१४, ५०३
श्रेणिक १७९, २०८, २७२, ३२३

स

सकलकीर्ति २३५, २६९, २७०,
३३०, ३६७, ६२३
सकलचन्द ९४, २०२, २२७,
३१६, ३८१, ५०३, ५१२,
५६९, ५८६
सकलभूषण २६८, ५५१
भट्टा० सकलभूषण ५०६
सकलहर्ष सूरि ४२८
सत्यनारायण स्वामी ५११, ५१९
सत्यभामा ७५, ४१०
सत्यशेखर ४६२
(डा०) सत्येन्द्र ४११
सदाफल १०२
सधारू ४११
समंतभद्र २९४
समधर १३२, ४४
समयकलश १३९
समयकीर्ति १४५
समयध्वज ५९६, २५७
समयनिधान ५६९, ५२३, ५०७,
२४३
समयप्रमोद ३६०, ५०७
समयराज ४०४, ५०९, ३६०
समयराज उपा० ३६, ७८
समयसुन्दर १, ९, १२, २०, ६०,
९३, ९४, १३२, १५५, १७५,
१८५, २३३, २३४, २४२,
२४३, ४०२, ४३१
महो० समयसुन्दर ५११, ५१९,
५२०, ५२१, ५६८, ५६९,
५७०
समयसुन्दर (कवियण) ५०९
समरचन्द सूरि ३८, १५७, २७१,
३६३, ३८१, ४५०, ४८१,
६१४
समरादित्य ८८
समरा शा ९
सरवर मुनि २२३
सलीम (शाहजहाँ) ५८७, १६, १३
सलीम सुल्ताना ८
सर्वदेव सूरि २५६
(महो०) सहजकीर्ति ४९९, ५२३,
५५१
सहस्रकीर्ति ३४९
सहजकुशल ५२६, ३६
सहजल दे ३७७
सहजरत्न (वाचक) ५२७, ५२८,
५१
सहजसागर ४६५, ११
सहजसागर शिष्य ५२९
सहजसुन्दर ५२३
संग्राम १३१
संग्रामसिंह २
संग्रामसिंह बच्छावत ५२९
संघ या सिंहविजय ५३९
संघचारित्र ४८२
संघराज जी ९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभूतिविजय ३५६
संयममूर्ति ५६२
संयमरत्न सूरि २५१
संयमसागर १०५, ५६३, १२१
समयहर्ष ४३४
सागरचन्द्र ५७८
सागरचन्द सूरि ११८, १३९, १६०
सागरतिलक ५०६
(उपा) साधुकीर्ति २०, ७३, ७६, ११९, १७४, १९५, १९६, २२६, ३४८, ४८०, ५२९, ५३०, ६१३
साधुतिलक ६११
साधुजी ७२
साधुमंदिर १४४, ४३०
साधुरंग ५३२
साधुलाभ १३९
साधुसुन्दर २१, ४८५, ४८१
साधुसोम २४५
सांगण ५२
सारंग ५३२
साहू वच्छा २४२
साहिब ५३४
स्थानसागर ९१, ५३५
सिकन्दर सूर ३
सिताब खान ५८४
सिद्धिचद ६१४, २१
सिद्धांतरुचि २४५
सिद्धिरत्न ५७१
सिद्ध सूरि ५६३, ४२८
सिद्धराज जयसिंह २१, ६८
सिद्धसेन १८५
सिद्धि सूरि ५३६, ६०२, ८४
सिंह प्रमोद ५३९, १
सिंह विजय १
सिंह विमल ११
सीता ३१७
सुखदेव ३५१
सुखनिधान ३४८
सुजान ४०
सुधनहर्ष या धनहर्ष ५४१, ५४३
सुधर्मरुचि ५४४
सुधर्माचार्य २०९
सुधर्मा स्वामी १३४, ६६
सुन्दरदास ५४५
सुन्दरदास ३०८, ३१२
सुभद्र ५४९
सुमतिकलश ४७७
सुमति कल्लोल ३६०, ४६९, ५४९
सुमतिकीर्ति १६३, ५४९, ३८२, ३८४, ३६७, ४५५, २३५, ३१४
सुमति गणि २४३
सुमति धीर १७६
सुमति मुनि ५५३
सुमतिवल्लभ १८५, २४३
सुमतिसागर सूरि २९८, ५३२, ५५४, ५५५, ९९०, ९९१
सुमतिसाधु ४२६
सुमतिसिंधु (सिंधुर) ५५५
सुमति सूरि १२९
सुमति हंस ५५६
सुररत्न ६९, ७१
सुरेन्द्रकीर्ति ३२
सुलोचना १४७
सुहमस्वामी ४२४

सूजी ५५७
सूर २३, ३८०, १, ४१३
सूरचंद ६१४, २२७
सूरचंद गणि ५५७
सूरविजय १४९
सूरजसिंह १५६
स्थूलभद्र २०८
सेवक २०२
सोभा २८३
सोमकीर्ति २०६
सोमप्रभ ८३
सोममूरति ८९
सोमरत्न ५६७
सोमविमलसूरि ४४, १७४, २३१, ३२२, ४२६, ४८२, ५३९, ५५३, ५५९, ५६१, ६१३, ६१४
सोमसिद्धि ५९९
सोमसिंह ३८९
सोमसुन्दर १३९, ५६३
सोमसूरि ५७
सौभाग्यमंडन ५६२
सौभाग्यरत्न सूरि ३८८
सौभाग्यसागर सूरि ३९७
सौभाग्यसुन्दर ३३८
सौभाग्यहर्ष सूरि २३१, ३८६, ४२६, ४४, ४८२, ५५९, ५६१

ह

आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी १०८, १११, ५११
हनुमान कवि २०
हमीदा उर्फ मरियम ४
हरखजी ५६३
हरनारायण शर्मा ३०८
हरप्रसाद २०
(कुँवर) हरराज १०७
हरिनन्दन ४४३
हरिभद्र सूरि ३७५
हरजी ५६५
हर्षकनक ३९६
हर्षकलश ५७१
हर्षकल्लोल १४४, १४५
हर्षकीर्ति ५६६, २०
हर्षकीर्ति सूरि ५६७
हर्षकुल ५७१
हर्षकुशल २१४, २१६, ५६८, ५५६
हर्षचन्द्र २९६, २९४, ३५९, ३६०, ४९७
हर्षतिलक ४०३
हर्षदत्त ५५३
हर्षधर्म ४३७, ४३०
(वादी) हर्षनंदन २४२, २४३, १५५, ५४९, २३४, १८५, ५६९, ४०२, ५११
हर्षप्रभ ५९९, ५७७
हर्षप्रमोद ३५९, ३६०, २९६, २९४
हर्षरत्न ५७१
हर्षराज ५७२
हर्षलाभ ५७३
हर्षलावण्य ३९६
हर्षवल्लभ ३६०, ६१३, ५७३
हर्षविमल ५७५, ५०२
हर्षविशाल १४४, ४३७, ४३०
हर्षसमुद्र ४७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्षसागर गणि ४९४
हर्षसागर I ५७५
हर्षसागर II ५७६
(उपा०)हर्षसागर ८१, १००, ३९८
हर्ष सीम १७४, १७५
हर्षाणंद २८४, २८५, ४८८
हरिश्चन्द्र
हरिफूला ५६५
हरिवंश १८
(डा०) हरीश गजानन शुक्ल ३३, ९१, १०६, १७१, २६६, ३१६, ३४५, ४०७, ५९६
हंसभुवन गणि ६०२
हंसरत्न ६०२
हंसराज I ६०३, ६०२, ८१, ५२७
हंसराज II ६०४
हापा ४०५
हांसल दे ८१ ५२७
हिंदाल ४
हीरकलश ४४३, ५७७, ५९९
हीरकुशल ५८२
हीरचद ५८२
हीरनंदन ५८३
हीरमुनि ४५४, ४५५
हीररत्न सूरि ५७१, ४२९
हीरराज २२०
हीरविजयसूरि १, ९, ११, १२, २०, २१, ५५, ६२, ७९ ९३, ९५, १०१, ११०, ११७, १३१, १६४, १६५, १७५, २२०, २२१, २११, २१३, २३१, २४०, २५१, २७१, २८३, २९२, ३४४, ३५२, ३७१, ४२३, ४२४, ४३५, ४४२, ४९७, ५३९, ५४१, ५८२, ५८३, ५९६, ६०३
हीरहंस ३२४
हीरानन्द मुकीम ५८७
हीरानन्द ४४३
हीरो ५८९
हुकुमचन्द भारिल्ला ३१
हुमायूँ ३, ४, २८३
हेमचन्द्र (आचार्य) २१, ३७२, ३९२, ५८३
मलधारी हेमचन्द्र सूरि १३९
हेमधर्म ४७२, ४६०
(वाचक) हेमनन्दन ५२३
हेममंदिर ३८
हेमरत्नसूरि २४९, ५९०, १
(पं०) हेमराज ३७४
हेमराज II ५९३
हेमराज III ५९४
(पांडे) हेमराज ५९३, ५९२, १००
हेमराज IV ५९४
हेमराज V ५९४
(लक्ष्मीवल्लभ–दीक्षानाम राजकवि–उपनाम)
हेमविजय गणि २०, ५९५, ५९७
हेमविजय सूरि २८, ३७४, ११
हेमविजय II ५५९
हेमविमल सूरि ४४, ३५, ४२६, ४२२, ३२४, ५५९, ५७१
हेमशील ४६१
हेमश्री (साध्वी) ५९८
हेमसिद्धि ५९९
हेमसोम ३३०, ३३१, ४२६
हेमानद ५९९

———

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org